वैदिक कोषः

लेखक
हंसराज एवं भगवद्दत्त



राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
नई दिल्ली-110058

वैदिक कोषः



* हंसराज एवं भगवद्दत्त *

IT IS A REPRODUCTION OF EARLIER EDITION OF VEDIC KOṢH

वैदिक-कोषः

लेखक

हंसराज एवं भगवद्दत्त



राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्
मानितविश्वविद्यालय
56-57 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, जनकपुरी
नई दिल्ली-110058

प्रकाशक
प्रो० वे० कुटुम्ब शास्त्री
निदेशक
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
५६-५७ इन्स्टीट्यूशनल एरिया , जनकपुरी
नई दिल्ली-११००५८

VEDIC KOṢH
By
HAṀSARĀJ & BHAGAVADDATTA

Reprint : 2002

Price : Rs. 72-00

मुद्रक
विश्वभारती अनुसंधान परिषद्
शान्ति निकेतन
ज्ञानपुर -२२१३०४ (भदोही)

डा० मुरली मनोहर जोशी
DR. MURLI MANOHAR JOSHI



मानव संसाधन विकास मंत्री
भारत
नई दिल्ली-११०००१
MINISTER OF
HUMAN RESOURCE DEVELOPMENT
INDIA

सन्देशः

संस्कृतसाहित्ये सन्ति बहूनि ग्रन्थरत्नानि येषां पठनपाठनम् अनुसन्धानं च सहस्रेभ्यो वर्षेभ्यः राष्ट्रेऽस्मिन् निरन्तरं प्रवर्तमानम् आसीत्। वेदशास्त्रस्मृतिपुराणादिरूपं विशालकायं वाङ्मयं संस्कृते उपलभ्यमानमस्ति। तदेतत् वाङ्मयं प्रतिष्ठितैः विद्वद्भिः तदा तदा महता परिश्रमेण महता च धनव्ययेन अंशतः प्रकाशितमप्यासीत्। परन्तु गच्छता कालेन संस्कृत-मुद्रितपुस्तकानामुपलब्धिः पण्डितेभ्यः छात्रेभ्यः तथा सामान्यजनेभ्यः दुर्लभा जाता । अतः सुदुर्लभान् सुसम्पादितान् एतान् बहूपयोगिनः संस्कृतग्रन्थान् छायाचित्रद्वारकमुद्रणविधिमनुसृत्य पुनर्मुद्रयित्वा न्यूनतममूल्येन विक्रयणं कर्तुं काचित् महत्त्वपूर्णा योजना मानवसंसाधनविकासमन्त्रालयेन स्वीकृता तदङ्गभूतराष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानेन कार्यान्विता चासीत् । ऐषमः पुस्तकवर्षे विक्रीतचराणाम् एकपञ्चाशत् ग्रन्थानां मुद्रणं विधातुं संस्थानेन संकल्पितमस्ति ।

अहमाशासे यत् दूरगामिना एतेनोपक्रमेण संस्कृतविद्वांसः, छात्राः संस्कृतप्रेमिणः सामान्यजनाश्च लाभान्विताः भवेयुः संस्कृतनिष्ठं ज्ञानवैभवम् इतोऽपि अधिकतरं विशदायमानं च भवेत् । कामये यत् राष्ट्रियसंस्कृत-संस्थानं योजनायामस्यां भिन्नभिन्नान् महत्त्वपूर्णान् ग्रन्थान् प्रकाश्य संस्कृतस्य सेवां इतोऽप्यधिकं कुर्यादिति ।

संस्कृत साहित्य में अनेक ग्रन्थरत्न विद्यमान हैं जिनका पठन-पाठन एवं अनुसंधान इस राष्ट्र में सहस्रों वर्षों से चला आ रहा है । वेद, शास्त्र, स्मृति एवं पुराण जैसे विशाल ग्रन्थ संस्कृत वाङ्मय का अंग हैं । यह वाङ्मय समय-समय पर प्रतिष्ठित विद्वानों द्वारा परिश्रम एवं आर्थिक व्यय से अंशतः प्रकाशित भी हुआ है । किन्तु समय के साथ इन ग्रन्थों की मुद्रित पुस्तकें छात्रों, विद्वानों एवं सामान्यजनों को दुर्लभ होने लगी

हैं । अतः इन दुर्लभ सुसम्पादित ग्रन्थों का पुनर्मुद्रण कर न्यूनतम मूल्य पर उपलब्ध कराने की योजना मानव-संसाधन-विकास-मंत्रालय एवं उसके अंगीभूत राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थान के द्वारा कार्यान्वित की गयी है। इस पुस्तक वर्ष में इक्यावन पुस्तकों का पुनर्मुद्रण संकल्पित है जो संस्थान के विक्रय विभाग में सम्प्रति अनुपलब्ध हो चुकी है ।

मैं आशा करता हूँ कि इस दूरगामी उपक्रम से संस्कृत के विद्वान्, छात्र एवं संस्कृतप्रेमी सामान्यजन लाभान्वित होंगे तथा संस्कृत के ज्ञान वैभव का विस्तार होगा । साथ ही मैं यह भी कामना करता हूँ कि राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान इस योजना में अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों को भी प्रकाशित कर संस्कृत की श्रीवृद्धि करेगा।

नई दिल्ली

09-04-02

(डा० मुरली मनोहर जोशी)

आमुखम्

श्रीमता हंसराज-प्रणीतः वैदिक-निर्वचनसंग्रह-परः वैदिक-कोशः प्रथमतस्तु १९२६ ईसवीये प्रकाशितः। ततोऽनु विदुषाम् उपकारकः सर्वत्र समादृतः जातः। महता प्रयासेन धनव्ययेन च प्रकाशितचराः ईदृशाः ग्रन्थाः कालान्तरे दुर्लभतां गताः । तेन च संस्कृताध्ययन-अनुसन्धानक्षेत्रे काठिन्यम् अनुभूयमानमासीत् भारतशासनान्तर्गतमानवसंसाधनविकासमन्त्रालयस्य प्रकाशितचराणां दुर्लभानां च ग्रन्थानां पुनर्मुद्रणात्मकपरियोजनायां पुनर्मुद्रिताः अपि इमे ग्रन्थाः कालक्रमेण भूयोऽपि दुर्लभतां गताः । अतः द्वितीयवारमपि पुनर्मुद्रणं कारयित्वा पुस्तकानां सुलभता सम्पादनीया इत्येतत् मन्त्रालयस्य संकल्पमनु ग्रन्थरत्नस्यास्य पुनर्मुद्रणं प्रकाशनं च विधीयमानमस्ति ।

सन्दर्भेऽस्मिन् अपेक्षितं मार्गदर्शनं तथा शुभसन्देशं च प्रदाय राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानं समेधितवद्भ्यः मानवसंसाधनविकासमन्त्रिवर्येभ्यः डॉ० मुरलीमनोहरजोशीमहाभागेभ्यः आधमर्ण्यं वहामि । संस्थानस्य अर्थसमितेः अध्यक्षेभ्यः निर्णयस्यास्य स्वीकारे सहकृतवद्भ्यः संस्थानस्य उपाध्यक्षेभ्यः श्री नी. गोपालस्वामी महोदयेभ्यः हार्दान् धन्यवादान् व्याहरामि । प्राशासनिकं साहाय्यं विधाय कार्यसाफल्याय सहकृतवत्यै मानवसंसाधनविकासमन्त्रालयस्य भाषाविभागे संयुक्तसचिवायै श्रीमत्यै बेलाबैनर्जीमहाभागायै तथा अन्येभ्यश्च तद्विभागीयाधिकारिभ्यः धन्यवादान् व्याहरामि । संकल्पस्यास्य साकारतासम्पादने योग्यं प्रयासं कृतवन्तं संस्थानस्य शोधप्रकाशनविभागस्य सहायकनिदेशकं डॉ. प्रकाशपाण्डेयं तदनुयायिकार्यकर्तृगणं च साधुवादैः सम्भावयामि ।

योग्ये काले सुन्दरं पुनर्मुद्रणं विधाय उपकृतवते विश्वभारती अनुसन्धान - परिषद् , ज्ञानपुर (भदोही) इति मुद्रणालयस्य पतये डॉ. कपिलदेव-द्विवेदिनः साधुवादान् व्याहरामि । आशासे यद् भूयः कृतेन अनेन द्वितीयपुनर्मुद्रणप्रयत्नेन संस्कृतविद्वांसः संस्कृतच्छात्राः संस्कृतप्रेमिणश्च लाभान्विताः प्रेरिताश्च भवेयुः इति।

संस्कृतसेवकः

दिनाङ्कः

१०.४.२००२

वेम्पटिकुटुम्बशास्त्री

निदेशकः

राष्ट्रिय-संस्कृत-संस्थानम्,

नवदेहली ।

॥ ओ३म् ॥

वैदिक कोषः

दयानन्दमहाविद्यालयस्थानुसन्धानविभागस्य
पुस्तकाध्यक्षेण हंसराजेन संगृहीतः

भगवद्दत्त-*कृतया*

ब्राह्मण-ग्रन्थेतिहास-प्रकाशिकया भूमिकया सहितः।

अत्र पञ्चदशमुद्रितब्राह्मणग्रन्थान्तर्गतवैदिकशब्दानामर्था निर्वचनानि
च, तत्तद्देवतानां विशिष्टकर्म्मादीनि, यज्ञसम्बन्धीनि विशे-
षवक्तव्यानि, विविधविधानामाचाराणाञ्च मूलभू-
तान्यार्षाणि वचांसि च संगृहीतानि।

ऋषिदयानन्दसरस्वतीजन्मशताब्द्युपहारः।

आर्य्य सम्वत् १९६०८५३०२६

विक्रम सं० १९८२। सन् १९२६ ई०।

दयानन्दाब्दः १०१

प्रथम संस्करण

OM

VEDIC KOṢA

by

HAMSARĀJA

Librarian, Research Library, D. A. V. College,
LAHORE.

WITH AN ELABORATE INTRODUCTION
on the
HISTORY OF THE BRĀHMAṆA LITERATURE

by

BHAGAVAD DATTA

Comprising a concordance of all the etymologies, meanings of Vedic words, attributes of different devatas, scientific and moral passages and other useful material contained in the 15 printed Brahmanas of the Vedas.

L.DWARKA DASS MEMORIAL VOLUME

First Edition

FEB. 1926.

* ओ३म् *

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ यजु० ॥

❀ प्राक्कथन ❀

ग्रन्थारम्भ का इतिहास ।

कालेज में अध्ययन करते समय मैं ऋषि दयानन्द सरस्वती प्रणीत वेद-भाष्य का स्वाध्याय किया करता था । श्री स्वामी जी महाराज अपने वेद-व्याख्यान में स्थल स्थल पर ब्राह्मणग्रन्थों के प्रमाणों को उद्धृत करते हैं । इन्हीं प्रमाणों के बल पर उन्होंने वेद-मन्त्रों के अनेक सार-गर्भित अर्थ दर्शाए हैं । मेरे मन में अनेक वार यह कामना उठती थी कि अखिल ज्ञात ब्राह्मण-ग्रन्थों के ऐसे ही वाक्यों का यदि अकारादि-क्रम से संग्रह हो जाय, तो वेदाभ्यासियों को बड़ी सुगमता होगी । पुनः सन् १९१६ में मैं निरुक्त का पाठ किया करता था । निरुक्त में—

इति ह विज्ञायते । इति ब्राह्मणम् ।

कह कर कई स्थलों पर ब्राह्मणग्रन्थान्तर्गत वैदिक-शब्दों का निर्वचन भी दिया हुआ है । उस निर्वचन से वेदार्थ में बड़ी सहायता मिलती है । उस से यह बात हृदयंगम हुई कि ब्राह्मण-ग्रन्थों में आये हुए वैदिक-पदों के निर्वचन का भी अकारादि क्रम से संग्रह होना चाहिये ।

सन् १९१७ में 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन' भाग प्रथम छापते समय मेरा ध्यान उनके एक पत्र* की ओर आकृष्ट हुआ । उस में लिखा है—

"निघण्टु सूचीपत्र के सहित तुम्हारे पास भेज दिया है । और निरुक्त तथा ब्राह्मणों के प्रसिद्ध शब्दों की संक्षिप्त सूची† भी बनाकर भेजेंगे सो निघण्टु की सूची के अन्त में छपवाना ।"

---

* देखो—ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन भाग प्रथम, पत्र (४४) ।

† मैंने इस ग्रन्थ का अन्वेषण किया । मुझे इसका पता न लगा । हां, मार्च सन् १९२१ में पण्डित रामगोपाल शास्त्री ने अजमेर समाजोत्सव से आकर मुझे सूचित किया कि उन्होंने श्रीस्वामी जी के कागजों के एक बण्डल में इस ग्रन्थ को खोज लिया है ।

सन् १९१८ में पं० हंसराज इस पुस्तकालय के पुस्तकाध्यक्ष बने। मैंने ब्राह्मण-ग्रन्थों में से पूर्वोक्त दोनों प्रकार के वाक्यों का संग्रह करने के सम्बन्ध में उन से बात की। वे मुझे ही कार्य भार लेने के लिये कहते थे। अन्त को हम दोनों एक निश्चय पर पहुंच गये। तदनुसार पं० हंसराज ने सन् १९१८ के अन्त में संग्रह का काम आरम्भ कर दिया। तब से वे यह काम करते ही आये हैं। उन के इस अविश्रान्त परिश्रम का फल अब वैदिक-विद्वानों के सम्मुख उपस्थित किया जाता है। मैं भी समय २ पर उनके कार्य का निरीक्षण करता रहा हूं। मुझे सदा ही अत्यन्त प्रसन्नता होती थी, जब मैं उनके संग्रह में प्रायः सब ही आवश्यक शब्दों को आया हुआ पाता था।

पर इतने बड़े काम में त्रुटियों का होना बहुत साधारण बात है। हमें स्वयं इसकी अनेक त्रुटियों का ज्ञान है। पर धनाभाव में हम इससे अधिक अच्छा काम नहीं कर सकते थे।

ग्रन्थनाम।

हम ने इस संग्रह का नाम वैदिककोष रखा है। सम्भव है अनेक विद्वान् प्रश्न करें कि यह वेदान्तर्गत प्रत्येक शब्द का कोष तो है नहीं, पुनः इसका ऐसा नाम क्यों? हमारा विचार है कि जैसे यास्कीय-निघण्टु वैदिककोष कहा जाता है, वैसे यह बृहत्संग्रह भी वैदिककोष कहला सकता है। विशेषता इस में यह है कि इस में निर्वचनादि का संग्रह होनेसे यह निरुक्तादि का भी मूल कहा जा सकता है।

कोषार्थ-प्रयुक्त ब्राह्मण-ग्रन्थों के नाम।

अब तक जितने ब्राह्मण ग्रन्थ मुद्रित हो चुके हैं, उनसे ही कोष के इस प्रथम-भाग की रचना हुई है। उनके नामादि और संस्करण जो समय २ पर वर्ते गये निम्नलिखित हैं।

ऋग्वेदीय ब्राह्मण।

(१) **क–ऐतरेय ब्राह्मणम्**–Martin Haug द्वारा सम्पादित। मुम्बई गवर्नमेण्ट द्वारा प्रकाशित। सन् १८६३। Vol. I.

ख–ऐतरेय ब्राह्मणम्–सायणभाष्य समेतम्। सत्यव्रत सामश्रमी द्वारा सम्पादित। Asiatic Society of Bengal, Calcutta. सम्वत् १९५२-१९६२. Vol. I-IV.

ग–ऐतरेय ब्राह्मणम्–Das Aitareya Brahmana सम्पादक Theodor Aufrecht. Bonn. सन् १८७९।

घ—**ऐतरेय ब्राह्मणम्**—सायणभाष्य समेतम् । सम्पादक-काशीनाथ शास्त्री आनन्दाश्रम पूना । सन् १८९६ । Vol. I. II.

(२) क—**कौषीतकि ब्राह्मणम्**—सम्पादक-B. Lindner. Jena. सन् १८८७

ख—**शाङ्खायन ब्राह्मणम्**—सम्पादक—गुलाबराय वजेशंकर आनन्दाश्रम पूना । सन् १९११ ।

यजुर्वेदीय ब्राह्मण ।

(३) क—**शतपथ ब्राह्मणम्**—माध्यन्दिनीयम् । सम्पादक A. Weber. Reprint लाइपज़िग । सन् १९२४ ।

ख—**शतपथ ब्राह्मणम्**—माध्यन्दिनीयम् । अजमेर संवत् १९५९ ।

ग—**शतपथ ब्राह्मणम्**—सायणभाष्य सहितम् काण्ड १-३,५-७,९ सम्पादक सत्यव्रत सामश्रमी । सन् १९०३-१९११ । Asiatic Society of Bengal, Calcutta. Vols. I-VII.

(४) क—**तैत्तिरीय ब्राह्मणम्**—सायणभाष्य सहितम् सम्पादक राजेन्द्रलाल मित्र । Asiatic Society of Bengal, Calcutta. सन् १८५९-१८९० । Vols. I-III.

ख—**तैत्तिरीय ब्राह्मणम्**—सायणभाष्य सहितम् । सम्पादक-नारायण शास्त्री । भाग १-३ । आनन्दाश्रम पूना । सन् १८९९ ।

ग—**तैत्तिरीय ब्राह्मणम्**—भट्टभास्कर भाष्ययुतम् । सम्पादक—महादेव शास्त्री तथा श्रीनिवासाचार्य । सन् १९०८-१९२१ । मैसूर ।

सामवेदीय ब्राह्मण ।

(५) **ताण्ड्यमहाब्राह्मणम्**—सायणभाष्य सहितम् । सम्पादक—आनन्दचन्द्र वेदान्तवागीश Asiatic Society of Bengal, Calcutta. सन् १८७० ।

(६) (७) क—**दैवतब्राह्मणम्**—तथा **षड्विंशब्राह्मणम्**—सायणभाष्य सहितम् सम्पादक जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता । सन् १८८१ ।

ख—**षड्विंशब्राह्मणम्**—विज्ञापनभाष्य सहितम् । सम्पादक—H. F. Eelsingh. लाईडन । सन् १९०८ ।

ग—**षड्विंशब्राह्मणम्**—सायणभाष्य सहितम् । प्रथमः प्रपाठकः । सम्पादक Kurt Klemm. Gutersloh. सन् १८९४ ।

(८) **क–मन्त्रब्राह्मणम्**–सम्पादक सत्यव्रत-सामश्रमी । संवत् १९४७ । कलकत्ता ।

ख–मन्त्रब्राह्मणम्–प्रथमः प्रपाठकः । सम्पादक Heinrich Stonner. Halle. सन् १९०१ ।

(९) **संहितोपनिषद् ब्राह्मणम्**–भाष्यसहितम् । सम्पादक-A. C. Burnell. मंगलोर । सन् १८७७ ।

(१०) **आर्षेय ब्राह्मणम्**–सम्पादक A. C. Burnell. मंगलोर । सन् १८७६।

(११) **वंशब्राह्मणम्**–सायणभाष्य सहितम् । सम्पादक-सत्यव्रत सामश्रमी । कलकत्ता । संवत् १९४९ ।

(१२) **क–सामविधानब्राह्मणम्**–सायणभाष्य सहितम् । सम्पादक–सत्यव्रत सामश्रमी । कलकत्ता । संवत् १९५१ ।

ख–सामविधानब्राह्मणम्–सायणभाष्य सहितम् । सम्पादक A. C. Burnell. लण्डन । सन् १८७३ ।

(१३) **जैमिनि उपनिषद् ब्राह्मणम्**–सम्पादक–Hanns Oertel. देवनागरी संस्करण । लाहौर । सन् १९२१ ।

(१४) **जैमिनि आर्षेय ब्राह्मणम्**–सम्पादक–A. C. Burnell. मगलोर । सन् १८७८ ।

अथर्ववेदीय ब्राह्मण ।

(१५) **क–गोपथ ब्राह्मणम्**–सम्पादक–हरचन्द्र विद्याभूषण । कलकत्ता । सन् १८७० ।

ख–गोपथ ब्राह्मणम्–सम्पादक–Dr. Dieuke Gaastra. लाईडन सन् १९१९ ।

कोष में संग्रह किये हुए वाक्यों का विषय ।

जैसा पूर्व कहा जा चुका है, इस कोष में ब्राह्मणान्तर्गत वैदिक-पदों का निर्वचन तथा अर्थ तो मुख्यतया एकत्र किया ही गया है, पर इसके अतिरिक्त वैदिक देवताओं के गुण, कर्म, स्वरूपादि के सम्बन्धी वाक्य; अनेक उपयोगी वैज्ञानिक वाक्य; तथा यज्ञसम्बन्धी विशेष बातें, वा अन्वेषणोपयोगी अनेक प्रकार के वाक्य भी संग्रह किये गये हैं ।

कोषान्तर्गत वाक्य क्रम ।

वाक्यों के संग्रह होजाने पर उनको क्रम देने का काम बड़ा कठिन था । बहुत विचारानन्तर यही निश्चित किया गया कि यदि किसी शब्द का निर्वचन ब्राह्मण ग्रन्थों में विद्यमान है, तो वह आरम्भ में धरना चाहिये । अन्ततः ऐसा किया भी गया है । तत्पश्चात् अनेक सदृश वा समानार्थ वाक्य एकत्र रखे गये हैं । यह शैली ब्राह्मण-ग्रन्थों के भावी सम्पादकों के लिये बड़ी उपयोगी होगी, एक ही दृष्टि से उन्हें तुल्य-वाक्यों वा भ्रष्टपाठों का ज्ञान होजायगा ।

माडर्न रीव्यू अकतूबर सन् १९२४ में हमारे कोष की समालोचना करते हुए पं० विधुशेखर भट्टाचार्य ने लिखा था कि 'ये वाक्य भी अकारादि क्रम से देने चाहियें थे ।' यह प्रस्ताव सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है । हमारा पूर्व-प्रदर्शित अभिप्राय इससे पूर्णतया सिद्ध नहीं होता था । हमारे सामने यह विचार आया था, परन्तु अति-उपयोगी न होने से इसको कार्य में नहीं लाया गया ।

कोष के सम्बन्ध में इतना लिखने के उपरान्त ब्राह्मणों के इतिहास सम्बन्ध में भी ब्राह्मणों की भूमिका रूप में कुछ लिखना आवश्यक है ।

अनुसन्धान विभाग
दयानन्द ऐंगलो वैदिक कालेज, लाहौर ।
२० अगस्त १९२५

भगवद्दत्त

भूमिका।

ब्राह्मण-ग्रन्थों का इतिहास।

(१) सङ्कलन काल

ब्राह्मण ग्रन्थों की मौलिक सामग्री प्राचीनतम कालों से चली आई है। शतपथ १०।६।५।९॥१४।७।३।२८॥ वा बृहदारण्यक ४।६।३॥६।५।४॥ के वंश ब्राह्मणों के अनुसार ब्राह्मण-वाक्यों का आदि-प्रवचनकर्त्ता ब्रह्मा=स्वयम्भु ब्रह्म हुआ है। प्रजापति*, मन्वादि† महर्षियों ने भी अनेक ब्राह्मण-वाक्यों का प्रवचन किया था। ऐसे ही अन्य ऋषि लोग भी समय २ पर इन ब्राह्मणों के अनेक पाठों का प्रवचन करते आये हैं। इन सब का संकलन महाभारत-काल‡ अर्थात् द्वापर के अन्त या कलि के आरम्भ में भगवान् कृष्ण-द्वैपायन वेद-व्यास वा उनके शिष्य प्रशिष्यों ने किया था। इसमें प्रमाण भी हैं। शतपथादि ब्राह्मणों में अनेक स्थलों पर उन ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पाये जाते हैं, जो महाभारत-काल से कुछ ही पहिले के थे। देखो—

तेन हैतेन भरतो दौःषन्तिरीजे............ ।
तदेतद् गाथयाभिगीतम्—
अष्टासप्ततिं भरतो दौःषन्तिर्यमुनामनु ।
गङ्गायां वृत्रघ्ने ऽबध्नात् पञ्चपञ्चाशतꣳ हयान् ॥इति॥११॥
शकुन्तला नाडपित्यप्सरा भरतं दधे.... ॥ १३ ॥

---

* आधानं ब्राह्मणं प्रजापतेः। इष्टिब्राह्मणानि प्रजापतेः॥
चारायणीय मन्त्रार्षाध्यायः ९, ११॥

† आपो वा इदं निरमृजन्। स मनुरेवोदशिष्यत।
स एतामिष्टिमपश्यत्तामाहरत्तयायजत .....॥
काठक सं० ११।२॥ तथा देखो तै० सं० ३।१।९।३०॥

‡ महाभारत काल से हमारा अभिप्राय महाभारत-युद्ध के लगभग १०० वर्ष पूर्व और १०० वर्ष उत्तर का है। महाभारत युद्ध विक्रम संवत् से ३००० वर्ष से कुछ पूर्व हुआ था।

महदद्य भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः ।
दिवं मर्त्य इव बाहुभ्यां नोदापुः पञ्चमानवाः ॥ इति ॥१४॥

शतपथ १३।५।४॥

तथा च—

एतेन ह वा ऐंद्रेण महाभिषेकेण
दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौष्यन्तिमभिषिषेच ।
............तदप्येते श्लोका अभिगीताः ।
हिरण्येन परीवृतान् कृष्णान् शुक्लदतो मृगान् ।
मष्णारे भरतो ऽददाच्छतं बद्धानि सप्त च ॥
भरतस्यैष दौष्यन्तेरग्निः साचिगुणे चितः ।
यस्मिन्त्सहस्रं ब्राह्मणा बद्धशो गावि भेजिरे ॥
अष्टासप्ततिं भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु ।
गङ्गायां वृत्रघ्ने ऽबध्नात् पञ्चपञ्चाशतं हयान् ॥
त्रयस्त्रिंशच्छतं राजा ऽश्वान् बध्वाय मेध्यान् ।
दौष्यन्तिरत्यगाद्राज्ञो मायां मायावत्तरः ॥
महाकर्म भरतस्य न पूर्वे नापरे जनाः ।
दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदापुः पञ्च मानवाः ॥ इति

ऐतरेय ब्रा० ८।२३॥

इन गाथाओं=यज्ञगाथाओं=श्लोकों* में वर्तमान दौष्यन्ति भरत और शकुन्तला नाम स्पष्ट महाभारत-काल से कुछ ही पहले होने वाले व्यक्तियों के हैं । अतः शतपथादि ब्राह्मण महाभारत-काल में ही संकलित हुए, ऐसा मानना युक्तियुक्त है ।

प्रश्न—(क) ये सब नाम यौगिक होने से अपने धात्वर्थ मात्र का निर्देश करते हैं। (ख) दुःष्यन्त, भरत, शकुन्तला आदि नाम व्यक्ति-वाची नहीं है, प्रत्युत जातिवाची

---

* एतरेय ८। २३ जिसे श्लोक कहता है शतपथ १३। ५। ४। १४॥ उसे गाथा कहता है, और जैमिनीय १। २५८ ॥ जिसे श्लोक कहता है, ऐतरेय ३/४३॥ उसे ही यज्ञगाथा कहता है। अतएव श्लोक, गाथा और यज्ञगाथा, यह तीनों शब्द पर्याय ही हैं।

हैं। जैसे गौ, अश्व, पुरुष, हस्ति आदि नाम जातिवाची हैं, ऐसे ही अनेक कल्पों में होने वाले दुःष्यन्त, भरत आदिकों के लिये, यह भी जातिवाची नाम हैं। अतएव ऐसे नामों के ब्राह्मणों में आने से ब्राह्मण-ग्रन्थ महाभारत-कालीन नहीं कहे जा सकते।

उत्तर—(क) जो यज्ञगाथायें हमने प्रमाणार्थ उद्धृत की हैं, वे सब पौरुषेय हैं। उनके पौरुषेय होने में जो प्रमाण हैं, वे आगे "क्या ब्राह्मण वेद हैं" इस प्रकरण में दिये जायेंगे। अतः पौरुषेय वाक्यों को "श्रुतिसामान्यमात्र" मान कर अर्थ करना कल्पनामात्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं। मन्त्र-संहिताओं में जो नियम चरितार्थ होते हैं वे मनुष्य रचित ग्रन्थों में नहीं हो सकते। (ख) दुःष्यन्त, भरत आदि शब्दों को हम जातिवाची भी नहीं मान सकते। क्योंकि वहां भी वही पौरुषेय की आपत्ति आयेगी। जिन नवीन मीमांसकों ने "वेदों" में विश्वामित्र आदि शब्दों को जातिवाची माना है, उन्होंने भी अपौरुषेय वेदों में ही माना है। और हम तो उनकी इस कल्पना को भी निराधार ही मानते हैं।

प्रश्न—अनेक लोग निम्नलिखित गाथास्थ नामों को भी महाभारत-कालीन ही मानते हैं, क्या यह सत्य है ?

एतेन हेन्द्रोतो दैवापः शौनकः जनमेजयं पारिक्षितं याजयां चकार .... ॥ १ ॥

तदेतद्गाथयाभिगीतम्—

आसन्दीवति धान्यादꣳ रुक्मिणꣳ हरितस्रजम् ।
अबध्नादश्वꣳ सारंगं देवेभ्यो जनमेजयः ॥ इति ॥ २ ॥

शतपथ १३।५।४॥

तथा च—

एतेन ह वा ऐंद्रेण महाभिषेकेण तुरः कावषेयो* जनमेजयं पारिक्षितमभिषिषेच। .... तदेषाभि यज्ञगाथा गीयते—

आसंदीवति धान्यादं रुक्मिणं हरितस्रजम् ।
अश्वं बबंध सारंगं देवेभ्यो जनमेजयः ॥ इति

ऐतरेय ८।२१॥

---

* इसी तुरः कावषेय का उल्लेख शतपथ ९।४।३।१५॥ में है।

उत्तर––यद्यपि महाभारत-काल में भी पाण्डवों की सन्तति में "पारिक्षित जनमेजय" था, तथापि यह व्यक्ति उससे पूर्वकालीन प्रतीत होता है। देखो महाभारत*, शान्तिपर्व अध्याय १४९ में कहा है—

भीष्म उवाच—

अत्र ते वर्तयिष्यामि पुराणमृषिसंस्तुतम्।
इन्द्रोतः शौनको विप्रो यदाह जनमेजयम्॥ २॥
आसीद्राजा महावीर्यः पारिक्षिज्जनमेजयः।

तथा अध्याय १५१–

एवमुक्त्वा तु राजानमिन्द्रोतो जनमेजयम्।
याजयामास विधिवत् वाजिमेधेन शौनकः॥ ३८॥

यहां भीष्म महाराज युधिष्ठिर को कह रहे हैं कि—

"महावीर्यवान् राजा पारिक्षित जनमेजय हुआ था।"

अतः ब्राह्मणान्तर्गत गाथास्थ 'पारिक्षित जनमेजय'† महाभारत-काल से कुछ पहले हो चुका था।

प्रश्न—अथर्ववेद २०। १२७। ७–१०॥ में महाराज परिक्षित् का वर्णन है। उसे कौरव्य भी कहा है। पं० भगवान दास पाठक भी अपने ग्रन्थ Hindu-Aryan Astronomy and Antiquity of Aryan Race (सन् १९२०) पृ० ४६ पर अथर्ववेद के महाभारतोत्तर-कालीन होने में यह एक युक्ति देते हैं। तो क्या वस्तुतः यह बात ठीक है?

उत्तर—अथर्ववेद के जिस सूक्त में परिक्षित् शब्द आया है वह कुन्ताप सूक्तों में से पहला है। कुन्ताप सूक्त अथर्व संहितान्तर्गत नहीं हैं। इन सूक्तों का पदपाठ भी नहीं है। अनुक्रमणिका में इन्हें खिल कहा है। इन सूक्तों में परिक्षित् शब्द के आजाने से सारी संहिता महाभारतोत्तर-कालीन नहीं कही जा सकती। और वस्तुतः

---

*महाभारत के सब प्रमाण कुम्भघोण के संस्करण से दिये गये हैं। यद्यपि महाभारत के सब संस्करण प्रक्षेपों से भरे हुए हैं, तथापि हमने अपने दिए हुए प्रमाणों की तुलना दूसरे संस्करणों से करके प्रमाण का कुछ २ निश्चित रूप ही उपस्थित किया है।

†गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग २। ५॥ में जिस जनमेजय पारीक्षित का वर्णन आया है, वह भी यही व्यक्ति प्रतीत होता है।

इन मन्त्रों में भी परिक्षित् आदि पदों का अर्थ संवत्सर तथा अग्नि ही है । देखो ऐ० ब्रा० ६ । ३२ ॥ और गो० उ० ६ । १२ ॥ यहां किसी राजा आदि का वर्णन नहीं है । विस्तरभय से मन्त्रार्थ नहीं किये गये ।

ब्राह्मण-ग्रन्थों के महाभारत-कालीन* होने में और भी प्रमाण देखो ।

(क) महाभारत आदिपर्व अध्याय ६४ में लिखा है—

ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च तथानुग्रहकाङ्क्षया ।
विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्माद्व्यास इति स्मृतः ॥१३०॥
वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान् ।
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम् ॥ १३१ ॥
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशंपायनमेव च ।
संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः ॥ १३२ ॥

अर्थात् वेदव्यास के सुमन्तु, जैमिनि, वैशंपायन, पैल चार शिष्य थे । इन्हीं चारों को उन्हों ने मुख्यतः से वेदादि पढ़ाये । वैशंपायन को ही चरक कहते हैं । काशिकावृत्ति ४ । ३ । १०४ ॥ में लिखा है—

वैशंपायनान्तेवासिनो नव । ......
चरक इति वैशंपायनस्याख्या ।
तत् संबन्धेन सर्वे तदन्तेवासिनश्चरका इत्युच्यन्ते ।

---

*महाशय L. A. Waddell अपने पुस्तक Indo-Ṣumerian Seals Deciphered (सन् १९२५) पृ० ३ पर महाभारत-युद्ध का काल बताते हुए सब पाश्चात्य लेखकों को मात कर गये हैं । वे लिखते हैं—

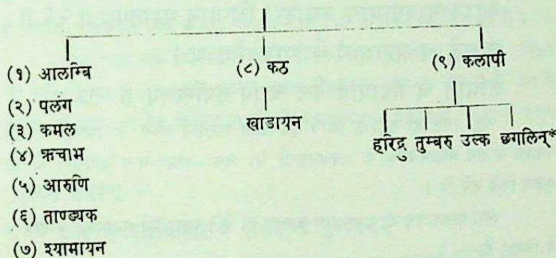
............at the time of the Mahabharata War about 650 B. C., was the Bharat Khattiyo (क्षत्रिय) King Dhritarashtra,..

यह लिखते समय वे उस भारतीय ऐतिह्य को भूल गये हैं, जिस पर अपने पुस्तक के अन्य स्थलों में वे बड़ी श्रद्धा दिखाते हैं । क्या उन्हें इतना भी स्मरण नहीं रहा कि धृतराष्ट्र तो गौतम बुद्ध के काल से सैकड़ों ही नहीं, सहस्रों वर्ष पूर्व हुआ था । समस्त भारतीय राज-वंशावलियां इस बात का अकाट्य प्रमाण हैं ।

पुनः महाभाष्य ४।३।१०४॥ पर पतञ्जलि मुनि लिखता है—

वैशंपायनान्तेवासी कठः। कठान्तेवासी खाडायनः। वैशंपायनान्तेवासी कलापी।

यह शिष्य-परम्परा निम्नलिखित प्रकार से सुस्पष्ट होजायगी।



इन में से १–३ प्राच्य; ४–६ उदीच्य और ७–९ माध्यम हैं। देखो महाभाष्य ४।२।१३८॥ और काशिकावृत्ति ४।३।१०४॥ † पूर्वोक्त नामों में से—

(१) हारिद्रविणः‡।

(२) तौम्बुरविणः।

(३) आरुणिनः।

ये तीन महाभाष्य ४।२।१०४॥ में ब्राह्मण-ग्रन्थ प्रवचनकर्त्ता कहे गये हैं। अतः यह निर्विवाद है कि साम्प्रतिक सब ब्राह्मण-ग्रन्थ महाभारत-काल में ही संगृहीत हुए।

---

*पं० श्रीपाद कृष्ण बेल्वल्कर ने जो Four Unpublished Upanisadic Texts (सन् १९२५) में छागलेयोपनिषद् छापा है। वह इसी ऋषि का प्रवचन प्रतीत होता है। इस उपनिषद् के आर्ष होने में कोई सन्देह नहीं। पाणिनि सूत्र "छगलिनो ढिनुक्" ४।३।१०९॥ में इसी ऋषि के प्रोक्त-ब्राह्मण का वर्णन है।

† वायुपुराण पू० ६०।७-९॥ में इस से स्वल्पभेद है।

‡ यही हारिद्रविक हैं जिनकी संहिता वा ब्राह्मण का प्रमाण निरुक्त १०।५॥ में ऐसे दिया है—"यदरोदीत् तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्" इति हारिद्राविकम्॥

प्रश्न—सुमन्तु, जैमिनि, वैशंपायन, पैल किसी पहले युग वाले व्यास के शिष्य थे। वे पाराशर्य व्यास के शिष्य न थे, अतः यही ब्राह्मण-ग्रन्थ महाभारत से बहुत पहले काल के हैं।

उत्तर—ऐसी निराधार कल्पना मत करो। यह आर्येतिहास के विरुद्ध है। देखो महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ३३५ में कहा है—

विविक्ते पर्वततटे पाराशर्यो महातपाः।
वेदानध्यापयामास व्यासः शिष्यान् महातपाः॥ २६॥
सुमन्तुं च महाभागं वैशंपायनमेव च।
जैमिनिं च महाप्राज्ञं पैलं चापि तपस्विनम्॥ २७॥

यहां स्पष्ट ही कहा है कि ये सुमन्त्वादि पाराशर्य व्यास के शिष्य थे। और क्योंकि ये सब ब्राह्मण-ग्रन्थों के प्रवचनकर्त्ता थे, अतः ब्राह्मण-ग्रन्थ द्वापरान्त में ही एकत्र किये गये थे।

(ख) याज्ञवल्क्य भी महाभारत-कालीन ही हैं। महाभारत सभापर्व, अध्याय ४ में लिखा है—

बको दाल्भ्यः स्थूलशिराः कृष्णद्वैपायनः शुकः।
सुमन्तुर्जैमिनिः पैलो व्यासशिष्यास्तथा वयम्॥ १७॥
तित्तिरिर्याज्ञवल्क्यश्च ससुतो रोमहर्षणः।

अर्थात् ये सब महाशय ऋषि महाराज युधिष्ठिर की सभा को सुशोभित कर रहे थे।

शतपथ ब्रा० याज्ञवल्क्य-प्रोक्त है। उसके विषय में काशिकावृत्ति ४।३।१०५॥ पर लिखा है—

ब्राह्मणेषु तावत्—भाल्लविनः। शाट्यायनिनः। ऐतरेयिणः।
···पुराणप्रोक्तेष्विति किम्। याज्ञवल्कानि ब्राह्मणानि।
·····। याज्ञवल्क्यादयो ऽचिरकाला इत्याख्यानेषु वार्ता।

जयादित्य का यह लेख महाभाष्य से विरुद्ध है। हम अपने "ऋग्वेद पर व्याख्यान" पृ० ५८ पर यह बता चुके हैं। जयादित्य के सन्देह का कारण कोई प्राचीन "आख्यान" है। परन्तु उससे जयादित्य का अभिप्राय सिद्ध नहीं होता। ब्राह्मण ग्रन्थों के अवान्तर भागों को भी पुराण कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण के अनेक

अवान्तर ब्राह्मण अत्यन्त प्राचीन हैं। वे ब्राह्मण प्रजापति आदि ऋषियों ने कहे थे। उनकी अपेक्षा याज्ञवल्क्य प्रोक्त ब्राह्मण नवीन हैं। आख्यानान्तर्गत लेख का अभिप्राय समग्र शतपथ ब्राह्मण से नहीं, प्रत्युत उसके अवान्तर ब्राह्मणों से है। शतपथ ब्राह्मण का प्रवचन तो तभी हुआ था जब कि भाल्लवि, शाट्यायन और ऐतरेय आदि ब्राह्मणों का प्रवचन हुआ था। इन में से ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचनकर्ता महिदास सुमन्तु आदि से कुछ उत्तरकालीन हैं। देखो आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।४।४। यहां ऐतरेय आदि सुमन्तु आदि से उत्तर गण वाले होने से उत्तर कालीन हैं। भगवान् याज्ञवल्क्य इन्हीं का सहकारी हैं। अतः याज्ञवल्क्य और तत्प्रोक्त शतपथ ब्राह्मण भी महाभारत-कालीन ही है।

प्रश्न—इस पक्ष को स्वीकार करने में एक भारी आपत्ति है। उसकी उपेक्षा भी नहीं हो सकती। तदनुसार शतपथ ब्राह्मण महाभारत-काल का तो क्या, उस से लाखों वर्ष पुराना अर्थात् अत्यन्त प्राचीन है। महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३१५ में कहा है—

भीष्म उवाच—

अत्र ते वर्तयिष्यामि इतिहासं पुरातनम्।
याज्ञवल्क्यस्य संवादं जनकस्य च भारत ॥ ३ ॥
याज्ञवल्क्यमृषिश्रेष्ठं दैवरातिर्महायशाः।
पप्रच्छ जनको राजा प्रश्नं प्रश्नविदांवरः ॥ ४ ॥

तथा अध्याय ३२३—

याज्ञवल्क्य उवाच—

यथार्षेणेह विधिना चरताऽवमतेन ह।
मयाऽऽदित्यादवाप्तानि यजूंषि मिथिलाधिप ॥ २ ॥
. . . . .

सूर्यस्य चानुभावेन प्रवृत्तोऽहं नराधिप ॥ २२ ॥
कर्तुं शतपथं चेदमपूर्वं च कृतं मया।
यथाभिलषितं मार्गं तथा तच्चोपपादितम् ॥ २३ ॥

अर्थात् शतपथ ब्राह्मण के प्रवचनकर्ता भगवान् याज्ञवल्क्य का संवाद दैवराति जनक से हुआ था। वाल्मीकि-रामायण बालकाण्ड, सर्ग ७१* में लिखा है—

*सीरामपुर संस्करण, सन् १८०६, सर्ग ५८॥

सुकेतोरपि धर्मात्मा देवरातो महाबलः ।
देवरातस्य राजर्षेर्बृहद्रथ इति स्मृतः ॥ ६ ॥

अर्थात् दैवराति बृहद्रथ जनक था। यह जनक सीता के पिता महाराज सीरध्वज जनक से भी बहुत प्राचीन हुआ है। इसी के साथ शतपथ के प्रवचन-कर्ता याज्ञवल्क्य का संवाद हुआ, अतः शतपथ ब्राह्मण अति प्राचीन-काल का ग्रन्थ है।

उत्तर—ऐसा भ्रम मत करो। दैवराति जनक अनेक हो सकते हैं। महाभारत-काल में भी तो एक प्रसिद्ध जनक था। उसी से वैयासकि शुक का संवाद हुआ। दैवराति जनक वही या उस से कुछ ही पूर्वकालीन होसकता है, क्योंकि महाभारत में इसी प्रकरण की समाप्ति पर भीष्म जी कहते हैं कि याज्ञवल्क्य और दैवराति जनक के संवाद का तथ्य उन्हों ने स्वयं दैवराति जनक से प्राप्त किया था।

भीष्म उवाच—

एतन्मयाऽऽप्तं जनकात् पुरस्तात्
तेनापि चाप्तं नृप याज्ञवल्क्यात् ।
ज्ञातं विशिष्टं न तथा हि यज्ञा
ज्ञानेन दुर्गं तरते न यज्ञैः ॥ १०९ ॥

शान्तिपर्व, अ० ३२२ ॥

शान्तिपर्व के उपदेश के समय भीष्म जी का आयु २०० वर्ष से कुछ कम ही था। इस गणनानुसार दैवराति जनक महाभारत-युद्ध से १५० वर्ष के अन्दर २ ही होसकता है। अतएव शतपथ ब्राह्मण भी महाभारत-काल में ही 'प्रोक्त' हुआ था, इस में अणुमात्र भी सन्देह नहीं।

(ग) शतपथ ब्राह्मण और उसका प्रवचन-कर्ता याज्ञवल्क्य महाभारत-कालीन ही हैं, और किसी पहले युग के नहीं, इस में शतपथान्तर्गत एक और भी साक्ष्य है। देखो—

अथ पृषदाज्यं तदु ह चरकाध्वर्यवः पृषदाज्यमेवाग्रे ऽभिघारयन्ति प्राणः पृषदाज्यमिति वदन्तस्तदु ह याज्ञवल्क्यं चरकाध्वर्युरनुव्याजहार ॥

शतपथ ३।८।२।२४॥

ता ऽउ ह चरकाः । नानैव मन्त्राभ्यां जुह्वति प्राणोदानौ

वा ऽस्यैतौ नानावीर्यौ प्राणोदानौ कुर्म इति वदन्तस्तदु तथा न कुर्यात् ॥

शतपथ ४ । १ । २ । १९ ॥

यदि तं चरकेभ्यो वा यतो वानुब्रुवीत ॥

शतपथ ४ । २ । ४ । १ ॥

तदु ह चरकाध्वर्यवो विगृह्णन्ति ॥

शतपथ ४ । २ । ३ । १५ ॥

प्राजापत्यं चरका आलभन्ते ॥

शतपथ ६ । २ । २ । १ ॥

इति ह स्माह माहित्थिर्य्यं चरकाः प्राजापत्ये पशावाहुरिति

शतपथ ६ । २ । १ । १० ॥

तदु ह चरकाध्वर्यवः ॥

शतपथ ८ । १ । ३ । ७ ॥

इत्यादि स्थलों में जो "चरक" अथवा "चरकाध्वर्यु" कहे गये हैं, वे सब वैशंपायन–शिष्य हैं।* हम पूर्व प्रदर्शित कर चुके हैं कि चरक=वैशंपायन महाभारत-कालीन था, अतः उसका वा उसके शिष्यों का उल्लेख करने वाला ग्रन्थ महाभारत-काल से पहले का नहीं हो सकता। वह महाभारत-काल का ही है।

(घ) याज्ञवल्क्य और शतपथ ब्रा० के महाभारत-कालीन होने में एक और प्रमाण भी है—

महाराज जनक की सभा में याज्ञवल्क्य का ऋषियों के साथ जो महान् संवाद हुआ था, उसका वर्णन शतपथ काण्ड ११–१४ में है। ऋषियों में एक विदग्ध शाकल्य ११ । ४ । ६ । ३ ॥ था। याज्ञवल्क्य के एक प्रश्न का उत्तर न देने से उसकी मूर्धा गिर गई १४ । ५ । ७ । २८ ॥ यह शाकल्य ऋग्वेद का प्रसिद्ध आचार्य हुआ है। यही पदकारों में सर्वश्रेष्ठ था।† इसका पूरा नाम देवमित्र शाकल्य

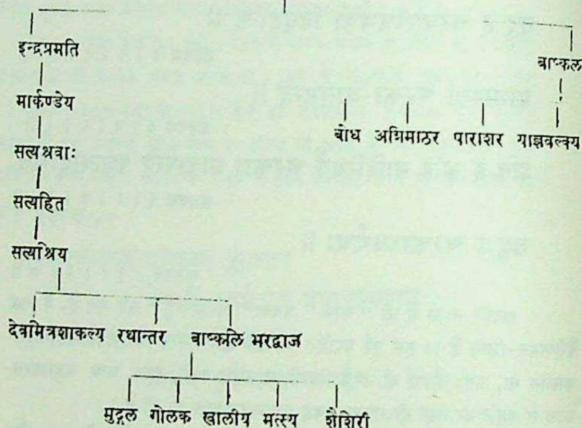
---

*देखो वायुपुराण पू० अध्याय ६२—

ब्रह्महत्या तु यैश्चीर्णा चरणाच्चरकाः स्मृताः ।
वैशंपायनशिष्यास्ते चरकाः समुदाहृताः ॥ २३ ॥

†वायुपुराण, पू० ६० । ६३ ॥ "पदवित्तमः"।

था। ब्रह्मवाहसुत याज्ञवल्क्य (वायुपुराण, पूर्वार्ध ६०।४१ ॥) के साथ इसका जो वाद हुआ था, उसका उल्लेख वायुपुराण पूर्वार्ध अध्याय ६० श्लोक ३२–६० में भी है। वायुपुराण के पूर्वार्ध अध्याय ६० के अनुसार इस देवमित्र शाकल्य (विदग्ध) के पूर्वोत्तर कुछ ऋग्वेदीय आचार्यों की गुरुपरम्परा का चित्र निम्नलिखित है।



पैल के शिष्य प्रशिष्य होने से ये शाकल्य आदि आचार्य महाभारत-कालीन हो। हैं। इन में से शाकल्य का विस्तृत वर्णन शतपथ में मिलता है। और शतपथ के प्रवचन कर्ता याज्ञवल्क्य के साथ इसका संवाद भी हुआ था, अतः याज्ञवल्क्य और शतपथ दोनों महाभारत-कालीन हैं।

इस विषय में और भी अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं, पर विद्वानों के लिये इतने ही पर्याप्त होंगे।

(ङ) ब्राह्मण ग्रन्थों का संकलन महाभारत काल में हुआ, इस में एक और प्रमाण है। काठक संहिता १०।६॥ के आरम्भ का यह वचन है—

नैमिष्या वै सत्रमासत त उत्थाय सप्तविंशतिं कुरुपञ्चालेषु वत्सतरानवन्वत तान्वको दाल्भिरब्रवीद्यूयमेवैतान् विभजध्वमिममहं धृतराष्ट्रं वैचित्रवीर्यं गमिष्यामि।

इसी कथा का उल्लेख महाभारत शल्य पर्व अध्याय ४१ में है—

ययौ राजंस्ततो रामो बकस्याश्रममन्तिकात् ।
यत्र तेपे तपस्तीव्रं दाल्भ्यो बक इति श्रुतिः ॥ ३२ ॥

तथा अध्याय ४२ में—

यत्र दाल्भ्यो बको राजन्पश्वर्थं सुमहातपाः ।
जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं कोपसमन्वितः ॥ १ ॥

• •

तानब्रवीद्बको दाल्भ्यो विभजध्वं पशूनिति ॥ ५ ॥

इस से निश्चय होता है कि काठक संहिता में विचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र का वर्णन है । वह भी लगभग महाभारत-कालीन ही था । उसका उल्लेख करने वाली संहिता और तदुपरान्त प्रवचन होने वाला ब्राह्मण अवश्य महाभारत काल के हैं ।

प्रश्न—धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य कोई पुराकाल का राजा होसकता है । उसी का यहां वर्णन है ।

उत्तर—यह कल्पना असत्य है । काठक संहिता में धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य के साथ जिस ऋषि "बको दाल्भ्य" *का कथन है, वह महाराज युधिष्ठिर के समय में विद्यमान था । देखो महाभारत वनपर्व, अध्याय २६—

अथाब्रवीद्बको दाल्भ्यो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
सन्ध्यां कौन्तेयमासीनमृषिभिः परिवारितम् ॥ ५ ॥

इत्यादि । और मनु के—

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वात् दीर्घमायुरवाप्नुयुः । ४ । ९४ ॥

इस वचन के अनुसार यद्यपि ऋषि जन दीर्घजीवी थे, तथापि उनका आयु १०० वर्ष से लेकर ३०० या ४०० वर्ष तक ही होता था ।† यदि इस से अधिक आयु होता तो भगवान् पतञ्जलि यह क्यों लिखता—

---

* सम्भवतः यही बको दाल्भ्य छान्दोग्य उपनिषद् १ । १२ । १ ॥ में स्मरण किया गया है । इसी बकोदाल्भ्य का वर्णन जै० उपनिषद् ब्राह्मण १ । ९ । ३ ॥ ४ । ७ । २ ॥ में भी है ।

† **अपि हि भूयांसि शताद्वर्षेभ्यः पुरुषो जीवति ।**

शतपथ १ । ९ । ३ । १९ ॥

किं पुनरद्यत्वे यः सर्वथा चिरं जीवति स वर्षशतं जीवति।

(महाभाष्य कीलहार्न सं० प्रथम भाग पृ० ५)

और भगवान् कात्यायन यह क्यों लिखता—

सहस्रसंवत्सरममनुष्याणामसम्भवात्* ॥ १३८ ॥

नादर्शनात् ॥ १४३ ॥

श्रौतसूत्र अध्याय १ ॥

अर्थात् मनुष्य का सामान्य आयु १०० वर्ष ही श्रुति आदि में दिखाई देता है। इसलिये जब बकों दाल्भ्य युधिष्ठिर कालीन है, तो इसी बको दाल्भ्य का युधिष्ठिर के पूर्वज धृतराष्ट्र वैचित्रवीर्य से वार्तालाप हुआ था। अतः उसकी कथा का प्रसंग कठ-संहिता में आजाने से कठब्राह्मण धृतराष्ट्र के कुछ पीछे अर्थात् महाभारत-काल में संकलित हुआ। हम कह चुके हैं कि सब ब्राह्मण ग्रन्थों का सङ्कलन एक समय में हुआ था। अतः यदि कठब्राह्मण महाभारत कालीन हो, तो दूसरे ब्राह्मण भी उसी काल में संगृहीत हुए।

(च) आरण्यक ग्रन्थ या तो ब्राह्मणों के विभाग हैं, या उन के साथ के ही ग्रन्थ हैं। तैत्तिरीय आरण्यक, तैत्तिरीय ब्राह्मण का साथी ग्रन्थ है। इस में १।९।२ ॥ पर पाराशर्य व्यास का एक मत उद्धृत किया है। तैत्तिरीय आरण्यक का प्रवक्ता तित्तिरि† भी महाभारत कालीन था, अतः तित्तिरि का प्रवचन होने वा पाराशर्य व्यास का कथन करने से तैत्तिरीय आदि ब्राह्मण वा आरण्यक महाभारत कालीन ही हैं।

(छ) भगवान् जैमिनि सामवेद की जैमिनि संहिता का प्रवक्ता है। यही जैमिनि पाराशर्य व्यास का प्रिय शिष्य था।‡ इसे ही वेदव्यास ने साम शाखाओं का सबसे पहले पाठ पढ़ाया। इसी ने तलवकार-जैमिनि ब्राह्मण का प्रवचन किया था। पाराशर्य व्यास शिष्य होने से यह महाभारत-कालीन है और इसका प्रवचन किया हुआ

---

*यहां मनुष्य शब्द का प्रयोग देव के मुकाबले में है। दैवी सृष्टि में तो कल्प पर्यन्त ही यज्ञ होरहा है। मनुष्य में ऋषियों की गणना भी है। मीमांसासूत्र ६।७। ३१—४०॥ का भी यही अभिप्राय है।

† इसी तित्तिरि का उल्लेख अष्टाध्यायी ४।३।१०२॥

तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्।

में है। इसी के कहे हुए किन्हीं श्लोकविशेषों के सम्बन्ध में पतञ्जलि ४।२।६६॥ पर कहना है—**तित्तिरिणा प्रोक्ताः श्लोका इति।**

‡ देखो सामविधान ब्राह्मणम्—व्यासः पाराशर्यो जैमिनये। ३।९।३॥

ब्राह्मण भी महाभारत कालीन ही हैं। जैमिनि ब्राह्मण में भी अनेक नाम ऐसे हैं जो केवल महाभारत कालीन ही हैं। विस्तरभय से यहां नहीं दिये गए। विद्वान् लोग उन्हें स्वयं देखलें।

इन्हीं भगवान् जैमिनि ने मीमांसा शास्त्र भी बनाया था। इसी कारण जैमिनि ब्राह्मण के कई हस्तलेखों के प्रारम्भ में प्राचीन परम्परागत ऐतिह्यका द्योतक यह श्लोक विद्यमान है—

उज्जहारागमाम्भोधेर्यो धर्मामृतमञ्जसा।
न्यायैर्निर्मथ्य भगवान् स प्रसीदतु जैमिनिः॥

प्रश्न—इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ आर्थर बेरीडिल कीथ अपने पुस्तक The Karma Mimansa (सन् १९२१) पृ ४—५ पर लिखते हैं—

A Jaimini is credited with the authorship of a Srauta and a Grhya Sutra, and the name occurs in lists of doubtful authenticity in Asvalayana and Sankhayana Grhya Sutras; a Jaiminiya Samhita and a Jaiminiya Brahmana of the Sama Veda are extant

It is, then, a plausible conclusion that the Mimansa Sutra does not date after 200 A. D., but that it is probably not much earlier.......................................

उनके इस लेख के भावानुसार—

(१) जैमिनि ब्राह्मण का प्रवक्ता जैमिनि, मीमांसा सूत्रों का प्रणेता नहीं।

(२) मीमांसा सूत्र ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी में ही बने थे। इत्यादि

क्या कीथ महाशय का यह सब भाव सत्य है?

उत्तर—कीथ महाशय का यह कथन सत्य तो क्या, सत्य से कोसों दूर है। क्योंकि—

(१) जैमिनि ब्राह्मण के अनेक हस्तलेखों के आरम्भ में आने वाला जो श्लोक हम पूर्व उद्धृत कर चुके हैं, वह परम्परागत ऐतिह्य का स्पष्ट द्योतक है। और आर्यावर्त के पण्डित आज तक अविच्छिन्न रूप से इसे मानते आये हैं कि तलवकार ब्राह्मण का प्रवक्ता, भगवान् वेदव्यास का शिष्य जैमिनि ही मीमांसा सूत्रों का प्रणेता था। कीथ साहेब के भ्रम का कारण यह है कि वे मीमांसा सूत्रों को ईसा की पहली वा दूसरी शताब्दी में रचा गया मानते हैं।

(२) मीमांसा सूत्र ईसा से सैकड़ों वर्ष पहले विद्यमान थे। शङ्कर, वेदान्त सूत्र ३ । ३ । ५३ ॥ के प्रमाण से कीथ स्वयं मानता है कि भगवान् उपवर्ष ने मीमांसा सूत्रों पर भाष्य लिखा। शङ्कर ही नहीं कौशिक सूत्र पद्धतिकार आथर्वणिक केशव भी मीमांसा भाष्यकार उपवर्ष का स्मरण करता है—

उपवर्षाचार्येणोक्तं। मीमांसायां स्मृतिपादे कल्पसूत्राधिकरणे

............इति भगवानुपवर्षाचार्येण (!)प्रतिपादितं।

(कौशिकसूत्र, पृ० ३०७)

यह भगवान् उपवर्ष पाणिनि से पहले हो चुका था। कथासरित्सागर आदि के अनुसार तो यह पाणिनि का गुरु वा गुरुभ्राता था। उपवर्ष पाणिनि से पूर्व हो चुका था, इस में एक और भी प्रमाण है। राजशेखर (नवम शताब्दी) अपनी काव्य-मीमांसा पृ० ५५ में लिखता है—

श्रूयते च पाटलिपुत्रे शास्त्रकारपरीक्षा—

अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनिपिङ्गलाविह व्याडिः।

वररुचिपतञ्जली इह परीक्षिताः ख्यातिमुपजग्मुः ॥

इस श्लोक में सारे शास्त्रकारों के नाम काल-क्रम से ही आये हैं पतञ्जलि से पहले वररुचि, और उससे कुछ पहले होने वाले वा साथी पाणिनि और पिङ्गल* थे। इनसे कुछ पहले वर्ष, और उपवर्ष थे। यही उपवर्ष शास्त्रकार है। इसी ने मीमांसा सूत्रों पर आदि भाष्य लिखा था।

प्रश्न—यह उपवर्ष कोई और शास्त्रकार होगा।

उत्तर—यदि यह कोई और शास्त्रकार है, तो इस के शास्त्र का कोई उद्धरण कोई पता, कोई चिन्ह चक्र बताओ। जब तुम यह बता ही नहीं सकते, तो ऐसी अलीकतम कल्पनाओं से परे रहो।

प्रश्न—राजशेखरप्रदर्शित श्लोक में आने वाले नाम काल-क्रमानुसार नहीं हैं।

उत्तर—ऐसे ही पूर्व पक्षों से तुम्हारा हठ और दुराग्रह सिद्ध होता है। जब शेष सब नाम काल-क्रमानुसार हैं, तो पहले दो नामों के ऐसा होने में क्या सन्देह है? और जब आद्यन्त आर्य ऐतिह्य भी यही मानता है, तो तुम्हारे इस कहने से क्या? योरुप में तुम पण्डित बने रहो। आर्यावर्त्तीय विद्वान् तुम्हारा कुछ सम्मान न करेंगे।

---

* आचार्य पिङ्गल पाणिनि का कनिष्ठ भ्राता था। देखो ! मेरा लेख, मासिक पत्र आर्य्य, आषाढ १९२२ पृ० २६–२९, लाहौर।

इस प्रकार जब मीमांसा सूत्रों का भाष्यकार ही इतना पुराना है, तो मूल सूत्र क्यों नवीन होंगे ? हम पाणिनि को कलियुग की लग भग दूसरी शताब्दी में मानते हैं।*

पाश्चात्य लेखक विक्रम से चार शताब्दी पहले मानते हैं। अतः पाश्चात्यों के अनुसार भी जैमिनि सूत्र विक्रम की पांचवीं शताब्दी से पहले होना चाहिये। इस से यह स्पष्ट होगया कि कीथ का लेख भ्रमपूर्ण है और व्यास शिष्य जैमिनि ही मीमांसा सूत्र का कर्ता वा तलवकार ब्राह्मण का प्रवक्ता है। इस लिये भी तलवकारादि ब्राह्मण महाभारत कालीन हैं।

(ज) छान्दोग्य उपनिषद्, छान्दोग्य-ताण्ड्य ब्राह्मण का अन्तिम भाग ही है। छान्दोग्य-उपनिषद् ३ । १६ । ६ ॥ में कहा है—

एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः । ...... । स ह षोडशं वर्षशतमजीवत् ।

यहां महिदास ऐतरेय, ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचनकर्ता है। आश्वलायन गृह्य सूत्र ३ । ४ । ४ ॥ में भी इसी का उल्लेख है।† महिदास ऐतरेय व्यास और शौनक तथा आश्वलायन के बीच में आता है। पाणिनीय सूत्र—

शौनकादिभ्यश्छन्दसि ॥ ४ । ३ । १०६ ॥

से हम जानते हैं कि शौनक किसी शाखा वा ब्राह्मण का प्रवचनकर्ता है। सम्भवतः

---

* प्रश्न—पाटलिपुत्र बहुत पुराना नगर नहीं है। इसे महाराज अजातशत्रु (विक्रम से लगभग ५०० वर्ष पूर्व) ने बसाया था। जब यह नगर ही बहुत पुराना नहीं, तो उसमें परीक्षा देने वाले शास्त्रकार पाणिनि आदि कैसे कलियुग की दूसरी शताब्दी में हो सकते हैं ?

उत्तर—यद्यपि पाटलिपुत्र नवीन नगर है, तथापि मगध देश में इससे पहले गिरिव्रज राजधानी थी। गिरिव्रज के सम्राट् ही पहले शास्त्रकारों की परीक्षा कराया करते थे। राजशेखर के काल में पाटलिपुत्र नाम प्रसिद्ध हो चुका था, अतः उस ने यही लिख दिया। राजशेखर का वास्तविक अभिप्राय सम्राट् से है, नगर से नहीं, यह उसके पूर्वापर प्रकरण को देखने से स्पष्ट हो जाता है।

† पूर्वोद्धृत (पृ० १९) वाक्य में कीथ साहेब आश्वलायन गृह्यसूत्र की इन सूचियों को प्रक्षिप्त सा मानते हैं। ऐतरेय आरण्यक पृ० १७ (सन् १९०९) के प्रथम टिप्पण में भी वे इन सूचियों को "सम्भवतः नया" मानते हैं। स्वप्रयोजन सिद्ध होता न देख कर ही, वे ऐसा मानने पर बाधित हुए हैं, अन्यथा इन वाक्यों के ग्रन्थान्तर्गत होने में कोई सन्देह नहीं।

यह शाखा आथर्वणों की थी।* आश्वलायन इसी शौनक का शिष्य था।† शौनक शिष्य होने से ही आश्वलायन अपने श्रौतसूत्र वा गृह्यसूत्र के अन्त में—

नमः शौनकाय। नमः शौनकाय॥

लिखता है।

शाखा प्रवर्तक होने से भगवान् शौनक व्यास का समीपवर्ती ही है। अतएव महिदास ऐतरेय भी कृष्ण-द्वैपायन व्यास से अनतिदूर है। इस महिदास ऐतरेय का प्रवचन होने से ऐतरेय ब्राह्मण महाभारत-कालीन है। और इसी महिदास का उल्लेख करने से छान्दोग्य उपनिषद् वा ब्राह्मण भी महाभारत-कालीन हैं। हां, उपनिषद् भाग कुछ पीछे का भी हो सकता है। याज्ञवल्क्यादि ऋषियों ने एक दिन में ही तो सारा ब्राह्मण नहीं कह दिया था। इन के प्रवचन में कई कई वर्ष लगे होंगे। इस से प्रतीत होता है कि ताण्ड्य आदि ऋषि जब छान्दोग्यादि उपनिषदों का प्रवचन अभी कर रहे थे, तो महिदास ऐतरेय का देहान्त होचुका था। महिदास इन दूसरे ऋषियों की अपेक्षा कुछ कम ही जिया।

जैमिनि उपनिषद् ब्राह्मण ४। २। ११॥ के निम्नलिखित वाक्य की भी यही संगति है—

एतद्ध तद्विद्वान् ब्राह्मण उवाच महिदास ऐतरेयः। ......।
स ह षोडशशतं वर्षाणि जिजीव।

ऐतरेय आरण्यक ऐतरेय ब्राह्मण का ही अन्तिम भाग है। उस में भी महिदास ऐतरेय का नाम आया है—

एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः। २। १। ८॥

इससे हमारा पूर्वोक्त कथन ही सिद्ध होता है।

---

* शौनक का शिष्य आश्वलायन, प्रधानतया ऋग्वेदी है। शौनक ने आप भी अनेक ऋग्वेद सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे थे। इस से यह सन्देह न होना चाहिये कि उसने आथर्वण शाखा का प्रवचन कैसे किया। महाभारत-काल के आचार्य किसी शाखाविशेष से ही सम्बद्ध न रहते थे। शौनिक-शिष्य कात्यायन ने चारों ही वेदों पर अपने ग्रन्थ लिखे हैं।

† देखो षड्गुरुशिष्य कृत सर्वानुक्रमणी वृत्ति की भूमिका—

शौनकस्य तु शिष्योऽभूत् भगवानाश्वलायनः।

प्रश्न—ईसी आरण्यकस्थ वाक्य के अनुवाद (पृ० २१० टिप्पणी २) के एक नोट में कीथ महाशय लिखते हैं—

"This mention is enough to prove that Mahidasa did not write the Aranyaka. But it is quite probable that he was the redactor of the Brahmana, in its form of forty chapters."

क्या उनका अभिप्राय विश्वसनीय है।

उत्तर—कीथ साहेब का यह लेख सर्वथा भ्रमपूर्ण है। सब विद्वान् इस विषय में सहमत हैं कि शतपथ ब्राह्मण का प्रवचन याज्ञवल्क्य ने ही किया था। जब उसी शतपथ ब्राह्मण में—

तदु होवाच याज्ञवल्क्यः।

१।३।४।२१॥२।३।१।२१॥

२।४।३।२॥१२।४।१।१०॥

इति ह स्माह याज्ञवल्क्यः।

३।१।३।१०॥

स होवाच याज्ञवल्क्यः।

१२।६।३।२॥

इन लेखों के आने से किसी विद्वान् को शतपथ ब्राह्मण के याज्ञवल्क्य प्रोक्त होने में सन्देह नहीं हुआ, तो ऐतरेय आरण्यक में महिदास का नाम आ जाने से कीथ को सन्देह न होना चाहिये था। अनेकों पाश्चात्य लेखक ऐसी ही भ्रममूलक कल्पनाएं कर के बहुत लोगों को भ्रम में डालते वा स्वयं संशय में पड़े रहते हैं। और यदि यह कहो कि ग्रन्थ-कर्ता स्वयं अपने को "विद्वान्" कैसे कह सकता है, तो इतना शब्द उसके किसी समीपवर्ती शिष्य ने धर दिया है, ऐसा मानने में कोई हानि नहीं।

प्रश्न—छान्दोग्य उपनिषद् के वाक्य का अर्थ ११६ वर्ष नहीं, प्रत्युत १६०० वर्ष है। तदनुसार महिदास ऐतरेय १६०० वर्ष जीवित रहा। न जाने उसने ऐतरेय ब्राह्मण का प्रवचन इतने लम्बे जीवन के किस भाग में किया। अतः उस के प्रवचन किये हुए ब्राह्मण को महाभारत कालीन मानना उचित नहीं। मनु १।८३॥ पर भाष्य करते हुए मेधातिथि लिखता है—

ननु "स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्" इति परममायुर्वेदे श्रूयते।

इस का अभिप्राय १६०० वर्ष प्रतीत होता है। महामहोपाध्याय पं० गङ्गानाथ झा मेधातिथिभाष्य के अङ्गरेजी अनुवाद में लिखते हैं—

"But we find the highest age described as 1600 years, in the Chhandogya Upanisad (3:16. 7). where it is said 'he lived for sixteen hundred years'."

राजेन्द्रलाल मित्र भी ऐतरेय आरण्यक के Introduction पृ० ३ के नोट में छान्दोग्य के वाक्य का अर्थ 'for sixteen hundred years' करते हैं।

इतने बड़े २ विद्वानों का अर्थ कैसे अशुद्ध हो सकता है?

उत्तर—"षोडशं वर्षशतं" का अर्थ ११६ वर्ष ही है। पं० गङ्गानाथ झा ने अनुवाद में भूल की है। वही भूल राजेन्द्रलाल मित्र ने दिखाई है। मेधातिथि का अभिप्राय भी पं० गङ्गानाथ झा वाला नहीं है। वहां अर्थ तो लिया ही नहीं। यह कल्पना झा महाशय की अपनी ही है। छान्दोग्य के उपस्थित वाक्य का अर्थ सब प्राचीन आचार्यों ने भी ११६ वर्ष ही किया है। देखो—

षोडशोत्तरवर्षशतम्—शङ्कर।

षोडषाधिकं वर्षशतम्—रामानुज।

षोडशोत्तरं शतम्—मध्व।

मैक्समूलर का भी यही अर्थ है। जैमिनि उपनिषद् ब्राह्मण में Hanns Oertel ने भी ११६ वर्ष ही अर्थ किया है। बहुत खैंच तान करके १६०० अर्थ यदि कर भी लें तो एक और आपत्ति आ पड़ती है। छान्दोग्य के इस प्रकरण में पुरुष को यज्ञरूप मान कर उसे सवनों से तुलना दी है। तीनों सवनों के कुल वर्ष भी २४+४४+४८=११६ ही बनते हैं। अतः १६०० वर्ष अर्थ प्रकरणानुकूल भी नहीं झा महाशय यहीं नहीं, अन्यत्र भी ऐसे ही अर्थ करते हैं। मेधातिथि के शाखाभेद-निरूपक—

एक शतमध्वर्यूणां।

वाक्य का अर्थ "a hundred Recensions" करते हैं। परन्तु समस्त आर्य वाङ्मय में ऐसे वाक्य का अर्थ १०१ ही लिया गया है। अतः ऐसे अनुवादों के लिये झा महाशय को ही साधुवाद। उन की भूल से हम ११६ से १६०० का असम्भव अर्थ नहीं मान सकते।

(झ) सामविधान ब्राह्मण ३ । ९ । ३ ॥ में एक वंश कहा है । वह निम्नलिखित प्रकार से है—

(१) प्रजापति
|
(२) बृहस्पति
|
(३) नारद
|
(४) विष्वक्सेन
|
(५) व्यास पाराशर्य
|
(६) जैमिनि
|
(७) पौष्पिण्ड्य
|
(८) पाराशर्यायण
|
(९) बादरायण
|
(१०) ताण्डि (११) शाट्यायनि

इन्हीं अन्तिम दो व्यक्तियों ने ताण्ड्य और शाट्यायन ब्राह्मणों का प्रवचन किया था। ये आचार्य पाराशर्य व्यास से कुछ ही पीछे के हैं। अतः इनके कहे हुए ब्राह्मणग्रन्थ भी महाभारत-कालीन ही हैं। सम्भवतः शतपथ ६ । १ । २ । २५ ॥ में

अथ ह स्माह ताण्ड्यः ।

जिस ताण्ड्य का कथन है, वह इसी का सम्बन्धी है।

(ञ) पं० अभयकुमार गुह ने सन् १९२१ में एक ग्रन्थ लिखा था। नाम है उसका Jivatman in the Brahma Sutras. इस ग्रन्थ में एक विषय का बड़ा अच्छा प्रतिपादन है। गुह महाशय ने यह सिद्ध कर दिया है कि कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास और बादरायण एक ही व्यक्ति थे। हम इस विषय में गुह की युक्तियों से पूरे सहमत हैं। वेदान्तसूत्र, वेदव्यास का अन्तिम ग्रन्थ प्रतीत होता है। वेदान्त सूत्रों में उपनिषदों, आरण्यकों, ब्राह्मणों और मन्त्र संहिताओं का स्पष्ट कथन किया गया है

देखो—

१—ईक्षतेर्ना शब्दम् । १ । १ । ५ ॥

२–श्रुतत्वाच्च । १ । १ । ११ ॥

३–मान्त्रवर्णिकमेव च गीयते । १ । १ । १५ ॥

४–अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् ।१।२।१८॥

५–शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते । १ । २ । २० ॥

६–आमनन्ति चैनमस्मिन् । १ । २ । ३२ ॥

७–परात्तु तच्छ्रुतेः । २ । ३ । ४१ ॥

८–अग्न्यादिगतिश्रुतेरिति चेन्न भाक्तत्वात् । ३ । १ । ४ ॥

९–पुरुषविद्यायामिव चेतरेषामनाम्नानात् । ३ । ३ । २४ ॥

१०–शब्दश्चातोऽकामकारे । ३ । ४ । ३१ ॥

इन सूत्रों में छान्दोग्य उप०, श्वेताश्वतर उप०, तैत्तिरीय उप०, बृहदारण्यक उप०, काण्व और माध्यन्दिन शतपथ ब्रा०, जाबाल उप०, कौषीतकि उप०, बृहदारण्यक उप०, ताण्डी और पैङ्गी ब्राह्मण, तथा काठक संहिता की श्रुतियों का क्रमशः वर्णन है ।

हम कह चुके हैं कि व्यास और उन के शिष्य प्रशिष्यों ने ही ब्राह्मणों का सङ्कलन आरम्भ किया था । वेदान्त सूत्रों में इन सब के प्रमाण आ जाने से यह निश्चय होता है कि व्यास जी के जीवन काल में ही यह सङ्कलन समाप्त हो चुका था । वेदान्त सूत्र भगवान् व्यास का अन्तिम ग्रन्थ प्रतीत होता है । इस प्रकार भी यही निश्चय होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थ महाभारत काल में ही सङ्कलित हुए ।

प्रश्न—वेदान्त सूत्र ३ । ४ । ३० ॥ ३ । ४ । ३८ ॥ इत्यादि में मनुस्मृति का उल्लेख है । मनुस्मृति तो बहुत नया ग्रन्थ है । पाश्चात्य लेखक इसे ईसा की प्रथम शताब्दी के समीप का मानते हैं । मनु का उल्लेख करने से वेदान्तसूत्र भी बहुत नवीन हैं । ऐसे सूत्रों के साक्ष्य के आधार पर ब्राह्मण-ग्रन्थों का काल निश्चय करना क्या भूल नहीं है ।

उत्तर—मनुस्मृति के कुछ श्लोक अवश्य नवीन हैं, परन्तु मूल ग्रन्थ महाभारत से सहस्रों वर्ष पूर्व का है । इस लिये ऐसी कल्पनाएं निरर्थक हैं ।

(ट) महाभारत आदि पर्व अध्याय ६३ में कहा है—

प्रतीपस्तु खलु शैब्यामुपयेमे सुनन्दां नाम । तस्यां त्रीन् पुत्रानुत्पादयामास । देवापिं शन्तनुं बाह्लिकं चेति । ४७ ॥

प्रतीप के इस तीसरे पुत्र बाह्लीक का वर्णन शतपथ ब्राह्मण में मिलता है—

तदु ह बल्हिकः प्रातिपीयः शुश्राव कौरव्यो राजा।
१२।९।३।३॥

यह व्यक्ति महाभारत कालीन ही है, और इसका उल्लेख करने से शतपथ भी लगभग उसी काल का है।

प्रश्न—और तो सब बातें उचित प्रतीत होती हैं, पर वाल्मीकि रामायण में एक ऐसा स्थल है जो ब्राह्मण-ग्रन्थों को महाभारत-कालीन मानने नहीं देता। दाशरथि राम का काल महाभारत से लाखों वर्ष पहले का है। कठ, कालाप और तैत्तिरीय आदि लोग जब राम के काल में थे, तो ये ब्राह्मण-ग्रन्थ जो इन्हीं ऋषियों का प्रवचन हैं, महाभारत काल के कैसे हो सकते हैं। देखो रामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग ३२ (दाक्षिणात्य संस्करण) में क्या लिखा है—

कौसल्यां च य आशीर्भिर्भक्तः पर्युपतिष्ठति।
आचार्यस्तैत्तिरीयाणामभिरूपश्च वेदवित् ॥ १५ ॥
पशुकाभिश्च सर्वाभिर्गवां दशशतेन च।
ये च मे कठकालापा बहवो दण्डमाण्वाः ॥ १८ ॥

उत्तर—ये श्लोक अवश्यमेव प्रक्षिप्त हैं। बङ्गीय वाल्मीकि रामायण सर्ग ३२ में ये ऐसे हैं—

सुहृन्मां परया भक्त्या य उपास्ते तु देवलः।
आचार्यस्तैत्तिरीयाणां तमानय यतव्रतम् ॥ १७ ॥
ये च मे वन्दिनः सन्ति ये चापि परिचारकाः।
सर्वांस्तर्पय कामैस्तान् समाहूयाशु लक्ष्मण ॥ २० ॥

और पश्चिमोत्तरीय वाल्मीकि रामायण सर्ग ३५ में यह श्लोक ऐसे हैं।

सुहृन्मां परया भक्त्या य उपास्ते सदैव सः।
आचार्यस्तैत्तिरीयाणां तमानय यतव्रतम् ॥ १७ ॥
ये च मे वन्दिनः सन्ति ये चान्ये परिचारिकाः।
सर्वांस्तर्पय कामैस्तान् समाहूयाशु लक्ष्मण ॥ २० ॥

इन दो श्लोकों में से पहला श्लोक तीनों पाठों में कुछ २ मिलता है। परन्तु

लाहौर संस्करण के सर्वोत्तम कोष में यह नहीं है। और दूसरा श्लोक केवल दाक्षिणत्य पाठ में ही है। उस के स्थान में दूसरे दोनों पाठ कुछ और ही लिखते हैं। इस का प्रक्षिप्त होना निर्विवाद है। पहला श्लोक और उस में "तैत्तिरीयाणां" पाठ किसी कृष्ण-यजुर्वेद-भक्त दाक्षिणात्य का मिलाया हुआ प्रतीत होता है। महाभारत और महाभाष्य के प्रमाण से* हम बता चुके हैं कि ब्राह्मणकार तित्तिरि और कठ आदि आचार्य महाभारत काल में ही थे, अतः उन को राम के काल में कहने वाला श्लोक किसी इतिहासानभिज्ञ व्यक्ति का मिलाया हुआ है।

प्रश्न—हम तो ब्राह्मण-ग्रन्थों को बहुत पुराना समझते थे, पुराना ही नहीं, काल की दृष्टि से वेदों के समीपतम समझते थे। आर्यों का इतिहास महाभारत-काल से भी लाखों वर्ष पहले का है। वेद भी तभी से चल आये हैं। यदि ब्राह्मण-ग्रन्थ महाभारत काल के हैं, तो इन लाखों वर्षों में अग्र्य-बुद्धि रखने वाले ब्रह्मवर्चस्वी, सर्वविद्यावित् ऋषियों ने क्या कोई भी ग्रन्थ न बनाये थे।

उत्तर—हम ने कब कहा है कि ब्राह्मण-ग्रन्थों की सब सामग्री महाभारत काल ही में बनी। इस के विपरीत हम कह चुके हैं कि ब्रह्मा के काल से ही ब्राह्मण वाक्यों का प्रवचन होना आरम्भ हो गया था। वह प्रवचन इन लाखों वर्ष पर्यन्त होता रहा। तदनन्तर महाभारत काल में कुछ नया प्रवचन हुआ। और सब प्रवचन का आद्यन्त संग्रह करके महाभारत कालीन ऋषियों ने ये साम्प्रतिक ब्राह्मण-ग्रन्थ बनाये।

महाभारत के पूर्व लाखों वर्षों तक इन ब्राह्मण-ग्रन्थों की मौलिक सामग्री का ही केवल प्रवचन नहीं हुआ, प्रत्युत आर्य ऋषि मुनि सब ही विद्याओं के ग्रन्थ बनाते रहे हैं। इस में प्रमाण भी देखो। न्याय भाष्यकार महामुनि वात्स्यायन न्याय सूत्र ४। १। ६२॥ पर भाष्य करते हुए किसी ब्राह्मण-ग्रन्थ का यह प्रमाण देते हैं—

प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते। ते वा खल्वेते अथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यवदन् ....य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति।

---

*जब तित्तिरि ही वैशंपायन का प्रशिष्य है तो तैत्तिरीय लोग राम-काल में कैसे हो सकते हैं। देखो काण्डानुक्रमणिका—

वैशम्पायनो यास्कायैतां प्राह पैङ्गये।
यास्कस्तित्तिरये प्राह उखाय प्राह तित्तिरिः॥ १५॥

पुनः सूत्र २ । २ । ६७ ॥ पर लिखते हैं—

य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवायुर्वेदप्रभृतीनामिति ।

किसी विलुप्त ब्राह्मण, वा वात्स्यायन के इस लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि महाभारत-काल से बहुत पहले, आदि सृष्टि अर्थात् अथर्वाङ्गिरस ऋषियों के काल से ही, तथा मन्त्रार्थद्रष्टा ऋषियों के काल में भी ये ग्रन्थ विद्यमान थे ।

१—इतिहास

२—पुराण—सृष्ट्युत्पत्ति आदि विषयक बातें ।

३—धर्म शास्त्र—मानवादि ।

४—आयुर्वेद

शतपथ ब्राह्मण ११ । ५ । ६ । ८ ॥ में जो निम्नलिखित वाक्य हैं, उस के अनुसार इन ब्राह्मण-ग्रन्थों के सङ्कलन से पहले ये ग्रन्थ भी विद्यमान थे ।

यदनुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहासपुराणं गाथा नाराशंस्यः ।

अर्थात्—

५—अनुशासन ग्रन्थ

६—वाकोवाक्य ,,

७—गाथा ,,

८—नाराशंसी ,,

तथा शतपथ १४ । ६ । १० । ६ ॥ के अनुसार—

इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि ।

९—उपनिषद् (मौलिक उपनिषद्)

१०—श्लोक-ग्रन्थ

११—सूत्र ग्रन्थ

१२—अनुव्याख्यान

१३—व्याख्यान

तथा छान्दोग्य उपनिषद् ७ । २ ॥ के अनुसार—

इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्र-

विद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ।

१४–भूत विद्या

१५–क्षत्र विद्या

१६–नक्षत्र विद्या

१७–सर्पदेवजनादि विद्या

और मुण्डकोपनिषद् १ । ५ के प्रमाण से—

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तम् छन्दो ज्योतिषम् इति ।

१८–शिक्षा

१९–कल्प

२०–व्याकरण

२१–निरुक्त

२२–छन्दः शास्त्र

२३–ज्योतिष

तथा तैत्तिरीयारण्यक २ । ९ ॥ के अनुसार—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति ।

२४–ब्राह्मण (मौलिक ब्राह्मण) ।

भासकवि को हम बहुत प्राचीन मानते हैं । कई विद्वान् उसे नवीन भी मानते हैं । पर एक बात निश्चित है । कोई विद्वान् नाटककार, और फिर भास जैसा कवि अपने पात्र के मुख से असमयोचित शब्द नहीं निकलवा सकता । प्रतिमा नाटक में जो वाक्य रावण के मुख से कहाया गया है वह महाभारत काल से सहस्रों वर्ष पहले का इतिहास बताता है । तदनुसार—

रावणः—"...काश्यपगोत्रोऽस्मि साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रं, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च । प्रतिमा नाटक पृ० ७९

२५–उपाङ्ग ग्रन्थ

२६–माहेश्वर योगशास्त्र

२७–बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र

२८–न्याय शास्त्र मेधातिथि विरचित

२९–प्राचेतस श्राद्धकल्प

वाल्मीकि रामायण निश्चय ही महाभारत से बहुत पहले काल का ग्रन्थ है। अतः—

३०–वाल्मीकि रामायण*—इत्यादि।

कहां तक गिनावें महाभारत काल से सहस्रों लाखों वर्ष पहले आर्यों के वाङ्मय में प्रायः सब ही विद्याओं के ग्रन्थ थे। आर्यों में जब कोई—

नाविद्वान्† ।

---

*महाशय हेमचन्द्र राय चौधुरी अपने ग्रन्थ Political History of Ancient India (सन् १९२३) में लिखते हैं—but large portions of which (Ramayana etc.), in the opinions of competent critics, belong to the post—Bimbasarian period. The present Ramayana not only mentions Buddha Tathagat (II. 109. 34) etc. P. iii.

चौधुरी महाशय जैसे विद्वानों को इतनी शीघ्रता से सम्मति न देनी चाहिये थी। रामायण के कुछ श्लोक प्रक्षिप्त तो अवश्य हैं, पर रामायण का अधिकांश भाग ऐसा नहीं। न ही रामायण महाभारत-काल से पीछे का ग्रन्थ है। जो श्लोक—

यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धः-तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि।

उन्हों ने प्रमाणरूपेण उद्धृत किया है, वह वङ्ग शाखीय वा पश्चिमोत्तर रामायणों में नहीं है। देखो दोनों रामायणों का अयोध्याकाण्ड, क्रमशः सर्ग ११८ और १२२।

ऐसे ही चौधुरी महाशय पृ० ११ पर रामायण अयोध्याकाण्ड (II.64.42) का प्रमाण "जनमेजय" के विषय में देते हैं।

यां गतिं सगरः शैव्यो दिलीपो जनमेजयः।

यह श्लोक भी दोनों अन्य शाखाओं में नहीं मिलता। देखो क्रमशः सर्ग ६६ और ७०।

विना पूरा प्रमाण देखे, इसी प्रकार सम्मतियां बना लेना विद्वानों को उचित नहीं है।

†वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड ६। ८॥
छान्दोग्य उपनिषद ५। ११। ५॥
महाभारत शान्तिपर्व ७७। ९॥

अविद्वान् ही न था, तो पुनः विद्या सम्बन्धी ग्रन्थों का क्या कहना। अतः ऐसा प्रश्न निरर्थक है।

प्रश्न—इन ब्राह्मणों की भाषा वेदों के बहुत समीप है। अतः ब्राह्मणों से पहले लौकिक भाषा में ग्रन्थों का होना एक असम्भव बात है।

उत्तर—यह भी तुम्हारे मिथ्या भ्रम का ही कारण है। पश्चिम के कुछ विद्वानों के दर्शाये हुए असत्य-भाषा-विज्ञान (Philology) को सत्य मानकर पढ़ने से ही ऐसे सारहीन प्रश्न उत्पन्न हो सकते हैं। लो इसका उत्तर सुनो। ब्राह्मण-ग्रन्थों में अनेकों ऐसी गाथायें और श्लोक हैं, जो सर्वथा लोकभाषा में हैं। उसके कुछ उदाहरण देखो—

तदेष श्लोकोऽभ्युक्तः—

तद्धै स प्राणोऽभवन् महाभूत्वा प्रजापतिः।

भुजो भुजिष्या वित्त्वैतद् यत् प्राणान् प्राणयत् पुरि॥

शतपथ ७।५।१।२१॥

तदेष श्लोको भवति—

अन्तरं मृत्योरमृतं मृत्यावमृतमाहितम्।

मृत्युर्विवस्वन्तं वस्ते मृत्योरात्मा विवस्वति॥

शतपथ १०।५।२।४॥

तथा अन्य श्लोकों के लिये देखो शतपथ–

१०।५।२।१८॥ १०।५।४।१६॥ ११।३।१।५,६॥ ११।५।४।१२॥ ११।५।५।१२॥ १२।३।२।७,८॥ इत्यादि तेरहवें और चौदहवें काण्ड में भी बहुत से श्लोक हैं। गाथाओं के कुछ उदाहरण हम पृष्ठ ६–७ पर दे चुके हैं। ऐसे ही अन्य ब्राह्मणों में भी श्लोक आदि पाये जाते हैं। ये सब श्लोक वा गाथाएं भाषा अर्थात् लोकभाषा में ही हैं। और ऊपर भी हम बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र* आदि नाम के जो ग्रन्थ गिना चुके हैं, वे भी सब लोकभाषा में ही हैं। इस से ज्ञात होता है कि प्रवचन की भाषा के साथ ही साथ, लोकभाषा भी सदा से विद्यमान रही है। अधिक विचार करने पर विद्वान् लोग स्वयं इसी विचार पर पहुंच जावेंगे।

---

* इस अर्थशास्त्र के कई लम्बे २ उद्धरण विश्वरूपाचार्य प्रणीत याज्ञवल्क्य-स्मृति की बालक्रीडा टीका में पाये जाते हैं।

शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने ज्योतिष शास्त्र का इतिहास मराठी भाषा में लिखा है। उस में उन्होंने ब्राह्मण-ग्रन्थों के काल निरूपण का भी यत्न किया है। शतपथ ब्राह्मण २ । १ । २ । ३ ॥ में ऐसा पाठ है—

एता (कृत्तिकाः) ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते।
सर्वाणि ह वाऽ अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते ॥

इस पाठ में कहा है कि नक्षत्रसंसार में कभी ऐसी अवस्था थी, जब कि कृत्तिका नक्षत्र को छोड़ कर शेष सब नक्षत्र प्राची दिशा में जाते थे। दीक्षित महाशय ने ज्योतिष के अनुसार गणना कर के यह दिखाया है कि ऐसी अवस्था अनेक बार हो चुकी होगी। परन्तु अन्तिम दशा जो इस समय से पहले हो चुकी है विक्रम से लगभग ३००० वर्ष पहले हुई थी। शतपथ आदि ब्राह्मणों में इसी का उल्लेख है। अतः शतपथादि ब्राह्मण अवश्य ही इतने पुराने हैं। जो परिणाम हमने ऐतिहासिक दृष्टि से निकाला है, वही परिणाम दीक्षित महाशय ने ज्योतिष की गणनाओं से निकाला है। ब्राह्मण ग्रन्थों में और भी ऐसे अनेक पाठ हैं, जिन्हें यदि ज्योतिष की दृष्टि से देखा जावे, तो हमें इसी परिणाम पर पहुंचाते हैं। अतएव ब्राह्मण-ग्रन्थों का सङ्कलन महाभारत-काल में हुआ, ऐसा कहना निर्विवाद है।

पाश्चात्य लेखकों में से रॉथ, वेबर, मैक्समूलर, मैकडानल, ब्लूमफील्ड कीथ आदि सज्जनों ने भी ब्राह्मणों के काल पर लेख लिखे हैं। उन सब लेखों का आधार उन की निज की कल्पनायें हैं। कल्पनाएं प्रमाण नहीं हुआ करतीं। इस लिये हम ने उन सबको उपेक्षा-दृष्टि से देखा है। हमारा सारा कथन आर्य ऐतिह्य के अनुकूल है। ऐतिह्य को त्याग कर कल्पना का आधार लेना पाश्चात्यों को ही प्रिय है। विद्वान् इसकी अवहेलना ही करते हैं।

ब्राह्मण-ग्रन्थ ब्रह्मा के काल से बनने आरम्भ हुए और उन का अन्तिम संग्रह महाभारत-काल में हुआ, इस विषय में भगवान् दयानन्द सरस्वती स्वामी की भी यही सम्मति है। वे ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के भाष्यकरणशङ्कासमाधानादिविषय के आरम्भ में लिखते हैं—

यानि पूर्वैर्देवैर्विद्वद्भिर्ब्रह्माणमारभ्य याज्ञवल्क्य-वात्स्यायन जैमिन्यन्तैर्ऋषिभिश्चैतरेय-शतपथादीनि भाष्याणि रचितान्यासन्।

(२) क्या ब्राह्मण वेद हैं ?

शबर, पितृभूति, शङ्कर, कुमारिल, विश्वरूप, मेधातिथि, कर्क, वाचस्पतिमिश्र, रामानुज, उव्वट, सायण प्रभृति सबही बड़े २ आचार्य मन्त्र ब्राह्मण दोनों को वेद मानते आये हैं। गत ३००० वर्ष में आर्यावर्त के किसी विद्वान् को इस बात का सन्देह नहीं हुआ कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं। इतने काल से आर्यों के हृदयों में ब्राह्मणों की श्रुतियों का उतना ही मान रहा है, जितना संहिताओं के मन्त्रों का। आर्यों के समस्त श्रौतकर्म इन दोनों को तुल्य मान कर ही होते चले आये हैं।

यह सब कुछ ही था, पर इस बीसवीं शताब्दी विक्रम में दयानन्द सरस्वती ने इन सब के विरुद्ध इस बात का प्रकाश किया कि ब्राह्मण-ग्रन्थ वेद नहीं हैं। वे ऋषि-प्रोक्त हैं, ईश्वरोक्त नहीं। इत्यादि। दयानन्द सरस्वती ने स्वपक्ष पोषणार्थ अनेक युक्तियां दीं। वे युक्तियां इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त ही हैं। उन के विरुद्ध जो उचित पूर्वपक्ष उठाया गया है, हम उसका उत्तर तो दें ही गे, पर कुछ एक सर्वथैव नये प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं। इन प्रमाणों से ब्राह्मणों का अनीश्वरोक्त होना सिद्ध होजायगा। अन्त में हम यह भी बतावेंगे कि इतने बड़े २ पुराने आचार्यों को इस बात में क्यों भ्रम होगया। लो अब प्रमाणों के बल को देखो, और सत्य को ग्रहण करो।

(क) गोपथ ब्राह्मण पू० २। १०॥ में कहा है—

एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः* सब्राह्मणाः* सोपनिषत्काः* सेतिहासाः सान्वाख्यानाः सपुराणाः सस्वराः ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्याः।

यहां ब्राह्मणकार स्वयं कह रहे हैं कि (१) कल्प (२) रहस्य (३) ब्राह्मण (४) उपनिषत् (५) इतिहास (६) अन्वाख्यान (७) पुराण (८) स्वर† (ग्रन्थ) (९) संस्कार† (ग्रन्थ) (१०) निरुक्त (११) अनुशासन (१२) अनुमार्जन और (१३) वाकोवाक्य आदि ग्रन्थ वेद नहीं हैं। जब ब्राह्मणकार स्वयं इन्हें वेद नहीं मानते, तो फिर हम क्यों इन्हें वेद मानें।

---

* प्रतीत होता है, इन साम्प्रतिक ब्राह्मणों से पहले, रहस्य अर्थात् आरण्यकादि और उपनिषद् ब्राह्मणों का भाग नहीं थे।

† प्रातिशाख्यादि।

(ख) परम विद्वान्, वेदविद् भगवान् मनु अपने धर्मशास्त्र में कहते हैं—

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ २ । १४० ॥

इस श्लोक में रहस्य शब्द आया है। "रहस्य" शब्द आरण्यक अथवा उपनिषद् का द्योतक है। उपनिषद् और आरण्यक आजकल ब्राह्मणों का भागमात्र हैं। मनु इनका वेद से पृथङ् निर्देश करते हैं। अतएव मनु जी की दृष्टि में ब्राह्मण वेद नहीं हैं।

मेधातिथि प्रभृति मनु के टीकाकार स्वपक्ष में इस आपत्ति को देख कर अनेक कल्पनाएं उठाते हैं, पर वे सब कल्पनाएं ऐसी ही हैं जो किसी असत्य पक्ष को छिपा तो सकती हैं, हटा नहीं सकतीं।

प्रश्न—महामोहविद्रावण के लिखाने वाले राममिश्र शास्त्री आदि* तथा उस का लिखकर प्रकाशित करने वाला मोहनलाल स्वग्रन्थ के प्रथम प्रबोध में कहता है—
"तथा हि षष्ठेऽध्याये मनुः—

एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन् ।
विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥ २९ ॥

अत्र "औपनिषदीः श्रुतीः" इत्युक्त्या उपनिषदां श्रुतिशब्दवाच्यत्वं श्रुतिशब्दस्य च वेदाम्नायपदपर्य्यायत्वम्। यथाह मनुरेव—

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ।२ । १० ॥

अतएव—

दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठन् समाहितः ।
वेदान्तं विधिवच्छ्रुत्वा संन्यसेदनृणो द्विजः ॥ ६ । ९४ ॥

इत्यादि मानवशास्त्रे वेदान्तपदेनोपनिषदां परिग्रहः।" इति

उत्तर—जिस ब्राह्मण को पूर्वपक्षी वेद मानता है, जब वही ब्राह्मण रहस्य, उपनिषद् और ब्राह्मण को वेद नहीं मानता, तो मनुजी उसके विरुद्ध कैसे कह सकते हैं। और मनुजी के अपने लेख में भी परस्पर विरोध नहीं होना चाहिये। अत एव मनु अध्याय २ के श्लोक ८–१५ तक का यही समन्वय है कि स्मृति के प्रतिपक्ष में श्रुति

* वेदान्ताचार्य मोहनलाल के मित्र वा अध्यापक श्रीपूज्य स्वा० अच्युतानन्दजी ने यह बात हम से कही थी।

और वेद शब्द यहां प्रयुक्त हुए हैं। स्मृति वेद के उतनी समीप नहीं जितने कि ब्राह्मण उपनिषद् आदि। वेदव्याख्यान होने से, ये वेद के बहुत समीप हैं। इसी लिये इन्हें वेद वा श्रुति कहा गया है। फिर भी उपनिषद् को उतना ऊँचा पद नहीं दिया। स्पष्ट मनु कह रहा है कि "औपनिषदीः श्रुतीः"। श्रुति शब्द का सर्वत्र वेदार्थ हे भी नहीं। महाभारत आदि ग्रन्थों में लौकिक ऐतिह्य को भी श्रुति कहा है। देखो—

यत्र तेपे तपस्तीव्रं दाल्भ्यो बक इति श्रुतिः ॥

शल्यपर्व ४१। ३२॥

इसी प्रकार उपनिषद् में होने वाली परम्परा से सुनी हुई सच्चाई को "औपनिषदी श्रुतीः कहा है। जो ऐसा न मानोगे, तो मनु में परस्पर विरोध आने से मनु का ही प्रमाण न रहेगा। और मनु ६। ९४॥ में जो "वेदान्त" शब्द आया है, तो वहां "अन्त" का अर्थ समीप ही है। अतएव हमारे सिद्धान्त में कोई आपत्ति नहीं आती।

(ग) महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि भी कहते हैं—

सप्तद्वीपा वसुमती। त्रयो लोकाः। चत्वारो वेदाः। साङ्गाः सरहस्याः। १। १। १॥

(कलिहार्न सं० पृ० ९)

यहां पर पतञ्जलि भी रहस्य अर्थात् उपनिषद् को वेदों से पृथक् मानता है। जब उपनिषत् आदि ब्राह्मण भाग वेदों से पृथक् हैं और वेद नहीं हैं, तो ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद मानना अज्ञान ही है।

प्रश्न—महाभाष्य में तो—

वेदे खल्वपि—"पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः" इत्युच्यते। १। १। १॥

(कील० सं० पृ० ८)

पुनः—

वेदशब्दा अप्येवमभिवदन्ति—
योऽग्निष्टोमेन यजते य उ चैनमेवं वेद।
योऽग्निं नाचिकेतं चिनुते य उ चैनमेवं वेद।*

(कील० सं० पृ० १०)

* तैत्तिरीय ब्रा० ३। ११। ८। ५॥ इत्यादि।

तथा—

वेदे ऽपि—

य एवं विश्वसृजः सत्राण्यध्यास्त इति तेषामनुकुर्वंस्तद्वत् सत्राण्यध्यासीत सोऽप्यभ्युदयेन युज्यते ॥

(कौल० सं० पृ० २०)

इत्यादि पाठ हैं। ये पाठ ब्राह्मणों में ही मिलते हैं। इन से स्पष्ट हो जाता है कि पतञ्जलि मुनि ब्राह्मणों को वेद मानते थे।

उत्तर—ब्राह्मणों की भाषा वह नहीं, जो मन्त्रों की भाषा है। न ही ब्राह्मणों की भाषा सर्वथा लौकिक है। ब्राह्मणों की भाषा प्रवचन की भाषा है। ब्राह्मण वेद-व्याख्यान हैं।* वेद-व्याख्यान होने से तथा प्रवचन की भाषा में होने से ही इन्हें वेद के अत्यन्त समीप माना जाता है। जिस प्रकार से इस समय भी हम कल्पों को वैदिक तो मानते हैं पर साक्षात् ईश्वरप्रोक्त वेद नहीं, वैसे ही प्राचीन लोग भी ब्राह्मणों को वैदिक तथा औपचारिक दृष्टि से वेद कह देते थे।

महाभाष्य के प्रस्तुत वाक्य में भी पतञ्जलि का यही अभिप्राय है। पतञ्जलि इस से पूर्व कात्यायन का वाक्य पढ़ता है—

यथा लौकिकवैदिकेषु।

इसी पर चलते २ वह लोक के प्रतिपक्ष में ब्राह्मणों को वेदवत् मानकर उन का प्रमाण उद्धृत करता है। इस में और कोई बात नहीं। महाभाष्य में अन्यत्र भी ऐसा ही समझना।

---

* सायण आदि पूर्वपक्षी लोग भी ऐसा ही मानते हैं—

तत्र शतपथब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानरूपत्वाद् व्याख्येय-मन्त्रप्रतिपादकः संहिताग्रन्थः पूर्वभावित्वात् प्रथमो भवति।

काण्वसंहिता भाष्यम् पृ० ८।

तथा च

यद्यपि मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदस्तथापि ब्राह्मणस्य मन्त्र-व्याख्यानरूपत्वान्मन्त्रा एवादौ समाम्नाताः।

तैत्तिरीयसंहिता भाष्यम् पृ० ७। आनन्दाश्रम सं०॥

(७) ऐतरेय ब्राह्मण ७ । १८ ॥ में लिखा है* —

ओमित्यृचः प्रतिगर एवं तथेति गाथायाः ।
ओमिति वै दैवं, तथेति मानुषम् ।

पुनः काठक संहिता १४ । ५ ॥ में कहा है—

अनृतं हि गाथानृतं नाराशंसी ।

और शतपथब्राह्मण १ । १ । १ । ४ ॥ में कहा है—

अनृतं मनुष्याः ।

इस से निश्चय होता है कि जो बात पूर्वोक्त ऐतरेय ब्रा० के प्रमाण से स्पष्ट होती है, वही सिद्धान्त काठक संहिता से प्रकाशित किया गया है । ऐतरेय ब्रा० में

---

*श्रौतसूत्रों में भी यही बात कही गयी है । आश्वलायन श्रौतसूत्र ९ । ३ ॥ में कहा है—

ओमित्यृचः प्रतिगर एवं तथेति गाथायाः ।
ओमिति वै दैवं तथेति मानुषम् ॥

शाङ्खायन श्रौतसूत्र में अनेक गाथाओं को उद्धृत करके १५ । २७ ॥ में कहा है—

तदेतच्छौनःशेपमाख्यानं परःशतग्गाथमपरिमितम् ।
......हिरण्यकशिपावासीनः प्रतिगृणाति ओमित्यृचः प्रतिगरः । एवं तथेति गाथायाः । ओमिति वै दैवं तथेति मानुषम्॥

कात्यायन श्रौतसूत्र अध्याय १५ में कहा है—

शौनःशेपश्च प्रेष्यति ॥ १५४ ॥
ओ३मित्यृचां प्रतिगरस्तथेति गाथानाम् ॥ १५६ ॥

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र १८ । १९ ॥ में लिखा है—

शौनः शेपमाख्यायते ।
ऋचो गाथामिश्राः परःशताः परःसहस्रा वा ॥ १० ॥
हिरण्यकूर्चयोस्तिष्ठन्नध्वर्युः प्रतिगृणाति ॥ १२ ॥
ओमित्यृचः प्रतिगरः । तथेति गाथायाः ॥ १३ ॥

कहा गया है कि अमुक यज्ञ में बैठ कर गाथा के उत्तर में 'तथा' कहे। यहां 'तथा' मानुष है, यह स्वयं ब्राह्मण में स्वीकार किया गया है। ऋचः के प्रतिपक्ष में गाथा का उल्लेख स्पष्ट करता है कि जहां ऋचा दैवी=ईश्वरीय है, वहां गाथा मनुष्योक्त है। शतपथ ब्रा० कहता है कि मनुष्य अनृतरूप हैं, और काठक संहिता ने कहा है कि गाथा और नाराशंसी भी अनृत हैं, अर्थात् मानवीय हैं।

पृष्ठ ८ पंक्ति ५ में हम ने जो प्रतिज्ञा की थी पूर्वोक्त प्रमाणों से वह सिद्ध हो गई, अर्थात् गाथाएं पौरुषेय हैं। यही पौरुषेय गाथाएं ब्राह्मण-ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर उद्धृत की गई हैं। देखो—

शतपथ १३।५।४।२, ३, ६, ७, ९, ११॥ इत्यादि।

ये गाथाएं सर्वथैव लौकिक भाषा में ही हैं। जिन ग्रन्थों में लौकिक भाषा वाली पौरुषेय गाथाएं पाई जावें और पाई ही न जाएं किन्तु उद्धृत की गई हों, वे ग्रन्थ वेद अर्थात् ईश्वरीय नहीं हो सकते। ब्राह्मण-ग्रन्थों में यह पाई जाती हैं, अतएव ब्राह्मण-ग्रन्थ वेद नहीं। यदि ब्राह्मण-ग्रन्थों को वेद मानोगे, तो ब्राह्मणोद्धृत "अनृत" गाथाएं ईश्वरकृत माननी पड़ेंगी। यह ब्राह्मण के ही विरुद्ध है। ब्राह्मण तो गाथाओं को मनुष्यकृत कह रहा है, फिर ब्राह्मण को वेद मानना अपने ही अज्ञान का प्रकाश करना है।

(ङ) तैत्तिरीय ब्राह्मण १।३।२।६॥ में कहा है—

यद् ब्रह्मणः शमलमासीत् सा गाथा नाराशंस्यभवत्।

अर्थ—जो वेद का मल था वह गाथा, नाराशंसी बन गया।

इस हीनोपमा से भी गाथा, नाराशंसी आदि को ब्रह्म अर्थात् वेद के तुल्य नहीं माना गया।

(च) तैत्तिरीयारण्यक २।९॥ और आश्वलायनगृह्यसूत्र ३।३।१–३॥ में क्रमशः कहा है—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीः।

यद् ब्राह्मणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरितिहासपुराणानीति॥

यहां इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी को ब्राह्मणों का विशेषण माना है। ब्राह्मणपद संज्ञी और इतिहासादि उसकी संज्ञा हैं। इस वाक्य से यही प्रतीत है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राचीन इतिहासों, पुराणों (जगदुत्पत्ति सम्बन्धी बातों), कल्पों, गाथाओं और नाराशंसी आदि का ही संग्रह है। ये कल्प आदि भी मनुष्य प्रणीत ही थे, अतः ब्राह्मण-ग्रन्थ जो उनका संग्रहमात्र हैं, ईश्वरोक्त नहीं हो सकते।

प्रश्न—निरुक्त अध्याय ४, खण्ड ६ में कहा है—

तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रमृङ्मिश्रं गाथामिश्रं भवति ।

यहां कहा है कि वेद में इतिहास और गाथा आदि मिश्रित हैं। इस से क्या यह सिद्ध नहीं होता कि वेद भी मनुष्य-रचित है, तथा वेद और ब्राह्मण में कोई भेद नहीं।

उत्तर—नहीं, इस से यह सिद्ध नहीं होता। यहां "तत्र" पद के साथ निरुक्तस्थ पूर्व वाक्य से "सूक्त" पद की अनुवृत्ति आती है। इसका अभिप्राय यह है कि ऋग्वेद के "उस सूक्त (१। १०५॥) में ब्रह्म अर्थात् वेद में ही कुछ मन्त्र ऐसे हैं, जो नित्य इतिहास को कहते हैं, और कुछ मन्त्र ऐसे हैं जिन की पारिभाषिकी संज्ञा गाथा है। गाथा उन्हें इस लिये कहते हैं कि गाथारूप में आलङ्कारिक तौर पर उन में कुछ तथ्यों का वर्णन है।

प्रश्न—या तो गाथाएं लौकिक हो सकती हैं, या वेद की ऋचाओं को ही गाथा कहा जा सकता है। हम गाथा को दोनों प्रकार का कैसे मान सकते हैं।

उत्तर—जैसे श्लोक शब्द साधारण श्लोक के लिये भी प्रयुक्त होता है, और वेद-मन्त्रों के लिये भी प्रयुक्त हो जाता है, वैसे ही गाथा शब्द का भी द्व्यर्थक प्रयोग है। शतपथ ब्रा० १४। ७। २। ११, १२, १३॥ में निम्नलिखित याजुष मन्त्र को श्लोक कहा गया है—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याᳬ रताः ॥४०।९॥

और साधारण श्लोकों को भी शतपथ में ही श्लोक कहा गया है, ऐसा हम पृष्ठ ३२ पर लिख चुके हैं।

गाथाएं लौकिक हैं, इसका ब्राह्मणान्तर्गत प्रमाण हम पहले कह आए हैं। अब दूसरे आचार्यों के प्रमाण सुनो। याज्ञवल्क्यस्मृति का टीकाकार आचार्य विश्वरूप १। ४५॥ श्लोक पर लिखता है—

'नाराशंस्यः पौरुषेय्यो यज्ञगाथाः ।
गाथा आत्मवादश्लोकाः। पुरुषकृत एव गाथा इत्यन्ये।'

मेधातिथि मनु ९। ४२॥ पर लिखता है—

गाथाशब्दो वृत्तविशेषवचनः।······परम्परागताः श्लोकाः॥

वाल्मीकि रामायण पश्चिमोत्तर शाखा अयोध्याकाण्ड अध्याय २५ में कहा है—

अपि चेयं पुरागीता गाथा सर्वत्र विश्रुता ।
मनुना मानवेन्द्रेण तां श्रुत्वा मे वचः कुरु॥ ११॥

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
कामचारप्रवृत्तस्य न कार्यं ब्रुवतो वचः ॥ १२ ॥*

इससे स्पष्ट होता है कि पुरुषकृत श्लोकों को गाथा कहते हैं ।

काठक गृह्यसूत्र २५ । २३ ॥ तथा पारस्कर गृह्यसूत्र १ । ७ । २ ॥ से स्पष्ट होता है कि मन्त्रों को भी गाथा कहा गया है । ऐतरेय ब्रा० ६ । ३२ ॥ में आथर्वण २० । १२८ । १२० ॥ आदि कुन्ताप ऋचाओं को गाथा कहा है ।

अतएव हमारा कथन सब प्रमाणों से परिपुष्ट ही है ।

प्रश्न—आश्वलायन श्रौतसूत्र का टीकाकार नारायण तो सब गाथाओं को ऋचा ही मानता है । आश्वलायन श्रौतसूत्र ५ । ६ ॥ में आई हुई एक यज्ञगाथा का वह इस प्रकार अर्थ करता है—

गाथाशब्देन ब्राह्मणगता ऋच उच्यन्ते । यज्ञार्था गाथा यज्ञगाथा ।

आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।३।१॥ पर वृत्ति लिखते समय वह फिर कहता है—

गाथा नाम ऋग्विशेषाः ।

क्या इन प्रकरणों में उसका ऐसा कथन सत्य है ?

उत्तर—जब नारायण टीका लिख रहा था, तो उसके हृदय में हमारे वाला सत्य पक्ष अवश्य उपस्थित हुआ होगा । उसी से भयभीत होकर ही उसने यह लिख दिया । जब ब्राह्मण स्वयं ऐसी गाथाओं को मानवी कहता है तो नारायण के कहने का कौन प्रमाण करेगा । नारायण वाली भूल ही सायण ने तैत्तिरीय आरण्यक २ । ९॥ के भाष्य में की है, जब वह **"गाथाः मन्त्रविशेषाः"** कहता है । यहां तो "यद् ब्राह्मणानि" कह कर शेष इतिहास, गाथा आदि को उनका विशेषण माना है । अतः मानवी गाथा ही अभिप्रेत हैं ।

प्रश्न—इस पूर्वोक्त "यद् ब्राह्मणानि" वाक्य के संज्ञासंज्ञिभाव-युक्त अर्थ करने में क्या प्रमाण है ।

---

* वङ्गशाखा, अध्याय २२ ॥ पाठान्तर—कामकार० ।

पञ्चतन्त्र, पूर्णभद्र के पाठ में यह श्लोक ऐसे है—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य दण्डो भवति शासनम् ॥ १ । १६९ ॥

यही श्लोक महाभारत में कुछ पाठान्तर से आया है ।

उत्तर—आश्वलायन गृह्यसूत्र में इससे पूर्व ऋगादि चारों वेदों के साथ 'यद्' शब्द पढ़ा है। वैसे ही "यद्" शब्द "ब्राह्मणानि" पद के साथ भी पढ़ा है। अन्य इतिहास आदि के साथ "यद्" शब्द नहीं पढ़ा। इससे ज्ञात होता है कि सूत्रकार की दृष्टि में इतिहासादि ब्राह्मणान्तर्गत बातों का नाम भी माना जाता था। इस लिये इस स्थान में इतिहासादि को स्वतन्त्र न मानकर उन्हें ब्राह्मणों की संज्ञा बना दिया है।

प्रश्न—ब्राह्मणों की इतिहासादि संज्ञा में क्या कोई और भी प्रमाण है।

उत्तर—हम पहले प्रकरण में लिख चुके हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋषियों वा अन्य जनों के नाम लेख पूर्वक उन के इतिहासादि कहे हैं। ब्राह्मणों में उतने ही नहीं, और भी सहस्रों ऐसे ही स्थल हैं। देखो—

अथ ह याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतुः।
मैत्रेयी च कात्यायनी च।

शतपथ १४। ७। ३। १॥

तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस।

तैत्तिरिय ब्रा० ३। ११। ८। १४॥

इत्यादि। इन वाक्यों का इतिहास से भिन्न अर्थ हो भी नहीं सकता। और निश्चय ही इन लोगों से पहले ये ग्रन्थ भी न थे। अतएव इतिहासादि युक्त होने से ही इन ब्राह्मणों की भी इतिहासादि संज्ञा अवश्य है।

प्रश्न—अनेक मन्त्रों में भी तो ऐसा ही इतिहास है। पुनः मन्त्रसंहिताओं की इतिहास संज्ञा क्यों नहीं मानते।

उत्तर—मन्त्रों में सामान्य इतिहास है। निरुक्तादि आर्ष शास्त्रों में जो बहुधा

तत्रेतिहासमाचक्षते। २। १०॥ इत्यैतिहासिकाः। २। १६॥

ऐसा कहा गया है, तो इसका अभिप्राय भी नित्य सामान्य इतिहास से है। हां, कहीं २ मन्त्रार्थ में तो नहीं, पर मन्त्र के तत्त्व को स्पष्ट करने के लिए लौकिक इतिहास भी कहा गया है। मध्यम-कालीन साधारण भाष्यकारों ने इन लेखों का अभिप्राय न समझ कर वेदार्थ को दूषित किया है। मन्त्रों के पद यौगिक वा योगरूढ हैं। ऐसा ही सब वेदवित् मानते आये हैं। भगवान् जैमिनि कहते हैं—

परं तु श्रुतिसामान्यमात्रम्। १। ३१॥

अर्थात् मन्त्रान्तर्गत सब नाम सामान्य हैं, परन्तु ब्राह्मणादिकों में ऐसी बात

नहीं है। ब्राह्मणों में तो ऋषियों की वंशावलियां* दी हैं। पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि का इतिहास है।

अतएव ब्राह्मणों की इतिहासादि भी संज्ञा है, और ब्राह्मण वेद नहीं।

(छ) ब्राह्मणों की इतिहासादि संज्ञा में और भी प्रमाण देखो। महर्षि गोतम† कहते हैं—

स्तुतिर्निन्दा परकृतिः पुराकल्प इत्यर्थवादः।

२ । १ । ६४ ॥

पुराकल्प शब्द पर भाष्यकर्ता वात्स्यायन लिखता है—

ऐतिह्यसमाचरितो विधिः पुराकल्प‡ इति।

तस्माद्वा एतेन ब्राह्मणा वहिष्पवमानं सामस्तोममस्तौषन्। योनेर्यज्ञं प्रतनवामहा इत्येवमादिः।

अर्थात् ऐतिह्य अर्थात् इतिहासयुक्त कथन पुराकल्प कहाता है। वात्स्यायन पुराकल्प के उदाहरण में किसी ब्राह्मणपाठ को ही उद्धृत करता है। यहां प्रकृत विषय भी शब्द विशेष परीक्षा प्रकण में ब्राह्मण–वाक्य–विभाग का चल रहा है। अतएव जब वात्स्यायन आदि मुनि ब्राह्मणों में स्वयं इतिहास को मानते हैं तो हम यदि उन को इतिहास भी एक संज्ञा मान लें, तो इस में क्या दोष है।

प्रश्न—जब अनेक ऋषि मुनि मन्त्र ब्राह्मणों को वेद मानते आए हैं, तो फिर तुम ऐसी आपत्तियां उठा के क्या सिद्ध करना चाहते हो। देखो—

---

* वंश आदि वर्णन पुराण का एक अंग है। यह ब्राह्मणों में प्रायः मिलता है। इसी लिये पुराण शब्द कहीं २ ब्राह्मणों का विशेषण है।

† गोतम साधारण ग्रन्थकार नहीं, प्रत्युत ऋषि है। अतएव महाभारत-काल का वा उस से भी बहुत पहले का है। वात्स्यायन २ । १ । ५७ ॥ सूत्र पर स्वयं कहता है—

तस्येति शब्दविशेषमेवाधिकुरुते भगवानृषिः।

पाश्चात्य लेखक वा उन के कतिपय एतद्देशीय शिष्य जो गोतम-सूत्रों को ईसा की प्रथम शताब्दी के समीप का मानते हैं, तो यह उनकी सरासर भूल है। ईसा से सहस्रों वर्ष पहले तो न्याय भाष्यकार वात्स्यायन ही हो चुका था।

‡ तुलना करो महाभाष्य (कील० सं० भाग १ पृ० ५)

पुराकल्प एतदासीत्-संस्कारोत्तरकालं ब्राह्मणा व्याकरणं स्माधीयते।

तुलना करो वाक्यपदीय टीका १ । १५६ ॥ **श्रूयते हि पुराकल्पे।**

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ।

आपस्तम्बश्रौत सूत्र २४ । १ । ३१ ॥ सत्याषाढ श्रौतसूत्र १ । १ । ७॥ कात्यायन परिशिष्टप्रतिज्ञासूत्र । बोधायन गृह्यसूत्र २ । ६ । ३ ॥

तथा—

मन्त्रब्राह्मणं वेद इत्याचक्षते ।

बोधायनगृह्यसूत्र २ । ६ । २ ॥

पुनः—

आम्नायः पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च ।

कौशिक सूत्र १ । ३ ॥

इत्यादि आर्ष प्रमाणों के होते हुए कौन यह कहने का साहस कर सकता है कि ब्राह्मण वेद नहीं हैं ।

उत्तर—श्रौतसूत्रों का जन्मदाता जब ब्राह्मण स्वयं कह चुका है कि वह वेद नहीं, तो कल्पसूत्रों के इन स्मार्त्त प्रमाणों का क्या मूल्य हो सकता है । जैमिनि मुनि मीमांसा दर्शन के स्मृतिपाद* में बलपूर्वक कहते हैं कि कल्पसूत्र स्मार्त्त हैं । उनका उतना ही प्रमाण है, जितना स्मृति का । स्मृति परतः प्रमाण है । उसकी अपेक्षा परतः प्रमाण होते हुए भी ब्राह्मण सहस्रों गुणा अधिक प्रमाण है । नहीं नहीं, वेदव्याख्यान होने से अत्यन्त पूज्य है । वे ऋषि जो इन ब्राह्मणों का प्रवचन कर चुके थे, कदापि इनके विरुद्ध प्रतिज्ञा नहीं कर सकते । इस लिये जब कुछ एक आचार्यों ने मन्त्र ब्राह्मण को वेद कहा है, तो वह औपचारिक भाव से ही है । जैसे आयुर्वेद, धनुर्वेद आदि वेद कहाते हैं, और जैसे तन्त्रों की उक्तियों को भी मन्त्र कहा गया है, पुनः जैसे शतपथ १३ । ४ । ३ । १२, १३ ॥ में—

इतिहासो वेदः । पुराणं वेदः ।

इत्यादि, इन सबको औपचारिक भाव से वेद कहा गया है, वैसे ही आपस्तम्बादि श्रौतसूत्रों में यह औपचारिक लक्षण है । और यह भी तो अभी निश्चय नहीं कि बोधायनादि सूत्रों में यह वाक्य उन्हीं ऋषियों का है अथवा परम्परा में आने वाले उनके शिष्य प्रशिष्यों का ।

प्रश्न—ब्राह्मण तो स्वयं इतिहास और पुराण को अपने से पृथक् मानता है । फिर इतिहास और पुराण ब्राह्मणों की संज्ञा कैसे हो सकती है । देखो वात्स्यायन न्यायभाष्य में क्या कहता है—

---

* १ । ३ । ११-१४ ॥

प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते । ४ । १ । ६२ ॥

अर्थात् प्रमाणरूप ब्राह्मण से इतिहास और पुराण की प्रामाणिकता ज्ञात होती है ।

फिर शतपथ ब्रा० १३ । ४ । ३ । १२, १३ ॥ में कहा है—

अथाष्टमेऽहन् ।······किंचिदितिहासमाचक्षीत ।

अथ नवमेऽहन् ।······तानुपदिशति पुराणं वेदः सोऽयमिति किंचित् पुराणमाचक्षीत ।

उत्तर—हम ने कब कहा है कि इन ब्राह्मणों से पूर्व कोई इतिहास और पुराण न थे । प्रत्युत हम तो पृ० २९ पर स्वयं अनेक प्रमाणों से इन का अस्तित्व स्वीकार कर चुके हैं । इन्हीं की बहुत सी सामग्री का प्रवचन की भाषा में इन ब्राह्मणों में समावेश किया गया है । इसी कारण इन ब्राह्मणों की इतिहासादि भी संज्ञा है । और इसी कारण पुराण शब्द अनेक स्थलों में विशेषणरूप से ब्राह्मणों का द्योतक बना ।

यास्काचार्य ने निरुक्त ३ । १८ ॥ में—

पुराणं कस्माद् । पुरा नवं भवति ।

पुराने अथवा पुराण का यह निर्वचन किया है कि—"प्रथम होते समय नया हो ।" ऐसी वार्ताएं ब्राह्मणों में सर्वत्र पाई जाती हैं । इस लिये भी पुराण का लक्षण ब्राह्मण में चरितार्थ हो जाता है । मन्त्रों में सब सामान्य वर्णन है। अतः ब्राह्मण आदि वेद नहीं हो सकते । मन्त्रसंहिताएं ही वेद हैं ।

(ज) भगवान् पाणिनि ने अपने अष्टक में ये सूत्र कहे हैं—

दृष्टं साम । ४ । २ । ७ ॥

तेन प्रोक्तम् । ४ । ३ । १०१ ॥

पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु । ४ । ३ । १०५ ॥

उपज्ञाते । ४ । ३ । ११५ ॥

कृते ग्रन्थे । ४ । ३ । ११६ ॥

इनका अभिप्राय यह है कि—

१-मन्त्र दृष्ट हैं ।

२-शाखाएं (मूल वेदों को छोड़ कर), ब्राह्मण और कल्प प्रोक्त हैं ।

३—पाणिनि आदि के ग्रन्थ स्फूर्ति से प्रकट हुए हैं।

४—साधारण ग्रन्थ कांट छांट के बनाये जाते हैं।

यहां भी ब्राह्मणों को मन्त्रों जैसा ऊंचा पद नहीं दिया गया। मन्त्र दृष्ट हैं और ब्राह्मण प्रोक्त हैं। आज तक किसी विद्वान् ने ब्राह्मणों की ऋषि आदि अनुक्रमणी नहीं सुनी। हां संहिताओं की ऋषि अनुक्रमणी तो होती है। और जो संहिताएं शाखा नाम से व्यवहृत होती हैं, तथा जिन में ब्राह्मण भाग सम्मिलित हैं, उन की अनुक्रमणिकाओं में भी ब्राह्मण भागों के ऋषि नहीं दिये। हां प्रजापति को सब ब्राह्मणों का ऋषि तो कहा है, अर्थात् प्रजापति परमात्मा ने ही वेदार्थ सुझाया। तनिक विचारो जो चारायणीय संहिता का आर्षाध्याय है, उसे मन्त्रार्षाध्याय कहते हैं। उस में ब्राह्मण भाग के एक दो सामान्य ऋषि तो कहे गये हैं, पर वैसे ब्राह्मण भाग के ऋषि नहीं दिये गये। स्थानक १८ से आगे उस में ऐसा पाठ है—

ब्राह्मणाः प्रजापतेः। ब्राह्मणपठितान् मन्त्रानथोदाहरिष्यामः।

यहां सामान्यरूप से ब्राह्मणों का प्रजापति ऋषि कहकर ब्राह्मणान्तर्गत मन्त्रों के तो ऋषि दिये हैं, पर ब्राह्मणों का कोई ऋषि नहीं दिया। प्रजापति नाम परमात्मा के अतिरिक्त ऋषिविशेष का भी है। वह ब्रह्मा का समीपवर्ती ही था। कहीं २ ब्रह्मा का नाम ही प्रजापति है। वही ब्राह्मणों का आदि प्रवचनकर्ता है। ब्राह्मणरूप में वेदव्याख्यान करने से ही उसे कहीं २ ब्राह्मणों का ऋषि कहा गया है। जहां और दो चार स्थलों में ब्राह्मणों के ऋषि कहे गये हैं, वे भी इसी गौण भाव से कहे गये हैं।

प्रश्न—वात्स्यायनमुनि तो स्पष्ट ही ब्राह्मणों के भी ऋषि मानते हैं। वहां उन्हों ने गौण मुख्य भाव भी नहीं कहा। फिर तुम्हारा पक्ष कैसे माना जावे। देखो वात्स्यायन का लेख—

य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहास-पुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति। ४। १। ६२॥

उत्तर—यदि तुम वात्स्यायन भाष्य को आर्ष रीति से पढ़े होते तो कभी ऐसा प्रश्न न करते। वात्स्यायन तो स्पष्ट ही हमारा पक्ष कह रहा है। सूत्र २। २। ६७ पर वह लिखता है—

य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः।

अतएव दोनों वाक्यों की तुलना से "ब्राह्मणस्य द्रष्टारः" का अर्थ "वेदार्थानां द्रष्टारः" ही है। हम ब्राह्मणों को वेदव्याख्यान कह ही चुके हैं। हां, उस व्याख्यान

के साथ २ ऋषियों ने इतिहास, पुराणादि का भी प्रवचन कर दिया है। निरुक्त में भी कहा है—

ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता १०।१०॥१०।४६
इत्याख्यानम् ११।१९ ॥ ११।२५ ॥ ११।३४ ॥

इस का भी यही अभिप्राय है कि जब वेदार्थ इतिहासादि से संयुक्त कहा जाता है, तो वह प्रिय और रुचिकर लगता है। अस्तु ! यदि ब्राह्मणों को भी वेद मानोगे तो उनका अर्थ किन ग्रन्थों में बताओगे। मन्त्रार्थ तो ब्राह्मण में विद्यमान है, पर ब्राह्मणार्थ कहीं नहीं। अतः मन्त्र ही वेद है, और ब्राह्मण उनका व्याख्यान-मात्र है।

ऋषियों को वेदार्थ का ज्ञान तो परमात्मा ने ही कराया। तब ऋषियों ने उस अर्थ को आख्यानादि के साथ प्रवचन की भाषा में कहा। वही वेदार्थ ब्राह्मण हुआ। इसी लिये वात्स्यायन ने वेदार्थद्रष्टा कह कर सारी बात को खोल दिया है।

और भी जहां कहीं आर्ष ग्रन्थों में ब्राह्मण वाक्यों के साथ "अपश्यत्" आदि क्रिया पद लगा कर उनका देखना कहा है, तो वहां भी पूर्वोक्त भाव से ही कहा है। वेदार्थरूप ब्राह्मणों के उन भावों को ही ऋषियों ने मन्त्रों में देखा था। तब प्रवचन की भाषा में ऋषियों ने उन तथ्यों का कहा। ब्राह्मण वाक्य जैसे के तैसे देखे नहीं गये। मूल मन्त्र ही नित्य-आनुपूर्वी* के साथ देखे गये हैं। इसी अभिप्राय से निरुक्त २।११॥ में निम्नलिखित ब्राह्मण वाक्य उद्धृत है—

तद् यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत्त ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्वम्। इति विज्ञायते।†

ब्रह्म नाम वेद अर्थात् मन्त्रों का ही है। इसी ब्रह्म का ब्रह्मा आदि द्वारा व्याख्यान होने से ब्राह्मण नाम पड़ा। अतएव ब्रह्म को तो ऋषियों ने स्पष्ट देखा, ब्राह्मणों को वैसे नहीं। जैसा हम पूर्व कह चुके हैं, ब्राह्मणों का भावमात्र देखा गया था। इस

---

* यह मीमांसादि सर्व शास्त्रकारों का मत है। ब्राह्मण तो क्या साधारण शाखाओं में नित्य आनुपूर्वी नहीं है। इस लिये ये वेद कैसे हो सकते हैं। शाखा आदिकों में आनुपूर्वी अनित्य है, इसका प्रमाण महाभाष्य ४।३।१०१॥ पर देखो—

यद्यप्यर्थो नित्यो या त्वसौ वर्णानुपूर्वी सानित्या।
तद्भेदाच्चैतद्भवति काठकं कालापकं मौदकं पैप्पलादकमिति॥

† तुलना करो तैत्तिरीयारण्यक २।९॥

में प्रमाण भी है। गोपथ ब्राह्मण पू० १। १२॥ में कहा है—

स एतं त्रिवृतं सप्ततन्तुमेकविंशतिसंस्थं यज्ञमपश्यत् ।

यहां यज्ञ का देखना कहा है। यज्ञ क्रिया है। इस क्रिया का भाव ऋषियों ने मन्त्रों में देखा। वैसे ही ब्राह्मण वाक्यों का भाव भी उन्हों ने जाना था। पुनः जैसे महाभाष्य आदि में—

पश्यति त्वाचार्यः । (कील० सं० भाग १ पृ० २४)

सैकड़ों वार ऐसा पाठ श्रद्धा से कहा गया है, वैसे ही कहीं २ अर्थवादरूप से ब्राह्मणों के लिये "दृश" धातु का प्रयोग हुआ है।

प्रश्न—महामोहविद्रावण का कर्ता कहता है—

किञ्च परमर्षिर्गोतमो वेदप्रामाण्यनिरूपणावसरे स्थूणानि खननन्यायेन वेदप्रामाण्यं द्रढयितुमत्राऽऽशशङ्के "तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः।" तस्य वेदस्याप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः तत्रानृतं यथा "पुत्रकामः पुत्रेष्टया यजेत" अनुष्ठितायामपि चेष्टौ न युज्यन्ते पुरुषाः पुत्रैरिति दृष्टार्थस्यास्य वाक्यस्याऽप्रामाण्ये "ऽग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम" इत्यदृष्टार्थकस्य वाक्यस्य प्रामाण्ये कथमाश्वासः। अत्र हि सूत्रस्थतत्पदेन पराम्रष्टुमिष्टस्य वेदस्याऽप्रामाण्यमाशङ्कमानः "अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम" इति ब्राह्मणस्याप्रामाण्यं दर्शयामास गोतमः। यदि नाम ब्राह्मणं न वेदस्तर्हि वेदाप्रामाण्यसाधनावसरे ब्राह्मणस्याप्रामाण्यप्रदर्शनं कर्णस्पर्शे कटिचालनायितं स्यात्। न हि प्रेक्षावान् 'मन्त्रवाक्यं न विश्वसिर्हा' ति कञ्चन बोधयञ्छ्रुतवाक्यस्य मिथ्यात्वं प्रसाधयेत तदवश्यं ब्राह्मणं वेद इति परमर्षिरनुमन्यत इति। नच सूत्रस्थतत्पदेन परमर्षिर्नाभिप्रैति निर्देष्टुम् "अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम" इति ब्राह्मणवाक्यम्। अपितु यत्किञ्चिदन्यदेव संहितावाक्यमिति सर्वं सिकताकूपायितमिति वाच्यम्।*

"तदप्रामाण्यम्०" इस न्याय सूत्र से वेद का प्रमाण सिद्ध करने के लिये पूर्व पक्ष किया है। उस पर भाष्यकार महर्षि वात्स्यायन जी ने ब्राह्मण पुस्तकों के उदाहरण दिए हैं। इससे न्यायकर्ता महर्षि का अभिप्राय प्रसिद्ध है कि ब्राह्मण पुस्तक भी वेद ही है क्योंकि वेद का प्रमाण सिद्ध करने में अन्य का उदाहरण देना नहीं बन

---

* ऋषि दयानन्द सरस्वती ने गोतम के प्रमाण से ब्राह्मणों का वेद न होना सिद्ध किया था। उसका यह उत्तर मोहनलाल ने लिखा। इसका उचित, पर पुनरुक्त-दोष-पूर्ण उत्तर भीमसेन ने आर्यसिद्धान्त चैत्र संवत् १९४५ भाग १, अङ्क ११, पृ० १६६, १६७ पर दिया। उसी उत्तर को कुछ काट कर, हम ने यहां धरा है।

सकता इस पर हम पूछते हैं कि महामोहविषार्णव कर्त्ता जी ! कहिये तो सही न्यायदर्शन में यह कौन प्रकरण है ? क्या आपने इसको वेदप्रामाण्य परीक्षा प्रकरण समझा है ? वा अन्य कोई । यदि वेद परीक्षा प्रकरण समझा है तो कहिये कि वेद परीक्षा प्रकरण के होने में क्या नियम है ? तत् शब्द से पूर्व प्रतिपादित विषय लेना यह तो सब आर्य्यों का सिद्धान्त है है पर आप कहिये कि " तद् प्रामाण्यम्० " इस सूत्र से पहिले वेदशब्द किस सूत्र में पढ़ा है ? जो तत् शब्द से लेना चाहिये ।

"... इन लोगों ने विश्वनाथ भट्टाचार्य्य कृत न्यासूत्र की वृत्ति भी नहीं देखी ? जो प्रकरण का नाम तो मालूम हो जाता । ... विश्वनाथ ने इस प्रकरण का नाम "शब्द-विशेषपरीक्षा" प्रकरण रक्खा है । सो न्यायभाष्य के अनुकूल है ।* और भाष्यकार वात्स्यायन ऋषि ने भी लिखा है कि "तस्य शब्दस्य प्रमाणत्वं न सम्भवति" उस पूर्वोक्त शब्द का प्रमाण मानना ठीक नहीं है अर्थात् उक्त सूत्र में तत् शब्द करके शब्दप्रमाण का आकर्षण करना चाहिये, और पूर्व से शब्दपरीक्षा का प्रसङ्ग भी चला ही आता है। यद्यपि शब्द प्रमाणान्तर्गत वेद भी आता है इसी लिये हम यह प्रतिज्ञा नहीं करते कि शब्द विशेष परीक्षा कहने में वेद की परीक्षा न आवेगी परन्तु यह प्रतिज्ञा अवश्य करते हैं कि शब्द विशेष परीक्षा में केवल मूलवेद ही लिये जावें और ब्राह्मणादि न लिये जावें यह कोई सिद्ध नहीं कर सकता क्योंकि शब्द सामान्य में हम लोगों के विश्वास योग्य व्यवहार के शब्द भी आ सकते हैं और शब्द विशेष कहने से श्रुति स्मृति ही ली जावेंगी । इस में भी मूल वेद सूर्य के समान स्वतः प्रकाश स्वरूप है उस की परीक्षा करना सर्वांश में ठीक नहीं । जैसे सूर्य को देखने के लिये द्वितीय सूर्य्य वा दीपकादि की अपेक्षा नहीं होती वैसे किसी अन्य प्रमाण से वेद की परीक्षा करना नहीं बनता । इसी कारण शब्द विशेष परीक्षा में महर्षि वात्स्यायन जी ने विशेष कर ब्राह्मण भागों के उदाहरण दिये हैं । जो कुछ वेद परीक्षा हो सकती है तो वेद से ही हो सकती है । और बड़ा भारी आश्चर्य तो यह है कि महामोहविषार्णवकर्त्ता जिन न्यायकर्त्ता महर्षि के प्रमाण से अपने पक्ष को सिद्ध करना चाहते हैं उन्हीं ऋषि के उसी प्रमाण से इन का पक्ष खण्डित होता है किन्तु सिद्ध कुछ भी नहीं होता । सूत्रकार और भाष्यकार ऋषियों ने " तद् प्रामाण्यम्० " इस सूत्र से पूर्व कहीं भी वेद शब्द का नाम नहीं लिया । इसी से इस सूत्र में तत् शब्द से वेद का परामर्श नहीं किया किन्तु शब्द का परामर्श किया । और ऋषि लोग ऐसा अप्रसङ्ग वर्णन इन लोगों के तुल्य

---

* वात्स्यायन भाष्य के भी अनेक छपे ग्रन्थों में इस प्रकरण को "शब्दविशेष परीक्षा प्रकरण ही लिखा है । भ०दत्त ।

क्यों करें ? क्योंकि ऋषियों में पक्षपातादि दोष नहीं होते हैं। ऋषि लोगों ने कहीं २ वेद विचार प्रकरण में ब्राह्मण पुस्तकों के वाक्य भी रक्खे हैं सो व्याख्यान व्याख्येय का तादात्म्य सम्बन्ध मान के "तदेव सूत्रं विगृहीतं व्याख्यानं भवति" कहा है अर्थात् व्याख्येय मूल पुस्तक में जो पद हैं उन्हीं को लौट पौट कर वा उपयोगी अन्य पद लगा कर अन्वित कर देना व्याख्यान कहाता है। इस कारण ब्राह्मण वाक्य वेद विचार प्रकरण में लेना अनुचित नहीं अथवा ब्राह्मण वाक्यों को वेद के तुल्य मानकर उदाहरण देना बन सकता है। "छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति" इस के अनुसार जब व्याकरणादि के सूत्रों में वेद के तुल्य कार्य होते हैं तो वेद के अति निकटवर्त्ती ब्राह्मणों में वेद तुल्य कार्य होवें तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। यदि वेद में जैसे कार्य होते हैं वैसे ब्राह्मणों में होने से उनको मूल वेद मान लिया जावे और मनुष्य बुद्धिरचित न माना जावे तो सूत्रादि को भी ऋषि रचित न मानना चाहिये क्योंकि वहां भी छन्दोवत् कार्य होते हैं तो उनको भी वेद मान लिया जावे ? जब ऐसा नहीं होता तो ब्राह्मण भी मूल वेद नहीं होसकते और ब्राह्मण का मनुष्यबुद्धिरचित होना उन्हीं के पद वाक्यों की रचना से सिद्ध हो जाता है किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं।" इति।

इसके आगे सूत्र २। १। ६१॥ में जो वात्स्यायन का लेख है, उससे भी ब्राह्मण-ग्रन्थों का वेद न होना ही सिद्ध होता है। वात्स्यायन कहता है—

प्रमाणं शब्दः। यथा लोके। विभागश्च ब्राह्मणवाक्यानां त्रिविधः।

अर्थात्—शब्द-प्रमाण मानना ही पड़ेगा। जैसे व्यवहार में शब्द प्रमाण माने विना काम नहीं चलता, वैसे ही आप्तों के उपदेश को भी प्रमाण मानना चाहिये। और जैसे व्यवहार में त्रिविध वाक्य विभाग है, वैसे ही ब्राह्मणों में भी है। जैसे व्यवहार में पुराकल्प आदि हैं, वैसे ही ब्राह्मणों में भी हैं। परन्तु श्रुति सामान्य है। इसके विपरीत ब्राह्मण में इतिहास हैं। अतएव इतिहासादि होने से ब्राह्मणों के शब्द मन्त्रों की अपेक्षा लौकिक ही हैं। इस लिये ब्राह्मण वेद नहीं।

प्रश्न—मोहनलाल कहता है पूर्वोक्त वाक्य का भाव ऐसे कहना चाहिये—

"प्रमाणं शब्दो यथा लोके" इति सादृश्यार्थक यथापदघटितं, वृते च तथेति। लोके यथा शब्दप्रमाणं तथा वेदेपीत्यध्याहार्यम्। वेदे ब्राह्मणरूपे ब्राह्मणसंज्ञकानां वाक्यानां विभागस्त्रिविधः इत्यर्थस्य तात्पर्यविषयत्वात्।"

उत्तर—यह भी मोहनलाल की भूल ही है। यहां "लोक" शब्द लौकिक ग्रन्थों के लिये प्रयुक्त नहीं हुआ। प्रत्युत व्यवहार में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के लिये हुआ है। अतः तथा के साथ वेद पद का अध्याहार निरर्थक ही है। और २। १। ६५ ॥ सूत्र पर जो वात्स्यायन लिखता है—

यथा लौकिके वाक्ये विभागेनार्थग्रहणात् प्रमाणत्वमेवं वेदवाक्यानामपि विभागेनार्थग्रहणात् प्रमाणत्वं भवितुमर्हतीति।

इसका यही अभिप्राय है कि यद्यपि वात्स्यायन ने "वेदवाक्यानाम्" पद के आगे "ब्राह्मण" पद नहीं पढ़ा, तथापि यहां औपचारिक भाव से ही वेद शब्द का प्रयोग हुआ है। औपचारिक भाव से इतना कह देने से ही ब्राह्मण वेद नहीं माने जासकते।

प्रश्न—तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि यहां वेद शब्द का प्रयोग औपचारिक भाव से है।

उत्तर—वात्स्यायन आदि मुनि जो वेद, ब्राह्मण को जानते थे, वे उनके विरुद्ध नहीं कह सकते थे। हम सिद्ध कर चुके हैं कि ब्राह्मण अपने को वेद से भिन्न वा मनुष्यकृत बताता है। पुनः वात्स्यायन इसके विरुद्ध कैसे समझ सकते थे। अतः उनका प्रयोग औपचारिक ही है। ब्राह्मण-ग्रन्थों के वेद न होने में और भी प्रमाण देखो।

(झ) शतपथ ब्राह्मण १४। ६। १०। ६॥ में कहा है—

ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि वाचैव सम्राट् प्रजायन्ते।

लग भग ऐसा ही पाठ शतपथ १४। ५। ४। १०॥ में भी आता है। यहां सूत्रादिवत् उपनिषदों को स्पष्ट वेदों से पृथक् माना है। जब ब्राह्मणकार स्वयं ब्राह्मण विभागों अर्थात् उपनिषदों को वेद नहीं मानते, तो फिर ब्राह्मण ग्रन्थ वेद कैसे हो सकते हैं।*

---

* आर्ष ग्रन्थों का तो क्या कहना, उस स्मृति में भी जो याज्ञवल्क्य के नाम मढ़ी जाती है, इसी विचार के चिन्ह पाये जाते हैं। देखो अध्याय ३—

यतो वेदाः पुराणं च विद्योपनिषदस्तथा।
श्लोकाः सूत्राणि भाष्याणि यत्किञ्चिद्वाङ्मयं क्वचित्॥ १८१॥

बेचारा विश्वरूप इस आपत्ति को देख कर कहता है—

उपनिषदां पृथग्वचनं वेदभागान्तरस्य तादर्थ्यप्रदर्शनार्थम्।

प्रश्न—सनातनधर्मोद्धार का कर्त्ता नकछेदराम खण्ड २ पृ०५३० पर लिखता है—

"जहां केवल मन्त्रों को कहना होता है वहां केवल ऋक् आदि शब्दों ही का प्रयोग होता है जैसे 'अहे बुध्निय' इत्यादि मन्त्रों में और जहां मन्त्र और ब्राह्मण के समुदाय को कहना होता है वहां केवल ऋक् आदि शब्द का प्रयोग नहीं होता किन्तु ऋग्वेद आदि शब्दों ही का प्रयोग होता है जैसे 'एवं वा अरे०' इत्यादि पूर्वोक्त ब्राह्मण वाक्य में।"

क्या यह लेख उचित है।

उत्तर—ऐसे लेख प्रकट करते हैं कि लेखक वैदिक वाङ्मय से अपरिचित ही है। मध्यम-कालीन मीमांसकों के कुछ भ्रमोत्पादक लेख पढ़ कर ही उसने ऐसा लिख दिया है। नकछेदराम ने जो प्रमाण 'एवं वा अरे' शतपथ से उद्धृत किया है, उसे ही नहीं देखा। वहां भी तो ऋग्वेदादि से उपनिषदों को पृथक् कहा है। काशी के पण्डित ने अपने दिये प्रमाण को ही जब पूरा नहीं विचारा, तो और वह क्या लिखेगा।

ऋक् पद मन्त्रों के लिये आवे, और ऋग्वेदादि मन्त्र ब्राह्मण के समुदाय के लिये वर्ते जावें, ऐसा कोई नियम नहीं। ये दोनों शब्द मन्त्रसंहिता के लिये ही प्रयुक्त होते रहे हैं। इसमें प्राचीन ब्राह्मणों के प्रमाणों को देखो। शतपथ ब्राह्मण १३।४।३॥ की अनेकों कण्डिकाओं में क्रमशः कहा है—

तानुपदिशति—ऋचो वेदः……ऋचांꣳ सूक्तं व्याचक्षण ॥३॥
तानुपदिशति—यजूꣳषि वेदः…यजुषामनुवाकं व्याचक्षण ॥६॥
तानुपदिशति—आथर्वणो वेदः…अथर्वणामेकं पर्व व्याचक्षण ॥७॥
तानुपदिशति—सामानि वेदः…साम्नां दशतं ब्रूयात् ॥ १४ ॥

अब विचारने की वार्ता है, कि यहां वेद शब्द केवल ऋगादि के लिये ही प्रयुक्त हुआ है। ऋगादि मन्त्र हैं। और ऋग्वेदीय आदि ब्राह्मणों में सूक्त आदि अवान्तर विभाग है भी नहीं। इस लिये ऋग्वेदादि शब्द भी मन्त्र संहिताओं के लिये ही वर्ते गये हैं, ब्राह्मणों के लिये नहीं, ऐसा मानना ही युक्तियुक्त है।

शतपथ के इसी प्रकरण की ८, ९, १० कण्डिकाओं में जो अङ्गिरसो वेद, सर्पविद्या वेद, देवजनविद्या वेद, संज्ञाएं हैं, तो यह अथर्ववेद के अवान्तर विभागों के ही नाम हैं। इन सब में 'पर्व' विद्यमान हैं। शेष मायावेद, इतिहासोवेद, पुराणं वेद, परम्परा से आने वाले संग्रहमात्र हैं। ये पूरे ग्रन्थरूप में नहीं हैं। अथवा इनका अवान्तर विभाग नहीं है। इसी लिये इनके साथ कहा है—

कांचिन्मायां कुर्यात् । ११ ॥ कंचिदितिहासमाचक्षीत । १२॥ किञ्चित् पुराणमाचक्षीत । १३ ॥

इन तीनों के साथ, जैसा हम पूर्व कह चुके हैं, वेदपद का औपचारिक प्रयोग है । इससे आगे १५वीं कण्डिका में कहा है—

आचष्टे···सर्वान् वेदान्···।

अर्थात् सब वेद कहे । यहां ब्राह्मणों का स्वरूप भी कथन नहीं किया गया, और वास्तविक तथा औपचारिक भाव से वेद भी कह दिये । इस लिये ज्ञात होता है कि याज्ञवल्क्य आदि ऋषि स्वप्न में भी ब्राह्मणों को वेद न मानते थे ।

इसी प्रस्तुत विषय में, हमारे सिद्धान्त को पुष्ट करने वाले और भी प्रमाण देखो । प्रायः सारे ही ब्राह्मणों में प्रजापति अर्थात् परमात्मा से वेद के प्रकाशित होने के सम्बन्ध में कुछ वाक्य आये हैं । कतिपय ब्राह्मणों के वे वाक्य नीचे दिये जाते हैं—

···स एतानि त्रीणि ज्योतींष्यभ्यतप्यत सोऽग्नेरेवर्चोऽसृजत वायोर्यजूंष्यादित्यात् सामानि । स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतप्यत ।···। अथैतस्या एव त्रय्यै विद्यायै तेजोरसं प्राबृहत् । एतेषामेव वेदानां भिषज्यायै स भूरित्यृचां प्राबृहत्···। कौ० ६ । १० ॥

स इमानि त्रीणि ज्योतीꣳष्यभितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः ॥ ३ ॥ स इमांस्त्रीन् वेदानभितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्यृग्वेदात्··· ॥ ४ ॥ श० ११ । ५ । ८ ॥

स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत् । तासां तप्यमानानां रसान् प्राबृहत् । अग्नेर्ऋचो वायोर्यजूꣳषि सामान्यादित्यात् ॥२॥ स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत् । तस्यास्तप्यमानाया रसान् प्राबृहत् । भूरित्यृग्भ्यः ॥ ३ ॥ छान्दोग्य उ० ४ । १७ ॥

इस विषय के और भी ब्राह्मण वाक्य दिये जा सकते हैं, पर इतनों से ही यथेष्ट अभिप्राय निकल पड़ता है । यहां ऋचः और ऋग्वेद शब्द पर्यायवाची ही हैं । 'भू' व्याहृति ऋचाओं से उत्पन्न हुई अथवा ऋग्वेद से, इस कहने में कोई भेद

नहीं। ऋक्, यजु और साम, इन तीनों का समूह त्रयी विद्या है। इन्हीं को शतपथ के प्रमाण में ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद कहा है। इसी से स्पष्ट है कि ऋक् आदि शब्द ऋग्वेदादि के पर्यायवाची हैं।

प्रश्न—तीनों प्रमाणों को समता में रखना उचित नहीं। शतपथ में मन्त्र ब्राह्मण समुदाय का कथन है और कौषीतकि आदि में मन्त्रमात्र का।

उत्तर—ऐसी निर्मूल कल्पना निरर्थक है। जब इस प्रकरण में एक सामान्य विषय का कथन है, और पूर्व प्रदर्शित संगति भी एक ही है, तो तुम्हारी बात को कोई विद्वान् न मानेगा। और ब्राह्मण-ग्रन्थ तो आदि सृष्टि में प्रकट भी नहीं हुए। वे काल, काल पर बनते चले आये हैं। उनका सङ्कलन महाभारत-काल में हुआ है। यह ब्राह्मण-ग्रन्थ समग्ररूप से बहुत पुराने नहीं हैं। अतः आदि सृष्टि के काल के कथन में वेद शब्द से ब्राह्मण का भी अभिप्राय लेना अनुचित ही नहीं, सरासर खेंचतान है। जब इन प्रकरणों में वेद शब्द से ब्राह्मण नहीं लिया गया, तो अन्यत्र भी आर्ष वाङ्मय में ऐसा ही समझना।

प्रश्न—कठ आदि ब्राह्मणों को नवीन नहीं समझना चाहिये। मीमांसा सूत्र १।१।२८॥ पर शबर ने ब्राह्मणों के प्रमाण देकर, आगे सूत्र ३०-३२ तक यही सिद्ध किया है कि ब्राह्मणादि भी अपौरुषेय हैं। सूत्र ३० पर वह किसी पुराने शास्त्र का प्रमाण ऐसे धरता है—

स्मर्यते च—वैशम्पायनः सर्वशाखाध्यायी। कठः पुनरिमां केवलां शाखामध्यापयां बभूव, इति।

अर्थात् कठादि शाखा वा ब्राह्मण कठादि ऋषियों से पहले भी विद्यमान थे।

उत्तर—शबरस्वामि ने मीमांसा, तर्कपाद के इस वेद-अपौरुषेयता अधिकरण में जो अनेक उदाहरण दिये हैं, वे उचित नहीं हैं। शबर तो ब्राह्मणों को वेद मानता था।* अतः उसने ऐसे उदाहरण दे दिये। अन्यथा ऐसे सब उदाहरण मन्त्रों से देने चाहियें थे।

कठशाखा वा ब्राह्मण, वैशम्पायन के समीप भले ही हों, पर व्यास से पहले नहीं थे। आदि सृष्टि में ब्राह्मण तो क्या, शाखायें वा उनकी सामग्री भी नहीं थी तब तो मूल मन्त्र संहिताएं ही थीं। इस विषय का प्रमाण आगे दिया जाता है। उस

* देखो शाबर मीमांसाभाष्य **मन्त्राश्च ब्राह्मणश्च वेदः।२।१।३३॥**

से यह भी सिद्ध होगा कि मन्त्र समूह ही वेद हैं, ब्राह्मण आदि नहीं।*

गोपथ ब्राह्मण पू० १। ५॥ में कहा है—

यान् मन्त्रानपश्यत् स आथर्वणो वेदोऽभवत्।

क्या इस से बढ़ के और स्पष्ट प्रमाण की भी आवश्यकता है। यहां सारा सिद्धान्त विवाद से ऊपर कर दिया गया है। मन्त्र समूह का ही नाम वेद है, और वही आदि सृष्टि में प्रकाशित हुआ। वही अपौरुषेय है। उसकी आनुपूर्वी नित्य है। शेष शाखायें कृत तो नहीं, पर आनुपूर्वी अनित्य होने से प्रोक्त हैं।

प्रश्न—चरणव्यूह कण्डिका द्वितीय में यह क्या लिखा है कि मन्त्र ब्राह्मण वेद हैं। देखो—

त्रिगुणं पठ्यते यत्र मन्त्रब्राह्मणयोःसह।
यजुर्वेदः स विज्ञेयः शेषाः शाखान्तराः स्मृताः॥

उत्तर—साम्प्रतिक दशा में चरणव्यूह कोई विश्वसनीय ग्रन्थ नहीं है। इस के आठ नौ भेद तो हम ने ही देखे हैं। वेबर साहब का चरणव्यूह और, काशी का छपा और। हस्तलिखितों के भेद का तो कहना ही क्या। ऐसी अवस्था में कौन कह सकता है कि मूल ग्रन्थ कितना था। और यह श्लोक तो किसी तैत्तिरीय-शाखा-भक्त का मिलाया हुआ प्रतीत होता है।

चरणव्यूह का टीकाकार महिदास इस श्लोक को ऐसे पढ़ता है—

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदः त्रिगुणं यत्र पठ्यते।
यजुर्वेदः स विज्ञेय अन्ये शाखान्तराः स्मृताः॥

---

* यद्यपि बौद्ध ग्रन्थों का हम सर्वांग प्रमाण नहीं करते, तो भी महावस्तु में "ब्राह्मणवेदेषु" पद बहुत स्पष्ट है। इससे ज्ञात होता है कि बौद्ध विद्वानों को जो परम्परा विदित थी, तदनुसार ब्राह्मण वेद नहीं थे। देखो—

तस्य राज्ञो पुरोहितो ब्रह्मायुः नाम त्रयाणां वेदानां पारगो सनिर्घण्ठकैटभानां इतिहासपंचमानां अक्षरपदव्याकरणे अनल्पको। सोऽयमाचार्यः कुशलो ब्राह्मणवेदेषु पि शास्त्रेषु दानसंविभाग-शीलो दश कुशलकर्मपथां समादाय वर्तति।

भाग २। पृष्ठ ७७। पंक्ति ८-११। महावस्तु में ऐसा ही प्रयोग कई स्थलों पर आया है।

जहां मूल में पूर्वोद्धृत श्लोक छपा है वहां उस ने उसकी व्याख्या भी नहीं की। उस से बहुत आगे यह श्लोक स्वयं लिख कर वह टीका करता है। इस से भी मूल पाठ में श्लोक का प्राक्षिप्त होना पाया जाता है। श्लोक का अर्थ करके अन्त में महिदास लिखता है—

एतादृशपठनं शाखाया अध्ययनं [यत्र] स यजुर्वेदः।
तच्च तैत्तिरीयशाखायामेवास्ति।

इसी लिये हम ने कहा था कि यह श्लोक किसी तैत्तिरीय-शाखा-भक्त का मिलाया हुआ प्रतीत होता है।

(ञ) ब्राह्मण ग्रन्थों के ऋषि प्रोक्त होने में और भी प्रमाण है। मीमांसा सूत्र १२। ३। १७॥ ऐसे पढ़ा गया है—

मन्त्रोपदेशो वा न भाषिकस्य प्रायोपपत्तेर्भाषिकश्रुतिः।

इसी के भाष्य में शबर कहता है—

भाषास्वरो ब्राह्मणे प्रवृत्तः।

जब ब्राह्मण का स्वर ही भाषा स्वर अर्थात् लौकिक स्वर है, तो वह ईश्वर प्रोक्त कैसे हो सकता है। यह बात शिक्षा ग्रन्थों वा भाषिक सूत्र से सिद्ध होती है। विस्तर-भय से अधिक नहीं लिखा गया। सत्यव्रत सामश्रमी जी ने त्रयी परिचय में इसे भले प्रकार लिखा है।

(ट) ब्राह्मणादि ग्रन्थों में मन्त्रों की प्रतीकें धर के "इति" कह कर न केवल मन्त्रों का व्याख्यान ही किया है, प्रत्युत उन के ऋषि देवता आदि भी दिये हैं। ब्राह्मणों के प्रमाणों से हम वेदों का आदि सृष्टि में होना कह चुके हैं। मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषि उस से बहुत पीछे हुए हैं। उनका उल्लेख करने वाले ग्रन्थ उस से भी पीछे के होंगे। इन मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषि विशेषों के नामों का सामान्यार्थ हो भी नहीं सकता। अतः ब्राह्मणादि ग्रन्थ बहुत नये और ऋषि-प्रोक्त ही हैं। इस के उदाहरण काठक संहिता में देखो—

महि त्रीणामवो ऽस्तु। (का० सं० ७। २॥)
इत्येष प्राजापत्यस्त्रिचः। ७। ९॥
स वामदेव उख्यमग्निमबिभस्तमवैक्षत स एतत् सूक्तमपश्यत् कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीम्, इति। का० सं० १०। ५॥

इत्यादि।

ऐसे ही अष्टाध्यायी आदि अन्य ग्रन्थों में भी ब्राह्मणों को वेद नहीं माना। इस के उदाहरण हम ने पाणिनीय सूत्रों से पहले दे दिये हैं। पूर्वपक्षियों के अष्टाध्यायीस्थ प्रमाण इतने निर्बल हैं कि विद्वान् स्वयं उन का उत्तर दे सकते हैं।

इस सारे लेख से यह ज्ञात हो चुका है, कि मन्त्र संहिताएं ही वेद हैं। वही अपौरुषेय हैं। महाभारतोत्तर-काल में एक याज्ञिक काल आया। उस में ब्राह्मणों का अत्यन्त उपयोग होने वा अति मान होने से, ब्राह्मणों को औपचारिक दृष्टि से वेद कहा गया।* समय के व्यतीत होने पर शबर आदि नवीन आचार्यों ने उस औपचारिक भाव को भुला कर इन्हें वेद ही कहना आरम्भ कर दिया। इस लिये जनसाधारण भी इन्हें वेद समझने लग पड़े। बस यही सारी भूल का कारण था। ऋषि दयानन्द सरस्वती ने यह भूल देखी और इसी लिये अनेक युक्ति प्रमाणों के अनन्तर अपनी ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के "वेदसंज्ञाविचार विषय" में यह लिखा—

इत्यादि बहुभिः प्रमाणैर्मन्त्राणामेव वेदसंज्ञा न ब्राह्मण-ग्रन्थानामिति सिद्धम्।



---

* गौतम धर्मसूत्र का टीकाकार मस्करी—

यत्र चाम्नायो विदध्यात्। १। ५१॥

सूत्र पर टीका करते हुए कहता है—

अथवा—आम्नायशब्देन मनुरुच्यते।

अर्थात् आम्नाय शब्द से मनुस्मृति का भी ग्रहण हो सकता है। जब आम्नाय पद किसी धर्मशास्त्री की दृष्टि में अपने मूल=मनुस्मृति के लिये उपचार से प्रयुक्त हो सकता है, तो याज्ञिकों की दृष्टि में यज्ञक्रियाप्रधान ग्रन्थों के लिये उपचार से वेद शब्द प्रयुक्त होगया, इस में अणुमात्र भी आश्चर्य नहीं।

(३) ब्राह्मण और वेदार्थ।

निरुक्त और निघण्टु का आधार ब्राह्मण हैं।

निरुक्त सब से पुराना ग्रन्थ है, जो इस समय मिलता है, और जिस में वेदार्थ का विस्तृत निदर्शन है। 'यह ऋग्वेदीय लोगों के पठितव्य दश ग्रन्थों में से एक है।' दाक्षिणात्य ऋग्वेदाध्यायी इस समय भी इस का पाठ करते हैं। इस निरुक्त से पहले भी ऐसे ही अनेक निरुक्त ग्रन्थ थे, पर वे अब लुप्तप्रायः हैं।* निरुक्त का मूलनिघण्टु है। निरुक्त और निघण्टु दोनों यास्क-प्रणीत हैं।† निघण्टु प्राचीन वैदिक कोषों का नमूना है। इस निघण्टु से पहले और भी अनेकों निघण्टु थे। निरुक्त ७। १३॥ में यास्क स्वयं उनका स्वरूप कथन करता है—

अथोताभिधानैः संयुज्य हविश्चोदयति—इन्द्राय वृत्रघ्ने। इन्द्राय वृत्रतुरे। इन्द्रायाँहोमुचे, इति। तान्यप्येके समाम्नन्ति। भूयांसि तु समाम्नानात्। यत्तु संविज्ञानभूतं स्यात् प्राधान्यस्तुति तत् समाम्ने।

अर्थात्—'कई एक आचार्य ऐसा समाम्नाय करते हैं। जो प्रधान स्तुतिवाला (अग्नि आदि) देवता-नाम है, उसका मैं समाम्नाय करता हूं।'

कौत्सव्य प्रणीत निरुक्त-निघण्टु भी जो आथर्वण परिशिष्टों में से एक है, पुराने निघण्टु-ग्रन्थों का ही नमूना मात्र है।‡

यास्कीय निघण्टु और इस आथर्वण निघण्टु के देखने से निश्चय होजाता है कि प्राचीन निघण्टु-ग्रन्थों का आधार प्रधानतया ब्राह्मण ही थे। निघण्टु-पठित अर्थों और ब्राह्मणान्तर्गत अर्थों की निम्नलिखित तुलनात्मक सूची से यह बात बहुत ही स्पष्ट होजायगी।

पता	निघण्टु		ब्राह्मण	पता
१।१४॥	अत्यः	अश्व	अत्योऽसि(अश्व)	तै० ३।८।९।१॥
३।१७॥	अध्वरः	यज्ञ	अध्वरो वै यज्ञः	श० १।४।१।३८॥

* G. Oppert के सूची पत्र II. 510 पर दक्षिण में किसी घर में उपमन्यु कृत निरुक्त का अस्तित्व बताया गया है।

† देखो मेरा लेख, मासिक पत्र ज्योति वैशाख सं० १९७७, लाहौर।

‡ इसका देवनागरी संस्करण आर्ष-ग्रन्थावली, लाहौर में छप चुका है।

पता	निघण्टु		ब्राह्मण	पता
१।१२।।	अन्नम्	उदक	अन्नं वा ऽआपः	श० १३।८।१।९।।
१।१०।।	अभ्रम्	मेघ	अभ्राद् वृष्टिः	श० ५।३।५।१७।।
२। ७।।	अर्कः	अन्न	अन्नमर्कः	श० ०।१।१।४।।
३। ४।।	अस्तम्	गृह	गृहा वाऽस्तम्	श० २।५।२।२९।।
१।१४।।	अर्वा	अश्व	(अश्व त्वं) अर्वाऽसि	ता० १।७।१।।
२।११।।	अदितिः	गौ	अदितिर्हि गौः	श० २।३।४।३४।।
१। १।।	,,	पृथिवी	इयं वै पृथिव्यदितिः	श० १।१।४।५।।
१।११।।	,,	वाक्	वाग्वा अदितिः	श० ६।५।२।२०।।
१।१०।।	अद्रिः	मेघ	गिरिर्वाऽअद्रिः	श० ७।५।२।१८।।
१। ५।।	अभीशवः	रश्मि	अभीशवो वै रश्मयः	श० ५।४।३।१४।।
१।११।।	अनुष्टुप्	वाक्	वाग्वा अनुष्टुप्	श० १।३।२।१६।।
१। ३।।	अमृतम्	हिरण्य	अमृतं वै हिरण्यम्	श० ९।४।४।५।।
२। ७।।	आयुः	अन्न	अन्नमु वाऽआयुः	श० ९।२।३।१६।।
२। ७।।	इषम्	अन्न	अन्नं वा इषम्	कौ० २८।५।।
१। १।।	इडा	पृथिवी	इयं (पृथिवी) वा इडा	कौ० ९।२।।
२। ७।।	इडा	अन्न	अन्नं वा इला	ऐ० ८।२६।।
२।११।।	इडा	गौ	गौर्वाऽइडा	श० ३।३।१।४।।
३।३०।।	उर्वी	पृथिवी	यथेयं पृथिव्युर्वी	श० २।१।४।२८।।
२। ७।।	ऊर्क्	अन्न	अन्नं वा ऊर्गुदुम्बरः	श० ३।२।१।३३।।
१।११।।	ऋक्	वाक्	वागेवऽर्चः	श० ४।६।७।१।।
३।१०।।	ऋतम्	सत्य	सत्यं वाऽऋतम्	श० ७।३।१।२३।।
२। ९।।	ओजः	बल	ओजः सहः	कौ० ३।५।।
३। ६।।	कम्	सुख	सुखं वै कम्	गो० उ० ६।३।।
१। ७।।	क्षपा	रात्रि	रात्रयः क्षपाः	ऐ० १।१३।।
१। १।।	क्षामा	पृथिवी	इमे वै द्यावापृथिवी द्यावाक्षामा	श० ६।७।२।३।।
३। ३।।	गभीरः	महान्	गभीरमिमं महान्तामिमं	श० २।९।४।५।।
१।११।।	गीः	वाक्	वाग्वै गीः	श० ७।२।२।५।।
१। २।।	चन्द्रम्	हिरण्य	चन्द्रं९ हिरण्यम्	तै० १।७।६।३।।
२। ३।।	जन्तवः	मनुष्य	मनुष्या वै जन्तवः	श० ७।३।१।३२।।

पता	निघण्टु	ब्राह्मण	पता
३। ४॥ दुर्याः	गृह	गृहा वै दुर्याः	श० १।१।२।२२॥
१।११॥ धिषणा	वाक्	वाग्वै धिषणा	श० ६।५।४।५॥
१।११॥ धेनुः	वाक्	वाग्वै धेनुः	ता० १८।९।२१॥
२। ७॥ नमः	अन्न	अन्नं नमः	श० ६।३।१।१७॥
२। ३॥ नरः	मनुष्य	मनुष्या वै नरः	श० ७।५।२।३९॥
१। १॥ निर्ऋतिः	पृथिवी	इयं (पृथिवी) वै निर्ऋतिः	श० ५।२।३।३॥
२।१०॥ नृम्णम्	धन	नृम्णानि ··· धनानि	श० १४।२।२।३०॥
१।१२॥ पयः	उदक	आपो हि पयः	कौ० ५।४॥
२। ७॥ पयः	अन्न	पय एवान्नम्	श० २।५।१।६॥
१।१२॥ पवित्रम्	उदक	पवित्रं वा ऽआपः	श० १।१।१।१॥
२। ७॥ पितुः	अन्न	अन्नं वै पितुः	श० १।९।२।२०॥
३। १॥ पुरु	बहु	पुरुदस्मः बहुदानः	श० ४।५।२।१२॥
१। १॥ पूषा	पृथिवी	इयं वै पृथिवी पूषा	श० २।५।४।७॥
२।१७॥ पृतना	संग्राम	युधो वै पृतना	श० ५।२।४।१६॥
१। ३॥ पृथिवी	अन्तरिक्ष	इयं (पृथिवी) अन्तरिक्षम्	ऐ० ३।३१॥
२। २॥ प्रजा	अपत्य	प्रजा वै तोकम्	श० ७।५।२।३९॥
		प्रजा वै सूनुः	श० ७।१।१।२७॥
३।१७॥ प्रजापतिः	यज्ञ	यज्ञः प्रजापतिः	श० ११।६।३।९॥
३।२७॥ प्रत्नम्	पुराण	प्रत्न॰··· सनातन॰	श० ६।४।४।१७॥
२।२०॥ परशुः	वज्र	वज्रो वै परशुः	श० ३।६।४।१०॥
३।१७॥ मखः	यज्ञ	यज्ञो वै मखः	तै० ३।२।८।३॥
३। ६॥ मयः	सुख	यद्धि शिवं तन्मयः	तै० २।२।५।५॥
१। ५॥ मरीचिपाः	रश्मि	ये रश्मयस्ते देवा मरीचिपाः	श० ४।१।१।२५॥
१। १॥ मही	पृथिवी	इयं (पृथिवी) एव मही	जै० उ० ३।४।७॥
२। ७॥ रसः	अन्न	रसेनान्नेन	श० ७।२।२।१०॥
१।१२॥ रसः	उदक	रसो वाऽआपः	श० ३।३।३।१८॥
१।१२॥ रेतः	उदक	आपो हि रेतः	ता० ८।७।९॥
३।३०॥ रोदसी	द्यावापृथिवी	द्यावापृथिवी वै रोदसी	ऐ० २।४१॥
२। ७॥ वाजः	अन्न	अन्नं वै वाजः	श० ५।१।४।३॥

पता निघण्टु		ब्राह्मण	पता
२। ९॥ वाजः	बल	वीर्यं वै वाजः	श० ३।३।४।७॥
१।१४॥ वाजी	अश्व	वाजिनो ह्यश्वाः	श० ५।१।४।१५॥
३।१७॥ विष्णुः	यज्ञ	विष्णुर्वै यज्ञः	ऐ० १।१५॥
२। ९॥ शवः	बल	बलं वै शवः	श० ७।३।१।२९॥
१।१२॥ शुक्रम्	उदक	शुक्रा ह्यापः	तै० १।७।६।३॥
१।१२॥ सत्यम्	,,	आपो हि वै सत्यम्	श० ७।४।१।६॥
१।१४॥ सप्तिः	अश्व	(अश्व त्वं) सप्तिरसि	ता० १।७।१॥
१।११॥ सरस्वती	वाक्	वाग्वै सरस्वती	श० २।५।४।६॥
१।१२॥ सर्वम्	उदक	आप एव सर्वम्	गो० पू० ५।१५॥
२। ९॥ सहः	बल	बलं वै सहः	श० ६।६।२।१४॥
१। ६॥ हरितः	दिशा	दिशो वै हरितः	श० २।५।१।५॥

इत्यादि। इस छोटी सी भूमिका में विस्तरभय से अधिक शब्दों के अर्थों की तुलना नहीं की जा सकती। हमारे कोष को ध्यानपूर्वक देखने से विद्वज्जन स्वयं सारी तुलना कर सकेंगे। हमने इस सूची में अधिकांश प्रमाण शतपथ से ही दिये हैं। कोष की सहायता से शेष ब्राह्मणों में से भी बहुत से ऐसे ही वाक्य मिल जायेंगे। यदि सैंकड़ों ब्राह्मण ग्रन्थ लुप्त न होजाते तो आज भी निघण्टु के प्रायः सारे ही नाम उन में से निकाले जा सकते थे। यही अवस्था निरुक्त की है। निरुक्त में तो यास्क स्वयं

इति ब्राह्मणम्। इति ह विज्ञायते।

कह कर अपने अर्थ की पुष्टि ब्राह्मण वाक्यों से करता है। इस लिये हम निश्चयात्मक रूप से कह सकते हैं कि यास्कीय निरुक्त, निघण्टु का प्रधानतया मूल ब्राह्मण ग्रन्थ ही हैं।

इस कोष में अनेक पदों के वे अर्थ भी हैं, जो कि इस निघण्टु या निरुक्त में नहीं मिलते। हो सकता है, उन्हें और निघण्टुकारों ने एकत्र किया हो। फिर भी जैसा यास्क ने कहा है—

भूयांसि तु समाम्नानात् ७।१३॥

उन प्राचीनों से भी कई रह गये हों। हमारे इस कोष में उन सब के ही संग्रह का प्रयत्न किया गया है।

ब्राह्मण-प्रदर्शित इन वैदिक शब्दों के अर्थों का क्या आधार है।

ब्राह्मण ग्रन्थों ने इन में से बहुत से अर्थ साक्षात् मन्त्रों से लिये हैं। समाधिस्थ ऋषियों के निष्कलंक मनों में बहुत सा अर्थ परमात्मा की कृपा से भी प्राप्त हुआ है। वह भी इन्हीं ब्राह्मणों में बन्द है। ऋषि-प्रोक्त वा परतः प्रमाण होते हुए भी वेदार्थ का परम तत्व इन्हीं ब्राह्मणों से जाना जा सकता है। ऐसा ही आर्यावर्त के सब विद्वान् मानते आये हैं। हां, नवीन पाश्चात्य लेखक इस के विपरीत कहते हैं। हम पहले उन्हीं की प्रतिज्ञा का निराकरण करेंगे। बोडन का वयोवृद्ध संस्कृताध्यापक आर्थर एनथानि मैकडानल लिखता है*—

The investigation of the Brahmans has shown that, being mainly concerned with speculatian on the nature of sacrifice, they were already far removed from the spirit of the composers of the Vedic hymns, and contain very little capable of throwing light on the original sense of those hymns. They only give occasional explanations of the sense of the Mantras and these explanations are often very fanciful. How completely they can misunderstand the meaning intended by the seers appears sufficiently from the following two examples. The Satapatha Brahmana (vii. 4, 1, 9) in referring to the refrain of Rv. X. 121.

कस्मै देवाय हविषा विधेम

'to what god should we offer worship with oblation. says 'Ka is Prajapati : to him let us offer oblation. Another Brahmana passage, in explaining the epithet 'golden-handed' (हिरण्य-पाणि) as applied to the sun, remarks that the sun had lost his hand and had got instead one of gold. Quite apart from the linguistic evidence, such interpretations show that there was already a considerable gap between the period of the Brahmanas and that of the Mantras.

---

* Bhandarkar commemoration Volume Poona 1917.

इस लेख में किसी न किसी प्रकार से जो प्रतिज्ञायें की गई हैं, हम उन्हें पृथक् २ गिनेंगे।

१—पाश्चात्य लेखकों ने ब्राह्मणों में अन्वेषण किया है।

२—ब्राह्मणों का प्रधान विषय यज्ञ=sacrifice के स्वरूप की कल्पना करना है।

३—वैदिक-सूक्तों के कर्ताओं के भाव से ब्राह्मण बहुत परे हटे हुए हैं।

४—वेदों के मूलार्थ पर प्रकाश डालने योग्य सामग्री का ब्राह्मणों में अभाव ही है।

५—ब्राह्मणों में कहीं २ ही मन्त्रों के भाव का व्याख्यान है।

६—यह व्याख्यान प्रायः अत्यन्त काल्पनिक होते हैं।

७—ऋषियों को जो अर्थ अभिप्रेत था, ब्राह्मण उन से सर्वथैव उलटा अर्थ समझते हैं। इस के स्पष्ट करने वाले दो उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(क) **कस्मै देवाय हविषा विधेम।**

इतना ऋचा का भाग ऋग्वेद १०। १२१॥ में वार २ आता है। उस का अर्थ है—

'हम किस देव की हवि से पूजा करें।'

इसका शतपथ ७। ४। १। ९॥ में विचित्र व्याख्यान है, अर्थात् **क** ही **प्रजापति** है, उसे हम अपनी हवि दें।

(ख) एक और ब्राह्मण में **हिरण्यपाणि** सुवर्ण हाथ वाला शब्द आया है। वहां उसे सूर्य पर लगाया गया है, तथा कहा है कि सूर्य का हाथ नष्ट होगया था, उस के स्थान में उसे एक सोने का हाथ मिल गया।

८—भाषा सम्बन्धी साक्ष्य को पृथक् रखकर भी ऐसे व्याख्यान बताते हैं कि ब्राह्मण-काल से मन्त्र-काल का बड़ा अन्तर हो चुका था।

अब अध्यापक मेकडानल के कथन की परीक्षा होती है।

१—मार्टिन हॉग, आफ़रेख़ट, लिण्डनर, वेबर, बर्नेल, अर्टल, ड्यूक गसटर आदि ने ऐतरेय आदि ब्राह्मणों के अच्छे संस्करण निकाले हैं, इस में कोई सन्देह नहीं। इन के लिये हम उनका धन्यवाद करते हैं। परन्तु उन्होंने या शतपथानुवादक एगलिङ्ग वा तैत्तिरीय संहिता अनुवादक बे० कीथ ने ब्राह्मणों में कोई सन्तोषजनक अन्वेषण किया है, ऐसा मानना हास्यास्पद बनना है। आधुनिक कैमिस्टरी का विज्ञान नए

होने पर यदि कोई थोड़ी सी आङ्गल भाषा जानने वाला किसी बृहत् कैमिस्टरी के ग्रन्थ में लैड-चेम्बर-विधि (Lead-chamber-method) से गन्धक के तेजाब के तय्यार होने का वर्णन पढ़े और उस विधि को उस ने कभी देखा सुना न हो। न ही उसने कभी गन्धक वा गन्धकामल देखा हो, तो निःसन्देह वह उस सारे वर्णन को मूर्खों का कथन समझेगा। स्वाभिमान में वह अपनी भूल कदापि स्वीकार न करेगा। ऐसे ही विना यज्ञादि क्रिया के सीखे, और विना भूमण्डलस्थ सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रगण, विद्युत् आकाश, मेघ, वायु, अग्नि, जल आदि सब स्थूल पदार्थों का ज्ञान किये, जो भी अनधिकारी ब्राह्मणों का पाठ करेगा वह इन्हें मूर्ख लीला समझेगा, प्रमत्तगीत कहेगा। जैसा कि मैक्समूलर अपने प्राचीन संस्कृत साहित्य के इतिहास पृ० ३८९ पर लिखता है—

The Brahmanas represent no doubt a most interesting phase in the history of the Indian mind, but judged by themselves, as literary productions, they are most disappointing. No one would have supposed that at so early a period, and in so primitive a state of society, there could have risen up a literature which for pedantry and downright absurdity can hardly be matched anywhere. There is no lack of striking thoughts, of bold expressions, of sound reasoning, and curious traditions in these collections. But these are only like the fragments of a '*torso*' like precious gems set in brass and lead. The general character of these works is marked by shallow and insipid grandiloquence, by priestly conceit, and antiquarion pedantry. It is most important to the historian that he should know how soon the fresh and healthy growth of a nation can be blighted by priestcraft and superstition. It is most important that we should know that nations are liable to these epidemics in their youth as well as in their dotage. These works deserve to be studied as the physician studies the twaddle of idiots, and the raving of madmen *

* मैक्स मूलर यहां वैसी भाषा का ही प्रकाश करता है, जैसी मतान्ध व्यक्ति वर्ता करते हैं।

हम यह नहीं कहते कि हम ब्राह्मणों के समस्त अर्थों को समझ गये हैं, परन्तु हम यह जानते हैं कि जब आर्यावर्तीय सायण प्रभृति भी इन के अर्थ को पूरा नहीं समझे, तो पाश्चात्य लोग भला क्या समझ होंगे। ब्राह्मणों में स्थल स्थल पर रूपकालंकार की कथायें भरी पड़ी हैं। देखो शतपथ १।७।४॥ में कहा है—

प्रजापतिं ह वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ। दिवं वोषसं वा मिथुन्येनया स्यामिति ताᳬसम्बभूव ॥१॥......

स वै यज्ञ एव प्रजापतिः ॥४॥ *

इस प्रकरण में प्रजापति नाम सूर्य का है। ब्राह्मणग्रन्थ स्वयं कहते हैं—

यो ह्येव सविता स प्रजापतिः। श० १२।३।५।१॥

प्रजापतिर्वै सविता। ता० १६।५।१७॥

प्रजापतिर्वै सुपर्णो गरुत्मानेष सविता। श० १०।२।७।४॥

अर्थात् सविता = सूर्य = आदित्य ही प्रजापति है।

यह प्रजापति ही यज्ञ है। यह बात पूर्वोक्त चतुर्थ कण्डिका में कही है। अन्यत्र भी ब्राह्मणग्रन्थ ऐसा ही कहते हैं। देखो—

यज्ञ उ वै प्रजापतिः। कौ० १०।१॥

प्रजापतिर्वै यज्ञः। तै० १।३।१०।१०॥

अर्थात् यज्ञ प्रजापति है। यह यज्ञ ही सूर्य है—

यज्ञ एव सविता। गो० पू० १।३३॥

स यः स यज्ञोऽसौ स आदित्यः। श० १४।१।१।६॥

सविता को यज्ञ इस लिये कहा है कि इसी विष्णु सूर्य में हमारे सौर जगत् के सारे अग्निहोत्रादि महाकार्य हो रहे हैं।

इसी सविता = प्रजापति की दिव् = प्रकाश और उषा कन्या समान हैं। यही सविता प्रजापति अन्य देवों का जनक है। क्योंकि—

सविता वै देवानां प्रसविता†। श० १।१।२।६॥

कहा है, कि सविता परमात्मा और यह सूर्य देवों का उत्पादक† है। ऐसा

---

* तुलना करो ऐ० ३।३॥ तां० ८।२।१०॥

† एगलिङ्ग इस का अर्थ Impeller करता है। यह युक्त अर्थ नहीं।

हां तैत्तिरीय ब्राह्मण २।२।९।५-८॥ में कहा है—

सः (प्रजापतिः) मुखाद्देवानसृजत ।

अर्थात् उस प्रजापति = परमात्मा ने मुख = मुख्य आग्नेय परमाणुओं* से देवों को उत्पन्न किया। और आधिदैविक प्रकरण में इसी का यह अर्थ हैं कि सूर्य के ही प्रभाव से सब आग्नेय परमाणु एकत्र हुए और भिन्न २ देवों के रूप में प्रकट हुए।

निरुक्त ३।८॥ में भी किसी प्राचीन ब्राह्मण का पाठ इसी अभिप्राय से धरा गया है—

'सोर्देवानसृजत तत् सुराणां सुरत्वम् । असोरसुरानसृजत तदसुराणामसुरत्वम्' इति विज्ञायते ।

अर्थात् प्रकाशमय परमाणुओं से देवों को रचा और अन्धकार युक्त परमाणुओं से असुरों को रचा।

काठक संहिता ९।११॥ में भी ऐसा ही कहा है—

अह्ना देवानसृजत ते शुक्लं वर्णमपुष्यन् । रात्र्याऽसुराँस्ते कृष्णा अभवन् ।

---

* शतपथ ११।१।६।७॥ में कहा है—

सः (प्रजापतिः) आस्येनैव देवानसृजत ।

यहां **आस्येन** तृतीयान्त प्रयोग है। एगालिङ्ग इसका अनुवाद करता है—

By (the breath of) his mouth he created the gods.

यह अनुवाद ठीक नहीं। प्राणों से देवों की उत्पत्ति हमारे देखने में कहीं नहीं आई। प्रत्युत दो चार स्थलों में प्राण स्वयं देव तो कहे गये हैं—

तस्मात् प्राणा देवाः । श० ७।५।१।२१॥

अन्यत्र प्राण असुर ही हैं। प्राणों की उत्पत्ति प्रायः तम के परमाणुओं से कही गई है। यहां हेत्वर्थ में तृतीया का यही अभिप्राय है कि प्रकरणाभिप्रेत देवों की उत्पत्ति में सूक्ष्म अग्नि के परमाणु ही मुख्य कारण हैं। तृतीया के अर्थ के साथ २ पञ्चमी का अर्थ भी ले लेना चाहिये, क्योंकि—

स (प्रजापतिः) अग्निमेव मुखाज्जनयां चक्रे । श० २।२।४।१॥

ऐसे सब स्थलों में पञ्चमी से भी अभिप्राय स्पष्ट होता है।

अर्थ—उस प्रजापति = परमात्मा ने इस भौतिक अग्नि को मुख्य = प्रकाशमय परमाणुओं से बनाया।

समान पिता होने से ये दिव् और उषा इन देवों की बहन-समान हैं। इसी सारे रहस्य का अन्य गम्भीर आशयों के साथ इन शतपथीय कण्डिकाओं में रूपकालङ्कार* के रूप में वर्णन है।

इस सारी कथा का विशेष वर्णन ऋषि दयानन्द प्रणीत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य विषय में देखो। भट्ट कुमारिलस्वामिकृत तन्त्रवार्तिक १।३।७॥ में भी ऐसा ही भाव लिखा है—

प्रजापतिस्तावत् प्रजापालनाधिकारादादित्य एवोच्यते। स चारुणोदयवेलायामुपसमुद्यन्नभ्यैत्। सा तदागमनादेवोपजायत इति तद्दुहितृत्वेन व्यपदिश्यते। तस्यां चारुणकिरणाख्यबीजनिक्षेपात् स्त्रीपुरुषयोगवदुपचारः।†

---

*रूपकालङ्कार से जड़ जगत् की जो कथाएं वेद और ब्राह्मणादि ग्रन्थों में वर्णन की गई हैं, उन के सब अंश आर्यजनों में अनुकरणीय नहीं हैं। ये रूपकालङ्कार तो प्रायः आधिदैविक तथ्यों को बताने के लिये ही कहे गये हैं। जैसे देखो शतपथ १।३।१।१५॥ आदि में कहा है—

इयं पृथिव्यदितिः सेयं देवानां पत्नी।

कि यह पृथिवी देवों की पत्नी है। तो क्या अनेक मनुष्यों की एक पत्नी हो सकती है। नहीं, नहीं। ब्राह्मणों में स्वयं कहा है—

नैकस्यै बहवः सहपतयः। ऐ० ३। २३॥

न हैकस्या बहवः सहपतयः। गो० उ० ३। २०॥

एक स्त्री के एक काल में अनेक पति नहीं होते। (भिन्न कालों में नियोग के रूप से होसकते हैं।) ऐसे ही प्रजापति का अपनी कन्या के साथ सम्बन्ध जड़ जगत् की वार्ता है, आर्यों की सभ्यता का चिह्न नहीं।

†भट्ट कुमारिलस्वामि के ऐसे यथार्थ अर्थ पर मैक्समूलर विस्मित होता है। वह अपने प्राचीन संस्कृत साहित्य के इतिहास पृ० ५२९ पर कहता है—

Sometimes, however, we feel surprised at the precision with which even such modern writers as Kumarila are able to read the true meaning of their mythology.

मैक्समूलर को यह ज्ञात नहीं कि इस कथा का वास्तविक अर्थ शतपथ ब्राह्मण में ही अन्यत्र खोल दिया गया है—

अब इस प्रकरण के सायणादि एतद्देशीय तथा एगलिङ्गादि विदेशियों के भाष्य वा अनुवाद देखो। किसी स्थान में भी इस **रूपकालंकार** को **यज्ञ**=सविता म घटा कर स्पष्ट नहीं किया गया। बिना मर्म वा भाव को समझे समझाये अनुवाद मात्र कर देना पर्याप्त नहीं। और जिस अनुवाद से समझ कुछ न आये, उस में अशुद्धियां भी तो कम नहीं हो सकतीं। अतः हमारा यही कहना है कि ब्राह्मणों का अन्वेषण तो अभी आरम्भ भी नहीं हुआ। पाश्चात्य जो यह समझते हैं कि वे इन में अन्वेषण कर चुके हैं, वे भूल से ही ऐसा कहते हैं। यदि सब निष्पक्ष होकर हमारे लेख पर ध्यान देंगे, तो वे स्वयं भी ऐसा मान जायेंगे।

जिस प्रकार पूर्वोक्त शातपथीय प्रकरण की चतुर्थ कण्डिका में **प्रजापति** का अर्थ खोला गया है, वैसे ही अन्यत्र भी भिन्न २ प्रकरणों के अन्त में कुछ सङ्केत आते हैं। जब तक उन सङ्केतों का पूर्व स्थलों में आकर्षण करके अर्थ न घटाया जावेगा, तब तक अर्थ समझना असम्भव होगा। इस लिये सब पक्षपात छोड़ कर पहले इन ग्रन्थों का अर्थ समझना चाहिये। तदनन्तर कोई सम्मति निर्धारित होसकती है। और जो पश्चिमीय लोग वा सायणानुयायी अभिमान वा भूल से समझ बैठे हैं, कि वे अर्थ जान चुके हैं, उन्हें यह हठ छोड़ना ही पड़ेगा।

२—ब्राह्मणों का प्रधान विषय यज्ञ के स्वरूप की कल्पना करना है।

२—आर्य लोग यज्ञ को sacrifice नहीं समझते*।

यह तो इस शब्द का पौराणिक काल का अत्यन्त संकुचित और भ्रान्तिप्रद अर्थ है। इसे ही पाश्चात्यों ने स्वीकार किया है। अतः इन शब्दों के ऐसे पूर्वकल्पित (preconceived) अर्थों को लेकर जब वे ब्राह्मणा का पाठ करते हैं, तो उन्हें ब्राह्मण समझ ही नहीं आ सकते। किसी ग्रन्थ का क्षुद्र शब्दार्थ वे भले ही करलें, पर समझना उन से बहुत दूर है। देखो आङ्गलभाषा में एक प्रसिद्ध वाक्य है—

स (प्रजापतिः=संवत्सरः=वायुः) आदित्येन दिवं मिथुनं समभवत्। ६। १। २। ४॥

ग्रिफिथ का हठ है कि वह अपने ऋग्वेदानुवाद में इस कथा सम्बन्धी मन्त्रों का व्याख्यान उचित स्थल में न करके, उन्हें अश्लील समझ परिशिष्ट में लैटिन भाषा में उनका अनुवाद करता है। ग्रिफिथ का कथन निरर्थक ही है कि—

The whole passage is difficult and obscure.

* देखो गुरुदत्त लेखावली पृ० ८८। (Works of Pt. Guru Datta.)

"I want to answer the call of nature."

इस का शब्दार्थ होगा—"मैं प्रकृति के बुलावे का उत्तर देना चाहता हूं।" परन्तु सब जानते हैं कि शब्दार्थ होते हुए भी यह अनुवाद भाव से बहुत दूर है। ऐसे ही अनुवाद इन पाश्चात्यों ने वेद, ब्राह्मणादि ग्रन्थों के किये हैं। तदनुसार ही ये यज्ञ को sacrifice समझ बैठे हैं।

यज्ञ शब्द के अर्थ बड़े विस्तृत हैं। इस कोष में यज्ञ शब्द देखो। उन विस्तृत अर्थों में जो यज्ञ का स्वरूप है, उस का वर्णन करते हुए ही ब्राह्मणों में अद्भुत विज्ञान और सृष्टि-चक्र का वर्णन किया है। उस को न समझ कर ही पाश्चात्य लोग ब्राह्मणों में अपनी पूर्वकल्पित (preconceived) sacrifice ढूंढते रहते हैं।

३—वैदिक सूक्तों के कर्ताओं के भाव से ब्राह्मण बहुत परे हटे हुए हैं।

प्रथम तो हम यह कहेंगे, कि वैदिक सूक्तों के कर्ता नहीं हैं। जो इन के कर्ता मानते हैं, उन की युक्तियों का खण्डन हम अपने **ऋग्वेद पर व्याख्यान** पृ० ४१—७६ पर कर चुके हैं। पूर्वपक्षियों ने हमारे लेख पर कोई आपत्ति नहीं उठाई। इस लिये अभी इस पर और न लिखेंगे। हां, दूसरे पक्ष का उत्तर अवश्य देंगे। ब्राह्मणों का भाव मन्त्रों से बहुत परे हटा हुआ नहीं है, प्रत्युत ब्राह्मण तो मन्त्रों के साक्षात् अर्थ का दर्शन कराते हैं।

कल्पविद्या और नित्य शब्दार्थसम्बन्ध विद्या से अपरिचित होने के कारण पाश्चात्योंके मनमें भय पड़ गया है कि एक शब्द का एक ही अर्थ सर्वत्र लेना चाहिये। अर्थ बने या न बने, वे उसी एक अर्थ से सर्वत्र काम चलाना चाहते हैं। ब्राह्मणों में एक २ शब्द के अनेक अर्थ देखकर वे घबरा जाते हैं। यह सत्य है कि—

बहुभक्तिवादीनि हि ब्राह्मणानि। निरुक्त ७। २॥

'ब्राह्मणग्रन्थ गुणों की सदृशता का बहुविभाग करके अनेक शब्दों को पर्याय बनाते हैं,' पर स्मरण रहे कि इस गुणों की सदृशता का विभाग किये बिना कभी काम चल ही नहीं सकता। वेदभाषा तो क्या, संसारस्थ लौकिक भाषाओं में भी बहुधा गुणों की सदृशता का विभाग करने से ही पर्याय बने हैं। वेद में स्वयं विशेष्य विशेषण की रीति से इस गुण विभाग के करने का प्रकार आरम्भ किया गया है। देखो—

त्वं महीमवनिम्। ऋ० ४।१९।६॥

उर्वी पृथ्वी। ऋ० १।१८५।७॥

उर्वी पृथ्वी । ऋ० ६।७।१॥
उर्वी पृथ्वीम् । ऋ० ७।३८।२॥
पृथिवि भूतमुर्वी । ऋ० ६।६८।४॥
उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां । ऋ० ५।८५।४॥
भूमिं पृथिवीम् । अ० १२।१।७॥
यथेयं पृथिवी मही दाधार । ऋ० १०।६०।९॥
पृथिवीं मातरं महीम् । तै०ब्रा० २।४।६।८॥
शुक्राय भानवे । ऋ० ७।४।१॥
सूर्यस्य हरितः । ऋ० ५।२९।५॥
इन्द्रं मघवानमेनं । ऋ० ७।२८।५॥
तोकाय तनयाय । ऋ० ६।१।१२॥
अद्भिरर्कैः । ऋ० ६।४।६॥
आ मही रोदसी पृण । ऋ० ९।४१।५॥
मही अपारे रजसी । ऋ० ९।६८।३॥
रोदसी मही । ऋ० ९।१८।५॥
बृहती मही । ऋ० ९।५।६॥
अत्यं न वाजिनम् । ऋ० १।१२९।२॥
अश्वं न वाजिनम् । ऋ० ७।७।१॥
अत्यं न सप्तिं । ,, ३।२२।१॥
तरसे बलाय । ,, ३।१८।३॥

निघण्टु १।११॥ में वाक् के ५७ नाम आये हैं। उन में **धारा, मन्द्रा, सरस्वती, जिह्वा, ऋक्, अनुष्टुप्** आदि नाम पढ़े गये हैं। इन में से कुछ ब्राह्मणों में भी इसी अर्थ में मिलते हैं। पहले चार नाम तो विशेष्य विशेषण भाव से स्पष्ट ही वेद में इन अर्थों में मिल जाते हैं। यथा—

मन्द्रया सोम धारया । ऋ० ९।६।१॥
अत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुपस्थुः । ,, ७।१८।३॥

मन्द्रया देव जिह्वया। „ ५।२६।१।।

यं याचाम्यहं वाचा सरस्वत्या। „ ५।७।५।।

अब रहे ऋक् और श्लोकादि शब्द। इनके विषय में मैकडानल महाशय ने भी स्वसंदेह प्रकट किया है। 'भण्डारकर कमेमोरेशन वाल्यूम' वाले अपने लेख में वे लिखते हैं "Thus among the synonyms of vac 'speech' appear such words as sloka, nivid, rc, gatha, anustubh which denote different kinds of verses or compositions and can never have been employed to express the simple meaning of 'speech.'" अर्थात् यह शब्द रचनाविशेष के लिये आ सकते हैं, साधारण वाक् के लिये नहीं। अब हम देखेंगे कि वेद वा शाखा ग्रन्थों में, निघण्टु वा ब्राह्मणों में आये हुए ये शब्द इन अर्थों में मिलते हैं या नहीं।

ऋचा गिरा मरुतो देव्यदिते। ऋ० ८।२७।५।।

ऋचं वाचं प्रपद्ये। य० ३६।१।।

ऋचो गिरः सुष्टुतयः। ऋ० ९१।१२।।

ऋचं गाथां ब्रह्म परं जिगांसन्। कौ० सू० १३५७९

इन प्रमाणों में ऋक् शब्द वाक् के विशेषणों में आया है। अतः इसका वागर्थ होना सन्देह से परे है।

श्लोक शब्द रचना-विशेष के लिये तो आता है, पर वाणी के लिये भी ऋग्वेद में वर्ता गया है, इस में कोई सन्देह नहीं। देखो यजुर्वेद में एक मन्त्र है—

चक्षुर्मे······विभाहि। श्रोत्रम्मे श्लोकय। १४। ८।।

अर्थात्—मेरे नेत्रों को प्रकाशित और कर्ण को श्रवणयुक्त कर।

यहां **श्लोकय** क्रिया पद स्पष्ट करता है, कि **श्लोक** शब्द रचनाविशेष के लिये ही नहीं आता, प्रत्युत साधारण वाणी = शब्द = श्रवण के सम्बन्ध में भी आता है।

पुनः ऋग्वेदीय मन्त्र भी यही स्पष्ट करते हैं—

ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णाः।४।२३।९।।

अर्थात्—सत्य की वाणी बधिर कानों का नाश करती है।

मिमीहि श्लोकमास्ये।१।३८।१४।।

**प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः।
यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः॥
१०। ९४। १॥**

इस अन्तिम मन्त्र में तो **श्लोक** और **घोष** को विशेष्य विशेषण बना कर सारा विवाद मिटा दिया है। अर्थात् श्लोक, घोष अथवा वाणी का पर्याय है। शेष शब्द भी वेद में ही वाणी के अर्थों में मिल जाते हैं।

हमारे इस लेख से यह न समझना चाहिये कि **मन्द्रा, धारा, जिह्वा, सरस्वती**, और **ऋगादि** शब्द और अर्थों में नहीं आ सकते। वेदों में शब्दों के यौगिक होने से प्रकरणानुकूल ही अर्थ होता है। वह अर्थ मूलतः धातु सम्बन्ध से एक वा अनेक प्रकार का है। पर उन सब में वह योगरूढ बनते समय प्रकरणवश कुछ ही अर्थों में रह गया है। वे सब अर्थ भाष्यकर्त्ता के ध्यान में रहने चाहियें। जो जहां संगत हो वह उसे वहीं लगावे।

हमारे पूर्वोक्त कथन पर पाश्चात्य लोग कई तर्क करेंगे। अतः उन के सब तर्कों के उत्तर के लिये हम एक ऐसे शब्द पर विचार करना चाहते हैं। जिस से सारे ऐसे तर्कों का अन्त हो जावे। और वह विचार यह भी सिद्ध कर दें कि ब्राह्मणार्थ वेद का यथार्थ अर्थ है वह वेद से बहुत परे हटा हुआ नहीं, ऐसा शब्द **अध्वर** है।

निघण्टु ३।१७॥ में **अध्वर** को **यज्ञ** का पर्याय कहा गया है। शतपथादि ब्राह्मणों में भी बहुधा ऐसा कथन मिलता है। देखो इस कोष में अध्वर शब्द। ब्राह्मणों ने क्यों यह पर्याय बनाया, इसका कारण वेद के अन्दर ही मिलता है। ऋग्वेद में आया है—

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।१।१।४॥

अर्थात्—हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् जिस हिंसादि दोष रहित यज्ञ को आप सर्वत्र सर्वोपरि होकर विराजते हो।

यहां **अध्वर** शब्द **यज्ञ** का विशेषण है। विशेषण होने से यही शब्द अन्यत्र यज्ञवाची बन गया है।

प्रश्न—क्या सारे ही विशेषण पर्याय बन जाते है।

उत्तर—नहीं। जिन विशेष्य, विशेषणों के गुण की विशेष समानता होजावे, वे ही पर्याय बनते हैं।

अब देखो पाश्चात्य लोग इसी बात से भयभीत होकर इस मन्त्र के अर्थ में कैसी कल्पना करते हैं।

१—हर्मन ओल्डनबर्ग S. B. E. vol. XLVI, Hymns to Agni, पृ० १ पर लिखता है—

Agni, whatever sacrifice and worship[1] thou encompassest on every side,

Note 1. 'Worship' is a very inadequate translation of अध्वर, which is nearly a synonym of यज्ञ.........Prof. Max Muller writes: 'I accept the native explanation अ-ध्वर, without a flaw, perfect whole, holy.'

२—ग्रिफिथ अपने वेदानुवाद में लिखता है—

Agni, the perfect sacrifice which thou encompassest about.

३—आर्थर एनथनि मेकडानल अपनी Vedic Reader पृ० ६ पर लिखता है—

O Agni, the worship and sacrifice that thou encompassest on every side, यज्ञम् अध्वरम्—again coordination with च; the former has a wider sense—worship (prayer and offering); the latter—sacrificial act.

यहां ओल्डनबर्ग और प्रायः उसी की प्रतिध्वनि करने वाला मेकडानल च का अध्याहार करते हैं। वे दोनों इस स्थान में अध्वर और यज्ञ को विशेष्य विशेषण नहीं मानते।

ग्रिफिथ महाशय भारत में रहे। वे काशीस्थ पण्डितों से सहायता भी लेते थे। इसी लिये उन्हें पाश्चात्य पद्धति सर्वत्र रुचिकर नहीं लगी। वे अध्वर को यहां विशेषण ही मानते हैं। मैक्समूलरवत् वे इसका अर्थ perfect = पूर्ण करते हैं।

ग्रिफिथ महाशय के सम्बन्ध में हम इतना ही कहेंगे कि जैसे इस अध्वर विशेषण को अन्य स्थलों* में वे यज्ञवाची ही मान कर अर्थ करते हैं, वैसे यदि अन्य विशेष्य विशेषणों में से प्रकरणानुकूल कुछ विशेषणों को उन के विशेष्यों का पर्याय ही मान लेते, तो इस में क्या आपत्ति थी। यदि हमारी बात जो सर्वथैव युक्तियुक्त है

* ऋ० १।१।८॥ १।१४।२१॥ इत्यादि।

स्वीकार की जावें, तो ब्राह्मणान्तर्गत वेदार्थ की कितनी सत्यता प्रकाशित होती है। देखो निम्नलिखित स्थल—

अश्मानं चित्स्वर्यं१ पर्वतं गिरिम्। ऋ० ५।५६।४॥

मैक्समूलर*—the rocky mountain (cloud)

ग्रिफिथ—the rocky mountain.

पर्वतो गिरिः। ऋ० १।३७।७॥

मैक्समूलर—the gnarled cloud,

यदद्रयः पर्वताः। ऋ० १०।९४।१॥

शतपथ में कहा है—

गिरिर्वा अद्रिः।७।५।२।१८॥

तथा ऋग्वेद में कहा है—

वराहं तिरो अद्रिमस्ता॥ १।६१।७॥

ग्रिफिथ—....the wild boar, shooting through the mountain.

अतः निघण्टु १।१०॥ में भी कहा है—

अद्रिः...। पर्वतः†। गिरिः।...वराहः।...इति मेघनामानि।

इस लिये इनको पर्याय मानने में ग्रिफिथ को आपत्ति न माननी चाहिये थी। तथा यदि ऋग्वेद में—

इन्द्रेण वायुना। १। १४। १०॥

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित्परि पिच्यते।९।२७।२॥

ऐसे मन्त्र आजावें, जिनमें निश्चय ही **इन्द्र** को **वायु** का विशेषण बनाया गया है, तो कई स्थलों म **इन्द्र** का अर्थ **वायु** भी होसकता है। ब्राह्मण में भी यही कहा है—

यो वै वायुः स इन्द्रो य इन्द्रः स वायुः। श० ४।१।३।१९॥

---

* S. B. E. वैदिक हिम्स पृ० ३३७।

† यदि मैकडानल अपनी Vedic Reader १।८५।१०॥ में **पर्वतम्** का मूल में ही mountain की अपेक्षा cloud—मेघ अर्थ करता और टिप्पण में cloud mountain लिखने का कष्ट न उठाता, तो उसका अनुवाद, इस अंश में युक्त होजाता।

अयं वा इन्द्रो यो ऽयं पवते। श० १४।२।२।६॥

अब रहे ओल्डनबर्ग और मैकडानल। ये दोनों परस्पर पूर्ण सहमत नहीं। ओल्डनबर्ग यज्ञ का sacrifice और अध्वर का worship अर्थ करता है। इस के विपरीत मैकडानल यज्ञ का worship और अध्वर का sacrifice अर्थ करता है। खिन्नमना ओल्डनबर्ग धीमी स्वर से इन दोनों को पर्याय भी मानता है। यदि वह पर्याय न मानता, तो भारी आपत्ति से बच भी न सकता। इसी लिये आगे चल कर वह अर्थ पलटता है।

सत्यधर्माणमध्वरे। ऋ० १।१२।७॥

whose ordinances for the sacrifice are true.

अग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति। ऋ० १।१२८।४॥

Agni watches sacrifice and service.*

यज्ञानामध्वरश्रियम्। ऋ० १।४४।३॥

the beautifier† of sacrifices.

अब रहे, हमारे पूर्वपक्षी मैकडानल महाशय। ये श्रीमान् **यज्ञ** का worship और **अध्वर** का sacrifice अर्थ मानते हैं। पर इन का भी इस से काम नहीं चला। देखो

यज्ञस्य देवमृत्विजाम्। १।१।१॥

the divine ministrant of the sacrifice.

यज्ञैः विधेम। ऋ० २। ३५। १२॥

we offer worship with sacrifices.

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा। ऋ० ८। ३८। १॥

ye two (Indra–Agni) are ministrants of the sacrifice.‡

इन मन्त्रों में इन्हें यज्ञ का sacrifice ही अर्थ मानना पड़ा।

अब यदि ब्राह्मण ने

अध्वरो वै यज्ञः। श० १। २। ४। ५॥

---

* यह अनुवाद भावशून्य है।

† **अध्वरश्रियम्**, द्वितीयान्तपद है। क्या इसका यह अर्थ पाश्चात्यों की शोभा बढ़ाता है।

‡ यह मन्त्रभाग मैकडानल ने ऋ० १। १। १॥ के टिप्पण में उद्धृत किया है।

कहा, तो ब्राह्मण तो स्वयं वेद के अनुकूल और समीप हैं, न कि दूर ।

बात वस्तुतः यह है कि वेदों के शब्द यौगिक वा योगरूढ हैं । इसीलिये विशेष्य, विशेषण की रीति से विशेषण धात्वर्थ मात्र ही देता है । वही विशेषण दूसरे स्थान पर स्वयं नाम अर्थात् योगरूढ बन जाता है । ब्राह्मणों में इसी अभिप्राय से वैदिक शब्दों के अर्थ कहे हैं । अनित्येतिहासप्रिय पाश्चात्यों को यह अच्छा नहीं लगता, अतः उन्होंने विना ब्राह्मणों के समझे उन्हें वेदार्थ से परे हटा हुआ कहा है । उपनिषद् में यथार्थ कहा है—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च । मुण्डक १ । ७ ॥

पहले पाश्चात्यों ने दो, अढ़ाई सहस्र वर्ष पुरातन भाषाओं के अधूरे भाषा-विज्ञान को बना लिया, फिर उसे लाखों वर्ष पुरानी ब्राह्मण-भाषा वा नित्य वेद-भाषा से समता में रख कर सब को एक संग तोला । जब उनका स्वप्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ, तो स्वयं ही ब्राह्मणादि ग्रन्थों को स्वल्प मूल्यवान् कह दिया । अहो ! आश्चर्य इस निराधार कल्पना पर । आप ही एक सिद्धान्त बनाया और स्वयं उसे सत्य मान लिया । फिर और सब कुछ तो अशुद्ध होना ही था ।

४—वेदों के मूलार्थ पर प्रकाश डालने योग्य सामग्री का ब्राह्मणों में अभाव ही है ।

५—ब्राह्मणों में कहीं २ ही मन्त्रों के भाव का व्याख्यान है ।

६—यह व्याख्यान प्रायः अत्यन्त काल्पनिक होते हैं ।

४—पश्चिम में रोथ, वेबर, मक्समूलर, ओल्डनवर्ग, गेलनर, ह्विटने, मेकडानल प्रभृति ने जो अनुवाद वेदार्थ के नाम से छापे हैं, वे वेदार्थ तो है नहीं, उन के अपने मनों की कल्पनाएं अवश्य हैं । जब उनको वेदार्थ का पता ही नहीं लगा, तो वे उसकी तुलना ब्राह्मणान्तर्गत वेदार्थ से कैसे कर सकते हैं ।

अपने 'ऋग्वेद पर व्याख्यान' पृ० ६३ पर हमने सर्वानुक्रमणी के आधार पर तीन ऋषि-कुलों के पांच २ नाम वंश-क्रम से लिखे थे । उन में से एक वंशावली यह है—

ब्रह्मा
|
वसिष्ठ
|
शक्ति
|
पराशर
|
व्यास

इन पांचों में से पहले चार तो अनेक ऋग्वेदीय सूक्तों के द्रष्टा हैं। और अन्तिम व्यास जी सब शाखाओं (चारों वेदों को छोड़ कर) और ब्राह्मणों के प्रधान प्रवक्ता हैं। इन्हीं व्यास जी के समकालीन याज्ञवल्क्य आदि हैं। ये भी ब्राह्मणों के प्रवक्ता हैं। ऐसा हम ब्राह्मणों के **सङ्कलन-काल** प्रकरण में स्पष्ट कर चुके हैं। इस विषय के और प्रमाण निम्नलिखित हैं—

(क) शतपथ ब्राह्मण ११। ६। २। १॥ में कहा है—

जनको ह वै वैदेहो ब्राह्मणैर्धावयद्भिः समाजगाम श्वेतकेतुनारुणेयेन, सोमशुष्मेण सात्ययज्ञिना याज्ञवल्क्येन। तान् होवाच-कथं कथमग्निहोत्रं जुहुथ-इति।

इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि—

(१) जनक।

(२) श्वेतकेतु आरुणेय।

(३) सोमशुष्म सात्ययज्ञि*। और

(४) याज्ञवल्क्य समकालीन थे।

यही परिणाम और प्रकार से भी निकलता है।

(ख) शतपथ ब्राह्मण १४। ९। ३। १५-२०॥ में निम्नलिखित वाक्य से आरम्भ करके एक गुरु-शिष्य परम्परा दी है—

तᳬ हैतमुद्दालक आरुणिः वाजसनेयाय याज्ञवल्क्यायान्तेवासिन उक्त्वोवाच.........

इस परम्परा का चित्र नीचे दिया जाता है—

१—उद्दालक आरुणि (५)
|
२—वाजसनेय याज्ञवल्क्य (४)
|
३—मधुक पैङ्ग्य † (६)

* सम्भवतः इसी सात्ययज्ञि का उल्लेख शतपथ १३। ५। ३। ९॥ में है—

तदु होवाच सात्ययज्ञिः।

† सम्भवतः यही पैङ्ग्य शतपथादि ब्राह्मणों में उद्धृत है। देखो शतपथ १२। ३। १। ८॥ तथा मधुक नाम से इसी का उल्लेख कौ० १९।९॥ में है—

एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह पैङ्ग्यः। यह जानते हुए पैङ्ग्य बोला।

|

४—चूड भागवित्ति (७)

|

५—जानकि आयस्थूण (८)

|

६—सत्यकाम जाबाल (९)

|

७—अनेक अन्तेवासी

संख्या (२) का श्वेतकेतु आरुणेय संख्या (५) के उद्दालक आरुणि का पुत्र है। अतः वह याज्ञवल्क्य का गुरु-पुत्र होने से भ्राता* ही है।

(ग) इस में प्रमाण छान्दोग्य उपनिषद् का है—

श्वेतकेतुर्हारुणेय आस। तꣳ पितोवाच······। ६। १। १॥

उद्दालको हारुणिः श्वेतकेतुं पुत्रमुवाच···। ६। ८। १॥

(घ) जनक की महती सभा में गुरु उद्दालक† भी शिष्य याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछता है—

अथ हैनमुद्दालक आरुणिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्य। श० १४।६।७।१॥

(ङ) संख्या (९) का सत्यकाम जाबाल‡ ही जनक को कुछ उपदेश दे गया था। उसी उपदेश को याज्ञवल्क्य जनक से सुन रहा है—

अब्रवीन्मे सत्यकामो जाबालः। शतपथ १४।६।१०।१४॥

(च) इसी संख्या (९) वाले सत्यकाम जाबाल का एक गुरु—

स (सत्यकामो जाबालः) ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच। छां० उ० ४।४।३॥

---

* याज्ञवल्क्य के समान यह भी संन्यासी होगया था। देखो जाबाल उपनिषद्—

परमहंसानाम संवर्तक-आरुणिःश्वेतकेतुः॥ ६॥

† इसी उद्दालक को चित्र गार्ग्यायणि ने स्वयज्ञार्थ वरा था—

चित्रो ह वै गार्ग्यायणिर्यक्ष्यमाण आरुणिं वव्रे। स ह पुत्रं श्वेतकेतुं प्रजिगाय याजयेति। कौषीतकि उप० १।१॥

इसी का पिता अरुण औपवेशि था। देखो शतपथ १४।९।४।३३॥ तथा—

एतद्ध स्म वा आहारुण औपवेशिः। मै० सं० १।४।१०॥३।६।४॥

‡ इसी का कथन शतपथ १३।५।३।१॥ में किया गया है—

इति ह स्माह सत्यकामो जाबालः।

(१०) हारिद्रुमत गौतम था।

(छ) श्वेतकेतु आरुणेय ही

(११) पञ्चालाधिपति प्रवाहण जैवलि के समीप गया था—

श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानाꣳ समितिमेयाय। तꣳ ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच। छा० उ० ५।३।१॥*

लगभग ऐसा ही पाठ बृहदारण्यक ६।२।१॥ में भी है।*

(ज) यहाँ श्वेतकेतु जब ब्रह्मचारी था, तब—

(१२) अश्विद्वय ने इसकी चिकित्सा की थी। देखो विश्वरूपाचार्य कृत बालक्रीडा टीका ९।३२॥ पर चरकों का पाठ—

तथा च चरकाः पठन्ति—

श्वेतकेतुं हारुणेयं ब्रह्मचर्यं चरन्तं किलासो जग्राह। तमश्विनावूचतुः। 'मधुमांसौ किल ते भैषज्यम्' इति।

(झ) संख्या (११) वाले प्रवाहण जैवलि का,

(१३) शिलक शालावत्य, और

(१४) चैकितायन दाल्भ्य† से परस्पर संवाद हुआ था। क्योंकि बृहदारण्यक में निम्नलिखित वाक्य से आरम्भ कर के उन का संवाद कहा है—

त्रयो होद्गीथे कुशला बभूवुः। शिलकः शालावत्यः। चैकितायनो दाल्भ्यः। प्रवाहणो जैवलिः। ६।२।३॥

(ञ) संख्या (१४) वाले चैकितायन का भ्राता

(१५) बको दाल्भ्य प्रतीत होता है।

(ट) इस बक दाल्भ्य तथा

(१६) ग्लाव मैत्रेय

उल्लेख छान्दोग्य उपनिषद् में है—

अथातः शौव उद्गीथः। तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः स्वाध्यायमुद्वव्राज। १।१२।१॥

(ठ) इन्हीं (१४) और (१५) संख्या वाले दोनों व्यक्तियों का भ्राता

---

* तुलना करो शतपथ १४।९।१।१॥

† इसी व्यक्ति का कथन छा० उ० १।८।१॥ में किया गया है।

(१७) केशी दार्भ्य* प्रतीत होता है।

केशी ह दार्भ्यो दीक्षितो निषसाद। कौ० ७। ४॥

(ड) इसी केशी दार्भ्य को

(१८) केशी सात्यकामिः ने उपदेश दिया था।

(ढ) इसी केशी दार्भ्य ने

(१९) षण्डिक औद्धारि को पराभूत किया था।

(ण) संख्या (५) वाले उद्दालक आरुणि का विचार—

(२०) शौनक स्वैदायन से हुआ था। देखो—

उद्दालको हारुणिः......। हन्तैनं ब्रह्मोद्यमाह्वयामहा इति। केन वीरेणेति। स्वैदायनेनेति। शौनको ह स्वैदायन आस। शतपथ ११।४।१।१॥

(त) इसी उद्दालक आरुणि के समीप—

(२१) शौचेय प्राचीनयोग्य आया था—

शौचेयो ह प्राचीनयोग्यः। उद्दालकमारुणिमाजगाम। श० ११। ५। ३। १॥

(थ) इसी उद्दालक के समीप

(२२) प्रोति कौशाम्बेय कौसुरबिन्दि ने ब्रह्मचर्य वास किया था—

प्रोतिर्ह कौशाम्बेयः। कौसुरुबिन्दिरुद्दालक आरुणौ ब्रह्मचर्यमुवास। श० १२।२।२।१३॥

(द) इस प्रोति कौसुरुबिन्दि का पिता—

(२३) कुसुरुबिन्द।

उद्दालक का पुत्र वा शिष्य ही था। क्योंकि तैत्तिरीय संहिता में निम्नलिखित वाक्य मिलता है—

कुसुरुबिन्द औद्दालकिरकामयत। ७। २। २॥

(ध) इसी उद्दालक आरुणि के समीप—

* दाल्भ्य और दार्भ्य में कोई भेद नहीं है। देशविशेषों में ग्रन्थों के लिखे जाने के कारण ही यह ल् और र् का भेद हो गया है।

(२४) प्राचीनशाल औपमन्यव ।

(२५) सत्ययज्ञ* पौलुषि ।

(२६) इन्द्रद्युम्न भाल्लवेय ।

(२७) जन शार्कराक्ष्य ।

(२८) बुडिल आश्वतराश्वि ।†

ये पांच महाश्रोत्रिय गये थे। क्योंकि छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है—

प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञः पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विः`` ॥१॥ ते ह संवादयां चक्रुरुद्दालको वै भगवन्तोऽयमारुणिः संप्रतीभमात्मानं वैश्वानरमभ्येति ॥२॥५।११॥

(न) इन पांचों को साथ लेकर उद्दालक आरुणि—

(२९)‡ महाराज अश्वपति के समीप गये थे—

तान् होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकेयः संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति । छा० उ० ५।११।४॥

अब कहां तक लिखें । सैकड़ों और नाम भी लिखे जा सकते हैं ।§ ये उनतीस

---

* संख्या (३) वाला सोमशुष्म इसी सत्ययज्ञ का पुत्र प्रतीत होता है ।

† इसी का संख्या (१) वाले जनक से संवाद हुआ था । देखो—

एतद्ध वै तज्जनको वैदेहो बुडिलमाश्वतराश्विमुवाच । श० १४ । ८ । १५ । ११ ॥

‡ इन में से कुछ नाम पारजिटर ने अपने ग्रन्थ A.I.H. Tradition पृ० ३२७ और ३२८ पर दिये हैं ।

§उदाहरणार्थ

(३०) हिरण्मय शकुन (कौ० ७ । ४ ॥)

(३१) आसोलो वार्ष्णिवृद्ध ,,

(३२) इटन् काव्य । ,,

(३३) शिखण्डी याज्ञसेन । ,,

(३४) गौश्र । (कौ० १९ । ९) मधुक से वार्तालाप करने से ।

(३५) उपकोसल कामलायन । छां० उप० ४ । १० । १ ॥ सत्यकाम जाबाल का शिष्य होने से ।

ब्रह्मश्रोत्रिय, सत्यवक्ता महाशय लगभग समकालीन थे। इन्हीं से दो, चार, छः पीढ़ी पहले अनेक वैदिक ऋषि हो चुके थे। इन ऋषियों द्वारा वेदार्थ का प्रचार निरन्तर होता रहता था। और दो चार पीढ़ियों में वह अर्थ भूल भी नहीं सकता था। विशेषतः जब परम्परा अविच्छिन्न थी। ऐसी अवस्था में जो पाश्चात्य घर बैठे ही मन्त्रों का अनृत अर्थ करके अपने को वेदज्ञ मानते हैं और ब्राह्मणादि-ग्रन्थों के अर्थ को अनर्थ समझते हैं, वे भ्रम से ही अपने बहुमूल्य जीवनों को यथार्थ वेदार्थ से वञ्चित कर रहे हैं।

हम पहले भी पृ० २८, २९ पर कह चुके हैं कि मौलिक ब्राह्मणों के प्रवक्ता ही वेदार्थ के द्रष्टा होते रहे हैं। वही मौलिक ब्राह्मण इन ब्राह्मणों में महाभारत-काल* में समाविष्ट किये गये। अतः इन्हीं ब्राह्मणों के अन्दर वेदों के मूलार्थ को प्रकाश करने वाली सामग्री विद्यमान है। इन में कहीं २ ही मन्त्रों के भावों का व्याख्यान नहीं, प्रत्युत सारा ब्राह्मण-वाङ्मय ही मन्त्रार्थ प्रकाशक है। ब्राह्मणों में अल्पाभ्यास के कारण ही पाश्चात्यों ने इन के ठीक अभिप्राय को नहीं समझा। इतने लेख से ही मैकडानल की तीसरी, चौथी और पांचवीं प्रतिज्ञा का उत्तर समझ लेना।

६—यह व्याख्यान प्रायः काल्पनिक होते हैं।

ब्राह्मणों के व्याख्यान यथार्थ हैं, यह तो ब्राह्मण और वेद के गम्भीरपाठ से ही ज्ञात हो सकता है। हां, उदाहरण मात्र हम **अश्विन्** शब्द को लेते हैं।

पूर्वपक्ष

(क) मैकडानल अपनी Vedic Mythology पृ० ५३ (सन् १८९८) पर लिखता है—

"As to the physical basis of the Acvins the language of the Rsis' is so vague that they themselves do not seem to have understood what phenomenon these deities represented."

(ख) मैकडानल ने अपनी Vedic Reader पृ० १२८ पर भी ऐसा ही लिखा है। यही महाशय पृ० १२९ पर पुनः लिखते हैं—

"The physical basis of the Asvins has been a puzzle

*एफ० इ० पारजिटर महाशय अपने ग्रन्थ Ancient Indian Historical Tradition (सन् १९२२) में महाभारत-काल को ईसा से लगभग १००० वर्ष पूर्व ही मानते हैं। यह उनकी सरासर खेंचतान है। इसका सविस्तर उत्तर हम अन्यत्र देने का विचार रखते हैं।

from the time of the earliest interpreters before Yaska, who offered various explanations, while modern scholars also have suggested several theories. The two most probable are that the Asvins represented either the morning twilight, as half light and half dark, or the morning and the evening star."

(ग) घाटे महाशय अपने Lectures on Rigveda पृ० १७३–१७४ पर लिखते हैं—

"But these theories (dawn and the spring) cannot fully explain all the details connected with these legends."

(घ) वेद में अश्विन् और नासत्य विशेष्य विशेषण भाव से प्रायः एकार्थ वाची आते हैं। यथा १।३४।७॥ में **नासत्या**······**अश्विना**। इसी भाव से जब वेद-मन्त्रों पर देवता लिखे जाते हैं तो कई आचार्य **नासत्यौ** लिख देते हैं और कोई **अश्विनौ देवते**। उदाहरणार्थ ऋ० १।१५। ११॥ के देवते बृहद्देवता में **नासत्यौ** हैं और ऋषि दयानन्द के भाष्य में **अश्विनौ**।

इसी नासत्य शब्द पर लिखते हुए श्री अरविन्द घोष अपने आर्य के "प्रथम" वर्ष के पृ० ५३१ पर लिखते हैं—

"Nasatya is supposed by some to be a patronymic, the old grammarians ingeniously fabricated for it the sense of "true not false" but I take it from 'nas' to move. ····They show that the Acvins are twin divine powers whose special function is to perfect the nervous or vital being in man in the sense of action and enjoyment. But they are also powers of truth, of intelligent action, of right enjoyment."

Barth आदि फ्रेञ्च लेखकों ने भी अन्य पश्चिमीय विद्वानों के समान ही लिखा है।

उत्तर पक्ष

मेकडानल ने अपने अज्ञान के छिपाने की अच्छी विधि निकाली है, जब वह कहता है कि वैदिक ऋषि अश्विद्वय के आधिदैविक अर्थों को स्वयं भी न समझे हुए प्रतीत होते हैं। वैदिक ऋषि तो क्या, यास्क प्रभृति शास्त्रकार और उनकी कृपा से

हम भी अश्विद्वय के वास्तविक आधिदैविक अर्थों को जानते हैं। ऋग्वेद में स्वयं अश्विन शब्द के धातु का निर्देश है—

पूर्वीरश्नन्तावश्विना । ८ । ५ । ३१ ॥

अर्थात्—**अश्नन्तौ अश्विनौ** व्यापनशील अश्विद्वय। इसी व्युत्पत्ति को ध्यान में रख कर शतपथ में कहा गया है—

अश्विनाविमे हीद॒ꣳ सर्वमाश्नुवाताम् । ४ । १ । १६ ॥

इस व्युत्पत्ति बताने के अनन्तर हम कहना चाहते हैं कि—**अश्विद्वय** का जो अर्थ निरुक्त और बृहद्देवता में कहा गया है, वही ब्राह्मणों और शाखाओं में भी मिलता है। निरुक्त में व्युत्पत्ति भी वेद और ब्राह्मण वाली ही कही गई है। देखो—

अश्विनौ यद् व्यश्नुवाते सर्वं रसेनान्यो ज्योतिषान्यः तत्कावश्विनौ। द्यावापृथिव्यौ, इत्येके। अहोरात्रौ, इत्येके। सूर्याचन्द्रमसौ, इत्येके। राजानौ पुण्यकृतौ, इत्यैतिहासिकाः॥

नि० १२ । १ ॥

नासत्यौ चाश्विनौ। सत्यावेव नासत्यौ, इत्यौर्णवाभः। सत्यस्य प्रणेतारौ, इत्याग्रायणः। नासिकाप्रभवौ बभूवतुरिति वा ॥

नि० ६ । १३ ॥

और्णवाभो द्वचे त्वस्मिन्न् अश्विनौ मन्यते स्तुतौ ॥१२५॥
सूर्याचन्द्रमसौ तौ हि प्राणापानौ च तौ स्मृतौ।
अहोरात्रौ च तावेव स्यातां तावेव रोदसी ॥१२६॥
अश्नुवाते हि तौ लोकान् ज्योतिषा च रसेन च।
पृथक्पृथक् च चरतो दक्षिणेनोत्तरेण च ॥ १२७ ॥

बृ० अध्याय ७ ॥

यही पूर्वोक्त भाव ब्राह्मणों और शाखाओं में मिलते हैं।

द्यावापृथिवी वा आश्विनौ। काठक सं० १३ । ५ ॥

इमे ह वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षमश्विनौ। श० ४। १ । ५ । १६॥

अहोरात्रे वा अश्विनौ । मै० सं० ३ । ४ । ४ ॥

तथा ऋग्वेद में कहा है—

ऋता । १ । ४६ । १४ ॥

ऋतावृधा । १ । ४७ । १ ॥

अर्थात् अश्विद्वय = नासत्य, **सत्य स्वरूप** हैं । वे ही **सत्य से बढ़ने** वा **बढ़ाने वाले** भी हैं ।

यास्क ने नासत्यों को **नासिकाप्रभव** इस लिये लिखा है कि उस का अभिप्राय **प्राणापान** से है । ये प्राणापान नासिका से ही उत्पन्न होते हैं ।

ब्राह्मणों में अश्विद्वय को **अध्वर्यू** भी कहा है—

अश्विनावध्वर्यू । श० १ । १ । २ । १७ ॥

और क्योंकि राष्ट्ररूप महायज्ञ के **अध्वर्यू** सभाध्यक्ष वा सेनाध्यक्ष भी होते हैं, अतः निरुक्त में अश्विद्वय का अर्थ पुण्यशील दो राजे भी कहा है । ऋग्वेद १०।३९।११॥ में तो स्पष्ट ही **राजानौ** अश्विद्वय का विशेषण है ।

ये सारे अर्थ एक ही भाव को कह रहे हैं । वह भाव है व्यापनशीलता का। यदि ये सारे अर्थ न माने जावें, तो अनेक मन्त्रों का अर्थ खुलता ही नहीं ।

इस से भले प्रकार ज्ञात होता है कि ब्राह्मणान्तर्गत, मन्त्र, और उनके पदों का व्याख्यान अत्यन्त युक्त है । यास्क ने भी वही व्याख्यान स्वीकार कर लिया है । जो पाश्चात्य यास्क के, और ब्राह्मण के व्याख्यानों को काल्पनिक कहते हैं, उन्हें वेद समझ ही नहीं आया ।

७—ऋषियों को जो अर्थ अभिप्रेत था, ब्राह्मण उन से सर्वथैव उलटा अर्थ समझते हैं । जैसे—

कस्मै देवाय हविषा विधेम ।

हिरण्यपाणि का अर्थ ब्राह्मणों में विचित्र है ।

७—अब मैकडानल महाशय उदाहरण-विशेषों से ब्राह्मणों के विचित्र अर्थ का प्रदर्शन कराते हैं । अतः हम उन के इस कथन की परीक्षा करते हैं ।

कः का **प्रजापति** अर्थ ब्राह्मणों में ही नहीं किया गया, प्रत्युत मैत्रायणी आदि शाखाओं के ब्राह्मणपाठों में भी किया गया है । जैसे—

कन्त्वाय कायो यद्वै तद्वरुणगृहीताभ्यः कमभवत्तस्मात्कायः।

प्रजापतिर्वै कः। प्रजापतिर्वै ताः प्रजा वरुणेनाग्राहयद्यत्काय आत्मन एवैना वरुणान्मुञ्चति। मै० सं० १।१०।१०॥

कन्त्वाय कायो यद्वा आभ्यस्तद्वरुणगृहीताभ्यः। कमभवत्तस्मात्कायः। प्रजापतिर्वै ताः प्रजा वरुणेनाग्राहयत्प्रजापतिः कः। आत्मनैवैना वरुणान्मुञ्चति। काठक सं० ३६।५॥

पूर्वोद्धृत वाक्यों में **प्रजापति** का नाम **क** इस लिये कहा गया है कि वह **सुखस्वरूप** है। **क** का अर्थ **सुख** है, ऐसा मानने में किसी पाश्चात्य को भी सन्देह नहीं होना चाहिये। ऋग्वेद में जो—

नाकः। १०। १२१। ५॥

पद आता है, उस के स्वरूप पर विचार करने से निश्चय होता है कि **क** का अर्थ **सुख** है।

अब कई एक ऐसा कहते हैं कि यदि **कस्मै** का अर्थ **सुखस्वरूपाय प्रजापतये** किया जाय तो व्याकरण बाधा डालता है। **सर्वनाम्नः स्मै** ॥ अष्टा० ७।१।१७॥ **स्मै** प्रत्यय सर्वनामों के साथ ही लगता है, अतः **कस्मै** पद सर्वनाम है, नाम नहीं।*

ये महाशय नहीं जानते कि वेद में लौकिक व्याकरण के नियम काम नहीं देते। देखो **विश्व** पद सर्वनाम है। परन्तु ऋग्वेद में—

विश्वाय। १। ५०। १॥
विश्वात्। १। १८९। ६॥
विश्वे। ४। ५६। ४॥

इसी शब्द के ये तीन रूप नाम-प्रत्ययान्त आये हैं।† इतना ही नहीं, ऋग्वेद में **नाम** भी सर्वनाम प्रत्ययान्त आये हैं। जैसे ऋ० १।१०८।१०॥

---

* मैक्समूलर इस विषय में एक लम्बा लेख लिखता है देखो—
Vedic Hymns Part I. 1891. p. 11-13.

† मैकडानल A Vedic Grammar for students, 120b. में यही स्वीकार करता है। यदि उसे हमारे इस सारे कथन का ध्यान आ गया होता तो वह अवश्य कोई और कल्पना उपस्थित करता।

यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।

इस मन्त्र में—**परमस्याम् । मध्यमस्याम् । अवमस्याम् ।** इन नामवाची पदों के साथ सर्वनाम प्रत्यय हैं, अतः प्रजापतिवाचक **क** के साथ यदि **स्मै** प्रत्यय आ जाय और ब्राह्मणादि उसको नाम मान कर अर्थ करें, तो यह अनुचित नहीं, प्रत्युत उचिततम है । पाश्चात्य वेदार्थ को भ्रष्ट करना चाहते हैं । उन का अभिप्राय यही है कि संसार वेद का गौरवयुक्त अर्थ जान ही न सके । अतः वे वेद का यथासम्भव ऐसा अर्थ चाहते हैं, जिस से यही ज्ञात हो कि आर्यों को वेदमन्त्रों से परब्रह्म का भी ज्ञान नहीं होसका । वे सदा प्रश्न ही करते रहे, कि "हम किस देव की हवि से पूजा करें ।" दो चार अल्पपठित भारतीय उन की बातें सुन कर भले ही यह कह दें कि ब्राह्मणों में **कस्मै** का अशुद्ध अर्थ किया गया है वरन् आर्य विद्वान् ऐसे आक्षेपों पर हँस छोड़ने की अपेक्षा और क्या कह सकते हैं ।

भाष्यकार पतञ्जलि मुनि—

कस्येत । ४ । २ । २५ ॥

सूत्र पर व्याख्या करते हुए इस आक्षेप का और ही समाधान करते हैं । वह भी देखने योग्य है—

सर्वस्य हि सर्वनाम संज्ञा क्रियते । सर्वश्च प्रजापतिः । प्रजापतिश्च कः ।

लिखा तो बहुत कुछ जा सकता है, परन्तु विद्वान् इतने से ही जान सकते हैं कि ब्राह्मणार्थ को दूषित कहने वाले पाश्चात्य जन स्वयमेव वेद विद्या में अल्पश्रुत हैं ।

(ख) इस के अनन्तर मेकडानल महाशय **हिरण्यपाणि** शब्द और उस के ब्राह्मणान्तर्गत अर्थ पर विचार करते हैं ।

हम कहते हैं, कि उन्हों ने **हिरण्यपाणि** शब्द ही क्यों लिया । वे **त्रिशीर्ष त्वाष्ट्र, दध्यङ् आथर्वण, रुद्र** आदि कोई शब्द भी ले लेते । इन में से प्रत्येक शब्द के साथ ब्राह्मण में कोई न कोई कथा अलङ्काररूप से कही गई है । हम भी इन सारी कथाओं का समुचित अर्थ अभी तक नहीं समझ सके । परन्तु हम यह नहीं कहते कि यत्न करने पर भी इन के अन्दर से कोई गम्भीर आधिदैविक तत्त्व न निकलेगा । अतः हम पूर्ववत् अपने पाश्चात्य मित्रों से यही प्रार्थना करेंगे, कि वे इन ग्रन्थों का अर्थ समझने में हमारा साथ दें, न कि समझने के स्थान में इन की ओर उपेक्षा दृष्टि करें ।

८—भाषा सम्बन्धी साक्ष्य को पृथक् रखकर भी ऐसे व्याख्यान बताते हैं कि ब्राह्मण-काल से मन्त्र काल का बडा अन्तर होचुका था।

८—चारों वेदों का प्रकाश आदि सृष्टि में ऋषि-जनों के हृदय में हुआ। उन्हीं दिनों से ब्रह्मा आदि महर्षियों ने ब्राह्मणों का प्रवचन आरम्भ कर दिया। वही प्रवचन कुल परम्परा वा गुरुपरम्परा में सुरक्षित रहा। उस के साथ नवीन प्रवचन भी समय २ पर होता रहा। यह सारा प्रवचन महाभारतकाल में इन ब्राह्मणों के रूप में सङ्कलित हुआ। यह सारी परम्परा अनवच्छिन्न थी। अतः काल की दृष्टि से, ब्राह्मणों का कुछ अंश तो मन्त्रों की अपेक्षा नवीन होसकता है, सब नहीं। और जो महाशय भाषा के साक्ष्य पर बहुत बल देते रहते हैं, उन्होंने ब्राह्मणान्तर्गत **यज्ञगाथायें** नहीं देखीं। यदि देखीं भी हैं, तो उन पर ध्यान नहीं दिया। यें सब गाथायें सर्वथैव लौकिक भाषा में हैं। ऐसा हम पूर्व दिखा भी चुके हैं। वही ऋषि ब्राह्मणों का प्रवचन करते थे, और वही धर्मशास्त्रादि का भी।* अतः भाषा के साक्ष्य पर कोई बात सिद्ध नहीं की जा सकती। जिन पाश्चात्यों ने सुविस्तृत आर्ष वाङ्मय का दीर्घ अभ्यास नहीं किया, वे अपने कल्पित भाषा-विज्ञान पर निरर्थक बहुत बल देते रहते हैं। इससे वे कुछ निर्णीत नहीं कर सकते। भाषा तो विषयानुसार भी भिन्न २ प्रकार की होसकती है।† अतः मैकडानल साहेब की आठवीं प्रतिज्ञा भी निर्मूल है। अधिक लिखने से क्या। हमारे पूर्व लेख में भी इसका अच्छा खण्डन होचुका है। फलतः हम सुदृढ रूप से कह सकते हैं कि ब्राह्मण प्रदर्शित वेदार्थ ही हमें वेद के यथार्थ तत्त्वों तक पंहुचा सकता है। अतः ब्राह्मण कहता है **यथर्क्तेथा ब्राह्मणम्। श०** १२।५।२।४॥ एतदर्थ ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अपने वेदभाष्य के विज्ञापन में कहा था—

"इदं वेदभाष्यमपूर्वं भवति। कुतः। महाविदुषामार्य्याणां पूर्वजानां यथावद्वेदार्थविदामाप्तानामात्मकामानां धर्म्मात्मनां सर्वलोकोपकारबुद्धीनां श्रोत्रियाणां ब्रह्मनिष्ठानां परमयोगिनां ब्रह्मादिव्यासपर्य्यन्तानां मुन्यृषीणामेषां कृतीनां सनातनानां वेदाङ्गानामैतरेयशतपथसामगोपथब्राह्मणपूर्वमीमांसादिशास्त्रोपवेदोपनिषच्छाखान्तरमूलवेदादिसत्यशास्त्राणां वचनप्रमाणसंग्रहलेखयोजनेन प्रत्यक्षादिप्रमाणयुक्त्या च सहैव रच्यते ह्यतः।"

---

* विस्तरार्थ D. A. V. College U. Magazine, Feb. 1925 में देखो हमारा लेख—"Classical Sanskrit is as old as the Brahmanas"

† भाषा सम्बन्धी साक्ष्य पर Dr. R. Zimmermann का लेख A Second Selection of Hymns from the Rigveda, 1922 pp. CXXXII–CXXXVIII पर देखने योग्य है।

लुप्त वा अप्रकाशित ब्राह्मण-ग्रन्थ।

ब्राह्मण ग्रन्थों के पाठ के लिये यह आवश्यक है कि हम इस वाङ्मय के अधिक से अधिक ग्रन्थों का परिचय करें। प्राचीन काल से लेकर बौद्ध-काल तक सहस्रों ब्राह्मण ग्रन्थ विद्यमान थे, इस में अणुमात्र भी सन्देह नहीं। इस समय जो पन्द्रह ब्राह्मण-ग्रन्थ छप चुके हैं, उन के नाम हम प्राक्कथन में लिख चुके हैं। इन के अतिरिक्त जिन लुप्त ब्राह्मणों का उल्लेख संस्कृत-साहित्य में मिलता है, उन का नाम हम नीचे देते हैं। सम्भव है, इस सूची में से कुछ नाम रह गये हों। जिन विद्वानों को ऐसा पता कहीं मिले, वे कृपया हमें सूचित करें।

वे ब्राह्मण जिन के हस्तलेख मिल चुके हैं।

(१) **काण्वीय शतपथ ब्राह्मण** (यजुर्वेदीय)। यह अब लाहौर में ही छप रहा है।

(२) **जैमिनीय ब्राह्मणम्-तलवकार ब्राह्मणं वा।** (सामवेदीय) इस का संस्करण हमारे हां पं० वेद व्यास एम० ए० कर रहे हैं।

अप्राप्त परन्तु साहित्य में उद्धृत ब्राह्मण।

(१) **चरक ब्राह्मण**। (यजुर्वेदीय) विश्वरूपाचार्यकृत बालक्रीडा टीका में उद्धृत। भाग प्रथम पृ० ४८, ८०। भाग द्वितीय पृ० ८६। भाग २, पृ० ८७ पर लिखा है–

तथा अग्नीषोमीयब्राह्मणे चरकाणाम्।

याजुष चरक शाखा का यह प्रधान ब्राह्मण था। इस के **आरण्यक** का एक प्राचीन हस्तलेख (सं० १७५) हमारे पुस्तकालय में है। यह अधिकांश में सप्त प्रपाठकात्मक मैत्र्युपनिषद् से मिलता है।

(२) **श्वेताश्वतरब्राह्मण**। (यजुर्वेदीय) बालक्रीडा टीका भाग १, पृ० ८ पर उद्धृत। श्वेताश्वतरोपनिषद् इसी के आरण्यक का भाग प्रतीत होता है।

(३) **काठक ब्राह्मण**। (यजुर्वेदीय) तैत्तिरीय ब्राह्मण के कुछ अन्तिम भागों को भी कठ वा काठक ब्राह्मण कहते हैं। परन्तु यह काठक ब्रा० उस से भिन्न है। यह **चरकों** के द्वादश अवान्तर विभागों में से एक है। इस के आरण्यक का कुछ भाग हस्तलिखित रूप में योरुप के कुछ पुस्तकालयों में विद्यमान है। श्रीनगर कश्मीर में एक ब्राह्मण ने हम से कहा था कि इसका हस्तलेख मिल सकता है। एफ़० ओ० श्रेडर सम्पादित, "माईनर उपानिषदस्" प्रथम भाग पृ० ३१–४२ तक जो

कठश्रुत्युपनिषत् छपा है, वह इसी ब्राह्मण का कोई अन्तिम भाग अथवा खिल प्रतीत होता है। उस के वचनों को **यतिधर्मसंग्रह** का कर्ता **विश्वेश्वर सरस्वती** आनन्दाश्रम पूना के संस्करण (सन् १९०९) के पृ० २२ पं० २६, पृ० ७६ पं० ९ आदि पर **काठक-ब्राह्मण** के नाम से भी उद्धृत करता है।

(४) **मैत्रायणी ब्राह्मण।** (यजुर्वेदीय) बौधायन श्रौतसूत्र ३०।८॥ में उद्धृत। नासिक के वृद्ध से वृद्ध मैत्रायणी शाखा अध्येतृ ब्राह्मणों ने कहा था कि उन्हें इस के अस्तित्व का कोई ज्ञान नहीं रहा। उनके कथनानुसार उन की संहिता में ही ब्राह्मण सम्मिलित है। परन्तु पूर्वोक्त बौधायन श्रौत का प्रमाण मुद्रित ग्रन्थ में नहीं मिला। इसलिये ब्राह्मण पृथक् ही रहा होगा। मैत्रायणी उपानिषद् का अस्तित्व भी इस ब्राह्मण का होना बता रहा है। फिर भी पूरा निर्णय होने के लिये मैत्रा० संहिता का पुनः छपना आवश्यक है। बड़ोदा के सूचीपत्र (सन् १९२५) सं० ७९ में कहा गया है कि उनका हस्तलेख मुद्रित मै० सं० से कुछ भिन्न है। बालक्रीड़ा भाग २ पृ० २७ पं० ३ पर एक श्रुति उद्धृत है। उसी श्रुति को विश्वेश्वर यतिधर्म-संग्रह पृ० ७६ पर मैत्रा० श्रुति के नाम से उद्धृत करता है।

(५) **भाल्लवि ब्राह्मण।** बृहद्देवता ५।२३॥ भाषिक सूत्र ३।१५॥ नारद शिक्षा १।१३॥ महाभाष्य ४।२।१०४॥ में इस का मत वा नाम कहा है।

(६) **जाबाल ब्राह्मण।** (यजुर्वेदीय) जाबाल श्रुति का एक लम्बा उद्धरण बालक्रीडा भाग २, पृ० ९४, ९५ पर उद्धृत है। यह सम्भवतः ब्राह्मण का पाठ होगा। बृहज्जाबालोपनिषद् नवीन है, परन्तु जाबाल उप० प्राचीन प्रतीत होता है। इस शाखा का एक गृह्य (जाबालि गृह्य) गौतम धर्मसूत्र के मस्करी भाष्य के पृ० २६७, ३८९ पर उद्धृत है।

(७) **पैङ्गी ब्राह्मण।** इसका ही दूसरा नाम **पैङ्गय ब्रा०** वा **पैङ्गायनि ब्रा०** भी है। यह आपस्तम्बश्रौत ५।१८।८॥ ५।२९।४॥ में उद्धृत है। आचार्य शङ्करस्वामी भी इसे शारीरिक सूत्र भाष्य में उद्धृत करते हैं। पैंगी कल्प का उल्लेख महाभाष्य ४।२।६६॥ पर है।

(८) **शाट्यायन ब्राह्मण।** (सामवेदीय?) आपस्तम्ब श्रौत १०।१२।१३, १४॥ २१।१६।४, १८॥ पुष्पसूत्र ८।८।१८४॥ में उद्धृत है। सायण अपने ऋग्वेद भाष्य और ताण्डय ब्राह्मण भाष्य मे इसे बहुत उद्धृत करता है। इसी का **कल्प** बालक्रीडा भाग १, पृ० ३८ पर उद्धृत है।

(९) **कंकति ब्राह्मण** । आपस्तम्ब श्रौत १४ । २० । ४ ॥ पर उद्धृत है । महाभाष्य ४ । २ । ६६ ॥ कीलहार्न सं० पृ० २८६, पं० १२ पर **कांकताः** प्रयोग है । इस से भी **कंकति** शाखा के अस्तित्व का पता लगता है ।

(१०) **सौलभ ब्राह्मण** । महाभाष्य ४ । २ । ६६ ॥ ४ । ३ । १०५ ॥ पर इसका उल्लेख है ।

(११) **कालबवि ब्राह्मण** । (सामवेदीय) आपस्तम्ब श्रौत २०।९।९॥ पर उद्धृत है । पुष्पसूत्र प्रपाठक ८ । ८ । १८४ ॥ पर भी यह उद्धृत है ।

(१२) **शैलालि ब्राह्मण** । आपस्तम्ब श्रौत ६।४।७॥ पर उद्धृत है ।

(१३) **रौरुकि ब्राह्मण** ।* गोभिलगृह्य सूत्र ३।२।५॥ पर उद्धृत है ।

(१४) **खाण्डिकेय ब्राह्मण** । (यजुर्वेदीय) भाषिकसूत्र ३ । २६ ॥ पर उद्धृत है ।

(१५) **औखेय ब्राह्मण** । (यजुर्वेदीय) भाषिक सूत्र ३ । २६ ॥ पर उद्धृत है ।

(१६) **हारिद्रविक ब्राह्मण** ।

(१७) **तुम्बरु ब्राह्मण** ।

(१८) **आरुणेय ब्राह्मण** । ये अन्तिम तीनों ब्राह्मण महाभाष्य ४ । ३ । १०४ ॥ पर उल्लिखित हैं ।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि यत्न करने पर इन में से भी कुछ ब्राह्मणों के हस्तलेख अभी प्राप्त होसकते हैं । यदि कहीं से धन मिल जावे, तो उन के खोजने के लिये यत्न किया जा सकता है ।

५—मुद्रित ब्राह्मणों में भ्रष्टपाठ ।

मुद्रित ब्राह्मणों में भ्रष्टपाठ पर्याप्त हैं । गोपथ के योरुपीय संस्कर्ता ने यद्यपि बहुत परिश्रम से लाईडन संस्करण छापा है तो भी अभी तक उस में अशुद्धियों की कमी नहीं । तुलना करो गोपथ उ० ३ । ३ ॥ से ऐ० ३ । ७ ॥ की इत्यादि ।

ऐ० ३ । ११ ॥ में एक पाठ है—

सौर्या वा एता देवता यन्निविदः ।

यहां **देवता** के स्थान में **देवतया** पाठ ब्राह्मण शैली के अधिक समीप है ।

---

* क्या **धर्मस्कन्ध ब्रा०, अन्तर्यामी ब्रा०, दिवाकीर्त्य ब्रा०, धिष्ण्य ब्रा०, शिशुमार ब्रा०,** आदि के समान यह भी किसी ब्राह्मण का अवान्तर विभाग तो नहीं है ।

कीथ महाशय ने भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया। देखो निम्नलिखित ब्राह्मणपाठ–

ऐन्द्रो वै देवतया क्षत्रियो भवति। ऐ० ७। १३॥

आग्नेयो वै देवतया क्षत्रियो दीक्षितो भवति। ऐ० ७।२४॥

प्राजापत्यो ह्येष देवतया यद् द्रोणकलशः। तां० ६।५।६॥

पुनः ऐतरेय ७। ११॥ में एक पाठ है।

यां पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सा तिथिः।

इसी का दूसरा रूपान्तर कौषीतकि ३। १॥ में ऐसे है—

यां पर्यस्तमयमुत्सर्पेदिति सा स्थितिः।

इस सम्बन्ध में ऋग्वेदीय ब्राह्मणों के अनुवाद में कीथ का टिप्पण २, पृ० २९७ पर देखने योग्य है। हम अपनी सम्मति अभी नहीं दे सकते। गोपथ और कौषीतकि में समान प्रकरण में क्रमशः एक पाठ है—

अमृतं वै प्रणवः। उ० ३। ११॥

अमृतं वै प्राणः। ११। ४॥

यहां कौषीतकि का पाठ ठीक प्रतीत होता है। ऐसे ही इन दोनों ब्राह्मणों में एक और पाठ है—

अप्सु वै मरुतः शिताः। कौ० ५। ४॥

अप्सु वै मरुतः श्रितः। गो० उ० १। २२॥

यहां दोनों स्थलों में **श्रिताः** पाठ युक्त प्रतीत होता है। **कीथ** महाशय ने यहां कोई टिप्पणी नहीं दी। पुनरपि—

अयस्मयेन चरुणा तृतीयामाहुतिं जुहोति। आयस्यो वै प्रजाः। श० १३। ३। ४। ५॥

अयस्मयेन कमण्डलुना तृतीयाम्। आहुतिं जुहोति। आयास्यो वै प्रजाः। तै० ब्रा० ३। ९। ११। ४॥

यहां तै० ब्रा० के पाठ में **आयास्यः** पाठ निश्चय ही चिरकाल से अशुद्ध हो गया है। भट्ट भास्कर और सायण दोनों ही अशुद्ध पाठ को मानकर अर्थ में एक क्लिष्ट कल्पना करते हैं। अर्थात् **अयास्य** ऋषि से उत्पन्न की गई प्रजायें हैं। यहां **अयास्य** ऋषि का कोई प्रकरण ही नहीं। शतपथ स्पष्ट करता है कि प्रजायें

(**आयस्यः**) अर्थात् आयसी = लोह सम्बन्धी हैं। प्रकरण भी दोनों स्थलों में पूर्व पठित **अयस्मय** पद से लोह विषयक ही है। शतपथ में—

विश एतद्रूपं यदयः। १३। २। २। १९॥

से पहले यह कह ही दिया गया है कि विश् = **प्रजा** लोहरूप है। अब न जानें भास्कर, सायण आदिकों ने तुलनात्मक विधि से क्यों लाभ नहीं उठाया, और भ्रष्ट पाठ को ही स्वीकार कर लिया।

हमारे इस कोष से ऐसे और भी स्थल स्पष्ट होंगे। विज्ञ पाठक उन सब से लाभ उठावें।

ब्राह्मणों में प्रक्षेप।

ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं, ऐसा हम पूर्व सिद्ध कर चुके हैं। जिस प्रकार ब्राह्मणों के अनेक पाठ भ्रष्ट होगये हैं, वैसे ही कुछ पाठ उड़ गये हों, अथवा नये मिल गये हों, इस में अणुमात्र भी सन्देह नहीं। परन्तु प्रक्षेपोंके जानने के लिये अभी भारी अनुसन्धान की आवश्यकता है। इसी लिये कई प्रकरणों को वेदानुकूल न मानते हुए भी उनका कोष में समावेश किया गया है।

कोष में अभी कई त्रुटियां रह गई हैं, जिन्हें हम स्वयं जानते हैं। परन्तु समयाभाव तथा धनाभाव से इस से अच्छा काम नहीं होसकता था। विद्वान् महाशय उन भूलों को ध्यान में न रख कर इस के उपयोगी अंशों से लाभ उठावें, और वैदिक अनुसन्धान में आगे बढ़ें। इन शब्दों के साथ हम कोष के इस प्रथम भाग को विद्वानों की भेंट करते हैं।

कोष के द्वितीय भाग में वेद की तैत्तिरीय, काठक आदि शाखा, जैमिनीय और काण्वीय शतपथ ब्राह्मण, ऐतरेय आदि आरण्यक, आपस्तम्बादि श्रौतसूत्र, यास्क तथा कौत्सव्यकृत निरुक्त और उपनिषदादि वैदिक ग्रन्थों से इसी प्रकार का संग्रह होगा। पाठक उस की प्रतीक्षा करें।

अलमतिविस्तरेण वेदानुसन्धानपरेषु॥

माघ शुदि १० शनि,
वि० सं० १९८२ **भगवद्दत्त**

संकेत सूची

ऐतरेय = ऐ० ।

कौषीतकि = कौ० ।

शतपथ = श० ।

तैत्तिरीय = तै० ।

ताण्ड्य = तां० ।

षड्विंश = ष० ।

जैमिनीय (तलवकार) उपनिषद् ब्रा० = जै० उ० ।

मंत्र = मं० ।

आर्षेय = आ० ।

(जैमिनीय) आर्षेय = जै० आ० ।

संहितोपनिषद् ब्रा० = सं० ।

वंश = वं० ।

सामविधान = सा० ।

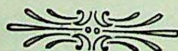
देवताध्याय = दे० ।

गोपथ पूर्वभाग = गो० पू० ।

गोपथ उत्तरभाग = गो० उ० ।

ऋग्वेद = ऋ० ।

यजुर्वेद = यजु० ।



वैदिक कोषः



ओ३म्

वैदिककोषः

प्रथमो भागः

(अ)

अकूध्रीच्यः प्राणो वा अकूध्रीच्यः । कौ० ८ । ५ ॥

अक्षरपङ्क्तयः प्राणापानौ वा अक्षरपङ्क्तयः । कौ० १६ । ८ ॥

" पशवो वा अक्षरपङ्क्तयः । कौ० १६ । ८ ॥

अक्षरपङ्क्तिः सुमतपद्वग्द (सु, मत्, पद्, वग्, दे) इत्येव वै यज्ञोऽक्षरपंक्तिः । ऐ० २ । २४ ॥

अक्षरपङ्क्तिश्छन्दः (यजुः १५ । ४) असौ वै लोकोऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

अक्षरम् तद्यदक्षरत्तस्मादक्षरम् । श० ६ । १ । ३ । ६ ॥

" यदक्षरदेव तस्मादक्षरम् । जै० उ० १ । २४ । १ ॥

" यद्वेवाक्षरं नाक्षीयत तस्मादक्षयम् । अक्षयं ह वै नामैतत् । तदक्षरमिति परोक्षमाचक्षते । जै० उ० १ । २४ । २ ॥

" कतमत्तदक्षरमिति । यत्क्षरन्नाऽक्षीयतेति । इन्द्र इति । जै० उ० १ । ४३ । ८ ॥

" अक्षरेणैव यज्ञस्य छिद्रमपिदधाति । तां० ८ । ६ । १३ ॥

" विराजो वा एतद्रूपं यदक्षरम् । तां० ८ । ६ । १४ ॥

अक्षय्यां अक्षय्यया (स्वर्गं लोकं) ऋषयोनुप्राजानन् । तां० ८।५।७॥

अक्षि यदेतन्मण्डलं तपति यश्चैष रुक्म इदं तच्छुक्लमक्षन्नथ यदेतदर्चिर्दीप्यते यच्चैतत्पुष्करपर्णमिदं तत्कृष्णमक्षन्नथ य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषो यश्चैष हिरण्मयः पुरुषोऽयमेव स योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषः । श० १० । ५ । २ । ७ ॥

अक्षि स एष एवेन्द्रः । योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषोऽथेयमिन्द्राणी (योऽयꣳसव्येऽक्षन्पुरुषः)। श० १० । ५ । २ । ९ ॥

„ (योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषः) तस्यैतन्मिथुनं योऽयꣳसव्येऽक्षन्पुरुषः । श० १० । ५ । २ । ८ ॥

अक्षितिः श्रद्धैव सकृदिष्टस्याक्षितिः स यः श्रद्दधानो यजते तस्येष्टं न क्षीयते । कौ० ७ । ४ ॥

„ पुरुषो वाऽअक्षितिः। श० १४ । ४ । ३ । ७ ॥

„ आपोऽक्षितिर्या इमा एषु लोकेषु याश्चेमा अध्यात्मन् । कौ० ७ । ४ ॥

अग्नयः चत्वारो ह वाऽअग्नयः । आहित उद्धृतः प्रहृतो विहृतः । श० ११ । ८ । २ । १ ॥

„ ते वाऽएते प्राणा एव यद् (आहवनीयगार्हपत्यान्वाहार्यपचनाख्याः) अग्नयः। श० २ । २ । २ । १८ ॥

अग्नापूषणौ स आग्नापौष्णमेकादशकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ५ । २ । ५ । ५ ॥

अग्नाविष्णू अग्नाविष्णू वै देवानामन्तभाजौ । कौ० १६ । ८ ॥

„ आग्नावैष्णवमेकादशकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ३ । १ । ३ । १ ॥ ५ । २ । ३ । ६ ॥

अग्निः स यदस्य सर्वस्याग्रमसृज्यत तस्मादग्रिरग्रिर्ह वै तमग्निरित्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ६ । १ । १ । ११ ॥

„ तद्वाऽएनमेतदग्रे देवानां (प्रजापतिः) अजनयत । तस्मादग्निरग्रिर्ह वै नामैतद्यदग्निरिति । श० २ । २ । ४ । २ ॥

„ यद्वेवाह स्वर्णघर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहेत्यस्यैवैतानि (घर्मः, अर्कः, शुक्रः, ज्योतिः, सूर्यः) अग्नेर्नामानि । श० ९ । ४ । २ । २५ ॥

„ तान्येतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः = शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः, महान्देवः,ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नवमः । श० ६ । १ । ३ । १८ ॥

„ अग्निर्वै स देवस्तस्यैतानि नामानि, शर्व इति यथा प्राच्या आचक्षते भव इति यथा वाहीकाः पशूनां पती रुद्रोऽग्निरिति ।

अग्निः तान्यस्याशान्तान्येवेतराणि नामान्यग्निरित्येव शान्ततमम् । शा० १ । ७ । ३ । ८ ॥
,, यो वै रुद्रः सोऽग्निः । शा० ५ । २ । ४ । १३ ॥
,, अग्निर्वाऽअर्कः । शा० २ । ५ । १ । ४ ॥ १० । ६ । २ । ५ ॥
,, अयं वाऽअग्निरर्कः । शा० ८ । ६ । २ । १९ ॥ ९ । ४ । २ । १८ ॥
,, अग्निर्वा अरुपः । तै० ३ । ९ । ४ । १ ॥
,, अग्निर्वै पशूनामीष्टे । शा० ४ । ३ । ४ । ११ ॥
,, तऽएते सर्वे पशवो यदग्निः । शा० ६ । २ । १ । १२ ॥
,, अग्निर्ह्येष यत्पशवः । शा० ६ । २ । १ । १२ ॥
,, पशुरेष यदग्निः शा० ६ । ४ । १ । २ ॥ ७ । २ । ४ । ३० ॥ ७ । ३ । २ । १७ ॥
,, अग्निर्हि देवानां पशुः । ऐ० १ । १५ ॥
,, ते देवा अब्रुवन्पशुर्वाऽअग्निः । शा० ६ । ३ । १ । २२ ॥
,, अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः । ऐ० १ । १ ॥
,, अग्निर्वै देवानामवरार्ध्यो विष्णुः परार्ध्यः । कौ० ७ । १ ॥
,, अग्निर्वै यज्ञस्यावरार्ध्यो विष्णुः परार्ध्यः । शा० ३ । १ । ३ । १ ॥ ५ । २ । ३ । ६ ॥
,, एते वै यज्ञस्यान्त्ये तन्वौ यदग्निश्च विष्णुश्च । ऐ० १ । २ ॥
,, अग्निर्वै देवानां वसिष्ठः । ऐ० १ । २८ ॥
,, शिर एवाग्निः । शा० १० । १ । २ । ५ ॥
,, शिर एतद्यज्ञस्य यदग्निः । शा० ९ । २ । ३ । ३१ ॥
,, अग्निर्वै योनिर्यज्ञस्य । शा० १ । ५ । २ । ११, १४ ॥ ३ । १ । ३ । २८ ॥ ११ । १ । २ । २ ॥
,, अग्निर्वै यज्ञमुखम् । तै० १ । ६ । १ । ८ ॥
,, अग्निः सर्वा देवताः । ऐ० २ । ३ ॥ तै० १ । ४ । ४ । १० ॥
,, अग्निर्वै सर्वा देवताः । ऐ० १ । १ ॥ शा० १ । ६ । २ । ८ ॥ ३ । १ । ३ । १ ॥ तां० ९ । ४ । ५ ॥ १८ । १ । ८ ॥ ष० ३ । ७ ॥ गो० उ० १ । १२, १६ ॥
,, सर्वदेवत्योऽग्निः । शा० ६ । १ । २ । २८ ॥
,, अग्नेर्वा एताः सर्वास्तन्वो यदेता (वाय्वादयः) देवताः । ऐ० ३।४ ॥
,, अग्निर्वै सर्वेषां देवानामात्मा । शा० १४ । ३ । २ । ५ ॥

अग्निः सर्वेषामु हैष देवानामात्मा यदग्निः। श०। ७। ४। १। २५॥ ९। ५। १। ७॥

,, आत्मैवाग्निः। श० ६। ७। १। २०॥ १०। १। २। ४॥

,, आत्मा वाऽअग्निः। श० ७। ३। १। २॥

,, प्रजापतिर्देवताः सृजमानः। अग्निमेव देवतानां प्रथममसृजत। तै० २। १। ६। ४॥

,, सः (प्रजापतिः) अग्निमब्रवीत्त्वं वै मे ज्येष्ठः पुत्राणामसि। त्वत्प्रथमो वृणीष्वेति। सः (अग्निः) अब्रवीन्मन्द्रं साम्नो वृणेऽन्नाद्यमिति। जै० उ० १। ५१। ५–६॥

,, अग्निमुखा वै देवताः। तां २५। १४। ४॥

,, अग्निना वै मुखेन देवा असुरानुक्थेभ्यो निर्जघ्नुः। ऐ० ६। १४॥

,, तस्माद्देवा अग्निमुखा अन्नमदन्ति श० ७। १। २। ४॥

,, अग्निर्वै देवानां मुखम्। कौ० ३। ६॥ ५। ५॥ तां० ६। १। ६॥ गो० उ० १। २३॥

,, अग्निर्वै देवानां मुखं सुहृदयतमः। ऐ० ७। १६॥

,, अग्निर्वै देवतानां मुखं प्रजनयिता स प्रजापतिः। श० ३। ९। १। ६॥

,, अग्निर्वै देवयोनिः। ऐ० १। २२॥ २। ३॥

,, अग्निर्वै देवानां मृदुहृदयतमः। श० १। ६। २। १०॥

,, अग्निर्वै देवानामन्नादः। तै० ३। १। ४। १॥

,, स यो हैवमेतमग्निमन्नादं वेदान्नादो हैव भवति। श० २। २। ४। १॥

,, अन्नादोऽग्निः। श० २। १। ४। २८॥ २। २। ४। १॥

,, (प्रजापतेर्या) अन्नादा (तनूः) तदग्निः। ऐ० ५। २५॥

,, अग्नौ हि सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुह्वति श० १। ६। २। ८॥

,, अग्निर्देवानां जठरम्। तै० २। ७। १२। ३॥

,, सर्वं वाऽइदमग्नेरन्नम्। श० १०। १। ४। १३॥

,, अग्निर्वै सर्वमाद्यम्। तां० २५। ९। ३॥

,, एष उ ह वाव देवानाम्महाशनतमो यदग्निः। जै० उ० २ १५। १॥

अग्निः सर्वतो मुखोऽयमग्निः। यतो ह्येव कुतश्चाग्नावभ्यादधाति तत एव प्रदहति तेनैष सर्वतोमुखस्तेनान्नादः। श० २। ६। ३। १५॥

,, अग्निरन्नादोऽन्नपतिः। तै० २। ५। ७। ३॥

,, अन्नादो वा एषोऽन्नपतिर्यदग्निः। ऐ० १। ८॥

,, एष (अग्निः) हि वाजानां पतिः। ऐ० २। ५॥

,, अग्निर्वा अन्नानां शमयिता। कौ० ६। १४॥

,, अग्निः प्रजानां प्रजनयिता। तै० १। ७। २। ३॥

,, अग्निर्वै मिथुनस्य कर्त्ता प्रजनयिता। श० ३। ४। ३। ४॥

,, अग्निर्वै रेतोधा। तै० २। १। २। ११॥ ३। ७। ३। ७॥

,, प्रजननं वा अग्निः। तै० १। ३। १। ४॥

,, इयं (पृथिवी) ह्यग्निः। श० ६। १। २। १४॥ ६। १। १। १९॥

,, इयं (पृथिवी) वाऽअग्निः। श० ७। ३। १। २२॥

,, अयं वै (पृथिवी-) लोकोऽग्निः। श० १४। ९। १। १४॥

,, अयं वा ऽअग्निर्लोकः। श० १। ९। २। १३॥

,, संवत्सर एषोऽग्निः। श० ६। ७। १। १८॥

,, संवत्सरोऽग्निः। श० ६। ३। १। २५॥

,, संवत्सर एवाग्निः। श० १०। ४। ५। २॥

,, अग्निर्मे वाचि श्रितः। तै० ३। १०। ८। ४॥

,, वागेवाग्निः। श० ३। २। २। १३॥

,, सा या सा वागासीत्सोऽग्निरभवत्। जै० उ० १। २। १॥

,, अग्नेस्तेजसेन्द्रस्येन्द्रियेण सूर्य्यस्य वर्चसा तां०१। ३। ५॥

,, तेजो वाऽअग्निः। श० २। ५। ४। ८॥ ३। ९। १। १९॥ तै० ३। ९। ५। २॥

,, अग्निर्वै ज्योती रक्षोहा। श० ७। ४। १। ३४॥

,, ते (देवाः) ऽविदुः। अयं (अग्निः) वै नो विरक्षस्तमः। श० ३। ४। ३। ८॥

,, अग्निर्हि रक्षसामपहन्ता। श० १। २। १। ६, ९॥ १। २। २। १३॥

,, अग्निर्वै रक्षसामपहन्ता। कौ० ८। ४॥ १०। ३॥

अग्निः अग्निरु सर्वेषां पाप्मनामपहन्ता । श० ७ । ३ । २ । १६ ॥
,, अग्निर्वै पाप्मनोऽपहन्ता । श० २ । ३ । ३ । १३ ॥
,, तपो वाऽअग्निः । श० ३ । ४ । ३ । २ ॥
,, तपो मे तेजो मे ऽन्नम्मे वाङ्मे । तन्मे त्वयि (अग्नौ)। जै० उ० ३ । २० । १६ ॥
,, अग्निरेवैनं गार्हपत्येनावति । तै० १ । ७ । ६ । ६ ॥
,, अग्निरेवैनं गृहपतीनां सुवते । तै० १ । ७ । ४ । १ ॥
,, अग्निर्वै देवानां व्रतपतिः । श० १ । १ । १ । २ ॥ ३ । २ । २ । २२ ॥
,, अग्निर्वै देवानां यष्टा । ३ । ३ । ७ । ६ ॥
,, अग्निर्वै देवानां होता । ऐ० १ । २८ ॥ ३ । १४ ॥
,, अग्निर्होता पञ्चहोतृणाम् । तै० ३ । १२ । ५ । २ ॥
,, तस्य (यज्ञस्य) अग्निर्होताऽऽसीत् । गो० पू० १ । १३ ॥
,, उभयं वाऽएतदग्निर्देवानाᳬं होता च दूतश्च । श० १ । ४ । ५ । ४ ॥
,, स (अग्निः) हि देवानां दूत आसीत् । श० १ । ४ । १ । ३४ ॥
,, अग्निरेव देवानां दूत आस । श० ३ । ५ । १ । २१ ॥
,, अथ योऽग्निर्मृत्युस्सः । जै० उ० १ । २५ । ८ ॥
,, सो (अग्निः = मृत्युः) ऽपामन्नम् ॥ श० १४ । ६ । २ । १० ॥
,, पुरुषोऽग्निः । श० १० । ४ । १ । ६ ॥
,, पुरुषो वाऽअग्निः । श० १४ । ९ । १ । १५ ॥
,, योषा वा ऽअग्निः । श० १४ । ९ । १ । १६ ॥
,, योषा वाऽआपो वृषाग्निः । श० १ । १ । १ । १८ ॥
,, योषा वाऽआपः । वृषाग्निः । श० २ । १ । १ । ४ ॥
,, योषा वै वेदिर्वृषाग्निः । श० १ । २ । ५ । १५ ॥
,, अग्निरु सर्वे कामाः । श० १० । २ । ४ । १ ॥
,, मन एवाग्निः । श० १० । १ । २ । ३ ॥
,, प्राणो वा अग्निः । श० ९ । ५ । १ । ६८ ॥
,, वीर्य्यं वा अग्निः । तै० १ । ७ । २ । २ ॥ गो० उ० ६ । ७ ॥
,, गायत्रछन्दा ह्यग्निः । तां० ७ । ८ । ४ ॥

अग्निः गायत्रछन्दा अग्निः । तां० १६ । ५ । १९ ॥

,, अग्निर्वै गायत्री । श० ३ । ४ । १ । १९ ॥

,, गायत्री वा अग्निः । श० १ । ८ । २ । १३ ।

,, यो वा अत्राग्निर्गायत्री स निदानेन । श० १ । ८ । २ । १५ ॥

,, यस्माद्गायत्रमुखः प्रथमः (त्रिरात्रः) तस्मादूर्ध्वोऽग्निर्दीदाय । तां० १० । ५ । २ ॥

,, अग्निर्ह वाव राजन् गायत्रीमुखम् । जै० उ० ४ । ८ । २ ॥

,, एष उ ह वाव देवानां नेदिष्ठःमुपचर्यो यदग्निः । जै० उ० २ । १४ । १ ॥

,, अग्निर्वै देवानां नेदिष्ठः । श० १ । ६ । २ । ११ ॥

,, अग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञः । श० ३ । २ । २ । ७ ॥

,, अयं वाऽअग्निर्ब्रह्म च क्षत्रं च । श० ६ । ६ । ३ । १५ ॥

,, अग्निरेव ब्रह्म । श० १० । ४ । १ । ५ ॥

,, ब्रह्म वा अग्निः । कौ० ९ । १, ५ ॥ १२ । ८ ॥ श० २ । ५ । ४ । ८ ॥ ५ । ३ । ५ । ३२ ॥ तै० ३ । ९ । १६ । ३ ॥

,, ब्रह्माग्निः । श० १ । ३ । ३ । १९ ॥

,, मुखꣳ ह्येतदग्नेर्यद् ब्रह्म । श० ६ । १ । १ । १० ॥

,, ब्रह्म वा अग्निः क्षत्रं सोमः । कौ० ९ । ५ ॥

,, पर्जन्यो वाऽअग्निः । श० १४ । ९ । १ । १३ ॥

,, अग्निर्वा ऽअह्नः । श० ३ । ४ । ४ । १५ ॥

,, अशिष्ठो ह्यग्निस्तस्मादाहाशीतमेति । श० १ । ९ । २ । २० ॥

,, दिशोऽग्निः । श० ६ । २ । २ । ३४ ॥

,, अग्निर्ह वै ब्रह्मणो वत्सः । जै० उ० २ । १३ । १ ॥

,, अग्निर्वै स्वर्गस्य लोकस्याधिपतिः । ऐ० ३ । ४२ ॥

,, अग्निर्देवतानां (सत्) । तां० ४ । ८ । १० ॥

,, आयुर्वाऽअग्निः । श० ६ । ७ । ३ । ७ ॥

,, विदेदग्निर्नभोनामाग्ने ऽअङ्गिर आयुना नाम्नेहीति । श० ३ । ५ । १ । ३२ ॥

,, अग्निर्वाऽआयुष्मानायुष ईष्टे । श० १३ । ८ । ४ । ८ ॥

,, अग्निर्मर्तानां जमानाम् । तै० २ । ४ । ३ । ६ ॥

अग्निः सर्वेषां वा एष (अग्निः) भूतानामतिथिः । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥

,, अग्निर्वै पथोऽतिवोढा । श० १३ । ८ । ४ । ६ ॥

,, अग्निर्वाव पवित्रम् । तै० ३ । ३ । ७ । १० ॥

,, अग्निर्वै देवतानामनीकम् । श० ५ । ३ । १ । १ ॥

,, अग्निर्वै देवानां गोपाः । ऐ० १ । २८ ॥

,, अग्निर्वसुभिरुदक्रामत् । ऐ० १ । २४ ॥

,, त्रिवृदग्निः । श० ६ । ३ । १ । २५ ॥

,, त्रिवृद्वा अग्निरङ्गारा अर्चिर्धूम इति । कौ० २८ । ५ ॥

,, द्यौर्वा अस्य (अग्नेः) परमं जन्म । श० ९ । २ । ३ । ३९ ॥

,, अग्निर्वै दाता । श० ५ । २ । ५ । २ ॥

,, अग्निरन्नाद्यस्य प्रदाता । तां० १७ । ९ । २ ॥

,, स्वाहाग्नये कव्यवाहनाय । मं० २ । ३ । २ ॥

,, अग्निर्वै हिमस्य भेषजम् । तै० ३ । ९ । ५ । ४ ॥

,, अग्निर्वा अश्वमेधस्य योनिरायतनम् । तै० ३।९ । २१ । २, ३ ॥

,, आग्नेयो वा अजः । गो० उ० ३ । १९ ॥

,, (प्रजापतिः) आग्नेयमजं (आलिप्सत) । श० ६ । २ । १ । ५ ॥

,, आग्नेयो वा ऽअनड्वान् । श० ७ । ३ । २ । १६ ॥ १३ । ८ । ४ । ६ ॥

,, (हेऽग्ने) चित्रोऽसीति सर्वाणि हि चित्राण्यग्निः । श० ६ । १ । ३ । २० ॥

,, अग्ने महां असि ब्राह्मण भारत । कौ० ३ । २ ॥ श० १ । ४ । २ । २ ॥ तै० ३ । ५ । ३ । १ ॥

,, आदित्यो वाऽअस्य (अग्नेः) दिवि वर्चः । श० ७ । १ । १ । २३ ॥

,, (यजुः० ११ । ३१) असौ वाऽआदित्य एषोऽग्निः । श० ६ । ४ । १ । १ ॥ ६ । ४ । ३ । ९, १० ॥

,, अग्निर्ह वा अबन्धुः । जै० उ० ३ । ६ । ७ ॥

,, अग्निर्वै देवानामद्धातमाम् । श० १ । ६ । २ । ९ ॥

,, एषा ह वास्य (अग्नेः) सहस्रं भरता यदेनं एकं सन्तं बहुधा विहरन्ति । ऐ० १ । २८ ॥

,, एष वै देवाननुविद्वान्यदग्निः (अग्ने नय० यजुः० ४० । १६) श० १ । ५ । १ । ६ ॥

अग्निः अग्नेर्वा एषा तनूः । यदोषधयः । तै० ३ । २ । ५ । ७ ॥
,, अमृतो ह्यग्निस्तस्मादाह्वादध्धायविति । श० १ । ९ । २ । २० ॥
,, इमे वै लोका एषोऽग्निः । श० ६ । ७ । १ । १६ ॥ ७ । ३ । १ । १३ ॥
,, आग्नेयं क्रतुमन्वाह तदिमं (भू-)लोकमाप्नोति । कौ० ११ । २ ॥ १८ । २ ॥
,, अग्ने पृथिवीपते । तै० ३ । ११ । ४ । १ ॥
,, अयं वाव लोकोऽग्निश्चितः । श० १० । १ । २ । २ ॥
,, अग्निरसि पृथिव्याꣳ श्रितः । अन्तरिक्षस्य प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । ७ ॥
,, युनज्मि ते पृथिवीमग्निना सह । तां० १ । २ । १ ॥
,, अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिति तदिमं (भू-)लोकं लोकानामाप्नोति प्रातःसवनं यज्ञस्य । कौ० १४ । १ ॥
,, अग्नेर्वै प्रातः सवनम् । कौ० १२ । ६ ॥ १४ । ५ ॥ २८ । ५ ॥
,, ददा इति ह वा अयमग्निर्दीप्यते । जै० उ० ३ । ६ । २ ॥
,, दीदायेव ह्यग्निर्वैश्वानरः । तां १३ । ११ । २३ ॥
,, तं (अग्निं) नैव हस्ताभ्यां स्पृशेन्न पादाभ्यां न दण्डेन । जै० उ० २ । १४ । ३ ॥
,, स (अग्निः) एताः (पवमानपावकशुच्याख्याः) तिस्रः (आत्मीयाः) तनूरेषु लोकेषु (=पृथिव्यन्तरिक्षद्युलोकेषु यथाक्रमं) विन्यधत्त । श० २ । २ । १ । १४ ॥
,, अग्निर्देवेभ्यो निलायत । आखूरूपंकृत्वा स पृथिवीं प्राविशत् । तै० १ । १ । ३ । ३ ॥
,, अग्निर्देवेभ्यो निलायत । अश्वो रूपं कृत्वा सोऽश्वत्थे संवत्सरमतिष्ठत् । तै० १ । १ । ३ । ९ ॥
,, अग्निर्वा अर्वा । तै० १ । ३ । ६ । ४ ॥
,, रोहितो ह्यग्नेरश्वः । श० ६ । ६ । ३ । ४ ॥
,, तदेभ्यः (देवेभ्योऽग्निः) स्विष्टमकरोत्तस्मात् (अग्नये) स्विष्टकृत इति (क्रियते) । श १ । ७ । ३ । ९ ॥
,, आहुतयो वाऽअस्य (अग्नेः) प्रियं धाम । श० २ । ३ । ४ । २४ ॥

अग्निः अग्नेः पूर्व्वाहुतिः। तै० २। १। ७। १॥
,, त्रयोदशाग्नेश्चितिपुरीषाणि। श० ९। ३। ३। ९॥
,, यद्वै शुष्कं यज्ञस्य तदाग्नेयम्। श० ३। २। ३। ९॥
,, मरुतोऽद्भिरग्निमतमयन्। तस्य तान्तस्य हृदयमाच्छिन्दन् साऽशनिरभवत्। तै० १। १। ३। १२॥
,, तस्मादग्नये सायꣳ हूयते सूर्य्याय प्रातः। तै० २। १। २। ६॥
,, पञ्चचितिकोऽग्निः। श० ६। ३। १। २५॥ ८। ६। ३। १२॥
,, सप्तचितिकोऽग्निः। श० ६। ६। १। १४॥ ९। १। १। २६॥
,, आग्नेय एककपालः (पुरोडाशः)। तां० २१। १०। २३॥
,, आग्नेयोऽष्टकपालः पुरोडाशो भवति। श० २। ५। १। ८॥
,, तस्मादनूचानमाहुरग्निकल्प इति। श० ६। १। १। १०॥
,, स यद्वैश्वदेवेन यजते। अग्निरेव तर्हि भवत्यग्नेरेव सायुज्यꣳ सलोकतां जयति। श० २। ६। ४। ८॥

अग्निः कामः अग्निर्वै कामो देवानामीश्वरः। कौ० १९। २॥
अग्निः पवमानः पशवो वा अग्निः पवमानः। तै० १। १। ६। २॥
अग्निः पावकः आपो वा अग्निः पावकः। तै० १। १। ६। २॥
अग्निः शुचिः असौ वा आदित्योऽग्निः शुचिः। तै० १। १। ६। २॥
अग्निः सुषमिद् वायुर्वा अग्निः सुषमिद्वायुर्हि स्वयमात्मानं समिन्धे स्वयमिदं सर्वं यदिदं किञ्च। पे० २। ३४॥
अग्निः स्विष्टकृत् रुद्रोऽग्निः स्विष्टकृत्। तै० ३। ९। ११। ३, ४॥
अग्निचित्या सर्वं वा अग्निचित्या। कौ० १९। ५, ७॥
अग्निरनीकवान् असौ वा आदित्योऽग्निरनीकवान्। तै० १। ६। ६। २॥
अग्निरपन्नगृहः इयं (पृथिवी) वा अग्निरपन्नगृहः। तै० ३। ३। ९। ८॥
अग्निर्नाचिकेतः संवत्सरो वा अग्निर्नाचिकेतः। तै० ३। ११। १०। २, ४॥
,, हिरण्यं वा अग्नेर्नाचिकेतस्यायतनं प्रतिष्ठा। तै० ३। ११। ७। ३॥

अग्निर्नाचिकेतः हिरण्यं वा अग्नेर्नाचिकेतस्य शरीरम् । तै० ३। ११। ७। ३॥

„ अयं वाव यः (वायुः) पवते। सोऽग्निर्नाचिकेतः। तै० ३। ११। ७। १॥

अग्निर्वैश्वानरः संवत्सरोऽग्निर्वैश्वानरः। ऐ० ३। ४१॥

„ (यजुः १४। ७) संवत्सरो वाऽअग्निर्वैश्वानरः। श० ६। ६। १। २०॥ ८। २। २। ८॥

„ इयं वै पृथिव्यग्निर्वैश्वानरः। श० ३। ८। ५। ४॥

„ इयं (पृथिवी) वा अग्निर्वैश्वानरः। तै० ३। ८। ६। २॥ ३। ९। १७। ३॥

„ एष वा अग्निर्वैश्वानरः। यद् ब्राह्मणः। तै० २। १। ४। ५॥

„ तद् (हिरण्यं) आत्मन्नेव हृदय्येग्नौ वैश्वानरे (= "जाठराग्नौ" इति सायणः) प्रास्यात्। तै० ३। ११। ८। ७॥

अग्निष्टुत् ज्योतिष्टोमेनाग्निष्टुता यज्ञविभ्रष्टो यजेत। तां० १७। ८। १॥

„ योऽपूत इव स्यादग्निष्टुता यजेताग्निनैवास्य पाप्मानमपहत्य त्रिवृता तेजो ब्रह्मवर्चसं दधाति। तां० १७। ५। ३॥

„ सप्तदशेनाग्निष्टुतान्नाद्यकामो यजेत। तां० १७। ९। १॥

„ तेन (अग्निष्टुता) एनं (इन्द्रं) अयाजयत्तेनास्य (इन्द्रस्य) अश्लीलां (= पापां) वाचमपाहन्। तां० १७। ५। १॥

अग्निष्टोमः स वा एषोग्निरेव यदग्निष्टोमस्तंयदस्तुवंस्तस्मादग्निस्तोमस्तमग्निस्तोमं संतमग्निष्टोममित्याचक्षते। ऐ० ३। ४३॥

„ अग्निरग्निष्टोमः। ऐ० ३। ४१॥

अग्निर्वाऽअग्निष्टोमः। श० ३। ९। ३। ३२॥

„ यो वा एष (सूर्यः) तपत्येषोऽग्निष्टोम एष साह्नः। ऐ० ३। ४४॥

„ यो ह वा एष (सूर्यः) तपत्येषोऽग्निष्टोम एष साह्नः। गो० उ० ४। १०॥

„ कनीनिके अग्निष्टोमौ। तां० १०। ४। २॥

„ ब्रह्म वा अग्निष्टोमः। कौ० २१। ५॥

अग्निष्टोमः ब्रह्मवर्चसं वा अग्निष्टोमः । तै० २ । ७ । १ । १ ॥

,, आत्मा वा अग्निष्टोमः । तां० १९ । ५ । ११ ॥

,, वीर्य्यं वा अग्निष्टोमः । तां० ४ । ५ । ११ ॥

,, प्रतिष्ठा वा अग्निष्टोमः । कौ० २५ । १४ ॥

,, त्रिवृदग्निष्टोमः । प० ३ । ९ ॥

,, पुरुषसंमितो वाऽअग्निष्टोमः । श० ३ । ९ । ३ । ३२ ॥

,, ज्योतिर्वा अग्निष्टोमः । कौ० २५ । ९ ॥

,, ज्योतिर्वा एषोऽग्निष्टोमो ज्योतिष्मन्तं पुण्यं लोकञ्जयति य एवं विद्वानेतेन यजते । तां० १९ । ११ । ११ ॥

,, एषा वाव यज्ञस्य मात्रा यदग्निष्टोमः । तां० २० । ११ । ८ ॥

,, स वा एष संवत्सर एव यदग्निष्टोमश्चतुर्विंशत्यर्धमासो वै संवत्सरश्चतुर्विंशतिरग्निष्टोमस्य स्तुतशस्त्राणि, तं यथा समुद्रं स्रोत्या एवं सर्वे यज्ञक्रतवोऽपियंति । ऐ० ३ । ३९ ॥

,, अग्निष्टोमो वै संवत्सरः । ऐ० ४ । १२ ॥

,, द्वादशाग्निष्टोमस्य स्तोत्राणि । तै० १ । २ । २ । १ ॥ तां० ४ । २ । १२ ॥

,, ज्येष्ठयज्ञो वा एष यदग्निष्टोमः । तां० ६ । ३ । ८ ॥

,, एष वाव यज्ञः (= "मुख्यो यज्ञः" इति सायणः) यदग्निष्टोमः, एकस्मा अन्यो यज्ञः कामायाह्रियते सर्वेभ्योऽग्निष्टोमः । तां० ६ । ३ । १-२ ॥

,, अग्निष्टोमो वै यज्ञानां मुखम् ॥ कौ० १९ । ८ ॥

,, यज्ञमुखं वा अग्निष्टोमः । तै० १ । ८ । ७ । १ ॥ तां० १८ । ८ । १ ॥

,, अग्निष्टोमेन वै देवा इमं लोकं (भूलोकं) अभ्यजयन् । तां० ९ । २ । ९ ॥ २० । १ । ३ ॥

,, इममेव लोकं पशुबन्धेनाभिजयति । अथो अग्निष्टोमेन । तै० ३ । १२ । ५ । ६ ॥

,, एष वै यज्ञः स्वर्ग्यो यदग्निष्टोमः । तां० ४ । २ । ११ ॥

अग्निष्ठा यजमानो वाऽअग्निष्ठा । श० ३ । ७ । १ । १३ ॥

अग्निहोत्रम् (गौः) अग्नेर्हुतादजनीति । तदग्निहोत्रस्याग्निहोत्रत्वम् । तै० २ । १ । ६ । ३ ॥

" मुखं वाऽएतद्यज्ञानां यदग्निहोत्रम् । श० १४ । ३ । १ । २९ ॥

" एतद्वै जरामर्यꣳ सत्त्रं यदग्निहोत्रं जरया वा ह्येवास्मान्मुच्यन्ते मृत्युना वा । श० १२ । ४ । १ । १ ॥

" तस्मादपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरेत् । ऐ० ७ । ९ ॥

" सायंप्रातर्ह्यग्निहोत्राहुती जुहति । श० १० । १ । ५ । २॥

" (अग्निहोत्रं) पय एवेति ॥ यत्पयो न स्यात् । केन जुहुया इति व्रीहियवाभ्यामिति यद्व्रीहियवौ न स्यातां केन जुहुया इति या अन्या ओषधय इति यदन्या ओषधयो न स्युः केन जुहुया इति या आरण्या ओषधय इति यदारण्या ओषधयो न स्युः केन जुहुया इति वानस्पत्येनेति यद्वानस्पत्यं न स्यात्केन जुहुया इत्यद्भिरिति यदापो न स्युः केन जुहुया इति ॥ स होवाच । न वाऽइह तर्हि किं चनासीदथैतदहूयतैव सत्यꣳ श्रद्धायामिति । श० ११ । ३ । १ । २-४ ॥

" दुग्धेन सायं प्रातरग्निहोत्रं जुहुयात् । कौ० ४ । १४ ॥

" यवाग्वैव सायंप्रातरग्निहोत्रं जुहुयात् । कौ० ४ । १४ ॥

" वत्सो वा अग्निहोत्रस्य प्रायणम् । अग्निहोत्रं यज्ञानाम् । तै० २ । १ । ५ । १ ॥

" असꣳस्थितो वा एष यज्ञः । यदग्निहोत्रम् । तै० २ । १ । ४ । ९ ॥

" गौर्वा अग्निहोत्रम् । तै० २ । १ । ६ । ३ ॥

" सर्व्वाभ्यो वा एष देवताभ्यो जुहोति योऽग्निहोत्रं जुहोति । तै० २ । १ । ८ । ३ ॥

" किन्देवत्यमग्निहोत्रमिति । वैश्वदेवमिति ब्रूयात् । तै० २ । १ । ४ । ६ ॥

" प्राजापत्यमग्निहोत्रम् । श० १२ । ४ । २ । १ ॥

" सूर्यो ह वाऽअग्निहोत्रम् । श० २ । ३ । १ । १ ॥

" प्राण एवाग्निहोत्रम् । श० ११ । ३ । १ । ८ ॥

अग्निहोत्रम् रेतो वा एतद्वाजिनमाहिताग्नेः । यदग्निहोत्रम् । तै० ३ । ७ । ३ । ६ ॥

,, इयं (पृथिवी) एवाग्निहोत्रस्थाली । श० १२ । ४ । १ । ११ ॥

,, स यो हैवं विद्वानग्निहोत्रं च जुहोति दर्शपूर्णमासाभ्यां च यजते मासि मासि हैवास्याश्वमेधेनेष्टं भवति । श० ११ । २ । ५ । ५ ॥

,, स्वर्ग्यं वाऽ एतद्यदग्निहोत्रम् । श० १२ । ४ । २ । ७ ॥

,, नौर्ह वाऽएषा स्वर्ग्या । यदग्निहोत्रं तस्याऽएतस्यै नावः स्वर्ग्या या आहवनीयश्चैव गार्हपत्यश्च नौमण्डे ऽअथैष एव नावाजो यत्क्षीरहोता । श० २ । ३ । ३ । १५ ॥

अग्निहोत्री (गौः) वाग्घवा ऽएतस्याग्निहोत्रस्याग्निहोत्री । श० ११ । ३ । १ । १ ॥

,, द्यौर्वाऽएतस्याग्निहोत्रस्याग्निहोत्री । श० १२ । ४ । १ । ११ ॥

,, इयं (पृथिवी) वा अग्निहोत्री । तै० १ । ४ । ३ । १ ॥

अग्नीत् यज्ञमुखं वा अग्नीत् । गो० उ० ३ । १८ ॥

,, अग्नीत्पत्नीषु रेतो धत्ते । गो० उ० ४ । ५ ॥

अग्नीषोमौ प्राणापानावग्नीषोमौ । ऐ० १ । ८ ॥

,, चक्षुषी अग्नीषोमौ । ऐ० १ । ८ ॥

,, यच्छुक्लं तदाग्नेयं यत्कृष्णं तत्सौम्यं यदि वेतरथा यदेव कृष्णं तदाग्नेयं यच्छुक्लं तत्सौम्यं (रूपं) यदेव वीक्षते तदाग्नेयꣳ रूपꣳ शुष्केऽइव हि वीक्षमाणस्याक्षिणी भवतः शुष्कमिव ह्याग्नेयं यदेव स्वपिति तत्सौम्यꣳ रूपमार्द्रेऽइव हि सुषुपुषो ऽक्षिणी भवत आर्द्र इव हि सोमः । श० १ । ६ । ३ । ४१ ॥

,, द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति । आर्द्रं चैव शुष्कं च यच्छुष्कं तदाग्नेयं यदार्द्रं तत्सौम्यम् । श० १ । ६ । ३ । २३ ॥

,, सूर्य एवाग्नेयः । चन्द्रमाः सौम्योऽ हरेवाग्नेयꣳ रात्रिः सौम्या य एवापूर्यते ऽर्द्धमासः स आग्नेयो योऽपक्षीयते स सौम्यः । श० १ । ६ । ३ । २४ ॥

अग्नीषोमौ अहोरात्रे वा अग्नीषोमौ । कौ० १० । ३ ॥
,, अग्नीषोमीयमेकादशकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ५ । २ । ३ । ७ ॥
,, अग्नीषोमाभ्यां वा इन्द्रो वृत्रमहन्निति । तै० १ । ६ । १ । ६ ॥
,, अग्नीषोमौ वै देवानां मुखम् । गो० उ० १ । २० ॥
,, तस्माद्यस्यै कस्यै च देवतायै हविर्निर्वपन्ति तत्पुरस्तादाज्यभागावग्नीषोमाभ्यां यजन्ति । श० १ । ६ । ३ । १९ ॥
,, अथ यदग्नीषोमौ प्रथमौ देवतानां यजति दार्शपौर्णमासिके वा एते देवते । कौ० ५ । २ ॥

अग्रेगुवः (यजु० १ । १२) ताः (आपः) यत् समुद्रं गच्छन्ति तेनाग्रेगुवः (उच्यन्ते) । श० १ । १ । ३ । ७ ॥

अग्रेपुवः (यजु० १ । १२) ताः (आपः) यत् प्रथमाः सोमस्य राज्ञो भक्षयन्ति तेनाग्रेपुवः (उच्यन्ते) । श० १ । १ । ३ । ७ ॥

अङ्काङ्कं छन्दः (यजु० १५ । ५) आपो वाऽअङ्काङ्कं छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ६

अङ्कुपं छन्दः (यजु० १५ । ४) आपो वाऽअङ्कुपं छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

अङ्गानि न वै सकृदेवाग्रे सर्वः संभवत्येकैकं वा अङ्गं संभवतः संभवतीति । ऐ० ६ । ३१ ॥
,, न ह वै सकृदेवाग्रे सर्वं सम्भवति, एकैकं वा अङ्गं सम्भवतः सम्भवति । गो० उ० ६ । ९ ॥
,, अष्टावङ्गानि । श० ९ । २ । २ । ६ ॥

अङ्गिरसः येऽङ्गारा आसंस्तेऽङ्गिरसोऽभवन् । ऐ० ३ । ३४ ॥
,, अङ्गारेभ्योऽङ्गिरसः (समभवन्) । श० ४ । ५ । १ । ८ ॥
,, येऽङ्गिरसः स रसः । गो० पू० ३ । ४ ॥
,, तस्मादङ्गिरसोऽधीयान ऊर्ध्वस्तिष्ठति । गो० पू० १ । २ ॥

अङ्गिरसामनुक्रीः एतेन वा अङ्गिरस आदित्यानाप्नुवन् । तां० १६ । १४ । २ ॥

अङ्गिराः तं वरुणं मृत्युमभ्यश्राम्यदभ्यतपत्समतपत्तस्य श्रान्तस्य तप्तस्य संतप्तस्य सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यो रसोऽक्षरत् सोऽङ्गरसोऽभवत्तं

वा एतमङ्गरसं सन्तमङ्गिरा इत्याचक्षते । परोक्षेण परोक्ष-
प्रिया इव हि देवा भवन्ति प्रत्यक्षद्विषः । गो० पू० १ । ७ ॥

अंङ्गिराः (ऋ० ६ । १६ । ११) अङ्गिरा उ ह्यग्निः । श० १ । ४ । १ । २५ ॥

" (=अग्निः) अग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेम इत्यग्निं पशव्य-
मग्निवदच्छेम इत्येतत् । श० ६ । ३ । ३ । ३ ॥

" (यजु० ११ । ४५) अङ्गिरा वाऽअग्निः । श० ६ । ४ । ४ । ४ ॥

" प्राणो वा अङ्गिराः । श०६ । १ । २।२८॥ ६ । ५ । २ । ३,४ ॥

अच्छावाकः ऐन्द्राग्नोऽच्छावाकः । श० ३ । ६ । २ । १३ ॥

" मिथुनं वा अच्छावाक ऐन्द्राग्नो ह्यच्छावाकः । श० ४ । ३ । १ । ३ ॥

" वीर्य्यवान्वा एष वह्वृचो यदच्छावाकः । गो० उ० ५ । १५ ॥

" प्रतिष्ठा वा अच्छावाकः । कौ० ३० । ९ ॥

" ऐन्द्रावैष्णवमच्छावाकस्योक्थं भवति । गो० उ० ४ । १४ ॥ ५ । १० ॥

" रैवतमच्छावाकस्य । कौ० २५ । ११ ॥

" भरद्वाजादच्छावाकः (न प्रच्यवते) । गो० उ० ३ । २३ ॥

अच्छिद्रम् (साम) यद्वा एतस्य (अष्टमस्य) अह्नश्छिद्रमासीत्तद्देवा
अच्छिद्रेणाप्यौहꣳस्तदच्छिद्रस्याच्छिद्रत्वम् । तां०
१४ । ९ । ३६ ॥

अच्छिद्रं पवित्रम् (यजु० १ । १२) यो वाऽअयं (वायुः) पवत ऽएषो
ऽच्छिद्रं पवित्रम् । श० १ । १ । ३ । ६ ॥

" असौ वा आदित्योऽच्छिद्रं पवित्रम् । तै० ३ । २ । ५ । २ ॥

अच्युतः (=अग्निः) ते (देवाः) यदृतूनभिह्वयमाना अथाग्निमायत-
नान्नाच्यावयंस्तस्मादग्निरच्युतः ।श०१ । ६ । १ । ६॥

अज एकपात् तꣳसूर्य्यं देवमजमेकपादम् ..। तै० ३ । १ । २ । ८ ॥

अजः अथ यः कपाले रसो लिप्त आसीत्सोऽजो ऽभवत् । श० ६ । १ । १ । ११॥

अजः अथ यः स कपाले रसो लिप्त आसीदेष सोऽजः। श० ६।
३।१।२८॥

,, तस्याक्षिभ्यामेव तेजोऽस्रवत्। सोऽजः पशुरभवद्धूम्रः। श०
१२।७।१।२॥

,, (प्रजापतिः) वाचोऽजम् (निरमिमीत)। श० ७।५।२।६॥

,, वाग्वाऽअजः। श० ७।५।२।२१।

,, आग्नेयो वाऽअजः। श० ६।४।४।१५॥ गो० उ० ३।१९॥

,, ब्रह्म वा ऽअजः। श० ६।४।४।१५॥

,, ब्राह्मणं (अनु) अजः। श० ६।४।४।१२॥

,, अजोऽग्नीषोमीयः। तां० २१।१४।११।

,, एष एतेषां पशूनां प्रयुक्ततमो यदजः। ऐ० २।८॥

,, अजेहि सर्वेषां पशूनाᳬ रूपम्। श० ६।५।१।४॥

अजर्षभः प्रजापतिर्वाऽएष यदजर्षभः। श० ५।२।१।२४॥

अजस्रः (यजुः १२।१८) अग्निरजस्रः। श० ६।७।४।३॥

अजा अजा ह वै नामैषा यदजैतया ह्येनं (सोमं) अन्तत आजति
तामेतत्परोऽक्षमजेत्याचक्षते। श० ३।३।३।९॥

,, प्रजापतेर्वै शोकादजा (:) समभवन्। श० ६।५।४।१६॥

,, यज्ञस्य शीर्षच्छिन्नस्य शुगुदक्रामत्ततोऽजा समभवत्। श० १४।
१।२।१३॥

,, तपसो ह वाऽएषा प्रजापतेः सम्भूता यदजा तस्मादाह तप-
सस्तनूरसीति। श० ३।३।।३।८॥

,, आग्नेयी वा एषा यदजा। तै० ३।७।३।१॥

,, अजा ह सर्वा ओषधीरत्ति। श० ६।५।४।१६॥

,, सा (अजा) यत् त्रिः संवत्सरस्य विजायते तेन परमः पशुः
श० ३।३।३।८॥

अजावयः तस्मादेताः (अजावयः) त्रिः संवत्सरस्य विजायमाना
द्वौ त्रीनिति जनयन्ति। श० ४।५।५।६॥

अञ्जयो वाघतः (यजुः ११।४२) रश्मयो वाऽएतस्य (आदित्यस्य)
अञ्जयो वाघतः। श० ६।४।३।१०॥

,, ,, छंदांसि वा अंजयो वाघतस्तैरेतद्देवान् यजमाना
विह्वयंते मम यज्ञमागच्छत मम यज्ञमिति। ऐ०२।२॥

अञ्जलिः दश वाऽअञ्जलेरंगुलयः । श० ९ । १ । १ । ३९ ॥

,, तस्मादु हैतद् भीतोऽञ्जलिं करोति । श० ९ । १ । १ । ३९ ॥

अञ्जस्कीयाः एतेन वै नमी साप्यो वैदेहो राजाञ्जसा स्वर्गं लोकमैदञ्जसागामति तदञ्जस्कीयानामञ्जस्कीयत्वम् । तां० २५ । १० । १७ ॥

अतिग्रहाः अष्टावतिग्रहाः (अपानः, रसः, नाम, रूपम्, शब्दः, कामः कर्म, स्पर्शः) । श० १४ । ६ । २ । १ ॥

अतिग्राह्याः (ग्रहाः) ते (अग्नीन्द्रसूर्याः) एतानतिग्राह्यान्ददृशुस्तानत्यगृह्णत तद्यदेनानत्यगृह्णत तस्मादतिग्राह्या नाम । श० ४ । ५ । ४ । २ ॥

,, (ग्रहाः) देवा वै यदन्यैर्ग्रहैर्यज्ञस्य नावारुन्धत तदतिग्राह्यैरतिगृह्यावारुन्धत । तदतिग्राह्याणामतिग्राह्यत्वम् । तै० १ । ३ । ३ । १ ॥

अतिच्छन्दः उदरमतिच्छन्दाः पशवो वै छन्दाᳬंस्यन्नं पशव उदरं वाऽअन्नमत्युदरᳬं हि वाऽअन्नमत्ति तस्माद्यदोदरमन्नं प्राप्नोत्यथ तज्जग्धं यातयामरूपं भवति तद्यदेषा पशूञ्छन्दाᳬंस्यत्ति तस्मादतिच्छन्दा अत्तिच्छन्दः ह वै तामतिच्छन्दा इत्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ८ । ६ । २ । १३ ॥

,, (ऋक्) अति वा एषा (ऋक्) अन्यानि छन्दाᳬंसि यदतिछन्दाः । तां० ५ । २ । ११ ॥

,, छन्दसां वै यो रसोऽत्यक्षरत्सोऽतिछंदसमभ्यत्यक्षरत्तदतिछंदसोऽतिछंदस्त्वम् । ऐ० ४ । ३ ॥

,, अतिच्छन्दो वै छन्दसामायतनम् । गो० पू० ५ । ४ ॥

,, वर्ष्म वा एषा छन्दसां यदतिच्छन्दाः । तै० १ । ७ । ९ । ६ ॥

,, एषा वै सर्वाणि छन्दाᳬंसि यदतिच्छन्दाः । श० ३ । ३ । २ । ११ ॥ ४ । ४ । ५ । ७ ॥

,, अतिच्छन्दा वै सर्वाणि छन्दाᳬंसि । तै० १ । ७ । ९ । ६ ॥

,, इमे वै लोका अतिछन्दाः । तां० ४ । ९ । २ ॥

अतिथिः यथा राज्ञे वा ब्राह्मणाय वा महोक्षं वा महाजं वा पचेत् । (पश्यत–वासिष्ठधर्मसूत्रम् ४ । ८ ॥ याज्ञवल्क्य स्मृ० १ । १०९) श० ३ । ४ । १ । २ ॥

अतिथिः अतिथिर्दुरोणसत् । श० ५ । ४ । ३ । २२ ।
अतिथिर्दुरोणसत् एष (सूर्य्यः) वा अतिथिर्दुरोणसत् । ऐ० ४ । २० ॥

अतिपुरुषः य आदित्ये सोऽतिपुरुषः । जै० उ० १ । २७ । २ ॥

अतिमानः तस्मान्नातिमन्येत पराभवस्य हैतन्मुखं यदतिमानः । श० ५ । १ । १ । १ ॥ ११ । १ । ८ । १ ॥

अतिरात्रः भूतं पूर्व्वोऽतिरात्रो भविष्यदुत्तरः पृथिवी पूर्व्वोऽतिरात्रो द्यौरुत्तरोऽग्निः पूर्वोऽतिरात्र आदित्य उत्तरः प्राणः पूर्वोऽतिरात्र उदान उत्तरः । तां० १० । ४ । १ ॥

,, चक्षुषी अतिरात्रौ । तां० १० । ४ । २ ॥

,, (यज्ञः) संवत्सरस्य वा एतौ दंष्ट्रौ यदतिरात्रौ तयोर्न स्वप्तव्यं संवत्सरस्य दंष्ट्रयोरात्मानञ्चेदपिदधानीति । तां० १० । ४ । ३ ॥

,, प्रतिष्ठा वाऽअतिरात्रः । श० ५ । ५ । ३ । ५ ॥

,, स्वरतिरात्रेण (अभिजयति) तै० ३ । १२ । ५ । ७ ॥

,, (देवाः) अतिरात्रेणामुं (द्युलोकमभ्यजयन्) तां० ९ । २ । ९॥

अतिवादः श्रीर्वा अतिवादः । गो० उ० ६ । १३ ॥

,, अतिवादेन वै देवा असुरानत्युद्याथैनानत्यायन् । ऐ० ६ । ३३॥

अतूर्तो होता अयं वा अग्निरतूर्तो होतेमं ह न कश्चन तिर्यंचं तरति । ऐ० २ । ३४ ॥

,, ,, न ह्येतᳬ (अग्निं) रक्षाᳬसि तरन्ति तस्मादाहातूर्त्तो होतेति । श० । १ । ४ । २ । १२ ॥

अत्ता स वै यः सोऽत्ताग्निरेव सः । श० १० । ६ । २ । २ ॥
प्राणो वाऽ अत्ता तस्यान्नमेवाहितयः । श० १० । ६ । २ । ४॥

अत्यः (हे ऽश्व त्वं) अत्योसि । तां० १ । ७ । १ ॥

,, (यजुः २२ । १९) तस्मादश्वः पशूनत्येति तस्मादश्वः पशूनां श्रैष्ठ्यं गच्छति । श० १३ । १ । ६ । १ ॥

,, (= अश्वः) अत्योऽसीत्याह । तस्मादश्वः सर्वान् पशूनत्येति तस्मादश्वः सर्वेषां पशूनाᳬश्रैष्ठ्यं गच्छति । तै० ३ । ८ । ९ । १॥

अत्यायुपात्रम् यदाहात्यायुपात्रमित्यति ह्येतदन्यानि पात्राणि यत् द्रोणकलशो देवपात्रं द्रोणकलशः । तां० ६ । ५ । ७ ॥

अत्रिः तद्धैतद्देवाः। रेतः (वाचः सकाशात्पतितं गर्भं) चर्मन्वा यस्मिन्वा बभ्रुस्तद्ध स्म पृच्छन्त्यत्रैव त्या ३ दिति ततोऽत्रिः सम्बभूव श० १।४।५।१३॥

,, वागेवात्रिर्वाचा ह्यन्नमद्यतेऽत्तिर्ह वै नामैतद्यदत्रिरिति। श० १४।५।२।२॥

अत्रिणः अत्रिणो वै रक्षाꣳसि। ष० ३।१॥

,, पाप्मानोऽत्रिणः। ष० ३।१॥

,, रक्षांसि वै पाप्मात्रिणः। ऐ० २।२॥

अथानिधनम् (साम) (देवाः) ब्रह्मवर्चसमथानिधनेनावारुन्धत। तां० १०।१२।३॥

अथर्ववेदः तानथर्वण ऋषीनाथर्वणांश्चार्षेयानभ्यश्राम्यदभ्यतपत् समतपत् तेभ्यः श्रान्तेभ्यस्तप्तेभ्यः सन्तप्तेभ्यो यान् मन्त्रानपश्यत् स आथर्वणो वेदोऽभवत्। गो० पू० १।५॥

,, शन्नो देवीरभिष्टय इत्येवमादिं कृत्वा अथर्ववेदमधीयते। गो० पू० १।२९॥

,, अथर्वणां चन्द्रमा देवतं तदेव ज्योतिः सर्वाणि छन्दांस्यापः स्थानम्। गो० पू० १।२९॥

,, येऽथर्वाणस्तद्भेषजम्। गो० पू० ३।४॥

,, अथर्वणामङ्गिरसां प्रतीची (दिक्)। तै० ३।१२।९।१॥

अथर्वा तद्यदब्रवीदथार्वाङेनमेतास्वेवाप्स्वन्विच्छेति तदथर्वाऽभवत् तदथर्वणोऽथर्वत्वम्। गो० पू० १।४॥

,, (यजुः ११।३२)–प्राणो वाऽअथर्वा। श० ६।४।२।१॥

,, प्राणोऽथर्वा। श० ६।४।२।२॥

अथर्वाङ्गिरसः अथर्वणामेकं पर्वव्याचक्षाण इवानुद्रवेत्। श० १३।४।३।७॥

,, अङ्गिरसामेकं पर्वव्याचक्षाण इवानुद्रवेत्। श० १३।४।३।८॥

,, मेद आहुतयो ह वाऽएता देवानाम्। यदथर्वाङ्गिरसः। श० ११।५।६।७॥

अदाभ्यः (ग्रहः) ते (देवाः) ऊचुः। अदभाम वाऽएनान् (असुरान्) इति तस्माददाभ्यो न वै (असुराः) नोऽदभन्निति तस्माददाभ्यो वाग्वाऽअदाभ्यः। श० ११।५।९।५॥

अदारसृत् (साम) दिवोदासं वै भरद्वाजपुरोहितन्नाना जनाः पर्य्ययतन्त स उपासीदद्दषे गातुम्मे विन्देति तस्माएतेन साम्ना गातुमविन्दद्गातुविद्धा एतत्सामानेन दारे नासृन्मेति तददारसृतोऽदारसृत्त्वं विन्दते गातुन्न दारे धावत्यदारसृता तुष्टुवानः तां० १५ । ३ । ७ ॥

,, भरद्वाजस्यादारसृद्भवति । तां० १५ । ३ । ६ ॥

अदितिः सर्वं वाऽअत्तीति तददितेरदितित्वम् । श०१० । ६ । ५ । ५ ॥

,, (यजुः १३ । १८) इयं (पृथिवी) वाऽअदितिरियꣳहीदꣳसर्वं ददते । श० ७ । ४ । २ । ७ ॥

,, इयं (पृथिवी) वा अदितिः । कौ० ७ । ६ ॥ तै० १ । १ । ६ । ५ ॥ गो० उ० १ । २५ ॥

,, इयं (पृथिवी) वै देव्यदितिः । तै० १ । ४ । ३ । १ ॥

,, इयं (पृथिवी) ह्यदितिः । ऐ० १ । ८ ॥

,, इयꣳ (पृथिवी) ह्येवादितिः । श० ३ । २ । ३ । ६ ॥

,, इयं वै पृथिव्यदितिः । श० १ । १ । ४ । ५ ॥ २ । २ । १ । १९ ॥ ३ । ३ । १ । ४ ॥

,, इयं वै पृथिव्यदितिः सेयं देवानां पत्नी । श० ५ । ३ । १ । ४ ॥

,, (यजुः ३८ । २) अदितिर्हि गौः । श० १४ । २ । १ । ७ ॥

,, अदितिर्हि गौः । श० २ । ३ । ४ । ३४ ॥

,, मा गामनागामदितिं वधिष्ट । मं० २ । ८ । १५ ॥

,, वाग्वाऽअदितिः । श० ६ । ५ । २ । २० ॥

,, अदितिरस्युभयशीर्ष्णी (वाक्) इति । श० ३ । २ । ४ । १६ ॥

,, आदित्या (अदितेरुत्पन्नाः) वा इमाः प्रजाः । तां० १३ । ९ । ५ ॥ १८ । ८ । १२ ॥

अद्रिः (यजुः १३ । ४२) गिरिर्वाऽअद्रिः । श० ७ । ५ । २ । १८ ॥

अद्रिजाः एष (सूर्य्यः) वा अद्रिजाः । ऐ० ४ । २० ॥

अधरोष्ठः अयं वै (भू-) लोकोऽधरोष्ठः । कौ० ३ । ७ ॥

अधिदेवनम् अधिदेवनं वाऽअग्निस्तस्यैतेऽअङ्गारा यदक्षाः । श० ५ । ३ । १ । १० ॥

अधिपतिः (यजुः १४ । ९) प्रजापतिर्वाऽअधिपतिः । श० ८ । २ । ३ । १२ ॥

अध्यर्द्धेडम् (साम) (देवाः) प्रतिष्ठाध्यर्द्धेडेन व्यजयन्त । तां० १० । १२ । ४ ॥

अध्यर्धः (वायुः) यदयमेक एव पवतेऽथ कथमध्यर्ध इति यदस्मिन्निदं सर्वमध्यार्ध्नोत्तेनाध्यर्ध इति । श० १४ । ६ । ९ । १० ॥

अध्रिगुः आध्रिगुर्वै देवानां शमिता । ऐ० २ । ७ ॥

अध्वरः देवान्ह वै यज्ञेन यजमानान्त्सपत्ना असुरा दुधूर्षाञ्चक्रुः (=हिंसितुमिच्छां कृतवन्तः) ते दुधूर्षन्त एव न शेकुर्धूर्वितुं ते परा बभूवुस्तस्माद्यज्ञोऽध्वरो नाम । श० १ । ४ । १ । ४० ॥

" (ऋ० ३ । २७ । ४ ॥) अध्वरो वै यज्ञः । श० १ । ४ । १ । ३८,३९ ॥

" अध्वरो वै यज्ञः । श० १ । २ । ४ । ५ ॥ १ । ४ । ५ । ३ । २ । ३ । ४ । १० ॥ ३ । ५ । ३ । १७ ॥ ३ । ९ । २ । ११ ॥

" प्राणोऽध्वरः । श० ७ । ३ । १ । ५ ॥

" रसोऽध्वरः । श० ७ । ३ । १ । ६ ॥

अध्वर्युः पूर्वार्धो वै यज्ञस्याध्वर्युर्जघनार्धः पत्नी । श० १ । ९ । २ । ३ ॥

" प्रतिष्ठा वा एषा यज्ञस्य यदध्वर्य्युः । तै० ३ । ३ । ८ । १० ॥

" वायुर्वा अध्वर्य्युरधिदैवं प्राणोऽध्यात्मम् । गो० पू० ४ । ५ ॥

" वह्निरध्वर्युः । तै० १ । १ । ६ । १० ॥

" मनोऽध्वर्य्युः । श० १ । ५ । १ । २१ ॥

" मनो वाऽअध्वर्य्युः । श० १२ । १ । १ । ५ ॥

" चक्षुरध्वर्युः । कौ० १७ । ७ ॥

" राज्यं वा अध्वर्य्युः । तै० ३ । ८ । ५ । १ ॥

" प्राणोदानौ वाऽअध्वर्यू । श० ५ । ५ । १ । ११ ॥

अनः भूमा वाऽ अनः । श० १ । १ । २ । ६ ॥

" यज्ञो वाऽअनः । श० १ । १ । २ । ७ ॥ ३ । ९ । ३ । ३ ॥

अनड्वान् अग्निरेष यदनड्वान् । श० ७ । ३ । २ । १ ॥

" आग्नेयो वाऽअनड्वान् । श० ७ । ३ । २ । १६ ॥ १३ । ८ । ४ । ६ ॥

" वह्निर्वा अनड्वान् । तै० १ । १ । ६ । १० ॥ १ । ८ । २ । ५ ॥

अनद्धा पुरुषः कोऽनद्धा पुरुष इति न देवान्न पितॄन्न मनुष्यानिति । ऐ० ७ । ९ ॥

„ एष ह वाऽ अनद्धापुरुषो यो न देवानवति न पितॄन्न मनुष्यान् । श० ६ । ३ । १ । २४ ॥

अनर्वा अनर्वा प्रेहीति । असपत्नेन प्रेहीत्येवैतदाह । श० ३ । ८ । २ । ३ ॥

अनश्नन्त्सांगमनः अथ य एष सभायामग्निः । एष एवानश्नन्त्सांगमनस्तद्यदेतमनशित्वेवोपसंगच्छंते तस्मादेषोऽनश्नन् । श० २ । ३ । २ । ३ ॥

अनात्मा अनात्मा हि मर्त्यः । श० २ । २ । २ । ८ ॥

अनाधृष्टं छन्दः (यजुः १४ । ९) विराड्वाऽअनाधृष्टं छन्दः । श० ८ । २ । ४ । ४ ॥

अनाधृष्टा (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अयं वा अग्निरनाधृष्टः । कौ० २७ । ५ ॥

अनाधृष्या (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अनाधृष्या तदग्निः । ऐ० ५ । २५ ॥

„ असावादित्योऽनाधृष्यः । कौ० २७ । ५ ॥

अनाप्ता (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अनाप्ता तत्पृथिवी । ऐ० ५ । २५ ॥

„ इयं वै पृथिव्यनाप्ता । कौ० २७ । ५ ॥

अनाप्या (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अनाप्या तद्द्यौः । ऐ० ५ । २५ ॥

„ असौ द्यौरनाप्या । कौ० २७ । ५ ॥

अनाशकः (= अनशनम्) एतद्वै सर्वं तपो यदनाशकस्तस्मादुपवसथे नाश्नीयात् । श० ९ । ५ । १ । ६ ॥

अनिरुक्तम् अनिरुक्तꣳ हि मनोऽनिरुक्तꣳ ह्येतद्यत्तूष्णीम् । श० १ । ४ । ४ । ५ ॥

„ सर्वं वाऽअनिरुक्तम् । श० १ । ३ । ५ । १० ॥ १ । ४ । १ । २१ ॥ २ । २ । १ । ३ ॥ १० । १ । ३ । ११ ॥

„ अपरिमितं वाऽअनिरुक्तम् । श० ५ । ४ । ४ । १३ ॥

अनिरुक्तः अनिरुक्तो ह्येष (अन्तरिक्ष-) लोकः । श० १ । ४ । १ । २६ ॥

अनिलया (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अनिलया तद्वायुर्न ह्येष कदाचनेलयति ऐ० ५ । २५ ॥

„ अनिलया तद्वायुर्न ह्येष इलयति । कौ० २७ । ५ ॥

अनीकम् सेनाया वै सेनानीरनीकम् । श० ५ । ३ । १ । १ ॥

अनुख्याता आदित्योऽनुख्याता । तै० ३ । ७ । ५ । ४ ॥
,, आदित्यो वा अनुख्याता । गो० उ० २ । १९ ॥ ४ । ९ ॥
अनुपानीयाः एताभिर्वा इन्द्रस्तृतीयसवनमन्वापिबत् तदनुपानीया-
,, नामनुपानीयात्वम् । ऐ० ३ । ३८ ॥
अनुमतिः इयं (पृथिवी) वाऽअनुमतिः स यस्तत्कर्म शक्नोति कर्तुं यच्चिकीर्षतीयꣳ ह्यस्मै तदनुमन्यते । श० ५।२ । ३ । ४ ॥
,, इयं (पृथिवी) वा अनुमतिः । इयमेवास्मै राज्यमनुमन्यते । तै० १ । ६ । १ । ४-५ ॥
,, इयं (पृथिवी) वा अनुमतिः । तै० १ । ६ । १ । १ ॥
,, या पूर्वा पौर्णमासी सानुमतिः । ऐ० ७ । ११ ॥ ष० ४ । ६ ॥ गो० उ० १ । १० ॥
,, यानुमतिः सा गायत्री । ऐ० ३ । ४७, ४८ ॥
,, अनुमत्यै हविरष्टकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ५ । २ । ३ । २ ॥
अनुम्लोचन्ती (अप्सराः) (यजुः १५ । १७) "प्रम्लोचन्ती" शब्दं पश्यत ।
अनुयाजा तद्यत्तासु सर्वास्विष्टासु (देवतासु) अथैतत्पश्चेवानुयजति तस्मादनुयाजाःनाम । श० १ । ८ । २ । ७ ॥
,, छन्दांꣳसि वाऽ अनुयाजाः । श० १ । ८ । २ । ८, १४ ॥
,, छन्दांꣳस्यनुयाजाः । श० ३ । ९ । ३ । ८ ॥
,, छन्दांꣳसि ह्यनुयाजाः । श० १ । ३ । २ । ९ ॥
,, पशवो वाऽअनुयाजाः । श० ३ । ८ । ४ । ८ ॥
,, रेतोधेयमनुयाजाः । कौ० १० । ३ ॥
,, प्रजानुयाजाः । ऐ० १ । ११ ॥
,, ये (प्राणाः) अवाञ्चस्तेऽनुयाजाः । ऐ० १ । १७ ॥
,, अपाना अनुयाजाः । कौ० ७ । १ ॥ १० । ३ ॥ श० ११ । २ । ७ । २७ ॥
,, अशनिरेव प्रथमोऽनुयाजः । ह्रादुनिर्द्वितीय उल्कुषी तृतीयः । श० ११ । २ । ७ । २१ ॥
,, न वाऽअत्र देवतास्त्यनुयाजेषु । श० १ । ८ । २ । १५ ॥
अनुरूपः स योऽयं (पुरुषः) चक्षुष्येषोऽनुरूपो नाम । अन्वङ् ह्येष सर्वाणि रूपाणि । जै० उ० १ । २७ । ४ ॥
,, पूर्वमु चैव तद्रूपमपरेण रूपेणानुवदति यत्पूर्वꣳरूपमपरेण

रूपेणानुवदति तदनुरूपस्यानुरूपत्वमनुरूप एनं पुत्रो जायते य एवं वेद । तां० १२ । १ । ५ ॥ १२ । ७ । ७ ॥ १३ । १ । ९ ॥ १३ । ७ । ७ ॥

अनुरूपः प्रजा अनुरूपः । गो० उ० ३ । २१,२२ ॥

" प्रजा वा अनुरूपः । ऐ० ३ । २४ ॥

" प्रजाऽनुरूपः । ऐ० ३ । २३ ॥ कौ० १५ । ४ ॥ २२ । ८ ॥ जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥

" अग्निरनुरूपः । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥

अनुवत्सरः वायुरनुवत्सरः । तां० १७ । १३ । १७ ॥ तै० १ । ४ । १० । १ ॥

अनुवषट्कारः संस्थानुवषट्कारः । कौ० १३ । ५, ८ ॥ १६ । १, २ ॥ गो० उ० ३ । ७ ॥

" संस्था वा एषा यदनुवषट्कारः । ऐ० २ । २८ ॥ ३ । २९ ॥

अनुवाक्या ह्वयति वाऽ अनुवाक्यया । श० १ । ७ । २ । १७ ॥

" असौ (द्युलोकः) ह्यनुवाक्या । श० १ । ४ । २ । १८ ॥

" असौ (द्यौः) वा अनुवाक्या । श० १ । ७ । २ । ११ ॥

अनुष्टुक् (छन्दः) वाग्वा अनुष्टुक् । तै० ३ । ३ । १० । ३ ॥

" " प्रतिष्ठा वा अनुष्टुक् । तै० ३ । ३ । ९ । १ ॥

अनुष्टुप् (छन्दः) अनुष्टुबनुस्तोभनात् । दै० ३ । ७ ॥

" अन्वस्तौदिति हि ब्राह्मणम् । दै० ३ । ८ ॥

" यस्याष्टौ ता अनुष्टुभम् । कौ० ९ । २ ॥

" द्वात्रिंशदक्षराऽनुष्टुप् । कौ० २६ । १ ॥ तै० १ । ७ । ५ । ५ ॥ तां० १० । ३ । १३ ॥

" अनुष्टुम्मित्रस्य पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥

" गायत्री वै सा यानुष्टुप् । कौ० १० । ५ ॥ १४ । २ ॥ २८ । ५ ॥

" वागेवासौ प्रथमानुष्टुप् । कौ० १५ । ३ ॥ १६ । ४ ॥

" वागनुष्टुप् । कौ० ५ । ६ ॥ ७ । ९ ॥ २६ । १ ॥ २७ । ६ ॥ श० १० । ३ । १ । १ ॥ तै० १ । ८ । ८ । २ ॥ तां० ५ । ७ । १ ॥

" (यजुः १५ । ५)—वागनुष्टुप्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

" वागनुष्टुप् सर्वाणि छन्दांᳫसि । तै० १ । ७ । ५ । ५ ॥

" वाग्घ्यनुष्टुप् । श० ३ । १ । ४ । २ ॥

" वाग्वा अनुष्टुप् । ऐ० १ । २८ ॥ ३ । १९ ॥ ६ । ३६ ॥ श० १ । ३ । २ । १६ ॥ ८ । ७ । २ । ६ ॥ गो० उ० ६ । १६ ॥

अनुष्टुप् अनुष्टुब्भि छन्दसां योनिः । तां० ११ । ५ । १७ ॥
,, ज्यैष्ठ्यं वा अनुष्टुप् । तां० ८ । ७ । ३ ॥ ८ । १० । १० ॥
,, परमं वाऽएतच्छन्दो यदनुष्टुप् । श० १३ । ३ । ३ । १ ॥
,, अन्तो वा अनुष्टुप् छन्दसाम् । तां० १९ । १२ । ८ ॥
,, तस्मादानुष्टुभं छन्दांꣳसि नानुव्यूहन्ति । तां० ६ । १ । ११ ॥
,, अनुष्टुप् छन्दसाम् (एतमादित्यमानशे) । तां० ४ । ६ । ७ ॥
,, इयं (पृथिवी) वाऽअनुष्टुप् । श० १ । ३ । २ । १६ ॥
तां० ८ । ७ । २ ॥
,, पादावनुष्टुप् । ष० २ । ३ ॥
,, प्रजापतिर्वा अनुष्टुप् । तां० ४ । ८ । ९ ॥
,, आनुष्टुभो वै प्रजापतिः । तां० ४ । ५ । ७ ॥
,, आनुष्टुभः प्रजापतिः । तै० ३ । ३ । २ । १ ॥
,, यस्य ते (प्रजापतेः) ऽहं (अनुष्टुप्) स्वं छंदोऽस्मि । ऐ० ३ । १३ ॥
,, अनुष्टुप् सोमस्यच्छन्दः । कौ० १५ । २ ॥ १६ । ३ ॥
,, विश्वेदेवा अनुष्टुभं समभरन् । जै० उ० १ । १८ । ७ ॥
,, आनुष्टुभो राजन्यः । तै० १ । ८ । ८ । २ ॥
तां० १८ । ८ । १४ ॥
,, आनुष्टुभो वाऽअश्वः । श० १३ । २ । २ । १९ ॥
,, आपो वा अनुष्टुप् । कौ० २४ । ४ ॥
,, अनुष्टुप् च वै सप्तदशश्च समभवताम् । तां० १० । २ । ४ ॥
,, आनुष्टुभी वै वृष्टिः । तां० १२ । ८ । ८ ॥
,, आनुष्टुभी वै रात्रिः । ऐ० ४ । ६ ॥
,, अनुष्टुबुदीची (दिक्) । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥
,, आनुष्टुभैषा (उत्तरा) दिक् । श० १३ । २ । २ । १९ ॥
,, सत्यानृते वा अनुष्टुप् । तै० १ । ७ । १० । ४ ॥
,, आनुष्टुभं वै चतुर्थमहः । कौ० २२ । ७, ८ ॥
,, सक्थ्यावनुष्टुभः । श० ८ । ६ । २ । ९ ॥

अनूकम् बृहतीछन्दो बृहस्पतिर्देवतानूकम् । श० १० । ३ । २ । ३ ॥

अनूबन्ध्या चतुर्थमेवैतत्सवनं यदनूबन्ध्या तस्मादच्युता भवति । कौ० १८ । ११ ॥

अनूराधाः (नक्षत्रम्) अन्वेषामरात्स्मेति । तदनूराधाः । तै० १ । ५ । २ । ८ ॥

" " (नक्षत्रियस्य प्रजापतेः) प्रतिष्ठाऽनूराधाः । तै० १ । ५ । २ । २ ॥

" " मित्रस्यानूराधाः । तै० १ । ५ । १ । ३ ॥ ३ । १ । २ । १ ॥

अनृतम् अमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति । तेन पूतिरन्तरतः । श० १ । १ । १ । १ ॥ ३ । १ । २ । १० ॥

" अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणो गृह्णाति । तै० १ । ७ । २ । ६ ॥

" तस्मादु हैतद्य आसक्त्यनृतं वदत्यूष इवैव पिस्यत्याक्य इव भवति परा ह त्वेवान्ततो भवति । श० ९ । ५ । १ । १७ ॥

" एतद्वाचश्छिद्रं यदनृतम् । तां० ८ । ६ । १३ ॥

" अनृतं (वा एतत्) यदा तपति वर्षति । तै० १ । ७ । ५ । ३ ॥

" सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः । श० १ । १ । १ । ४ ॥ १ । १ । २ । १७ ॥ ३ । ३ । २ । २ ॥

अन्तः अन्तो वै क्षयः । कौ० ८ । १ ॥

" अन्तो वै पर्य्यासोन्त उदर्कः । गो० उ० ३ । १६ ॥ ४ । ४ ॥ ४ । १८ ॥

अन्तःसदसम् या इमा (पुरुषस्य) अन्तर्देवतास्तेऽन्तःसदसम् । कौ० १७ । ७ ॥

अन्तकः एष (संवत्सरः) हि मर्त्यानामहोरात्राभ्यामायुषोऽन्तं गच्छत्यथ म्रियन्ते तस्मादेष एवान्तकः स यो हैतमन्तकं मृत्युꣳ संवत्सरं वेद । श० १० । ४ । ३ । २ ॥

अन्तरिक्षम् तद्यदस्मिन्निदं सर्वमन्तस्तस्मादन्तर्यक्षम् । अन्तर्यक्षं ह वै नामैतद् । तदन्तरिक्षमिति परोक्षमाचक्षते । जै० उ० १ । २० । ४ ॥

" अन्तरेव वा इदमिति तदन्तरिक्षस्यान्तरिक्षत्वम् । तां० २० । १४ । २ ॥

" सह हैवेमावग्रे लोकावासतुस्तयोर्वियतोर्योऽन्तरेणाकाश आसीत्तदन्तरिक्षमभवदीक्षꣳ हैतन्नाम ततः पुरान्तरा वाऽइदमीक्षमभूदिति तस्मादन्तरिक्षम् । श० ७ । १ । २ । २३ ॥

" अन्तरिक्षायतना हि प्रजा । तां० ४ । ८ । १३ ॥

अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षं वै सर्वेषां देवानामायतनम् । श० १४ । ३ । २ । ६॥

" वैश्वदेवोऽयमन्तरा लोकः (= अन्तरिक्षम्) । जै० उ० १ । ३७ । ४ ॥

" मध्यं वाऽअन्तरिक्षम् । श० ७ । ५ । १ । २६ ॥

" अव्रलिष्ट (अवरिष्ट इति पाठान्तरम्) इव वा अयम्मध्यमो लोकः । तां० ७ । ३ । १८ ॥

" अनिरुक्तो ह्येष (अन्तरिक्ष-)लोकः । श० १ । ४ । १ । २६ ॥

" तस्मादेषां लोकानामन्तरिक्षलोकस्तानिष्ठः । श० ७ । १ । २ । २० ॥

" छिद्रमिवेदमन्तरिक्षम् । तां० ३ । १० । २ ॥ २१ । ७ । ३ ॥

" सन्धिरस्यन्तरिक्षाय त्वांतरिक्षं जिन्व (आकाशः सन्धिः। तै० उप० १ । ३ । १) । तां० १ । ९ । ४ ॥

" एतेन (अन्तरिक्षेण) इमौ लोकौ (= द्यावापृथिव्यौ) विष्कब्धौ । जै० उ० १ । २० । ३ ॥

" अन्तरिक्षेण हीमे द्यावापृथिवी विष्टब्धे । श० १ । २ । १ । १६॥

" ऊधर्वा अन्तरिक्षꣳ (द्यावापृथिव्याख्यौ) स्तनावभितो नेन (पृथिवीरूपेण स्तनेन) वा एष देवेभ्यो दुग्धेऽमुना (द्युलोकरूपेण स्तनेन) प्रजाभ्यः । तां० २४ । १ । ६ ॥

" अन्तरिक्षेणेदꣳ सर्वं पूर्णम् । तां० १५ । १२ । ५ ॥

" महद्धीदमन्तरिक्षम् । कौ० २६ । ११ ॥

" अन्तरिक्षं वाऽअवरꣳसधस्थम् । श० ९ । २ । ३ । ३९ ॥

" अन्तरिक्षं वाऽअपाꣳ सधस्थम् । श० ७ । ५ । २ । ५७॥

" (असुराः) रजतां (पुरीं) अन्तरिक्षम् (अकुर्वत) । ऐ० १ । २३ ॥

" (असुराः) रजतां (पुरीं) अन्तरिक्षलोके (अकुर्वत)। कौ० ८ । ८ ॥

" रजता (पुरी) अन्तरिक्षम् । गो० उ० २ । ७ ॥

" अयम्म आकाशः स मे त्वयि (अन्तरिक्षे) । जै० उ० ३ । २१ । १४ ॥

अन्तरिक्षम् यान्येव बभ्रूणीव हरीणि (लोमानि) तान्यन्तरिक्षस्य रूपम् । श० ३ । २ । १ । ३ ॥

" अन्तरिक्षं पृथिव्याम् (प्रतिष्ठितम्) । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥

" अन्तरिक्षमस्यग्नौ श्रितम् । वायोः प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । ८ ॥

" वायुनान्तरिक्षेण वयोभिस्तेनैष लोकस्त्रिवृद्योऽयमंतरा । तां० १० । १ । १ ॥

" य एवायम्पवते (वायुः) एतदेवान्तरिक्षम् । जै० उ० १ । २० । २ ॥

" अथ यत्कपालमासीत्तदन्तारिक्षमभवत् । श० ६ । १ । २ । २ ॥

" (देवाः) अन्तरिक्षं पशुमद्भिः (यज्ञैरभ्यजयन्) । तां० १७ । १३ । १८ ॥

" अथ द्वितीययाऽऽ वृतेदमेवाऽन्तरिक्षं जयति यदुचान्तरिक्षे । तदेतैश्चैनं छन्दोभिस्समर्द्धयति यान्याभिसम्भवाति । एतां चास्मै दक्षिणाम्प्रयच्छति यामभिजायते । जै० उ० ३ । ११ । ६ ॥

अन्तर्यामः(ग्रहः) तद्यदस्यैषो (उदानः) ऽन्तरात्मन्यतो यद्वेनेनेमाः प्रजा यतास्तस्मादन्तर्यामो नाम । श० ४ । १ । २ । २ ॥

" (यज्ञस्य) उदान एवान्तर्यामः । श० ४ । १ । १ । १ ॥

" अन्तर्यामोऽपान एव । कौ० १२ । ४ ॥

" असौ (द्यौः) एवान्तर्यामः । श० ४ । १ । २ । २७ ॥

" अन्तर्यामपात्रमेवान्ववयः प्रजायन्ते । श० ४ । ५ । ५ । ३ ॥

अन्तर्यामी वेत्थ नु त्वं काप्य तमन्तर्यामिणं य इमं च लोकं परं च लोक ᳪ सर्वाणि च भूतान्यन्तरो यमयतीति । श० १४ । ६ । ७ । ३ ॥

अन्धः (-स्) (यजुः १६ । ४७॥) अन्धसस्पतऽइति सोमस्यपतऽइत्येतत् । श० ९ । १ । १ । २४ ॥

" अहर्वा अन्धः । तां० १२ । ३ । ३ ॥

" अन्धो रात्रिः । तां०९ । १ । ७ ॥

अन्धाहिः यत्तेजनं सोऽन्धाहिः । ऐ० ३ । २६ ॥

अन्नपत्नी (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अन्नपत्नी तद्यादित्यः । ऐ० ५ । २५ ॥

" " असौ (द्यौः) अन्नपत्नी । कौ० २७ । ५ ॥

अन्नम् अर्को वै देवानामन्नम् । श० १२ । ८ । १ । २ ॥ तै० १ । १ । ८ । ५ ॥

" अन्नं वै देवा अर्क इति वदन्ति । तां० १५ । ३ । २३ ॥

" अन्नं वा अर्कः । तां० ५ १ । ९ ॥ १४ । ११ । ९ ॥ १५ । ३ । ३४ ॥ गो० उ० ४ । २ ॥

" अन्नमर्कः । श० ९ । १ । १ । ४ ॥

" अन्नं वै वाजः । तां० १३ । ९ । १३, २१ ॥ १५ । ११ । १२ ॥ १८ । ६ । ८ ॥

" त्रेधा विहितꣳ ह्यन्नम् । श० ८ । ५ । ३ । ३ ॥

" त्रिवृद्ध्यन्नम् । श० ३ । २ । १ । १२ ॥ ३ । ७ । १ । २० ॥

" त्रिवृद्धाऽअन्नं कृषिर्वृष्टिर्बीजम् । श० ८ । ६ । २ । २ ॥

" विरूपं (=नानारूपम्) अन्नम् । तां० १४ । ९ । ८ ॥

" पाङ्क्तं ह्यन्नम् । तां० ५ । २ । ७ ॥

" सप्त वा अन्नानि । तै० १ । ३ । ८ । १ ।

" सर्वम्वेतदन्नं यद्दधिमधुघृतम् । श० ९ । २ । १ । ११ ॥

" एतदु परममन्नं यद्दधिमधुघृतम् । श० ९ । २ । १ । १२ ॥

" यदुवाऽआत्मसंमितमन्नं तदवति तन्न हिनस्ति यद्भूयो हिनस्ति तद्यत्कनीयो न तदवति । श० ७ । ५ । १ । १४ ॥ ९ । २ । २ । २ ॥

" अरत्निमात्राद्ध्यन्नमद्यते । श० ७ । ५ । १ । १३ ॥ १० । २ । २ । ७ ॥

" द्विः संवत्सरस्यान्नं पच्यते । श० ६ । ५ । ४ । ९ ॥

" शान्तिर्वा अन्नम् । ऐ० ५ । २७ ॥ ७ । ३ ॥

" अन्नं वै सर्वेषां भूतानामात्मा । गो० उ० १ । ३ ॥

" वैश्वदेवं वा अन्नम् । तै० १ । ६ । १ । १० ॥

" अन्नं वाऽआयतनम् । श० ६ । २ । १ । १४ ॥

" अन्नजीवनꣳ हीदꣳ सर्वम् । श० ७ । ५ । १ । २० ॥

अन्नम् अन्नं प्राणमन्नमपानमाहुः । अन्नं मृत्युं तमु जीवातुमाहुः । अन्नं ब्रह्माणो जरसं वदन्ति । अन्नमाहुः प्रजननं प्रजानाम् । तै० २ । ८ । ८ । ३ ॥

„ अन्नमेव ग्रहः । अन्नेन हीदꣳ सर्वं गृहीतम् । श० ४ । ६ । ५ । ४ ॥

„ तस्मात्प्राणोऽन्नेन गृहीतो यो ह्येवान्नमत्ति स प्राणिति । श० ७ । ५ । १ । १६ ॥

„ तस्मात्प्राणेनान्नं गृहीतं यो ह्येव प्राणिति सोऽन्नमत्ति । श० ७ । ५ । १ । १७ ॥

„ अन्नं प्राणः । तै० ३ । २ । ३ । ४ ॥

„ अन्नꣳहि प्राणः । श० ३ । ८ । ४ । ८ ॥ ४ । ३ । ४ । २५ ॥

„ ताः (प्रजाः) अन्नादेव सम्भवन्ति तस्माद्व्न्नमेव प्रजाः । श० २ । ५ । १ । ६ ॥

„ अन्नं पशवः । ऐ० ५ । १९ ॥

„ रेतो वा अन्नम् । गो० पू० ३ । २३ ॥

„ अन्नमु श्रीः । श० ८ । ६ । २ । १ ॥

„ अन्नं वै ब्रह्मणः पुरोधा । तां० १२ । ८ । ६ ॥ १३ । ९ । २७ ॥ १४ । ९ । ३८ ॥

„ अन्नमशीतयः । श० ९ । १ । १ । २१ ॥

„ अन्नमशीतिः । श० ८ । ५ । २ । १७ ॥

„ अन्नं वै चन्द्रमाः । तै० ३ । २ । ३ । ४ ॥

„ अन्नं वाऽअपां पाथः । श० ७ । ५ । २ । ६० ॥

अन्नादः अन्नादोऽग्निः । श० २ । १ । ४ । २८ ॥ २ । २ । ४ । १ ॥

अन्नादा (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अन्नादा तदग्निः । ऐ० ५ । २५ ॥

अन्नादी (प्रजापतेस्तनूविशेषः) इयं (पृथिवी) वा अन्नादी । कौ० २७ । ५ ॥

अन्वाहार्यः तद्यदेतद्धीनं यज्ञस्यान्वाहरति तस्मादन्वाहार्यो नाम । श० ११ । १ । ८ । ६ ॥

अन्वाहार्य्यपचनः (अग्निः) पुत्रोऽन्वाहार्यपचनः । ऐ० ८ । २४ ॥

„ व्यानोऽन्वाहार्यपचनः । श० २ । २ । २ । १८ ॥

अन्वाहार्य्यपचनः (अग्निः) दम इत्यन्वाहार्यपचनः । जै० उ० ४ । २६ । १५ ॥

,, अथैष भ्रातृव्यदेवत्यो यदन्वाहार्यपचनः। श० २ । ३ । २ । ६ ॥

,, अन्तरिक्षलोको वा अन्वाहार्यपचनः । ष० १ । ५ ॥

अन्वितिः (यजुः १५ । ६) अन्नमन्वितिः । श० ८ । ५ । ३ । ३ ॥

अपभया (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अपभया तन्मृत्युः सर्वं ह्येतस्माद्बिभाय । ऐ० ५ । २५ ॥

,, अपभया तन्मृत्युर्नह्येष बिभेति । कौ० २७ । ५ ॥

अपभरणीः (नक्षत्रम्) अपभरणीष्वपावहन् । तै० १ । ५ । २ । ९ ॥

,, ,, यमस्यापभरणीः । तै० १ । ५ । १ । ५ ॥ ३ । १ । २ । ११ ॥

अपरपक्षः प्रस्तुतं विष्टुतᳪ सुतासुन्वतीति । एतावनुवाकावपरपक्षस्याहोरात्राणां नामधेयानि । तै० ३ । १० । । १० । २ ॥

अपराजिता दिक् ते (देवासुराः) उदीच्यां प्राच्यां दिश्ययतन्त ते ततो न पराजयन्त सैषा दिगपराजिता । ऐ० १ ।१४ ॥

अपराह्णः भगस्यापराह्णः । तै० । १ । ५ । ३ । ३ ॥

अपरिमितम् अपरिमितं भव्यम् । ऐ० ४ । ६ ॥

अपरोधोऽनपरुद्धः (= प्राणः) एष (प्राणः) ह्यन्यमपरुणद्धि नैतमन्यः । जै० उ० २ । ४ । ८ ॥

अपांक्षयः (यजुः १३ । ५३) चक्षुर्वाऽअपां क्षयस्तत्र हि सर्वदैवापः क्षियन्ति । श० ७ । ५ । २ । ५४ ॥

अपां ज्योतिः (यजुः १३ । ५३) विद्युद्वा ऽअपां ज्योतिः । श० ७ । ५ । २ । ४९ ॥

अपां पाथः (यजुः १३ । ५३) अन्नं वा अपां पाथः । श० ७ । ५ । २ । ६० ॥

अपां पुरीषम् (यजुः १३ । ५३) सिकता वा अपां पुरीषम् । श० ७ । ५ । २ । ५९ ॥

अपां भस्म (यजुः १३ । ५३) अभ्रं वा ऽपां भस्म । श० ७ । ५ । २ । ४८ ॥

अपां योनिः (यजुः १३ । ५३) समुद्रो वाऽ अपां योनिः । श० ७ । ५ । २ । ५८ ॥

अपां सदनम् (यजु० १३।५३) द्यौर्वाऽअपाᳬं सदनं दिवि ह्यापः सन्नाः। श० ७।५।२।५६॥

अपां सधस्थम् (यजु० १३।५३) अंतरिक्षं वाऽअपाᳬं सधस्थम्। श० ७।५।२।५७॥

अपां सधिः श्रोत्रं वा अपाᳬं सधिः। श० ७।५।२।५५॥

अपानः अपानो वा एतवान् (आगमनविशिष्टत्वादाकारोपसर्गवानिति सायणः)। श० १।४।३।३॥

,, अन्तर्ह्यपानः। तां० ७।६।१४॥

,, अपानेन हि गन्धाञ्जिघ्रति। श० १४।६।२।२॥

,, तस्माद्वहु किंच किंचाऽपानेन जिघ्रति। जै० उ० १।६०।५॥

,, अन्तर्यामोऽपान एव। कौ० १२।४॥

,, अपानेन हि मनुष्या अन्नमदन्ति। श० १०।१।४।१२॥

,, अग्निरपानः। जै० उ० ४।२२।९॥

,, अपाना अनुयाजाः। कौ० ७।१॥ १०।३॥ श० ११।२। ७।२७॥

,, घोषीव ह्ययमपानः। प० २।२॥

,, (प्रजापतिः) अपानादन्तरिक्षलोकं (प्रावृहत्)। कौ० ६।१०॥

,, (अयास्य आङ्गिरसः) अपानेन मनुष्यान्मनुष्यलोके (अदधात्)। जै० उ० २।८।३॥

,, चत्वार ऋतुभिरिति (यजन्ति) अपानमेव तद्यजमाने दधाति। कौ० १३।९॥

,, अपानः प्रत्याश्रावितम्। तै० २।१।५।९॥

,, तं (पशुं संज्ञप्तं) प्रतीचीं दिगपानेत्यनुप्राणदपानमेवास्मिन्नेतद्दधात्। श० ११।८।३।६॥

अपापः अपापो (देवानां) निग्रभीता। ऐ० २।७॥

अपामयनम् (यजु० १३।५३) इयं (पृथिवी) वाऽअपामयनमस्याᳬं ह्यापो यन्ति। श० ७।५।२।५०॥

अपामार्गः अपामार्गैरपमृजते। श० १३।८।४।४॥

,, अथापामार्गहोमं जुहोति। अपामार्गैर्वै देवा दिक्षु नाष्ट्रा रक्षाᳬंस्यपामृजत ते व्यजयन्त। श० ५।२।४।१४॥

,, यदपामार्गहोमो भवति रक्षसामपहत्यै। तै० १।७।१।८॥

,, प्रतीचीनफलो वाऽ अपामार्गः। श० ५।२।४।२०॥

अपामेम (यजु० १३ । ५३) वायुर्वाऽअपामेम यदा ह्येवैष इतश्चेतश्च वात्यथापो यन्ति । श० ७ । ५ । २ । ४६ ॥

अपामोघ्म (यजु० १३ । ५३) ओषधयो वाऽअपामोघ्म यत्र ह्याप उन्दन्त्यस्तिष्ठन्ति तदोषधयो जायन्ते । श० ७ । ५ । २ । ४७ ॥

अपिशर्वराणि (छन्दांसि) अपिशर्वर्या अनुस्मसीत्यब्रुवन्नपिशर्वराणि खलु वा एतानि छंदांसीति ह स्माहैतानि हीन्द्रं रात्रेस्तमसो मृत्योर्बिभ्यतमत्यपारयंस्तदपिशर्वराणामपिशर्वरत्वम् । ऐ० ४ । ५ ॥

" तद्यदपिशर्वर्या अपिस्मसीत्यब्रुवंस्तदपिशर्वराणामपिशर्वरत्वं शर्वराणि खलु ह वा अस्यैतानि छन्दांसीति ह स्माहैतानि ह वा इन्द्रं रात्र्यास्तमसो मृत्योरभिपत्यावारयंस्तदपिशर्वराणामपिशर्वरत्वम् । गो० उ० ५ । १ ॥

" द्वादशस्तोत्राण्यपिशर्वराणि। ऐ० ४ । ६ ॥

अपूपः इन्द्रियमपूपः । ऐ० २ । २४ ॥

अपूर्वा (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अपूर्वा तन्मनः । ऐ० ५ । २५ ॥ कौ० २७ । ५ ॥

अप्तोर्यामः यद् (विष्णुः पशून्) आप्नोत् । तदप्तोर्यामस्याप्तोर्यामत्वम् । तै० २ । ७ । १४ । २ ॥

अप्तोर्यामा ताः (प्रजाः) यदाप्त्वायच्छद्तो वा अप्तोर्यामा । गो० उ० ५ । ९ ॥

" यं कामङ्कामयते तमेतेनाप्नोति । तदप्तोर्य्याम्णोऽप्तोर्य्यामत्वम् । तां० २० । ३ । ४-५ ॥

अप्रतिधृष्या (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अप्रतिधृष्या तदादित्यः । ऐ० ५ । २५ ॥

अप्सराः गन्ध इत्यप्सरसः (उपासते) । श० १० । ५ । २ । २० ॥

" किं नु तेऽस्मासु (अप्सरस्सु) इति । हसो मे क्रीडा मे मिथुनम्मे । जै० उ० ३ । २५ । ८ ॥

अप्सराः सोमो वैष्णवो राजेत्याह तस्याप्सरसो विशस्ता इमा आसत इति युवतयः शोभना उपसमेता भवन्ति ता उपदिशत्याङ्गिरसो वेदः सोऽयमिति । श० १३ । ४ । ३ । ८ ॥

„ (यजु० १८ । ३८) तस्य (अग्नेः) ओषधयोऽप्सरसः । श० ९ । ४ । १ । ७ ॥

„ (यजु० १८ । ३९) तस्य (सूर्यस्य) मरीचयोऽप्सरसः । श० ९ । ४ । १ । ८ ॥

„ (यजु० १८ । ४०) तस्य (चन्द्रमसः) नक्षत्राण्यप्सरसः । श० ९ । ४ । १ । ९ ॥

„ (यजु० १८ । ४१) तस्य (वातस्य) आपोऽप्सरसः । श० ९ । ४ । १ । १० ॥

„ (यजु० १८ । ४२) तस्य (यज्ञस्य) दक्षिणा अप्सरसः । श० ९ । ४ । १ । ११ ॥

„ (यजु० १८ । ४३) तस्य (मनसः) ऋक्सामान्यप्सरसः । श० ९ । ४ । १ । १२ ॥

अब्जाः एष (सूर्य्यः) वा अब्जा अद्भ्यो वा एष प्रातरुदेत्यपः सायं प्रविशति । ऐ० ४ । २० ॥

अभयम् (यजु० १२ । ४८) स्वर्गो वै लोकोऽभयम् । श० १२ । ८ । १ । २२॥

अभिचारः नैनथ्ंशपथम् । नाभिचरितमागच्छति य एवं वेद । तै० ३ । १२ । ५ । १ ॥

अभिजित् (नक्षत्रम्) देवासुराः संयत्ता आसन् । ते देवास्तस्मिन्नक्षत्रेऽभ्यजयन् । यदभ्यजयन् तदभिजितोऽभिजित्त्वम् । तै० १ । ५ । २ । ३—४ ॥

„ यस्मिन्ब्रह्माभ्यजयत् सर्व्वमेतत् । अमुञ्च लोकमिदमू च सर्व्वम् । तन्नो नक्षत्रमभिजिद्विजित्य श्रियं दधात्वहृणीयमानम् । तै० ३ । १ । २ । ५ ॥

„ अभिजिन्नाम नक्षत्रमुपरिष्टादषाढानामवस्ताच्छ्रोणायै । तै० १ । ५ । २ । ३ ॥

अभिजित् (यज्ञः) अभिजिता वै देवा अभ्यजयन्निमांस्त्रीँल्लोकान् । कौ० २३ । १ ॥

अभिजित् (यज्ञः) अभिजिता वै देवा इमान् लोकानभ्यजयन्। तां० २२। ८। ४॥

" अभिजिता वै देवा असुरानिमान् लोकानभ्यजयन्। तां० २०। ८। १॥

" सो (इन्द्रः) ऽकामयत यन्मेऽनभिजितं तदभिजयेयमिति स एतमभिजितमपश्यत्तेनानभिजितमभ्यजयत्। तां० १६। ४। ६॥

" यदभिजिद्भवत्यनभिजितस्याभिजित्यै। तां० १६। ४। ७॥

" अग्निरेवाभिजिदग्निर्हीदं सर्वमभ्यजयत्। कौ० २४। १॥

" अथ यदभिजितमुपयन्ति। अग्निमेव देवतां यजन्ते। श० १२। १। ३। १२॥

" स वा अभिजिदभयसामा सर्वस्तोमो भवति। कौ० २४। १॥

" एकाहो वा अभिजित्। कौ० २५। २॥

अभितष्टीयम् (सूक्तम्) प्रजापतिर्वा अभितष्टीयम्। कौ० २९। ७॥

अभितृण्णवत्यः (ऋचः) इन्द्रो वै प्रातःसवने न व्यजयत स एताभिरेव माध्यन्दिनं सवनमभ्यतृणद्यदभ्यतृणत्तस्मादेता अभितृण्णवत्यो भवन्ति। ऐ० ६। ११॥

" तद्यदेताभिः (इन्द्रः) माध्यन्दिनं सवनमभ्यतृणत्तस्मादेता अभितृण्णवत्यो भवन्ति। गो० उ० २। २१॥

अभिद्यवः (ऋ० ३। २७। १) अर्द्धमासा वाऽ अभिद्यवः। श० १। ४। १। ९॥

" मासा देवा अभिद्यवः। गो० पू० ५। २३॥

अभिनिधनम् (साम) अभिनिधनेन वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत्तमस्तृणुत स्तृणुते भ्रातृव्यमभिनिधनेन तुष्टुवानः। तां० १४। ४। ५॥

अभिप्लवः (षडहः) (आदित्याः) स्वर्गं लोकमभ्यप्लवन्त यदभ्यप्लवन्त तस्मादभिप्लवः। गो० पू० ४। २३॥

अभिप्लवः (षडहः) तऽआदित्याः। चतुर्भिस्तोमैश्चतुर्भिः पृष्ठैर्लघुभिः सामभिः स्वर्गं लोकमभ्यप्लवन्त यदभ्यप्लवन्त तस्मादभिप्लवाः। श० १२।२।२।१०॥

,, यद्वेवैष षडहः पुनः पुनरभिप्लवते तस्मादभिप्लवो नाम। कौ० २१।६॥

,, ते (देवाः) एतेनाभिप्लवेनाभिप्लुत्य मृत्युं पाप्मानमपहत्य ब्रह्मणः सलोकतां सायुज्यमापुः। कौ० २१।१॥

,, (=परिप्लवः) तद्यदभिप्लवमुपयन्ति संवत्सरमेव तद्यजमानाः समारोहन्ति। कौ० २०।१॥

,, इमे वै लोका अभिप्लवाः। श० १२।२।२।१॥

,, पिता वा अभिप्लवः पुत्रः पृष्ठ्यः। गो० पू० ४।१७॥

,, ग्रीवा अभिप्लवाः। कौ० २१।५॥

,, पशवो वा अभिप्लवाः। कौ० २१।५॥

अभिभूतयः छन्दांꣳसि वा अभिभूतयः। तां० ९।४।७॥

अभिमातिः [यजु० ९।३७॥ ३८।८॥] सपत्नो वाऽअभिमातिः। श० ३।९।४।९॥ ५।२।४।१६॥ १४।२।२।८॥

अभिमातिषाहः [बहुवचने] [यजु० १२। ११३] संवृण्वान्यभिमातिषाह इति सपत्ना वै भ्रातृव्या अभिमातयः...

अभिषेकः शीर्षतो वाऽअभिषिच्यमानोऽभिषिच्यते। श० ९।३।२।३॥

अभीत्वरी (यजु० २८।६) सेना वा अभीत्वरी। कौ० २८।५॥

अभीवर्त्तः (ब्रह्मसाम) अभीवर्त्तेन वै देवाः स्वर्गं लोकमभ्यवर्त्तन्त। तां० ४।३।१॥

,, अभीवर्त्तेन वै देवा असुरानभ्यवर्त्तन्त यदभीवर्त्तो ब्रह्मसाम भवति भ्रातृव्यस्याभिवृत्यै। तां० ८।२।८॥

अभीवर्त्तः (ब्रह्मसाम) वृषा वा एष रेतोधा यदभीवर्त्तः। तां० ४।३।८॥
,, अभीवर्त्तो ब्रह्मसाम भवत्येकाक्षराणिधनः प्रतिष्ठायै। तां० १५।१०।११॥

अभीवर्त्तः सविंशः (यजु० १४।२३) संवत्सरो वाऽअभीवर्त्तः सविंꣳशस्तस्य द्वादशमासा सप्तऽर्तवः संवत्सर एवाभीवर्तः सविंꣳशस्तद्यत्तमाहाभीवर्त इति संवत्सरो हि सर्वाणि भूतान्यभिवर्तते। श० ८।४।१।१५॥

अभ्रम् अथ यदभ्रं स्यादेतद्वा अस्य तद्रूपं येन प्रजा बिभर्त्ति। कौ० १८।४॥
,, अग्नेर्वै धूमो जायते धूमादभ्रमभ्राद्वृष्टिः। श० ५।३ ५।१७॥
,, अभ्रं वा अपां भस्म। श० ७।५।२।४८॥
,, (वसोर्धारायै) अभ्रमूधः। श० ९।३।३।१५॥

अभ्रातृव्या (प्रजापतेस्तनूविशेषः) अभ्रातृव्या तत्संवत्सरः। ऐ० ५। २५॥ कौ०। २७।५॥

अभ्रिः वाग्वाऽअभ्रिः। श० ६।४।१।५॥
,, वज्रो वा ऽअभ्रिः। श० ३।५।४।२॥ ६।३।१।३९॥

अमतिः (ऋ० ३।८।२) अशनाया वै पाप्मा ऽमतिः। ऐ० २।२॥
,, (यजुः १७।५४) अशनाया वाऽअमतिः। श० ९।२।३।८॥

अमावास्या तं (चन्द्रमसं) देवा इन्द्रज्येष्ठाः सोमपाश्चासोमपाश्च यथा पितरं पितामहं प्रपितामहं वा वृद्धं प्रलयमुपगच्छमानं व्याधिगतं मरिष्यतीति वा तां रात्रिं वसन्ते तदमावास्याया अमावास्यात्वम्। प० ४।६॥
,, स यत्रैष (चन्द्रमाः) एतांꣳ रात्रिं न पुरस्तान्न पश्चाद्ददृशे तदिमं लोकमागच्छति स इहैवापश्चौषधीश्च प्रविशति स वै देवानां वस्वन्नꣳ ह्येषां तद्यदेष एताꣳ रात्रिमिहामा वसति तस्मादमावास्या नाम। श० १। ६।४।५॥
,, ते देवा अब्रुवन्। अमा (=सह) वै नोऽद्य वसुः (इन्द्रः) वसति यो नः प्रावात्सीदिति। श० १।६।४।३॥

अमावास्या इन्द्रो वृत्रं हत्वा असुरान् पराभाव्य । सोऽमावास्यां प्रत्यागच्छत् । तै० १ । ३ । १० । १ ॥

,, चन्द्रमा अमावास्यां रात्रिमादित्यम्प्रविशत्यादित्योऽग्निम्। जै० उ० १ । ३३ । ६ ॥

,, तस्य (संवत्सरस्य) एत(द्)द्वारं यदमावास्या। चन्द्रमा एव द्वारपिधानः । श० ११ । १ । १ । १ ॥

,, ब्रह्म वै पौर्णमासी क्षत्रममावास्या । कौ० ४ । ८ ॥

,, कामो वा अमावास्या । तै० ३ । १ । ५ । १५ ॥

,, ऐन्द्राग्न ऀ ह्यमावास्य ऀ हविर्भवति । श० १ । ८ । ३ । ४ ॥

,, सान्नाय्यभाजना वाऽअमावास्या । श० २ । ४ । ४ । २० ॥

अमृतम् अमृतान्मृत्युः (निवर्तते) । श० १० । २ । ६ । १९ ॥

,, एतद्वै मनुष्यस्यामृतत्वं यत्सर्वमायुरेति । श० ९ । ५ । १ । १० ॥

,, एतद्वाव मनुष्यस्यामृतत्वं यत्सर्वमायुरेति । तां० २२ । १२ । २ ॥ २५ । १२ । ३ ॥

,, य एव शतं वर्षाणि यो वा भूया ऀ सि जीवति स हैवैतदमृतमाप्नोति । श० १० । २ । ६ । ८ ॥

,, अमृतमु वै प्राणाः । श० ९ । ३ । ३ । १३ ॥

,, अमृतं वै प्राणाः । गो० उ० १ । १३ ॥

,, अमृतं वै प्राणः (प्राण इत्यस्य स्थाने "प्रणवः" गो० उ० ३ । ११) । कौ० ११ । ४ ॥ १४ । २ ॥

, अमृत ऀ हि प्राणः । श० १० । १ । ४ । २ ॥

,, प्राणो वाऽ अमृतम् । श० १४ । ४ । ४ । ३ ॥

,, अमृतमापः । गो० उ० । १ । ३ ॥

,, अमृतत्वं वा आपः । कौ० १२ । १ ॥

,, अमृता ह्यापः । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥

,, यद्वैयजं तदमृतं यदमृतं तद्ब्रह्म । गो० पू० ३ । ४ ॥

,, अमृत ऀ ह्येतदमृतेन क्रीणाति यत्सोम ऀ हिरण्येन । श० ३ । ३ । ३ । ६ ॥

,, अमृत ऀ हिरण्यम् । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥ १ । ७ । ८ । १ ॥

,, अमृत ऀ हिरण्यममृतमेष (आदित्यः) । श० ६ । ७ । १ । २ ॥

,, आदित्योऽमृतम् । श० १० । २ । ६ । १६ ॥

,, अग्निरमृतम् । श० १० । २ । ६ । १७ ॥

अमृतम् अमृतमेभ्यः (विश्वसृड्भ्यः) उदगायत् । सहस्रं परिवत्सरान् । तै० ३ । १२ । ९ । ३ ॥

अमृतः (यजु० ११ । ५) प्रजापतिर्वाऽअमृतः । श० ६ । ३ । १ । १७ ॥

" " ते (देवाः) होचुः (हे मृत्यो) नातोऽपरः कश्चन सह शरीरेणामृतोऽसद्यदैव त्वमेतं भागꣳ हरासाऽ अथ व्यावृत्य शरीरेणामृतोऽसद्यो ऽमृतो ऽसद्विद्यया वा कर्मणा वेति यद्वै तद्ब्रुवन्विद्यया वा कर्मणा वेत्येषा हैव सा विद्या यदग्निरेतदु हैव तत्कर्म यदग्निः । श० १० । ४ । ३ । ९ ॥

अमृतस्य पुत्राः (यजुः० ११ । १५) प्रजापतिर्वाऽअमृतस्तस्य विश्वे देवाः पुत्राः । श० ६ । ३ । १ । १७ ॥

अमेध्यम् अस्ति वै पुरुषस्यामेध्यं यत्रास्यापो नोपतिष्ठन्ते केशश्मश्रौ च याऽ अस्य नखेषु चापो नोपतिष्ठन्ते तद्यत्केशश्मश्रु च वपते नखानि च निकृन्तते मेध्यो भूत्वा दीक्षा इति । श० ३ । १ । २ । २ ॥

" अस्ति वै पत्न्या अमेध्यं यदवाचीनं नाभेः । श० १ । ३ । १ । १३ ॥

अमेनिः (यजु० ३८ । १४) अमेन्यस्मे नृम्णानि धारयेत्यक्रुध्यन्तो धनानि धारयेत्येवैतदाह । श० । १४ । २ । २ । ३० ॥

अम्ययः (ऋ० १ । २३ । १६) आपो वा अम्ययः । कौ० १२ । २ ॥

अम्बिका शरद्वा अस्य (रुद्रस्य) अम्बिका स्वसा । तै० १ । ६ । १० । ४ ॥

अम्भांसि अयं वै (भू-)लोकोऽम्भाꣳसि । तस्य वसवोऽधिपतयः । तै० ३ । ८ । १८ । १ ॥

अयः (प्रजापतिः) अश्मनो ऽयः (असृजत) । श० ६ । १ । ३ । ५ ॥

" दिशो वा अयस्मय्यः (सूच्यः) । तै० ३ । ९ । ६ । ५ ॥

" अस्य वै (भू-)लोकस्य रूपमयस्मय्यः (सूच्यः) । तै० ३ । ९ । ६ । ५ ॥

" (असुराः) अयस्मयीमेव (पुरीं) अस्मिंल्लोके (चक्रिरे) । श० ३ । ४ । ४ । ३ ॥

अयः विश एतद् रूपं यदयः । श० १३ । २ । २ । १९ ॥
अयनानि तदाहुः कस्मादयनानीति गमनान्येव भवन्ति कामस्य कामस्य स्वर्गस्य च लोकस्य । कौ० ६ । १५ ॥
अयवाः (यजुः० १४ । २६) (अपरपक्षा हीदꣳ सर्वं) अयुवते । श० ८ । ४ । २ । ११ ॥
,, अपरपक्षा अयवाः । श० ८ । ४ । २ । ११ ॥
,, योऽसुराणाम् (अर्धमासः = कृष्णपक्षः) सोऽयवा न ह्वि तेनासुरा अयुषत(= "समसृज्यन्त" इति सायणः)। श० १ । ७ । २ । २५ ॥
,, अथोऽइतरथाहुः । य एव देवानाम् (अर्धमासः = शुक्लपक्षः) आसीत्सो ऽयवा न हि तमसुरा अयुषत । श० १ । ७ । २ । २६ ॥
अयाट् (यजुः० ३८ । १०) विश्वान्देवानयाडिहेति सर्वान्देवानयाक्षीदिहेत्येवैतदाह । श० १४ । २ । २ । १६ ॥
अयास्यः ते (असुराः) ऽब्रुवन्नयं वा आस्य इति । यदब्रुवन्नयं वा आस्य इति तस्मादयमास्यः । अयमास्यो ह वै नामैषः । तमयास्य इति परोक्षमाचक्षते । जै० उ० २ । ८ । ७ ॥
,, स एष एवाऽयास्यः (= अन्नाद्यम्) । आस्ये धीयते । तस्मादयास्यः । यद्वेवा(ऽयम्) आस्ये रमते तस्माद्वेवाऽयास्यः । जै० उ० २ । ११ । ८ ॥
,, क नु सोऽभूद्यो न इत्थमसक्तेत्ययमास्ये ऽन्तरिति सोऽयास्यः । श० १४ । ४ । १ । ९ ॥
,, स प्राणो वा अयास्यः । जै० उ० २ । ८ । ८ ॥
अयास्य आङ्गिरसः "आङ्गिरसः" शब्दं पश्यत ।
अरणी देवरथो वा अरणी । कौ० २ । ६ ॥
अरण्येऽनूच्यः (पुरोडाशः) वाग्वाऽ अरण्येऽनूच्यः । श० ९ । ३ । २ । ४ ॥
अरत्निः बाहुर्वा ऽरत्निः । श० ६ । ३ । १ । ३३ ॥ ६ । ७ । १ । १४ ॥ १४ । १ । २ । ६ ॥
अररुः अररुर्ह वै नामासुररक्षसमास तं देवा अस्याः (पृथिव्याः) अपाघ्नत । श० १ । २ । ४ । १७ ॥
,, भ्रातृव्यो वा अररुः । तै० ३ । २ । ९ । ४ ॥
अराधाणः अराधाणो वा एते येऽनृतमभिशंसन्ति । तां० ६ । १० । ७ ॥

अरिष्टनेमिः (यजुः १५ । ८) "तार्क्ष्यः" शब्दं पश्यत ।

अरिष्टनेमिः पृतनाज आशुः (ऋ० १० । १७८ । १ ॥) एष (तार्क्ष्यः = वायुः) वा अरिष्टनेमिः पृतनाजिदाशुः । ऐ० ४ । २० ॥

अरिष्टम् (साम) अनेन (अरिष्टेन साम्ना) नारिषामेति तदरिष्टस्यारिष्टत्वम् । तां० १२ । ५ । २३ ॥

" देवाश्च वा असुराश्चास्पर्द्धन्त यं देवानामघ्नन्त्स समभवद्यमसुराणाᳬँ सᳬँसो ऽभवत्ते देवास्तपो ऽतप्यन्त त एतदरिष्टमपश्यᳬँस्ततो यं देवानामघ्नत् (अघ्नन् ?) सᳬँसो ऽभवद्यमसुराणान्न स समभवत् । तां० १२ । ५ । २३ ॥

अरीः प्रजा वा अरीः । श० ३ । ९ । ४ । २१ ॥

अरुणदूर्वाः एष वै सोमस्य न्यङ्गो यदरुणदूर्वाः । श० ४ । ५ । १० । ५ ॥

अरुपः अग्निर्वा अरुपः । तै० ३ । ९ । ४ । १ ॥

अर्कः अन्नं वै देवा अर्क इति वदन्ति । तां० १५ । ३ । २३ ॥

" अर्को वै देवानामन्नम् । श० १२ । ८ । १ । २ ॥ तै० १ । १ । ८ । ५ ॥

" अन्नं वा अर्कः । तां० ५ । १ । ९ ॥ १४ । ११ । ९ ॥ १५ । ३ । ३४ ॥ गो० उ० ४ । २ ॥

" अन्नमर्कः । श० ९ । १ । १ । ४ ॥

" आदित्यो वाऽअर्कः । श० १० । ६ । २ । ६ ॥

" अर्कश्चक्षुस्तदसौ सूर्य्यः । तै० १ । १ । ७ । २ ॥

" स एष एवार्को य एष (सूर्यः) तपति । श० १० । ४ । १ । २२ ॥

" अयं वा ऽअग्निरर्कः । श० ८ । ६ । २ । १९ ॥ ९ । ४ । २ । १८ ॥

" अग्निर्वाऽअर्कः । श० २ । ५ । १ । ४ ॥ १० । ६ । २ । ५ ॥

" स एषोऽग्निरर्को यत्पुरुषः । श० १० । ३ । ४ । ५ ॥

" आपो वाऽअर्कः । श० १० । ६ । ५ । २ ॥

" प्राणो वाऽ अर्कः । श० १० । ४ । १ । २३ ॥ १० । ६ । २ । ७ ॥

" प्राणापानौ वा एतौ देवानाम् । यदर्काश्वमेधौ । तै० ३ । ९ । २१ । ३ ॥

" ओजो बलं वा एतौ देवानाम् । यदर्काश्वमेधौ । तै० ३ । ९ । २१ । ३ ॥

" वेत्थार्कमिति पुरुषᳬँ हैव तदुवाच । वेत्थार्कपर्णेऽइति कर्णौ

हैव तदुवाच वेत्थार्कपुष्पे ऽइत्यक्षिणी हैव तदुवाच वेत्थार्ककोश्यावितिनासिके हैव तदुवाच वेत्थार्कसमुद्रावित्योष्ठौ हैव तदुवाच वेत्थार्कधाना इति दन्तान्हैव तदुवाच वेत्थार्काष्ठीलामिति जिह्वाᳫं हैव तदुवाच वेत्थार्कमूलमित्यन्नᳫं हैव तदुवाच । श० १० । ३ । ४ । ५ ॥

अर्कः (सामविशेषः) दीर्घतमसोऽर्को भवति । तां० १५ । ३ । ३४ ॥

अर्कपुष्पम् (साम) अन्नं वै देवा अर्क इति वदन्ति रसमस्य पुष्पमिति सरसमेवान्नाद्यमवरुन्धेऽर्कपुष्पेण तुष्टुवानः । तां० १५ । ३ । २३ ॥

अर्काश्वमेधौ ओजो बलं वा एतौ देवानाम् । यदर्काश्वमेधौ । तै० ३ । ९ । २१ । ३ ॥

" प्राणापानौ वा एतौ देवानाम् । यदर्काश्वमेधौ । तै० ३ । ९ । २१ । ३ ॥

अर्क्यम् अर्चते वै मे कमभूदिति तदेवार्क्यस्यार्कत्वम् । श०१०।६।५।१॥

" स एष एवार्कः । यमेतमत्राग्निमाहरन्ति तस्यैतदन्नं क्यं योऽयमग्निश्चितस्तदर्क्यं यजुष्टः । श० १० । ४ । १ । ४ ॥

" तस्य (अर्कस्य = सूर्यस्य) एतदन्नं क्यमेष चन्द्रमास्तदर्क्यं यजुष्टः । श० १० । ४ । १ । २२ ॥

अर्जुनः अर्जुनो ह वै नामेन्द्रः ।('पाण्डव'अर्जुनोऽपि इन्द्रपुत्रत्वेन प्रसिद्धः—कुम्भघोणस्थमध्वविलासपुस्तकालयाधिपतिना प्रकाशिते महाभारत आदिपर्वणि अ० ६३ श्लो० ६५) श० २ । १ । २ । ११ ॥

" अर्जुनो ह वै नामेन्द्रो यदस्य गुह्यं नाम । श० ५ । ४ । ३ ।७॥

अर्ज्जुनानि (पुष्पाणि) (सोमस्य ह्रियमाणस्य) यानि पुष्पाण्यवाशीयन्त तान्यर्ज्जुनानि । तां० ८ । ४ । १ ॥

" " यदि सोमं न विन्देयुः पूतीकानभिषुणुयुर्यदि न पूतीकानर्ज्जुनानि । तां० ९ । ५ । ३ ॥

" " इन्द्रो वृत्रमहᳫं स्तस्य यो नस्तः सोमः समधावत्तानि बभ्रुतूलान्यर्जुनानि । तां० ९ । ५।७॥

अर्णवः (यजु० १३ । ५३) प्राणो वा ऽअर्णवः । श० ७ । ५ । २ । ५१ ॥

अर्द्धमासाः पवित्रं पवयिष्यन्त्सहस्वान्त्सहीयानरुणोऽरुणरजा। इति। एते ऽनुवाका अर्द्धमासानाञ्च, मासानाञ्च नामधेयानि। तै० ३। १०। १०। ३॥

„ किं नु तेऽस्मासु (अर्धमासेषु) इति। इमानि क्षुद्राणि पर्वाणि। जै० उ० ३। २३। ४॥

„ देवाश्च वाऽअसुराश्च। उभये प्राजापत्याः प्रजापतेः पितुर्दायमुपेयुरेतावेवार्धमासौ (=शुक्लकृष्णपक्षौ)। श० १। ७। २। २२॥

अर्द्धर्चः प्रतिष्ठा वा अर्द्धर्चः। गो० उ० ५। १०॥

अर्बुदम् वाग्वा अर्बुदम्। तै० ३। ८। १६। ३॥

अर्य्यमा यज्ञो वा अर्य्यमा। तै० २। ३। ५। ४॥

„ अर्यमेति तमाहुर्यो ददाति। तै० १। १। २। ४॥

„ ततो वै स (अर्य्यमा) पशुमानभवत्। तै० ३। १। ४। ९॥

„ एषा वा ऊर्ध्वा बृहस्पतेर्दिक्तदेष उपरिष्टादर्यम्णः पन्थाः। श० ५। ५। १। १२॥

अर्वा (=अश्वः) यच्छ्वयदरुरासीत्। तस्मादर्वा नाम। तै० ३। ९। २१। २॥

„ (हेऽश्व त्वं) अर्वासि। तां० १। ७। १॥ श० १३। १। ६। १॥ तै० ३। ८। ९। २॥

„ अग्निर्वा अर्वा। तै० १। ३। ६। ४॥

„ अर्वा (भूत्वा) असुरान् (अवहत्)। श० १०। ६। ४। १॥

„ पुमाꣳसो ऽर्वन्तः। श० ३। ३। ४। ७॥

अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः इदं तच्छिरः। श० १४। ५। २। ५॥

अर्वाग्वसुः (=पर्जन्यः, यजु० १५। १२). अथ यदर्वाग्वसुरित्याहातो (पर्जन्यात्) ह्यर्वाग्वसु वृष्टिरन्नं प्रजाभ्यः प्रदीयते। श० ८। ६। १। २०॥

„ अर्वाग्वसुर्ह वै देवानां ब्रह्मा पराग्वसुरसुराणाम्। गो० उ० १। १॥

अर्वावसुः अर्वावसुर्ह वै देवानां ब्रह्मा। कौ० ६। १३॥

„ अर्वावसुर्वै नाम देवानाꣳ होता। श० १। ५। १। २४॥

अलम्मः (पारिजानतः = परिजानतः पुत्रः) तम् (ऋषयः) अब्रुवन् को न्वयं कस्मा अलमित्यलन्नु वै मह्यमिति (सामाब्रवीत्) तदलम्मस्यालम्मत्वम् । तां० १३ । १० । ८ ॥

अवकाशाः प्राणा वाऽअवकाशाः । कौ० ८ । ६ ॥ श० १४ । १ । ४ । १ ॥

„ प्राणा अवकाशाः । श० १४ । २ । २ । ५१ ॥

अवकाः अथ (आपः) यदब्रुवन्नवाङ् नः कमगादिति ता अवाका अभवन्नवाका ह वै ता अवका इत्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ९ । १ । २ । २२ ॥

„ आपो वा अवकाः । श० ७ । ५ । १ । ११ ॥ ८ । ३ । २ । ५, ६ ॥

„ तस्मादवका अपामनुपजीवनीयतमा यातयाम्न्यो हि ताः । श० ९ । १ । २ । २४ ॥

अवदानम् स येन देवेभ्य ऋणं जायते । तदेनांस्तदवदयते यद्यजतेऽथ यदग्नौ जुहोति तदेनांस्तदवदयते तस्माद्यत्किञ्चाग्नौ जुह्वति तदवदानं नाम । श० १ । ७ । २ । ६ ॥

अवभृथः तद्यदपोऽभ्यवहरन्ति तस्मादवभृथः । श० ४ । ४ । ५ । १ ॥

„ यो ह वाऽअयमपामावर्तः स ह्यावभृथः स हैष वरुणस्य पुत्रो वा भ्राता वा । श० १२ । ९ । २ । ४ ॥

„ वरुण्यो वाऽअवभृथः । श० ४ । ४ । ५ । १० ॥

„ समुद्रोऽवभृथः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥

अवरं सधस्थम् (यजु० १७ । ७५) अन्तरिक्षं वाऽअवरꣳ सधस्थम् । श० ९ । २ । ३ । ३९ ॥

अवरोधाः (न्यग्रोधस्य) तेषां चमसानां रसोऽवाङैत्सेऽवरोधा अभवन्नथ य ऊर्ध्वस्तानि फलानि । ऐ० ७ । ३१ ॥

अवसानम् प्रतिष्ठा वा अवसानम् । कौ० ११ । ५ ॥ गो० उ० ३ । ११ ॥

अवस्युः (यजुः ३८ । ७) अयं वाऽ अवस्युरशिमिदो योऽयं (वातः) पवते । श० १४ । २ । २ । ५ ॥

अवस्यूर्दुवस्वान् (यजु० १८ । ४५) अयं वै लोकोऽवस्यूर्दुवस्वान् । श० ९ । ४ । २ । ७ ॥

अवाङ् प्राणः किं छन्दः । का देवता योऽयमवाङ् प्राण इति यज्ञायज्ञियं छन्दो वैश्वानरो देवता । श० १० । ३ । २ । ८ ॥

अवान्तरदिशः सर्वत इव हीमा अवान्तरदिशः । श० २ । ६ । १ । ११ ॥

अविः इयं (पृथिवी) वाऽ अविरियꣳ हीमाः सर्वाः प्रजा अवति।
शा० ६।१।२।३३॥
,, (प्रजापतिः) श्रोत्रादविम् (निरमिमीत)। शा० ७।५।२।६॥
,, नासिकाभ्यामेवास्य वीर्यमस्रवत्। सोऽविः पशुरभवन्मेषः।
शा० १२।७।१।३॥
,, वारुणी च हि त्वाष्ट्री चाविः। शा० ७।५।२।२०॥
,, तस्मादेताः (अजावयः) त्रिः संवत्सरस्य विजायमाना द्वौ त्रीनिति जनयन्ति। शा० ४।५।५।६॥
,, अन्तर्यामपात्रमेवान्ववयः प्रजायन्ते। शा० ४।५।५।३॥
अव्ययम् सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु। वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्। गो० पू० १।२६॥
अशनिः मरुतोऽद्भिरग्निमतमयन्। तस्य तान्तस्य हृदयमाच्छिन्दन् साऽशनिरभवत्। तै० १।१।३।१२॥
,, विद्युद्वाऽअशनिः। शा० ६।१।३।१४॥
,, यदशनिरिन्द्रस्तेन। कौ० ६।९॥
अशस्तिः पाप्मा वाऽ अशस्तिः। शा० ६।३।२।७॥
अशिमिदः (यजु० ३८।७) अयं वाऽ अवस्युरशिमिदो योऽयं (वातः) पवते। शा० १४।२।२।५॥
अशीतिः अन्नमशीतिः। शा० ८।५।२।१७॥
,, अन्नमशीतयः। शा० ९।१।१।२१॥
अश्मा अथ यदश्रु संक्षरितमासीत्सोऽश्मा पृश्निरभवदश्रुर्ह वै तमश्मेत्याचक्षते परोऽक्षम्। शा० ६।१।२।३॥
,, शर्करायां अश्मानम् (असृजत) तस्माच्छर्कराश्मैवान्ततो भवति। शा० ६।१।३।५॥
,, स्थिरो वाऽ अश्मा। शा० ९।१।२।५॥
अश्मा पृश्निः अथ यदश्रु संक्षरितमासीत्सो ऽश्मा पृश्निरभवदश्रुर्ह वै तमश्मेत्याचक्षते परोऽक्षम्। शा० ६।१।२।३॥
,, असौ वाऽ आदित्यो ऽश्मा पृश्निः। शा० ९।२।३।१४॥
अश्वः प्रजापतेरक्ष्यश्वयत्। तत्परापतत्ततोऽश्वः समभवद्यदश्वयत्तदश्वस्याश्वत्वम्। शा० १३।३।१।१॥

अश्वः प्रजापतेरक्ष्यश्वयत्। तत्परापतत् तदश्वोऽभवत् तदश्वस्याश्वत्वम्। तै० १।१।५।४॥

,, प्रजापतेर्वा अक्ष्यश्वयत्तत्परापतत्तदश्वोऽभवत्तदश्वस्याश्वत्वं तद्देवा अश्वमेधेन प्रत्यदधुः। तां० २१।४।२॥

,, (प्रजापतिः) चक्षुषा ऽश्वम् (निरमिमीत)। श० ७।५।२।६॥

,, वरुणो ह वै सोमस्य राज्ञोऽभीवाक्षि प्रतिपिपेष तदश्वयत्ततोऽश्वः समभवत्तद्यच्छ्वयथात्समभवत्तस्मादश्वो नाम। श० ४।२।१।११॥

,, तान् (असुरान्) अश्वा भूत्वा (देवाः) पद्भिरपाघ्नत यदश्वा भूत्वा पद्भिरपाघ्नत तदश्वानामश्वत्वमश्नुते यद्यत्कामयते य एवं वेद। ऐ० ५।१॥

,, अथ यदश्रु संक्षरितमासीत्सोऽश्रुरभवदश्रुर्ह वै तमश्व इत्याचक्षते परोऽक्षम्। श० ६।१।१।११॥

,, यद्वै तदश्रु संक्षरितमासीदेष सोऽश्वः। श० ६।३।१।२८॥

,, अप्सुजा उ वाऽ अश्वः। श० ७।५।२।१८॥

,, अप्सुयोनिर्वा अश्वः। तै० ३।८।४।३॥ ३।८।१९।२॥ ३।८।२०।४॥

,, अद्भ्यो ह वाऽअग्रेऽश्वः सम्बभूव सोऽद्भ्यः सम्भवन्नसर्वः समभवदसर्वो हि वै समभवत्तस्मान्न सर्वैः पद्भिः प्रतितिष्ठत्येकैकमेव पादमुदच्य तिष्ठति। श० ५।१।४।५॥

,, अश्वोऽस्यत्योऽसि मयोऽसि हयोऽसि वाज्यसि सप्तिरस्यर्वासि वृषासि। तां० १।७।१॥

,, (हे ऽश्व त्वं) अर्वासि। तां १।७।१॥ श० १३।१।६।१॥ तै० ३।८।९।२॥

,, अत्योऽसीत्याह। तस्मादश्वः सर्वान् पशूनत्येति। तै० ३।८।९।१॥

,, तस्मादश्वः सर्वेषां पशूनाᳬ श्रैष्ठ्यं गच्छति। तै० ३।८।९।१॥

,, तस्मादश्वः पशूनां जविष्ठः। ऐ० ५।१॥

,, आशुः सप्तिरित्याह। अश्व एव जवं दधाति। तस्मात्पुराशुरश्वोऽजायत। तै० ३।८।१३।२॥

अश्वः अश्वः पशूनां त्विषिमान् हरस्वितमः । तै० ३ । ८ । ७ । ३ ॥
,, अश्वः पशूनामाशुः सारसारितमः । तै० ३ । ८ । ७ । २ ॥
,, तस्मादश्वः पशूनामाशिष्ठः । श० १३ । १ । २ । ७ ॥
,, अश्वः पशूनां यशस्वितमः । श० १३ । १ । २ । ८ ॥ तै० ३ । ८ । ७ । २ ॥
,, तस्मादु हैतदश्वः पशूनां भगितमः । श० ६ । ३ । ३ । १३ ॥
,, परमोऽश्वः पशूनाम् । श० १३ । ३ । ३ । १ ॥
,, अन्तो वा अश्वः पशूनाम् । तां० २१ । ४ । ६ ॥
,, अश्वः पशूनामपचिततमः । तै० ३ । ८ । ७ । २ ॥
,, तस्मादश्वः पशूनामोजस्वितमः । श० १३ । १ । २ । ६ ॥
,, अश्वः पशूनामोजिष्ठो बलिष्ठः । तै० ३ । ८ । ७ । १ ॥
,, तस्मादश्वः पशूनां वीर्यवत्तमः । श० १३ । १ । २ । ५ ॥
,, अश्वः पशूनामन्नादो वीर्य्यावत्तमः । तै० ३ । ८ । ७ । १ ॥
,, वीर्यं वा अश्वः । श० २ । १ । ४ । २३, २४ ॥
,, क्षत्रं वा ऽअन्वश्वः । श० ६ । ४ । ४ । १२ ॥
,, क्षत्रं वाऽ अश्वो विडितरे पशवः । श० १३ । २ । २ । १५ ॥
,, यजमानो वा अश्वः । तै० ३ । ९ । १७ । ४, ५ ॥
,, वज्रो वाऽ अश्वः । श० ४ । ३ । ४ । २७ ॥ ६ । ३ । ३ । १२ ॥
,, वज्रोऽश्वः । श० १३ । १ । २ । ९ ॥
,, वज्री वा एषः । यदश्वः । तै० १ । १ । ५ । ५ ॥
,, वज्री वा अश्वः प्राजापत्यः । तै० ३ । ८ । ४ । २ ॥
,, इन्द्रो वा अश्वः । कौ० १५ । ४ ॥
,, असौ वा आदित्योऽश्वः । तै० ३ । ९ । २३ । २ ॥
,, असौ वाऽआदित्य एषो (शुक्लः) ऽश्वः । श० ७ । ३ । २ । १० ॥
,, तस्मा (आयास्यायोद्गात्रे) अमुमादित्यमश्वꣳ श्वेतं कृत्वा (आदित्याः) दक्षिणामानयन् । तां० १६ । १२ । ४ ॥
,, तेऽङ्गिरस आदित्येभ्य अमुमादित्यमश्वꣳ श्वेतं भूतं दक्षिणामनयन् । तै० ३ । ९ । २१ । १ ॥
,, ते (आदित्याः) अश्वं श्वेतं दक्षिणां निन्युरेतमेव य एष (सूर्यः) तपति । कौ० ३० । ६ ॥
,, तस्य (सौर्यस्य हविषः) अश्वः श्वेतो दक्षिणा । तदेतस्य रूपं

क्रियते य एष (सूर्यः) तपति यद्यश्वꣳ श्वेतं न विन्देदपि गौरेव श्वेतः स्यात् । श॰ २ । ६ । ३ । ९ ॥

अश्वः अथ योऽसौ (सूर्यः) तपतीꣳ३ एषो ऽश्वः श्वेतो रूपं कृत्वा ऽश्वाभिधान्यपिहितेनात्मना प्रतिचक्राम । ऐ॰ ६ । ३५ ॥

„ अग्निर्वा अश्वः श्वेतः । श॰ ३ । ६ । २ । ५ ॥

„ आग्निरेष यदश्वः । श॰ ६ । ३ । ३ । २२ ॥

„ सोऽग्निरश्वो भूत्वा प्रथमः प्रजिगाय । गो॰ उ॰ ४ । ११ ॥

„ अश्वो न देववाहनः (ऋ॰ ३ । २७ । १४) इति । अश्वो ह वा ऽएष (अग्निः) भूत्वा देवेभ्यो यज्ञं वहति । श॰ १ । ४ । १ । ३० ॥

„ यस्मात्प्रजापतिरालब्धोऽश्वोऽभवत् । तस्मादश्वो नाम । तै॰ ३ । ९ । २१ । ४ ॥ ३ । ९ । २२ । १, २ ॥

„ प्राजापत्यो वा अश्वः । श॰ ६ । ५ । ३ । ९ ॥ तै॰ ३ । ८ । २२ । ३ ॥ ३ । ९ । १६ । १ ॥

„ प्राजापत्योऽश्वः । श॰ १३ । १ । १ । १ ॥ तै॰ १ । १ । ५ । ५ ॥ ३ । २ । २ । १ ॥

„ सौर्य्यो वा अश्वः । गो॰ उ॰ ३ । १९ ॥

„ वारुणो हि देवतयाऽश्वः । तै॰ १ । ७ । २ । ६ ॥

„ वारुणो वा अश्वः । तै॰ २ । २ । ५ । ३ ॥ ३ । ८ । २० । ३ ॥ ३ । ९ । १६ । १ ॥

„ वारुणो ह्यश्वः । श॰ ७ । ५ । २ । १८ ॥

„ वैश्वदेवो वा अश्वः । श॰ १३ । २ । ५ । ४ ॥ तै॰ ३ । ९ । २ । ४ ॥ ३ । ९ । ११ । १ ॥

„ अश्वे वै सर्वा देवता अन्वायत्ताः । तै॰ ३ । ८ । ७ । ३ ॥

„ अश्वश्चतुस्त्रिꣳशः । तै॰ २ । ७ । १ । ३ ॥

„ अश्वश्चतुस्त्रिꣳशो दक्षिणानाम् । तां॰ १७ । ११ । ३ ॥

„ अश्वो (भूत्वा) मनुष्यान् (अवहत्) । श॰ १० । ६ । ४ । १ ॥

„ अपूतो वाऽएषोऽमेध्यो यदश्वः । श॰ १३ । १ । १ । १ ॥

„ तस्मादश्वस्त्रिभिः (पद्भिः) तिष्ठंस्तिष्ठति । श॰ १३ । २ । ७ । ६ ॥

„ तस्मादश्वः शुक्र उदुष्टमुख इवाथो ह दुरक्षो भावुकः । श॰ ७ । ३ । २ । १४ ॥

अश्वः रश्मिना वा अश्वो यत ईश्वरो वा अश्वोऽयतो–ऽधृतोऽप्रतिष्ठितः परां परावतं गन्तोः । श॰ १३ । ३ । ३ । ५ ॥

,, ईश्वरो वा अश्वः प्रमुक्तः परां परावतं गन्तोः । तै॰ ३ । ८ । ९ । ३ ॥ ३ । ८ । १२ । २ ॥ ३ । ९ । १३ । २ ॥

अश्वतरी अश्वतरीरथेनाग्निराजिमधावत्तासां प्राजमानो योनिमकूल्यत्तस्मात्ता न विजायन्ते । ऐ॰ ४ । ९ ॥

अश्वत्थः प्रजापतिर्देवेभ्यो निलायत । अश्वो रूपं कृत्वा । सोऽश्वत्थे संवत्सरमतिष्ठत् । तदश्वत्थस्याश्वत्थत्वम् । तै॰ ३ । ८ । १२ । २ ॥

,, अग्निर्देवेभ्यो निलायत । अश्वो रूपं कृत्वा । सोऽश्वत्थे संवत्सरमतिष्ठत् । तदश्वत्थस्याश्वत्थत्वम् । तै॰ १।१।३।९॥

,, त्वच एवास्यापचितिरस्रवत्सोऽश्वत्थो वनस्पतिरभवत् । श॰ १२ । ७ । १ । ९ ॥

,, तेजसो या एष वनस्पतिरजायत यदश्वत्थः । ऐ॰ ७ । ३२ ॥

,, साम्राज्यं वा एतद्वनस्पतीनाम् (यदश्वत्थः) । ऐ॰ ७ । ३२ ॥ ८ । १६ ॥

,, आश्वत्थं (पात्रं) भवति । तेन वैश्योऽभिषिञ्चति स यदेवादोऽश्वत्थे तिष्ठत इन्द्रो मरुत उपामन्त्रयत । श॰ ५ । ३ । ५ । १४ ॥

,, आश्वत्थेन (पात्रेण) वैश्यः (अभिषिञ्चति) तै॰ १ । ७ । ८ । ७ ॥

अश्वमेधः ततोऽश्वः समभवद्यदश्वत्तन्मेध्यमभूदिति तदेवाश्वमेधस्याश्वमेधत्वम् । श॰ १० । ६ । ५ । ७ ॥

,, असावादित्योऽश्वमेधः । श॰ ९ । ४ । २ । १८ ॥

,, असौ वा ऽआदित्य एकविꣳशः सोऽश्वमेधः । श॰ १३ । ५ । १ । ५ ॥

,, एष वाऽअश्वमेधो य एष (सूर्यः) तपति । श॰ १० । ६ । ५ । ८ ॥

,, एष एवाश्वमेधो यच्चन्द्रमाः । श॰ ११ । २ । ५ । १ ॥

,, राष्ट्रमश्वमेधः । श॰ १३ । २ । २ । १६ ॥

अश्वमेधः राष्ट्रं वा अश्वमेधः । श० १३ । १ । ६ । ३ ॥ तै० ३ । ८ । ९ । ४ ॥ ३ । ९ । ४ । ५ ॥

,, श्रीर्वै राष्ट्रमश्वमेधः। श० १३ । २ । ९ । २ ॥ तै० ३ । ९ । ७ । १

,, यजमानो वाऽअश्वमेधः । श० १३ । २ । २ । १ ॥

,, राजा वाऽएष यज्ञानां यदश्वमेधः । श० १३ । २ । २ । १ ॥

,, वृषभ एष यज्ञानां यदश्वमेधः । श० १३ । १ । २ । २ ॥

,, ऋषभ एष यज्ञानाम् । यदश्वमेधः । तै० ३ । ८ । ३ । ३ ।

,, अश्वमेधे सर्वा देवता अन्वायत्ताः । श० १३ । १ । २ । ९ ॥

,, प्राणापानौ वा एतौ देवानाम् । यदर्काश्वमेधौ । तै० ३ । ९ । २१ । ३ ॥

,, ओजो बलं वा एतौ देवानाम् । यदर्काश्वमेधौ । तै० ३ । ९ । २१ । ३ ॥

,, एष (अश्वमेधः) वै ब्रह्मवर्चसी नाम यज्ञः । तै० ३ । ९ । १९ । ३ ॥

,, एष (अश्वमेधः) वै तेजस्वी नाम यज्ञः। तै० ३ । ९ । १९ । ३ ॥

,, एष (अश्वमेधः) वा अतिव्याधी नाम यज्ञः । तै० ३ । ९ । १९ । ३ ॥

,, एष (अश्वमेधः) वा ऊर्जस्वान्नाम यज्ञः। तै० ३ । ९ । १९ । १ ॥

,, एष (अश्वमेधः) वै प्रतिष्ठितो नाम यज्ञः। तै० ३ । ९ । १९ । २ ॥

,, एष (अश्वमेधः) वै क्लृप्तो नाम यज्ञः । तै० ३ । ९ । १९ । ३ ॥

,, एष (अश्वमेधः) वै दीर्घो नाम यज्ञः। तै० ३ । ९ । १९ । ३ ॥

,, एष (अश्वमेधः) वै विधृतो नाम यज्ञः। तै० ३ । ९ । १९ । २ ॥

,, एष (अश्वमेधः) वै व्यावृत्तो नाम यज्ञः। तै० ३ । ९ । १९ । २ ॥

,, एष (अश्वमेधः) वै पयस्वान्नाम यज्ञः। तै० ३ । ९ । १९ । १ ॥

,, एष (अश्वमेधः) वै विभूर्नाम यज्ञः । तै० ३ । ९ । १९ । १ ॥

,, एष (अश्वमेधः) वै प्रभूर्नाम यज्ञः । तै० ३ । ९ । १९ । १ ॥

,, प्रजापतिꣳ सर्व्वङ्करोति योऽश्वमेधेन यजते । तां २१ । ४ । २ ॥

,, तरति सर्वं पाप्मानं तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजते। श० १३ । ३ । १ । १ ॥

अश्वमेधः योऽश्वमेधेन यजते । देवानामेवायनेनैति । तै० ३ । ९ । २२ । ३ ॥

,, तेजसा वा एष ब्रह्मवर्चसेन व्यृध्यते । योऽश्वमेधेन यजते । तै० ३ । ९ । ५ । १ ॥

,, स यो हैवं विद्वानग्निहोत्रं च जुहोति दर्शपूर्णमासाभ्यां च यजते मासि मासि हैवास्याश्वमेधेनेष्टं भवति । श० ११ । २ । ५ । ५ ॥

,, निरायत्याश्वस्य शिश्नं महिष्युपस्थे निधत्ते वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधात्विति । श० १३ । ५ । २ । २ ॥

अश्वयुजौ (नक्षत्रम्) अश्वयुजोरयुक्षत । तै० १ । ५ । २ । ९ ॥

,, अश्विनोरश्वयुजौ । तै० १ । ५ । १ । ५ ॥ ३ । १ । २ । १० ॥

अश्वस्तोमीयम् अश्वस्य वा आलब्धस्य मेध उदक्रामत् । तदश्वस्तोमीयमभवत् । तै० ३ । ९ । १२ । १ ॥

,, अश्वो वा अश्वस्तोमीयम् । तै० ३ । ९ । १२ । ३ ।

,, मेधोऽश्वस्तोमीयम् । तै० ३ । ९ । १२ । १ ॥

अश्ववालाः यज्ञो ह देवेभ्योऽपचक्राम सोऽश्वो भूत्वा पराङावबर्त तस्य देवा अनुहाय वालानभिपेदुस्तानालुलुपुस्तानालुप्य सार्द्धꣳ संन्यासुस्तत एता ओषधयः समभवन् यदश्ववालाः । श० ३ । ४ । १ । १७ ॥

अश्विनौ इमे ह वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षमश्विनाविमे हीदꣳ सर्वमश्नुवातां पुष्करस्रजावित्यग्निरेवास्यै (पृथिव्यै) पुष्करमादित्योऽमुष्यै (दिवे) । श० ४ । १ । ५ । १६ ॥

,, श्रोत्रेअश्विनौ । श० १२ । ९ । १ । १३ ॥

,, नासिकेअश्विनौ । श० १२ । ९ । १ । १४ ॥

,, तद्यौ ह वाऽइमौ पुरुषाविवाक्ष्योः । एतावेवाश्विनौ । श० १२ । ९ । १ । १२ ॥

,, अश्विनावध्वर्यू । ऐ० १ । १८ ॥ श० १ । १ । २ । १७ ॥ ३ । ९ । ४ । ३ ॥ तै० ३ । २ । २ । १ ॥ गो० उ० २ । ६ ॥

,, अश्विनौ वै देवानां भिषजौ । ऐ० १ । १८ ॥ कौ० १८ । १ ॥ तै० १ । ७ । ३ । ५ ॥ गो० उ० २ । ६ ॥ ५ । १० ॥

,, मुख्यौ वाऽअश्विनौ (यज्ञस्य) । श० ४ । १ । ५ । १९ ॥

,, श्येताविव ह्यश्विनौ । श० ५ । ५ । ४ । १ ॥

अश्विनौ सयोनी वाऽअश्विनौ । श० ५ । ३ । १ । ८ ॥
,, अश्विनाविव रूपेण (भूयासम्) । मं० २ । ४ । १४ ॥
,, आश्विनं द्विकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ५ । ३ । १ । ८ ॥
,, आश्विनो द्विकपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ।
,, वसन्तग्रीष्मावेवाश्विनाभ्याम् (अवरुन्धे) । श० १२ । ८ । २ । ३४ ॥
, अश्विभ्यान्धानाः । तै० १ । ५ । ११ । ३ ॥
,, अथ यदेनं (अग्निं) द्वाभ्यां बाहुभ्यां द्वाभ्यामरणीभ्यां मन्थन्ति द्वौ वा अश्विनौ तदस्याश्विनं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥
,, देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे । अश्विनोर्बाहुभ्याम् । तै० २ । ६ । ५ । २ ॥
,, गर्दभरथेनाश्विना उदजयताम् । ऐ० ४ । ९ ॥
,, तदश्विना उदजयतां रासभेन । कौ० १८ । १ ॥
,, इममेव लोकमाश्विनेन (अवरुन्धे) । श० १२ । ८ । २ । ३४ ॥
,, आश्विनमन्वाह तदमुं लोकं (दिवं) आप्नोति । कौ० ११ । २ । १८ । २ ॥

अषाढा (इष्टका) (देवाः) तां (इष्टकां) उपधायासुरान्त्सपत्नान् भ्रातृव्यानस्मात्सर्व्वस्मादसहन्त यदसहन्त तस्मादषाढा । श० ७ । ४ । २ । ३३ ॥
,, तऽएते सर्वे प्राणा यदषाढा । श० ७ । ४ । २ । ३६ ॥
,, ग्रीवा अषाढा । श० ७ । ५ । १ । ३५ ॥
,, इयं (पृथिवी) वाऽअषाढा । श० ६ । ५ । ३ । १ ॥ ७ । ४ । २ । ३२ ॥ ८ । ५ । ४ । २ ॥
,, वागषाढा । श० ६ । ५ । ३ । ४ ॥ ७ । ५ । १ । ७ ॥
,, वाग्वाऽअषाढा श० ७ । ४ । २ । ३४ ॥ ८ । ५ । ४ । १ ॥

अषाढाः (नक्षत्रम्) यन्नासहन्त । तदषाढाः । तै० १ । ५ । २ । ८ ॥
,, अपां पूर्वाषाढाः । तै० १ । ५ । १ । ४ ॥ ३ । १ । २ । ३ ॥
, विश्वेषां देवानामुत्तराः (अषाढाः) । तै० १ । ५ । १ । ४ ॥ ३ । १ । २ । ४ ॥

अष्ट यदष्टाभिः (ऋग्भिः) अवारुन्धताष्टाभिराश्नुवत तदष्टानामष्टत्वम् । ऐ० १ । १२ ॥

अष्टका प्राजापत्यमेतदहर्यदष्टका । श० ६ । २ । २ । २३ ॥

„ पर्वैतत्संवत्सरस्य यदष्टका । श० ६ । २ । २ । २४ ॥

अष्टरात्रः अष्टरात्रेण वै देवाः सर्वमाश्नुवत । तां २२ । ११ । ६ ॥

अष्टाचत्वारिंशः (स्तोमः) अन्तो वा अष्टाचत्वारिंशः । तां० ३ । १२ । २॥

„ "विवर्तोऽष्टाचत्वारिंशः" शब्दं पश्यत ॥

अष्टादशः (स्तोमः) पश्य "प्रतूर्तिरष्टादशः।"

अष्टादशिनः संवत्सरस्य वा एषा प्रतिमा । यदष्टादशिनः । द्वादश मासाः पञ्चर्त्तवः । संवत्सरोऽष्टादशः । तै० ३ । ९ । १ । १-२॥

असत् मृत्युर्वाऽअसत् । श० १४ । ४ । १ । ३१ ॥

„ तदाहुः किं तदसदासीदित्यृषयो वाव तऽग्रेऽसदासीत् । श० । ६ । १ । १ । १ ॥

„ अथ यदसत्सर्क् सा वाक् सोऽपानः । जै० उ० १ । ५३ । २॥

असन्पांसवः अथ यदेतद्भस्मोद्धृत्य परावपन्त्येष एवासन्पांसवः । श० २ । ३ । २ । ३ ॥

असमरथः (यजुः १५ । १७) पश्य "रथप्रोतः।"

असितग्रीवः (यजुः २३ । १३) अग्निर्वाऽअसितग्रीवः । श० १३ । २ । ७ । २ ॥

असिः वज्रो वाऽआसिः । श० ३ । ८ । २ । १२ ॥

असुः तस्या एतस्यै वाचः प्राणा एवाऽसुः । एषु हीदं सर्वमसूतेति । जै० उ० १ । ४० । ७ ॥

„ प्राणो वाऽअसुः । श० ६ । ६ । २ । ६ ॥

असुरः तेनासुनासुरानसृजत । तदसुराणामसुरत्वम् । तै० २ । ३ । ८ । २ ॥

„ त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवः । तै० ३ । ११ । २ । १ ॥

„ असितो धान्वो राजेत्याह तस्यासुरा विशस्तऽइमऽआसत ऽइति कुसीदिन उपसमेता भवन्ति तानुपदिशति मायावेदः सोऽयमिति । श० १३ । ४ । ३ । ११ ॥

„ दिवा देवानसृजत नक्तमसुरान् यद्दिवा देवानसृजत्त तद्देवानां देवत्वं यदसूर्यं तदसुराणामसुरत्वम् । ष० ४ । १ ॥

देवाश्च वाऽअसुराश्च । उभये प्राजापत्याः प्रजापतेः पितुर्दायमुपेयुरेतावेवार्धमासौ (=शुक्लकृष्णपक्षौ)। श० १ । ७ । २ । २२ ॥

असुरः देवाश्च वा असुराश्च प्रजापतेर्द्वयाः पुत्रा आसन्। तां० १८। १। २॥

„ तेऽसुरा भूयाᳬसो बलीयाᳬस (प्रजापतेः पुत्राः) आसन्। तां० १८। १। २॥

„ कनीयस्विन इव वै तर्हि (युद्धसमये) देवा आसन् भूयस्विनोऽसुराः। तां० १२। १३। ३१॥

„ कानीयसा एव देवा ज्यायसा असुराः। श० १४।४।१।१॥

„ (असुराः) स्वेष्वेवास्येषु जुह्वतश्चेरुः। श० ११। १। ८। १॥

„ मायेत्यसुराः (उपासते)। श० १०। ५। २। २०॥

„ असुरमायया। कौ० २३। ४॥

„ आसुरी माया स्वधया कृतासीति प्राणो वाऽअसुस्तस्यैषा माया स्वधया कृता। श० ६। ६। २। ६।

„ (प्रजापतिः) तेभ्यः (असुरेभ्यः) तमश्च मायां च प्रददौ। श०। २। ४। २। ५॥

„ अहर्वै देवा अश्रयन्त रात्रीमसुराः। ऐ० ४। ५॥

„ अहर्वै देवा आश्रयन्त रात्रीमसुराः। गो० उ० ५। १॥

„ (असुराः प्रजापतिमब्रुवन्) दयध्वमिति न आत्थेति। श० १४। ८। २। ४॥

„ योऽपक्षीयते तं (अर्धमासं) असुराः उपायन्। श० १। ७। २। २२॥

„ असुरा वा एषु लोकेष्वासᳬस्तान्देवा ऊर्द्धसद्मनेन (साम्ना) एभ्यो लोकेभ्यः प्राणुदन्त। तां ९। २। ११॥

„ ततोऽसुरा एषु लोकेषु पुरश्चक्रिरेऽयस्मयीमेवास्मिंल्लोके रजतामन्तरिक्षे हरिणीं (=सुवर्णमयीं) दिवि। शं० ३। ४। ४। ३॥

„ अर्वा (भूत्वा) असुरान् (अवहत्)। श० १०। ६। ४। १॥

असुरम् मनो वा असुरम्। तद्ध्यसुषु रमते। जै० उ० ३। ३५। ३॥

अस्तम् गृहा वा अस्तम्। श० २। ५। २। २९।

अस्थि न ह्यर्वस्थाकिंचन वर्षीयोऽस्थ्यस्ति। श० ८। ७। २। १७॥

„ षष्टिश्च ह वै त्रीणि च शतानि पुरुषस्यास्थीनि। श० १०। ५। ४। १२॥

अस्थि सप्त च ह वै शतानि विंशतिश्च संवत्सरस्याहानि च रात्रयश्चेत्येतावन्त एव पुरुषस्यास्थीनि च मज्जानश्चेत्यत्र तत्समम् । गो० पू० ५ । ५ ॥

,, अस्थि वा एतत् । यत्समिधः । तै० १ । १ । २ । ४ ॥

अस्मयुः अग्निं भरन्तमस्मयुमित्यग्निं भरन्तमस्मत्प्रेषितमित्येतत् । श० ६ । ३ । २ । ३ ॥

अस्रवियः (यजु० १४ । १८) अन्नमस्रवियस्तद्यदेषु लोकेष्वन्नं तदस्रवियोऽथो यदेभ्यो लोकेभ्योऽन्नꣳ स्रवति तदस्रवियः । श० ८ । ३ । ३ । ५ ॥

अहः यजमानदेवत्यं वा अहः । भ्रातृव्यदेवत्या रात्रिः । तै० २ । २ । ६ । ४ ॥

,, ऐन्द्रमहः । तै० १ । १ । ४ । ३ । १ । ५ । ३ । ४ ॥

,, मैत्रं वा अहः । तै० १ । ७ । १० । १ ॥

,, स यदादित्य उदेति । एतामेव तत्सुवर्णां कुशीमनुसमेति । तै० १ । ५ । १० । ७ ॥

,, अहरेव सुवर्णा (कुशी) अभवत् । तै० १ । ५ । १० । ७ ॥

अहल्या (इन्द्र !) अहल्यायै जारेति । श० ३ । ३ । ४ । १८ ॥ ष० १ । १ ॥ (तैत्तिरीयारण्यके १ । १२ । ४ ॥ लाट्यायनश्रौतसूत्रे १ । ३ । १ ॥)

,, अहल्याया ह मैत्रेय्याः (इन्द्रः) जार आस । ष० १ । १ ॥

अहिर्बुध्न्यः एष ह वा अहिर्बुध्न्यो यदग्निर्गार्हपत्यः । ऐ० ३ । ३६ ॥

,, अग्निर्वा अहिर्बुध्न्यः । कौ० १६ । ७ ॥

अहीनम् सर्व्वान् लोकानहीनेन (अभिजयति) । तै० ३ । १२ । ५ । ७ ॥

,, अहीनानि ह वा एतान्यहानि न ह्येषु किंचन हीयते । ऐ० ६ । १८ ॥

अहुतादः (देवाः यजुः १७ । १३) अहुतादो हि प्राणाः । श० ९ । २ । १ । १४ ॥

,, अथैता (प्रजाः) अहुतादो यद्राजन्यो वैश्यः शूद्रः । ऐ० ७ । १९ ॥

अहुरः अहुर इदं ते परिददामि । मं० १ । ६ । २१ ॥

अहेडमानः (यजु० १८।४९) अहेडमानो वरुणेह बोधीत्यक्रुध्यन्नो वरुणेह बोधीत्येतत् । श० ९ । ४ । २ । १७ ॥

अहोरात्रे स (प्रजापतिः) एतमतिरात्रमपश्यत्तमाहरत्तेनाऽहोरात्रे प्राजनयत् । तां० ४ । १ । १४ ॥

,, अहोरात्रे वा अश्वस्य मेध्यस्य लोमानि । तै० ३ । ९ । २३ । १ ॥

,, एते ह वै संवत्सरस्य चक्रे यदहोरात्रे । ऐ० ५ । ३० ॥

,, अहोरात्रे परिवेष्ट्री । श० ११ । २ । ७ । ५ ॥

,, तमस्मा अक्षितिमहोरात्रे पुनर्दत्तः । जै० उ० ३ । २२ । ८ ॥

,, मृत्योर्ह वा एतौ व्राजबाहू यदहोरात्रे । कौ० २ । ९ ॥

,, अहोरात्राणीष्टकाः (संवत्सरस्य) । तै० ३ । ११ । १० । ४ ॥

(आ)

आ (=अर्वाक्)—प्रेति ("प्र" इति) वै प्राण एति ('आ' इति) उदानः । श० १ । ४ । १ । ५ ॥

,, प्रेति पशवो वितिष्ठन्तऽएति समावर्त्तन्ते । श० १। ४ । १ । ६ ॥

,, एत्यपानस्तदसौ (द्यु-) लोकः । जै० उ० २ । ९ । ५ ॥

,, प्रेति वै रेतः सिच्यतऽएति प्रजायते । श० १ । ४ । १ । ६ ॥

आकाशः—स यस्स आकाश आदित्य एव सः । एतस्मिन् ह्युदिते सर्वमिदमाकाशते । जै० उ० १ । २५ । २ ॥

,, स यस्स आकाश इन्द्र एव सः । जै० उ० १ । २८ । २ ॥ १ । ३१ । १ ॥ १ । ३२ । ५ ॥

आकूपारम् (साम)—आ तू न इन्द्र क्षुमन्तमित्याकूपारम् । तां० ९। २ । १३ ॥

,, अकूपारो वा एतेन कश्यपो जेमानम्महिमानमगच्छज्जेमानम्महिमानं गच्छत्याकूपारेण तुष्टुवानः । तां० १५ । ५ । ३० ॥

,, अकूपाराङ्गिरस्यासीत्तस्या यथा गोधायास्त्वगेवं त्वगासीत्तामेतेन त्रिः साम्नेन्द्रः पूत्वा सूर्य्यत्वचसमकरोत्तद्वाव सा तर्ह्यकामयत यत्कामा एतेन साम्ना स्तुवते स एभ्यः कामः समृध्यते । तां० ९ । २ । १४ ॥

आक्षारम् (साम)—एभ्यो वै लोकेभ्यो रसोऽपाक्रामत्तं प्रजापतिराक्षारेणाक्षारयद्यदाक्षारयत्तदाक्षारस्याक्षारत्वम् । तां० ११।५।१०॥

,, तस्माद्यः पुरा पुण्यो भूत्वा पश्चात् पापीयान् स्यादाक्षारं ब्रह्मसाम कुर्वीतात्मन्येवेन्द्रियं वीर्य्यꣳ रसमाक्षारयति। तां० ११।५।११॥

,, ते देवा असुरान् कामदुघाभ्य आक्षारेणानुदन्त नुदते भ्रातृव्यं कामदुघाभ्य आक्षारेण तुष्टुवानः । तां० ११।५।९॥

आखुः आखुस्ते (रुद्रस्य) पशुः । श० २।६।२।१०॥ तै० १।६।१०।२॥

आगाः तद्यास्तिस्र आगा इम एव ते लोकाः । जै० उ० १।२०।७॥

आगीतानि अथ यानि त्रीण्यागीतान्यग्निर्वायुरसावादित्य एतान्यागीतानि । जै० उ० १।२०।८॥

आगूः आगूर्वज्रः । ऐ० २।२८॥

आग्नीध्रः आग्नीध्रे ह्यधारयंत यदाग्नीध्रेऽधारयन्त तदाग्नीध्रस्याग्नीध्रत्वम् । ऐ० २।३६॥

,, द्यावापृथिव्यो वाऽएष यदाग्नीध्रः । श० १।८।१।४१॥

आग्नीध्रम् अन्तरिक्षमाग्नीध्रम् । तै० २।१।५।१॥

,, अन्तरिक्षं वाऽआग्नीध्रम् । श० ९।२।३।१५॥

आग्नीध्रीयः बाहूऽएवास्य (यज्ञस्य) आग्नीध्रीयश्च मार्जालीयश्च। श० ३।५।३।४॥

आग्नेयम् (साम)अग्निः सृष्टो नोददीप्यत तं प्रजापतिरेतेन साम्नोपाधमत् स उददीप्यत दीप्तिश्च वा एतत्साम ब्रह्मवर्चसञ्च दीप्तिञ्चैवैतेन ब्रह्मवर्चसञ्चावरुन्धे । तां० १३।३।२२॥

,, निधिनमाग्नेयं भवति प्रतिष्ठायै । तां० १३।३।२१॥

आग्नेयी (आगा) सा या मन्द्रा साऽऽग्नेयी (आगा)। तया प्रातस्सवनस्योद्गेयम् । जै० उ० १।३७।२॥

आग्रयणः यां वाऽअमूं ग्रावाणमाददानो वाचं यच्छत्यत्र वै साग्रेऽवदत्तद्यत्सात्राग्रेऽवदत्तस्मादाग्रयणो नाम। श०४।२।२।६॥

,, आत्माग्रयणः । श० ४।४।१।५॥

,, आत्मा वा आग्रयणः । श०४।२।२।५॥४।५।४।६॥

आग्रयणम् अग्र्यमिव हीदम् (आग्रयणाख्यं हविः) । श० २ । ४ । ३ । १३ ॥

,, संवत्सराद्वा एतदधिप्रजायते यदाग्रयणम् । गो० उ० १ । १७ ॥

,, आग्रयणेनान्नाद्यकामो यजेत । कौ० ४ । १२ ॥

,, एतेन वै देवाः । यज्ञेनेष्ट्वोभयीनामोषधीनां याश्च मनुष्या उपजीवन्ति याश्च पशवः कृत्यामिव त्विद्विषमिव त्वदपजघ्नुस्तत आश्नन्मनुष्या आलिशन्त पशवः । श० २ । ४ । ३ । ११ ॥

आग्लागृधः—तं वा एतमाग्लाहृतं संतमाग्लागृध इत्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया इव हि देवा भवन्ति प्रत्यक्षद्विषः । य एष ब्राह्मणो गायनो वा नर्त्तनो वा भवति तमाग्लागृध इत्याचक्षते । गो० पू० २ । २१ ॥

आघारः—शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदाघारः । तै० ३ । ३ । ७ । १० ॥

,, प्राण आघारः । तै० ३ । ३ । ७ । ९ ॥

आङ्गिरसः—सोऽयास्य आङ्गिरसः । अङ्गानाᳬ हि रसः प्राणो वाऽङ्गानाᳬ रसः । श० १४ । ४ । १ । २१ ॥

,, आङ्गिरसोऽङ्गानाᳬ हि रसः । श० १४ । ४ । १ । ९ ॥

,, स एष एवाऽऽङ्गिरसः (अन्नाद्यम्) । अतो हीमान्यङ्गानि रसं लभन्ते । तस्मादाङ्गिरसः । यद्धवैषामङ्गानां रसस्तस्माद्वाऽऽङ्गिरसः । जै० उ० २ । ११ । ९ ॥

आङ्गिरसम् (साम)—चतुर्णिधनमाङ्गिरसं भवति चतूरात्रस्य धृत्यै । तां० १२ । ९ । १८ ॥

आङ्गिरसो वेदः—तानङ्गिरस ऋषीनाङ्गिरसांश्चार्षेयानभ्यश्राम्यदभ्यतपत्समतपत्तेभ्यः श्रान्तेभ्यस्तप्तेभ्यः सन्तप्तेभ्यो यान् मन्त्रानपश्यत्स आङ्गिरसो वेदोऽभवत् । गो० पू० १ । ८ ॥

आचमनम् तद्विद्वाᳬसः श्रोत्रियाः । अशिष्यन्त आचामन्त्यशित्वाचामन्त्येतमेव तदनमनग्नं कुर्वन्तो मन्यन्ते । श० १४ । ९ । २ । १५ ॥

,, तद्यथा भोक्ष्यमाणोऽप एव प्रथममाचामयेदप उपरिष्टात् । गो० पू० २ । ९ ॥

आचार्य्याः संस्थानाध्यायिन आचार्य्याः पूर्वे बभूवुः श्रवणादेव प्रतिपद्यन्ते न कारणं पृच्छन्ति । गो० पू० १ । २७ ॥

आच्छच्छन्दः (यजु० १५ । ४५ ॥) अन्नं वाऽआच्छच्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ३, ४ ॥

आजिगम् (साम) आजिगं भवत्याजिजित्यायै । तां० १५ । ९ । ६ ॥

आजिज्ञासेन्याः (ऋचः) आजिज्ञासेन्याभिर्वै देवा असुरानाज्ञायाथैनानत्यायन् । ऐ० ६ । ३३ ॥

,, आजिज्ञासेन्याभिर्ह वै देवा असुरानाज्ञायाथैनानत्यायन् । गो० उ० ६ । १३ ॥

,, अथाजिज्ञासेन्याः शंसतीहेत्थ प्रागपागुदागधरागिति । गो० उ० ६ । १३ ॥

आज्यदोहानि (सामानि) एतैर्वै सामभिः प्रजापतिरिमान् लोकान् सर्वान् कामान् दुग्ध यदाज्याद्दुग्ध तदाज्यादोहानामाज्यादोहत्वम् । तां० २१ । २ । ५ ॥

,, ज्येष्ठसामानि वा एतानि (आज्यदोहानि) श्रेष्ठसामानि प्रजापतिसामानि । तां० २१ । २ । ३ ॥

आज्यपाः (देवाः) प्रयाजानुयाजा वै देवा आज्यपाः । श० १ । ५ । ३ । २३ ॥ १ । ९ । १ । १० ॥

आज्यभागः वायव्य आज्यभागः । तै० ३ । ९ । १७ । ४, ५ ॥

,, चक्षुषी ह वा एते यज्ञस्य यदाज्यभागौ । श० १ । ६ । ३ । ३८ ॥

,, चक्षुषी वाऽएते यज्ञस्य यदाज्यभागौ । श० ११ । ७ । ४ । २ ॥ १४ । २ । २ । ५२ ॥

,, चक्षुर्वा आज्यभागौ । कौ० ३ । ५ ॥

आज्यम् महिष्यभ्यनक्ति । तेजो वा आज्यम् । तै० ३ । ९ । ४ । ६ ॥

,, तेजो वा आज्यम् । तां० १२ । १० । १८ ॥

,, तेज आज्यम् । तै० १ । ६ । ३ । ४ ॥ २ । १ । ५ । ५ ॥ २ । ७ । १ । ४ ॥

,, अग्नेर्वा एतद्रूपम् । यदाज्यम् । तै० ३ । ८ । १४ । २ ॥

,, देवलोको वा आज्यम् । कौ० १६ । ५ ॥

,, एतद्वै देवानां प्रियतमं धाम (यजु० १ । ३१) यदाज्यम् । श० १ । ३ । २ । १७ ॥

आज्यम् एतद्वै देवानां प्रियं धाम यदाज्यम् । श० १३ । ३ । ६ । २ ॥
,, आज्यम् (=विलीनं सर्पिः) वै देवानां सुरभि । ऐ० १ । ३ ॥
,, एषा हि विश्वेषां देवानां तनूः । यदाज्यम् । तै० ३ । ३ । ४ । ६ ॥
,, एतद्वै जुष्टं देवानां यदाज्यम् । श० १ । ७ । २ । १० ॥
,, एतद्वै संवत्सरस्य स्वं पयः यदाज्यम् । श० १ । ५ । ३ । ५ ॥
,, रस आज्यम् । श० ३ । ७ । १ । १३ ॥
,, आज्यꣳह वाऽअनयोर्द्यावापृथिव्योः प्रत्यक्षꣳरसः । श० २ । ४ । ३ । १० ॥
,, पशव आज्यम् । तै० १ । ६ । ३ । ४ ॥
,, यज्ञो वा आज्यम् । तै० ३ । ३ । ४ । १ ॥
,, यजमानो वा आज्यम् । तै० ३ । ३ । ४ । ४ ॥
,, वज्रो ह्याज्यम् । श० १ । ३ । २ । १७ ॥
,, वज्रो वाऽआज्यं वज्रेणैवैतद्रक्षाꣳसि नाष्ट्रा अपहन्ति । श० ७ । ४ । १ । ३४ ॥
,, वज्रो वा ऽ आज्यं तद्वज्रेणैवैतन्नाष्ट्रारक्षाꣳस्यवबाधते । श० ३ । ६ । ४ । १५ ॥
,, वज्रो वा आज्यम् । कौ० १३ । ७ ॥ श० १ । ५ । ३ । ४ ॥ ३ । ३ । १ । ३ ॥ ३ । ४ । ३ । ११ ॥ तै० ३ । ८ । १५ । १ ॥
,, काम आज्यम् । तै० ३ । १ । ४ । १५ ॥ ३ । १ । ५ । १५ ॥
,, सत्यमाज्यम् । श० ११ । ३ । १ । १ ॥
,, प्राणो वा आज्यम् । तै० ३ । ८ । १५ । २-३ ॥
,, रेतो वाऽआज्यम् । श० १ । ९ । २ । ७ ॥ ३ । ६ । ४ । १५ ॥ ६ । ३ । ३ । १८ ॥
,, रेत आज्यम् । श० १ । ३ । १ । १८ ॥ १ । ५ । ३ । १६ ॥ तै० ३ । ८ । २ । ३ ॥
,, छन्दाꣳसि वा आज्यम् । तै० ३ । ३ । ५ । ३ ॥
,, अयातयाम ह्याज्यम् । श० १ । ५ । ३ । २५ ॥
,, त्रैष्टुभमयनं भवत्योजस्कामस्याथकारणिधनमाज्येनामुष्मिँल्लोक उपतिष्ठते । तां० १३ । ४ । १० ॥
,, ईश्वरो वा एषोऽन्धो भवितोः । यश्चक्षुषाज्यमवेक्षते । निमील्यावेक्षेत । तै० ३ । ३ । ५ । २ ॥

आज्यानि (शस्त्राणि, स्तोत्राणि) आज्येन वै देवाः सर्वान् कामान-जयन्त्सर्वममृतत्वम् । कौ० १४ । १ ॥

" ते वै प्रातराज्यैरेवाजयंत आयन् यदाज्यैरेवाजयंत आयं-स्तदाज्यानामाज्यत्वम् । ऐ० २ । ३६ ॥

" ते (देवाः) आजिमायन्यदाजिमायꣳ स्तदाज्यानामा-ज्यत्वम् । तां० ७ । २ । १ ॥

" तद्वा इदं षड्विधमाज्यं तूष्णींजपस्तूष्णींशंसः पुरोरुक्सू-क्तमुक्थवीर्य्यं याज्येति । कौ० १४ । १ ॥

" आत्मा वै यजमानस्याज्यम् । कौ० १४ । ४ ॥

" वागेवाज्यम् । कौ० २८ । ९ ॥

" सर्वाणि स्वराण्याज्यानि (स्तोत्राणि) । तां० ७ । २ । ५ ॥

आञ्जनम् तेजो वा एतदक्ष्योर्यदाञ्जनम् । ऐ० १ । ३ ॥

आतपवर्ष्याः (आपः) तेजश्च ह वै ब्रह्मवर्चसं चाऽऽतपवर्ष्या आपः । ऐ० ८ । ८ ।

आतानः यज्ञो वाऽआतानः । श० ३ । ८ । २ । २ ॥

आतिथ्यम् शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदातिथ्यम् । ऐ० १ । १७, २५ ॥ कौ० ८ । १ ॥

" अथ यदातिथ्येन यजन्ते । विष्णुमेव देवतां यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । ४ ॥

आतीषादीयम् (साम)—आयुर्वा आतीषादीयमायुषोऽवरुध्यै । तां० १२ । ११ । १५ ॥

आत्मा आत्मा हृदये (श्रितः) । तै० ३ । १० । ८ । ९ ॥

" आत्मा वै तनूः । श० ६ । ७ । २ । ६ ॥

" मध्यतो ह्ययमात्मा । श० ६ । २ । २ । १३ ॥ ८ । १ । ४ । ३ ॥

" आत्मनो ह्येवाध्यङ्गानि प्ररोहन्ति । श० ८ । ७ । २ । १५ ॥

" आत्मनो वाऽइमानि सर्वाण्यङ्गानि प्रभवन्ति । श० ४ । २ । २ । ५ ॥

" सप्तपुरुषो ह्ययं पुरुषो यच्चत्वार आत्मा त्रयः पक्षपुच्छानि । श० ६ । १ । १ । ६ ॥

" चतुर्विधो ह्ययमात्मा । श० ७ । १ । १ । १८ ॥

" (=शरीरम्) पाङ्क्त इतर आत्मा लोमत्वङ्माꣳसमस्थि मज्जा । तां० ५ । १ । ४ ॥

आत्मा षडङ्गोऽयमात्मा षड्विधः । कौ० २० । ३ ॥
,, स पञ्चविंशश आत्मा । श० १० । १ । २ । ८ ॥
,, तस्मादितर आत्मा मेद्यति च कृश्यति च । तां० ५ । १ । ७ ॥
,, आत्माहि प्रथमः सम्भवतः सम्भवति । श० १० । १ । २ । ४ ॥
,, आत्मा ह्येवाग्रे सम्भवतः सम्भवति । श० ७ । १ । १ । २१ ॥
,, आत्मा ह्येवाग्रे सम्भवतः सम्भवत्यथ दक्षिणं पक्षमथ पुच्छमथोत्तरम् । श० ८ । ७ । २ । १३ ॥
,, (=शरीरम्) तस्मादिमान्यन्वञ्चि च तिर्यञ्चि चात्मन्नस्थीनि । श० ८ । ७ । २ । १० ॥
,, भूमोऽग्पोऽङ्गानां यदात्मा । श० ६ । ६ । १ । १० ॥
,, सर्व ᳪ ह्ययमात्मा । श० ४ । २ । २ । १ ॥
,, (=शरीरम्) तस्मादयᳪ सर्व एवात्मोष्णस्तद्धैतदेव जीविष्यतश्च मरिष्यतश्च विज्ञानमुष्ण एव जीविष्यञ्छीतो मरिष्यन् । श० ८ । ७ । २ । ११ ॥
,, (=शरीरम्) तत्सर्व आत्मा वाचमप्येति वाङ्मयो भवति । कौ० २ । ७ ॥
,, एतन्मयो वाऽअयमात्मा वाङ्मयो मनोमय प्राणमयः । श० १४ । ४ । ३ । १० ॥
,, बाह्यो ह्यात्मा । श० ६ । ६ । २ । १६ ॥
,, आत्मा यजमानः । कौ० १७ । ७ ॥ गो० उ० । ५ । ४ ॥
,, आत्मैवोखा । श० ६ । ५ । ३ । ४ ॥ ६ । ६ । २ । १५ ॥
,, अविनाशी वाऽअरेऽयमात्मानुच्छित्तिधर्मा । श० १४ । ७ । ३ । १५ ॥
,, यथा व्रीहिर्वा यवो वा श्यामाको वा श्यामाकतण्डुलो वैवमयमन्तरात्मन्पुरुषो हिरण्मयो यथा ज्योतिरधूममेवं ज्यायान्दिवो ज्यायानाकाशाज्ज्यायानस्यै पृथिव्यै ज्यायान्सर्वेभ्यो भूतेभ्य स प्राणस्यात्मैष मऽआत्मैतमित आत्मानं प्रेत्याभिसम्भविष्यामीति यस्य स्यादद्धा न विचिकित्सास्तीति । श० १० । ६ । ३ । २ ॥
,, अथ यो हैवैतमग्निᳪ सावित्रं वेद । स एवास्माल्लोकात्प्रेत्य । आत्मानं वेद । अयमहमस्मीति । तै० ३ । १० । ११ । १॥
,, आत्मनो वाऽअरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदᳪ सर्वं विदितम् । श० १४ । ५ । ४ । ५ ॥

आत्मा यश्चायमध्यात्मꣳ शारीरस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मेदममृतमिदं ब्रह्मेदꣳ सर्वम् । श० १४। ५। ५। १॥

आत्रेयी (=सूतगर्भा रजस्वलेति सायणः) तस्मादप्यात्रेय्या योषिता (सह सम्भाषणादि कुर्वन् पुरुषः) एनस्वी (भवति)। श० १। ४। ५। १३॥

आथर्वणम् (साम) आथर्वणं लोककामाय ब्रह्म साम कुर्य्यात्। तां० ८। २। ५॥

,, आथर्वणो वा एतल्लोककामाः सामापश्यꣳस्तेनामर्त्यं लोकमपश्यन् यदेतत्साम भवति स्वर्गस्य लोकस्य प्रज्ञात्यै। तां० ८। २। ६॥

,, चतुर्णिधनमाथर्वणं भवति चतूरात्रस्य धृत्यै। तां० १२। ९। ८॥

,, भेषजं वा आथर्वणानि। तां० १२। ९। १०॥

,, भेषजं वै देवानामथर्वाणो (अथर्वणा ऋषिणा दृष्टा मन्त्राः) भेषज्यायैवारिष्ट्यै। तां० १६। १०। १०।

आदाराः यत्र वाऽएनं (विष्णुं=यज्ञं) इन्द्र ओजसा पर्य्यगृह्णात्तदस्य परिगृहीतस्य रसो व्यक्षरत्स पूयन्निवाशेतसोऽब्रवीदादीर्यैव वत मऽएष रसोऽस्तौपीदिति तस्मादादारा अथ यत्पूयन्निवाशेत तस्मात्पूतीकास्तस्मादग्नावाहुतारिवाभ्याहिता ज्वलन्ति तस्मादु सुरभयो यज्ञस्य हि रसात्सम्भूताः। श० १४। १। २। १२॥

,, यत्र वै यज्ञस्य शिरोऽच्छिद्यत तस्य यो रसो व्यप्रुष्यत्तत आदाराः समभवन्। श० ४। ५। १०। ४॥

,, गायत्र्यायꣳ सोममाहरत् तस्य योंऽशुः परापतत् त आदारा अभवन्। तै० १। ४। ७। ५-६॥

आदिः (साम) इन्द्र आदिः। जै० उ० १। ५८। ९॥

,, आसंगवमादिः। जै० उ० १। १२। ४॥

,, इम एव लोका आदिः। जै० उ० १। १९। २॥

,, (प्रजापतिः) आदिं वयोभ्यः (प्रायच्छत्)। जै० उ० १। ११। ७॥

आदिः (साम) अथ यत्प्रतीच्यां दिशि तत्सर्वमादिनाप्नोति। जै० उ० १। ३१। ५॥

आदित्यः यदसुराणां लोकानादत्त। तस्मादादित्यो नाम। तै० ३। ९। २१। २॥

,, तेषां (नक्षत्राणां) एष (आदित्यः) उद्यन्नेव वीर्यं क्षत्रमादत्त तस्मादादित्यो नाम। श० २। १। २। १८॥

,, तस्य यद् (प्रजापतेः) रेतसः प्रथममुददीप्यत तदसावादित्योऽभवत्। ऐ० ३। ३४॥

,, तस्य (प्रजापतेः) शोचत आदित्यो मूर्ध्नोऽसृज्यत। तां० ६। ५। १॥

,, तत् (छिन्नं विष्णोश्शिरः) पतित्वासावादित्योऽभवत्। श० १४। १। १। १०॥

,, आदित्यो वा अर्कः। श० १०। ६। २। ६॥

,, पर्जन्य आदित्यः। गो० पू० ४। ३॥

,, ज्योतिः शुक्रमसौ (आदित्यः)। ऐ० ७। १२॥

,, (हे आदित्य त्वं) व्युषि सविता भवस्युदेष्यन् विष्णुरुद्यन्पुरुष उदितो बृहस्पतिरभिप्रयन्मघवेन्द्रो वैकुण्ठो माध्यन्दिने भगोऽपराह्ण उग्रो देवो लोहितायन्नस्तमिते यमो भवसि॥ अक्ष्णु सोमो राजा निशायाम्पितृराजस्स्वप्ने मनुष्यान्प्रविशसि पयसा पशून्॥ विरात्रे भवो भवस्यपररात्रेऽङ्गिरा अग्निहोत्रवेलायाम्भृगुः। जै० उ० ४। ५। १-३॥

,, स वा एष इन्द्रो वैमृध उद्यन् भवति सवितोदितो मित्रस्संगवकाल इन्द्रो वैकुण्ठो मध्यन्दिने समावर्त्तमानश्शर्व उग्रो देवो लोहितायन् प्रजापतिरेव संवेशेऽस्तमितः। जै० उ० ४। १०। १०॥

,, असौ वाऽआदित्योऽश्मा पृश्निः। श० ९। २। ३। १४॥

,, अप्रतिधृष्या (=प्रजापतेस्तनूविशेषः) तदादित्यः। ऐ० ५। २५॥

,, एष (आदित्यः) वा अब्जा अद्भ्यो वा एष प्रातरुदेत्यपः सायं प्रविशति। ऐ० ४। २०॥

,, असौ वा आदित्य एषो ऽश्वः। श० ६। ३। १। २९॥

आदित्यः आदित्यास्त्रिपात्तस्येमे लोकाः पादाः । गो० पू० २ । २ । ८ (९)॥

" अथ यत्तच्चक्षुरासीत् स आदित्योऽभवत् । जै० उ० २ । २ । ३ ॥

" चक्षुरादित्यः । श० ३ । २ । २ । १३ ॥

" आदित्यो वा उद्गाताऽधिदैवं चक्षुरध्यात्मम् । गो० पू० ४।३॥

" किं नु ते मयि (आदित्ये) इति । ओजो मे बलम्म चक्षुर्मे । जै० उ० ३ । २७ । ८ ॥

" प्राण आदित्यः । तां० १६ । १३ । २ ॥

" अथैष वात्र यशः य एष (आदित्यः) तपति । श० १४ । १ । १ । ३२ ॥

" एष (आदित्यः) वै यशः । श० ६ । १ । २ । ३ ॥

" आदित्योऽसि दिवि श्रितः । चन्द्रमसः प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । ११ ॥

" एष (आदित्यः) स्वर्गो लोकः । तै० ३ । ८ । १० । ३ ॥ ३ । ८ । १७ । २ ॥ ३ । ८ । २० । २ ॥

(आदित्यलोकं प्रशंसति-) तद्दैव्यं क्षत्रम् । सा श्रीः । तद्ब्रध्नस्य विष्टपम् । तत्स्वाराज्यमुच्यते । तै० ३ । ८ । १० । ३ ॥

" देवलोको वा आदित्यः । कौ० ५ । ७ ॥ गो० उ० १ । २५ ॥

" आदित्य एषां भूतानामधिपतिः । ऐ० ७ । २० ॥

" असावादित्यः शिरः प्रजानाम् । तै० १ । २ । ३ । ३ ॥

" सर्वतोमुखो वा ऽअसावादित्य एष वाऽइदꣳ सर्वं निर्द्धयति यदिदं किञ्च पुष्यति तेनैष सर्वतोमुखस्तेनान्नादः । श० २ । ६ । ३ । १४ ॥

" आदित्यो वा उद्गाता । गो० पू० २ । २४ ॥

" आदित्य उद्गीथः । जै० उ० १ । ३३ । ५ ॥

" आदित्य उदयनीयः । श० ३ । २ । ३ । ६ ॥

" असौ वा आदित्य एकाकी चरति । तै० ३ । ९ । ५ । ४ ॥

" आदित्यस्त्वेव सर्वऽऋतवः । यदैवोदेत्यथ वसन्तो यदा संगवोऽथ ग्रीष्मो यदा मध्यन्दिनोऽथ वर्षा यदापराह्णोऽथ शरद्यदैवास्तमेत्यथ हेमन्तः । श० २ । २ । ३ । ९ ॥

आदित्यः त्रिर्ह वा एष (मघवा = इन्द्रः = आदित्यः) एतस्या मुहूर्त्तस्येमाम्पृथिवीं समन्तः पर्य्येति । जै० उ० १ । ४३ । ९ ॥

„ एष ह वा अह्नां विचेता योऽसौ (सूर्य्यः) तपति । गो० उ० ६ । १४ ॥

„ एष (आदित्यः) ह वा अह्नां विचेतयिता । ऐ० ६ । ३५ ॥

„ असौ वाऽ आदित्यः पाप्मनो ऽपहन्ता । श० १३ । ८ । १ । ११ ॥

„ स वा एष (आदित्यः) न कदाचनास्तमयाति नोदयाति । तद्यदेनं पश्चादस्तमयतीति मन्यन्ते अह्न एव तदन्तं गत्वाथात्मानं विपर्य्यस्यतेऽहरेवाधस्तात्कृणुते रात्रीं परस्तात् । गो० उ० ४ । १० ॥

„ स वा एष (आदित्यः) न कदाचनास्तमेति नोदेति तं यदस्तमेतीति मन्यंतेऽह्न एव तदन्तमित्वाऽथात्मानं विपर्यस्यते रात्रिमेवावस्तात् कुरुतेऽहः परस्तादथ यदेनं प्रातरुदेतीति मन्यंते रात्रेरेव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यते ऽहरेवावस्तात्कुरुते रात्रिं परस्तात्स वा एष न कदाचन निम्रोचति । ऐ० ३ । ४४ ॥

„ तस्य (अर्कस्य=आदित्यस्य) एतदन्नं क्यमेष चन्द्रमास्तदर्क्ये यजुष्टः । श० १० । ४ । १ । २२ ॥

„ प्राङ् चार्वाङ् चादित्यस्तपति । तां० १२ । १० । ६ ॥

„ यस्माद्वायत्रोत्तमस्तृतीयः (त्रिरात्रः) तस्मादर्वाङादित्यस्तपति । तां० १० । ५ । २ ॥

„ सहस्रं हैत आदित्यस्य रश्मयः । जै० उ० १ । ४३ । ५ ॥

„ स एष (आदित्यः) एकशतविधस्तस्य रश्मयः शतं विधा एष एवैकशततमो य एष तपति । श० १० । २ । ४ । ३ ॥

„ षष्टिश्च ह वै त्रीणि च शतान्यादित्यस्य रश्मयः । श० १० । ५ । ४ । ४ ॥

„ षष्टिश्च ह वै त्रीणि च शतान्यादित्यं नाड्यः समन्तं परियन्ति । श० १० । ५ । ४ । १४ ॥

„ शतयोजने ह वा एष (आदित्यः) इतस्तपति । कौ० ८ । ३ ॥

„ तं (सावित्रमग्निं) स (भरद्वाजः) विदित्वा । अमृतो

भूत्वा। स्वर्गं लोकमियाय। आदित्यस्य सायुज्यम्। तै० ३। १०। ११। ५॥

आदित्यग्रहः सवनततिर्वा आदित्यग्रहः। कौ० १६। १॥

,, अथैष सरसो ग्रहो यदादित्यग्रहः। कौ० १६। १॥ ३०। १॥

आदित्यश्चरुः विडेष आदित्यश्चरुः। श० ६। ६। १। ७॥

आदित्यस्य पदम् एतद्वा आदित्यस्य पदं यद्भूमिः। गो० पू० २। १८।

आदित्याः अष्टौ ह वै पुत्रा अदितेः। यांस्त्वेतद्देवा आदित्या इत्याचक्षते सप्त ह वै तेऽविकृतꣳ ह्याष्टमं जनयांचकार मार्तण्डम्। श० ३। १। ३। ३॥

,, तदभ्यनूक्ता। अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वं परि देवाꣳ उपप्रैत् सप्तभिः परा मार्तण्डमास्यदिति। तां० २४। १२। ५-६॥

,, एताभिर्वा आदित्या इंद्रमार्ध्नुवन्मित्रश्च वरुणश्च धाता चार्यमा चाꣳशश्च भगश्चेन्द्रश्च विवस्वांश्च। तां० २४। १२। ४॥

,, कतमऽआदित्या इति। द्वादश मासाः संवत्सरस्यैतऽआदित्या एते हीदꣳ सर्वमाददाना यन्ति ते यदिदꣳ सर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति। श० ११। ६। ३। ८॥

,, सप्तादित्याः। तां० २३। १५। ३॥

,, भूमोऽएष देवानां यदादित्याः। श० ६। ६। १। ८॥

,, प्राणा वा आदित्याः। प्राणा हीदं सर्वमाददते। जै० उ० ४। २। ९॥

,, घृतभाजना ह्यादित्याः। श० ६। ६। १। ११॥

,, आदित्यास्त्वा जागतेन छन्दसा संमृजन्तु। तां० १। २। ७॥

,, वर्षाभिर्ऋतुनादित्याः स्तोमे सप्तदशे स्तुतं वैरूपेण विशौजसा। तै० २। ६। १९। १-२॥

,, सर्वे वाऽआदित्याः। श० ५। ५। २। १०॥

,, आदित्या वै प्रजाः। तै० १। ८। ८। १॥

,, एते खलु वादित्या यद्ब्राह्मणाः। तै० १। १। ९। ८॥

,, पशव आदित्याः। तां० २३। १५। ४॥

,, सर्प्या वा आदित्याः। तां० २५। १५। ४॥

आदित्यो गर्भः (यजु० १३ । ४१) आदित्यो वाऽएष गर्भो यत्पुरुषः ।
शा० ७ । ५ । २ । १७ ॥

आधीतयजूंषि तद्यदस्यैता आत्मन्देवता आधीता भवन्ति तस्मादाधीतयजूꣳषि नाम । श० ३ । १ । ४ । १४ ॥

" ततो यानि त्रीणि स्रुवेण जुहोति । तान्याधीतयजूꣳषीत्याचक्षते । श० ३ । १ । ४ । २ ॥

आनन्त्यम् प्रजापतिरकामयतानन्त्यमश्नूयेति । गो० पू० ५ । ८ ॥

आनूपम् (साम)—एतेन वै वध्र्यश्व आनूपः पशूनां भूमानमाश्नुत पशूनां भूमानमश्नुत आनूपेन तुष्टुवानः । तां० १३ । ३ । १७ ॥

आन्धीगवम् (साम) अथैतदान्धीगवमन्धीगुर्व्वा एतत्पशुकामः सामापश्यत्तेन सहस्रं पशूनसृजत यदेतत्साम भवति पशूनां पुष्ट्यै । तां० ८ । ५ । १२ ॥

आपः तद्यदब्रवीत् (ब्रह्म) आभिर्वा अहमिदं सर्वमाप्स्यामि यदिदं किंचेति तस्मादापोऽभवंस्तदपामप्त्वमाप्नोति वै स सर्वान् कामान् यान् कामयते । गो० पू० १ । २ ॥

" सेदꣳसर्वमाप्नोद्यदिदं किं च यदाप्नोत्तस्मादापः । श० ६ । १ । १ । ९ ॥

" अद्भिर्वाऽइदꣳ सर्वमाप्तम् । श० १ । १ । १ । १४ ॥ २ । १ । १ । ४ ॥ ४ । ५ । ७ । ७ ॥

" आपो ह वाऽइदमग्रे सलिलमेवास । ता अकामयन्त कथं नु प्रजायेमहीति । श० ११ । १ । ६ । १ ॥

" अश्मनो ह्यापः प्रभवन्ति । श० ९ । १ । १ । ४ ॥

" तस्मात्पुरुषात्तप्तादापो जायन्ते । श० ६ । १ । ३ । १ ॥

" ता वाऽएताः (सारस्वतीः, ऊर्मी, स्यन्दमानाः, अपयतीः, समुद्रियाः, निवेष्याः, स्थावराः, आतपवर्ष्याः, वैशन्तीः, कूप्याः, प्रुष्वाः, मधव्याः, गोरुल्व्याः, पयस्याः, घृतात्मिकाः) सप्तदशापः सम्भरति । श० ५ । ३ । ४ । २२ ॥

" प्राणा वा आपः । तै० ३ । २ । ५ । २ ॥ तां० ९ । ९ । ४ ॥

" आपो वै प्राणाः । श० ३ । ८ । २ । ४ ॥

" प्राणो ह्यापः । जै० उ० ३ । १० । ९ ॥

आपः तस्मादिमा उभयत्रापः प्राणेषु चात्मंश्च । श० ७ । २ । ४ । १० ॥

,, अमृतं वाऽआपः । श० १ । ९ । ३ । ७ ॥ ४ । ४ । ३ । १५ ॥

,, अमृतत्वं वा आपः । कौ० १२ । १ ॥

,, अमृता ह्यापः । श० ३ । ९ । ४ । १६ ॥

,, अमृतं वा एतदस्मिन् लोके यदापः । ऐ० ८ । २० ॥

,, आपो वाऽउत्सः (उत्सः-यजु० १२ । १९) । श० ६ । ७ । ४ । ४ ॥

,, आपो ऽक्षितिर्या इमा एषु लोकेषु याश्चेमा अध्यात्मन् । कौ० ७ । ४ ॥

,, शान्तिरापः । श० १ । २ । २ । ११ ॥ १ । ७ । ४ । ९, १७ ॥ १ । ९ । ३ । २, ४ ॥ २ । ६ । २ । १८ ॥ ३ । ३ । १ । ७ ॥

,, शान्तिर्वा आपः । ऐ० ७ । ५ ॥

,, आपो हि शान्तिः । तां० ८ । ७ । ८ ॥

,, शान्तिर्वै भेषजमापः । कौ० ३ । ६, ७, ८, ९ ॥ गो० उ० १ । २५ ॥

,, आपो ह वाऽओषधीनाꣳ रसः । श० ३ । ६ । १ । ७ ॥

,, रसो वाऽआपः । श० ३ । ३ । ३ । १८ ॥ ३ । ९ । ४ । ७ ॥

,, आपो वै सर्वस्य शान्तिः प्रतिष्ठा । ष० ३ । १ ॥

,, आपो वा ऽअस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा । श० ४ । ५ । २ । १४ ॥ ६ । ८ । २ । २ ॥ १२ । ५ । २ । १४ ॥

,, आपः सत्ये (प्रतिष्ठिताः) । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥

,, श्रद्धा वा आपः । तै० ३ । २ । ४ । १ ॥

,, मेध्या वा आपः । श० १ । १ । १ । १ ॥ ३ । १ । २ । १० ॥

,, मेध्या वाऽएता आपो भवन्ति या आतपति वर्षन्ति । श० ५ । ३ । ४ । १३ ।

,, पवित्रं वाऽआपः । श० १ । १ । १ । १ ॥ ३ । १ । २ । १० ॥

,, आपो वै क्षीररसा आसन् । तां० १३ । ४ । ८ ॥

,, ऊर्ध्वा आपो रसः । कौ० १२ । १ ॥

,, अन्नं वा ऽआपः । श० २ । १ । १ । ३ ॥ ७ । ४ । २ । ३७ ॥ ८ । २ । ३ । ६ ॥ तै० ३ । ८ । २ । १ ॥ ३ । ८ । १७ । ५ ॥

,, अन्नमापः । कौ० १२ । ३, ८ ॥

आपः आपोऽन्नम् । ऐ० ६ । ३० ॥

,, तद्यास्ता आपोऽन्नं तत् । जै० उ० १ । २५ । ९ ॥

,, तद्यत्तदन्नमापस्ताः । जै० उ० १ । २९ । ५ ॥

,, आपो वै रक्षोघ्नीः । तै० ३ । २ । ३ । १२ ॥ ३ । २ । ४ । २ ॥ ३ । २ । ९ । १४ ॥

,, (इन्द्रः) एताभिः (अद्भिः) ह्येनं (वृत्रं) अहन् । श० १ । १ । ३ । ८ ॥

,, वज्रो वाऽआपः । श० १ । १ । १ । १७ ॥ ३ । १ । २ । ६ ॥ ७ । ५ । २ । ४१ ॥ तै० ३ । २ । ४ । २ ॥

,, वीर्यं वा ऽआपः । श० ५ । ३ । ४ । १ ॥

,, आपो वा ऽअर्कः । श० १० । ६ । ५ । २ ॥

,, तद्यथा भोक्ष्यमाणोऽप एव प्रथममाचामयेदप उपरिष्टात् । गो० पू० २ । ९ ॥

,, मरुतोऽद्भिरग्निमतमयन् । तस्य तान्तस्य हृदयमाच्छिन्दन् सा ऽशनिरभवत् । तै० १ । १ । ३ । १२ ॥

,, अप्सुयोनिर्वाऽअश्वः । श० १३ । २ । २ । १९ ॥ तै० ३ । ८ । ४ । ३ ॥ ३ । ८ । १९ । २ ॥ ३ । ८ । २० । ४ ॥

,, अद्भ्यो ह वाऽअग्रेऽश्वः सम्बभूव सोऽद्भ्यः सम्भवन्नसर्वः समभवदसर्वो हि वै समभवत्तस्मान्न सर्वैः पद्भिः प्रतितिष्ठत्येकैकमेव पादमुदच्य तिष्ठति । श० ५ । १ । ४ । ५ ॥

,, आपो वा ऽअर्काः । श० ७ । ५ । १ । ११ ॥ ८ । ३ । २ । ५, ६ ॥

,, यदापोऽसौ (द्यौः) तत् । श० १४ । १ । २ । ९ ॥

,, देव्यो ह्यापः । श० १ । १ । ३ । ७ ॥

,, यज्ञो वा आपः । कौ० १२ । १ ॥ श० १ । १ । १ । १२ ॥ तै० ३ । २ । ४ । १ ॥

,, आपो वै यज्ञः । ऐ० २ । २० ॥

,, आपो हि यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । १५ ॥

,, आपो रेतः । श० ३ । ८ । ४ । ११ ॥ ३ । ८ । ५ । १ ॥

,, रेतो वा आपः । ऐ० १ । ३ ॥

,, पशवो वा एते यदापः । ऐ० १ । ८ ॥

आपः तेजश्च ह वै ब्रह्मवर्चसं चातपवर्ष्या आपः । ऐ० ८ । ८ ॥
,, आपो वै सर्वा देवताः । ऐ० २ । १६ ॥ कौ० ११ । ४ ॥ तै० ३ । २ । ४ । ३ ॥ ३ । ३ । ४ । ५ ॥ ३ । ७ । ३ । ४ ॥ ३ । ९ । ७ । ५ ॥
,, आपो वै सर्वे कामाः । श० १० । ५ । ४ । १५ ॥
,, आपो वै सर्वे देवाः । श० १० । ५ । ४ । १४ ॥
,, आपो वै देवानां प्रियं धाम । तै० ३ । २ । ४ । २ ॥
,, सौम्या ह्यापः । ऐ० १ । ७ ॥
,, तस्मात्प्रतीच्योऽप्यापो वहन्त्यः स्यन्दन्ते, सौम्या ह्यापः । ऐ० १ । ७, १२ ॥
,, वरुणाय वै सुषुवाणस्य भर्गोऽपाक्रामत्स त्रेधापतद् भृगुस्तृतीयमभवच्छ्रायन्तीयं तृतीयमपस्तृतीयं प्राविशत् । तां० १८ । ९ । १ ॥
,, आपो वरुणस्य पत्न्य आसन् । तै० १ । १ । ३ । ८ ॥
,, अग्निना वाऽआपः सुपत्न्यः । श० ६ । ८ । २ । ३ ॥
,, अस्ति वै चतुर्थो देवलोक आपः । कौ० १८ । २ ॥
,, अप्सु पृथिवी (प्रतिष्ठिता) । जै० उ० १ । १० । २ ॥
,, आपः स्थ समुद्रे श्रिताः । पृथिव्याः प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । ५ ॥
,, प्रातःसवनरूपा ह्यापः । कौ० १२ । ३ ॥
,, अथ यद्यपः शूद्राणां स भक्षः । ऐ० ७ । २९ ॥
,, योषा वाऽ आपो वृषाग्निः । श० १ । १ । १ । १८ ॥ २ । १ । १ । ४ ॥

आपश्चन्द्राः (यजु० १२ । १०२) मनुष्या वाऽआपश्चन्द्राः । श० ७ । ३ । १ । २० ॥

आपृणस्व (यजु० १७ । ७९) आपृणस्वेत्याप्रजायस्वेत्येतत् । श० ९ । २ । ३ । ४४ ॥

आप्त्याः त (आप्त्याः) इन्द्रेण सह चेरुः । श० १ । २ । ३ । २ ॥
,, ततः (="निष्ठीवनलक्षणवीर्य्यधारणात् ताभ्योऽद्भ्यः सकाशात्" इति सायणः) आप्त्याः सम्बभूवुस्त्रितो द्वितः एकतः । श० १ । २ । ३ । १ ॥

आम्नानम् तेऽन्तरेण चात्वालोत्करा उपनिष्क्रामन्ति तद्धि यज्ञस्य तीर्थमाम्नानं नाम । कौ० १८ । ९ ॥

आप्रियः (ऋचः) तद्यदाप्रीणाति तस्मादाप्रियो नाम। कौ० १०।३॥
,, आप्रीभिराप्नुवन् । तदाप्रीणामाप्रित्वम् । तै० २।२।८।६॥
,, तद्यदेनं (पशुं) एताभिराप्रीभिराप्रीणात्तस्मादाप्रियो नाम। श० ११।८।३।५॥
,, यदेतान्याप्रिय आज्यानि भवन्त्यात्मानमेवैतैराप्रीणाति । तां० १५।८।२॥ १६।५।२३॥
,, प्राणा वा आप्रियः। कौ० १८।१२॥
,, तेजो वै ब्रह्मवर्चसमाप्रियः। ऐ० २।४॥
आभीकम् (साम) आभीकं भवत्यभिक्रान्त्यै। तां० १५।९।८॥
,, अङ्गिरसस्तपस्तेपानाः शुचमशोचंस्त एतत्सामापश्यं-स्तानभीकेऽभ्यवर्षत्तेन शुचमशमयन्त यदभीके ऽभ्यवर्षं-त्तस्मादाभीकम्। तां० १५।९।९॥
आभूतिः (= प्राणः) प्राणं वा अनु प्रजाः पशव आभवन्ति। जै० उ० २।४।४॥
आमयावी (= रोगी) एतस्य (यज्ञस्य) एवैकविंशमग्निष्टोम-साम कृत्वामयाविनं याजयेत्। तां० १६।१३।१॥
,, अप वा एतस्मादन्नाद्यं क्रामति य आमयावी। तां० १६। १३।३॥
,, प्राणैरेष व्यृध्यते य आमयावी। तां० १६।१३।२॥
,, आमयाविनं याजयेत्। प्राणा वा एतमतिपवन्ते य आम-यावी यत्तीव्रसोमेन यजते पिहित्या एवाछिद्रतायै। तां० १८।५।११॥
,, अप्रतिष्ठितो वा एष य आमयावी। तां १६।१३।४॥
आमहीयवम् (साम) ताः (प्रजाः प्रजापतिना) सृष्टा अमहीयन्त यदमहीयन्त तस्मादामहीयवम्। तां० ७।५।१॥
,, प्रजापतिरकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति स शोचन्नम-हीयमानः (= अपूज्यमान इति सायणः) अतिष्ठत्स एतदामहीयवं (साम) अपश्यत्तेनेमाः प्रजा असृजत। तां० ७।५।१॥
,, प्रजानाञ्च वा एषा सृष्टिः पापवसीयसश्च विधृतिर्य-दामहीयवम्। तां० ७।५।४॥

आमहीयवम् (साम) आमहीयवं भवति क्लृप्तिश्चान्नाद्यञ्च समानं वदन्तीपु क्रियत इदमित्थमसदिति । तां० ११ । ११ । ७ ॥

,, आमहीयवं भवति क्लृप्तिश्चान्नाद्यञ्च क्लृप्तिश्चैवैतेनान्नाद्यञ्चाभ्युत्तिष्ठन्ति । तां० १५ । ९ । ५ ॥

आमाद् (यजु० १ । १७) अयं (अग्निः) वाऽआमाद्येनेदं मनुष्याः पक्त्वाश्नन्ति । श० १ । २ । १ । ४ ॥

आमिक्षा आण्डस्य वा एतद्रूपं यदामिक्षा । तै० १ । ६ । २ । ४ ॥

,, वैश्वदेव्यामिक्षा भवति । तै० १ । ६ । २ । ५ ॥ १ । ७ । १० । १ ॥

आयतनम् मनो वाऽआयतनम् । श० १४ । ९ । २ । ५ ॥

आयतिः प्राणो वा आयतिः । गो० उ० २ । ३ ॥

आयास्यम् (साम)—अयास्यो वा आङ्गिरस आदित्यानां दीक्षितानामन्नमाश्नात् स व्यभ्रᳫंशत स एतान्यायास्यान्यपश्यत्तैरात्मानᳫं समश्रीणाद्विभ्रष्टमिव वै सत्तममहर्य्यदेतत्साम भवत्यहरेव तेन सᳫंश्रीणाति । तां० १४ । ३ । २२ ॥

,, (आदित्याः) तस्मा (अयास्यायोद्गात्रे) अमुमादित्यमश्वᳫं श्वेतं कृत्वा दक्षिणामानयᳫंस्तं प्रतिगृह्य व्यभ्रᳫंशत स एतान्यायास्यान्यपश्यत्तैरात्मानᳫं समश्रीणात् । तां० १६ । १२ । ४ ॥

,, अयास्यो वा आङ्गिरस आदित्यानां दीक्षितानामश्वमाश्नात्तᳫं शुगार्छत्स तपोऽतप्यत स एते आयास्ये अपश्यत्ताभ्याᳫं शुचमपाहतापशुचᳫंहत आयास्याभ्यां तुष्टुवानः । तां० ११ । ८ । १० ॥

,, यदायास्यानि भवन्ति भेषजायैव शान्त्यै । तां० १६ । १२ । ५ ॥

,, आयास्यम्भवति तिरश्चीननिधनं प्रतिष्ठायै । तां० १४ । ३ । २१ ॥

,, अन्नाद्यं वाव तदेभ्यो लोकेभ्योऽपाक्रामत्तदयास्य आयास्याभ्याममच्यावयत् च्यावयत्यन्नाद्यमायास्याभ्यां तुष्टुवानः । तां० ११ । ८ । १२ ॥

आयास्यम् (साम) एभ्यो वै लोकेभ्यो वृष्टिरपाक्रामत्तामयास्य आयास्याभ्यामच्यावयत् च्यावयति वृष्टिमायास्याभ्यां तुष्टुवानः। तां० ११। ८। ११॥

आयुः (एकाहः)—आयुषा वै देवा असुरानायुवतायुते भ्रातृव्यं य एवं वेद। तां० १६। ३। २॥

आयुः उर्वशी वाऽअप्सराः पुरूरवाः पतिरथ यत्तस्मान्मिथुनादजायत तदायुः। श० ३। ४। १। २२॥

,, वरुण एवायुः। श० ४। १। ४। १०॥

,, (यजु० १२। ६५) अग्निर्वाऽआयुः। श० ६। ७। ३। ७॥ ७। २। १। १५॥

,, अग्निर्वाऽआयुष्मानायुष ईष्टे। श० १३। ८। ४। ८॥

,, संवत्सर आयुः। श० ४। १। ४। १०॥ ४। २। ४। ४॥

,, यज्ञो वा आयुः। तां० ६। ४। ४॥

,, असौ लोक (=द्युलोकः) आयुः। ऐ० ४। १५॥

,, असावुत्तमः (लोकः=स्वर्लोकः) आयुः (स्तोमः)। तां० ४। १। ७॥

,, अन्नमु वाऽआयुः। श० ९। २। ३। १६॥

,, आयुर्वा उद्गाता। आयुः क्षत्तसंगृहीतारः। तै० ३। ८। ५। ४॥

,, प्राणो वा आयुः। ऐ० २। ३८॥

,, यो वै प्राणः स आयुः। श० ५। २। ४। १०॥

,, आयुर्वा उष्णिक्। ऐ० १। ५॥

,, स यो हैवं विद्वान्त्सायम्प्रातराशी भवति सर्व्वᳫं हैवायुरेति। श० २। ४। २। ६॥

,, य एवं विद्वान्स्यान्न मृण्मये भुञ्जीत। तथा ह्यस्यायुर्न रिष्येत तेजश्च। आ० १। १॥

आयुतम् आयुतं (=ईषद्विलीनं सर्पिः) पितॄणाम् (सुरभि)। ऐ० १। ३॥

आयुवः (अप्सरसः, यजु० १८। ३९) आयुवाना इव हि मरीचयः प्लवन्ते। श० ९। ४। १। ८॥

आरम्भणीयम् (अहः)—तं चतुर्विंशेनारभन्ते तदारम्भणीयस्यारम्भणीयत्वम्। कौ० १९। ३॥

आरम्भणीयम् (अहः) चतुर्विंशमेतदहरुपयंत्यारम्भणीयमेतेन वै संवत्सरमारभंत। एतेन स्तोमांश्च छन्दांसि चैतेन सर्वा देवता अनारब्धं वै तच्छंदोऽनारब्धा सा देवता यदेतस्मिन्नहनि नारभंते तदारम्भणीयस्यारम्भणीयत्वम् । ऐ०४।१२॥

,, वागेवारम्भणीयमहर्वाचा ह्यारभन्ते यद्यदारभन्ते । श० १२ । २ । ४ । १ ॥

आर्त्विज्यम् अमानुष इव वाऽएतद्भवति यदार्त्विज्ये प्रवृतः । श० १ । ९ । १ । २९ ॥

आर्द्रदानुः (यजु० १८ । ४५)—एष (वायुः) ह्यार्द्रं ददाति । श० ९ । ४ । २ । ५ ॥

आर्द्रा (नक्षत्रविशेषः)—आर्द्रया रुद्रः प्रथमान एति । तै० ३ । १ । १ । ३ ॥

आर्भवम् श्रोत्रमार्भवम् । कौ० १६ । ४ ॥

आर्षभम् (साम)—अभि त्वा वृषभासुत इत्यार्षभं क्षत्रसाम क्षत्रमेवैतेन भवति । तां० ९ । २ । १५ ॥

आवपनं महत् अयं वै (भू-)लोक आवपनं महत् । तै० ३ । ९ । ५ । ५ ॥

आशा आशा वा इदमग्र आसीद्भविष्यदेव । जै० उ० ४ । २२ । १ ॥

आशापालाः शतं वै तल्प्या राजपुत्रा आशापालाः । श० १३ । १ । ६ । २ ॥

,, अथैते देवाः (आशापालाः) आप्त्याः साध्या अन्वाध्या मरुतः । श० १३ । ४ । २ । १६ ॥

आशु (साम)—अहर्वा एतदव्लीयत तद्देवा आशुनाभ्यधिन्वꣳस्तदाशोराशुत्वम् । तां० १४ । ९ । १० ॥

,, आशु भार्गवं भवति । तां० १४ । ९ । ९ ॥

आश्रावणम् स यदाश्रावयति । यज्ञमेवैतदनुमन्त्रयत ऽआ नः शृणूप न आवर्त्तस्वेति । श० १ । ५ । २ । ७ ॥

,, यज्ञो वा आश्रावणम् । श० १ । ५ । १ । १ ॥१।८।३।९॥

आश्रावितम् प्राणो वा अग्निहोत्रस्याऽऽश्रावितम् । तै० २ । १ । ५ । ९॥

आश्लेषाः (नक्षत्रविशेषः)—सर्पाणमाश्लेषाः । तै० १ । ५ । १ । २॥ ३ । १ । १ । ५॥

आश्वम् (साम)—अश्वो वै भूत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत स प्रजायत वहुरभवत्प्रजायते वहुर्भवत्याश्वेन तुष्टुवानः । तां० ११ । ३ । ५ ॥

आश्वसूक्तम् (साम)—गौषूक्तिश्चाश्वसूक्तिश्च वहुप्रतिगृह्य गरगिराव-मन्येतां तावेते सामनी अपश्यतां ताभ्यां गरन्निरघ्नाताम्। तां० १९ । ४ । १० ॥

आश्विनः (ग्रहः) श्रोत्रमाश्विनः । कौ० १३ । ५ ॥

" श्रोत्रं चात्मा चाश्विनः । ऐ० २ । २६ ॥

आश्विनम् (शस्त्रम्) यदश्विना उदजयतामश्विनावाऽन्वातां तस्मा-देतदाश्विनमित्याचक्षते । ऐ० ४ । ८ ॥

" तेषां (देवानां) अश्विनौ प्रथमावधावतान्तावन्ववदन् सह नोऽस्त्विति । तावब्रूताङ्किन्नो ततः स्यादिति यत्कामयेथे इत्यब्रुव७ंस्तावब्रूतामस्मद्देवत्यमिदमुक्थमुच्याता इति तस्मादाश्विनमुच्यते । तां० ९ । १ । ३६ ॥

" द्वाभ्यां ह्याश्विनमित्याख्यायते । कौ० १८ । ५ ॥

आष्कारणिधनम् (साम)—आष्कारणिधनं काण्वं प्रतिष्ठाकामाय ब्रह्म-साम कुर्य्यात् । तां० ८ । २ । १ ॥

आष्टादंष्ट्रे (सामनी)—अष्टादंष्ट्रो वैरूपोऽपुत्रोऽप्रजा अजीर्य्यत्स इमान् लोकान्विच्छिदिवां अमन्यत स एते जरसि साम-नी अपश्यत्तयोरप्रयोगादबिभेत् सोऽब्रवीद्धन्तवद्योमे सा-मभ्या७ं स्तवाता इति । तां० ८ । ९ । २१ ॥

" आष्टाद७ंष्ट्रे ऋद्धिकामाय कुर्य्यात् । तां० ८ । ९ । २० ॥

आसञ्जनम् आदित्य आसञ्जनमादित्ये हीमे लोका दिग्भिरासक्ताः । श० ६ । ७ । १ । १७ ॥

" चन्द्रमा आसञ्जनं चन्द्रमसि ह्यय७ं संवत्सर ऋतुभिरा-सक्तः । श० ६ । ७ । १ । १९ ॥

" अन्नमासञ्जनमन्ने ह्ययमात्मा प्राणैरासक्तः । श० ६ । ७ । १ । २१ ॥

आसन्दी सैषा (आसन्दी) खादिरी वितृणा भवति । श० ५ । ४ । ४ । १ ॥

आसन्दी इयं (पृथिवी) वाऽआसन्द्यस्याᳪं हीदᳪं सर्वमासन्नम्। श० ६। ७। १। १२॥

आसितम् (साम)—असितो वा एतेन दैवलस्त्रयाणां लोकानां दृष्टिमपश्यत् त्रयाणाङ्कामानामवरुध्या आसितं क्रियते। तां० १४। ११। १९॥

आस्कन्नाहुतिः अथ यस्याज्यमनुत्पूतᳪं स्कन्दत्यसौ वा अस्कन्नानामाहुतिः। ष० ४। १॥

आहवनीयः (अग्निः) द्यौराहवनीयः। श० ८। ६। ३। १४॥

" यद्वाऽआहवनीयमुपतिष्ठते। दिवं तदुपतिष्ठते। श० २। ३। ४। ३६॥

" एष वै स यज्ञः। येन तद्देवा दिवमुपोदक्रामन्नेष आहवनीयोऽथ य इहाहीयत स गार्हपत्यस्तस्मादेतं (आहवनीयं) गार्हपत्यात्प्राञ्चमुद्धरन्ति। श० १। ७। ३। २२॥

" यज्ञो वा आहवनीयः स्वर्गो लोकः। ऐ० ५। २४, २६॥

" स्वर्गो वै लोक आहवनीयः। ष० १। ५॥ तै० १। ६। ३। ६॥

" देवयोनिर्वाऽएष यदाहवनीयः। श० १२। ९। ३। १०॥

" इन्द्रो ह्याहवनीयः। श० २। ६। १। ३८॥

" तस्य (राज्ञः) पुरोहित एवाहवनीयो भवति। ऐ० ८। २४॥

" शम इत्याहवनीयः। जै० उ० ४। २६। १५॥

" प्राणोदानावेवाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च। श० २। २। २। १८॥

" यज्ञ आहवनीयः। श० १। ७। ३। २६॥

" यजमान आहवनीयः। तै० ३। ३। ७। २॥

" एतदायतनो यजमानो यदाहवनीयः। तां० १२। १०। १६।

" यजमानदेवत्यो वा आहवनीयः। तै० १। ६। ५। ३॥

" यद्वा आहवनीयमुपतिष्ठते। पशूंस्तद्याचते। श० २। ३। ४। ३२॥

" योनिर्वै पशूनामाहवनीयः। कौ० १८। ६॥ गो० उ० ४। ६॥

" आहवनीयो वा आहुतीनां प्रतिष्ठा। श० २। ४। ३। १०॥

" सामवेदादाहवनीयः (अजायत)। ष० ४। १॥

आहवनीयः शिरो वै यज्ञस्याहवनीयः पूर्वो ऽर्धो वै शिरः पूर्वार्धमेवैत-
यज्ञस्य कल्पयति । श० १ । ३ । ३ । १२ ॥
,, आहवनीयो वै यज्ञस्य शिरः । श० ६ । ५ । २ । १ ॥
,, (पुरुषस्य) मुखमेवाहवनीयः । कौ० १७ । ७ ॥
,, मुखमेवास्य (यज्ञस्य) आहवनीयः । श० ३ । ५ । ३ । ३ ॥
आहावः वागाहावः । ऐ० ४ । २१ ॥
,, ब्रह्म वा आहावः । ऐ० २ । ३३ ॥
आहिताग्निः देवान्वाऽएष उपावर्त्तते य आहिताग्निर्भवति । श० २ ।
४ । २ । ११ ॥ २ । ६ । १ । ३७ ॥
आहुतिः तद्यदाह्वयति तस्मादाहुतिर्नाम । श० ११ । २ । २ । ६ ॥
,, आहूतयो वै नामैता यदाहुतय एताभिर्वै देवान् यजमानो
ह्वयति तदाहुतीनामाहुतित्वम् । ऐ० १ । २ ॥
,, तस्मिन्नग्नौ यत्किंचाभ्यादधत्याहितय एवास्य ता आहितयो
ह वै ता आहुतय इत्याचक्षते परोऽक्षम् । श० १० । ६ । २ । २ ॥
,, मांꣳसानि वा ऽआहुतयः । श० ९ । २ । ३ । ४६ ॥
,, न ह वै ता आहुतयो देवान्गच्छन्ति या अवषट्कृता वा-
(ऽ) स्वाहाकृता भवन्ति । कौ० १२ । ४ ॥

(इ)

इट् (यजु० ३८ । १४) वृष्ट्यै तदाह यदाहेषे पिन्वस्वेति । श० १४ ।
२ । २ । २७ ॥
इडः (बहु व०)—अन्नं वा इडः । ऐ० २ । ४ ॥ ६ । १५ ॥
,, प्रजा वाऽइडः । श० १ । ५ । ४ । ३ ॥
,, वर्षा वा इड इति हि वर्षा इडा यदिदं क्षुद्रꣳ सरीसृपं ग्रीष्म-
हेमन्ताभ्यान्नित्यक्तं भवति तद्वर्षा ईडितमिवान्नमिच्छमानं
चरति तस्माद्वर्षा इडः । श० १ । ५ । ३ । ११ ॥
,, इडो यजति वर्षा एव वर्षाभिर्हीडितमन्नाद्यमुत्तिष्ठति । कौ०
३ । ४ ॥
इडा इयं (पृथिवी) वा इडा । कौ० ९ । २ ॥
,, गौर्वाऽइडा । श० ३ । ३ । १ । ४ ॥

इडा या वा सा (इडा-) सीद्वैर्वे सासीत् । श० १ । ८ । १ । २४ ॥
,, (यजु० ३८ । २)-इडाहि गौः । श० २ । ३ । ४ । ३४ ॥ १४ । २ । १ । ७ ॥
,, (यजु० १२ । ५१) पशवो वा इडा । कौ० ३ । ७ ॥ ५ । ७ ॥ २९ । ३ ॥ श० १ । ८ । १ । २२ ॥ ७ । १ । १ । २७ ॥ ष० २ । २ ॥ तां० ७ । ३ । १५ ॥ १४ । ५ । ३१ ॥ गो० उ० १ । २५ ॥ तै० १ । ६ । ६ । ६ ॥ ऐ० २ । ९, १०, ३० ॥
,, (=पशवः)-अथेडां पशूनुपह्वयति । श० १ । ७ । ४ । ९ ॥
,, अन्नं पशव इडा । कौ० १३ । ६ ॥
,, अन्नं वा इळा । ऐ० ८ । २६ ॥ कौ० ३ । ७ ॥
,, श्रद्धेडा । श० ११ । २ । ७ । २० ॥
,, उत मैत्रावरुणी (इडा) इति । यदेव (इडा) मित्रावरुणाभ्याꣳ समगच्छत । श० १ । ८ । १ । २७ ॥
,, यदेवास्यै (इडायै) घृतं पदे समतिष्ठत तस्मादाह घृतपदी (इडा) इति । श० १ । ८ । १ । २६ ॥
,, इडा वै मानवी यज्ञानूकाशिन्यासीत् । तै० १ । १ । ४ । ४ ॥
,, सा (मनोर्दुहिता) एषा निदानेन यदिडा । श० १ । ८ । १ । ११ ॥
,, एतद्ध वै मनुर्बिभयांचकार । इदं वै मे तनिष्ठं यज्ञस्य यदियमिडा पाकयज्ञिया । श० १ । ८ । १ । १६ ॥
,, मनुर्ह्येतामग्रेऽजनयत तस्मादाह मानवी (इडा) इति । श० १ । ८ । १ । २६ ॥
,, सा (इडा) वै पञ्चावत्ता भवति । श० १ । ८ । १ । १२ ॥

इडादधः (यज्ञः)-स एष (इडादधः) पशुकामस्यान्नाद्यकामस्य यज्ञः । कौ० ४ । ५ ॥

इडानाꣳ संक्षारः (सामविशेषः)—पशव इडानाꣳ संक्षारः । तां० १६ । ११ । ७ ॥

इण्ड्वे (द्वि० व०)-इमाउ लोकाविण्ड्वे । श० ६ । ७ । १ । २६ ॥
,, अहोरात्रेऽइण्ड्वे । श० ६ । ७ । १ । २५ ॥

इतरा गिरः (ऋ० ६ । १६ । १६)—आसुर्या ह वा इतरा गिरः । ऐ० ३ । ४९ ॥

इद्वावत्सरः चन्द्रमा इद्वावत्सरः । तां० १७ । १३ । १७ ॥
,, चन्द्रमा वा इद्वावत्सरः । तै० १ । ४ । १० । १ ॥
इध्मः इन्धे ह वा एतदध्वर्युः । इध्मेनाग्निं तस्मादिध्मो नाम । श० १ । ३ । ५ । १ ॥
,, वनस्पतय इध्माः । ऐ० ५ । २८ ॥
,, वनस्पतय इध्मः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥
,, आत्मा वा इध्मः । तै० ३ । २ । १० । ३ ॥
इन्दुः (यजु० १२ । ४३)-सोमो वाऽइन्दुः । श० ७ । ४ । ३ । २३ ॥ ७ । ५ । २ । १९ ॥
,, सोमो वै राजेन्दुः । ऐ० १ । २९ ।
इन्द्रः इन्धो वै नामैष योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तं वाऽएतमिन्धꣳ सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोऽक्षेणेव । श० १४ । ६ । ११ । २ ॥
,, अस्मिन्वा इदमिन्द्रियं प्रत्यस्थादिति । तदिन्द्रस्येन्द्रत्वम् । तै० २ । २ । १० । ४ ॥
,, तस्य (क्षत्रियस्य) ह दीक्षमाणस्येंद्र एवेंद्रियमादत्ते । ऐ० ७ । २३ ॥
,, इन्द्रस्येंद्रियेणाभिषिंचामि । ऐ० ८ । ७ ॥
,, इन्द्रस्येन्द्रियेण (त्वाभिषिञ्चामि) । श० ५ । ४ । २ । २ ॥
,, (देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे) इन्द्रस्येन्द्रियेण । तै० २ । ६ । ५ । ३ ॥
,, इन्द्रस्येन्द्रियेण । तां० १ । ३ । ५ ॥
,, इन्द्रियं (आत्मन्धत्ते) ऐन्द्रेण (पशुना) । तै० १ । ३ । ४ । ३ ॥
,, इन्द्रमच्छसुता इम इतीन्द्रियस्य वीर्यस्यावरुध्यै । तां० ११ । १० । ४ ॥
,, (यजु० ३८ । १६)—मधु हुतमिन्द्रतमेऽअग्नाविति मधु हुतमिन्द्रियतमेऽग्नावित्येवैतदाह । श० १४ । २ । २ । ४२ ॥
,, (=इन्द्रियवान्) सखाय इन्द्रमूतयऽइतीन्द्रियवन्तमूतयऽइत्येतत् । श० ६ । ३ । २ । ४ ॥
,, इन्द्रः (एवैनं) इन्द्रियेण (अवति) । तै० १ । ७ । ६ । ६ ॥
,, इन्द्रस्य त्वेन्द्रियेण व्रतपते व्रतेनादधामि । तै० १ । १ । ४ । ८ ॥
,, दधात्विन्द्र इन्द्रियम् । तां० १ । ३ । ५ ॥
,, मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधातु । श० १ । ८ । १ । ४२ ॥

इन्द्रः ('इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा' इति पाणिनीयाष्टाध्याय्याम् ५ । २ । ९३ ॥ 'इन्द्र आत्मा' इति काशिकायाम्)

„ युक्ता ह्यस्य (इन्द्रस्य) हरयः शतादशेति । सहस्रं हैत आदित्यस्य रश्मयः (इन्द्रः = आदित्यः) । जै० उ० १ । ४४ । ५ ॥

„ इन्द्र इति ह्येतमाचक्षते य एष (सूर्यः) तपति । श० ४ । ६ । ७ । ११ ॥

„ एष वै शुक्रो य एष (सूर्यः) तपत्येष (सूर्यः) उ एवेन्द्रः । श० ४ । ५ । ५ । ७ ॥ ४ । ५ । ९ । ४ ॥

„ स यस्स इन्द्र एष एव स य एष (सूर्य्यः) एव तपति । जै० उ० १ । २८ । २ ॥ १ । ३२ । ५ ॥

„ अथ यः स इन्द्रोऽसौ स आदित्यः । श० ८ । ५ । ३ । २ ॥

„ एष वाऽइन्द्रो य एष (सूर्य्यः) तपति । श० २ । ३ । ४ । १२ ॥ ३ । ४ । २ । १५ ॥

„ एष एवेन्द्रः । य एष (सूर्य्यः) तपति । श० १ । ६ । ४ । १८ ॥

„ (इन्द्रः सूर्य्य इति सायणः । तां० १४ । २ । ५ भाष्ये ।)

„ स यस्स आकाश इन्द्र एव सः । जै० उ० १ । २८ । २ ॥ १ । ३१ । १ ॥ १ । ३२ । ५ ॥

„ अथ यत्रैतत्प्रदीप्तो भवति । उच्चैर्धूमः परमया जूत्या बलबलीति तर्हि हैष (अग्निः) भवतीन्द्रः । श० २ । ३ । २ । ११ ॥

„ इन्द्रो वागित्यु वाऽआहुः । श० १ । ४ । ५ । ४ ॥

„ तस्मादाहुरिन्द्रो वागिति । श० ११ । १ । ६ । १८ ॥

„ अथ य इन्द्रस्सा वाक् । जै० उ० १ । ३३ । २ ॥

„ वाग्वा इन्द्रः । कौ० २ । ७ ॥ १३ । ९ ॥

„ वागिन्द्रः । श० ८ । ७ । २ । ६ ॥

„ (यजु० ३८ । ८) अयं वाऽइन्द्रो योऽयं (वातः) पवते । श० १४ । २ । २ । ६ ॥

„ यो वै वायुः स इन्द्रो य इन्द्रः स वायुः । श० ४ । १ । ३ । १९ ॥

„ सर्वं वाऽइदमिन्द्राय तस्थानमास यदिदं किंचापि योऽयं (वायुः) पवते । श० ३ । ९ । ४ । १४ ॥

„ स एष एवेन्द्रः । योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषोऽथेयमिन्द्राणी (योऽयꣳसव्येऽक्षन्पुरुषः) । श० १० । ५ । २ । ९ ॥

इन्द्रः योऽयं चक्षुषि पुरुष एष इन्द्रः। जै० उ० १ । ४३ । १० ॥
" ततः प्राणोऽजायत स (प्राणः) इन्द्रः। श० १४ । ४ । ३ । १९ ॥
" प्राण एवेन्द्रः। श० १२ । ९ । १ । १४ ॥
" प्राण इन्द्रः। श० ६ । १ । २ । २८ ॥
" स योऽयं मध्ये प्राणः। एष एवेन्द्रस्तानेष प्राणान्मध्यत इन्द्रियेणैन्द्ध यदैन्द्ध तस्मादिन्ध इन्धो ह वै तमिन्द्र इत्याचक्षते परोऽक्षम्। श० ६ । १ । १ । २ ॥
" हृदयमेवेन्द्रः। श० १२ । ९ । १ । १५ ॥
" यन्मनः स इन्द्रः। गो० उ० ४ । ११ ॥
" मन एवेन्द्रः। श० १२ । ९ । १ । १३ ॥
" रुक्म एवेन्द्रः। श० १० । ४ । १ । ६ ॥
" एष वा एतर्हीन्द्रो यो यजते। तै० १ । ३ । ६ । ३ ॥
" इन्द्रो वै यजमानः। श० २ । १ । २ । ११ ॥ ४ । ५ । ४ । ८ ॥ ५ । १ । ३ । ४ ॥
" एष वाऽअत्रेन्द्रो भवति यद्यजमानः। श० ३ । ३ । ३ । १० ॥
" यजमानो वै स्वे यज्ञऽइन्द्रः। श० ८ । ५ । ३ । ८ ॥
" द्वयेन वाऽएष इन्द्रो भवति यच्च क्षत्रियो यदु च यजमानः। श० ५ । ३ । ५ । २७ ॥
" ऐन्द्रो वै राजन्यः। तै० ३ । ८ । २३ । २ ॥
" इन्द्रः क्षत्रम्। श० १० । ४ । १ । ५ ॥
" क्षत्रं वा इन्द्रः। कौ० १२ । ८ ॥ तै० ३ । ९ । १६ । ३ ॥ श० २ । ५ । २ । २७ ॥ २ । ५ । ४ । ८ ॥ ३ । ९ । १ । १६ ॥ ४ । ३ । ३ । ६ ॥
" अश्वरथेनेन्द्र आजिमधावत्तस्मात्स उच्चैर्घोष उपब्दिमान्क्षत्रस्य रूपम्। ऐ० ४ । ९ ॥
" अथ या घोषिण्युपब्दिमती सैन्द्री (आशा)। तया माध्यन्दिनस्योद्गेयम्। जै० उ० १ । ३७ । ३ ॥
" अथ यदुच्चैर्घोष स्तनयन्बबवा कुर्वन्निव दहति यस्माद्भूतानि विजन्ते तदस्य (अग्नेः) ऐन्द्रं रूपम्। ऐ० ३ । ४ ॥
" यदशनिरिन्द्रस्तेन। कौ० ६ । ९ ॥
" स्तनयित्नुरेवेन्द्रः। श० ११ । ६ । ३ । ९ ॥

इन्द्रः तस्मादाहेन्द्रो ब्रह्मेति । कौ० ६ । १४ ॥
,, यत्परं भाः प्रजापतिर्वा स इन्द्रो वा । श० २ । ३ । १ । ७ ॥
,, देवलोको वा इन्द्रः । कौ० १६ । ८ ॥
,, इन्द्रो बलं बलपतिः । श० ११ । ४ । ३ । १२ ॥ तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥
,, इन्द्रो मे बले श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ८ ॥
,, वीर्य्यं वा इन्द्रः । तां० ९ । ७ । ५, ८ ॥ गो० उ० ६ । ७ ॥
,, वीर्य्यमिन्द्रः । तै० १ । ७ । २ । २ ॥
,, इन्द्रियं वीर्यमिन्द्रः । श० २ । ५ । ४ । ८ ॥
,, इन्द्रियं वै वीर्यमिन्द्रः । श० ३ । ९ । १ । १५ ॥ ५ । ४ । ३ । १८ ॥
,, शिश्नमिन्द्रः । श० १२ । ९ । १ । १६ ॥
,, रेत इन्द्रः । श० १२ । ९ । १ । १७ ॥
,, वृषा वा इन्द्रः । कौ० २० । ३ ॥
,, अर्जुनो ह वै नामेन्द्रः (महाभारतस्य कुम्भघोणसंस्करणे 'पाण्डवः' अर्जुनोऽपि इन्द्रपुत्रत्वेन प्रसिद्धः–आदिपर्वणि अ० ६३ श्लो० ६५ ॥) । श० २ । १ । २ । ११ ॥
,, अर्जुनो ह वै नामेन्द्रो यदस्य गुह्यं नाम । श० ५ । ४ । ३ । ७ ॥
,, एष एवेन्द्रः । यदाहवनीयः । श० २ । ३ । २ । २ ॥
,, इन्द्रो ह्याहवनीयः । श० २ । ६ । १ । ३८ ॥
,, स यस्स इन्द्रस्सामैव तत् । जै० उ० १ । ३१ । १ ॥
,, ऋचश्च सामानि चेन्द्रः (स्वभागरूपेणाभजत) । श० ४ । ६ । ७ । ३ ॥
,, सः (इन्द्रः) अब्रवीदुग्रं साम्नो वृणे श्रियमिति । जै० उ० १ । ५१ । ८ ॥
,, इन्द्र एष यदुद्गाता । जै० उ० १ । २२ । २ ॥
,, स यः स इन्द्रः । एष सोऽप्रतिरथः । श० ९ । २ । ३ । ५ ॥
,, इन्द्र आसीत्सीरपतिः शतक्रतुः । तै० २ । ४ । ८ । ७ ॥
,, स प्रजापतिरिन्द्रं ज्येष्ठं पुत्रमपन्यधत्त नेदेनमसुरा बलीयाᳪंसोऽहनन्निति । तै० १ । ५ । ९ । १ ॥
,, ते (देवाः) होचुः । इन्द्रो वै नो वीर्यवत्तमः । श० ४ । ६ । ६ । ३ ॥

इन्द्रः स (इन्द्रः) एतमिन्द्राय ज्येष्ठायै (=ज्येष्ठानक्षत्राय) पुरोडाशमेकादशकपालं निरवपन्महाव्रीहीणां । ततो वै स ज्यैष्ठ्यं देवानामभ्यजयत् । तै० ३ । १ । ५ । २ ॥

,, इन्द्रः (एवैनं) ज्येष्ठानां (सुवते) । तै० १ । ७ । ४ । १ ॥

,, सो (प्रजापतिः) ऽकामयतेन्द्रो मे प्रजायाᳬ श्रेष्ठः स्यादिति तामस्मै स्रजं प्रत्यमुञ्चत्ततो वा इन्द्राय प्रजाः श्रैष्ठ्यायातिष्ठन्त तच्छिल्पं पश्यन्त्यः । तां० १६ । ४ । ३ ॥

,, इन्द्रः खलु वै श्रेष्ठो देवतानामुपदेशनात् । तै० २ । ३ । १ । ३ ॥

,, इन्द्रः सर्वा देवता इन्द्रश्रेष्ठा देवाः । श० ३ । ४ । २ । २ ॥

,, अथ यदिन्द्रे सर्वे देवास्तत्स्थानाः । तस्मादाहुरिन्द्रः सर्वा देवता इन्द्रश्रेष्ठा देवा इति । श० १ । ६ । ३ । २२ ॥

,, ततो वा इन्द्रो देवानामधिपतिरभवत् । तै० २ । २ । १० । ३ ॥

,, सो (इन्द्रः) ऽग्रं देवतानां पर्यैत् । अगच्छत् स्वाराज्यम् । तै० १ । ३ । २ । २ ॥

,, स (इन्द्रः) वै देवानां वसुर्वीरो ह्येषाम् । श० १ । ६ । ४ । २ ॥

,, इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतमः । ऐ० ७ । १६ ॥ ८ । १२ ॥

,, इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः । कौ० ६ । १४ ॥ गो० उ० १ । ३ ॥

,, इन्द्रौजसां पते । तै० ३ । ११ । ४ । २ ॥

,, इन्द्रो मृधां विहन्ता । कौ० ४ । १ ॥

,, इन्द्रायाᳬहोमुचे । तै० १ । ७ । ३ । ७ ॥

,, इन्द्राय सुत्राम्णे । तै० १ । ७ । ३ । ७ ॥

,, वृद्धानामिन्द्रः प्रदापयिता । तै० १ । ७ । २ । ३ ॥

,, ओकःसारी हैवैषामिन्द्रो भवति यथा गौः प्रज्ञातं गोष्ठम् । गो० उ० ६ । ४ ॥

,, ओकःसारी वा इन्द्रः । ऐ० ६ । १७, २२ ॥ गो० उ० ५ । १५ ॥

,, इन्द्रो वै त्रिशिरसं त्वाष्ट्रमहन् । तां० १७ । ५ । १ ॥

,, इन्द्रो वृत्रᳬ हत्वा देवताभिश्चेन्द्रियेण च व्यार्धत् । तै० १ । ६ । १ । ७ ॥

,, इन्द्रो मरुद्भिः (व्यद्रवत्) । श० ३ । ४ । २ । १ ॥

,, इन्द्रो रुद्रैः (उदक्रामत्) । ऐ० १ । २४ ॥

इन्द्रः इन्द्रस्य पुरोडाशः। श० ४।२।५।२२॥
„ यदिन्द्रोऽपिबच्छचीभिः। तै० १।४।२।३॥
„ इन्द्रो यज्ञस्य नेता। श० ४।१।२।१५॥
„ तदाहुः किन्देवत्यो यज्ञ इति। ऐन्द्र इति ब्रूयात्। गो० उ० ३।२३॥
„ इन्द्रो यज्ञस्यात्मेन्द्रो देवता। श० ९।५।१।३३॥
„ ऐन्द्रो वै यज्ञः। ऐ० ६।११॥
„ ऐन्द्रो हि यज्ञक्रतुः। कौ० ५।५॥ २८।२, ३॥
„ इन्द्रो यज्ञस्य देवता। ऐ० ५।३४॥ ६।९॥ श० २।१।२।११॥
„ इन्द्रो वै यज्ञस्य देवता। श० १।४।१।३३॥ १।४।५।४॥ २।३।४।३८॥
„ न ह वा इन्द्रः कंचन भ्रातृव्यम्पश्यते। जै० उ० १।४५।६॥
„ ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी। ऐ० २।२४॥ तै० १।६।३।९॥
„ इन्द्रस्य वै हरी बृहद्रथन्तरे। तां० ९।४।८॥
„ सेनेन्द्रस्य पत्नी। गो० उ० २।९॥
„ यत्साकमेधैर्यजतऽइन्द्र एव तर्हि भवतीन्द्रस्यैव सायुज्यꣳ सलोकतां जयति। श० २।६।४।८॥
„ ऐन्द्रा वै पशवः। ऐ० ६।२५॥
„ एतद्वा इन्द्रस्य रूपं यदृषभः। श० २।५।३।१८॥
„ (प्रजापतिः) ऐन्द्रमृषभं (आलिप्सत)। श० ६।२।१।५॥
„ ऐन्द्रमृषभꣳ सेन्द्रत्वाय (आलभते)। तै० १।८।५।६॥
„ स ह्यैन्द्रो यदृषभः। श० ५।३।१।३॥
„ इन्द्रो वा अश्वः। कौ० १५।४॥
„ ऐन्द्रं माध्यन्दिनम्। गो० उ० १।२३॥
„ ऐन्द्रो मध्यन्दिनः। कौ० ५।५॥ २२।७॥
„ ऐन्द्रो वै मध्यन्दिनः। ऐ० ६।३०॥
„ ऐन्द्रो वै माध्यन्दिनः। गो० उ० ६।९॥
„ मध्यस्थो वा इन्द्रः। कौ० ५।४॥
„ (अन्तरिक्षस्थानः-) इन्द्रो ज्योतिर्ज्योतिरिन्द्रइति तदन्तरिक्षलोकं लोकानमाप्नोति माध्यन्दिनं सवनं यज्ञस्य। कौ० १४।१॥

इन्द्रः स (इन्द्रः) एतं माहेन्द्रं ग्रहमव्रत माध्यन्दिनं सवनानां निष्केवल्यमुक्थानां त्रिष्टुभं छन्दसां पृष्ठं साम्नाम् । ऐ० ३ । २१ ॥

,, ऋभवो वा इन्द्रस्य प्रियं धाम । तां० १४ । २ । ५ ॥

,, ऐन्द्रं वै सुत्यमहः । कौ० ४ । ४ ॥

,, (प्रजापतिः) अग्निहोत्रेण दर्शपूर्णमासाभ्यामिन्द्रमसृजत । कौ० ६ । १५ ॥

,, ऐन्द्र एकादशकपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥

,, ऐन्द्रमेकादशकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श०५ । ३ । १ । ३ ॥

,, हेमन्तशिशिरावैन्द्राभ्याम् (अवरुन्धे) । श० १२ । ८ । २ । ३४ ।

,, दिवमैन्द्रेण (अवरुन्धे) । श० १२ । ८ । २ । ३२ ॥

,, अथेन्द्राय ज्येष्ठाय । हायनानां चरुं निर्वपति । श० ५ । ३ । ३ । ६ ॥

,, यद्धै किंचन पीतवत्पदं तदैन्द्रं रूपम् । ऐ० ६ । १० ॥

,, यत् (अक्ष्योः) शुक्लं तदैन्द्रम् । श० १२ । ९ । १ । १२ ।

,, इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु । श० ३ । ५ । २ । ४ ॥

इन्द्रतुरीयम् स इन्द्रस्तुरीयमभवत् । यदिन्द्रस्तुरीयमभवत् । तदिन्द्रतुरीयस्येन्द्रतुरीयत्वम् । तै० १ । ७ । १ । ३ ॥

इन्द्रनिहवः मन इन्द्रनिहवः । कौ० १५ । ३ ॥

इन्द्रशत्रुः अथ (त्वष्टा) यदब्रवीदिन्द्रशत्रुर्वर्द्धस्वेति तस्मादु हैनमिन्द्र एव जघानाथ यद्ध शश्वदवक्ष्यदिन्द्रस्य शत्रुर्वर्द्धस्वेति शश्वदु ह स एवेन्द्रमहनिष्यत् । श० १ । ६ । ३ । १० ॥

इन्द्रस्तोमः (क्रतुः) एतेन वा इन्द्रोऽत्यन्या देवता अभवदत्यस्याः प्रजा भवति य एवं वेद । तां० १९ । १६ । २ ॥

इन्द्राग्निस्तोमः (क्रतुः) अथैष इन्द्राग्न्योः स्तोम एतेन वा इन्द्राग्नी अत्यन्या देवता अभवतामत्यन्याः प्रजा भवति य एवं वेद । तां० १९ । १७ । १ ॥

,, पुरोधा-(= राजपौरोहित्यमिति सायणः) कामो (इन्द्राग्निस्तोमेन) यजेत । तां० १९ । १७ । ७ ॥

इन्द्राग्नी प्राणोदानौ वाऽइन्द्राग्नी । श० २ । ५ । १ । ८ ॥
,, इन्द्राग्नी हि प्राणोदानौ। श० ४ । ३ । १ । २२ ॥
,, प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी । गो॰उ॰२ । १ ॥
,, प्राणापानौ वा एतौ देवानां यदिन्द्राग्नी । तै०१ । ६ । ४ । ३ ॥
,, बलं वै तेज इन्द्राग्नी । गो॰ उ० १ । २२ ॥
,, ब्रह्मक्षत्रे वा इन्द्राग्नी । कौ० १२ । ८ ॥
,, अमृतꣳ इन्द्राग्नी । श० १० । ४ । १ । ६ ॥
,, इन्द्राग्नी वै देवानामयातयामानौ । तै० १ । १ । ६ । ५ ॥ १ । २ । ५ । १ ॥
,, इन्द्राग्नी वै देवानां मुखम् । कौ० ४ । १४ ॥
,, तस्मादाहुरिन्द्राग्नीऽएव देवानाꣳ श्रेष्ठाविति । श० ८।३।१।३॥
,, इन्द्राग्नी वै देवानामोजस्वितमौ । श० १३ । १ । २ । ६ ॥
,, इन्द्राग्नी वै देवानामोजिष्ठौ । तां० २४ । १७ । ३ ॥ ष०३।७॥
,, इन्द्राग्नी इव बलेन (भूयासम्) । मं० २ । ४ । १४ ॥
,, ओजो बलं वा एतौ देवानां यदिन्द्राग्नी । तै० १ । ६ । ४ । ४ ॥
,, इन्द्राग्नी वै देवानामोजिष्ठौ बलिष्ठौ सहिष्ठौ सत्तमौ पारयिष्णुतमौ । ऐ० २ । ३६ ॥
,, इन्द्राग्नी वै देवानामोजिष्ठौ बलिष्ठौ । तै० ३ । ८ । ७ । १ ॥
,, एताभिर्व्वा इन्द्राग्नी अत्यन्या देवता अभवताम् । तां० २४ । १७ । २ ॥
,, इन्द्राग्नी वै विश्वेदेवाः । श० १० । ४ । १ । ९ ॥
,, इन्द्राग्नी वै सर्वे देवाः । कौ० १२ । ६ ॥ १६ । ११ ॥ श० ६ । १ । २ । २८ ॥
,, इन्द्राग्नी वा इदꣳ सर्वम् । श० ४ । २ । २ । १४ ॥
,, अस्ति वै छन्दसां देवतेन्द्राग्नी । श० १ । ८ । २ । १६ ॥
,, प्रतिष्ठे वा इन्द्राग्नी । कौ० ३ । ६ ॥ ५ । ४ ॥
,, क्षत्रं वा इन्द्राग्नी । श० २ । ४ । २ । ६ ॥
,, ज्योतिरिन्द्राग्नी । श० १० । ४ । १ । ६ ॥
,, ऐन्द्राग्नं वै सामतस्तृतीयं सवनम् । कौ० ४ । ४ ॥
,, तस्मादैन्द्राग्नो द्वादशकपालः पुरोडाशो भवति । श० १ । ६ । ४ । ३ ॥
,, ऐन्द्राग्नो द्वादशकपालः पुरोडाशो भवति । श० २ । ५ । २ । ८ ॥

इन्द्राग्नी ऐन्द्राग्नानि ह्युक्थानि। श० ४। २। ५। १४॥४।६।३।३॥
,, दर्शपूर्णमासयोर्वै देवते स्त इन्द्राग्नीऽएव। श० २।४।४।१७॥
इन्द्राणी इन्द्राणी ह वाऽ इन्द्रस्य प्रिया पत्नी तस्या उष्णीषो विश्वरूपतमः। श० १४।२।१।८॥
,, स एष एवेन्द्रः। योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषोऽथेयमिन्द्राणी (योऽयꣳसव्येऽक्षन्पुरुषः)। श० १०।५।२।९॥
इन्द्रामरुतौ ऐन्द्रामारुता उक्षाणः। तां०२१।१४।१२॥
इन्द्राशुनासीरः संवत्सरो वा इन्द्राशुनासीरः। तै० १।७।१।१॥
,, इन्द्राय शुनासीराय (शुनो वायुः सीर आदित्य इति सायणः-तै० २।५।८।२ भाष्ये) पुरोडाशं द्वादशकपालं निर्वपति। तै० १।७।१।१॥
इन्द्रियं बृहत् (यजु० ३८।२७) एतद्वाऽइन्द्रियं बृहद्य एष (सूर्यः) तपति। श० १४।३।१।३१॥
इन्द्रियावान् वीर्यवानित्येवैतदाह यदाहेन्द्रियावानिति। श० ३।९।३।२५॥
,, वीर्यवत इत्येवैतदाह यदाहेन्दोरिन्द्रियावत इति। श० ४।४।२।१२॥
इन्द्रो मघवा विरप्शी इयं (पृथिवी) वा इन्द्रो मघवा विरप्शी। ऐ० ३।३८॥
इन्वकाः (मृगशीर्षसंघगतास्तारकाः) सोमस्येन्वकाः। तै० १।५।१।१॥
इरज्यन् (यजु० १२।१०९) (=दीप्यमानः) इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरिति। मनुष्या वै जन्तवो दीप्यमानोऽग्ने प्रथस्व मनुष्यैरित्येतत्। श० ७।३।१।३२॥
इरा इरा पत्नी विश्वसृजाम्। तै० ३।१२।९।५॥
इलान्दम् (साम) इरान्नं वा एतत्। तां० ५।३।२॥
,, एतद्धै साक्षादन्नं यदिलान्दम्। तां० ५।३।२॥
इलुवर्दः संवत्सरो वा इलुवर्दः। तै० ३।८।२०।५॥
इषः (यजु० २१।४७) प्रजा वाऽइषः। श० १।७।३।१४॥४।१।२।१५॥
इषम् (ऋ० ७।६६।९) अयं वै लोक इषमिति। ऐ० ६।७॥
,, अन्नं वा इषम्। कौ० २८।५॥

इषश्चोर्जश्च एतावेव शारदौ (मासौ) स यच्छरद्यूर्ग्रस ओषधयः पच्यन्ते तेनो हैताविषश्चोर्जश्च । श० ४ । ३ । १ । १७ ॥

इषिरः (यजु० १८ । ४०) इषिर इति । क्षिप्र इत्येतत् । श० ९ । ४ । १ । १० ॥

इषीकाः अमृतं वा इषीकाः । तै० ३ । ८ । ४ । ३ ॥

" आयुर्वा इषीकाः । तै० ३ । ८ । ४ । ३ ॥

इषुः वीर्यं वाऽइषुः । श० ६ । ५ । २ । १० ॥

" रुद्रस्य हीषुः । श० २ । ६ । २ । ३ ॥

" तस्मादिषुहतो वा दण्डहतो वा दशमीं (रात्रिं) नैर्दश्यं (=दुःखनिवृत्तिं) गच्छति । तां० २२ । १४ । ३ ॥

इषोवृधीयम् (साम) मेथी (=गवां बन्धने निखातस्थानं) वा इषोवृधीयम् । तां० १३ । ९ । १७ ॥

" पशवो वा इषोवृधीयम् । तां० १३ । ९ । ९ ॥

इष्कर्त्ता (यजु० १२ । ११०) इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसमिति । अध्वरो वै यज्ञः । प्रकल्पयितारं यज्ञस्य प्रचेतसमित्येतत् । श० ७ । ३ । १ । ३३ ॥

इष्टका तद्यदिष्टात्समभवंस्तस्मादिष्टकाः । श० ६ । १ । २ । २२ ॥

" यदिष्ट्वापश्यत्तस्मादिष्टका । श० ६ । ३ । १ । २ ॥

" तद्यदिष्ट्वा पशुनापश्यत् । तस्मादिष्टकाः । श० ६ । २ । १ । १० ॥

" तद्यदस्माऽइष्टे कमभवत्तस्माद्वेवेष्टकाः । श० ६ । १ । २ ।२३॥

" अस्थीनि वाऽ इष्टकाः । श० ८ । ७ । २ । १० ॥

" अस्थीष्टका । श० ८ । १ । ४ । ५ ॥ ८ । ७ । ४ । १९ ॥

" अहोरात्राणि वाऽइष्टकाः । श० ९ । १ । २ । १८ ॥

इष्टर्गः इष्टर्गो वा ऋत्विजामध्वर्युः । तै० १ । ४ । ६ । ४ ॥

इष्टापूर्त्तम् अयजतेत्यददादिति ब्राह्मणो गायतीष्टापूर्तं वै ब्राह्मणस्य । श० १३ । १ । ५ । ६ ॥

इष्टिः यज्ञो वै देवेभ्य उदक्रामत्तमिष्टिभिः प्रैषमैच्छन्यदिष्टिभिः प्रैषमैच्छंस्तदिष्टीनामिष्टित्वम् । ऐ० १ । २ ॥

" एष्टयो ह वै नाम ता इष्टय इत्याचक्षते परोक्षेण । परोक्षप्रिया इव हि देवाः । तै० १ । ५ । ९ । २ ॥ ३ । १२ । २ । १ ॥ ३ । १२ । ४ । १ ॥

इष्टिः (देवाः) तं (इन्द्रं) इष्टिभिरन्वैच्छन् । तमिष्टिभिरन्वविन्द-
न् । तदिष्टीनामिष्टित्वम् । तै० १ । ५ । ९ । २ ॥
„ तं (स्वर्गं लोकं) इष्टिभिरन्वैच्छत् । तमिष्टिभिरन्वविन्दत् ।
तदिष्टीनामिष्टित्वम् । तै० ३ । १२ । २ । १ ॥ ३ । १२ । ४ ।१॥
„ (प्रजापतिः) तं (अश्वमेधं) इष्टिभिरन्वैच्छत् । तमिष्टि-
भिरन्वविन्दत् । तदिष्टीनामिष्टित्वम् । तै० ३ । ९ । १३ । १ ॥

इहनिधनम् (साम) (देवाः) अस्मिन्नेव लोक इहनिधनेन प्रत्यति-
ष्ठन् । तां० १० । १२ । ३ ॥

इहेडम् (साम) (देवाः) अस्मिन्नेव लोक इहेडेन प्रत्यतिष्ठन् ।
तां०१० । १२ । ४ ॥

इहेह अयं वै लोक इहेह । ऐ० ४ । ३० ॥

ईडेन्यः वाग्घीदꣳ सर्वमीट्टे वाचेदꣳ सर्वमीडितम् । श० १ । ४ ।
३ । ५ ॥
„ मनुष्या वाऽईडेन्याः । श० १ । ५ । २ । ३ ॥
„ (ऋ० ३ । २७ । १३) ईडेन्यो ह्यवः (अग्निः) । श० १ ।
४ । १ । २९ ॥
„ वाग्वाऽ ईडेन्या । श० १ । ४ । ३ । ५ ॥

ईड्यः (यजु० १७ । ५५) ईड्य इति यज्ञिय इत्येतत् । श० ९ । २ ।
३ । ९ ॥

ईनिधनम् (साम) अन्तरिक्षमीनिधनम् । तां० २१ । २ । ७ ॥
„ (देवाः) अमृतत्वमीनिधनेनागच्छन् । तां० १० ।
१२ । ३ ॥

ईशानः आदित्यो वाऽईशान आदित्यो ह्यस्य सर्वस्येष्टे । श० ६ ।
१ । ३ । १७ ॥
„ एतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः = शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः,
भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नवमः ।
श० ६ । १ । ३ । १८ ॥
„ ईशानो मे मन्यौ श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ९ ॥
„ स ह स (असुः) ईशानो नाम । स दशधा भवति । स एष
एतस्य (आदित्यस्य) रश्मिरसुर्भूत्वा सर्वास्वासु प्रजासु
प्रत्यवस्थितः । जै० उ० १ । २९ । ३, ४ ॥

ईशानः दक्षिणतो वासीशानो भूतो वालि। जै० उ० ३।२१।२॥
,, यदीशानोऽन्नं तेन। कौ० ६।८॥

(उ)

उक्थम् प्राण उऽ एवोक्तस्यान्नमेव थं तदुक्थमृक्तः। श० १०।४।१।२३॥
,, एष (अग्निः) उऽएवोक्तस्यैतदन्नं थं तदुक्थमूक्तः। श० १०।४।१।४॥
,, अग्निर्वाऽउक्तस्याहुतय एव थम्। श० १०।६।२।८॥
,, आदित्यो वा उक्। तस्य चन्द्रमा एव थम्। श० १०।६।२।९॥
,, प्राणो वाऽउक्तस्यान्नमेव थम्। श० १०।६।२।१०॥
,, (देवाः सोमं) उक्थैरुदस्थापयन्। तदुक्थानामुक्थत्वम्। तै० २।२।८।७॥
,, (वागिति) एतदेषां (नाम्नां) उक्थमतो हि सर्वाणि नामान्युत्तिष्ठन्ति। श० १४।४।४।१॥
,, वागुक्थम्। ष० १।५॥
,, अन्नमुक्थानि। कौ० ११।८॥ १७।७॥
,, प्रजा वा उक्थानि। तै० १।८।७।२॥
,, पशव उक्थानि। ऐ० ४।१, १२॥ गो० उ० ६।७॥ तै० १।८।७।२॥
,, पशवो वा उक्थानि। कौ० २८।१०॥ २९।८॥ ष० ३।११॥ तै० १।२।२।२॥ तां० ४।५।१८॥ १६।१०।२॥ १९।६।३॥
,, विडुक्थानि। तां० १८।८।६॥ १९।१६।६॥
,, ऐन्द्राग्नानि ह्युक्थानि। श० ४।२।५।१४॥ ४।६।३।३॥
,, (देवाः) अन्तरिक्षमुक्थेन (अभ्यजयन्)। तां० ९।२।९॥
,, (देवाः) उक्थैरन्तरिक्षं (लोकमभ्यजयन्)। तां० २०।१।३॥
,, अपच्छिदिव वा एतद्यज्ञकाण्डं यदुक्थानि। तां० ११।११।२॥ १३।६।२॥ १४।६।१॥

उक्थम् यदुक्थानि भवन्त्यनुसन्तत्या एव । तां० १८ । ८ । ६ ॥

उक्थः (क्रतुः) उक्थः षोडशिमान् भवति । तां० १९ । ६ । ३ ॥

उक्थ्यम् अन्नं वा उक्थ्यम् । गो० पू० ४ । २० ॥

,, पशव उक्थ्यानि । कौ० २१ । ५ ॥

,, अन्तरिक्षमुक्थ्येन (अभिजयति) । तै० ३ । १२ । ५ । ७ ॥

उक्थ्यं वचः यक्षियं वै कर्मोक्थ्यं वचः । ऐ० १ । २९ ॥

उक्थ्यः अन्नं वाऽउक्थ्यः । श० १२ । २ । २ । ७ ॥

उक्षा ऐन्द्रामारुता उक्षाणः । तां० १ । १४ । १२ ॥

उखा एतद्वै देवा एतेन कर्मणैतयावृतेमांल्लोकानुदखनन् यदुदखनं-स्तस्मादुत्खोत्खा ह वै तामुखेत्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ६ । ७ । १ । २३ ॥

,, आत्मैवोखा । श० ६ । ५ । ३ । ४ ॥ ६ । ६ । २ । १५ ॥

,, शिर एतद्यज्ञस्य यदुखा । श० ६ । ५ । ३ । ८ ॥ ६ । ५ । ४ । १५ ॥

,, उदरमुखा । श० ७ । ५ । १ । ३८ ॥

,, योनिर्वाऽउखा । श० ७ । ५ । २ । २ ॥

,, इमे वै लोका उखा । श० ६ । ५ । २ । १७ ॥ ६ । ७ । १ । २२ ॥ ७ । ५ । १ । २७ ॥

,, प्राजापत्यमेतत्कर्म यदुखा । श० ६ । २ । २ । २३ ॥

,, एवैतदग्नेर्यदुखा । ६ । २ । २ । २४ ॥

उख्यः (यजु० १४ । १) अयं वाऽअग्निरुख्यः । श० ८ । २ । १ । ४ ॥

उग्रं वचः अशनायापिपासे ह वा उग्रं वचः । तै० १ । ५ । ९ । ६ ॥

उग्रः वायुर्वाऽउग्रः । श० ६ । १ । ३ । १३ ॥

,, एतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः=शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नवमः । श० ६ । १ । ३ । १८ ॥

उग्रो देवः यदुग्रो देव ओषधयो वनस्पतयस्तेन । कौ० ६ । ५ ॥

उच्चाटनम् हरितालेन गोहृदयशोणितेन चेत्युत्तरेण सन्नयेद् यं द्विष्यात्प्रमथ्ंहिष्ठीयेनास्य शय्यामवकिरेदगारं च भस्मना नैकग्रामे वसति । सा० २ । ६ । ६ ॥

उत् उदिति सोऽसावादित्यः । जै० उ० २ । ९ । ८ ॥

उत्तरं सधस्थम् (यजु० १५ । ५४ ॥ १७ । ७३) द्यौर्वाऽउत्तरंᳩसधस्थम् । श० ८ । ६ । ३ । २३ ॥ ९ । २ । ३ । ३५ ॥

उत्तरः तेषु हि वा एष एतदध्याहितस्तपति स वा एष (सूर्यः) उत्तरोऽस्मात्सर्वस्माद्भूताद्भविष्यतः सर्वमेवेदमतिरोचते यदिदं किंच । ऐ० ४ । १८ ॥

„ (यजु० ३८ । २४) अयं वै (भू-)लोकोऽस्य उत्तरः । श० १४ । ३ । १ । २८ ॥

उत्तर आघारः शिरो वै यज्ञस्योत्तर आघारः । श० १ । ४ । ५ । ५ ॥

उत्तरनाभिः वाग्वाऽउत्तरनाभिः । श० १४ । ३ । १ । १६ ॥

उत्तरवेदिः नासिका ह वा एषा यज्ञस्य यदुत्तरवेदिः । अथ यदेनामुत्तरां वेदेरुपकिरति तस्मादुत्तरवेदिर्नाम । श० ३ । ५ ॥ १ । १२ ॥

„ द्यौरुत्तरवेदिः । श० ७ । ३ । १ । २७ ॥

„ योनिर्वाऽउत्तरवेदिः । श० ७ । ३ । १ । २८ ॥

„ योषा वाऽउत्तरवेदिः । श० ३ । ५ । १ । ३३ ॥

„ पशवो वा उत्तरवेदिः । तै० १ । ६ । ४ । ३ ॥

„ खल उत्तरवेदिः । तां० १६ । १३ । ७ ॥

उत्तरा देवयज्या यस्य हि प्रजा भवत्यमुं लोकमात्मनैत्यथास्मिंल्लोके प्रजा यजते तस्मात्प्रजोत्तरा देवयज्या । श० १ । ८ । १ । ३१ ॥

उत्तरौष्ठः असौ लोक उत्तरौष्ठः । कौ० ३ । ७ ॥

उत्तान आंगीरसः इयं (पृथिवी) वा उत्तान आङ्गीरसः । तै० २ । ३ । २ । ५ ॥ २ । ३ । ४ । ६ ॥

उत्थानम् यत्ततो यज्ञस्योदृचं गत्वोत्तिष्ठन्ति तदुत्थानम् । श० ४ । ६ । ८ । ५ ॥

उत्सः (यजु० १२ । १९) आपो वाऽउत्सः । श० ६ । ७ । ४ । ४ ॥

उत्सेधः (सामविशेषः) उत्सेधेन वै देवाः पशूनुदशेधन् । तां० १५ । ९ । ११ ॥

„ उत्सेधनिषेधौ ब्रह्म सामनी भवत उत्सेधेनैवास्मै पशूनुत्सिध्य निषेधेन परिगृह्णाति । तां० १९ । ७ । ४ ॥

उदयनीयम् अथ यदत्रावभृथादुदेत्य यजते तस्मादेतदुदयनीयम् ।
श० ४ । ५ । १ । २ ॥

" वागुदयनीयम् । कौ० ७ । ९ ॥

" प्राणोदानावेव यत्प्रायणीयोदयनीये । कौ० ७ । ५ ॥

उदयनीयः (यागः) आदित्य उदयनीयः । श० ३ । २ । ३ । ६ ॥

" उदान उदयनीयः । ऐ० १ । ७ ॥

उदरम् उदरमेकविंशः । विंशतिर्वा अन्तरुदरे कुन्तापान्युदरमेकविंशम् । श० १२ । २ । ४ । १२ ॥

" उदरमुखा । श० ७ । ५ । १ । ३८ ॥

" उदरं वाऽ उपयमन्युदरेण हीदं सर्वमन्नाद्यमुपयतम् ।
श० १४ । २ । १ । १७ ॥

उदर्कः रसो वा उदर्कः । कौ० ११ । ५ ॥

उदानः उदानो ह्यन्तर्यामो ऽमुं (दिवं) ह्येव लोकमुदनन्नभ्युदनिति । श० ४ । १ । २ । २७ ॥

" (यज्ञस्य) उदान एवान्तर्यामः । श० ४ । १ । १ । १ ॥

" तद्यदस्यैषो (उदानः) ऽन्तरात्मन्यतो यद्धेनेनेमाः प्रजा यतास्तस्मादन्तर्यामो नाम । श० ४ । १ । २ । २ ॥

" उदान उदयनीयः । ऐ० १ । ७ ॥

" उदस्त इव ह्ययमुदानः । ष० २ । २ ॥

" तं (संज्ञप्तं पशुं) उदीचीं दिशमुदानेत्यनुप्राणदुदानमेवास्मिँस्तदधात् । श० ११ । ८ । ३ । ६ ॥

" चन्द्रमा उदानः । जै० उ० ४ । २२ । ९ ॥

" उदानो वै त्रिककुप्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

" उदानो वै नियुतः । श० ६ । २ । २ । ६ ॥

उदीची दिक् एषा (उदीची) वै मनुष्याणां दिक् । तै० १ । ६ । ९ । ७ ॥

" उदीची हि मनुष्याणां दिक् । श० १ । २ । ५ । १७ ॥ १ ।
७ । १ । १२ ॥

" उदीचीमावृत्य दोग्धि मनुष्यलोकमेव तेन जयति । तै०
२ । १ । ८ । १ ॥ ३ । २ । १ । ३ ॥

" तस्मान्मानुषऽउदीचीनवंशामेव शालां वा विमितं वा मिन्वन्ति । श० ३ । १ । १ । ७ ॥

उदीची दिक् एषा (उदीची) वै देवमनुष्याणाᳬ शान्ता दिक् । तै० २ । १ । ३ । ५ ॥

„ उत्तरा ह वै सोमो राजा । ऐ० १ । ८ ॥

„ यदुत्तरतो वासि सोमो राजा भूतो वासि । जै० उ० ३ । २१ । २ ॥

„ उदीचीनदशं वै तत्पवित्रं भवति येन तत्सोमᳬ राजानᳬ सम्पावयन्ति । श० १ । ७ । १ । १३ ॥

„ उत्तरार्धे जुहोत्येषा (उदीची) ह्येतस्य देवस्य (रुद्रस्य) दिक् । श० १ । ७ । ३ । २० ॥

„ एषा (उदीची) ह्येतस्य देवस्य (रुद्रस्य) दिक् । श० २ । ६ । २ । ७ ॥

„ एषा (उदीची) वै रुद्रस्य दिक् । तै० १ । ७ । ८ । ६ ॥

„ यदुदञ्चः परेत्य त्र्यम्बकैश्चरन्ति रुद्रमेव तत्स्वायां दिशि प्रीणन्ति । कौ० ५ । ७ ॥

„ एषा (उत्तरा = उदीची) हि दिक् स्विष्टकृतः । श० २ । ३ । १ । २३ ॥

„ एषा (उत्तरा) वै वरुणस्य दिक् । तै० ३ । ८ । २० । ४ ॥

„ उदीची दिक् । मित्रावरुणौ देवता । तै० ३ । ११ । ५ । २ ॥

„ मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै (यजु० ११ । ३) । श० १ । ३ । ४ । ४ ॥

„ नक्षत्राणां वा एषा दिग्यदुदीची । ष० ३ । १ ॥

„ साम्नामुदीची महती दिगुच्यते । तै० ३ । १२ । ९ । १ ॥

„ उदीच्युद्गातुः (दिक्) । श० १३ । ५ । ४ । २४ ॥

„ अयास्येनाऽऽङ्गिरसेन (उद्गात्रा) मनुष्या उत्तरतः (अपित्वमेषिरे) । जै० उ० २ । ७ । २ ॥

„ तस्मादुद्गाता वृत उत्तरतो निवेशनं लिप्सेत । जै० उ० २ । ८ । २ ॥

„ उदीचीमेव दिशम् । पथ्यया स्वस्त्या प्राजानन् । श० ३ । २ । ३ । १५ ॥

„ सा (पथ्या स्वस्तिः) उदीचीं दिशं प्राजानात् । कौ० ७ । ६ ॥

उदीची दिक् उदीचीमारोह । अनुष्टुप्त्वावतु वैराजᳪ सामैकविᳪशः स्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणम् । श० ५।४।१।६॥

„ मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्य उत्तरासद्भ्यः स्वाहा । श० ५।२।४।५॥

„ विश्वे त्वा देवा उत्तरतोऽभिषिञ्चन्त्वानुष्टुभेन छन्दसा । तै० २।७।१५।५॥

„ अथैनं (इन्द्रं) उदीच्यां दिशि विश्वे देवा......अभ्यषिञ्चन्......वैराज्याय । ऐ० ८।१४॥

„ विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पातु । श० ३।५।२।७॥

„ तस्मादुत्तरतः पश्चादयं भूयिष्ठं पवमानः (=वायुः) पवते सवितृप्रसूतो ह्येष एतत्पवते । ऐ० १।७॥

„ (वायुः) यदुत्तरतो वाति । सवितेव भूत्वोत्तरतो वाति । तै० २।३।९।७॥

„ (हे देवा यूयं) सवित्रोदीचीं (दिशं प्रजानाथ)। ऐ० १।७॥

„ स ह्याग्निरुवाच । (असुराः) उदञ्चो वै नः पलाय्य मुच्यन्त इति । श० १।२।४।१०॥

„ अथैतस्यामुदि (दी) च्यान्दिशि भूयिष्ठं विद्योतते । ष०२।४॥

„ तस्मादेतस्यां (उदीच्यां) दिशि प्रजाः अशनायुकाः । श० ७।३।१।२३॥

„ तस्मादेतस्यां (उदीच्यां) दिश्येतौ पशू (अश्वश्चाविश्च) भूयिष्ठौ । श० ७।५।२।१८॥

„ अथ यदुदीच्यां दिशि तत्सर्वमुद्गीथेनाप्नोति । जै० उ० १।३१।६॥

„ उत्तरत आयतनो वै होता । तै० ३।९।५।२॥

„ उदीच्येव यशः । गो० पू० ५।१५॥

„ शमीमयं (शङ्कुं) उत्तरतः, शं मेऽसदिति । श० १३।८।४।१॥

„ तस्मादेतस्यामुदीच्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तं जनपदा उत्तरकुरव उत्तरमद्रा इति वैराज्यायैव तेऽभि-

विच्यन्ते विराडित्येनानभिषिक्तानाचक्षते। ऐ० ८। १४॥

उदीची दिक् तस्मादुदीच्यां दिशि प्रज्ञाततरा वागुद्यत उदञ्च उ एव यन्ति वाचं शिक्षितुं यो वा तत आगच्छति तस्य वा शुश्रूषन्त इति। कौ० ७। ६॥

„ उदीचीमेव दिशम्। पथ्यया स्वस्त्या प्राजानंस्तस्माद-त्रोत्तरा हि वाग्वदति कुरुपञ्चालत्रा। श० ३। २। ३। १५॥

उदीची प्राची (दिक्) एतस्यां ह (उदीच्यां प्राच्यां) दिशि स्वर्ग-स्य लोकस्य द्वारम्। श० ६। ६। २। ४॥

„ एषा ह्योभयेषां देवमनुष्याणां दिग्यदुदीची प्राची। श० ६। ४। ४। २२॥

उदुब्रह्मीयम् (सूक्तम्) ऋतवो वा उदुब्रह्मीयम्। कौ० २९। ६॥

उदुम्बरः स (प्रजापतिः) अब्रवीत् अयं वाव मा सर्वस्मात्पाप्मन उदभा-र्षीदिति यदब्रवीदुदभार्षीन्मेति तस्मादुदुम्भर उदुम्भरो ह वै तमुदुम्बर इत्याचक्षते परोऽक्षम्। श० ७। ५। १। २२॥

„ अथास्य (प्रजापतेः) इन्द्र ओज आदायोदङ्ङुदक्रामत्स उदुम्बरोऽभवत्। श० ७। ४। १। ३९॥

„ औदुम्बरं (यूपम्) अन्नाद्यकामस्य। प० ४। ४॥

„ औदुम्बरेण राजन्यः (अभिषिञ्चति)। ऊर्जमेवास्मिन्नन्नाद्यं दधाति। तै० १। ७। ८। ७॥

„ ऊर्ग्वा अन्नाद्यमुदुम्बरः। ऐ० ५। २४॥ ८। ८, ९॥ कौ० २५। १५॥ २७। ६॥

„ ऊर्ग्वा उदुम्बरः। तै० १। १। ३। १०॥ तां० ५। ५। २॥

„ अन्नं वाऽ ऊर्गुदुम्बरः। श० ३। २। १। ३३॥ ३। ३। ४। २७॥

„ ऊर्ग्वा अन्नमुदुम्बरः। तै० १। २। ६। ५॥

„ ऊर्गुदुम्बरः। तां० ६। ४। ११॥ १६। ६। ४॥

„ प्रजापतिर्देवेभ्य ऊर्जं व्यभजत्तत उदुम्बरः समभवत्। तां० ६। ४। १॥

„ यत्रैतद्देवा इषमूर्जं व्यभजन्त तत उदुम्बरः समभवत्तस्मात्स त्रिः संवत्सरस्य पच्यते। ऐ० ५। २४॥

„ ते ह सर्व एव वनस्पतयोऽसुरानभ्युपेयुरुदुम्बरो हैव देवान्न

जहौ ते देवा असुरान् जित्वा तेषां वनस्पतीनवृञ्जत।
श० ६ । ६ । ३ । २ ॥

उदुम्बरः गृहपतिरौदुम्बरीं धारयति गृहपतिर्वा ऊर्जो यन्तोर्जमेवै-
भ्यो यछंति । तां० ४ । ९ । १५ ॥

„ मा॰ꣳसेम्य एवास्योर्गेस्त्रवत्स उदुम्बरोऽभवत् । श०१२।७।१।९॥

„ ऊर्जो वा एषोऽन्नाद्याद्वनस्पतिरजायत यदुदुम्बरः । ऐ०७।३२॥

„ तद्येषु वनस्पतिपूर्य्यो रस आसीदुदुम्बरे समदधुस्तयै-
तदूर्जा सर्वान्वनस्पतीन्प्रति पच्यते तस्मात्स सर्वदार्द्रः
सर्वदा क्षीरी तदेतत्सर्वमन्नं यदुदुम्बरः सर्वे वनस्पतयः ।
श० ६ । ६ । ३ । ३ ॥

„ अथो सर्वऽ एते वनस्पतयो यदुदुम्बरः । श० ७ । ५ । १ । १५ ॥

„ भौज्यं वा एतद्वनस्पतीनां (यदुदुम्बरः) । ऐ० ७। ३२ ॥ ८ । १६॥

„ प्राजापत्यो वा उदुम्बरः । तां० ६ । ४ । १ ॥

„ प्राजापत्य उदुम्बरः । श० ४ । ६ । १ । ३ ॥

उद्गाता सूर्य्य उद्गाता । गो० पू० १ । १३ ॥

„ आदित्यो वा उद्गाताऽधिदैवं चक्षुरध्यात्मम् । गो० पू० ४। ३ ॥

„ सौर्य्य उद्गाता । तां० १८ । ९ । ८ ॥

„ पर्जन्यो वाऽ उद्गाता । श० १२ । १ । १ । ३ ॥

„ वर्षा उद्गाता तस्माद्यदा बलवद्वर्षति साम्न इवोपब्दिः क्रियते ।
श०११।२।७।३२॥

„ प्राण उद्गाता । कौ० १७ । ७ ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥

„ ते य एवेमे मुख्याः प्राणा एत एवोद्गातारश्चोपगातारश्च ।
जै०उ० १ । २२ । ५ ॥

„ देवानां वै षडुद्गातार आसन् वाक् च मनश्च चक्षुश्च श्रोत्रं
चाऽपानश्च प्राणश्च । जै० उ० २ । १ । १ ॥

„ एतद्वा उद्गातृणाꣳहस्तकार्य्यं यत्पवित्रस्य विग्रहणम् । तां०
६ । ६ । १२ ॥

„ अनभिजिता वा एषोद्गातृणां दिग्यत्प्राची । तां० ६ । ५ । २० ॥

„ तस्मादुद्गाता वृत उत्तरतो निवेशनं लिप्सेत । जै० उ० २ ।
८ । २ ॥

उद्गाता अयास्येनाऽऽङ्गिरसेन (उद्गात्रा दीक्षामहा इति) मनुष्या उत्तरतः (आगच्छन्) । जै० उ० २ । ७ । २ ॥
,, उदीच्युद्गातुः (दिक्) । श० १३ । ५ । ४ । २४ ॥
,, एष वै यजमानस्य प्रजापतिर्यदुद्गाता । तां० ७ । १० । १६ ॥
,, प्रजापतिर्वाऽउद्गाता । श० ४ । ३ । २ । ३ ॥
,, प्राजापत्य उद्गाता । तां० ६ । ४ । ६ ॥ ६ । ५ । १८ ॥
,, उद्गातेव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

उद्गीथः सोऽसावादित्यस्स एष एव उदग्निरेव गी चन्द्रमा एव थम् । सामान्येव उद्दच एव गी यजूꣳष्येव थमित्यधिदेवतम् । अथाध्यात्मम् । प्राण एव उद्वागेव गी मन एव थम् । स एषोऽधिदेवतं चाऽध्यात्मं चोद्गीथः । जै० उ० १ । ५७ । ७-८ ॥
,, प्राणो वावोद्वाग्गी स उद्गीथः । जै० उ० ४ । २३ । २ ॥
,, एषः (प्राणः) उ वाऽउद्गीथः । प्राणो वाऽउत्प्राणेन हीदꣳ सर्वमुत्तब्धं वागेव गीथोच्च गीथा चेति स उद्गीथः । श०१४ । ४ । १ । २५ ॥
,, एष वशी दीप्ताग्र उद्गीथो यत्प्राणः । जै० उ० २ । ४ । १ ॥
,, (प्रजापतिः) प्राणमुद्गीथम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १३ । ५ ॥
,, आदित्य उद्गीथः । जै० उ० १ । ३३ । ५ ॥
,, प्रजापतिरुद्गीथः । तै० ३ । ८ । २२ । ३ ॥
,, (प्रजापतिः) सामान्युद्गीथम् (अकरोत्) । जै०उ०१ ।१३।३॥
,, ऋतव उद्गीथः । ष० ३ । १ ॥
,, वर्षा उद्गीथः । ष० ३ । १ ॥
,, (प्रजापतिः) वर्षामुद्गीथम् (अकरोत्) । जै०उ० १ ।१२।७॥
,, (प्रजापतिः) स्तनयित्नुमुद्गीथम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १३ । १ ॥
,, माध्यन्दिन उद्गीथः । जै० १ । १२ । ४ ॥
,, सोमबृहस्पती उद्गीथः । जै० उ० १ । ५८ । ९ ॥
,, एष (वायुः) वै सोमस्योद्गीथो यत्पवते । तां० ६ । ६ । १८ ॥
,, पुरुषो ह्योद्गीथः । जै० उ० ४ । ९ । १
पुरुष उद्गीथः । जै० उ० १ । ३३ । ९ ॥

उद्गीथः मांसमुद्गीथः । जै० उ० १ । ३६ । ६ ॥
" श्रद्धा, यशो, दक्षिणा एव उद्गीथः । जै० उ० १ । १९ । २ ॥
" (प्रजापतिः) उद्गीथं देवेभ्योऽमृतम् (प्रायच्छत्) । जै० उ० १ । ११ । ८ ॥
" अथ यदुदीच्यां दिशि तत्सर्वमुद्गीथेनाप्नोति । जै० उ० १ । ३१ । ६ ॥

उद्भिद् (क्रतुः) यदुद्भिदा यजते बलमेवास्मै (यजमानाय) विच्यावयति । तां० १९ । ७ । ३ ॥

उद्वंशीयम् (साम) पृष्ठानि वा असृज्यन्त तेषां यत्तेजो रसो ऽत्यरिच्यत तद्देवाः समभरꣳस्तदुद्वꣳशीयमभवत् । तां० ८ । ९ । ६ ॥
" सर्वेषां वा एतत्पृष्ठानां तेजो यदुद्वꣳशीयम् । तां० ८ । ९ । ७ ॥

उद्भिः अन्तरिक्षꣳ ह्येष उद्भिः । श० ६ । ५ । २ । ४ ॥

उप इयं (पृथिवी) वाऽउप । इयेनेयमुप यद्धीदं किंच जायतेऽस्यां तदुपजायतेऽथ यन्न्यृच्छत्यस्यामेव तदुपोप्यते । श० २।३।४।९ ॥
" उप वै रथन्तरम् ('उपशब्दसम्बद्धं हि रथन्तरपृष्ठं ज्योतिष्टोमे" इति सायणः) । तां० १६ । ५ । १४ ॥

उपगातारः तस्मादु चतुर एवोपगातॄन् कुर्वीत । जै० उ० १ । २२ । ६ ॥
" आर्त्तवा उपगातारः । तै० ३ । १२ । ९ । ४ ॥
" त य एवेमे मुख्याः प्राणा एत एवोद्गातारश्चोपगातारश्च । जै० उ० १ । २२ । ५ ॥

उपगुः (सौश्रवसः) उपगुर्वै सौश्रवसः कुत्सस्यौरवस्य पुरोहित आसीत्। तां० १४ । ६ । ८ ॥

उपदीकाः इमा वै वम्र्यो यदुपदीकाः । श० १४ । १ । १ । ८ ॥

उपदेशनवन्तः (स्तोमाः) प्राणो वै त्रिवृदर्द्धमासः पञ्चदशः संवत्सरः सप्तदश आदित्य एकविꣳश एते वै स्तोमा उपदेशनवन्तः । तां० ६ । २ । २ ॥

उपद्रवः विश्वे देवा उपद्रवः । जै० उ० १ । ५८ । ९ ॥
" (प्रजापतिः) उपद्रवं गन्धर्वाप्सरोभ्यः (प्रायच्छत्) । जै० उ० १ । १२ । १ ॥

उपद्रवः आपः प्रजा ओषधय एष उपद्रवः । जै० उ० १ । १६ । २ ॥

" यदुपास्तमयं लोहितायति स उपद्रवः । जै०उ० १ । १२ । ४ ॥

" अथ यदन्तरिक्षं तत्सर्वमुपद्रवेणाप्नोति । जै० उ० १ । ३१ । ८ ॥

उपद्रष्टा अग्निर्वा उपद्रष्टा । गो० उ० ४ । ९ ॥ तै० ३ । ७ । ५ । ४ ॥

" ब्राह्मणो वा उपद्रष्टा । गो० उ० २ । १९ ॥

उपभृत् अथेदमन्तरिक्षमुपभृत् । श० १ । ३ । २ । ४ ॥

" अन्तरिक्षमुपभृत् । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥ ३ । ३ । ६ ११ ॥

" भ्रातृव्यदेवत्योपभृत् । तै० ३ । ३ । ५ । ४ ॥ ३ । ३ । ७ । ६ ॥ ३ । ३ । ९ । ७ ॥

" सावित्र्युपभृत् । तै० ३ । ३ । ७ । ६ ॥

" उपभृत्सव्यः (हस्तः) । तै० ३ । ३ । १ । ५ ॥

" अत्तैव जुहूराद्य उपभृत् । श० १ । ३ । २ । ११ ॥

उपयजः यद्यजन्तमुपयजति तस्मादुपयजो नाम । श० ३ । ८ । ४ । १० ॥

उपयमनी उदरं वा उपयमन्युदरेण हीद७ँ सर्वमन्नाद्यमुपयतम् । श० १४ । २ । १ । १७ ॥

" अन्तरिक्षं वा उपयमन्यन्तरिक्षेण हीद७ँ सर्वमुपयतम् । श० १४ । २ । १ । १७ ॥

उपयाम (ग्रहः) इयं (पृथिवी) वा उपयाम इयं वाऽइदमन्नाद्यमुपयच्छति पशुभ्यो मनुष्येभ्यो वनस्पतिभ्यः । श० ४ । १ । २ । ८ ॥

उपवसथः यदहरस्य श्वो ऽग्न्याधेय७ँ स्यात् । दिवैवाश्नीयान्मनो ह वै देवा मनुष्यस्याजानन्ति तेऽस्यैतच्छ्वोऽग्न्याधेयं विदुस्तेऽस्य विश्वे देवा गृहानागच्छन्ति तेऽस्य गृहेषूपवसन्ति स उपवसथः । श० २ । १ । ४ । १ ॥

" ते (विश्वे देवाः) एतद्धविः प्रविशन्ति तऽएतासु वसतीवरीषूपवसन्ति स उपवसथः । श० ३ । ९ । २ । ७ ॥

उपवाकाः यच्छ्लेष्मणस्ता उपवाकाः (अभवन्) । श० १२ । ७ । १ । ३ ॥

उपवेषः उपेव वाऽएनेनैतद्वेवेष्टि तस्मादुपवेषो नाम । श० १ । २ । १ । ३ ॥

" परिवेषो वा एष वनस्पतीनाम् । यदुपवेषः । तै० ३ । ३ । ११ । १ ॥

" धृष्टिर्वा उपवेषः । तै० ३ । ३ । ११ । २ ॥

उपश्रोता वायुर्वा उपश्रोता । गो० उ० २ । १९ ॥ ४ । ९ ॥ तै० ३ । ७ । ५ । ४ ॥

उपसदः ते (देवाः) एताभिरुपसद्भिरुपासीदंस्तद्यदुपासीदंस्तस्मादुपसदो नाम। श० ३।४।४।४॥

,, ऋतव उपसदः। श० १०।२।५।७॥

,, मासा उपसदः। श० १०।२।५।६॥

,, अर्धमासा उपसदः। श० १०।२।५।५॥

,, अहोरात्राणि वाऽ उपसदः। श० १०।२।५।४॥

,, इमे लोका उपसदः। श० १०।२।५।८॥

,, एतद्वु ह यज्ञे तपः। यदुपसदस्तपो वाऽ उपसदः। श० १०।२।५।३॥

,, तपो ह्युपसदः। श० ३।६।२।११॥

,, ग्रीवा वै यज्ञस्योपसदः। श० ३।४।४।१॥

,, (यज्ञस्य) ग्रीवा उपसदः। ऐ० १।२५॥

,, एताभिर्वै देवा उपसद्भिः। पुरः प्राभिन्दन्निमांल्लोकान् प्राजयन्। श० ३।४।४।५॥

,, वज्रा वाऽ उपसदः। श० १०।२।५।२॥

,, जितयो वै नामैता यदुपसदः। ऐ० १।२४॥

,, ता (उपसदः) वाऽ आज्यहविषो भवन्ति। श० ३।४।४।६॥

,, इषुं वा एतां देवाः समस्कुर्वत यदुपसदस्तस्या अग्निरनीकमासीत् सोमः शल्यो विष्णुस्तेजनं वरुणः पर्णानि। ऐ० १।२५॥

उपहव्यः (एकाहः) ते देवाः प्रजापतिमुपाधावन् स एतमुपहव्यमपश्यत्। तां० १८।१।२॥

,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागभ्यवदत् स प्रजापतिमुपाधावत्तस्मा एतमुपहव्यं प्रायच्छत्तं विश्वे देवा उपाह्वयन्त, यदुपाह्वयन्त तस्मादुपहव्यः। तां० १८।१।९॥

उपहितम् वागुपहितम्। श० ६।१।२।१५॥

,, अङ्गान्युपहितम्। श० ६।१।२।१५॥

उपांशु अनिरुक्तं वाऽ उपाꣳशु। श० १।३।५।१०॥

,, स यदुपाꣳशु तत्प्राजापत्यꣳ रूपम्। श० १।६।३।२७॥

उपांशुः (ग्रहः) प्राणो ह वाऽ अस्य (यज्ञस्य)। उपाꣳशुः। श० ४।१।१।१॥

उपांशुः (ग्रहः) अथवा उपांशुः प्राण एव । कौ० । १२ । ४ ॥
,, यज्ञमुखं वाऽ उपाꣳशुः । श०५ । २ । ४ । १७ ॥
,, इयंꣳ (पृथिवी) ह वाऽउपाꣳशुः । श० ४ । १।२।२७॥
,, उपांशुपात्रमेवान्वज्ञाः प्रजायन्ते । श०४ । ५ । ५।२॥
उपांशुयाजः क्षत्रमुपाꣳशुयाजः । श० ११ । २ । ७ । १५ ॥
उपांशुसवनः आत्मा वा उपांशुसवनः । ऐ० २ । २१ ॥
,, (यज्ञस्य) आत्मोपाꣳशुसवनः । श० ४ । १ । २ । २५ ॥
,, (यज्ञस्य) व्यान उपाꣳ शुसवनः । श० ४ । १ । १ । १॥
,, व्यानो ह्युपाꣳशुसवनः । श० ४ । १ । २ । २७ ॥
,, अन्तरिक्षमेवोपाꣳशुसवनः । श० ४ । १ । २ । २७ ॥
उपांश्वन्तर्यामौ (ग्रहौ) प्राणापाना उपांश्वन्तर्यामौ । ऐ० २ । २१ ॥
,, प्राणापानौ वा उपांश्वन्तर्यामौ । कौ० ११ । ८ ॥ १२ ४ ॥
,, वय इव ह वै यज्ञो विधीयते तस्योपाꣳश्वन्तर्यामावेव पक्षावात्मोपाꣳशुसवनः । श० ४ । १। २ । २५ ॥
उरः तस्मा उरुरभवत् । तदुरस उरस्त्वम् । जै० उ० ४ । २४ । २ ॥
,, उरः सप्तदशः (स्तोमः) । अष्टावन्ये जत्रवो ऽष्टावन्यऽ उरः सप्तदशम् । श० १२ । २ । ४ । ११ ॥
,, उरस्त्रिष्टुप् । ष० २ । ३ ॥
,, उरस्त्रिष्टुभः । श० ८ । ६ । २ । ७ ॥
,, उरः सान्तपनीया (इष्टिः) उरसा हि समिव तप्यते । श० ११ । ५ । २ । ४ ॥
उर्वी यथेयं पृथिव्युर्व्येवमुरुर्भूयासम् । श० २ । १ । ४ । २८ ॥
उलूखलम् (प्रजापतिरब्रवीत्) उरु मे करदिति तस्मादुरुकरमुरुकरꣳ ह वै तदुलूखलमित्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ७ । ५ ।१। २२ ॥
,, अन्तरिक्षं वाऽ उलूखलम् । श० ७ । ५ । १ । २६ ॥
,, योनिरुलूखलम्......शिश्नं मुसलम् । श० ७ । ५ । १ । ३८ ॥
उल्बम् उल्बं घृतम् । श० ६ । ६ । २ । १५ ॥
,, उल्बं वाऽ ऊषाः । श० ७ । ३ । १ । ११ ॥

उल्वम् उल्वमूषाः । श० ७ । १ । १ । ८ ॥

उशन् उशन्नुशन्तमिति प्रियः प्रियमित्येवैतदाह । श० ३ ।३ । ३। १० ॥

,, वायुर्वा उशन् । तां० ७ । ५ । १९ ॥

उशना: (काव्य:) उशनसा काव्येन (उद्गात्रा) असुराः पश्चात् (आगच्छन्) । जै० उ० २ । ७ । २ ॥

,, उशना वै काव्यो ऽसुराणां पुरोहित आसीत् तां० ७ । ५ । २० ॥

उशीनरा: तस्मादस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि ये के कुरुपञ्चालानां राजानः सवशोशीनराणां राज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते राजेत्येनानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥

उषा: रात्रिर्वा उषाः । तै० ३ । ८ । १६ । ४ ॥

,, योषाः सा राका । ऐ० ३ । ४८ ॥

,, भूतानां पतिर्गृहपतिरासीदुषाः पत्नी । श० ६ । १ । ३ । ७ ॥

,, तानीमानि भूतानि च भूतानां च पतिः संवत्सरऽ उषसि रेतो ऽसिञ्चत्स संवत्सरे कुमारो ऽजायत सोऽरोदीत्... यदरोदीत् तस्माद्रुद्रः । श० ६ । १ । ३ । ८—१० ॥

,, प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये । ऐ० ३ । ३३ ॥

,, प्रजापतिर्ह वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ । दिवं वोषसं वा मिथुन्येनया स्यामिति ताꣳ सम्बभूव । श० १ । ७ । ४ । १ ॥

,, प्रजापतिरुषसमध्यैत् स्वां दुहितरं तस्य रेतः परापतत्तदस्यां न्यषिच्यत तदश्रीणादिदं मे मा दुषदिति तत्सदकरोत् पशूनेव । तां० ८ । २ । १० ॥

,, तान् दीक्षितांस्तेपानान् (अग्निवाय्वादित्यचन्द्रमसः) उषाः प्राजापत्या ऽप्सरोरूपं कृत्वा पुरस्तात्प्रत्युदैत्तस्यामेषां मनः समपतत्ते रेतो ऽसिञ्चन्त ते प्रजापतिं पितरमेत्याब्रुवन्रेतो वा असिचामहा इदं नो मामुया भूदिति । कौ० ६ । १ ॥

,, गोभिररुणैरुषा आजिमधावत् । ऐ० ४ । ९ ॥

,, उषस्यमन्वाह तदन्तरिक्षलोकमाप्नोति । कौ० ११ । २ ॥ १८।२॥

उषासानक्ता अहोरात्रे वा उषासानक्ता । ऐ० २ । ४ ॥

उष्णिक् छन्दः) उष्णिगुत्स्नानात् स्निह्यतेर्वा कान्तिकर्मणोऽपि वोष्णीषिणो वेत्यौपमिकम् । दै० ३ । ४ ॥
" यस्य सप्त ता उष्णिहम् । कौ० ९ . २ ॥
" अष्टाविंशत्यक्षरोष्णिक् । कौ० २६ । १ ॥
" औष्णिहो वै पुरुषः । ऐ० ४ । ३ ॥
" आयुर्वा उष्णिक् । ऐ० १ । ५ ॥
" ग्रीवा उष्णिहः । श० ८ । ६ । २ । ११ ॥
" चक्षुरुष्णिक् । श० १० । ३ । १ । १ ॥
" पशवो वा उष्णिक् । तां० ८ । १० । ४ ॥
" अजाविकमेवोष्णिक् । कौ० ११ । २ ॥
" यजमानच्छन्दसमेवोष्णिक् । कौ० १७ । २ ॥
उष्णिक्ककुभौ प्राणा वा उष्णिक्ककुभौ । तां० ८ । ५ । ५ ॥
" नासिके वा एते यज्ञस्य यदुष्णिक्ककुभौ । तां० ८ । ५ । ४ ॥
" उष्णिक्ककुभ्यां वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत् ककुभि पराक्रमतोष्णिहा प्राहरत् । तां० ८ । ५ । २ ॥

(ऊ)

ऊतिः ऊतयः खलु वै ता नाम याभिर्देवा यजमानस्य हवमायन्ति । ये वै पंथानो याः स्रुतयस्ता वा ऊतयस्त उ एवैतत्स्वर्गयाणा यजमानस्य भवन्ति । ऐ० १ । २ ॥
" ऊनातिरिक्तानि (शरीरस्य) न्यूनाक्षरा छन्द आपो देवतोनातिरिक्तानि । श० १० । ३ । २ । १३ ॥
ऊमाः ऊमा वै पितरः प्रातःसवन ऊर्वा माध्यन्दिने काव्यास्तृतीयसवने (ऊमाः = ऋतुविशेषः, तैत्तिरीयसंहितायाम् ४ । ४ । ७ । २ ॥ ५ । ३ । ११ । ३ ॥ सायणभाष्यमपि द्रष्टव्यम्) । ऐ० ७ । ३४ ॥
ऊरू अनुष्टुप्छन्दो विश्वे देवा देवतोरू । श० १० । ३ । २ । ६ ॥
ऊर्क् ऊर्जं दधाथामिति रसं दधाथामित्येवैतदाह । श० ३ । ६ । ४ । १८ ॥
" ऊर्ग्वै रसः । श० ५ । १ । २ । ८ ॥
" रसवतीरित्येवैतदाह यदाहोर्जस्वतीरिति । श० ५ । ३ । ४ । ३ ॥
" ऊर्जे त्वेति (यजु० १ । ३० ॥) यो वृष्टादूर्ग्रसो जायते तस्मै तदाह । श० १ । २ । २ । ६ ॥

ऊर्क् ऊर्ग्वा आपो रसः । कौ० १२ । १ ॥

„ (यजु० १८ । ४१) आपो वाऽ ऊर्जो ऽद्भ्यो ह्यूर्ग्जायते । श० ९ । ४ । १ । १० ॥

„ यद्वैतद्देवा इषमूर्जं व्यभजन्त तत उदुम्बरः समभवत् । ऐ० ५ । २४ ॥

„ प्रजापतिर्देवेभ्य ऊर्जं व्यभजत्तत उदुम्बरः समभवत् । तां० ६ । ४ । १ ॥

„ ऊर्गिति देवाः (उपासते) । श० १० । ५ । २ । २० ॥

„ औदुम्बरेण राजन्यः (अभिषिञ्चति) । उर्ज्जमेवास्मिन्नन्नाद्यं दधाति । तै० १ । ७ । ८ । ७ ॥

„ ऊर्ग्वा उदुम्बरः । तै० १ । १ । ३ । १० ॥ तां० ५ । ५ । २ ॥

„ ऊर्गुदुम्बरः । तां० ६ । ४ । ११ ॥ १६ । ६ । ४ ॥

„ अन्नं वाऽ ऊर्गुदुम्बरः । श० ३ । २ । १ । ३३ ॥ ३ । ३ । ४ । २७॥

„ ऊर्ग्वा अन्नमुदुम्बरः । तै० १ । २ । ६ । ५ ॥

„ ऊर्ग्वा अन्नाद्यमुदुम्बरः । ऐ० ५ । २४ ॥ ८ । ८, ९ ॥ कौ० २५ । १५ ॥ २७ । ६ ॥

„ ऊर्ग्वा मुञ्जाः । तै० ३ । ८ । १ । १ ॥

„ ऊर्ग्विराट् । तै० १ । २ । २ । २ ॥

ऊर्जम् अन्नमूर्जम् । कौ० २८ । ५ ॥

ऊर्णनाभिः ये (कालकञ्जाख्या असुराः) ऽवाकीर्यन्त । त ऊर्णनाभयो ऽभवन् (मैत्रायणीसंहिता १ । ६ । ९ ॥ काठकसंहिता ८ । १ ॥ इत्यपि द्रष्टव्यम्) । तै० १ । १ । २ । ५ ॥

ऊर्णायुः (यजु० १३ । ५०) इममूर्णायुमित्यूर्णावलमित्येतत् । श० ७ । ५ । २ । ३५ ॥

ऊर्ध्वसद्मनम् (साम) असुरा वा एषु लोकेष्वास *** स्तान्देवा ऊर्ध्वसद्मनेनैभ्यो लोकेभ्यः प्राणुदन्त । तां० ९ । २ । ११ ॥

ऊर्ध्वेडम् (साम) (देवाः) अमुं (स्वर्गं लोकं) ऊर्ध्वेडेन (अभ्यजयन्) । तां० १० । १२ । ४ ॥

ऊर्ध्वा (दिक्) एषोर्ध्वा बृहस्पतेर्दिगित्येवाहुः । श० ५ । १ । १ । ४ ॥

ऊर्ध्वा (दिक्) अथैतदन्तरिक्षम् (=ऊर्ध्वा दिक्) एषा हि दिग् बृहस्पतेः। श० २। ३। ४। ३६॥

„ एषा वा ऊर्ध्वा बृहस्पतेर्दिक्तदेष उपरिष्टादर्यम्णः पन्थाः। श० ५। ५। १। १२॥

„ ऊर्ध्वा दिक्। बृहस्पतिर्देवता। तै० ३। ११। ५। ३॥

„ बृहस्पतिस्त्वोपरिष्टादभिषिञ्चतु पांक्तेन छन्दसा। तै० २। ७। १५। ५॥

„ ऊर्ध्वामारोह। पंक्तिस्त्वावतु शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृतू वर्चो द्रविणमिति। श० ५। ४। १। ७॥

„ पंक्तिरूर्ध्वा दिक्। श० ८। ३। १। १२॥

„ यदुपरिष्टादववासि प्रजापतिर्भूतो ऽववासि। जै० उ० ३। २१। २॥

„ सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य उपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा। श० ५। २। ४। ५॥

„ अथैनं (इन्द्रं) ऊर्ध्वायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः... ......अभ्यषिञ्चन्........पारमेष्ठ्याय माहाराज्यायाऽऽधिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय। ऐ० ८। १४॥

„ ऊर्ध्वामेव दिशं अदित्या प्राजानन्नियं (पृथिवी) वाऽ अदितिस्तस्मादस्यामूर्ध्वा ओषधयो जायन्तऽ ऊर्ध्वा वनस्पतयः। श० ३। २। ३। १८॥

„ सा (अदितिः) ऊर्ध्वां दिशं प्राजानात्। कौ० ७। ६॥

„ स्वर्ग्यैवोर्ध्वा दिक्। ऐ० १। ८॥

ऊर्वाः (पितरः) ऊमा वै पितरः प्रातः सवन ऊर्वा माध्यन्दिने काव्यास्तृतीयसवने। ऐ० ७। ३४॥

ऊषाः तस्मात्पशव्यमूषरम् (स्थानं) इत्याहुः। श० २। १। १। ६॥

„ संज्ञानᳫं ह्येतत्पशूनां यदूषाः। तै० १। १। ३। २॥

„ पशवो वाऽ ऊषाः। श० ५। २। १। १६॥

„ पशव ऊषाः श० ७। १। १। ६॥ ७। ३। १। ८॥

„ ऊषो हि पोषः। ऐ० ४। २७॥

ऊषाः पुष्टिर्वा एषा प्रजननं यदूषाः । तै० १ । १ । ३ । १ ॥
„ रेतो वाऽ ऊषाः प्रजननम् । श० १३ । ८ । १ । १४ ॥
„ एते हि साक्षादन्नं यदूषाः । तै० १ । ३ । ७ । ६ ॥
„ उल्वं वाऽ ऊषाः . श० ७ । ३ । १ । ११ ॥
„ उल्वमूषाः । श० ७ । १ । १ । ८ ॥
„ ते (ऊषाः) ऽमुतः (द्युलोकात्) आगता अस्यां पृथिव्यां प्रतिष्ठितास्तमनयोर्द्यावापृथिव्यो रसं मन्यन्ते । श० २।१।१।६॥

(ऋ)

ऋक् अथेमानि प्रजापति र्ऋक्पदानि शरीराणि सञ्चित्या ऽभ्यर्चत् । यदभ्यर्चत्ता एवर्चो ऽभवन् । जै० उ० १ । १५ । ६ ॥
„ (यजु० १३ । ३९) प्राणो वाऽ ऋक् प्राणेन ह्यर्चति । श० ७ । ५ । २ । १२ ॥
„ ब्रह्म वा ऋक् । कौ० ७ । १० ॥
„ वागृक् । जै० उ० ४ । २३ । ४ ॥
„ वागित्यृक् । जै० उ० १ । ६ । २ ॥
„ सा या सा वागृक् सा । जै० उ० १ । २५ । ८ ॥
„ वागेवऽर्चश्च सामानि च । मन एव यजूᳬषि । श० ४ । ६ । ७ । ५ ॥
„ ऋग्रथन्तरम् । तां० ७ । ६ । १७ ॥
„ अमृतं वा ऋक् । कौ० ७ । १० ॥
„ अस्थि वा ऋक् । श० ७ । ५ । २ । २५ ॥
„ अस्थि ह्यृक् । श० १ । ६ । ३ । २९, ३० ॥
„ ऋक् शतपदी । ष० १ । ४ ॥
„ तस्य (दक्षिणनेत्रस्य) यच्छुक्लं तदृचां रूपम् । जै० उ० ४।२४।१२॥
„ ऋक्सामयोर्हैते (शुक्लकृष्णे) रूपे । श० ६ । ७ । १ । ७ ॥
„ एतावद्वाव साम यावान् स्वरः । ऋग्वा एषर्ते स्वराद्भवतीति । जै० उ० १ । २१ । ९ ॥
„ ऋचि साम गीयते । श० ८ । १ । ३ । ३ ॥
„ साम वाऽ ऋचः पतिः । श० ८ । १ । ३ । ५ ॥

ऋक् एय आहुतयो ह वाऽ एता देवानाम् । यदृचः । श० ११।५।६।४॥
„ ओमित्यृचः प्रतिगर एवं तथेति गाथाया ओमिति वै दैवं तथेति मानुषम् । ऐ० ७।१८॥
„ ऋग्भ्यो जातं वैश्यं वर्णमाहुः । तै० ३।१२।६।२॥
„ ऋचां प्राची महती दिगुच्यते । ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते । तै० ३।१२।६।१॥
„ ऋग्भ्यो जाताᳫ सर्वशो मूर्त्तिमाहुः । तै० ३।१२।६।१॥
„ स (प्रजापतिः) ऋचैवाशंसद्यजुषा प्राचरत् साम्नोद्गायत् । कौ० ६।१०॥
„ उक्थमिति बह्वृचाः (उपासते) । श० १०।५।२।२०॥
„ महदुक्थमृचाम् (समुद्रः) । श० ६।५।२।१२॥
„ यदेतन्मण्डलं (आदित्यः) तपति । तन्महदुक्थं ता ऋचः स ऋचां लोकः । श० १०।५।२।१॥
„ (आदित्यस्य) मण्डलमेवऽर्चः । श० १०।५।१।५॥
„ वीर्यं वै देवतऽर्चः । श० १।७।२।२०॥
„ तर्ह्ये माध्यन्दिने च सवने तृतीयसवने च नर्चो ऽपराधो ऽस्ति । जै० उ० १।१६।५॥
„ अथ यदनृचे देवतासु प्रातःसवनं गायति तेन स्वर्गं लोकमेति । जै० उ० १।१६।५॥

ऋचाः सप्तऽर्षीनु ह स्म वै पुरऽर्क्षा इत्याचक्षते । श० २।१।२।४॥

ऋक्सामे ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी । ऐ० २।२४॥ तै० १।६।३।६॥
„ ऋक्सामे वै हरी । श० ४।४।३।६॥
„ ऋक्सामे वै सारस्वतावुत्सौ । तै० १।४।४।६॥
„ ऋक्सामानि वा एष्टयः (अप्सरसः, यजु० १८।४३) ऋक्सामैर्ह्याशासतऽ इति नो ऽस्त्वित्थं नो ऽस्त्विति । श० ६।४।१।१२॥

ऋग्यजुषी (= अमानुषी वाक्) स (ब्रह्मा) यदि पुरा मानुषीं वाचं व्याहरेत् । ततो वैष्णवीमृचं वा यजुर्वा जपेद्यज्ञो वै विष्णुस्तद्यज्ञं पुनरारभते तस्यो हैषा प्रायश्चित्तिः । श० १।७।४।२०॥

ऋग्वेद: अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्यदेवमृत्विजं। होतारं रत्नधातममित्येवमादिं कृत्वा ऋग्वेदमधीयते। गो० पू० १। २६॥

" स ऋचो व्यौहत्। द्वादश बृहती सहस्राणि (१२०००×३६ =४३२००० अक्षराणि) एतावत्यो हऽर्चो याः प्रजापतिसृष्टाः। श० १०। ४। २। २३॥

" मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह । तस्य मनुष्या विशः······ऋचो वेदः······ऋचां सूक्तं व्याचक्षाण इवानुद्रवेत्। श० १३। ४। ३। ३॥

" वागेवऽर्ग्वेदः। श० १४। ४। ३। १२॥

" ऋग्वेदाद्गार्हपत्यः (अजायत)। ष० ४। १॥

" भूरित्यृग्भ्योक्षरत् सो ऽयं (पृथिवी-) लोको ऽभवत्। ष० १। ५॥

" स (प्रजापतिः) भूरित्येवर्ग्वेदस्य रसमादत्त। सेयं पृथिव्यभवत्। तस्य यो रसः प्राणेदत् सो ऽग्निरभवद्रसस्य रसः। जै० उ० १। १। ३॥

" ऋचामग्निर्दैवतं तदेव ज्योतिर्गायत्रं छन्दः पृथिवी स्थानम्। गो० पू० १। २६॥

" अग्नेर्ऋग्वेदः (अजायत)। श० ११। ५। ८। ३॥

" अयं (भू-)लोक ऋग्वेदः। ष० १। ५॥

" इममेव लोकं (पृथिवीं) ऋचा जयति। श० ४। ६। ७। २॥

" ऋक्संमिता वा इमे लोका अयं लोकः पूर्वो ऽर्धर्चो ऽसौ लोक उत्तरो ऽथ यदर्धर्चावन्तरेण तदिदमन्तरिक्षम्। कौ० ११। १॥

" ऋग्वेदो वै भर्गः। श० १२। ३। ४। ६॥

" ऋग्वेद एव भर्गः। गो० पू० ५। १५॥

ऋजुः (यजु० ३७। १०) असौ वै लोक ऋजुः सत्यꣳ ह्यृजुः सत्यमेव य एष (सूर्यः) तपति। श० १४। १। २। २२॥

ऋणम् ऋणꣳ ह वै जायते यो ऽस्ति। स जायमान एव देवेभ्य ऋषिभ्यः पितृभ्यो मनुष्येभ्यः। श० १। ६। २। १॥

ऋतजाः ऋतजा इत्येष (सूर्यः) वै सत्यजाः। ऐ० ४। २०॥

ऋतनिधनम् अयं (भूलोकः) एवर्त्तनिधनम्। तां० २१। २। ७॥

ऋतम् (यजु० १२।१०५॥३८ २०॥) सत्यं वाऽ ऋतम् । श० ७।३।१।२३॥ १४।३।१।१८ ॥ तै० ३।८।३।४॥

„ (यजु० १२। १४) ऋतमिति सत्यमित्येतत् । श० ६।७।३।११॥

„ ऋतमित्येष (सूर्यः) वै सत्यम् । ऐ० ४।२०॥

„ अग्निर्वा ऋतम् । तै० २।१।११।१॥

„ ऋतमेव परमेष्ठि । तै० १।५।५।१॥

„ चक्षुर्वा ऋतं तस्माद्यतरो विवदमानयोराहाहमनुष्ठया चक्षुषादर्शमिति तस्य श्रद्दधति । ऐ० २।४०॥

„ मनो वा ऋतम् । जै० उ० ३।३६।५॥

„ ब्रह्म वाऽ ऋतम् । श० ४।१।४।१०॥

„ ओमित्येतदेवाक्षरमृतम् । जै० उ० ३।३६।५॥

„ (यजु० ११।४७) अयवाऽ अग्निर्ऋतमसावादित्यः सत्यं यदिवासावृतमयꣳ(अग्निः) सत्यमुभयम्वेतदयमग्निः । श० ६।४।४।१०॥

„ ऋतेनैवैनꣳ स्वर्गं लोकं गमयन्ति । तां० १८।२।६॥

ऋतवः द्वौ द्वौ हि मासावृतुः । तां० १०।१२।८॥

„ द्वौ हि मासावृतुः । श० ७।४।२।२९॥

„ (ऋतुः=चतवारो मासाः) विंशति शतं वा ऋतोरहानि । कौ० ११।७॥

„ त्रयो वाऽ ऋतवः संवत्सरस्य । श० ३।४।४।१७॥११।५।४।११॥

„ पञ्च ह्यृतवः । तां० १२।४।८॥ १३।२।६॥

„ पञ्च वाऽ ऋतवः । श० २।२।३।१४॥

„ पञ्चर्त्तवः संवत्सरस्य । श० १।५।२।१६॥ ३।१।४।२०॥

„ पञ्च वाऽ ऋतवः संवत्सरस्य । श० ३।१।४।५॥

„ पञ्चर्तवो हेमन्तशिशिरयोः समासेन । ऐ० १।१॥

„ षड् वा ऋतवः । गो० उ० १।२४॥

„ षड्वाऽ ऋतवः संवत्सरस्य । श० १।२।५।१२॥

„ वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः, ते देवा ऋतवः । शरद्धेमन्त शिशिरस्ते

पितरः (ऋतवः) । श० २ । १ । ३ । १ ॥

ऋतव. याष्षड् विभूतय ऋतवस्ते । जै० उ० १ । २१ । १ ॥

„ तद्यानि तानि भूतानि ऋतवस्ते । श० ६ । १ । ३ । ८ ॥

„ सप्तऽर्तवः । श० ६ । ५ । २ । ८ ॥

„ सप्त ह्यृतवः । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥

„ सप्तऽर्तवः संवत्सरः । श० ६ । ६ । १ । १४ ॥ ७ । ३ । २ । ६ ॥ ६ । १ । १ । २६ ॥

„ तस्मादेकैकस्मिन्नृतौ सर्वेषामृतूनाꣳ रूपम् । श० ८ । ७ । १ । ४ ॥

„ अग्नयो वाऽ ऋतवः । श० ६ । २ । १ । ३६ ॥

„ ऋतवो ह्येते यदेताश्चितयः । श० ६ । २ । १ । ३६ ॥

„ ऋतव उपसदः । श० १० । २ । ५ । ७ ॥

„ ऋतव उद्गीथः । ष० ३ । १ ॥

„ ऋतवो वा उदुग्रहणीयम् (सूक्तम्) । कौ० २९ । ६ ॥

„ ऋतवो वै देवाः । श० ७ । २ । ४ । २६ ॥

„ ऋतवो वै सोमस्य राज्ञो राजभ्रातरो यथा मनुष्यस्य । ऐ० १ । १३ ॥

„ ऋतवो ह वै प्रयाजाः । तस्मात्पञ्च भवन्ति पञ्च ह्यृतवः । श० १ । ५ । ३ । १ ॥

„ ऋतवो वै प्रयाजाः । कौ० ३ । ४ ॥

„ ऋतवो हि प्रयाजाः । श० १ । ३ । २ । ८ ॥

„ ऋतवो वै प्रयाजानुयाजाः । कौ० १ । ४ ॥

„ ऋतवो वै पृष्ठानि । तै० ३ । ६ । ६ । १ ॥ श० १३ । ३ । २ । १ ॥

„ ऋतवः पितरः । कौ० ५ । ७ ॥ श० २ । ४ । २ । २४ ॥ २ । ६ । १ । ४ ॥ गो० उ० १ । २४ ॥ ६ । १५ ॥

„ ऋतव एव प्र वो वाजाः । गो० पू० ५ । २३ ॥

„ ऋतवो वाव होत्राः । गो० उ० ६ । ६ ॥

„ ऋतवो होत्राशंसिनः । कौ० २६ । ८ ॥

„ सदस्या ऋतवोऽभवन् । तै० ३ । १२ । ६ । ४ ॥

„ ऋतवो वै दिशः प्रजननः । गो० उ० ६ । १२ ॥

„ ऋतवो वै विश्वे देवाः (यजु० १२ । ६१) । श० ७ । १ । १ । ४३ ॥

„ ऋतवो वै वाजिनः । कौ० ५ । २ ॥ श० २ । ४ । ४ । २२ ॥ गो० उ० १ । २० ॥

ऋतव: ऋतवः शिक्यमृतुभिर्हि संवत्सरः शक्नोति स्थातुं यच्छक्नोति तस्माच्छिक्यम् । श० ६ । ७ । १ । १८ ॥

„ ऋषभो वा एष ऋतूनाम् । यत्संवत्सरः । तस्य त्रयोदशो मासो विष्टपम् । तै० ३ । ८ । ३ । ३ ॥

„ सेयं वागृतुषु प्रतिष्ठिता वदति । श० ७ । ४ । २ । ३७ ॥

„ तस्माद्यथर्त्वादित्यस्तपति । तां० १० । ७ । ५ ॥

„ तस्माद्यथर्तु वायुः पवते । तां० १० । ६ । २ ॥

„ तस्माद्यथर्त्वोषधयः पच्यन्ते । तां० १० । ८ । १ ॥

„ ऋतवो वाऽ इद७ँ सर्वमन्नाद्यं पचन्ति । श० ४ । ३ । ३ । १२ ॥

„ ऋतवः समिद्धाः प्रजाश्च प्रजनयन्त्योषधीश्च पचन्ति । श० १ । ३ । ४ । ७ ॥

„ यो वै म्रियतऽ ऋतवो ह तस्मै व्युह्यन्ते । श० ८ । ७ । १ । ११ ॥

„ ऋतुसंधिषु हि व्याधिर्जायते । कौ० ५ । १ ॥

„ ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते । गो० उ० १ । १९ ॥

„ किं नु ते ऽस्मासु (ऋतुषु) इति । इमानि ज्यायांसि पर्वाणि । जै० उ० ३ । २४ । ४ ॥

„ अग्निष्टोम उक्थ्यो ऽग्निर्ऋतुः प्रजापतिः संवत्सर इति । एते ऽनुवाका यज्ञक्रतूनाश्चर्तूनाश्च संवत्सरस्य च नामधेयानि । तै० ३ । १० । १० । ४ ॥

„ मुखं वा एतदृतूनां यद्वसन्तः । तै० १ । १ । २ । ६-७ ॥

„ अन्त ऋतूना७ँ हेमन्तः । श० १ । ५ । ३ । १३ ॥

ऋतव्या: (इष्टका:) ऋतव एते यदृतव्याः । श० ८ । ७ । १ । १ ॥

„ संवत्सरो वाऽ ऋतव्याः । श० ८ । ६ । १ । ४ ॥ ८ । ७ । १ । १ ॥

„ क्षत्रं वाऽ ऋतव्या विश इमा इतरा इष्टकाः । श० ८ । ७ । १ । २ ॥

„ इमे वै लोका ऋतव्याः । श० ८ । ७ । १ । १२ ॥

„ ककुदमृतव्ये (इष्टके) । श० ७ । ५ । १ । ३५ ॥

ऋतसद् (यजु० १२ । १४) ऋतसदिति सत्यसदित्येतत् । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥

ऋतसद् ऋतसदित्येष (सूर्यः) वै सत्यसत् । ऐ० ४ । २० ॥

ऋतस्य योनिः (यजु० ११ । ६) यज्ञो वाऽ ऋतस्य योनिः । श० १ । ३ । ४ । १६ ॥

ऋतुपात्रम ऋतुपात्रमेवान्वेकशफं प्रजायते । श० ४ । ५ । ५ । ८ ॥

ऋतुप्रैषाः वाग्वा ऋतुप्रैषाः । गो० उ० ६ । १० ॥

ऋतुयाजाः ऋतवो वा ऋतुयाजाः । गो० उ० ३ । ७ ॥

„ प्राणा वा ऋतुयाजाः । ऐ० २ । २९ ॥ कौ० १३ । ९ ॥ गो० उ० ३ । ७ ॥

ऋत्विजः स (प्रजापतिः) आत्मन्नृत्वम् (ऋत्वं = ऋतौ ऋतुकाले भव-द्गर्भस्य कारणं बीजमिति सायणः) अपश्यत्तत ऋत्विजो ऽसृजत यदृत्वादसृजत तदृत्विजामृत्विक्त्वम् । तां० १० । ३ । १ ॥

„ ऋतव ऋत्विजः । श० ११ । २ । ७ । २ ॥

„ ऋत्विजो हैव देवयजनम् । श० ३ । १ । १ । ५ ॥

„ एतऽ एव सरघो मधुकृतो यदृत्विजः । श० ३ । ४ । ३ । १४ ॥

„ ऋत्विजो वै महिषाः (यजु० १९ । ३२) । श० १२ । ८ । १ । २ ॥

„ आत्मा वै यज्ञस्य यजमानो ऽङ्गान्यृत्विजः । श० ९ । ५ । २ । १६ ॥

ऋद्धिः अग्निमुखा ह्यृद्धिः । तै० ३ । ३ । ८ । ९ ॥

ऋभवः प्रजापतिर्वै पित ऋभून्मर्त्यान्त्सतो मर्त्यान् कृत्वा तृतीयसवन आभजत् । ऐ० ६ । १२ ॥

„ ऋभवो वा इन्द्रस्य प्रियं धाम । तां० १४ । २ । ५ ॥

„ शारदेनर्त्तुना देवा एकविꣳशे (स्तोमे) ऋभवः स्तुतं वैराजेन श्रिया श्रियम् । हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २ । ६ । १९ । २ ॥

„ (ऋभवो रश्मय इति सायणभाष्ये) । तां० १४ । २ । ५ ॥

ऋषभः ऋषभो वा पशूनामधिपतिः । तां० १९ । १२ । ३ ॥

„ ऋषभो वै पशूनां प्रजापतिः । श० ५ । २ । ५ । १७ ॥

„ ऐन्द्रमृषभꣳ सेन्द्रत्वाय (आलभते) । तै० १ । ८ । ५ । ६ ॥

„ ऋषभमिन्द्राय सुत्राम्ण आलभते । श० ५ । ५ । ४ । १ ॥

„ स हीन्द्रो यदृषभः । श० ५ । ३ । १ । ३ ॥

ऋषभः वृषा (=वर्षणशीलः=रेतःसिक्) वा ऋषभो योषा सुब्रह्मण्या। ऐ० ६। ३॥

„ वीर्य्यं वा ऋषभः। तां० १८। ९। १४॥

ऋषयः ते यत्पुरास्मात्सर्वस्मादिदमिच्छन्तः श्रमेण तपसारिषंस्तस्मादृषयः। श० ६। १। १। १॥

„ यो वै ज्ञातो ऽनूचानः स ऋषिरार्षेयः। श० ४। ३। ४। १६॥

„ एते वै विप्रा यदृषयः। श० १। ४। २। ७॥

„ अथ यदेवानुब्रुवीत। तेनऽर्षिभ्य ऋणं जायते तद्ध्येभ्य एतत्करोत्यृषीणान्निधिगोप इति ह्यनूचानमाहुः। श०१। ७। २। ३॥

„ प्राणा ऋषयः। श० ७। २। ३। ५॥

„ प्राणा उ वाऽ ऋषयः। श० ८। ४। १। ५॥

„ (यजु० १५। १०) प्राणा वाऽ ऋषयः। श० ६। १। १। १॥ ८। ६। १। ५॥ १४। ५। २। ५॥ ऐ० २। २७॥

(ए)

एकः प्रजपतिर्वा एकः। तै० ३। ८। १६। १॥

एकत्रिकः (यज्ञविशेषः) अथैष एकत्रिकः प्रजापतेरुद्भित्। एतेन वै प्रजापतिरेषां लोकानामुदभिनत्। तां० १६। १६। १-२॥

एकत्रिंशः (स्तोमः) "ऋतुरेकत्रिꣳशः" इत्येतं शब्दं पश्यत।

एकपातिन्यः (ऋचः) प्राणो ऽपानो व्यान इति तिस्र एकपातिन्यः। कौ० १५। ३॥ १६। ४॥

एकपाद् वायुरेकपात्तस्याकाशं पादः। गो० पू० २। ८॥

एकविंशः (स्तोमः) एकविंशो वै चतुष्टोमः स्तोमानां परमः। कौ० ११। ६॥ १४। ५॥ १६। ७॥

„ प्रतिष्ठैकविंशः। ऐ० ८। ४॥ तां० १६। १३। ४॥ २०। १०। १॥

„ प्रतिष्ठा वा एकविꣳशः स्तोमानाम्। तां० ३। ७। २॥ ५। १। १७॥ ६। १। ११॥

„ एकविꣳशो वै स्तोमानां प्रतिष्ठा। श० १३। ५। १। ७॥

एकविंशः (स्तोमः) एकविंश एव (स्तोमः) सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ एकविꣳशो वै स्वर्गो लोकः । श० १० । ५ । ४ । ६ ॥

„ एकविꣳशो वा इतः स्वर्गो लोकः । तै० ३ । १२ । ५ । ७ ॥

„ एकविंशो वा एष य एष (सूर्य्यः) तपति । कौ० २५ । १ ॥

„ एष एवैकविꣳशो य एष (सूर्यः) तपति । श० ५ । ५ । ३ । ४ ॥

„ एकविꣳशो वा भुवनस्यादित्यः । तां० ४ । ६ । ३ ॥

„ एकविꣳशो ह्येष (आदित्यः) । श० ६ । ७ । १ । २ ॥

„ असौ वा आदित्य एकविꣳशः । तै० १ । ५ । १० । ६ ॥ ३ । १२ । ५ । ८ ॥ तां० ६ । २ । २ ॥

„ द्वादश वै मासाः संवत्सरस्य पञ्चर्त्तवस्त्रयो लोकास्तद्विꣳशतिरेषऽ एवैकविꣳशो य एष (सूर्यः) तपति । सैषा गतिरेषा प्रतिष्ठा । श० १ । ३ । ५ । ११ ॥

„ आदित्य एवैकविंशस्यायतनं द्वादश मासाः पञ्चर्त्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशः । तां० १० । १ । १० ॥

„ द्वादश मासाः पञ्चर्त्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविꣳशः । तां० ४ । ६ । ४ ॥

„ एकविंशो वै प्रजापतिर्द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशः । ऐ० १ । ३० ॥

„ एकविꣳशो वै पुरुषः । तै० ३ । ३ । ७ । १ ॥

„ एकविंशो ऽयं पुरुषो दश हस्त्या अङ्गुलयो दश पाद्या आत्मैकविंशः । ऐ० १ । १९ ॥

„ एकविꣳशो वै पुरुषो दश हस्त्या अङ्गुलयो दश पाद्या आत्मैकविꣳशः । श० १३ । ५ । १ । ६ ॥

„ क्षत्रं वा एकविꣳशः । तां० १८ । १० । ९ ॥ १९ । १ । ५ ॥

„ क्षत्रमेकविꣳशः । तां० २ । १६ । ४ ॥

„ विड् वा एकविꣳशः । तै० १ । ८ । ८ । ५ ॥

„ शौद्रो वर्ण एकविंशः । ऐ० ८ । ४ ॥

एकविंशः (स्तोमः) पञ्चदशश्चैकविंशश्च बार्हतौ तौ गौश्चाविश्चान्वसृज्ये-
तां तस्मात्तौ बार्हतं प्राचीनं भास्कुरुतः। तां० १०।
२।६॥

" तं (एकविंशस्तोमं) उ देवतल्प इत्याहुः। तां० १०।
१।१२॥

" एकविꣳशो ऽग्निष्टोमः। तां० १६।१३।४॥

" तान् (पशून्) विष्णुरेकविꣳशेन स्तोमेनाप्नोत्। तै०
२।७।१४।२॥

" यदेकविꣳशो यदेवास्य (यजमानस्य) पदोरश्लीवतोर-
पूतं तत्तेनापयन्ति (? अपहन्ति)। तां० १७।५।६॥

एकवीरः एको ह तु सन्वीरो वीर्यवान् भवति। जै० उ० २।६।६॥

" एको ह्येवैष वीरो यत्प्राणः। जै० उ० २।५।१॥

एकशफम् पशवो वा एकशफम्। तै० ३।६।११।४॥

" श्रीर्वा एकशफम्। तै० ३।६।८।२॥

एकस्तोमः यदिममाहुरेकस्तोम इत्ययमेव यो ऽयम्पवते (वायुः)। जै०
उ० ३।४।१२॥

एकातिथिः एष (सूर्यः) ह वै स एकातिथिः स एष जुह्वत्सु वसति।
ऐ० ५।३०॥

एकादशिनी प्रजापति र्ह्येकादशिनी। श० १३।६।१।६॥

" एष वै सम्प्रति स्वर्गो लोको यदेकादशिनी। श० १३।
२।५।२॥

" एकादशिनी वा ऽ इदꣳ सर्वम्। श० १३।६।१।६॥

" प्रजा वै पशव एकादशिनी। श० १३।२।५।२॥ तै०
३।९।२।३॥

एकाष्टका (='माघकृष्णाष्टमी' इति सायणः) एषा वै संवत्सरस्य पत्नी
यदेकाष्टका। तां० ५।६।२॥

" संवत्सरस्य या पत्नी (एकाष्टकारूपा) सा नो अस्तु सुमङ्गली
(अथर्व० ३।१०।२)। मं० २।२।१६॥

" संवत्सरस्य प्रतिमां यां (एकाष्टकारूपां) त्वा रात्रि यजामहे।
मं० २।२।१८॥

एकाहः प्रतिष्ठा वा एकाहः । ऐ० ६ । ८ ॥ कौ० २४ । २ ॥ २५ । ११ ॥ २७ । २ ॥ २६ । ५ ॥

„ ज्योतिर्वा एकाहः । कौ० २५ । ३ ॥

एनः निरुक्तं वाऽ एनः कनीयो भवति सत्यꣳ हि भवति । श० २ । ५ । २ । २० ॥

„ तस्मादप्यात्रेय्या (=सूतगर्भया रजस्वलया) योषिता (सह सम्भाषणादि कुर्वन् पुरुषः) एनस्वी (भवति) । श० १।४।५।१३॥

एवयामरुत् (=एवयामरुदाख्यर्षिणा दृष्टं सूक्तम्) प्रतिष्ठा वा एवयामरुत् । ऐ० ६ । ३० ॥ गो० उ० ६ । ८, ६ ॥

„ यद्येवयामरुतं (एवयामरुतस्यान्तराये), प्रतिष्ठाया एनं (यजमानं) च्यावयेद्दैव्यै च मानुष्यै च । ऐ० ५ । १५ ॥

एष्टयः (अप्सरसः, यजु० १८ । ४३) ऋक्सामानि वाऽ एष्टय ऋक्सामै र्ह्याशासतऽ इति नो ऽस्त्वित्थं नो ऽस्त्विति । श० ६ । ४ । १ । १२ ॥

एवश्छन्दः (यजु० १५ । ४) अयं वै (पृथिवी-)लोक एवश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ३ ॥

(ऐ)

ऐकाहिकं सवनम् एते वै शान्ते क्लृप्ते प्रतिष्ठिते सवने यदैकाहिके । ऐ० ८ । १ ॥

ऐकाहिकाः (होत्राः) एता वै शान्ताः क्लृप्ता होत्रा यदैकाहिकाः । ऐ० ८ । ४ ॥

ऐडम् (साम) (देवाः) प्रतिष्ठामिडाभिरैडेनावारुन्धत । तां० १० । १२ । ४॥

ऐडतम् (साम) इढन्वा एतेन काव्यो ऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः । तां० १४ । ६ । १६ ॥

ऐतशप्रलापः आयुर्वा ऐतशप्रलापः । ऐ० ६ । ३३ ॥

ऐन्द्रवायवः (ग्रहः) वाक् च प्राणश्चैन्द्रवायवः । ऐ० २ । २६ ॥

ऐन्द्राग्नम् (आज्यस्तोत्रम्) इयं वामस्य मन्मन इत्यैन्द्राग्नम् । तां० १२ । ८ । ७ ॥

ऐशिरम् (साम) ऐशिरं भवति प्रजातिर्वा ऐशिराणि प्रजायते बहुर्भवत्यैशिरेण तुष्टुवानः । तां० १४ । ११ । २० ॥

(ओ)

ओकः गृहा वा ओकः । ऐ० ८ । २६ ॥

ओजः ओजः सहः सह ओजः । कौ० ३ । ५ ॥

,, वज्रो वाऽ ओजः । श० ८ । ४ । १ । २० ॥

,, ततोऽस्मिन् (इन्द्रे) एतदोज आस । श० ४ । ५ । ४ । ४ ॥

ओजस्विणवः (यजु० १४ । २३) संवत्सरो वा ओजस्त्रिणवस्तस्य चतुर्विंशतिरर्धमासा द्वे अहोरात्रे संवत्सर एवौजस्त्रिणवस्तद्यत्तमाहौज इति संवत्सरो हि सर्वेषां भूतानामोजस्वितमः। श० ८ । ४ । १ । २० ॥

ओदनः परमेष्ठी वा एषः । यदोदनः । तै० १ । ७ । १० । ६ ॥

,, प्रजापतिर्वाऽ ओदनः । श० १३ । ३ । ६ । ७ ॥ तै० ३ । ८ । २ । ३ ॥ ३ । ६ । १८ । २ ॥

,, रेतो वा ओदनः । श० १३ । १ । १ । ४ ॥ तै० ३ । ८ । २ । ४॥

ओम् (ओङ्कारस्य) को धातुरित्यापृधातुरवतिमप्येके रूपसामान्यादर्थसामान्यन्नेदीयस्तस्मादापेरोङ्कारः सर्वमाप्नोतीत्यर्थः । गो० पू० १ । २६ ॥

,, को विकारी च्यवते । प्रसारणमाप्नोतेराकारपकारौ विकार्यावादित ओङ्कारो विक्रियते । द्वितीयो मकार एवं द्विवर्ण एकाक्षर ओमित्योङ्कारो निर्वृत्तः । गो० पू० १ । २६ ॥

,, ते (देवाः) ओङ्कारं ब्रह्मणः पुत्रं ज्येष्ठं ददृशुः । गो० पू० १ । २३॥

,, लातव्यो गोत्रो, ब्रह्मणः पुत्रो, गायत्रं छन्दः, शुक्लो वर्णः, पुंसो वत्सो रुद्रो देवता ओङ्कारो वेदानाम् । गो० पू० १ । २५ ॥

,, तासामभिपीडितानां (व्याहृतीनां) रसः प्राणेदत् । तदेतदक्षरमभवदोमिति यदेतद् । जै० उ० १ । २३ । ७ ॥

,, तानि ('भूर्भुवः स्वः') शुक्राण्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्ताकार उकारो मकार इति तानेकधा समभरत्तदेतदोमिति । ऐ० ५ । ३२ ॥

ओम् अथैकस्यैवाऽक्षरस्य रसं (प्रजापतिः) नाऽशक्नोदादातुम्। ओमित्येतस्यैव। सेयं वागभवत्। ओमेव नामैषा। तस्य उ प्राण एव रसः। जै० उ० १।१।६,७॥

" ओमिति वै साम। जै० उ० १।६।२॥

" ओमिति मनः। जै० उ० १।६।२॥

" ओमित्यथर्वणां शुक्रम्। गो० पू० २।२४॥

" ओमितीन्द्रः। जै० उ० १।६।२॥

" ओमित्यसौ यो ऽसौ (सूर्यः) तपति। ऐ० ५।३२॥

" हन्तेति चन्द्रमा ओमित्यादित्यः। जै० उ० ३।६।२॥

" ओमिति वै स्वर्गो लोकः। ऐ० ५।३२॥

" ओमित्येतदेवाक्षरमृतम्। जै० उ० ३।३६।५॥

" तदेतत्सत्यमक्षरं यदोमिति। तस्मिन्नापः प्रतिष्ठिताः। जै० उ० १।१०।२॥

" तस्मादो३मित्येव प्रतिगृणीयात्तद्धि सत्यं तद्देवा विदुः। श० ४।३।२।१३॥

" ओमित्यृचः प्रतिगर एवं तथेति गाथाया ओमिति वै दैवं तथेति मानुषम्। ऐ० ७।१८॥

" यद्वै नेत्यृच्योमिति तत्। श० १।४।१।३०॥

" एतद्ध वा (ओमिति) अक्षरं वेदानां त्रिविष्टपम्। जै० उ० ३।१९।७॥

" एतत् (ओमिति) एवाक्षरं त्रयी विद्या। जै० उ० १।१८।१०॥

" स (ब्रह्मा) ओमित्येतदक्षरमपश्यद् द्विवर्णं चतुर्मात्रं सर्वव्यापि सर्वविभ्वयातयाम ब्रह्म। गो० पू० १।१६॥

" एष ओमित्यक्षरम्) उ ह वाव सरसः। जै० उ० १।८।५,११॥

" यथा सूच्या पलाशानि सन्तृण्णानि स्युरेवमेतेन (ओमिति) अक्षरेणेमे लोकास्सन्तृण्णाः। जै० उ० १।१०।३॥

" तदेतदक्षरं (ओङ्कारं)ब्राह्मणो यं काममिच्छेत् त्रिरात्रोपोषितः प्राङ्मुखो वाग्यतो बर्हिष्युपविश्य सहस्रकृत्व आवर्त्तयेत् सिद्ध्यन्त्यस्यार्थाः सर्वकर्माणि च। गो० पू० १।२२॥

ओम् एवमेवैवं विद्वान् ओमित्येतदेवात्तरं समारुह्य यदो ऽमृतं तपति तत्प्रपद्य ततो मृत्युना पाप्मना व्यावर्तते । जै० उ० १ । १८ । ११ ॥ प्रणवशब्दमपि पश्यत ॥

ओषधय: (प्रजापतिः) तां (आहुतिम्) व्यौहत् (=अग्नावत्यजत्) ओषं धयेति तत ओषधयः समभवंस्तस्मादोषधयो नाम । श० २ । २ । ४ । ५ ॥

" प्रजापतेर्विस्रस्तस्य यानि लोमान्यशीयन्त ता इमाऽ ओषधयो ऽभवन् । श० ७ । ४ । २ । ११ ॥

" पुष्प्यो वा ओषधयः पुष्पेभ्यो ऽन्याः फलं गृह्णन्ति । मूलेभ्यो ऽन्याः । तै० ३ । ८ । १७ । ४ ॥

" उभय्यो (ओषधयः) ऽस्मै स्वदिताः पच्यन्ते ऽकृष्टपच्याश्च कृष्टपच्याश्च । तां० ६ । ६ । ६ ॥

" ततोऽसुरा उभयीरोषधीर्याश्च मनुष्या उपजीवन्ति याश्च पशवः कृत्यदेव त्वद्विषेणेव त्वत्प्रलिलिपुरुतैवं चिद्देवानभिभवेमेति ततो न मनुष्या आशुर्न पशव आलिलिशिरे ता हेमाः प्रजा अनाशकेन नोत्परावभूवुः''' ते (देवाः) होचुर्हन्तेदमासाम् (ओषधीनाम्) अपजिघांसामेति केनेति यज्ञेनैवेति । श० २ । ४ । ३ । २-३ ॥

" एतद्वैतासाᳫं (ओषधीनां) समृद्धᳫं रूपं यत्पुष्पवत्यः सुपिप्पलाः । श० ६ । ४ । ४ । १७ ॥

" वाग्देवत्यं साम वाचो मनो देवता मनसः पशवः पशूनामोषधय ओषधीनामापः । तदेतदद्भ्यो जातं सामाऽप्सु प्रतिष्ठितमिति । जै० उ० १ । ५६ । १४ ॥

" आपो ह वाऽ ओषधीनाᳫं रसः । श० ३ । ६ । १ । ७ ॥

" अपामोषधयः (रसः) ओषधीनां पुष्पाणि (रसः) पुष्पाणां फलानि (रसः) । श० १४ । ६ । ४ । १ ॥

" तस्मादोषधयः केवल्यः खादिता न धिन्वन्त्योषधय उ ह्यापाᳫं रसस्तस्मादापः पीताः केवल्यो न धिन्वन्ति यदैवोभय्यः सᳫंसृष्टा भवन्त्यथैव धिन्वन्ति । श० ३ । ६ । १ । ७ ॥

" ओषधय उ ह्यापाᳫं रसः । श० ३ । ६ । १ । ७ ॥

ओषधयः एष ह वै सर्वासामोषधीनां रसो यत्पयः । कौ० २ । १ ॥

,, तस्माद्दक्षिणतोऽग्र ओषधयः पच्यमाना आयन्त्याग्नेय्यो ह्योषधयः । ऐ० १ । ७ ॥

,, अग्नेर्वा एषा तनूः । यदोषधयः । तै० ३ । २ । ५ । ७ ॥

,, यदुग्रो देव ओषधयो वनस्पतयस्तेन । कौ० ६ । ५ ॥

,, ओषधयो वै पशुपतिस्तस्माद्यदा पशव ओषधीर्लभन्तेऽथ पतीयन्ति । श० ६ । १ । ३ । १२ ॥

,, ओषधयो वै मुदः (अप्सरसः, यजु० १८ । ३८) ओषधिभिर्हीदꣳ सर्वं मोदते । श० ६ । ४ । १ । ७ ॥

,, ओषधयो बर्हिः । ऐ० ५ । २८ ॥ श० १ । ३ । ३ । ६ ॥ १ । ८ । २ । ११ ॥ १ । ६ । २ । २६ ॥ तै० २ । १ । ५ । १ ॥

,, ओषधयः खलु वै वाजः । तै० १ । ३ । ७ । १ ॥

,, ओषधयो मधुमतीः । तै० ३ । २ । ८ । २ ॥

,, रसो वा एष ओषधिवनस्पतिषु यन्मधुः । ऐ० ८ । २० ॥

,, ओषधीनां वाऽ एष परमो रसो यन्मधु । श० ११ । ५ । ४ । १८

,, सौम्या ओषधयः । श० १२ । १ । १ । २ ॥

,, सोम ओषधीनामधिराजः । गो० उ० १ । १७ ॥

,, सोमो वै राजौषधीनाम् । कौ० ४ । १२ ॥ तै० ३ । ६ । १७ । १ ॥

,, या ओषधीः सोमराज्ञीः । मं० २ । ८ । ३, ४ ॥

,, औषधो हि सोमो राजा । ऐ० ३ । ४० ॥

,, (प्रजापतिः) विष्णोरध्योषधीरसृजत । तै० २ । ३ । २ । ४ ॥

,, ओषधिलोको वै पितरः । श० १३ । ८ । १ । २० ॥

,, जगत्यः (यजु० १ । २१) ओषधयः । श० १ । २ । २ । २ ॥

,, सप्त ग्राम्या ओषधयः सप्तारण्याः । तै० १ । ३ । ८ । १ ॥

,, वर्षवृद्धा वा ओषधयः । तै० ३ । २ । २ । ५ ॥ ३ । २ । ५ । १० ।

,, ओषधयो वै देवानां पत्न्यः । श० ६ । ५ । ४ । ४ ॥

,, तस्माच्छरदमोषधयो ऽभिसंपच्यन्ते । तां० २१ । १५ । ३ ॥

,, शरदि ह खलु वै भूयिष्ठा ओषधयः पच्यन्ते । जै० उ० १ । ३५ । ५ ॥

ओम एवमेवैवं विद्वान् ओमित्येतदेवाक्षरं समारुह्य यददो ऽमृतं तपति तत्प्रपद्य ततो मृत्युना पाप्मना व्यावर्तते । जै० उ० १ । १८ । ११ ॥ प्रणवशब्दमपि पश्यत ॥

ओषधय: (प्रजापतिः) तां (आहुतिम्) व्यौक्षत् (=अग्नावत्यजत्) ओषं धयेति तत ओषधयः समभवंस्तस्मादोषधयो नाम । श० २ । २ । ४ । ५ ॥

" प्रजापतेर्विस्रस्तस्य यानि लोमान्यशीयन्त ता इमाऽ ओषधयो ऽभवन् । श० ७ । ४ । २ । ११ ॥

" ग्रय्यो वा ओषधयः पुष्पेभ्यो ऽन्याः फलं गृह्णन्ति । मूलेभ्यो ऽन्याः । तै० ३ । ८ । १७ । ४ ॥

" उभय्यो (ओषधयः) ऽस्मै स्वदिताः पच्यन्ते ऽकृष्टपच्याश्च कृष्टपच्याश्च । तां० ६ । ६ । ६ ॥

" ततोऽसुरा उभयीरोषधीर्याश्च मनुष्या उपजीवन्ति याश्च पशवः कृत्यदेव त्वद्विषेणेव त्वत्प्रलिलिपुरुतैवं चिद्देवानभिभवेमेति ततो न मनुष्या आशुर्न पशव आलिलिशिरे ता हेमाः प्रजा अनाशकेन नोत्परावभूवुः··· ते (देवाः) होचुर्हन्तेदमासाम् (ओषधीनाम्) अपजिघांसामेति केनेति यज्ञेनैवेति । श० २ । ४ । ३ । २-३ ॥

" एतद्धैतासाᳫं (ओषधीनां) समृद्धᳫं रूपं यत्पुष्पवत्यः सुपिप्पलाः । श० ६ । ४ । ४ । १७ ॥

" वाग्देवत्यं साम वाचो मनो देवता मनसः पशवः पशूनामोषधय ओषधीनामापः । तदेतदद्भ्यो जातं सामाऽप्सु प्रतिष्ठितमिति । जै० उ० १ । ५६ । १४ ॥

" आपो ह वाऽ ओषधीनाᳫं रसः । श० ३ । ६ । १ । ७ ॥

" अपामोषधयः (रसः) ओषधीनां पुष्पाणि (रसः) पुष्पाणां फलानि (रसः) । श० १४ । ६ । ४ । १ ॥

" तस्मादोषधयः केवल्यः खादिता न धिन्वन्त्योषधय उ ह्यपाᳫं रसस्तस्मादापः पीताः केवल्यो न धिन्वन्ति यदैवोभय्यः सᳫंसृष्टा भवन्त्यथैव धिन्वन्ति । श० ३ । ६ । १ । ७ ॥

" ओषधय उ ह्यपाᳫं रसः । श० ३ । ६ । १ । ७ ॥

ओषधयः एष ह वै सर्वासामोषधीनां रसो यत्पयः । कौ० २ । १ ॥

,, तस्माद्दक्षिणतो ऽग्र ओषधयः पच्यमाना आयन्त्याग्नेय्यो ह्योषधयः । ऐ० १ । ७ ॥

,, अग्नेर्वा एषा तनूः । यदोषधयः । तै० ३ । २ । ५ । ७ ॥

,, यदुग्रो देव ओषधयो वनस्पतयस्तेन । कौ० ६ । ५ ॥

,, ओषधयो वै पशुपतिस्तस्माद्यदा पशव ओषधीर्लभन्ते ऽथ पतीयन्ति । श० ६ । १ । ३ । १२ ॥

,, ओषधयो वै मुदः (अप्सरसः, यजु० १८ । ३८) ओषधिभिर्हीदꣳ सर्वं मोदते । श० ९ । ४ । १ । ७ ॥

,, ओषधयो बर्हिः । ऐ० ५ । २८ ॥ श० १ । ३ । ३ । ९ ॥ १ । ८ । २ । ११ ॥ १ । ९ । २ । २९ ॥ तै० २ । १ । ५ । १ ॥

,, ओषधयः खलु वै वाजः । तै० १ । ३ । ७ । १ ॥

,, ओषधयो मधुमतीः । तै० ३ । २ । ८ । २ ॥

,, रसो वा एष ओषधिवनस्पतिषु यन्मधुः । ऐ० ८ । २० ॥

,, ओषधीनां वाऽ एष परमो रसो यन्मधु । श० ११ । ५ । ४ । १८

,, सौम्या ओषधयः । श० १२ । १ । १ । २ ॥

,, सोम ओषधीनामधिराजः । गो० उ० १ । १७ ॥

,, सोमो वै राजौषधीनाम् । कौ० ४ । १२ ॥ तै० ३ । ९ । १७ । १ ॥

,, या ओषधीः सोमराज्ञीः । मं० २ । ८ । ३, ४ ॥

,, औषधो हि सोमो राजा । ऐ० ३ । ४० ॥

,, (प्रजापतिः) विष्णोरध्योषधीरसृजत । तै० २ । ३ । २ । ४ ॥

,, ओषधिलोको वै पितरः । श० १३ । ८ । १ । २० ॥

,, जगत्यः (यजु० १ । २१) ओषधयः । श० १ । २ । २ । २ ॥

,, सप्त ग्राम्या ओषधयः सप्तारण्याः । तै० १ । ३ । ८ । १ ॥

,, वर्षवृद्धा वा ओषधयः । तै० ३ । २ । २ । ५ ॥ ३ । २ । ५ । १० ॥

,, ओषधयो वै देवानां पत्न्यः । श० ६ । ५ । ४ । ४ ॥

,, तस्माच्छरदमोषधयो ऽभिसंपच्यन्ते । तां० २१ । १५ । ३ ॥

,, शरदि ह खलु वै भूयिष्ठा ओषधयः पच्यन्ते । जै० उ० १ । ३५ । ५ ॥

ओषधयः सैनान्यं वा एतदोषधीनां यद्यवाः । ऐ० ८ । १६ ॥

,, साम्राज्यं वा ऐतदोषधीनां यन्महाव्रीहयः । ऐ० ८ । १६ ॥

ओषधिवनस्पतयः ओषधिवनस्पतयो मे लोमसु श्रिताः । तै० ३ । १० । ८ । ७ ॥

(औ)

औद्दणोऽग्ने (सामनी) उद्दणोरन्ध्रो वा एताभ्याङ्काव्यो ऽअसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः । तां० १३ । ६ । १६ ॥

औदलम् (साम) उदलो वा एतेन वैश्वामित्रः प्रजापतिं भूमानमगच्छत् प्रजायते बहुर्भवत्यौदलेन तुष्टुवानः । तां० १४ । ११ । ३३ ॥

औदूग्रभणानि (हवींषि) औदूग्रभणैर्वै देवा आत्मानमस्माल्लोकात्स्वर्गं लोकमभ्युदगृह्णत यदुदगृह्णत तस्मादौदूग्रभणानि । श० ६ । ६ । १ । १२ ॥

और्णायवम् (साम) अङ्गिरसो वै सत्रमासत तेषामाप्तः स्पृतः स्वर्गो लोक आसीत् पन्थानन्तु देवयानन्न प्राजानꣳस्तेषाङ्कल्याण आङ्गिरसो ऽध्यायमुदव्रजन् स ऊर्णायुङ्गन्धर्वमप्सरसाम्मध्ये प्रेङ्खयमाणमुपैत्स ईयामिति यां यामभ्यदिशत्सैनमकामयत तमभ्यवदत्कल्याणा३ इत्याप्तो वै वः स्पृतः स्वर्गो लोकः पन्थानन्तु देवयानन्न प्रजानीथेदꣳ साम स्वर्ग्यं तेन स्तुत्वा स्वर्गं लोकमेष्यथ मा तु वोचोहमदर्शमिति । तां० १२ । ११ । १० ॥

औशनम् (साम) वायुर्वा उशꣳस्तस्यैतदौशनम् । तां ७ । ५ । १६ ॥

,, उशना वै काव्यो ऽसुराणां पुरोहित आसीत्तं देवाः कामदुघाभिरुपामन्त्रयन्त तस्मा एतान्यौशनानि प्रायच्छन् । तां० ७ । ५ । २० ॥

,, उशना वै काव्यो ऽकामयत यावानितरेषां काव्यानां लोकस्तावन्तꣳ स्पृणुयामिति स तपो ऽतप्यत स

एतदौशनमपश्यत्तेन तावन्तं लोकमस्पृणोद्यावानितरेषां काव्यानामासीत्तद्वाव स तर्ह्यकामयत कामसनि स मौशनं काममेवैतेनावरुन्धे । तां० १४ । १२ । ५ ॥

औशनम् (साम) रश्मी वा एतौ यज्ञस्य यदौशनकावे (सामनी) । तां० ८ । ५ । १६ ॥

,, कामदुघा वा औशनानि । तां० ७ । ५ । २० ॥

,, प्राणा वा औशनम् । तां० ७ । ५ । १७ ॥

(क)

कः स प्रजापतिरब्रवीदथ कोऽहमिति यदेवैतदवोच इत्यब्रवीत्ततो वै को नाम प्रजापतिरभवत्को वै नाम प्रजापतिः । ऐ० ३ । २१ ॥

,, को हि प्रजापतिः । श० ६ । २ । २ । ५ ॥

,, को वै प्रजापतिः । गो० उ० ६ । ३ ॥

,, (यजु० ११ । ३९ ॥ १२ । १०२ ॥) प्रजापतिर्वै कः । ऐ० २ । ३८ ॥ ६ । २१ ॥ कौ० ५ । ४ ॥ २४ । ४, ५, ६ ॥ तां० ७ । ८ । ३ ॥ श० ६ । ४ । ३ । ४ ॥ ७ । ३ । १ । २० ॥ तै० २ । २ । ५ । ५ ॥ जै० उ० ३ । २ । १० ॥ गो० उ० १ । २२ ॥

,, प्राणो वाव कः । जै० उ० ४ । २३ । ४ ॥

,, काय एककपालः पुरोडाशो भवति । श० २ । ५ । २ । १३ ॥

ककुप् (छन्दः) ककुप् च कुब्जश्च कुजतेर्वोब्जतेर्वा । दै० ३ । ६ ॥

,, ककुप् ककुद्रूपिणीत्यौपमिकम् । दै० ३ । ५ ॥

,, उष्णिक्ककुब्भ्यां वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत्ककुभि पराक्रमतोष्णिहा प्राहरत् । तां० ८ । ५ । २ ॥

,, (यजु० १५ । ४) प्राणो वै ककुप्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

,, कीकसा ककुभः । श० ८ । ६ । २ । १० ॥

,, पुरुषो वै ककुप् । तां० ८ । १० । ६ ॥ १३ । ६ । ४ ॥ १६ । ११ । ७ ॥ १९ । ३ । ४ ॥ २० । ४ । ३ ॥

कण्वरथन्तरम् (साम) तेजो वा एतद्रथन्तरस्य यत्कण्वरथन्तरम् । तां० १४ । ३ । १६ ॥

,, पशवो वै कण्वरथन्तरम् तां० १८ । ४ । ६ ॥

कद्रूः (माया) इयं (पृथिवी) कद्रूः। श० ३।६।२।२॥

कनीनकः शुष्णो दानवः प्रत्यङ् पतित्वा मनुष्याणामक्षीणि प्रविवेश स एष कनीनकः कुमारक इव परिभासते। श० ३।१।३।११॥

कपिञ्जलः (पक्षिविशेषः) स यत्सोमपानं (विश्वरूपस्य मुखम्) आस। ततः कपिञ्जलः समभवत्तस्मात्स बभ्रुक इव बभ्रुरिव हि सोमो राजा। श० १।६।३।३॥ ५।५।४।४॥

कम् कं वै प्रजापतिः। श० २।५।२।१३॥

,, अन्नं वै कम्। ऐ० ६।२१॥ गो० उ० ६।३॥

,, सुखं वै कम्। गो० उ० ६।३॥

,, अथो सुखस्यैवैतन्नामधेयं कमिति। कौ० ५।४॥

,, अथो सुखस्य वा एतन्नामधेयङ्कमिति। गो० उ० १।२२॥

कयाशुभीयम् (साम) यत् कयाशुभीयं शस्यते शान्त्या एव। तां० २१।१४।६॥

,, अगस्त्यस्य कयाशुभीय७ँ शस्यम्। तां० ६।४।१७॥

करम्भाः (=आज्यमिश्रिताः सक्तवः) विश्वेषां वा एतद्देवानाॐ रूपम्। यत्करम्भाः। तै० ३।८।१४।४॥

करम्भः (=यवपिष्टमाज्यसंयुतमिति सायणः) पूष्णः करम्भः। तै० १।५।११।३॥ श० ४।२।५।२२॥

,, तस्मादाहुरदन्तकः पूषा करम्भभाग इति। कौ० ६।१३॥

,, ते देवाः सर्पेभ्य आश्रेषाभ्य आज्ये करंभं निरवपन्। तान् (असुरान्) एताभिरेव देवताभिरुपानयन्। तै० ३।१।४।७॥

करीराणि कं (=सुखं) वै प्रजापतिः प्रजाभ्यः करीरैरकुरुत। श० २।५।२।११॥

,, सौम्यानि वै करीराणि। तै० १।६।४।५॥

करीषम् पुरीष्य इति वै तमाहुर्यः श्रियं गच्छति समानं वै पुरीषं च करीषं च। श० २।१।१।७॥

कर्कन्धु यत्स्नेहस्तत्कर्कन्धु। श० १२।७।१।४॥

कर्णकाः पशवो वै कर्णकाः। श० ६।२।३।४०॥

कर्म यज्ञो वै कर्म। श० १।१।२।१॥

कर्म पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेनेति। श० १४।६।२।१४॥

,, वीर्यं वै कर्म। श० ११।५।४।५॥

,, कर्म्माणि धियः (पश्यत-ऋ० ३।६२।१० सायणभाष्यम्)। गो० पू० १।३२॥

,, अस्मिन्यामे वृषण्वसूऽ (यजु० ११।१३) इत्यस्मिन्कर्मणि वृषण्वसूऽ इत्येतत् (यामः=कर्म)। श० ६।३।२।३॥

,, यो वाव कर्म करोति स एव तस्योपचारं वेद। श० ६।५।४।१७॥

कलविङ्कः (पक्षिविशेषः) अथ यत्सुरापाणं (विश्वरूपस्य मुखम्) आस। ततः कलविङ्कः समभवत्तस्मात्सोऽभिमाद्यत्क इव वदत्यभिमाद्यन्निव हि सुरां पीत्वा वदति। श० १।६।३।४॥ ५।५।४।५॥

कलशः यस्य कलश उपदस्यति कलशमेवास्योपदस्यन्तं प्राणोऽनूपदस्यति। तां० ६।६।१॥

कलिः (युगम्) कलिः शयानो भवति। ऐ० ७।१५॥

,, अथ ये पञ्च (स्तोमाः) कलिः सः। तै० १।५।११।१॥

,, एष वाऽ अयानभिभूर्यत्कलिरेष हि सर्वानयानभिभवति। श० ५।४।४।६॥

कल्पाः प्राणा वै कल्पाः। श० ८।३।३।१२॥

कल्याणः (आङ्गिरसः) तेषां (अङ्गिरसां) कल्याण आङ्गिरसोऽध्यायमुदव्रजन् स ऊर्णायुङ्गन्धर्वमप्सरसाम्मध्ये प्रेङ्खयमाणमुपैत्। तां० १२।११।१०॥

,, (स्वर्गाल्लोकात् अहीयत कल्याणोऽनृतं हि सोऽवदत्। तां० १२।११।११॥

कल्याणी (प्रजापतेस्तनूविशेषः) कल्याणी तत्पशवः। ऐ० ५।२५॥ कौ० २७।५॥

कविः ये वा अनूचानास्ते कवयः। ऐ० २।२, ३८॥

,, एते वै कवयो यदृषयः। श० १।४।२।८॥

,, (ऋ० ३।३८।१) ये वै ते न ऋषयः पूर्वे प्रेतास्ते वै कवयः। ऐ० ६।२०॥

कविः ये ह वा अनेन पूर्वे प्रेतास्ते वै कवयः । गो० उ० ६ । २ ॥

,, शुश्रुवांऽसो वै कवयः । तै० ३ । २ । २ । ३ ॥

,, (यजु० १२ । ६७) ये विद्वांऽसस्ते कवयः । श० ७ । २ । २ । ४ ॥

,, (यजु० १२ । २) असौ वाऽआदित्यः कविः । श०६।७।२।४॥

काक्षीवतम् (साम) कक्षीवान्वा एतेनौशिजः प्रजातिं भूमानमगच्छत् प्रजायते बहुर्भवति काक्षीवतेन तुष्टुवानः । तां० १४ । ११ । १७ ॥

काण्वम् (साम) वयमु त्वा तदिदर्था इति काण्वम् । तां० ९ । २ । ५ ॥

,, एतेन वै कण्व इन्द्रस्य सांविद्यमगच्छत् । तां०९।२।६ ॥

कापिवनो द्विरात्रः एतेन वै कपिवनो भौवायन इष्ट्वा ऽरूक्षतामगच्छत । अरूक्षो भवति य एवं विद्वानेतेन यजते।तां० २०।१३।४–५॥

कामः कामो हि दाता कामः प्रतिगृहीता । तै० २ । २ । ५ । ६ ॥

,, समुद्र इव हि कामः । नैव हि कामस्यान्तो ऽस्ति न समुद्रस्य । तै० २ । २ । ५ । ६ ॥

,, श्रद्धां कामस्य मातरं हविषा वर्द्धयामसि । तै० २ । ८ । ८ । ८॥

कामधरणम् पशवः कामधरणम् । श० ७ । १ । १ । ८ ॥

कामप्रम् अमृतं वै कामप्रम् । श० १० । २ । ६ । ४ ॥

कार्णश्रवसम् (साम) कर्णश्रवा वा एतदाङ्गिरसः पशुकामः साक्षापश्यत्तेन सहस्रं पशूनसृजत यदेतत्साम भवति पशूनां पुष्ट्यै । तां० १३ । ११ । १४ ॥

,, कार्णश्रवसं भवति शृण्वन्ति तुष्टुवानम् । तां० १३ । ११ । १३ ॥

कार्त्तयशम् (साम) अप पाप्मानं॑ हते कार्त्तयशेन तुष्टुवानः । तां०१४ । ५ । २३ ॥

कार्ष्णायसम् लोहायसेन कार्ष्णायसम् (संदध्यात्) । जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥

कार्ष्मर्यः यत्र वै देवा अग्रे पशुमालेभिरे तदुदीचः कृष्यमाणस्यावाङ् मेधः पपात स एष वनस्पतिरजायत तद्यत्कृष्यमाणस्यावाङ पतत्तस्मात्कार्ष्मर्यः । श० ३ । ८ । २ । १७ ॥

,, प्रजापतेर्दक्षिस्तस्याक्षिस्तेज आदाय दक्षिणाकर्षत्सो ऽत्रोद्रमद्यत्कृष्ट्वोदरमत्तस्मात्कार्ष्मर्यः । श० ७ । ४ । १ । ३९ ॥

काश्मर्य: देवा ह वाऽ एतं वनस्पतिषु रक्षोघ्नं ददृशुर्यत्काश्मर्य्यम् (=भद्रपर्णीति सायणः) । श० ३ । ४ । १ । १६ ॥

,, ते (देवाः) एतꣳ रक्षोहणं वनस्पतिमपश्यन्काश्मर्यम । श० ७ । ४ । १ । ३७ ॥

कालकञ्जाः (असुराः) कालकञ्जा वै नामासुरा आसन् । ते सुवर्गाय लोकायाग्निमचिन्वन्त । पुरुष इष्टकामुपादधात्पुरुष इष्टकां । स इन्द्रो ब्राह्मणो ब्रुवाण इष्टकामुपाधत्त । एषा मे चित्रा नामेति । ते सुवर्गलोकमाप्रारोहन् । स इन्द्र इष्टकामावृहत् । ते ऽवाकीर्यन्त । ये ऽवाकीर्यन्त । त ऊर्णनाभयो ऽभवन् । द्वावुदपततां तौ दिव्यौ श्वानावभवताम् (कालकाञ्जा वा असुरा इष्टका अचिन्वत दिवमारोदयामा इति तानिन्द्रो ब्राह्मणो ब्रुवाण उपैत्स एतामिष्टकामप्युपाधत्त प्रथमा इव दिवमाक्रमन्ताथ स तामावृहत्ते ऽसुराः पापीयांसो भवन्तो ऽपाभ्रंशन्त या उत्तमा आस्तां तौ यमश्वा अभवतां ये ऽधरे त ऊर्णावाभयः । —मैत्रायणीसंहितायाम् १ । ६ । ६ ॥ कालकाञ्जा वै नामासुरा आसंस्त इष्टका अचिन्वत तदिन्द्र इष्टकामप्युपाधत्त तेषां मिथुनौ दिवमाक्रमेतां ततस्तामावृहत्ते ऽवाकीर्यन्त ता एतौ दिव्यौ श्वानौ । —कठसंहितायाम् ८ । १ ॥ [अहमिन्द्रः] पृथिव्यां कालकाञ्जान् [अतृणम्= हिंसितवान्] ॥ —शङ्करानन्दीयटीकायुतायां कौषीतकिब्राह्मणोपनिषदि ३ । १ ॥) । तै० १ । १ । २ । ४—६ ॥

कालेयम् (साम) (देवाः) तेन (कालेयेन साम्ना) एनान् (असुरान्) एभ्यो लोकेभ्यो ऽकालयन्त यदकालयन्त तस्मात्कालेयम् । तां० ८ । ३ । १ ॥

,, यत्कालेयं भवति तृतीयसवनस्य सन्तत्यै । तां० ८ । ३ । ५ ॥

कालेयम् (साम) कालेयमच्छावाकसाम भवति । तां० १५ । १०॥ १४ ॥
„ पशवः कालेयम् । तां० ११ । ४। १० ॥ १५ । १० । १५ ॥
काव्यम् (साम) अभिप्रियाणि पवत इति काव्यं प्राजापत्यꣳ साम ॥ प्रजा वै प्रियाणि पशवः प्रियाणि प्रजायामेव पशुषु प्रतितिष्ठति । तां० ८ । ५ । १४-१५ ॥
„ रश्मी वा एतौ यज्ञस्य यदौशनकाव्ये । तां० ८ । ५ । १६ ॥
„ विन्दते लोकं काव्येन तुष्टुवानः । तां० ११ । ५ । २५ ॥
काव्यं छन्दः (यजु० १४ । ४) त्रयी वै विद्या काव्यं छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥
काव्याः (पितरः) ऊमा वै पितरः प्रातःसवनऊर्वा माध्यन्दिने काव्यास्तृतीयसवने । ऐ० ७ । ३४ ॥
काष्ठा सुवर्गो वै लोकः काष्ठा । तै० १ । ३ । ६ । ५ ॥
किम्पुरुषः अथैनमुत्क्रांतमेधं (पुरुषं देवाः) अत्यार्जन्त स किम्पुरुषः (=किन्नरो वानरजातीय इति सायणः) अभवत् । ऐ० २ । ८ ॥
„ किम्पुरुषो वै मयुः (यजु० १३ । ४७) [अमरकोषे, स्वर्गवर्गे, श्लो० ७४] । श० ७ । ५ । २ । ३२ ॥
किरिकाः (यजु० १६ । ४६) नमो वः किरिकेभ्य इति । एते हीदꣳ सर्वं कुर्वन्ति । श० ९ । १ । १ । २३ ॥
किल्बिषस्पृत् एष (सोमः) उ एव किल्बिषस्पृत् । ऐ० १ । १३ ॥
कुत्सः (औरवः) उपगुर्वै सौश्रवसः कुत्सस्यौरवस्य पुरोहित आसीत् । तां० १४ । ६ । ८ ॥
कुनखी यद्धस्तेन मूलं छिन्द्यात् । कुनखिनीः प्रजाः स्युः । तै० ३ । २ । ९ । १० ॥
कुन्तापाः कुयं ह वै नाम कुत्सितं भवति तद्यत्तपति तस्मात्कुन्तापाः, तत्कुन्तापानां कुन्तापत्वम् । गो० उ० ६ । १२ ॥
कुबेरः कुबेरो वैश्रवणो राजेत्याह तस्य रक्षाꣳसि विशः । श० १३ । ४ । ३ । १० ॥ (एवं—शाङ्खायनश्रौतसूत्रम् १६ । २ । १६—१७)
कुमारः एतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः=शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नवमः (कुमारः=रुद्रपुत्रो ऽग्निपुत्रश्च—अमरकोषे १ । १ । ४२—४३ ॥ महाभारते,

वनपर्व० २२५ । १५—१६ ॥ कुमारः=अग्निः ऋ० ५ । २ । १ सायणभाष्ये । अस्य सूक्तस्य देवता—अग्निः । ऋषिः—कुमार आत्रेयः ॥ ऋ० १० । १३५ इत्यस्य सूक्तस्य देवता यमः । ऋषिः—कुमारो यामायनः । पश्यत कठोपनिषदि नाचिकेतोपाख्यानम्—यमः कुमाराय [कठ० १ । २] नचिकेतसे नाचिकेताख्यम् "अग्नि" [कठ० १ । १८ ॥ २ । १०] प्रोवाच ॥ तथा तै० ३ । ११ । ८ । १५ ॥ ऋ० ७ । १०१, १०२ इत्यनयोः सूक्तयोर्देवता पर्जन्यः । ऋषिः—कुमार आग्नेयः ॥ वत्सः (=कुमारः ?)=वैद्युताग्निरिति सायणः-ऋ० ७ । १०१ । १ भाष्ये ॥ कुमारः=स्कन्दः=षाण्मातुरः=कार्त्तिकेयः—अमरकोषे १ । १ । ४१—४३ ॥ कृत्तिकानक्षत्रस्य देवता—अग्निः, तस्मिन् षट् तारा भवन्ति ॥ षट् कुमाराः=षड् ऋतवः—महाभारते, आदिपर्व० ३ । १४४ ॥ स्कन्दः=बालग्रहविशेषः—सुश्रुते, उत्तरतंत्रे २७ । २—३ ॥ स्कन्दः=सनत्कुमारः—छान्दोग्योपनिषदि ७ । २६ । १ ॥ महाभारते, शल्यपर्व० ४६ । ६८ ॥ ब्रह्मसूत्रस्य शांकरभाष्ये ३।३।३२॥ पारस्करगृह्यसूत्रे १।१६।२४—कुमारस्य शुनकस्य माता सरमा शुनी, पिता सीसरः, भ्रातरौ श्यामशबलौ ॥ स्कन्दस्य माता पूतना—महाभारते वनपर्व० २३० २७ ॥) । श० ६ । १ । ३ । १८ ॥

कुमारः तानीमानि भूतानि (=षड्ऋतवः) च भूतानां च पतिः संवत्सरऽ उषसि रेतोऽसिञ्चन्त्स संवत्सरे कुमारोऽजायत सोऽरोदीत् ।...... यदरोदीत् तस्मात् (स कुमारः) रुद्रः । श० ६ । १ । ३ । ८–१० ॥

„ तस्मात्कुमारं जातं घृतं वैवाग्रे प्रतिलेहयन्ति स्तनं वानुधापयन्ति । श० १४ । ४ । ३ । ४ ॥

„ कुमारे सद्योजात एनो न (भवति) । तां० १८ । १ । २४ ॥

„ संवत्सरऽ एव कुमार उत्तिष्ठासति । श० ११ । १ । ६ । ५ ॥

„ तस्मादु संवत्सरऽ एव कुमारो व्याजिहीर्षति । श० ११ । १ । ६ । ३ ॥

कुमारः तस्मात्संवत्सरवेलायां प्रजाः (=शिशवः) वाचं प्रवदन्ति । श० ७ । ४ । २ । ३८ ॥

„ तस्मादेकाक्षरद्वयक्षराण्येव प्रथमं वदन्कुमारो वदति । श० ११ । १ । ६ । ४ ॥

कुमारी कुमारीं रूपं (गच्छति) । गो० पू० २ । २ ॥

„ एतदु हैवोवाच कुमारी गन्धर्वगृहीता । ऐ० ५ । २९ ॥

„ एतदेव कुमारी गन्धर्वगृहीतोवाच । कौ० २ । ९ ॥

„ तस्य (पतञ्चलस्य काप्यस्य) आसीद् दुहिता गन्धर्वगृहीता । श० १४ । ६ । ३ । १ ॥

कुम्ब्या (कुंव्या ?) (=विध्यर्थवादात्मकं ब्राह्मणवाक्यमिति सायणः) स्वाध्यायो ऽध्येतव्यस्तस्मादप्यृचं वा यजुर्वा साम वा गाथां वा कुंव्यां वाभिव्याहरेद् व्रतस्याव्यवच्छेदाय (सायणकृतैतरेयारण्यकभाष्ये २ । ३ । ६ :— आचारशिक्षारूपा 'कुम्ब्या' । तद्यथा ब्रह्मचार्यस्यापो ऽशान कर्म कुरु दिवा मा स्वाप्सीरित्यादिः) । श० ११ । ५ । ७ । १० ॥

कुरवः तस्मादेतस्यामुदीच्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तं जनपदा उत्तरकुरव उत्तरमद्रा इति वैराज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते विराडित्येनानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥

कुरुक्षेत्रम् ते देवा अब्रुवन्नेतावती वाव प्रजापतेर्वेदिर्यावत् कुरुक्षेत्रमिति । तां० २५ । १३ । ३ ॥

„ तस्मादाहुः कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनमिति । श० १४ । १ । १ । २ ॥

कुरुपञ्चालाः तस्माज्जघन्ये नैदाघे प्रत्यञ्चः कुरुपञ्चाला यन्ति । तै० १ । ८ । ४ । २ ॥

„ तस्माच्छिशिरे कुरुपञ्चालाः प्राञ्चो यन्ति । तै० १ । ८ । ४ । १ ॥

„ तस्मादस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि ये के च कुरुपञ्चालानां राजानः सवशोशीनराणां राज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते राजेत्येनानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥

कुरुपञ्चालाः उदीचीमेव दिशम् । पथ्यया स्वस्त्या प्रजानंस्तस्मादत्रो-त्तराहि वाग्वदति कुरुपञ्चालत्रा । श० ३ । २ । ३ । १५ ॥

कुलायः (क्रतुः) अथैष इन्द्राग्न्योः कुलायः प्रजाकामो वा पशुकामो वा यजेत । तां० १९ । १५ । १ ॥

" प्रजा वै कुलायम्पशवः कुलायम् । तां० २ । ३ । २ ॥

" प्रजा वै कुलायं पशवः कुलायं गृहाः कुलायं कुलाय-मेव भवति । तां० १९ । १५ । १ ॥

कुवलम् यदश्रुभ्यः (तेजो ऽस्रवत्) तत्कुवलम् (अभवत्) । श०१२ । ७ । १ । २ ॥

कुशाः आपो हि कुशाः । श० १ । ३ । १ । ३ ॥

कुसुरुविन्दो दशरात्रः यः कामयेत बहु स्यां (पुत्रपौत्रद्वारा स्वयमेव बहुविधः स्यामिति सायणः) इति स एतेन यजेत । तां० २२ । १५ । २ ॥

" एतेन वै कुसुरुविन्द औद्दालकिरिष्ट्वा भूमानमा-श्नुत । तां० २२ । १५ । १० ॥

कुहूः योत्तरा (अमावास्या) सा कुहूः । ऐ० ७ । ११ ॥

" योत्तरा अमावास्या सा कुहूः । गो० उ० १ । १० ॥ ष० ४ । ६ ॥

" या कुहूः सानुष्टुप् । ऐ० ३ । ४७, ४८ ॥

कूर्मः स यत्कूर्मो नाम । एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत यदसृजताकरोत्तद्यदकरोत्तस्मात्कूर्मः कश्यपो वै कूर्मस्तस्मा-दाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्य इति । श० ७ । ५ । १ । ५ ॥

" ताᳪं (पृथिवीं) संक्लिश्याप्सु प्राविध्यत्तस्यै यः पराङ् रसो ऽत्यक्षरत्स कूर्मो ऽभवत् । श० ६ । १ । १ । १२ ॥

" यो वै स एषां लोकानामप्सु प्रविद्धानां पराङ्रसो ऽत्यक्षरत्स एष कूर्मः । श० ७ । ५ । १ । १ ॥

" रसो वै कूर्मः । श० ७ । ५ । १ । १ ॥

" स यः स कूर्मो ऽसौ स आदित्यः । श० ६ । ५ । १ । ६ ॥ ७ । ५ । १ । ६ ॥

" प्राणो वै कूर्मः प्राणो हीमाः सर्वाः प्रजाः करोति । श० ७ । ५ । १ । ७ ॥

कूर्मः द्यावापृथिव्यो हि कूर्मः । श० ७ । ५ । १ । १० ॥
" शिरः कूर्मः । श० ७ । ५ । १ । ३५ ॥

कृतम् (युगम्) ये वै चत्वारः स्तोमाः कृतं तत् । तैं० १ । ५ । ११ । १ ॥
" कृतं संपद्यते चरन् । ऐ० ७ । १५ ॥

कृत्तिकाः (नक्षत्रम्) मुखं वा एतन्नक्षत्राणां यत्कृत्तिकाः । तै० १ । १ । २ । १ ॥
" एतद्वा अग्नेर्नक्षत्रं यत् कृत्तिकाः । तै० १ । १ । २ । १ ॥ १ । ५ । १ । २ ॥ ३ । १ । १ । १ ॥
" एता वाऽ अग्निनक्षत्रं यत्कृत्तिकाः । श० २ । १ । २ । १ ॥
" पुर एताः (कृत्तिका उद्यन्ति) । अग्निर्वाऽ एतासां (कृत्तिकानां) मिथुनम् । श० २ । १ । २ । ५ ॥
" अग्नये स्वाहा कृत्तिकाभ्यः स्वाहा । (कृत्तिकेति सप्तानां नक्षत्रमूर्तीनां साधारणं नाम । अम्बादुलादीनि विशेषनामानीति सायणः) अम्बायै स्वाहा दुलायै स्वाहा । नितत्न्यै स्वाहा भ्रयन्त्यै स्वाहा । मेघयन्त्यै स्वाहा वर्षयन्त्यै स्वाहा । चुपुणीकायै स्वाहेति । तै० ३ । १ । ४ । १ ॥
" एकं द्वे त्रीणि । चत्वारीति वाऽ अन्यानि नक्षत्राण्यथैता एव भूयिष्ठा यत्कृत्तिकाः । श० २।१।२।२॥
" एता (कृत्तिकाः) ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते । सर्वाणि ह वाऽ अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते । श० २ । १ । २ । ३ ॥

कृत्यधीवासः अन्तरिक्षस्य (रूपं) कृत्यधीवासः । तै० ३ । ९ । २० । २ ॥

कृत्या यदा वै कृत्यामुत्खनन्त्यथ सालसा मोघा भवति तथोऽएवैव एतद्यद्यस्माऽ अत्र कश्चिद् द्विषन् भ्रातृव्यः कृत्यां वलगान्निखनति तानेवैतदुत्किरति । श० ३ । ५ । ४ । ३ ॥

क्रमुकः (="धनुष उपादानभूतः सारवान् वृक्षविशेषः" इति सायणः) तस्मात्स रसादूरसो हि तस्मादु लोहितो ऽर्चिर्हि स एषो ऽग्निरेव यत्क्रमुकः । श० ६ । ६ । २ । ११ ॥

कृषिः अन्नं वै कृषिः । श० ७ । २ । २ । ६ ॥

„ अष्टौ वा एताः (गायत्रीत्रिष्टुबाद्याः इति सायणः) कामदुघा आसꣳस्तासामेका समशीर्ष्यत सा कृषिरभवद्दुह्यते ऽस्मै कृषौ य एवं वेद । तां० ११ । ५ । ८ ॥

„ सर्वदेवत्या वै कृषिः । श० ७ । २ । २ । १२ ॥

कृष्णः कृष्णो हैतदाङ्गिरसो ब्राह्मणाच्छंसीयायै तृतीयसवनं ददर्श (तद्धैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाच... । छांदोग्योपनिषदि ३ । १७ । ६ ॥) । कौ० ३० । ९ ॥

कृष्णः शकुनिः अनृतꣳ स्त्री शूद्रः श्वा कृष्णः शकुनिस्तानि न प्रेक्षेत । श० १४ । १ । १ । ३१ ॥

कृष्णम् (रूपम्) आर्तम्वेतद्रूपं यत्कृष्णम् । श० ८ । ७ । २ । १६ ॥

„ तद्धि वारुणं यत् कृष्णम् । श० ५ । २ । ५ । १७ ॥

„ अथ यत्कृष्णं तदपां रूपमन्नस्य मनसो यजुषः । जै० उ० १ । २५ । ६ ॥

कृष्णविषाणा यो सा योनिः सा कृष्णविषाणा । श० ३ । २ । १ । २८ ॥

कृष्णाजिनम् ब्रह्म वै कृष्णाजिनम् । कौ० ४ । ११ ॥

„ ब्रह्मणो वा एतद्रूपं यत्कृष्णाजिनम् । तै० २ । ७ । १ । ४ ॥

„ ब्रह्मणो वा एतदृक्सामयो रूपं यत्कृष्णाजिनम् । तै० २ । ७ । ३ । ३ ॥

„ (यजमानः) कृष्णाजिने ऽभ्यभिषिच्यत एतद् (कृष्णाजिनं) वै प्रत्यक्षं ब्रह्मवर्चसम् । तां० १७ । ११ । ८ ॥

„ स (ब्रह्मचारी) यन्मृगाजिनानि वस्ते तेन तद् ब्रह्मवर्चसमवरुन्धे । गो० पू० २ । २ ॥

„ कृष्णाजिनं वै सुकृतस्य योनिः (यजु० ११ । ३५) । श० ६ । ४ । १ । ६ ॥

„ कृष्णाजिनꣳ होतृषदनम् (यजु० ११ । ३६) । श० ६ । ४ । २ । ७ ॥

„ तस्य (अग्नेः) एष स्वो लोको यत्कृष्णाजिनम् । श० ६ । ४ । २ । ६ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै कृष्णाजिनम् । श० ६ । ४ । १ । ९ ॥

कृष्णाजिनम् यज्ञो वै कृष्णाजिनम् । श० ६ । ४ । १ । ६ ॥

" यज्ञो हि कृष्णाजिनम् । श० ३ । २ । १ । ८ ॥

" यज्ञो हि कृष्णः (मृगः) स यः स यज्ञस्तत्कृष्णाजिनम् ("कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः । स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः" ॥ मनुस्मृतौ २ । २३ ॥) । श० ३ । २ । १ । २८ ॥

कृष्णा व्रीहयः स (इन्द्रः) एतं वरुणाय शतभिषजे भेषजेभ्यः पुरोडाशं दशकपालं निरवपत् कृष्णानां व्रीहीणाम् । ततो वै स दृढो ऽशिथिलो ऽभवत् । तै० ३ । १ । ५ । ६ ॥

कृष्णा शुक्लवत्सा (गौः) रात्रिर्वै कृष्णा शुक्लवत्सा तस्या असावादित्यो वत्सः । श० ६ । २ । ३ । ३० ॥

केतः अन्नं केतः । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥

केशवः न वा ऽ एष स्त्री न पुमान् यत्केशवः पुरुषो यदह पुमांस्तेन न स्त्री यदु केशवस्तेन (उ) न पुमान् । श० ५ । १ । २ । १४ ॥ ५ । ४ । १ । २ ॥

कोसलाः (=कोसलदेशाः) सैषा (सदानीरा नदी) अप्येतर्हि कोसलविदेहानां मर्यादा । श० १ । ४ । १ । १७ ॥

कौत्सम् (साम) कुत्सश्च लुशश्चेन्द्रं व्यह्वयेताᳬ स इन्द्रः कुत्समुपावर्त्तत तᳬ शतेन वार्ध्रीभिराण्डयोरबध्नात्तं लुशो ऽभ्यवदत् प्रमुच्यस्व परि कुत्सादिहागहि किमु त्वावानाण्डयोर्बद्ध आसाता इति ताः संछिद्य प्राद्रवत्स एतत् कुत्सः सामापश्यत्तेनैनमन्ववदत्स उपावर्त्तत । तां० ६ । २ । २२ ॥

" एतेन वै कुत्सो ऽन्धसो विपानमपश्यत् स ह स्म वै सुराहुतिनोपवसथं ध्रावयत्युभयस्यान्नाद्यस्यावरुध्यै कौत्सं क्रियते । तां० १४ । ११ । २६ ॥

" इन्द्र सुतेषु सोमेष्विति कौत्सम् । तां० ६ । २ । २१ ॥

" यदेतत्साम भवति सेन्द्रत्वाय । तां० ६ । २ । २३ ॥

कौल्मलबर्हिषम् (साम) कुल्मलबर्हिर्वा एतेन प्रजापतिं भूमानमगच्छत् प्रजायते बहुर्भवति कौल्मलबर्हिषेण तुष्टुवानः । तां० १५ । ३ । २१ ॥

कौशिकः अथ यत्सुवर्णरजताभ्यां कुशीभ्यां परिगृहीत आसीत्। सास्य (आदित्यरूपस्य चात्वालस्य) कौशिकता। तै० १।५।१०।२॥

कौषीतकिः एतेन वै (स्तोमेन) शमनीचीमेढ़ा अयजन्त तेषां कुषीतकः सामश्रवसो गृहपतिरासीत्तान् लुशाकपिः खार्गलिरनुव्याहरदवाकीर्षत कनीया॰ꣳसौ स्तोमावुपागुरिति तस्मात्कौषीतकीनान्न कश्चनातीव जिहीते (अतीवाश्रयो न गच्छतीति सायणः) यज्ञावकीर्णा हि। तां० १७।४।३॥

क्रतुः स यदेव मनसा कामयतऽ इदं मे स्यादिदं कुर्वीयेति स एव क्रतुः। श० ४।१।४।१॥

„ (यजु० ४।३१॥) क्रतुर्मनोजवः। श० ३।३।४।७॥

„ हृत्सु ह्ययं क्रतुर्मनोजवः प्रविष्टः। श० ३।३।४।७॥

„ 'क्रतुं दक्षं वरुण संशिशाधि' (ऋ० ८।४२।३) इति वीर्यं प्रज्ञानं वरुण संशिशाधीति (क्रतुः=वीर्यम्)। ऐ० १।१३॥

„ मित्र एव क्रतुः। श० ४।१।४।१॥

क्रतुरेकत्रि॰ꣳशः (यजु० १४।२३) संवत्सरो वाव क्रतुरेकत्रि॰ꣳशस्तस्य चतुर्वि॰ꣳशतिरर्धमासाः षडृतवः संवत्सर एव क्रतुरेकत्रिꣳशस्तद्यत्तमाह क्रतुरिति संवत्सरो हि सर्वाणि भूतानि करोति। श० ८।४।१।२१॥

क्रतुस्थला (यजु० १५।१५) "पुञ्जिकस्थला" शब्दं पश्यत्।

क्रमुकः एषा वा अग्नेः प्रिया तनूर्यत् क्रमुकः। तै० १।४।७।३॥

क्रयः अथ यत्क्रयेण चरन्ति। सोममेव देवतां यजन्ते। श० १२।१।३।३॥

क्रव्याद् (अग्निः, यजु० १।१७) अथ येन पुरुषं दहन्ति स क्रव्याद्। श० १।२।१।४॥

क्रिवयः (बहुवचने) क्रिवय इति ह वै पुरा पञ्चालानाचक्षते। श० १३।५।४।७॥

क्रूरम् (यजु० १।२८) सङ्ग्रामो वै क्रूरम्। श० १।२।५।१६॥

क्रोधः अथ य एने (श्रद्धाऽश्रद्धे) सो ऽन्तरेण पुरुषः। कृष्णः पिङ्गाक्षो दण्डपाणिरस्थात्क्रोधो वै सो ऽभूत्। श० ११।६।१।१३॥

क्रोध: वराहं क्रोधः (गच्छति)। गो० पू० २। २॥

क्रोशम् (साम) एतेन वा इन्द्रः इन्द्रक्रोशे विश्वामित्रजमदग्नी इमा गाव इत्यक्रोशत् पशूनामवरुध्यै क्रोशं क्रियते। तां० १३। ५। १५॥

क्रौञ्चम् (साम) क्रुङ्ङेष्यमहरविन्ददेष्यमिव वै षष्ठमहरहरेवैतेन विन्दन्ति। तां० १३। ६। ११॥ १३। ११। २०॥

„ रज्जुः क्रौञ्चम्। तां० १३। ६। १७॥

„ वाग्वै क्रौञ्चम्। तां० ११। १०। १६॥

„ स (बृहस्पतिः प्रजापतिं) अब्रवीत्क्रौञ्चं साम्नो वृणे ब्रह्मवर्चसमिति। जै० उ० १। ५१। १२॥

क्लोमा क्लोमा वरुणः। श० १२। ६। १। १५॥

क्षत्ता प्रसविता वै क्षत्ता। श० ५। ३। १। ७॥

क्षत्रम्, क्षत्रियः प्राणो हि वै क्षत्रं त्रायते हैनं प्राणः क्षणितोः प्र क्षत्रमात्रमाप्नोति क्षत्रस्य सायुज्यꣳ सलोकतां जयति य एवं वेद। श० १४। ८। १४। ४॥

„ क्षत्रं राजन्यः। ऐ० ८। ६॥ श० ५। १। ५। ३॥ १३। १। ५। ३॥

„ क्षत्रस्य वाऽ एतद्रूपं यद्राजन्यः। श० १३। १। ५। ३॥

„ ओजः क्षत्रं वीर्यं राजन्यः। ऐ० ८। २, ३, ४॥

„ क्षत्रं हि राष्ट्रम्। ऐ० ७। २२॥

„ आदित्यो वै दैवं क्षत्रमादित्य एषां भूतानामधिपतिः। ऐ० ७। २०॥

„ क्षत्रं वा एतदारण्यानां पशूनां यद्व्याघ्रः। ऐ० ८। ६॥

„ क्षत्रं वा एतद्वनस्पतीनां यन्न्यग्रोधः। ऐ० ७। ३१॥ ८। १६॥

„ क्षत्रं वा एतदोषधीनां यद् व्रीहयः। ऐ० ८। १६॥

„ क्षत्रं वा एतदोषधीनां यद्दूर्वा। ऐ० ८। ८॥

„ क्षत्रं वै पयः। श० १२। ७। ३। ८॥

„ क्षत्रस्यैतद्रूपं यद्धिरण्यम्। श० १३। २। २। १७॥

क्षत्रम्, क्षत्रियः ब्रह्मणो वै रूपमहः क्षत्रस्य रात्रिः । तै० ३ । ६ । १४ । ३ ॥

" क्षत्रस्य वाऽ एतद्रूपं यद्रात्रिः । श० १३ । १ । ५ । ५ ॥

" क्षत्रं पञ्चदशः (स्तोमः) । ऐ० ८ । ४ ॥

" क्षत्रꣳ हि ग्रीष्मः । श० २ । १ । ३ । ५ ॥

" अयं वाऽ अग्निर्ब्रह्म च क्षत्रं च । श० ६ । ६ । ३ । १५ ॥

" ब्रह्म वा अग्निः क्षत्रं सोमः । कौ० ९ । ५ ॥

" क्षत्रं सोमः । ऐ० २ । ३८ ॥ कौ० ७ । १० ॥ १० । ५ ॥ १२ । ८ ॥

" क्षत्रं वै सोमः । श० ३ । ४ । १ । १० ॥ ३ । ६ । ३ । ३, ७ ॥ ५ । ३ । ५ । ८ ॥

" (यजु० १४ । ६) प्रजापतिर्वै क्षत्रम् । श० ८ । २ । ३ । ११ ॥

" मित्रः क्षत्रं क्षत्रपतिः । तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥ श० ११ । ४ । ३ । ११ ॥

" क्षत्रं वरुणः । कौ० ७ । १० ॥ १२ । ८ ॥ श० ४ । १ । ४ । १ ॥ गो० उ० ६ । ७ ॥

" क्षत्रं वै वरुणः । श० २ । ५ । २ । ६, ३४ ॥

" क्षत्रं वाऽ इन्द्रः । कौ० १२ । ८ ॥ तै० ३ । ६ । १६ । ३ ॥ श० २ । ५ । २ । २७ ॥ २ । ५ । ४ । ८ ॥ ३ । ६ । १ । १६ ॥ ४ । ३ । ३ । ६ ॥

" क्षत्रमिन्द्रः क्षत्रियेषु ह पशवो ऽभविष्यन् । श० ४ । ४ । १ । १८ ॥

" तस्मादु क्षत्रियो भूयिष्ठं हि पशूनामीष्टे । गो० उ० ६ । ७ ॥

" क्षत्रं वै वैश्वानरः । श० ६ । ६ । १ । ७ ॥ ६ । ३ । १ । १३ ॥

" यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणीन्द्रो वरुणः सोमो रुद्रः पर्जन्यो यमो मृत्युरीशान इति क्षत्रात्परं नास्ति तस्माद्ब्राह्मणः क्षत्रियमधस्तादुपास्ते राजसूये । श० १४ । ४ । २ । २३ ॥

क्षत्रम्, क्षत्रियः क्षत्रं वै स्विष्टकृत् । श० १२ । ८ । ३ । १६ ॥

,, क्षत्रं त्रिष्टुप् । कौ० ३ । ५ ॥ श० ३ । ४ । १ । १० ॥

,, ब्रह्म हि पूर्वं क्षत्रात् । तां० ११ । १ । २ ॥

,, सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद्ब्रह्म । श० १४ । ४ । २ । २३ ॥

,, ब्रह्मणः क्षत्रं निर्मितम् । तै० २ । ८ । ८ । ६ ॥

,, तद्यत्र ब्रह्मणः क्षत्रं वशमेति तद्राष्ट्रं समृद्धं तद्वीरवदा-हास्मिन् वीरो जायते । ऐ० ८ । ६ ॥

,, अभिगन्तैव ब्रह्म कर्ता क्षत्रियः । श० ४ । १ । ४ । १ ॥

,, एतद्ध त्वेवानवक्लृप्तं यत्क्षत्रियो ऽब्राह्मणो भवति तस्मादु क्षत्रियेण कर्म करिष्यमाणेनोपसर्तव्य एव ब्राह्मणः । श० ४ । १ । ४ । ६ ॥

,, क्षत्रं वै होता । ऐ० ६ । २१ ॥ गो० उ० ६ । ३ ॥

,, क्षत्रं माध्यन्दिनं सवनम् । कौ० १६ । ४ ॥

,, भुव इति (प्रजापतिः) क्षत्रम् (अजनयत) । श० २ । १ । ४ । १२ ॥

,, यजुर्वेदं क्षत्रियस्याहुर्योनिम् । तै० ३ । १२ । ६ । २ ॥

,, क्षत्रं वै साम । श० १२ । ८ । ३ । २३ ॥ गो० उ० ५ । ७ ॥

,, क्षत्रं वै स्तोत्रम् । ष० १ । ४ ॥

,, क्षत्रं वै लोकम्पृणा (इष्टका) विश इमा इतरा इष्टकाः । श० ८ । ७ । २ । २ ॥

,, क्षत्रं वै लोकम्पृणा (इष्टका) । श० ६ । ४ । ३ । ५ ॥

,, क्षत्रमुपांशुयाजः । श० ११ । २ । ७ । १५ ॥

,, क्षत्रं वै प्रस्तरः । श० १ । ३ । ४ । १० ॥

,, यस्तान्तवं वस्ते क्षत्रं वर्द्धते न ब्रह्म । गो० पू० । २ । ४ ॥

,, ब्रह्म वै पौर्णमासी क्षत्रममावास्या । कौ० ४ । ८ ॥

,, एतानि क्षत्रस्यायुधानि यदश्वरथः कवच इषुधन्व । ऐ० ७ । १९ ॥

,, अन्नं वै क्षत्रियस्य विट् । श० ३ । ३ । २ । ८ ॥

,, तस्मान्न कदा चन ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च वैश्यं च शूद्रं च पश्चादन्वितः । श० ६ । ४ । ४ । १३ ॥

क्षत्रम् क्षत्रियः तस्मात्क्षत्रियं प्रथमं यन्तमितरे त्रयो वर्णाः पश्चादनुयन्ति । श० ६ । ४ । ४ । १३ ॥

,, तस्मादु क्षत्रियमायन्तमिमाः प्रजा विशः प्रत्यवरोहन्ति तमधस्तादुपासते । श० ३ । ६ । ३ । ७ ॥

,, क्षत्रियो ऽजनि विश्वस्य भूतस्याधिपतिरजनि विशामत्ता ऽजन्यमित्राणां हन्ता ऽजनि ब्राह्मणानां गोप्ता ऽजनीति । ऐ० ८ । १७ ॥

,, एतद्वै परार्ध्यमन्नाद्यं यत्क्षत्रियः । कौ० २५ । १५ ॥

,, निरुक्तमिव हि क्षत्रम् । श० ६ । ३ । १ । १५ ॥

,, अपरिमितो वै क्षत्रियः । ऐ० ८ । २० ॥

,, क्षत्रं बृहत् (साम) । ऐ० ८ । १, २ ॥

,, यत्सुरा भवति क्षत्ररूपं तदथो अन्नस्य रसः । ऐ० ८ । ८॥

,, अथास्य (क्षत्रियस्य) एष स्वो भक्षो न्यग्रोधस्यावरोधाश्च फलानि चौदुम्बराण्याश्वत्थानि प्लाक्षाण्यभिषुणुयात्तानि भक्षयेत्सोऽस्य स्वो भक्षः । ऐ० ७ । ३० ॥ राजन्यशब्दमपि पश्यत ॥

क्षपा रात्रयः क्षपाः । ऐ० १ । १३ ॥

क्षयः अन्तो वै क्षयः । कौ० ८ । १ ॥

,, क्षयो वै देवाः । गो० उ० २ । १३ ॥

क्षिप्रम् यद्वै क्षिप्रं तत्तूर्त्तम् । श० ६ । ३ । २ । २ ॥

क्षुमा (इषुः) अथ ययापैघ राध्नोति सा तृतीया सासौ द्यौः सैषा क्षुमा नाम । श० ५ । ३ । ५ । २६ ॥

क्षुरोभ्रजश्छन्दः (यजु० १४ । ४) असौ वाऽ आदित्यः क्षुरो भ्रजश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

क्षेत्रम् इयं वै क्षेत्रं पृथिवी । कौ० ३० । ११ ॥ गो०उ०५ । १० ॥

(ख)

खदिरः खदिरेण ह सोममाचखाद । तस्मात्खदिरो यदेनेनाखिदत् । श० ३ । ६ । २ । १२ ॥

,, अस्थिभ्य एवास्य (प्रजापतेः) खदिरः समभवत् । तस्मात्स दारुणो बहुसारः । श० १३ । ४ । ४ । ६ ॥

खदिरः खादिरं (यूपं करोति) बलकामस्य । प० ४ । ४ ॥
„ षट् खादिराः (यूपाः) । तेजसो ऽवरुध्यै ॥ तै० ३ । ८ । २० । १ ॥
„ खादिरं (यूपं कुर्वीत) स्वर्गकामः । कौ० १० । १ ॥
खम छिद्रं खमित्युक्तम् । गो० उ० २ । ५ ॥
खलः खल उत्तरवेदिः । तां० १६ । १३ । ७ ॥
खादः अन्तौ वै खादः । ऐ० ५ । १२ ॥
खिलम् यद्वा उर्वरयोरसंभिन्नं भवति खिलमिति ('खिल इति' इति शातपथः पाठः) वै तदाचक्षते । कौ० ३० । ८ ॥ श० ८ । ३ । ४ । १ ॥
गण्डूपदः यानि छावामि ते गण्डूपदाः (अभवन्) । ऐ० ३ । २६ ॥
गतनिधनम् (साम) गतनिधनं बाभ्रवं भवति गत्यै । तां० १५ । ३ । १२ ॥
„ बभ्रुर्वा एतेन कौम्भ्यो ऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः । तां० १५ । ३ । १३ ॥
गन्धः सोमो गन्धाय । तां० १ । ३ । ६ ॥ सा० ३ । ८ । १ ॥
„ सोम इव गन्धेन (भूयासम्) । मं० २ । ४ । १४ ॥
गन्धर्वाः वरुण आदित्यो राजेत्याह तस्य गन्धर्वा विशस्त ऽ इम ऽ आसत ऽ इति युवानः शोभना उपसमेता भवन्ति तानुपदिशत्यथर्वाणो वेदः सो ऽयमिति । (पश्यत—शांखायनश्रौतसूत्रम् १६ । २ । ८ ॥ आश्वलायनश्रौतसूत्रम् १० । ७ । ३ ॥) । श० १३ । ४ । ३ । ७ ॥
„ गन्धो मे मोदो मे प्रमोदो मे । तन्मे युष्मासु (गन्धर्वेषु) । जै० उ० ३ । २५ । ४ ॥
„ गन्धेन च वै रूपेण च गन्धर्वाप्सरसश्चरन्ति । श० ६ । ४ । १ । ४ ॥
„ रूपमिति गन्धर्वाः (उपासते) । श० १० । ५ । २ । २० ॥
„ योषित्कामा वै गन्धर्वाः । श० ३ । २ । ४ । ३ ॥ ३ । ६ । ३ । २० ॥
„ स्त्रीकामा वै गन्धर्वाः । ऐ० १ । २७ ॥
„ त (गन्धर्वाः) उ ह स्त्रीकामाः । कौ० १२ । ३ ॥

गन्धर्वाः तस्य (पतञ्चलस्य काप्यस्य) आसीद्दुहिता गन्धर्वगृहीता । श० १४ । ६ । ३ । १ ॥

„ एतदेव कुमारी गन्धर्वगृहीतोवाच । कौ० २ । ६ ॥

„ एतदु हैवोवाच कुमारी गन्धर्वगृहीता । ऐ० ५ । २६ ॥

„ तमेते गन्धर्वाः सोमरक्षा जुगुपुरिमे धिष्ण्या इमा होत्राः । श० ३ । ६ । २ । ६ ॥

„ (यजु० १८ । ४१) वातो गन्धर्वः । श० ६ । ४ । १ । १० ॥

„ प्राणो वै गन्धर्वः । जै० उ० ३ । ३६ । ३ ॥

„ (यजु० १८ । ४३) मनो गन्धर्वः । श० ६ । ४ । १ । १२ ॥

„ (यजु० १८ । ४२) यज्ञो गन्धर्वः । श० ९ । ४ । १ । ११ ॥

„ (यजु० १८ । ३८) अग्निर्हु गन्धर्वः । श० ६ । ४ । १ । ७ ॥

„ (यजु० १८ । ४०) चन्द्रमा गन्धर्वः । श० ६ । ४ । १ । ६ ॥

„ (यजु० १८ । ३६) सूर्यो गन्धर्वः । श० ६ । ४ । १ । ८ ॥

„ असौ वाऽ आदित्यो दिव्यो गन्धर्वः । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥

„ (यजु० ६ । ७) गन्धर्वाः सप्तविꣳशतिः (गन्धर्वाः=नक्ष-त्राणि—इति सायणो महीधरश्च) । श० ५ । १ । ४ । ८ ॥

„ (अश्वो) वाजी (भूत्वा) गन्धर्वान् (अवहत) । श० १० । ६ । ४ । १ ॥

गन्धर्वाप्सरसः अथो गन्धेन च वै रूपेण च गन्धर्वाप्सरसश्चरन्ति । श० ६ । ४ । १ । ४ ॥

„ (प्रजापतिः) उपद्रवं गन्धर्वाप्सरोभ्यः (प्रायच्छत्) । जै० उ० १ । १२ । १ ॥

„ गन्धर्वाप्सरसो वै मनुष्यस्य प्रजाया वा प्रजस्ताया वेशते । तां० १६ । ३ । २ ॥

गभः (यजु० २३ । २२) विड्वै गभः । श० १३ । २ । ६ । ६ ॥ तै० ३ । ६ । ७ । ३, ५ ॥

गभस्ति: पाणी वै गभस्ती । श० ४ । १ । १ । ६ ॥

गभीरः (=महान्) गभीरमिममध्वरं कृधीति । अध्वरो वै यज्ञो महान्तमिमं यज्ञं कृधीत्येवैतदाह । श० ३ । ६ । ४ । ५ ॥

गयः स यदाह गयो ऽसीति सोमं वा एतदाहैष ह वै चन्द्रमा भूत्वा सर्वांल्लोकान्गच्छति तद्यद्गच्छति तस्माद्गयस्तद्गयस्य गयत्वम् । गो० पू० ५ । १४ ॥

,, प्राणा वै गयाः । श० १४ । ८ । १५ । ७ ॥

गयस्फानः प्रतरणः (ऋ० १ । ९१ । १९) गयस्फानः प्रतरणः सुवीर इति गवां नः स्फावयिता प्रतारयितैधीत्याह । ऐ० १ । १३ ॥

गर्तः पितृदेवत्यो वै गर्तः । श० ५ । २ । १ । ७ ॥

,, पुरुषो गर्तः । श० ५ । ४ । १ । १५ ॥

गर्दभः तस्मात्स (गर्दभः) द्विरेता वाजी । ऐ० ४ । ९ ॥

,, अथ यदासाः पांसव (:) पर्यशिष्यन्त । ततो गर्दभः समभवत्तस्माद्यत्र पांसुलं भवति गर्दभस्थानमिव वतेत्याहुः । श० ४ । ५ । १ । ९ ॥

गर्भः एष वै गर्भो देवानां (यजु० ३७ । १४॥) य एष (सूर्यः) तपत्येष हीदꣳ सर्वं गृह्णात्येतेनेदꣳ सर्वं गृभीतम् । श० १४।१।४।२॥

,, (यजु० २३ । १९) प्रजा वै पशवो गर्भः । श० १३ । २ । ८। ५॥ तै० ३ । ९ । ६ । ४ ॥

,, तस्मात्पराञ्चो गर्भाः सम्भवन्ति प्रत्यञ्चः प्रजायन्ते । तां० १५ । ५ । १९ ॥

,, वायव्या गर्भाः । तै० ३ । ९ । १७ । ५ ॥

,, पुरुष उ गर्भः । जै० उ० ३ । ३६ । ३ ॥

,, इन्द्रियं वै गर्भः । तै० १ । ८ । ३ । ३ ॥

,, विषुरूपा इव हि गर्भाः । श० ४ । ५ । २ । १२ ॥

,, न्यक्ताकुलय इव हि गर्भाः । श० ३ । २ । १ । ६ ॥

,, उत्तानेव वै योनिर्गर्भं बिभर्त्ति । श० ३ । २ । १ । २९ ॥

,, प्रावृता वै गर्भाः उल्बेनेव जरायुणेव । श० ३ । २ । १ । १६ ॥

,, यज्ञ वै गर्भः समृद्धो भवति प्रजनेन वै स तर्हि प्रत्यङ्ङेति ।

श० ४ । ५ । २ । ३ ॥

गर्भः यदा वै गर्भः समृद्धो भवत्यथ दशमास्यः । श० ४ । ५ । २ । ४ ॥

„ षण्मास्या वाऽ अन्तमा गर्भा जाता जीवन्ति । श० ९ । ५ । १ । ६३ ॥

„ गर्भः समित् । श० ६ । ६ । २ । १५ ॥

„ संवत्सरो वाव गर्भाः पञ्चविꣳशः (यजु० १४ । २३) तस्य चतुर्विꣳशतिरर्धमासाः संवत्सर एव गर्भाः पञ्चविꣳशस्त-द्यत्तमाह गर्भा इति संवत्सरो ह त्रयोदशो मासो गर्भो भूत्व-ऽर्तून्प्रविशति । श० ८ । ४ । १ । १९ ॥

गवाशी: गवाशीर्ज्जगती । तां० १२ । १ । २ ॥

गवेधुका: यज्ञस्य शीर्षच्छिन्नस्य रसो व्यक्षरत्त एता ओषधयो (गवेधुकाः) जज्ञिरे । श० १४ । १ । २ । १९ ॥

„ यत्र वै सा देवता (रुद्रः) विस्रस्ताशयत्ततो गवेधुकाः समभवन्त्स्वेनैवैनम् (रुद्रम्) एतद्भागेन स्वेन रसेन प्रीणाति (यजमानः) । श० ९ । १ । १ । ८ ॥

„ रौद्रो गावेधुकश्चरुः । श० ५ । २ । ४ । ११, १३ ॥

गातु: गातुं वित्त्वेति यज्ञं वित्त्वेत्येवैतदाह । श० १ । ९ । २ । २८ ॥ ४ । ४ । ४ । १३ ॥

गातुविद: गातुविदो हि देवाः । श० ४ । ४ । ४ । १३ ॥

गाथा यद्ब्रह्मणः शमलमासीत् सा गाथा नाराशꣳस्यभवत् । तै० १ । ३ । २ । ६ ॥

„ ओमित्यृचः प्रतिगर एवं तथेति गाथाया ओमिति वै दैवं तथेति मानुषम् । ऐ० ७ । १८ ॥

गानम् तस्मादु गायतां ना ऽश्नीयात् । मलेन ह्येते जीवन्ति । जै० उ० १ । ५७ । १ ॥

गायत्रपार्श्वम् (साम) अहर्वा एतदव्लीयत तद्देवा गायत्रपार्श्वेन सम-तन्वꣳस्तस्माद्गायत्रपार्श्वम् । तां० १४ । ९ । २६ ॥

गायत्रम् (साम) तमेतदेव (गायत्रं) साम गायन्नत्रायत । यद्गायन्नत्रायत तद्गायत्रस्य गायत्रत्वम् । जै० उ० ३ । ३८ । ४ ॥

गायत्रम् (साम) तस्य (महाव्रतस्य) गायत्रꣳ शिरः । तां० १६ । ११ । ११ ॥
„ इमे वै लोका गायत्रम् (साम) । तां० ७ । १ । १ ॥
गायत्री (छन्दः) सा हैषा (गायत्री) गयांस्तत्रे । प्राणा वै गयास्तत्प्राणांस्तत्रे तद्यद्गयांस्तत्रे तस्माद्गायत्री नाम । श० १४ । ८ । १५ । ७ ॥
„ गायत्री गायतेः स्तुतिकर्म्मणः । दे० ३ । २ ॥
„ गायतो मुखादुदपतदिति ह ब्राह्मणम् । दे० ३ । ३ ॥
„ सेयꣳ सर्वा कृत्स्ना मन्यमानागायद्यदमायत्तस्मादियं (पृथिवी) गायत्री । श० ६ । १ । १ । १५ ॥
„ या वै सा गायत्र्यासीदियं वै सा पृथिवी । श० १ । ४ । १ । ३४ ॥
„ इयमेव (पृथिवी) गायत्री । जै० उ० १ । ५५ । ३ ॥
„ इयं (पृथिवी) वै गायत्री । तां० ७ । ३ । ११ ॥ १४ । १ । ४ ॥
„ सा वै गायत्रीयं (पृथिवी) । श० १ । ७ । २ । १५ ॥
„ गायत्री वाऽ इयं (पृथिवी) । श० ४ । ३ । ४ । ६ ॥ ५ । २ । ३ । ५ ॥
„ पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रꣳस्त । गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः । श० १ । ६ । ३ । १० ॥
„ गायत्रो ऽयं (भू-)लोकः । कौ० ८ । ६ ॥
„ अयमेव (भूलोकः) गायत्री । तां० ७ । ३ । ६ ॥
„ गायत्रे ऽस्मिँल्लोके गायत्रो ऽयमग्निरध्यूढः । कौ० १४ । ३ ॥
„ प्राणो गायत्री प्रजननम् । तां० १६ । १४ । ५ ॥ १६ । १६ । ७ ॥ १९ । ५ । ६ ॥ १६ । ७ । ७ ॥
„ प्राणो गायत्रं (साम) । तां० ७ । १ । ६ ॥ ७ । ३ । ७ ॥
„ तत्प्राणो वै गायत्रम् । जै० उ० १ । ३७ । ७ ॥
„ प्राणो वै गायत्र्यः । कौ० १५ । २ ॥ १६ । ३ ॥ १७ । २ ॥

गायत्री (छन्दः) प्राणो वै गायत्री । श० ६ । ४ । २ । ५ ॥ ष० ३ । ७ ॥

" प्राणो गायत्री । श० ६ । २ । १ । २४ ॥ ६ । ६ । २ । ७ ॥ १० । ३ । १ । १ ॥ तां० ७ । ३ । ८ ॥ १६ । ३ । ६ ॥

" यो वै स प्राण एषा सा गायत्री । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥

" गायत्री वै प्राणः । श० १ । ३ । ५ । १५ ॥

" गायत्र उ वै प्राणः । कौ० ८ । ५ ॥ तै० ३ । ३ । ५ । ३ ॥

" गायत्रः प्राणः । तां० २० । १६ । ५ ॥

" अग्निर्वै गायत्री । श० ३ । ४ । १ । १९ ॥ ३ । ९ । ४ । १० ॥ ६ । ६ । २ । ७ ॥

" गायत्री वाऽ अग्निः । श० १ । ८ । २ । १३ ॥

" गायत्रो वा अग्निः । कौ० १ । १ ॥ ३ । २ ॥ ९ । २ ॥ १९ । ४ ॥ तै० १ । १ । ५ । ३ ॥

" अग्निर्गायत्रः । श० १६ । १ । १ । १५ ॥

" गायत्रछन्दा ह्यग्निः । तां० ७ । ८ । ४ ॥

" गायत्रमग्नेश्छन्दः । कौ० १० । ५ ॥ १४ । २ ॥ २८ । ५ ॥

" गायत्रं वाऽ अग्नेश्छन्दः । श० १ । ३ । ५ । ४ ॥

" गायत्रछन्दा अग्निः । तां० १६ । ५ । १९ ॥

" यो वा अत्राग्निर्गायत्री स निदानेन । श० १ । ८ । २ । १५ ॥

" गायत्रो वै ब्राह्मणः । ऐ० १ । २८ ॥

" गायत्रछन्दा वै ब्राह्मणः । तै० १ । १ । ९ । ६ ॥

" ब्रह्म हि गायत्री । तां० ११ । ११ । ९ ॥

" ब्रह्म उ गायत्री । जै० उ० १ । १ । ८ ॥

" ब्रह्म वै गायत्री । ऐ० ४ । ११ ॥ कौ० ३ । ५ ॥

" ब्रह्म गायत्री । श० १ । ३ । ५ । ४ ॥

" ब्रह्म गायत्री क्षत्रं त्रिष्टुप् । श० १ । ३ । ५ । ५ ॥

" गायत्री ब्रह्मवर्चसम् । तै० २ । ७ । ३ । ३ । तां० ५ । १ । ९ ॥

गायत्री (छन्दः) तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गायत्री । ऐ० १ । ५, २८ ॥ गो० उ० ५ । ५ ॥

" तेजो ब्रह्मवर्चसं गायत्री । कौ० १७ । २, ६ ॥ तां० १५ । १ । ८ ॥

" तेजो वै गायत्री छन्दसाम् । तां० १५ । १० । ६ ॥

" तेजो वै गायत्री । गो० उ० ५ । ३ ॥ तै० ३ । ६ । ४ । ६ ॥

" तेजसा वै गायत्री प्रथमं त्रिरात्रं दाधार पदैर्द्वितीय-मक्षरैस्तृतीयम् । तां० १० । ५ । ३ ॥

" ज्योतिर्वै गायत्री छन्दसाम् । तां० १३ । ७ । २ ॥

" ज्योतिर्वै गायत्री । कौ० १७ । ६ ॥

" द्विविद्युतती वै गायत्री । तां० १२ । १ । २ ॥

" गायत्र्येव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

" एते वाव छन्दसां वीर्य्यवत्तमे यद्गायत्री च त्रिष्टुप् च । तां० २० । १६ । ८ ॥

" वीर्य्यं वै गायत्री । तां० ७ । ३ । १३ ॥

" वीर्यं गायत्री । श० १ । ३ । ५ । ४ ॥ १ । ६ । १ । १७ ॥

" यातयामान्यन्यानि छन्दांꣳस्ययातयामा गायत्री । तां० १३ । १० । १ ॥

" शिरो गायत्री । ष० २ । ३ ॥

" शिरो गायत्र्यः । श० ८ । ६ । २ । ३ ॥

" गायत्रꣳ हि शिरः । श० ८ । ६ । २ । ६ ॥

" गायत्री छन्दो ऽग्निर्देवता शिरः । श० १० । ३ । २ । १ ॥

" मुखमेव गायत्री । कौ० ११ । २ ॥

" मुखं गायत्री । तां० ७ । ३ । ७ ॥ १४ । ५ । २८ ॥ १६ । ११ । ४ ॥

" गायत्री छन्दसां (मुखम्) । तां० ६ । १ । ६ ॥

" अग्निर्ह वाव राजन् गायत्रीमुखम् । जै० उ० ४ । ८ । २ ॥

गायत्री (छन्दः) यस्माद्गायत्रमुखः प्रथमः (त्रिरात्रः) तस्माद्दूर्ध्वो ऽग्निर्दीदाय । तां० १० । ५ । २ ॥
„ त्रिपदा गायत्री । तां० १० । ५ । ४ ॥
„ ता वा एता गायत्र्यो यत्त्रिपदाः । तां० १६ । ११ । १० ॥
„ त्रिवृद्वै गायत्र्यास्तेजः । तां० १० । ५ । ४ ॥
„ अष्टाक्षरा गायत्री । ऐ० २ । १७ ॥ ३ । १२ ॥ कौ० ६ । २ ॥ १६ । ४ ॥ तै० १ । १ । ५ । ३ ॥ तां० ६ । ३ । १३ ॥ जै० उ० १ । १ । ८ ॥ गो० पू० ४ । २४ ॥ गो० उ० ३ । १० ॥
„ अष्टाक्षरा वै गायत्री । श० १ । ४ । १ । ३६ ॥
„ नवाक्षरा वै गायत्र्यष्टौ तानि यान्यन्वाह प्रणवो नवमः । श० ३ । ४ । १ । १५ ॥
„ चतुर्विंशत्यक्षरा वै गायत्री । ऐ० ३ । ३६ ॥ श० ३ । ५ । १ । १० ॥
„ चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री । कौ० १२ । ३ ॥ जै० उ० १ । १७ । २ ॥
„ गायत्री वै प्राची दिक् । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥
„ प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरꣳ साम त्रिवृत्स्तोमो वसन्त ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् । श० ५ । ४ । १ । ३ ॥
„ वसवस्त्वा पुरस्तादभिषिञ्चन्तु गायत्रेण छन्दसा । तै० २ । ७ । १५ । ५ ॥
वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा संमृजन्तु । तां० १ । २ । ७ ॥
„ वसवो गायत्रीं समभरन् । जै० उ० १ । १८ । ४ ॥
„ गायत्री वसूनां पत्नी । गो० उ० २ । ६ ॥
„ गायत्रं साम । जै० उ० १ । १ । ८ ॥
„ गायत्रं वै रथन्तरम् । तां० ५ । १ । १५ ॥
„ गायत्रं वै रथन्तरं गायत्रछन्दः । तां० १५ । १० । ६ ॥

गायत्री (छन्दः) गायत्री वै रथन्तरस्य योनिः। तां० १५। १०। ५॥
" या हि का च गायत्री सा रेवती। तां० १६।५।२७॥
" गायत्री वै रेवती। तां० १६। ५। १६॥
" गायत्रः सप्तदशस्तोमः। तां० ५। १। १५॥
" गायत्रीमात्रो वै स्तोमः। कौ० १६। ८॥
" गायत्रो मैत्रावरुणः। तां० ५। १। १५॥
" पूर्वार्धो वै यज्ञस्य गायत्री। श० ३। ५। १। १०॥ ३। ६। ४। २०॥
" यज्ञो वै गायत्री। श० ४। २। ४। २०॥
" गायत्रो यज्ञः। गो० पू० ४। २४॥
" गायत्रं वै प्रातःसवनम्। ऐ० ६। २, ६॥ ष० १। ४॥ तां० ६। ३। ११॥
" गायत्रम्प्रातस्सवनम्। जै० उ० ४। २। २॥
" गायत्रं हि प्रातःसवनम्। गो० उ० ३। १६॥
" गायत्रो वै पुरुषः। ऐ० ४। ३॥
" गायत्राः पशवः। तै० ३। २। १। १॥
" एतद्धि (गायत्री-) छन्दः आशिष्ठम्। श० ८। २। ३। ६॥
" इमे वै लोका गायत्री। तां० १५। १०। ६।
" गायत्र्या वै देवा इमान् लोकान् व्याप्नुवन्। तां०१६। १४। ४॥
" एषा वै गायत्री पक्षिणी चक्षुष्मती ज्योतिष्मती भास्वती यद् द्वादशाहस्तस्य यावभितो ऽतिरात्रौ तौ पक्षौ यावन्तराग्निष्टोमौ ते चक्षुषी ये ऽष्टौ मध्य उक्थ्याः स आत्मा। ऐ० ४। २३॥
" तद्वै कनिष्ठं छन्दः सद् गायत्रती प्रथमा छन्दसां युज्यते तदु तद्वीर्येणैव यच्छ्येनो भूत्वा दिवः सोममाहरत्। श० १। ८। २। १०॥
" यद्गायत्री श्येनो भूत्वा दिवः सोममाहरत्तेन सा श्येनः। श० ३। ४। १। १२॥

गायत्री (छन्दः) तृतीयस्यामितो दिवि सोम आसीत् । तं गायत्र्याहरत् । तै० १ । १ । ३ । १० ॥ ३ । २ । १ । १ ॥

" सा गायत्री समिद्धान्यानि छन्दांᳫसि समिन्धे । श० १ । ३ । ४ । ६ ॥

" गायत्री वाव सर्वाणि छन्दांᳫसि । तां० ८ । ४ । ४ ॥

" सा गायत्री गाथया ऽपुनीता । जै०उ० १ । ५७ । १ ॥

" या द्यौः सा ऽनुमतिः सो एव गायत्री । ऐ० ३ । ४८ ॥

" गायत्र्या वै देवाः पाप्मानं शमलमपाघ्नत । ऐ० २ । १७ ॥

गारम् (साम) इदं वसो सुतमन्ध इति गारमेतेन वै गर इन्द्रमप्रीणात्प्रीत एवास्यैतेनेन्द्रो भवति । तां० ९ । २ । १६ ॥

गार्हपत्यः (अग्निः) ऋग्वेदाद्गार्हपत्यः (अजायत) । ष० ४ । १ ॥

" गृहा वै गार्हपत्यः । श० १ । १ । १ । १९ ॥ १ । ९ । ३ । १८ ॥ २ । ४ । १ । ७ ॥ ४ । ६ । ९ । २ ॥

" जाया गार्हपत्यः । ऐ० ८ । २४ ॥

" प्रजापतिर्वै गार्हपत्यः । कौ० २७ । ४ ॥

" अथैष एव गार्हपत्यो यमो राजा । श० २ । ३ । २ । २ ॥

" अन्नं वै गार्हपत्यः । श० ८ । ६ । ३ । ५ ॥

" कर्मेति गार्हपत्यः । जै० उ० ४ । २६ । १५ ॥

" अयं वै (भू-)लोको गार्हपत्यः । श० ७ । १ । १ । ६ ॥ ८ । ६ । ३ । १४ ॥ ष० १ । ५ ॥

" यद्गार्हपत्यं (उपतिष्ठते) पृथिवीं तद् (उपतिष्ठते) । श० २ । ३ । ४ । ३६ ॥

" प्राणोदानावेवाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च । श० २ । २ । २ । १८ ॥

" अपणो वै गार्हपत्यः । कौ० २ । १ ॥

" यजमानदेवत्यो वै गार्हपत्यः । श० २ । ३ । २ । ६ ॥

" यद्गार्हपत्यं (उपतिष्ठते) पुरुषांस्तद्याचते । श० २ । ३ । ४ । ३२ ॥

" य इहाहीयत स गार्हपत्यः । श० १ । ७ । ३ । २२ ॥

" गार्हपत्यो वा अग्नेर्योनिः । तै० १ । ४ । ७ । ४ ॥

गार्हपत्या चितिः योनिर्वै गार्हपत्या चितिः । श० ७ । १ । १ । ८ ॥ ८ । ६ । ३ । ८ ॥

गिरश्छन्दः (यजु० १४ । ५) अन्नं वै गिरश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

गिरिः तस्य (वृत्रस्य) एतच्छरीरं यद्गिरयो यदश्मानः । श० ३ । ४ । ३ । १३ ॥ ३ । ६ । ४ । २ ॥ ४ । २ । ५ । १५ ॥

गिर्वा इन्द्रो वै गिर्वा । श० ३ । ६ । १ । २४ ॥

गीः (यजु० १२ । ६८) वाग्वै गीः । श० ७ । २ । २ । ५ ॥

,, विशो गिरः । श० ३ । ६ । १ । २४ ॥

गुग्गुलु तस्य (अग्नेः) यन्माꣳसमासीत्तद् गुग्गुल्वभवत् । तां० २४ । १३ । ५ ॥ ("गुल्गुलु" शब्दमपि पश्यत)

गुदः प्राणो वै गुदः । श० ३ । ८ । ४ । ३ ॥

गुल्गुलु माꣳसꣳ हैवास्य (अग्नेः) गुल्गुलु । श० ३ । ५ । २ । १६ ॥ ("गुग्गुलु" शब्दमपि पश्यत)

गूर्दः (सामविशेषः) गौपायनानां वै सत्रमासीनानां किरातकुल्यावसुरमाये अन्तःपरिध्यसून् प्राकिरतान्ते ऽग्ने त्वन्नो अन्तम इत्यग्निमुपासीदꣳस्तेनासूनस्पृणवꣳस्तद्वाव ते तर्ह्यकामयंत कामसनि साम गूर्दः काममेवैतेनावरुन्धे । तां० १३ । १२ । ५ ॥

गृभीतः (यजु० १७ । ५५) गृभीत इति धारित इत्येतत् । श० ६ । २ । ३ । ६ ॥

गृहपतिः असावेव गृहपतिर्यो ऽसौ (सूर्यः) तपत्येष (सूर्यः) हि गृहाणां पतिस्तस्यर्तव एव गृहाः । कौ० २७ । ५ ॥

,, असौ वै गृहपतिर्यो ऽसौ (सूर्यः) तपत्येष (सूर्यः) पतिर्ऋतवो गृहाः । ऐ० ५ । २५ ॥

,, अयं वै (पृथिवी-)लोको गृहपतिः । श० १२ । १ । १ । १ ॥ गो० पू० ४ । १ ॥

,, अथ यदग्निं गृहपतिमन्ततो यजति । कौ० ३ । ६ ॥

,, अग्निर्गृहपतिरिति हैक आहुः सो ऽस्य लोकस्य (पृथिव्याः) गृहपतिः । ऐ० ५ । २५ ॥

,, तप आसीद् गृहपतिः । तै० ३ । १२ । ६ । ३ ॥

गृहपतिः वायुर्गृहपतिरिति हैक आहुः सोऽन्तरिक्षस्य लोकस्य गृह-
पतिः । ऐ० ५ । २५ ॥

गृहमेधीयः पुष्टिकर्म्म वा एतद्यद् गृहमेधीयः । कौ० ५ । ५ ॥

„ पुष्टिकर्म्म वै गृहमेधीयः । गो० उ० । १ । २३ ॥

गृहाः गृहा वै प्रतिष्ठा । श० १ । १ । १ । १९ ॥ १ । ९ । ३ । १६ ॥ २ ।
४ । १ । ७ ॥

„ गृहा वै प्रतिष्ठा सूक्तम् । ऐ० ३ । २४ ॥

„ गृहा वै सूक्तम् । गो० उ० ३ । २१; २२ ॥

„ गृहाः सूक्तम् । ऐ० ३ । २३ ॥

„ गृहा वै दुर्याः । ऐ० १ । १३ ॥ श० १ । १ । २ । २२ ॥ ३ । ३ ।
४ । ३० ॥

„ ऋतवो गृहाः । ऐ० ५ । २५ ॥

गोऽआयुषी (स्तोमौ) अथ यद्गोऽआयुषी उपयन्ति । मित्रावरुणावेव
देवते यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । १६ ॥

„ प्राणापानौ वै गोआयुषी । कौ० २६ । २ ॥

„ द्यावापृथिवी वै गोआयुषी । कौ० २६ । २ ॥

„ अहोरात्रे वै गोआयुषी । कौ० २६ । २ ॥

„ यदेवेदं द्वितीयमहर्यच्च तृतीयमेते वा उ गो-
आयुषी । कौ० २६ । २ ॥

गोजाः एष (सूर्य्यः) वै गोजाः । ऐ० ४ । २० ॥

गोधूमाः यत्पक्ष्मभ्यः (तेजो ऽस्रवत्) ते गोधूमाः (अभवन्) । श०
१२ । ७ । १ । २ ॥

„ सो ऽयं (पुरुषः) अत्वगेते वै पुरुषस्यौषधीनां नेदिष्ठतमां
यद्गोधूमास्तेषां न त्वगस्ति । श० ५ । २ । १ । ६ ॥

गोपाः (यजु० ३७ । १७) एष वै गोपा य एष (सूर्यः) तपत्येष हीदꣳ
सर्वं गोपायति । श० १४ । १ । ४ । ८ ॥

„ प्राणो वै गोपाः । स हीदं सर्वमनिपद्यमानो
गोपायति । जै० उ० ३ । ३७ । २ ॥

„ (ऋ० १ । ८६ । १ ॥) इन्द्रो वै गोपाः । ऐ०
६ । १० ॥ गो० उ० २ । २० ॥

गोपाः (ऋ० २ । ६ । २) अग्निर्वै देवानां गोपाः(=गोप्ता) । ऐ०१ । २८ ॥

गोमृगः पशवो वै गोमृगः । तै० ३ । ६ । ११ । ३ ॥

गोष्टोमातिरात्रः (क्रतुः) गवा (गोष्टोमातिरात्रेण) वै देवा असुरानेभ्यो लोकेभ्योनुदन्त । तां० २० । ७ । १ ॥

गोसवः (क्रतुः) अथैष गोसवः स्वाराज्यो यज्ञः । तां० १६ । १३ । १ ॥

गौः इमे वै लोका गौर्यद्धि किं च गच्छतीमांस्तल्लोकान् गच्छति । श० ६ । १ । २ । ३४ ॥

" इमे लोका गौः । श० ६ । ५ । २ । १७ ॥

" अयम्मध्यमो (लोकः=अन्तरिक्षम्) गौः । तां० ४ । १ । ७ ॥

" अन्तरिक्षं गौः । ऐ० ४ । १५ ॥

" गावो वा आदित्याः । ऐ० ४ । १७ ॥

" अन्नमु गौः । श० ७ । ५ । २ । १९ ॥

" अन्नं वै गौः । तै० ३ । ९ । ८ । ३ ॥

" अन्नꣳ हि गौः । श० ४ । ३ । ४ । २५ ॥ जै० उ० ३ । ३ । १३ ॥

" यज्ञो ह्येवेयं (गौः) नो ह्युते गोर्यज्ञस्तायते ऽन्नꣳ ह्येवेयं (गौः) यद्धि किं चान्नं गौरेव तद्दिति । श० २ । २ । ४ । १३ ॥

" यज्ञो वै गौः । तै० ३ । ९ । ८ । ३ ॥

" (प्रजापतिः) प्राणाद्गाम् (निरमिमीत) । श० ७ । ५ । २ । ६ ॥

" प्राणो हि गौः । श० ४ । ३ । ४ । २५ ॥

" इन्द्रियं वै वीर्यं गावः । श० ५ । ४ । ३ । १० ॥

" मुखादेवास्य बलमस्रवत् । स गौः पशुरभवदृषभः । श० १२ । ७ । १ । ४ ॥

" इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योते ऽदिति सरस्वति महि विश्रुति । एता तेऽअघ्न्ये (देवत्रा) नामानि । श० ४ । ५ । ८ । १० ॥

" इडा हि गौः । श० २ । ३ । ४ । ३४ ॥ १४ । २ । १ । ७ ॥

" सरस्वती (यजु० ३८ । २) हि गौः । श० १४ । २ । १ । ७ ॥

" मह्य इति ह वाऽ एतासामेकं नाम यद्गवाम् । श० १ । २ । १ । २२ ॥ ३ । १ । ३ । ६ ॥

" या गौः सा सिनीवाली सो एव जगती । ऐ० ३ । ४८ ॥

" विराड् (यजु० १३ । ४३) वै गौः । श० ७ । ५ । २ । १६ ॥

गौः विराजो वा एतद्रूपं यद्गौः। तां० ४ । ६ । ३ ॥
„ गौर्वै सार्पराज्ञी। कौ० २७ । ४ ॥
„ साहस्रो वाऽ एष शतधार उत्सः (यजु० १३ । ४९) यद्गौः। श० ७ । ५ । २ । ३४ ॥
„ स हैष सोमो ऽजस्रो (यजु० १३ । ४३) यद्गौः। श० ७ । ५ । २ । १९ ॥
„ गौर्वै स्रुचः। तै० ३ । ३ । ५ । ४॥
„ गौर्हि देवानां मनोता। ऐ० २ । १० ॥
„ गौर्वै देवानां मनोता। कौ० १० । ६ ॥
„ वैश्वदेवी वै गौः। गो० उ० ३ । १९ ॥
„ माता रुद्राणां दुहिता वसूनाꣳ स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः। प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट। मं०२। ८ । १५ ॥
„ यद्गौस्तेन रौद्री। श० ५ । २ । ४ । १३ ॥
„ रौद्री वै गौः। तै० २ । २ । ५ । २ ॥
„ आग्नेयो वै गौः। श० ७ । ५ । २ । १९ ॥
„ गौर्वाऽ इदꣳ सर्वं बिभर्ति। श० ३ । १ । २ । १४ ॥
„ महांस्त्वेव गोर्महिमेत्यध्वर्युः (आह) ॥ गोर्वै प्रतिधुक्। तस्यै शृतं तस्यै शरस्तस्यै दधि तस्यै मस्तु तस्याऽ आतञ्चनं तस्यै नवनीतं तस्यै घृतं तस्याऽ आमिक्षा तस्यै वाजिनम्। श०३ । ३ ३ । २ ॥
„ मनुष्याणाꣳ ह्येतासु (गोषु क्षीरदध्यादिविषयाः) कामाः प्रविष्टाः। श० २ । ३ । ४ । ३४ ॥
„ सर्वस्य वै गावः प्रेमाणं सर्वस्य चारुतां गताः। ऐ० ४ । १७ ॥
„ अपशवो वा एते। यदजावयश्चारण्याश्च। एते वै सर्व्वे पशवः। यद्गव्या इति। तै० ३ । ९ । ९ । २ ॥
„ नैते सर्वे पशवो यदजावयश्चारण्याश्चैते वै सर्वे पशवो यद्गव्या इति। श० १३ । ३ । २ । ३ ॥
„ तस्माद्वाङ्गावः पुरुषस्य रूपमिति। श० १२ । ६ । १ । ४ ॥

गौः नो हान्ते गार्नग्नः स्यात् । वेद ह गौरहमस्य त्वचं विभर्मीति सा विभ्यती त्रसति त्वचं मऽ आदास्यतऽ इति तस्मादु गावः सुवाससमुपैव निश्रयन्ते । श० ३ । १ । २ । १७ ॥

„ सा या बभ्रूः पिङ्गाक्षी (गौः) । सा सोमक्रयण्यथ या रोहिणी सा वार्त्रघ्नी यामिदꣳ राजा संग्रामं जित्वोदाकुरुते ऽथ या रोहिणी श्येताक्षी सा पितृदेवत्या यामिदं पितृभ्यो घ्नन्ति । श० ३ । ३ । १ । १४ ॥

„ षट्त्रिंशदवदाना गौः । गो० पू० ३ । १८ ॥ ४ । १२ ॥

„ तस्मादु संवत्सरऽ एव स्त्री वा गौर्वा वडवा वा विजायते । श० ११ । १ । ६ । २ ॥

„ आग्रयणपात्रमुक्थ्यपात्रमादित्यपात्रमेतान्येवानु गावः प्रजायन्ते । श० ४ । ५ । ५ । ८ ॥

„ गां चाजं च दक्षिणत एतस्यां तद्दिश्येतौ पशू दधाति तस्मादेतस्यां दिश्येतौ पशू भूयिष्ठौ । श० ७ । ५ । २ । १६ ॥ (धेनुशब्दमपि पश्यत)

गौः (एकाहः) यद्वै तद्देवा असुरानेभ्यो लोकेभ्यो गोवयꣳ(गुप्तांस्तिरोहितान् कुर्व्वन्निति सायणः)स्तद्गोर्गोत्वम् । तां० १६ । २ । ३॥

„ गवा वै देवा असुरानेभ्यो लोकेभ्यो ऽनुदन्तैभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यन्नुदते य एवं वेद । तां० १६ । २ । २ ॥

गौङ्गवम् (साम) अग्निरकामयतान्नादः स्यामिति स तपोऽतप्यत स एतद्गौङ्गवमपश्यत्तेनान्नादो ऽभवद्यदन्नं वित्वा (वित्त्वा) गर्ईयदगङ्गूयत्तद्गौङ्गवस्य गौङ्गवत्वम् । तां० १४ । ३ । १६ ॥

„ अन्नाद्यस्यावरुध्यै गौङ्गवं क्रियते । तां० १४ । ३ । १६॥

गौतमम् (साम) स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते (गौतमेन साम्ना) तुष्टुवानः । तां० ११ । ५ । २२ ॥

गौरीवितम् (साम) गौरीवितिः (ऋषिविशेषः) वा एतच्छाक्त्यो ब्रह्मणो ऽतिरिक्तमपश्यत्तद् गौरीवितमभवत् । तां० ११ । ५ । १४ ॥ १२ । १३ । १० ॥

गौरीवितम् (साम) अतिरिक्तं गौरीवितम् । तां० १८ । ६ । १६ ॥

" अतिरिक्तं वै गौरिवीतम् । तै० १ । ४ । ५ । २ ॥

" देवा वै वाचं व्यभजन्त तस्याः (वाचः) यो रसोऽत्य-
रिच्यत तद्गौरीवितमभवत् । तां० ५ । ७ । १ ॥

" ब्रह्म यद्देवा व्यकुर्व्वत ततो यदतिरिच्यत तद्गौरीवितम-
भवत् । तां० ६ । २ । ३ ॥

" प्र व इन्द्राय मादनमिति गौरीवितम् । तां० ६। २। २॥

" वृषा वा एतद्वाजिसाम (गौरीवितम्) । वृषभो
रेतोधा अद्य स्तुवन्ति श्वः प्रजायते । तां०११।५। १६॥

" एतद्वै यज्ञस्य श्वस्तनं यद्गौरीवितम् । तां० ५।७।५॥
१५ । ६ । ७ ॥

" तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गौरीवीतम् । ऐ० ४ । २ ॥

गौषूक्तम् (साम) गौषूक्तिश्चाश्वसूक्तिश्च बहु प्रतिगृह्य गरगिरावमन्येतां
तावेते सामनी अपश्यतां ताभ्यां गरन्निरघ्नाताम् ।
तां० १६ । ४ । १० ॥

ग्नाः छन्दांसि वै ग्नाश्छन्दोभिर्हि स्वर्गं लोकं गच्छन्ति । श० ६ ।
५ । ४ । ७ ॥

ग्रन्थिः वरुण्यो वै ग्रन्थिः । श० १ । ३ । १ । १६ ॥

" वरुण्यो हि ग्रन्थिः । श० ५ । २ । ५ । १७ ॥

ग्रहः यद् गृह्णाति तस्माद्ग्रहः । श० १० । १ । १ । ५ ॥

" अथ ग्रहान्गृह्णाति । श० ४ । ५ । ६ । ३ ॥

" तं (सोमं) अघ्नन् । तस्य यशो व्यगृह्णत । ते ग्रहा अभवन् । तद्ग्र-
हाणां ग्रहत्वम् । तै० २ । २ । ८ । ६ ॥

" तद्यदेनं पात्रैर्व्यगृह्णत तस्माद्ग्रहा नाम । श० ४ । १ । ३ । ५ ॥

" (प्रजापतिः) तौ (दर्शपूर्णमासौ) ग्रहेणागृह्णात् । तद्ग्रहस्य ग्रह-
त्वम् । तै० २ । २ । २ । १ ॥

" यच्चित्तं (यज्ञं) ग्रहैर्व्यगृह्णत तद्ग्रहाणां ग्रहत्वम् । ऐ० ३ । ६ ॥

" तान् पुरस्तात् पवित्रस्य व्यगृह्णात् ते ग्रहा अभवन् । तद्ग्रहाणां
ग्रहत्वम् । तै० १ । ४ । १ । १ ॥

ग्रहः ते (देवाः) सोममन्वविन्दन् । तमघ्नन् । तस्य यथाभिज्ञायं तनूर्व्यगृह्णत । ते ग्रहा अभवन् । तद्ग्रहाणां ग्रहत्वम् । तै० १।३।१।२॥

„ एष वै ग्रहः । य एष (सूर्यः) तपति येनेमाः सर्वाः प्रजा गृहीताः । श० ४ । ६ । ५ । १ ॥

„ अष्टौ ग्रहाः (प्राणः, जिह्वा, वाक्, चक्षुः, श्रोत्रम्, मनः, हस्तौ, त्वक्) । श० १४ । ६ । २ । १ ॥

„ प्राणा वै ग्रहाः । श० ४ । २ । ४ । १३ ॥ ४ । ५ । ६ । ३ ॥

„ अन्नमेव ग्रहः । अन्नेन हीदꣳ सर्वं गृहीतम् । श० ४ । ६ ५ । ४ ॥

„ नामैव ग्रहः । नाम्ना हीदꣳ सर्वं गृहीतम् । श० ४ ६ । ५ । ३ ॥

„ वागेव ग्रहः । वाचाहीदꣳ सर्वं गृहीतम् । श०४ । ६ । ५ । २ ॥

„ अङ्गानि वै ग्रहाः । श० ४ । ५ । ६ । ११ ॥

„ साम ग्रहः । श० ४ । २ । ३ । ७ ॥

ग्रामणीः वैश्यो वै ग्रामणीः । श० ५ । ३ । १ । ६ ॥

ग्रावस्तोत्रीया मनो वै ग्रावस्तोत्रीया । ऐ० ६ । २ ॥

ग्रावाणः (यजु० ३८ । १५) प्राणा वै ग्रावाणः । श० १४ । २ । २ । ३३ ॥

„ वज्रो वै ग्रावा । श० ११ । ५ । ६ । ७ ॥

„ पशवो वै ग्रावाणः । तां० ६ । ६ । १३ ॥

„ विड्वै ग्रावानः । तां० ६ । ६ । १ ॥

„ विशो ग्रावाणः । श० ३ । ६ । ३ । ३ ॥

„ जागता वै ग्रावाणः । कौ० २६ । १ ॥

„ बार्हता ग्रावाणः । श० १२ । ८ । २ । १४ ॥

„ मारुता (=मरुद्देवत्याः) वै ग्रावाणः तां० ६ । ६ । १४ ॥

„ विद्वाꣳसो हि ग्रावाणः । श० ३ । ६ । ३ । १४ ॥

„ यदि ग्रावाविशीर्येत पशुभिर्यजमानो व्यृध्यते । तां० ६ । ६ । १३ ॥

„ यं द्विष्याद्भिमुखान् ग्राव्णः कृत्वेदमहममुष्यायणममुष्याः पुत्रममुष्या विशोऽमुष्मादन्नाद्यान्निरूहामीति निरूहेद्विश

एवैनमश्नाद्यन्निरूहति । तां० ६ । ६ । २ ॥

ग्रीवाः ग्रीवा उष्णिहः । श० ८ । ६ । २ । ११ ॥

,, उष्णिक् छन्दः सविता देवता ग्रीवाः । श० १० । ३ । २ । २ ॥

,, (यज्ञस्य) ग्रीवा उपसदः । ऐ० १ । २५ ॥

,, ग्रीवा वै यज्ञस्योपसदः । श० ३ । ४ । ४ । १ ॥

,, ग्रीवाः पञ्चदशः । चतुर्दश वाऽ एतासां करूकराणि वीर्य्यं पञ्चदशं तस्मादेताभिरण्वीभिः सतीभिर्गुरुं भारꣳ हरति । श० १२ । २ । ४ । १० ॥

,, ग्रीवाः पञ्चदशश्चतुर्दश ह्येवैतस्यां करूकराणि भवन्ति वीर्यं पञ्चदशम् । तस्मादाभिरण्वीभिः सतीभिर्गुरु भारं हरति । गो० पू० ५ । ३ ॥

ग्रीष्मः (ऋतुः) एतौ (शुक्रश्च शुचिश्च) एव ग्रैष्मौ (मासौ) स यदेतयोर्बलिष्ठं तपति तेनो हैतौ शुक्रश्च शुचिश्च । श० ४ । ३ । १ । १५ ॥

,, तस्य (वायोः) रथस्वनश्च रथेचित्रश्च (यजु० १५ । १५) सेनानीग्रामण्याविति ग्रैष्मौ तावृतू । श० ८ । ६ । १ । १७ ॥

,, अनिरुक्त ऋतूनां ग्रीष्मः । जै० उ० १ । ३५ । ३ ॥

,, यत्स्तनयति तद् ग्रीष्मस्य (रूपम्) । श० २।२।३।८॥

,, ग्रीष्म एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, ग्रीष्मेण देवा ऋतुना रुद्राः पञ्चदशे स्तुतम् । बृहता यशसा बलम् । हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २ । ६ । १६ । १ ॥

,, तस्मात्क्षत्रियो ग्रीष्मऽ आदधीत क्षत्रꣳ हि ग्रीष्मः । श० २ । १ । ३ । ५ ॥

,, ग्रीष्मो वै राजन्यस्यर्तुः । तै० १ । १ । २ । ७ ॥

,, (राजन्यस्य) ग्रीष्म ऋतुः । तां० ६ । १ । ८ ॥

,, ग्रीष्मः (संवत्सरस्य) दक्षिणः पक्षः । तै० ३ । ११ । १० । ३ ॥

ग्रीष्मः　ग्रीष्मो ऽध्वर्युस्तप्त इव वै ग्रीष्मस्तप्तमिवाध्वर्युर्निष्कामति । श० ११ । २ । ७ । ३२ ॥

,,　तनूनपातं यजति ग्रीष्ममेव, ग्रीष्मो हि तन्वं तपति । कौ० ३ । ४ ॥

,,　ग्रीष्मो वै तनूनपाद् ग्रीष्मो ह्यासां प्राजानां तनूस्तपति । श० १ । ५ । ३ । १० ॥

,,　षड्भिरैन्द्रैः (पशुभिः) ग्रीष्मे (यजते) । श० १३ । ५ । ४ । २८ ॥

,,　(प्रजापतिः) ग्रीष्मस्प्रस्तावं (अकारोत्) । जै० उ० १ । १२ । ७ ॥

,,　ग्रीष्मः प्रस्तावः । ष० ३ । १ ॥

(घ)

घर्मः　तद्यद् (छिन्नं विष्णोशिरः) घृङ्ङित्यपतत्तस्माद् घर्मः । श० १४ । १ । १ । १० ॥

,,　अस्य (अग्नेः) एवैतानि (घर्मः, अर्कः, शुक्रः, ज्योतिः, सूर्यः) नामानि । श० ६ । ४ । २ । २५ ॥

,,　अग्निर्वै घर्मः । श० ११ । ६ । २ । २ ॥

,,　तप्त इव वै घर्मः । श० १४ । ३ । १ । ३३ ॥

,,　आदित्यो वै घर्मः । श० ११ । ६ । २ । २ ॥

,,　(यजु० १८ । ५०) असौ वाऽ आदित्यो घर्मः । श० ६ । ४ । २ । १६ ॥

,,　असौ वै घर्मो यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । कौ० २ । १ ॥

,,　एष वै घर्मो य एष (सूर्यः) तपति । श० १४ । १ । ३ । १७ ॥

,,　देवमिथुनं वा एतद् यद् घर्मः । गो० उ० २ । ६ ॥

,,　तदेतद्देवमिथुनं यद् घर्मः स यो घर्मस्तच्छिश्नम् । ऐ० १ । २२॥

घृतम्　घृतं (=घनीभूतं सर्पिः) मनुष्याणाम् (सुरभि) । ऐ० १ । ३ ॥

,,　अन्नस्य घृतमेव रसस्तेजः । मं० २ । ६ । १५ ।

,,　तेजो वा एतत्पशूनां यद् घृतम् । ऐ० ८ । २० ॥

,,　आग्नेयं वै घृतम् । श० ७ । ४ । १ । ४१ ॥ ६ । २ । २ । ३ ॥

घृतम् एतद्वा अग्नेः प्रियं धाम यद् घृतम् । तै० १ । १ । ६ । ६ ॥ १ । ४ । ४ । ४ ॥

,, घृतभाजना ह्यादित्याः । श० ६ । ६ । १ । ११ ॥

,, घृतं वै देवानां फाण्टं मनुष्याणाम् । श० ३ । १ । ३ । ८ ॥

,, घृतं वै देवा वज्रं कृत्वा सोममघ्नन् । गो० उ० २ । ४ ॥

,, देवव्रतं वै घृतम् । तां० १८ । २ । ६ ॥

,, बहुदेवत्यं वै घृतम् । कौ०२० । ४ ॥

,, सर्वदेवत्यं वै घृतम् । कौ० २१ । ४ ॥

,, (यजु० १७ । ७९), रेतो वै घृतम् । श० ९ । २ । ३ । ४४ ॥

,, रेतःसिक्तिर्वै घृतम् । कौ० १६ । ५ ॥

,, उल्वं घृतम् । श० ६ । ६ । २ । १५ ॥

,, घृतमन्तरिक्षस्य (रूपम्) । श० ७ । ५ । १ । ३ ॥

,, एतद्वै प्रत्यक्षाद्यज्ञरूपं यद् घृतम् । श० १२ । ८ । २ । १५ ॥

,, तद्वै सुपूतं यं घृतेनापुनन् । श० ३ । १ । २ । ११ ॥

घृतश्च्युतः (बहुवचने) पशवो वै घृतश्च्युतः । तां० ९ । १ । १७ ॥

घृताची (अप्सराः, यजु० १७ । ५९) "विश्वाची" शब्दमपि पश्यत ।

,, (घृतमञ्चति प्राप्नोतीति घृताचीति सायणः) घृताच्यसि जुहू-र्नाम्ना (यजु० ११ । ६ ॥) । श० १ । ३ । ४ । १४ ॥

,, घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना । श० १ । ३ । ४ । १४ ॥

,, घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना । श० १ । ३ । ४ । १४ ॥

,, (यजु० १५ । १८) स्रुग्घृताची । श० ८ । ६ । १ । १९ ॥

,, (यजु० १७ । ५९) स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीरिति स्रुचश्चै-तद्वेदीश्चाह (घृताची=स्रुक्) । श० ९ । २ । ३ । १७ ॥

घोरः (आङ्गिरसः) त आदित्या (अग्निं) ऊचुरथास्माकमद्य सुत्या तेषां नस्त्वमेव होतासि बृहस्पतिर्ब्रह्मायास्य उद्गाता घोर आङ्गिरसो ऽध्वर्युरिति (तद्धैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णा-य देवकीपुत्रायोक्त्वोवाच······।—छान्दोग्योपनिषदि ३ । १७ । ६) । कौ० ३० । ६ ॥

,, घोर आङ्गिरसो ऽध्वर्युः । (सोमस्य वैष्णवस्य आ-ङ्गिरसो वेदो वेदः सो ऽयमिति घोरं निगदेत्-शाङ्खायन-

श्रौतसूत्रे १६ । २। १२ ॥ तथैव–आश्वलायनश्रौतसूत्रे १० । ७ । ४ ॥) । कौ० ३० । ६ ॥

(च)

चक्रम् वज्रो वै चक्रम् । तै० १ । ४ । ४ । १० ॥

चक्षुः चक्षुर्वा ऋतं तस्माद्यतरो विवदमानयोराहाहमनुष्ठया चक्षुषा-दर्शमिति तस्य श्रद्दधति । ऐ० २ । ४० ॥

„ सत्यं वै चक्षुः सत्यꣳ हि वै चक्षुस्तस्माद्यदिदानीं द्वौ विवद-मानावेयातामहमदर्शमहमश्रौषमिति य एव ब्रूयादहमदर्शमिति तस्माऽ एव श्रद्दध्याम । श० १ । ३ । १ । २७ ॥

„ एतद्ध वै मनुष्येषु सत्यं निहितं यच्चक्षुः । ऐ० १ । ६ ॥

„ एतद्वै मनुष्येषु सत्यं यच्चक्षुः । गो० उ० २ । २३ ॥

„ सत्यं वै चक्षुः । श० ४ । २ । १ । २६ ॥

„ चक्षुर्वै सत्यम् । तै० ३ । ३ । ५ । २ ॥

„ चक्षुर्निवित् । जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥

„ तस्मादेकं सच्चक्षुर्द्वेधा । ऐ० २ । ३२ ॥

„ त्रिवृद्वै चक्षुः शुक्लं कृष्णं लोहितमिति । कौ० ३ । ५ ॥

„ तस्माद् विरूपं चक्षुः कृष्णमन्यच्छुक्लमन्यत् । ष० २ । २ ॥

„ चक्षुर्हृदये (श्रितम्) । तै० ३ । १० । ८ । ५ ॥

„ शश्वद्ध वै रेतसः सिक्तस्य चक्षुषीऽएव प्रथमे सम्भवतः । श० ४ । २ । १ । २८ ॥

„ चक्षुः पुरुषस्य प्रथमं सम्भवतः सम्भवति । ऐ० ३ । २ ॥

„ चक्षुर्वै रुक् । श० ६ । ३ । ३ । ११ ॥

„ चक्षुर्वै विचक्षणं चक्षुषा हि विपश्यति । कौ० ७ । ३ ॥

„ चक्षुर्वै विचक्षणं वि ह्यनेन पश्यतीति । ऐ० १ । ६ ॥

„ यच्चक्षुः स बृहस्पतिः । गो० उ० ४ । ११ ॥

„ चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिः (यजु० १३ । ५६) यदेनेन जगत्पश्य-त्यथो मनुते तस्माच्चक्षुर्जमदग्निर्ऋषिः । श० ८ । १ । २ । ३ ॥

„ चक्षुषी वै रौहिणौ (पुरोडाशौ) । श० १४ । २ । १ । ५ ॥

„ चक्षुर्मैत्रावरुणः । कौ० १३ । ५ ॥

„ चक्षुश्च मनश्च मैत्रावरुणः । ऐ० २ । २६ ॥

चक्षुः चक्षुरध्वर्य्युः । गो० उ० ५ । ४ ॥
,, चक्षुर्वै यज्ञस्याध्वर्युः । श० १४ । ६ । १ । ६ ॥
,, चक्षुरेवोद्गाता । गो० पू० २ । १० (११) ॥
,, चक्षुर्ब्रह्मा । तै० २ । १ । ५ । ९ ॥
,, चक्षुर्वै ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । ८ ॥
,, चक्षुर्ब्रह्म । गो० पू० २ । १० (११) ॥
,, चक्षुर्देवः । गो० पू० २ । १० (११) ॥
,, यद्वै चक्षुस्तद्धिरण्यम् । गो० पू० २ । २१ ॥
,, सूर्य्यो मे चक्षुषि श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ५ ॥
,, चक्षुरादित्यः । जै० उ० ३ । २ । ७ ॥
,, तद्यत्तच्चक्षुरादित्यस्सः । जै० उ० १ । २८ । ७ ॥
,, यत्तच्चक्षुरसौ स आदित्यः । श० १० । ३ । ३ । ७ ॥
,, अर्कश्चक्षुस्तदसौ सूर्य्यः । तै० १ । १ । ७ । २ ॥
,, चक्षुर्वाऽ अपां क्षयस्तत्र हि सर्वदैवापः क्षियन्ति । श० ७ । ५ । २ । ५४ ॥
,, चक्षुरेव चरणं चक्षुषा ह्ययमात्मा चरति । श० १० । ३ । ५ । ७ ॥
,, चक्षुरुष्णिक् । श० १० । ३ । १ । १ ॥
,, त्रैष्टुभं चक्षुः । तां० २० । १६ । ५ ॥
,, चक्षुर्वै प्रतिष्ठा । श० १४ । ६ । २ । ३ ॥
,, चक्षुर्वाव साम्नो ऽपचितिः । जै० उ० १ । ३६ । ५ ॥
,, चक्षुर्यशः । श० १२ । ३ । ४ । १० ॥
,, चक्षुरेव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

चतुःस्रक्तिः (यजु०३८ । २०) एष वै चतुःस्रक्तिर्य एष (सूर्यः) तपति दिशो ह्येतस्य स्रक्तयः । श० १४ । ३ । १ । १७ ॥

चतुरुत्तराणि छन्दांसि पशवो वै चतुरुत्तराणि छन्दाꣳसि । तां० ४ । ४ । ६ ॥

चतुर्थम् यद्वै चतुर्थं तत्तुरीयम् । श० ४ । १ । ३ । १४ ॥ ५ । २ । ४ । १३ ॥ १४ । ८ । १५ । ४ ॥

चतुर्थमहः वैराजं हि चतुर्थमहः । कौ० २६ । ५ ॥

,, आनुष्टुभमेतदहर्यच्चतुर्थम् । तां० १२ । ८ । ८ ॥ १२ । ६ । ६॥

,, जनद्वद्वा एतदहर्यच्चतुर्थमन्नाद्यञ्जनयति विराजञ्जनयत्येकविंशञ्स्तोमञ्जनयति । तां० १२ । ७ । ६ ॥ १२ । ८ । २ ॥

,, आयतमिव वै चतुर्थमहः । तां० १२ । १० । १ ॥

चतुर्थी चितिः यज्ञ एष चतुर्थी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । १५ ॥

,, यदूर्ध्वं मध्यादर्वाचीनं ग्रीवाभ्यस्तच्चतुर्थी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । २१ ॥

चतुर्विंशः (स्तोमः) चतुर्विंशञ्श एव स्तोमो भवति तेजसे ब्रह्मवर्चसाय । तां० १५ । ११ । १६ ॥

,, तेजश्चतुर्विंश स्तोमानाम् । तां० १५ । १० । ६ ॥

,, चतुर्विंशो वै संवत्सरो ऽन्नं पञ्चविंशञ्शम् । तां० ४ । ९ । ५ ॥

,, " योनिश्चतुर्विंशः "शब्दमपि पश्यत ।

चतुर्विंशम् (अहः) चतुर्विंशः स्तोमो भवति तच्चतुर्विंशस्य चतुर्विंशत्वं चतुर्विंशतिर्वा अर्धमासाः । अर्धमासश एव तत्संवत्सरमारभन्ते । ऐ० ४ । १२ ॥

,, मुखं वा एतत्संवत्सरस्य यच्चतुर्विंशम् । कौ० १९ । ८ ॥

चतुर्होता तस्मै (ब्रह्मणे) चतुर्थञ्छ हूतः प्रत्यशृणोत् । स चतुर्हूतो ऽभवत् । चतुर्हूतो ह वै नामैषः । तं वा एतं चतुर्हूतञ्छ सन्तं चतुर्होतेत्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया इव हि देवाः । तै० २ । ३ । ११ । ४ ॥

,, यदेवेषु चतुर्धा होतारः । तेन चतुर्होतारः । तस्माच्चतुर्होतार उच्यन्ते । तच्चतुर्होतॄणां चतुर्होतृत्वम् । तै० २ । ३ । १ । १ ॥

,, एतद्ध देवानां परमं गुह्यं ब्रह्म यच्चतुर्होतारः । तै० २ । २ । १ । ४ ॥ २ । २ । ६ । ३ ॥

,, ब्रह्म वै चतुर्होतारः । तै० ३ । १२ । ५ । १ ॥

,, देवानामेव तद्यज्ञियं गुह्यं नाम यच्चतुर्होतारः । ऐ० ५ । २३ ॥

,, प्रजापतिर्वै चतुर्होता । तै० २ । २ । ३ । ५ ॥

,, इन्द्रो वै चतुर्होता । तै० २ । ३ । १ । ३ ॥

चतुर्होता सोमो वै चतुर्होता । तै० २ । ३ । १ । १ ॥
„ पृथिवी होता चतुर्होतॄणाम् । तै० ३ । १२ । ५ । १ ॥
„ सोमश्चतुर्होतॄणाꣳ होता । तै० २ । ३ । ५ । ६ ॥
„ सोमश्चतुर्होत्रा । तै० २ । २ । ८ । ४ ॥
„ यशो वै चतुर्होता । तै० २ । २ । ८ । २ ॥
„ दर्शपूर्णमासौ चतुर्होतु: (निदानम्)। तै० २ । २ । ११ । ६ ॥
„ यद्वा इदं किञ्च । तत्सर्वं चतुर्होतारः । २ । ३ । ५ । ५ ॥

चतुष्टोमः यच्चतुष्टया देवाश्चतुर्भिः स्तोमैरस्तुवंस्तस्माच्चतुःस्तोमस्तं चतुःस्तोमं सन्तं चतुष्टोममित्याचक्षते । ऐ० ३ । ४३ ॥
„ प्रतिष्ठा चतुष्टोमः । श० ८ । १ । ४ । २६ ॥
„ प्रतिष्ठा वै चतुष्टोमः । तां० ६ । ३ । १६ ॥
„ परमश्चतुष्टोमः स्तोमानाम् । श० १३ । ३ । ३ । १ ॥
„ अन्तश्चतुष्टोम स्तोमानाम् । तां० २१ । ४ । ६ ॥
„ सरघा वा अश्वस्य सक्थ्यावृहत्तद्देवाश्चतुष्टोमेन प्रत्यदधुर्यच्चतुष्टोमो भवत्यश्वस्य सर्वत्वाय । तां० २१ । ४ । ४ ॥
"धत्रं चतुष्टोमः"शब्दमपि पश्यत ।

चतुष्पथम् एतद्ध वा अस्य (रुद्रस्य) जान्धितं प्रज्ञातमवसानं यच्चतुष्पथम् । श० २ । ६ । २ । ७ ॥

चतुष्पाद् चतुष्पादः पशवः । गो० उ० १ । ४ ॥ ३ । १६ ॥ तै० २ । १ । ३ । ५ ॥
„ चतुष्पादाः पशवः । तां० ३ । ८ । ३ ॥
„ चतुष्पादा वै पशवः । ऐ० २ । १८ ॥ ३ । ३१ ॥ ५ । ३ ॥ ५ । १७ ॥ ५ । १९ ॥
„ चतुष्टया वै पशवो ऽथो चतुष्पादाः । कौ० १६ । ३, ११ ॥ २८ । १० ॥ २९ । ८ ॥
„ तस्माद् द्विपाच्चतुष्पादमत्ति । तै० २ । १ । ३ । ९ ॥ ३ । ९ । १२ । ३ ॥

चतुस्त्रिंशः (स्तोमः) तस्य चतुस्त्रिꣳशो ऽग्निष्टोमः प्रजापतिश्चतुस्त्रिꣳशो देवतानाम् । तां० २२ । ७ । ५ ॥
„ अश्वश्चतुस्त्रिꣳशो दक्षिणानां प्रजापतिश्चतुस्त्रि-

ॐ शो देवतनाम् । तां० १७ । ११ । ३ ॥
"ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशः" इत्येतं शब्दमपि पश्यत॥

चन्द्रः असौ वै चन्द्रः पशुस्तं देवाः पौर्णमास्यामालभन्ते । श० ६ । २ । २ । १७ ॥

,, असौ वै चन्द्रः प्रजापतिः । श० ६ । २ । २ । १६ ॥

,, चन्द्र एव सविता । जै० उ० ४ । २७ । १३ ॥

,, चन्द्रꣳ हिरण्यम् । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥

,, चन्द्रꣳ ह्येतच्चन्द्रेण क्रीणाति यत्सोमꣳ हिरण्येन (चन्द्रः=सोमः, चन्द्रं=हिरण्यम्) । श० ३ । ३ । ३ । ६ ॥

,, चन्द्रा ह्यापः । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥

चन्द्रमाः स (इन्द्रः) चन्द्रं म आहरेति प्रालपत् । तच्चन्द्रमसश्चन्द्रमस्त्वम् । तै० २ । २ । १० । ३ ॥

,, चन्द्रमा वै मा मासः । तस्मान्मेत्याह । मा इति हैतत्परोक्षेणेव जै० उ० ३ । १२ । ६ ॥

,, सोमो वै चन्द्रमाः । कौ० १६ । ५ ॥ तै० १ । ४ । १० । ७ ॥ श० १२ । १ । १ । २ ॥

,, चन्द्रमा उ वै सोमः । श० ६ । ५ । १ । १ ॥

,, सोमो राजा चन्द्रमाः । श० १० । ४ । २ । १ ॥

,, असौ वै सोमो राजा विचक्षणश्चन्द्रमाः । कौ० ४ । ४ ॥ ७ । १० ॥

,, एतद्वै देवसोमं यच्चन्द्रमाः । ऐ० ७ । ११ ॥

,, चन्द्रमा वाऽ अस्य (सोमस्य) दिवि श्रव उत्तमम् (यजु० १२ । ११३ ॥) । श० ७ । ३ । १ । ४६ ॥

,, यद्रुद्रश्चन्द्रमास्तेन । कौ० ६ । ७ ॥

,, (प्रजापतिः) तं (रुद्रं) अब्रवीन्महान्देवो ऽसीति । तद्यदस्य तन्नामाकरोच्चन्द्रमास्तद्रूपमभवत्प्रजापतिर्वै चन्द्रमाः प्रजापतिर्वै महान्देवः । श० ६ । १ । ३ । १६ ॥

,, (इन्द्रः) तं (वृत्रं) द्वेधान्वभिनत्तस्य यत्सौम्यं न्यक्तमास तं चन्द्रमसं चकाराथ यदस्यासुर्य्यमास तेनेमाः प्रजा उदरेणाविध्यत् । श० १ । ६ । ३ । १७ ॥

चन्द्रमाः अथैष एव वृत्रो यच्चन्द्रमाः । श० १ । ६ । ४ । १३, १८ ॥

,, चन्द्रमा एव मन्थी । श० ४ । २ । १ । १ ॥

,, चन्द्रमा वै वरेण्यम् । जै० उ० ४ । २८ । १ ॥

,, चन्द्रमा द्विपात्तस्य पूर्वपक्षापरपक्षौ पादौ । गो० पू० २ । ८ ॥

,, चन्द्रमा वै पञ्चदशः । एष हि पञ्चदश्यामपक्षीयते पञ्चदश्यामापूर्य्यते । तै० १ । ५ । १० । ५ ॥

,, अथो चन्द्रमा वै भान्तः पञ्चदशः स च पञ्चदशाहान्यापूर्यते पञ्चदशापक्षीयते तद्यत्तमाह भान्त इति भाति हि चन्द्रमाः । श० ८ । ४ । १ । १० ॥

,, षोडशकलो वै चन्द्रमाः । ष० ४ । ६ ॥

,, एतद्ध देवसत्यं यच्चन्द्रमाः । कौ० ३ । १ ॥

,, चन्द्रमाः पुनरसुः । तै० २ । ५ । ७ । ३ ॥

,, चन्द्रमा वै जायते पुनः । तै० ३ । ६ । ५ । ४ ॥

,, मनो मे रेतो मे प्रजा मे पुनस्सम्भूतिर्मे तन्मे त्वयि (चन्द्रमसि) । जै० उ० ३ । २७ । १४ ॥

,, नक्षत्राणि स्थ चन्द्रमसि श्रितानि । संवत्सरस्य प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । १३ ॥

,, चन्द्रमा अस्यादित्ये श्रितः । नक्षत्राणां प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । १२ ॥

,, [सूर्यरश्मिः (यजु० १८ । ४०)=चन्द्रमाः] सूर्यस्येव हि चन्द्रमसो रश्मयः । श० ६ । ४ । १ । ९ ॥

,, चन्द्रमा एव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥

,, चन्द्रमा मे मनसि श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ५ ॥

,, तद्यत्तन्मनश्चन्द्रमास्सः । जै० उ० १ । २८ । ५ ॥

,, अथ यत्तन्मन आसीत् स चन्द्रमा अभवत् । जै० उ० २ । २ । २ ॥

,, यत्तन्मन एष स चन्द्रमाः । श० १० । ३ । ३ । ७ ॥

,, मनश्चन्द्रमाः । जै० उ० ३ । २ । ६ ॥

,, एष वै (चन्द्रमाः) रेतः । श० ६ । १ । २ । ४ ॥

,, स (चन्द्रमाः) वै देवानां वस्वन्नꣳ ह्येषाम् । श०१।६।४।५॥

चन्द्रमाः अन्नमु चन्द्रमाः । श० ८ । ३ । ३ । ११ ॥

„ अन्नमु वै चन्द्रमाः । जै० उ० १ । ३ । ४ ॥

„ तस्य (अर्कस्य=सूर्यस्य) एतदन्नं क्यमेष चन्द्रमास्तदक्यँ यजुष्टः । श० १० । ४ । १ । २२ ॥

„ चन्द्रमा ह्येतस्यान्नं य एष (सूर्यः) तपति । श० ४ । ६ । ७ । १२ ॥

„ चन्द्रमा वै प्राणः । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥

„ असौ वै चन्द्रः प्रजापतिः । श० ६ । २ । २ । १६ ॥

„ प्रजापतिर्वै चन्द्रमाः । श० ६ । १ । ३ । १६ ॥

„ चन्द्रमा वै धाता । ष० ४ । ६ ॥

„ चन्द्रमा एव धाता च विधाता च । गो० उ० १ । १० ॥

„ चन्द्रमा वै ब्रह्म । ऐ० २ । ४१ ॥

„ चन्द्रमा वै ब्रह्मा । श० १२ । १ । १ । २ ॥ गो० पू० २ । २४ ॥

„ चन्द्रमा ब्रह्मा (आसीत्) । गो० पू० १ । १३ ॥

„ चन्द्रमा वै ब्रह्माऽधिदैवं मनोऽध्यात्मम् । गो० पू० ४ । २ ॥

„ चन्द्रमा वै ब्रह्मा कृष्णः (यजु० २३ । १३) । श० १३ । २ । ७ । ७ ॥

„ यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयꣳ श्रितम् । मं० १ । ५ । १३ ॥

„ स यदस्यै पृथिव्याऽ अनामृतं देवयजनमासीत्तच्चन्द्रमसि न्यदधत तदेतच्चन्द्रमसि कृष्णम् । श० १ । २ । ५ । १८ ॥

„ यदस्याः (पृथिव्याः) यज्ञीयमासीत्तदमुष्यां (दिवि) अदधात् । तददश्चन्द्रमसि कृष्णम् । तै० १ । १ । ३ । ३ ॥

„ एतद्वा इयम् (भूमिः) अमुष्यां (दिवि) देवयजनमदधाद्यदेतच्च-न्द्रमसि कृष्णमिव । ऐ० ४ । २७ ॥

„ चन्द्रमा एव (संवत्सरस्य) द्वारपिधानः । श० ११ । १ । १ । १ ॥

„ रात्रिर्वै चन्द्रमाः । श० १२ । ४ । ४ । ७ ॥

„ चन्द्रमा उदानः । जै० उ० ४ । २२ । ६ ॥

चन्द्रमाः अमावास्यायां सः (चन्द्रमाः) अस्य (सूर्यस्य) व्यात्तं (=विवृतं मुखमिति सायणः) आपद्यते । (सूर्यः) तं (चन्द्रमसं) ग्रसित्वोदेति । स (चन्द्रमाः) न पुरस्तान्न पश्चाद्दृश्ये । श० १ । ६ । ४ । १८—१६ ॥

,, चन्द्रमा वा अमावास्यायामादित्यमनुप्रविशति । ऐ० ८ । २८॥

,, अथैष चन्द्रमा दक्षिणेनैति । ष० २ । ४ ॥

,, तस्मादिमौ सूर्याचन्द्रमसौ प्रत्यञ्चौ यन्तौ सर्व एव पश्यति । श० ४ । २ । १ । १८ ॥

,, चन्द्रमा मनुष्यलोकः । जै० उ० ३ । १३ । १२ ॥

,, वाग्घ चन्द्रमा भूत्वोपरिष्टात्तस्थौ । श० ८ । १ । २ । ७ ॥

,, वागिति चन्द्रमाः । जै० उ० ३ । १३ । १२ ॥

,, हन्तेति चन्द्रमा ओमित्यादित्यः । जै० उ० ३ । ६ । २ ॥

,, चन्द्रमा वै हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३ । ४ ॥

,, चन्द्रमा एव हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३३ । ५ ॥

,, चन्द्रमाः प्रतिहारः । जै० उ० १ । ३६ । ९ ॥

,, चन्द्रमा वै यज्ञायज्ञियं यो हि कश्च यज्ञः संतिष्ठतऽ एतमेव तस्याहुतीनाꣳ रसो ऽप्येति तद्यदेतं यज्ञो यज्ञो ऽप्येति तस्माच्चन्द्रमा यज्ञायज्ञियम् । श० ६ । १ । २ । ३६ ॥

,, चन्द्रमा वै भर्गः । जै० उ० ४ । २८ । २ ॥

,, वायुरापश्चन्द्रमा इत्येते भृगवः । गो० पू० २ । ८ (६) ॥

,, वृष्टिर्वै वृष्ट्वा चन्द्रमसमनुप्रविशति । ऐ० ८ । २८ ॥

,, चन्द्रमा एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

चरणम् चक्षुरेव चरणं चक्षुषा ह्ययमात्मा चरति । श० १०।३।५।७ ॥

,, आदित्य एव चरणं यदा ह्येवैष उदेत्यथेदꣳ सर्वं चरति । श० १० । ३ । ५ । ३ ॥

चरन् वायुर्वै चरन् । तै० ३ । ६ । ४ । १ ॥

चरुः ओदनो हि चरुः । श० ४ । ४ । २ । १ ॥

चातुर्मास्यानि भैषज्ययज्ञा वा एते यच्चातुर्मास्यानि तस्मादृतुसंधिषु प्रयुज्यन्त ऋतुसंधिषु हि व्याधिर्जायते । कौ० ५ । १ ॥

,, अथो भैषज्ययज्ञा वा एते यच्चातुर्मास्यानि । तस्मादृतु-

सन्धिषु प्रयुज्यन्त ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते । गो० उ० १ । १९ ॥

चातुर्मास्यानि विराजो वा एषा विक्रान्तिर्यच्चातुर्मास्यानि । तै० १ । ४ । ६ । ५ ॥

" स वा एष प्रजापतिश्चतुर्विंशो यच्चातुर्मास्यानि । गो० उ० १ । २६ ॥

" उत्सन्नयज्ञ इव वाऽ एष यच्चातुर्मास्यानि । श० २ । ५ । २ । ४८ ॥ २ । ६ । २ । १९ ॥

" चातुर्मास्यानि पञ्चहोतुः (निदानम्) । तै० २।२।११।६॥

" एवं चातुर्मास्यानि । गो० उ० १ । २६ ॥

" अक्षय्यꣳ ह वै सुकृतं चातुर्मास्ययाजिनो भवति । श० २ । ६ । ३ । १ ॥

" स परममेव स्थानं परमां गतिं गच्छति चातुर्मास्ययाजी। श० २ । ६ । ४ । ९ ॥

" देवानां वा एष आनीतो यश्चातुर्मास्ययाजी । तै० १ । ५ । ६ । ७ ॥

चात्वालः अग्निरेव यच्चात्वालः । श० ७।१।१।३६॥९।१।१।४२॥

" एष वाव स समुद्रः । यच्चात्वालः । तै० १ । ५ । १० । १ ॥

चिकित्वान (यजु० ११ । ३५) चिकित्वानिति विद्वानित्येतत् । श० ६ । ४ । २ । ६ ॥

चितिः यच्चेतयमाना अपश्यंस्तस्माच्चितयः । श० ६ । २ । २ । ९ ॥

" तद्यत्पञ्च चितीश्चिनोत्येताभिरेवैनं तत्तनूभिश्चिनोति यच्चिनोति तस्माच्चितयः । श० ६ । १ । २ । १७ ॥

" पञ्च ह्येते ऽग्नयो यदेताश्चितयः । श० ६ । २ । १ । १६ ॥

" पञ्च तन्वो व्यस्रꣳसन्त लोम त्वङ् माꣳसमस्थि मज्जा ता एवैताः पञ्च चितयः । श० ६ । १ । २ । १७॥

" ऋतवो ह्येते यदेताश्चितयः । श० ६ । २ । १ । ३६ ॥

" सप्तयोनीः (यजु० १७ । ७९) इति चितीरेतदाह । श० ९ । २ । ३ । ४४ ॥

चित्पतिः प्रजापतिर्वै चित्पतिः । श० ३ । १ । ३ । २२ ॥

चित्यः चेतव्यो ह्यासीत्तस्माच्चित्यः । श० ६ । १ । २ । १६ ॥

,, चेतव्यो ह्यस्य भवति तस्माद्वेव चित्यः । श० ६ । १ । २ । १६॥

चित्रम् सर्वाणि हि चित्राण्यग्निः । श० ७ । ४ । १ । २४ ॥

चित्रा (नक्षत्रम्) ते ह देवाः समेत्योचुः । चित्रं वाऽ अभूम यऽ इयतः सपत्नानवधिष्मेति तद्वै चित्रायै चित्रात्वं चित्रꣳ ह भवति हन्ति सपत्नान्हन्ति द्विषन्तं भ्रातृव्यं य एवं विद्वाँश्चित्रायामाधत्ते तस्मादेतत्क्षत्रिय एव नक्षत्रमुपेत्सेञ्जिघाꣳसतीव ह्येष सपत्नान्वीव जिगीषते । श० २ । १ । २ । १७ ॥

,, चित्रा शिरः (नक्षत्रियस्य प्रजापतेः) । तै० । १ । ५ । २ । २ ॥

,, इन्द्रस्य चित्रा ("इन्द्रः=त्वष्टा" इति सायणः—तै० १ । ५ । १ । ५ भाष्ये) । तै० १ । ५ । १ । ३ ॥

,, त्वष्टा नक्षत्रमभ्येति चित्राम् । तै० ३ । १ । १ । ६ ॥

,, चक्षुर्वा एतत्संवत्सरस्य यच्चित्रापूर्णमासः । तां० ५ । ६ । ११ ॥

चित्रावसुः रात्रिर्वै चित्रावसुः सा हीयꣳ संगृह्येव चित्राणि वसति । श० २ । ३ । ४ । २२ ॥

चूड यदु वाऽ अतिरिक्तं चूडः सः । श० ८ । ६ । १ । १४ ॥

चकितानः (यजु० १५।५१) " सत्पतिश्चेकितानः " इत्येतं शब्दं पश्यत॥

चैत्ररथो द्विरात्रः एतेन वै चित्ररथं कापेया अयाजयꣳस्तमेकाकिनमन्नाद्यस्याध्यक्षमकुर्वꣳस्तस्माच्चैत्ररथीनामेकः क्षत्रपतिर्जायते नुलम्ब इव द्वितीयः । तां० २० । १२ । ५ ॥

च्यवनः च्यवनो वै दाधीचो ऽश्विनोः प्रिय आसीत्सो ऽजीर्य्यत्तमेतेन (वीङ्केन) साम्नाप्सु व्यैङ्कयतान्तं पुनर्युवानमकुरुताम् । तां० १४ । ६ । १० ॥

,, सा (सुकन्या) होवाच । हे ऽश्विनौ) पतिं (च्यवनं) नु मे पुनर्युवाणं कुरुतम् । श० ४ । १ । ५ । ११ ॥

च्यावनम् (साम) एभ्यो वै लोकेभ्यो वृष्टिरपाक्रामत्तां प्रजापतिश्च्यावनेनाच्यावयद्यदच्यावयत्तच्च्यावनस्य च्यावनत्व-

ऽच्यावयति वृष्टिञ्च्यावनेन तुष्टुवानः। तां० १३।
५।१३॥

च्यावनम् (साम) प्रजापतिर्वै च्यावनं प्रजायते बहुर्भवति च्यावनेन
तुष्टुवानः। तां० १३।५।१२॥

" प्रजापतिर्वै च्यावनम्। तां० १६।३।६॥

(छ)

छदिश्छन्दः (यजु० १४। ६) अतिच्छन्दा वै छदिश्छन्दः सा हि
सर्वाणि छन्दांᳪसि छादयति। श० ८।२।४।५॥

" (यजु० १५।५) अन्तरिक्षं वै छदिश्छन्दः। श० ८।५।
२।६॥

छन्दस्यम् अर्धं वा एकञ्छन्दस्यमन्नᳪ ह्येकं भूतेभ्यश्छदयति। मं० २।
६।१३॥

छन्दांसि छन्दांसि छन्दयतीति वा। दे० ३।१६॥

" तान्यस्मै (प्रजापतये) अच्छदयंस्तानि यदस्माऽ अच्छ-
दयंस्तस्माच्छंदांᳪसि। श० ८।५।२।१॥

" (देवाः) तं (सोमं) छन्दोभिरसुवन्त तच्छन्दसां छन्द-
स्त्वम्। तै० २।२।८।७॥

" न वा एकेनाक्षरेण छन्दांसि वियंति न द्वाभ्याम्। ऐ० १।६॥
२।३७॥

" नाक्षराच्छन्दो व्येत्येकस्मान्न द्वाभ्यां न स्तोत्रियया स्तोमः।
श० १२।२।३।३॥

" न ह्येकेनाक्षरेणान्यच्छन्दो भवति नो द्वाभ्याम्। कौ० २७।१॥

" छन्दांᳪसि वाऽ अस्य सप्त धाम प्रियाणि (यजु० १७।
७६)। श० ६।२।३।४४॥

" सप्त वै छन्दांसि। कौ० १४।५॥१७।२॥

" सप्त छन्दांᳪसि। श० ९।५।२।८॥

" छन्दांᳪसि वै हारियोजनः (ग्रहः)। श० ४।४।३।२॥

" छन्दांᳪसि वै संवेश उपवेशः। तै० १।४।६।४॥

" छन्दांᳪसि वै व्रजो गोस्थानः। तै० ३।२।६।३॥

छंदांसि छन्दाꣳसि वै वाजिनः । गो० उ० १ । २० ॥ तै० १ । ६ । ३ । ९ ॥

" पशवो वै छन्दाꣳसि । श० ७ । ५ । २ । ४२ ॥ ८ । ३ । १ । १२ ॥

" पशवश्छन्दांसि । ऐ० ४ । २१ ॥ कौ० ११ । ५ ॥ तां० १९ । ५ । ११ ॥

" पशवो वै देवानां छन्दाꣳसि । श० ४ । ४ । ३ । १ ॥

" पशवो वै देवानां छन्दाꣳसि तद्यथेदं पशवो युक्ता मनुष्येभ्यो वहन्त्येवं छन्दाꣳसि युक्तानि देवेभ्यो यज्ञं वहन्ति । श० १ । ८ । २ । ८ ॥

" छन्दाꣳसि वै दिशः । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥ ९ । ५ । १ । ३९ ॥

" रसो वै छन्दाꣳसि । श० ७ । ३ । १ । ३७ ॥

" इन्द्रियं वीर्यं छन्दाꣳसि । तां० ६ । ९ । २६ ॥

" प्राणा वै छन्दांसि । कौ० ७ । ९ ॥ ११ । ८ ॥ १७ । २ ॥

" छन्दांसि वै दैवानि पवित्राणि । तां० ६ । ६ । ६ ॥

" छन्दाꣳसि देव्यः । श० ९ । ५ । १ । ३९ ॥

" छन्दांसि वै देविकाः । कौ० १९ । ७ ॥

" छन्दांसि वै साध्या देवास्ते ऽग्रे ऽग्निनाग्निमयजन्त ते स्वर्गं लोकमायन् । ऐ० १ । १६ ॥

" छन्दाꣳसि वै देवाः प्रातर्यावाणः । श० ३ । ९ । ३ । ८ ॥

" छन्दाꣳसि वै देवा वयोनाधाः (यजु० १४ । ७ ॥) छन्दोभिर्हीदꣳ सर्वं वयुनं नद्धम् । श० ८ । २ । २ । ८ ॥

" छन्दाꣳसि वै व्राश्छन्दोभिर्हि स्वर्गं लोकं गच्छन्ति । श० ६ । ५ । ४ । ७ ॥

" देवा वै छन्दाꣳस्यब्रुवन् युष्माभिः स्वर्गं लोकमयामेति । तां० ७ । ४ । २ ॥

" सर्वैर्वै छन्दोभिरिष्ट्वा देवाः स्वर्गं लोकमजयन् । ऐ० १ । ९ ॥

" यातयामानि वै देवैश्छन्दाꣳसि छन्दोभिर्हि देवाः स्वर्गं लोकꣳ समाश्नुवत । श० ३ । ९ । ३ । १० ॥

छंदांसि छन्दोभिर्वै देवा आदित्यꣳ स्वर्गं लोकमहरन्। तां० १२। १०। ६॥

" छन्दोभिर्हि स्वर्गं लोकं गच्छन्ति। श० ६।५।४।७॥

" प्राजापतेर्वा एतान्यंगानि यच्छन्दांसि। ऐ० २।१८॥

" यानि क्षुद्राणि छन्दाꣳसि तानि मरुताम्। तां० १०। १।३॥

" एकाक्षरं वै देवानामवमं छन्द आसीत्सप्ताक्षरं परममन्नवाक्षरमसुराणामवमं छन्द आसीत् पञ्चदशाक्षरं परमम्। तां० १२।१३।२७॥

" छन्दाꣳसि समिद्धानि देवेभ्यो यज्ञं वहन्ति। श० १।३। ४।६॥

" हिरण्ययीमिति हिरण्मयी ह्येषा या छन्दोमयी। श०६।३। १।४१॥

" हिरण्यममृतानि छन्दाꣳसि। श० ६।३।१।४२॥

" छन्दाꣳसि वै लोमानि। श० ६।४।१।६॥ ६।७।१। ६॥ ६।३।४।१०॥

" बृहती वाव छन्दसां स्वराट्। तां० १०।३।८॥

" स्वाराज्यं छन्दसां बृहती। तां० २४।६।३॥

" श्रीर्वै यशश्छन्दसां बृहती। ऐ० १।५॥

" छन्दांसि सावित्री। गो० पू० १।३३॥ जै० उ० ४।२७।७॥

" पञ्चच्छन्दांसि रात्रौ शंसत्यनुष्टुभं गायत्रीमुष्णिहं त्रिष्टुभं जगतीमित्येतानि वै रात्रिच्छन्दांसि। कौ० ३०।११॥

छन्दोमाः (स्तोमविशेषाः) तद्यच्छन्दोभिर्मितास्तस्माच्छन्दोमाः। कौ० २६।७॥

" अस्तोमा वा एते य छन्दोमाः। तां० ३।६।३॥

" पशवो हि छन्दोमाः। तां० १०।१।२१॥

" पशवश्छन्दोमाः। ऐ० ५।१६, १७, १८, १९॥ तां० १४।७।६॥

" पशवो वै छन्दोमाः। कौ० २६, ६, १२, १६, १७॥ तां० ३।८।२॥

छन्दोमाः (स्तोमविशेषाः) तान् (छन्दोमान्) उ पुष्टिरित्याहुः । तां० १० । १ । २१ ॥

„ अभ्याघात्यसामानो हि छन्दोमाः । तां० १४ । ६ । ३० ॥

„ किंछन्दसश्छन्दोमा इति पुरुषश्छन्दस इति ब्रूयात् । तां० १४ । ५ । २६ ॥ १४ । ११ । ३५ ॥ १५ । ५ । ३२ ॥

„ किंछन्दसश्छन्दोमा इत्येतच्छन्दसो यदेता अक्षरपङ्क्तय इति ब्रूयात् । तां० १४ । ११ । ५ ॥ १५ । ५ । ५ ॥

„ तम इव वा एतान्यहानि यच्छन्दोमास्तेभ्य एतेन (भासेन) साम्ना विवासयति । तां० १४ । ११ । १५ ॥

„ नाथविन्दून्येतान्यहानि यत् छन्दोमा नाथमेवैतैर्विन्दते । तां० १४ । ११ । २३ ॥

„ उग्रगाधमिव वा एतद्यच्छन्दोमास्तद्यथाद उग्रगाधे व्यतिषज्य गाहन्त एवमेवैतद्रूपे व्यतिषजति छन्दोमानामसंव्याथाय । तां० १४ । ८ । ४, ८ ॥ १५ । २ । ६, ९ ॥

„ छन्दांस्येव छन्दोमानामायतनम् । तां० १० । १ । १९ ॥

„ अथ यच्छन्दोमानुपयन्ति । इमानेव लोकान्देवता यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । १९ ॥

„ अयं (भू-)लोकः प्रथमश्छन्दोमो ऽन्तरिक्षलोको द्वितीयो ऽसौ (द्यु-)लोक उत्तमः । कौ० २६ । ११ ॥

छाया मृत्युर्वै तमश्छाया । ऐ० ७ । १२ ॥

(ज)

जगत् सर्वं वाऽ इदमात्मा जगत् । श० ४ । ५ । ६ । ८ ॥

जगती (छन्दः) जगती गततमं छन्दोजज्जगतिर्भवति क्षिप्रगतिर्जज्मला कुर्वन्नसृजतेति हि ब्राह्मणम् । दै० ३ । १७ ॥

" तदिदꣳ सर्वं जगदस्यां तेनेयं जगती । श० १ । ८ । २ । ११ ॥

" इयं (पृथिवी) वै जगत्यस्याꣳ हीदꣳ सर्वं जगत् । श० ६ । २ । १ । २९ ॥ ६ । २ । २ । ३२ ॥

" इयं (पृथिवी) वै जगती । श० १२ । ८ । २ । २० ॥

" जगती हीयम् (पृथिवी) । श० २ । २ । १ । २० ॥

" या सिनीवाली सा जगती । ऐ० ३ । ४७ ॥

" या गौः सा सिनीवाली सो एव जगती । ऐ० ३ । ४८ ॥

" ब्रह्म ह वै जगती । गो० उ० ५ । ५ ॥

" (यजु० १ । २१) जगत्य ओषधयः । श० १ । २ । २ । २ ॥

" पशवो वै जगती । गो० उ० ५ । ५ ।

" पशवो जगती । कौ० १६ । २ ॥ १७ । २, ६ ॥ १६ । ६ ॥ ष० २ । १ ॥ श० ३ । ४ । १ । १३ ॥ ८ । ३ । ३ । ३ ॥ तै० ३ । २ । ८ । २ ॥

" जागता वै पशवः । ऐ० १ । ५, २१, २८ ॥ ३ । १८ ॥ ४ । ३ ॥ ५ । ६ ॥

" जागताः पशवः । कौ० ३० । २ ॥ ष० ३ । ७ ॥ गो० उ० ४ । १६ ॥

" जगती वै छन्दसां परमं पोषं पुष्टा । तां० २१ । १० । ६ ॥

" जागतो ऽश्वः प्राजापत्यः । तै० ३ । ८ । ८ । ४ ॥

" जागतो वै वैश्यः । ऐ० १ । २८ ॥

" जगतीछन्दा वै वैश्यः । तै० १ । १ । ६ । ७ ॥

" ता वा एता जगत्यो यद् द्वादशाक्षराणि पदानि । तां० १६ । ११ । १० ॥

" यस्य द्वादश ता जगतीम् । कौ० ६ । २ ॥

जगती (छन्दः) द्वादशाक्षरपदा जगती । प० २ । १ ॥

,, द्वादशाक्षरा जगती । तां० ६ । ३ । १३ ॥

,, द्वादशाक्षरा वै जगती । ऐ० ३ । १२ ॥ गो० उ० ३ । १० ॥ तै० ३ । ८ । १२ । २ ॥ श० ४ । १ । १ । १२ ॥ ६ । २ । १ । २६ ॥

,, अष्टाचत्वारिँशदक्षरा वै जगती । श० ६ । २ । २ । ३३ ॥

,, अष्टाचत्वारिँशदक्षरा जगती । तै० ३ । ८ । ८ । ४ ॥ जै० उ० ४ । २ । ८ ॥

,, जगती सर्वाणि छन्दाँसि । श० ६ । २ । १ । ३० ॥

,, जगती प्रतीची (दिक्) । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥

,, प्रतीचीमारोह । जगती त्वावतु वैरूपँ साम सप्तदशस्तोमो वर्षा ऋतुर्विड् द्रविणम् । श० ५ । ४ । १ । ५ ॥

,, आदित्यास्त्वा पश्चादभिषिञ्चन्तु जागतेन छन्दसा । तै० २ । ७ । १५ । ५ ॥

,, आदित्या जगतीं समभरन् । जै० उ० १ । १८ । ६ ॥

,, जगत्यादित्यानां पत्नी । गो० उ० २ । ६ ॥

,, असौ जगती । जै० उ० १ । ५५ । ३ ॥

,, जागतो ऽसौ (द्यु-)लोकः । कौ० ८ । ६ ॥

,, साम्नामादित्यो देवतं तदेव ज्योतिर्जागतंच्छन्दो द्यौः स्थानम् । गो० पू० १ । २६ ॥

,, जागते ऽमुष्मिँल्लोके जागतो ऽसावादित्यो ऽध्यूढः । कौ० १४ । ३ ॥

,, जागतो वा एष य एष (सूर्यः) तपति । कौ० २५ । ४, ७ ॥

,, त्रैष्टुब्जागतो वा आदित्यः । तां० ४ । ६ । २३ ॥

,, जगती छन्द आदित्यो देवता श्रोणी । श० १० । ३ । २ । ६ ॥

,, श्रोणी जगत्यः । श० ८ । ६ । २ । ८ ॥

जगती (छन्दः) अनूकं जगत्यः । श० ८ । ६ । २ । ३ ॥
,, यो ऽयमवाङ् प्राण एष जगती । श० १० । ३ । १ । १ ॥
,, गवाशीर्ज्जगती । तां० १२ । १ । २ ॥
,, मध्यं जगती । ष० २ । ३ ॥
,, बलं वै वीर्य्यं जगती । कौ० ११ । २ ॥
,, बलं वीर्य्यमुपरिष्टाज्जगती । कौ० ११ । २ ॥
,, रैभ्या जगती (अपुनीत) । जै० उ० १ । ५७ । १ ॥
,, जागतं श्रोत्रम् । तां० २० । १६ । ५ ॥
,, जागतमु वै तृतीयसवनम् । गो० उ० २ । २२ ॥
,, जागतं वै तृतीयसवनम् । ऐ० ६ । २, १२ ॥
,, जागतं हि तृतीयसवनम् । कौ० १६ । १ ॥ ष० १ । ४ ॥ तां० ६ । ३ । ११ ॥ गो० उ० ४ । १८ ॥
,, जागता वै ग्रावाणः । कौ० २९ । १ ॥
,, जगत्येव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

जठरम् (यजु० १२ । ४७) मध्यं वै जठरम् । श० ७ । १ । १ । २२ ॥

जनकल्पाः प्रजा वै जनकल्पाः । ऐ० ६ । ३२ ॥

जनको वैदेहः जनको ह वैदेहः । अहोरात्रैः समाजगाम । तै० ३ । १० । ९ । ९ ॥

जनत् तमाङ्गिरसं वेदमभ्यश्राम्यदभ्यतपत्समतपत्तस्माच्छ्रान्तात्तप्तात्संतप्ताज्जनदिति छैतमक्षरं व्यभवत् । गो० पू० १ । ८ ॥
,, जनवित्यङ्गिरसाम (शुक्रम्) । गो० पू० २ । २४ ॥

जनिः (यजु० ११ । ६१) नक्षत्राणि वै जनयो ये हि जनाः पुण्यकृतः स्वर्गं लोकं यन्ति तेषामेतानि ज्योतींꣳषि । श० ६ । ५ । ४ । ८ ॥
,, (यजु० १२ । ३५) आपो वै जनयो ऽद्भ्यो हीदꣳ सर्वं जायते । श० ६ । ८ । २ । ३ ॥

जनित्रम् (यजु० १४ । २४) विड् वै जनित्रम् । श० ८ । ४ । २ । ५ ॥
,, वसिष्ठो वा एते (जनित्रे) पुत्रहतः सामनी अपश्यत् स प्रजया पशुभिः प्राजायत । तां० १९ । ३ । ८ ॥

जनित्रम् (साम) वसिष्ठस्य जनित्रं प्रजाकामाय ब्रह्मसाम कुर्य्यात् । तां० ८ । २ । ३ ॥

जन्तवः (यजु० १२ । १०६) मनुष्या वै जन्तवः । श० ७ । ३ । १ । ३२॥

जन्यानि (ऋ० ४ । ५० । ७) सपत्ना वै द्विषन्तो भ्रातृव्या जन्यानि । ऐ० ८ । २६ ॥

जपः ब्रह्म वै जपः । कौ० ३ । ७ ॥

जमदग्निः (यजु० १३ । ५६) चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिर्यदेनेन जगत्पश्य-त्यथो मनुते तस्माच्चक्षुर्जमदग्निर्ऋषिः । श० ८ । १ । २ । ३ ॥

,, प्रजापतिर्वै जमदग्निः । श० १३ । २ । २ । १४ ॥

जराबोधीयम् (साम) जराबोधीयं भवत्यन्नाद्यस्यावरुध्यै । तां० १४ । ५ । २७ ॥

,, अन्नं वै जराबोधीयम् । तां० १४ । ५ । २८ ॥

जरायु शणा जरायु । श० ६ । ६ । २ । १५ ॥

जरिता (ऋ० ४ । १७ । २०) यजमानो जरिता । ऐ० ३ । ३८ ॥

जर्तिलाः उभयम्वेतदन्नं यज्जर्तिला यच्च ग्राम्यं यच्चारण्यं यदह तिला-स्तेन ग्राम्यं यदकृष्टे पच्यन्ते तेनारण्यम् । श० ९ । १ । १ । ३ ॥

जर्भुराणः (यजु० ११ । २४) नाभिमृशे तन्वा जर्भुराण इति न ह्येषो (अग्निः) ऽभिमृशे तन्वा दीप्यमानो भवति । श० ६ । ३ । ३ । २० ॥

जवः वीर्यं वै जवः । श० १३ । ४ । २ । ३ ॥

जह्नुः जह्नवृचीवन्तो (='जह्नोः पुत्रा ऋचीवन्नामकाः' इति सायणः) आर्हिसन्त स विश्वामित्रो जाह्नवो राजैतम् (चतूरात्रम्) अपश्यत् स राष्ट्रमभवद्राष्ट्रमितरे । तां० २१ । १२ । २ ॥

,, अधीयत देवरातो रिक्थयोरुभयोर्ऋषिः । जह्नूनां चाऽऽधि-पत्ये दैवे वेदे च गाथिनाम् । ऐ० ७ । १८ ॥

जागरितम् ज्योतिर्वै जागरितम् । कौ० १७ । ९ ॥

जातः कुमारः यथा कुमाराय वा जाताय वत्साय वा स्तनमपिदध्यात् । श० २ । २ । १ । १ ॥

जातवेदस्याः (ऋचः) स्वस्त्ययनं वै जातवेदस्याः । ऐ० ४ । ३० ॥

जातवेदाः सो ऽब्रवीज्जाता वै प्रजा अनेनाविदमिति यदब्रवीज्जाता वै प्रजा अनेनाविदमिति तज्जातवेदस्यमभवत्तज्जातवेदसो जातवेदस्त्वम् । ऐ० ३ । ३६ ॥

" प्राणो वै जातवेदाः स हि जातानां वेद । ऐ० २ । ३९ ॥

" तद्यज्जातं जातं विन्दते तस्माज्जातवेदाः । श० ९ । ५ । १ । ६८ ॥

" वायुर्वै जातवेदा वायुर्हीदं सर्वं करोति यदिदं किंच । ऐ० २ । ३४ ॥

जामदग्न्यः (ऋचः) सर्वरूपा वै जामदग्न्यः सर्वसमृद्धाः । ऐ० ४ । २६ ॥

जायमानः शीर्षतो वै मुखतो जायमानो जायते । श० ६ । ५ । २ । २ ॥

जाया पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वा स मातरं तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः । ऐ० ७ । १३ ॥

" तद्यदब्रवीत् (ब्रह्म) आभिर्वा अहमिदं सर्वं जनयिष्यामि यदिदं किञ्चेति तस्माज्जाया अभवंस्तज्जायानां जायात्वं यच्चासु पुरुषो जायते । गो० पू० १ । २ ॥

" अर्धो ह वा ऽ एष आत्मनो यज्जाया तस्माद्यावज्जायां न विन्दते नैव तावत्प्रजायते ऽसर्वो हि तावद् भवत्यथ यदैव जायां विन्दते ऽथ प्रजायते, तर्हि हि सर्वो भवति सर्वं एतां गतिं गच्छानीति तस्माज्जायामामन्त्रयते । श० ५ । २ । १ । १० ॥

" य एवं वेद, अभि द्वितीयां जायामश्नुते । तै० १ । ३ । १० । ३॥

" तस्मादेकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति न हैकस्या बहवः सहपतयः। गो० उ० ३ । २० ॥

" तस्मादेकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति नैकस्यै बहवः सहपतयः । ऐ० ३ । २३ ॥

" तस्मादप्येकस्य पुंसो बह्व्यो जाया भवन्ति। श० ९ । ४ । १ । ६ ॥

" तस्मादपि स्वया जायया तिर इवैव चिचरिषति । श० ६ । ४ । ४ । १९ ॥

जाया तस्माज्जायाया अन्ते नाश्नीयाद्वीर्यवान्हास्माज्जायते वीर्यवन्तमु ह सा जनयति यस्या अन्ते नाश्नाति । श० १० । ५ । २ । ६ ॥

,, जाया गार्हपत्यः (अग्निः) । ऐ० ८ । २४ ॥

जितम् अन्तो वै जितम् । ऐ० ५ । १२, २१ ॥

जिन्व (यजु० १६ । ३३) (=प्रीणीहि) जिन्व यजमानं मदेनेति तेन प्रीणीहि यजमानं मदेनेत्येवैतदाह । श० १२ । ८ । १ । ४ ॥

जिह्वा जिह्वा सरस्वती । श० १२ । ६ । १ । १४ ॥

,, जिह्वेव शम्या । श० १ । २ । १ । १७ ॥

जीमूतः (प्रजापतिः) जीमूतान् प्रस्तावम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १३ । १ ॥

जुम्बकः वरुणो वै जुम्बकः । श० १३ । ३ । ६ । ५ ॥ तै० ३ । ६ । १५ । ३ ॥

जुषाणः ब्रह्म वै जुषाणः । कौ० ३ । ५ ॥

जुहूः असौ (द्यौः) वै जुहूः । तै० ३ । ३ । १ । १ ॥ ३ । ३ । ६ । ११ ॥

,, तस्यासावेव द्यौर्जुहूः । श० १ । ३ । २ । ४ ॥

,, यजमानदेवत्या वै जुहूः । तै० ३ । ३ । ५ । ४ ॥ ३ । ३ । ७ । ६ ॥ ३ । ३ । ९ । ७ ॥

,, अत्तैव जुहूराद्य उपभृत् । श० १ । ३ । २ । ११ ॥

,, क्षत्रं वै जुहूर्विश इतराः स्रुचः । श० १ । ३ । ४ । १५ ॥

,, जुहूर्दक्षिणो हस्तः । तै० ३ । ३ । १ । ५ ॥

,, आग्नेयी वै जुहूः । तै० ३ । ३ । ७ । ६ ॥

जूः (यजु० ४ । १७) जूरसीत्येतद्ध वा अस्याः (वाचः) एकं नाम । श० ३ । २ । ४ । ११ ॥

ज्येष्ठघ्नी (ज्येष्ठानक्षत्रम्) ज्येष्ठमेषामवधिष्मेति । तज्ज्येष्ठघ्नी । तै० १ । ५ । २ । ८ ॥

ज्येष्ठा (नक्षत्रम्) इन्द्रो ज्येष्ठामनु नक्षत्रमेति । तै० ३ । १ । २ । १ ॥

ज्योतिः (यजु० १८ । ४०) अयमग्निर्ज्योतिः । श० ६ । ४ । २ । २२ ॥

,, अस्य (अग्नेः) एवैतानि (धर्मः, अर्कः,

शुक्रः, ज्योतिः, सूर्यः) नामानि । श० ६।
४ । २ । २५ ॥

ज्योतिः (यजु०१८ । ५०) सुवर्गो वै लोको ज्योतिः । तै० १ । २ ।
२ । २ ॥

" अयमेव (भूलोकः) ज्योतिः । तां० ४ । १ । ७॥

" अयं वै (पृथिवी-) लोको ज्योतिः । ऐ०
४ । १५ ॥

" इयं (पृथिवी) वै ज्योतिः । तां० १६ । १ । ७॥

" ज्योतिरेष य एष (सूर्यः) तपति । कौ०
२५ । ३, ६ ॥

" असौ (सूर्यः) याव ज्योतिस्तेन सूर्यं
नातिशंसति । ऐ० ४ । १०, १५ ॥

" अहर्ज्योतिः । श० १० । २ । ६ । १६ ॥

" ज्योतिर्हिरण्यम् । गो० पू० २ । २१ ॥

" ज्योतिर्हि हिरण्यम् । श० ४ । ३ । ४ । २१॥

" ज्योतिर्वै हिरण्यम् । तां० ६ । ६ । १० ॥
१८ । ७ । ८ ॥ तै० १ । ४ । ४ । १ ॥ श०
६ । ७ । १ । २ ॥ ७ । ४ । १ । १५ ॥ गो०
उ० ५ । ८ ॥

" ज्योतिर्वै शुक्रं हिरण्यम् । ऐ० ७ । १२ ॥

" सं ज्योतिषाभूमेति सं देवैरभूमेत्येवैतदाह ।
श० १ । ६ । ३ । १४ ॥

" ज्योतिरमृतम् । श० १४ । ४ । १ । ३२ ॥

" (यजु० १४ । १७) प्राणो वै ज्योतिः । श०
८ । ३ । २ । १४ ॥

ज्योतिष्टोमः अथ यदेनमूर्ध्वं संतं ज्योतिर्भूतमस्तुवंस्तस्माज्ज्योतिः-
स्तोमस्तं ज्योतिःस्तोमं संतं ज्योतिष्टोममित्याचक्षते ।
ऐ० ३ । ४३ ॥

" किञ्ज्योतिष्टोमस्य ज्योतिष्टोमत्वमित्याहुर्विराजꣳ सꣳ-
स्तुवः सम्पद्यते विराड् वै छन्दसां ज्योतिः । तां०६।३।६॥

ज्योतिष्टोमः यद्वै तज्ज्योतिरभवत्तत् ज्योतिषो ज्योतिष्ट्वम् (ज्योतिः= ज्योतिष्टोमः) । तां० १६ । १ । १ ॥

,, तस्माद्यो विराजꣳ स्तोमः सम्पद्यते तं ज्योतिष्टोमोऽग्निष्टोम इत्याचक्षते । तां० १० । २ । २ ॥

,, एष वाव प्रथमो यज्ञानां य एतेनानिष्ट्वाथान्येन यजते कर्त्तपत्मेव तज्जीयते वा प्र वा मीयते । तां० १६ । १ । २॥

,, स्वर्ग्या वा एते स्तोमा यत् ज्योतिर्भवति (ज्योतिः= ज्योतिष्टोमः) ज्योतिरेवास्मै (यजमानाय) स पुरस्ताद्धरति । तां० १६ । ३ । ७ ॥

ज्योतिष्मन्तः पन्थानः देवयाना वै ज्योतिष्मन्तः पन्थानः । ऐ० ३ । ३८ ॥

(त)

तण्डुलाः वसूनां वा एतद्रूपम् । यत्तण्डुलाः । तै० ३ । ८ । १४ । ३ ॥

ततुरिः उपहूतेडा ततुरिरिति । तदेनां प्रत्यक्षमुपह्वयते ततुरिरिति सर्वꣳ ह्येषा पाप्मानं तरति तस्मादाह ततुरिरिति । श० १ । ८ । १ । २२ ॥

तथा तथेति वायुः पवते । जै० उ० ३ । ६ । २ ॥

तनूः (यजु० १२ । १०५ ॥ १३ । ४७ ॥) आत्मा वै तनूः । श० ६ । ७ । २ । ६ ॥ ७ । ३ । १ । २३ ॥ ७ । ५ । २ । ३२ ॥

तनूनपाच्छाक्करः यो वाऽ अयं (वायुः) पवते एष तनूनपाच्छाक्करः सोऽयं प्रजानामुपद्रष्टा प्रविष्टस्ताविमौ प्राणोदानौ । श० ३ । ४ । २ । ५ ॥

तनूनपात् प्राणो वै तनूनपात् स हि तन्वः पाति । ऐ० २ । ४ ॥

,, ग्रीष्मो वै तनूनपाद् ग्रीष्मो ह्यासां प्रजानां तनूस्तपति । श० १ । ५ । ३ । १० ॥

,, तनूनपातं यजति ग्रीष्ममेव ग्रीष्मो हि तन्वं तपति । कौ० ३ । ४ ॥

,, रेतो वै तनूनपात् । श० १ । ५ । ४ । २ ॥

तनूनप्ता शाक्करः यो वाऽ अयं (वायुः) पवतऽ एष तनूनप्ता शाक्करः । श० ३ । ४ । २ । ११ ॥

तन्तुः प्रजा वै तन्तुः । ऐ० ३ । ११, ३८ ॥

तन्त्रायी (यजु० ३८ । १२) एष वै तन्त्रायी य एष (सूर्यः) तपत्येष हीमाँल्लोकांस्तन्त्रमिवानुसंचरति । श० १४ । २ । २ । २२ ॥

तन्द्रं छन्दः (यजु० १४ । ९ ॥ १५ । ५) पंक्तिर्वै तन्द्रं छन्दः । श० ८ । २ । ४ । ३ ॥ ८ । ५ । २ । ६ ॥

तपः असौ वाऽ आदित्यस्तपः । श० ८ । ७ । १ । ५ ॥

„ तपः स्विष्टकृत् । श० ११ । २ । ७ । १८ ॥

„ तपो वाऽ अग्निः । श० ३ । ४ । ३ । २ ॥

„ तपो मे तेजो मे ऽन्नम्मे वाङ् मे । तन्मे त्वयि (अग्नौ) । जै० उ० ३ । २० । १६ ॥

„ तेजो ऽसि तपसि श्रितम् । समुद्रस्य प्रतिष्ठा । तै० ३।११।१।३॥

„ ब्रह्म तपसि (प्रतिष्ठितम्) । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥

„ तपो ऽसि लोके श्रितम् । तेजसः प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । २ ॥

„ तप आसीद् गृहपतिः । तै० ३ । १२ । ९ । ३ ॥

„ एतद्वै तपो यो दीक्षित्वा पयोव्रतोऽसत् । श० ६ । ५ । १ । ८ ॥

„ तपो दीक्षा । श० ३ । ४ । ३ । २ ॥

„ अमाꣳसाश्यनुब्रूते तपस्व्यनुब्रवाऽ इति श० १४ । १ । १ । २६ ॥

„ तस्मात्तप्यमानस्य भूयसी कीर्त्तिर्भवति भूयो यशः । जै० उ० २ । १ । १३ ॥

„ तपसा वै लोकं जयन्ति । श० ३ । ४ । ४ । २७ ॥

तपः, तपस्यः (मासौ) एतौ (तपश्च तपस्यश्च) एव शौशिरौ (मासौ) स यदेतयोर्बलिष्ठं श्यायति तेनो हैतौ तपश्च तपस्यश्च । श० ४ । ३ । १ । १९ ॥

तपो नवदशः (यजुः १४ । २३) संवत्सरो वाव तपो नवदशस्तस्य द्वादश मासाः षड्तवः संवत्सर एव तपो नवदशस्तद्यत्तमाह तप इति संवत्सरो हि सर्वाणि तपति । श० ८ । ४ । १ । १४ ॥

तमः कृष्णमिव हि तमः । तां० ६ । ६ । १० ॥

तमः कृष्णं वै तमः । श० ५ । ३ । २ । २ ॥
,, मृत्युर्वै तमः । श० १४ । ४ । १ । ३२ ॥ गो० उ० ५ । १ ॥
,, मृत्युर्वै तमश्छाया । ऐ० ७ । १२ ॥
,, पाप्मा वै तमः । श० १२ । ६ । २ । ८ ॥
तरः स्तोमो वै तरः । तां० ११ । ४ । ५ ॥ १५ । १० । ४ ॥
,, स्तोमो वै देवेषु तरो नामासीत् । तां० ८ । ३ । ३ ॥
तरुता (ऋ० १० । १७८ । १) एष (तार्क्ष्यः=वायुः) वै तरुतावांस्तरुतैष हीमाँल्लोकान्सद्यस्तरति । ऐ० ४ । २० ॥
तल्पः मानवो वै तल्पः । तै० २ । २ । ५ । ३ ॥
तानूनप्त्रम् ते यद्वरुणस्य राज्ञो गृहे तनूः सन्न्यदधत तत्तानूनप्त्रमभवत्तत्तानूनप्त्रस्य तानूनप्त्रत्वम् । ऐ० १ । २४ ॥
,, यत्तन्वः समवाद्यन्त तत्तानूनप्त्रस्य तानूनप्त्रत्वम् । गो० उ० २ । २ ॥
तारकम् सलिलं वा इदमन्तः (=अन्तरिक्षे) आसीत् । यदतरन् तत्तारकाणां तारकत्वम् । तै० १ । ५ । २ । ५ ॥
तार्क्ष्यः वायुर्वै तार्क्ष्यः । कौ० ३० । ५ ॥
,, अयं वै तार्क्ष्यो योऽयं (वायुः) पवते, एष स्वर्गस्य लोकस्याभिवोढा । ऐ० ४ । २० ॥
,, (यजु० १५ । १८) तस्य (यज्ञस्य) तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्याविति शारदौ तावृतू । श० ८ । ६ । १ । १६ ॥
,, तार्क्ष्यो वैपश्यतो राजेत्याह तस्य वयांᳪसि विशः......पुराणं वेद । श० १३ । ४ । ३ । १३ ॥
,, स्वस्त्ययनं वै तार्क्ष्यः (=तार्क्ष्यदेवताकमंत्रः) । ऐ० ४ । २६ ॥
तार्प्यम् यज्ञो वै तार्प्यम् । तै० १ । ३ । ७ । १ ॥ ३ । ६ । २० । १ ॥
,, अस्य वै (भू-) लोकस्य रूपं तार्प्यम् । तै० ३ । ६ । २० । २ ॥
तित्तिरिः अथ यदन्यस्मा अशनाय (विश्वरूपस्य मुखम्) आस । ततस्तित्तिरिः समभवत्तस्मात्स विश्वरूपतम इव, सन्त्येव घृतस्तोका इव त्वन्मधुस्तोका इव त्वत्पर्णेष्वाश्चुतिता एवᳪरूपमिव हि स तेन (मुखेन) अशनमावयत् । श० १ । ६ । ३ । ५ ॥ ५ । ५ । ४ । ६ ॥

तिथिः यां पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सा तिथिः (? स्थितिः—" यां पर्यस्तमयमुत्सर्पेदिति सा स्थितिः" इति कौ० ३।१)। ऐ० ७।११॥

तिष्यः (नक्षत्रम्) बृहस्पतेस्तिष्यः। तै० १।५।१।२॥ ३।१।१।५॥

" स (बृहस्पतिः) एतं बृहस्पतये तिष्याय नैवारं चरुं पयसि निरवपत्। तै० ३।१।४।६॥

तिस्रो देव्यः प्राणो वा अपानो व्यानस्तिस्रो देव्यः। ऐ० २।४॥

तीव्रसोमः (एकाहः) छिद्र इव वा एष यं सोमो ऽतिपवते यत्तीव्रसोमेन यजते पिहित्या एवाच्छिद्रतायै। तां० १८।५।४॥

" विड् वा एतमतिपवते यो राजावरुध्यते यत्तीव्रसोमेन यजते पिहित्या एवाच्छिद्रतायै। तां० १८।५।६॥

" ग्रामो वा एतमतिपवते यो ऽलं ग्रामाय सन् ग्रामन्न विन्दते यत्तीव्रसोमेन यजते पिहित्या एवाच्छिद्रतायै। तां० १८।५।८॥

" प्रजा वा एतमतिपवते यो ऽलं प्रजायाः सन् प्रजान्न विन्दते यत्तीव्रसोमेन यजते पिहित्या एवाच्छिद्रतायै। तां० १८।५।९॥

" पशवो वा एतमतिपवन्ते यो ऽलं पशुभ्यः सन् पशून्न विन्दते यत्तीव्रसोमेन यजते पिहित्या एवाच्छिद्रतायै। तां० १८।५।१०॥

" आमयाविनं याजयेत् प्राणा वा एतमतिपवन्ते य आमयावी यत्तीव्रसोमेन यजते पिहित्या एवाच्छिद्रतायै। तां० १८।५।११॥

तीर्थम् तीर्थेन हि प्रतरन्ति तद्यथा समुद्रं तीर्थेन प्रतरेयुः। गो० पू० ५।२॥

" तद्यत्प्रायणीयमतिरात्रमुपयन्ति यथा तीर्थेन समुद्रं प्रस्नायुस्तादृक्तत्। श० १२।२।१।१॥

तुथः ब्रह्म वै तुथः। श० ४।३।४।१५॥

तुरायणयज्ञः स एष स्वर्गकामस्य यज्ञः। कौ० ४।११॥

तुरीयम् यद्वै चतुर्थं तत्तुरीयम् । श० ४ । १ । ३ । १४ ॥ ५ । २ । ४ । १३ ॥ १४ । ८ । १५ । ४ ॥

तुला तुलायाᳬं ह वाऽ अमुष्मिँल्लोकऽ आदधति यतरद्यंस्यति तदन्वेष्यति यदि साधु वासाधु वेति । श० ११ । २ । ७ । ३३ ॥

तूर्णिः सर्वᳬं ह्येष पाप्मानं तरति तस्मादाह तूर्णिर्हव्यवाडिति । श० १ । ४ । २ । १२ ॥

„ वायुर्वै तूर्णिर्वायुर्हीदं सर्वं सद्यस्तरति यदिदं किंच । ऐ० २ । ३४ ॥

तूर्तम् यद्वै क्षिप्रं तत्तूर्तम् । श० ६ । ३ । २ । २ ॥

तूष्णींशंसः मूलं वा एतद्यज्ञस्य यत्तूष्णींशंसः । ऐ० २ । ३२ ॥

„ चक्षुर्वा एतद्यज्ञस्य यत्तूष्णींशंसः । ऐ० २ । ३२ ॥

„ चक्षूंषि वा एतानि सवनानां यत्तूष्णींशंसः । ऐ० २ । ३२ ॥

„ तूष्णींसारो वा एष यत्तूष्णींशंसः । ऐ० २ । ३१ ॥

तृचः अन्तरिक्षदेवत्यस्तृचो भवति । तां० १२ । १ । ८ ॥

„ इमे हि लोकास्तृचः । तां० २ । १ । ४ ॥ २ । २ । २ ॥ २ । ३ । ५ ॥

तृतीयं रजः (यजु० १२ । २०) द्यौर्वै तृतीयᳬं रजः । श० ६ । ७ । ४ । ५ ॥

तृतीयमहः उद्वद्वा एतदहर्यत्तृतीयम् । तां० १२ । ३ । २ ॥

„ उद्वद्वा एतत् त्रिवदहर्यत् तृतीयम् । तां० १२ । ५ । २ ॥

„ बहुदेवत्यं तृतीयमहः । कौ० २० । ४ ॥

„ अन्तरिक्षदेवत्यमेतदहर्यत्तृतीयम् । तां० १२ । १ । ८ ॥ १२ । २ । ७ ॥ १२ । ३ । १६ ॥ १२ । ५ । ८ ॥

„ जागतमेतदहर्यत्तृतीयम् । तां० १२ । ७ । ३ ॥

„ उद्वतमिव वै तृतीयमहः । तां० १२ । ४ । ४ ॥

„ अन्तो वै तृतीयमहः । तां० । १२ । ५ । ४ ॥

„ अन्तस्तृतीयमहः । कौ० २२ । ५, ६ ॥

तृतीयसवनम् मद्वद्धि तृतीयसवनम् । कौ० १६ । १, २, ३, ४ ॥ गो० उ० ४ । १६, १७ ॥

„ मद्वद्वै तृतीयसवनम् । ऐ० ४ । ४ ॥

तृतीयसवनम् मद्वद्धै तृतीयसवनस्य रूपम् । ऐ० ३ । २९ ॥
„ मद्वद् वै रसवत्तृतीयसवनम् । तां० ११ । ५ । १ ॥ ११ । १० । २ ॥ १२ । ६ । ३ ॥
„ अथैतन्निर्धीतशुक्रं यत्तृतीयसवनम् । श० ४ । ३ । ३ । १९ ॥ ४ । ३ । ५ । १७ ॥
„ धीतरसं वै तृतीयसवनम् । ऐ० ६ । १२ ॥
„ धीतरसं वा एतत्सवनं यत्तृतीयसवनम् । कौ० १६ । १ ॥ ३० । १ ॥ गो० उ० ४ । १८ ॥
„ विश्वेषां देवानां तृतीयसवनम् । कौ० १४ । ५ ॥ १६ । ११ ॥
„ विश्वे देवा द्वादशकपालेन तृतीयसवने (आदित्यमभिषज्यन्) । तै० १ । ५ । ११ । ३ ॥
„ वैश्वदेवं वै तृतीयसवनम् । ऐ० ६ । १५ ॥ श० १ । ७ । ३ । १६ ॥ ४ । ४ । १ । ११ ॥ जै० उ० १ । ३७ । ४ ॥
„ तया (वैश्वदेव्याऽऽगया) तृतीयसवनस्योद्गेयम् । जै० उ० १ । ३७ । ४ ॥
„ तृतीयसवनं वै स्विष्टकृत् । श० १ । ७ । ३ । १६ ॥
„ आदित्यं हि तृतीयसवनम् । तां० ६ । ७ । ७ ॥
„ अथेमं विष्णुं यज्ञं त्रेधा व्यभजन्त । वसवः प्रातःसवनꣳ रुद्रा माध्यन्दिनꣳ सवनमादित्यास्तृतीयसवनम् । श० १४ । १ । १ । १५ ॥
„ आदित्यानां तृतीयसवनम् । कौ० १६ । १ ॥ ३० । १ ॥ श० ४ । ३ । ५ । १ ॥
„ द्यौर्वै तृतीयसवनम् । श० १२ । ८ । २ । १० ॥
„ असौ वै (द्यु-)लोकस्तृतीयसवनम् । गो० उ० ४ । १८ ॥
„ विद्यद्धस्तु वै तृतीयसवनम् । तां० ८ । ३ । ६ ॥
„ जागतं हि तृतीयसवनम् । कौ० १६ । १ ॥ ष० १ । ४ ॥ तां० ६ । ३ । ११ ॥ गो० उ० ४ । १८ ॥
„ विट् तृतीयसवनम् । कौ० १६ । ४ ॥
„ चित्रवत् तृतीयसवनम् । तां० १८ । ६ । ७ ॥

तृतीयसवनम् अस्तंयन्तं (सूर्यं) तृतीयसवनेन (ईप्सन्ति) । कौ० १८ । ९ ॥

,, काव्याः (पितरः) तृतीयसवने । ऐ० ७ । ३४ ॥

,, (पुरुषस्य) ये ऽवाञ्चः (प्राणाः) तत्तृतीयसवनम् । कौ० २५ । १२ ॥

,, चतुर्विंशैकविंशौ (स्तोमौ) तृतीयसवनम् (वहतः)। तां० १६ । १० । ५ ॥

तृतीया चितिः मध्यमेव तृतीया चितिः । श० ८ । ७ । ४ । २१ ॥

,, द्यौरेव तृतीया चितिः । श० ८ । ७ । ४ । १४ ॥

तेजः तेजो वाऽ अग्निः । श० २ । ५ । ४ । ८ ॥ ३ । ९ । १ । १९ ॥ तै० ३ । ३ । ४ । ३ ॥ ३ । ९ । ५ । २ ॥

,, तपो मे तेजो मे ऽन्नम्मे वाङ्मे । तन्मे त्वयि (अग्नौ) । जै० उ० ३ । २० । १६ ॥

,, तेजो ऽसि तपसि श्रितम् । समुद्रस्य प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । ३ ॥

,, समुद्रो ऽसि तेजसि श्रितः । तै० ३ । ११ । १ । ४ ॥

,, तेजो वै वायुः । तै० ३ । २ । ९ । १ ॥

,, तेज एव श्रद्धा । श० ११ । ३ । १ । १ ॥

,, (यजु० १ । ३१) तेजो ऽसि शुक्रमस्यमृतमसि (आज्य !) । श० १ । ३ । १ । २८ ॥

,, तेज आज्यम् । तै० ३ । ३ । ४ । ३ ॥ ३ । ३ । ९ । ३ ॥

,, तेजो हिरण्यम् । तै० ३ । १२ । ५ । १२ ॥

,, तेजो वै हिरण्यम् । तै० १ । ८ । ९ । १ ॥

तेजनी (= अश्वरुधिरस्य धारयित्रीति सायणः) पाप्मा वै तेजनी । तै०३।८। १९ । २ ॥

तैरश्चयम (साम) अङ्गिरसः स्वर्गं लोकं यन्तो रक्षांऽस्यन्वसचन्त तान्येतेन तिरश्च्याङ्गिरसस्तिर्य्यङ् पर्य्यवैद्यत्तिर्य्यङ् पर्य्यवैत्तस्मात्तैरश्च्यं पाप्मा वाव स तानसचत तन्तैरश्च्येनापाघ्नतापपाप्मानꣳ हते तैरश्च्येन तुष्टुवानः । तां० १२ । ६ । १२ ॥

तोकम् (यजु०१३ । ५२ ॥) प्रजा वै तोकम् । श० ७ । ५ । १ । ३६ ॥

तौरश्रवसे (सामनी) तुरश्रवसश्च वै पारावतानाञ्च सोमौ सꣳसुताधास्तान्तत एते तुरश्रवाः सामनी अपश्यत्ताभ्यामस्मा इन्द्रः शल्मलिनां यमुनाया हव्यं गिरावहद्यत्तौरश्रवसे भवतो हव्यमेवैषां (यजमानानां विद्विषाणामिति सायणः) वृङ्क्ते । तां० ६ । ४ । १० ॥

त्रपु सीसेन त्रपु (सन्दध्यात्) । गो० पू० १ । १४ ॥

" रजतेन त्रपु (सन्दध्यात्) । जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥

" त्रपुणा लोहायसम् (सन्दध्यात्) । जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥

त्रयस्त्रिंशः (स्तोमः) त्रयस्त्रिꣳशो वै स्तोमानामधिपतिः । तां० ६ । २ । ७ ॥

" एष वै समृद्धः स्तोमो यत् त्रयस्त्रिꣳशः । तां० १५ । १२ । ६ ॥

" ज्योतिस्त्रयस्त्रिंशः स्तोमानाम् । तां० १३ । ७ । २ ॥

" त्रयस्त्रिꣳशः स्तोमानां (सत्) । तां० ४ । ८ । १० ॥

" सत् (=उत्कृष्टमिति सायणः) त्रयस्त्रिꣳशः स्तोमानाम् । तां० १५ । १२ । २ ॥

" अन्तो वै त्रयस्त्रिꣳशः परमो वै त्रयस्त्रिꣳश स्तोमानाम् । तां० ३ । ३ । २ ॥

" वर्ष्म वै त्रयस्त्रिꣳशः । तां० १६ । १० । १० ॥

" तम् (त्रयस्त्रिंशं स्तोमं) उ नाक इत्याहुः । तां० १० । १ । १८ ॥

" देवता एव त्रयस्त्रिꣳशस्यायतनम् । तां० १० । १ । १६ ॥

" अनूकं त्रयस्त्रिꣳशः । द्वात्रिꣳशद्वाऽ एतस्य कङ्कराण्यनूकं त्रयस्त्रिꣳशम् । श० १२ । २ । ४ । १४॥

" संवत्सरो वाव 'प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिꣳशः' (यजु० १४ । २३) तस्य चतुर्विꣳशतिरर्धमासाः षडृतवो द्वेऽअहोरात्रे संवत्सर एव प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिꣳशस्त-

यत्तमाह प्रतिष्ठेति संवत्सरो हि सर्वेषां भूतानां प्रतिष्ठा। श० ८। ४। १। २२॥

त्रयस्त्रिंश: (स्तोमः) त्रयस्त्रिꣳश एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै। तां० १५। १२। ८॥

त्रयी विद्या अथाह। स्तोमश्च यजुश्चऽऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं चेति त्रयी हैषा विद्यान्नं वै त्रयी विद्या। श० ९। ३। ३। १४॥

„ त्रयी वै विद्या। ऋचो यजूꣳषि सामानि। श० ४। ६। ७। १॥

„ सैषा त्रयी विद्या (=ऋक्सामयजूंषि) यज्ञः। श० १। १। ४। ३॥

„ भूर्भुवस्स्वरिति सा त्रयी विद्या। जै० उ० २। ९। ७॥

„ एवमेवैता (भूर्भुवःस्वरिति) व्याहृतयस्त्रय्यै विद्यायै संश्लेषिण्यः। कौ० ६। १२॥

„ स (प्रजापतिः) श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्याम्। श० ६। १। १। ८॥

„ तद्यत्तत्सत्यम्। त्रयी सा विद्या। श० ९। ५। १। १८॥

„ त्रयी वै विद्या काव्यं छन्दः। श० ८। ५। २। ४॥

„ त्रयी विद्या निर्वपणम्। श० ७। ५। २। ५२॥

„ तस्य (एकविंशसाम्नः) त्रय्येव विद्या हिङ्कारः। जै० उ० १। १९। २॥

„ मनसो वै समुद्राद्वाचाभ्रया देवास्त्रयीं विद्यां निरखनन्। श० ७। ५। २। ५२॥

„ सैषा त्रयी विद्या सौम्ये ऽध्वरे प्रयुज्यते। श० ४। ६। ७। १॥

„ त्रय्यां वाव विद्यायाꣳ सर्वाणि भूतानि। श० १०। ४। २। २२॥

„ प्रजापतिस्त्रय्या विद्यया सहापः प्राविशत्। श० ६। ३। १। १०॥ ('वेदाः' इत्येतं शब्दमपि पश्यत)

त्रयोविंशः (स्तोमः) "सम्भरणस्त्रयोविंशः" इत्येतं शब्दं पश्यत ।

त्रिककुत् (पर्वतः) यत्र वाऽ इन्द्रो वृत्रमहंस्तस्य यदक्ष्यासीत्तं गिरिं त्रिककुदमकरोत् । श० ३ । १ । ३ । १२ ॥

त्रिककुप्छन्दः (यजु० १५ । ४) उदानो वै त्रिककुप्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

त्रिणवः (स्तोमः) वज्रस्त्रिणवः । श० ८ । ४ । १ । २० ॥ ष० ३ । ४ ॥

" वज्रो वै त्रिणवः । श० १३ । ४ । ४ । १ ॥ तां० ३ । १ । २ ॥

" यत्त्रिणवो (भवति) वज्रं भ्रातृव्याय प्रहरति । तां० १६ । १८ । ३ ॥

" इमे वै लोकास्त्रिणवः । तां० ६ । २ । ३ ॥ १६ । १० । ६ ॥

" पार्श्वे त्रिणवः । त्रयोदशान्याः पर्शवस्त्रयोदशान्याः पार्श्वे त्रिणवे । श० १२ । २ । ४ । १३ ॥

" त्रिवृदेव त्रिणवस्यायतनम् । तां० १० । १ । १३ ॥

" तं (त्रिणवस्तोमं) पुष्टिरित्याहुस्त्रिवृद्ध्येवैष पुष्टः । तां० १० । १ । १५ ॥

" त्रिवृच्च त्रिणवश्च राथन्तरौ तावजश्चाश्वश्चान्वसृज्येतां तस्तात्तौ राथन्तरं प्राचीनं प्रधूनुतः । तां० १० । २ । ५ ॥

"ओजस्त्रिणवः" शब्दमपि पश्यत ।

त्रिणिधनम् (साम) एतेन वै माध्यन्दिनꣳ सवनं प्रतिष्ठितं यत्त्रिणिधनम् । तां० ७ । ३ । २ ॥

" द्यौस्त्रिणिधनम् । तां० २१ । २ । ७ ॥

त्रिपाद् आदित्यस्त्रिपात्तस्येमे लोकाः पादाः । गो० पू० २ । ८ ॥

त्रिपुरम् तस्मादु हैतत्पुरां परमꣳ रूपं यत्त्रिपुरम् । श०६।३।३।२५॥

त्रिरात्रः (क्रतुः) इमे लोकास्त्रिरात्रः । तां० १६ । ११ । ४ ॥ २१ । ७ । २ ॥

" मूर्धा वा एष दिवो यस्तृतीयस्त्रिरात्रः । तां० १४ । २ । २ ॥

" अन्तस्त्रिरात्रो यज्ञानाम् । तां० २१ । ४ । ६ ॥

त्रिरात्रः (क्रतुः) तस्याः (शबल्याः) त्रिरात्रो वत्सः । तां० २१ । ३ । १ ॥

,, वाग्वै त्रिरात्रः । तां० २० । १५ । २ ॥

,, तद्यथा अदो मनौ (? मणौ) सूत्रमोतमेवमेषु लोकेषु त्रिरात्र ओतः, शोभते ऽस्य मुख य एवं वेद । तां० २० । १६ । ६ ॥

त्रिवृत् (स्तोमः) वायुर्वा ऽ आशुस्त्रिवृत्स एषु त्रिषु लोकेषु वर्तते । श० ८ । ४ । १ । ६ ॥

,, तान् (पशून्) अग्निस्त्रिवृता स्तोमेन नाप्नोत् । तै० २ । ७ । १४ । १ ॥

,, त्रिवृदग्निः । श० ६ । ३ । १ । २५ ॥

,, अग्निर्वै त्रिवृत् । तै० १ । ५ । १० । ४ ॥

,, त्रिवृद्वा अग्निरङ्गारा अर्चिर्धूम इति । कौ० २८ । ५ ॥

,, तेजो वै त्रिवृत् । तां० २ । १७ । २ ॥

,, तेजो वै स्तोमानां त्रिवृत् । ऐ० ८ । ४ ॥

,, तेजो वै त्रिवृद् ब्रह्मवर्चसम् । तां० १७ । ६ । ३ ॥ २० । १० । १ ॥

,, त्रिवृदेव स्तोमो भवति तेजसे ब्रह्मवर्चसाय । तां० ११ । १ । ७ ॥

,, ब्रह्मवर्चसं वै त्रिवृत् । तै० २ । ७ । १ । १ ॥

,, त्रिवृदेव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, ब्रह्म वै स्तोमानां त्रिवृत् । ऐ० ८ । ४ ॥

,, ब्रह्म वै त्रिवृत् । तां० २ । १६ । ४ ॥ १६ । १७ । ३ ॥ २३ । ७ । ५ ॥

,, शिर एव त्रिवृत् । गो० पू० ५ । ३ ॥

,, तस्मात् त्रिवृत् स्तोमानां मुखम् । तां० ६ । १ । ६ ॥

,, मुखं वै त्रिवृत्स्तोमानाम् । तां० १७ । ३ । २ ॥

,, यत्त्रिवृद्भवति यदेवास्य (यजमानस्य) मुखतो ऽपूतं तत्तेनापहन्ति । तां० १७ । ५ । ६ ॥

,, प्राणो वै त्रिवृत् । तां० ६।२।२॥६।३।४॥६।८।१५ ॥

त्रिवृत् (स्तोमः) प्राणा वै त्रिवृत्। तां० २। १५। ३॥ ३। ६। ३॥

,, प्राणा वै त्रिवृत् स्तोमानां प्रतिष्ठा। तां० ६। ३। ४॥

,, एष (त्रिवृत्) हि स्तोमानामाशिष्ठः। श० ८। ४। १। ६॥

,, त्रिवृद्वै स्तोमानां क्षेपिष्ठः। ष० ३। ८॥ तां० १७। १२। ३॥

,, वज्रो वै त्रिवृत्। ष० ३। ३, ४॥

,, त्रिवृद्बर्हिर्भवति। तै० १। ६। ३। १॥

,, वसन्तेनर्त्तुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुतम्। रथन्तरेण तेजसा। हविरिन्द्रे वयो दधुः। तै० २। ६। १६। १॥

,, त्रिवृच्च त्रिणवश्च राथन्तरौ तावजश्चाश्वश्चान्वसृज्येतां तस्मात्तौ राथन्तरं प्राचीनं प्रधूनुतः। तां० १०। २। ५॥

त्रिश्रेणिः (अग्निः) त्रिश्रेणिरितिच्छन्दांस्येव श्रेणीरकुरुत। ऐ० ३। ३९॥

त्रिषत्याः त्रिषत्या हि देवाः। ष० १। १॥ तै० ३। २। ३। ८॥

त्रिष्टुक् (छन्दः) इन्द्रियं वै त्रिष्टुक्। तै० ३। ३। ६। ८॥

त्रिष्टुप् (छन्दः) त्रिष्टुप् स्तोभ इत्युत्तरपदा का तु त्रिता स्यात्तीर्णतमं छन्दो भवति। दे० ३। १४, १५॥

,, त्रिवृद्वज्रस्तस्य स्तोभमिवेत्यौपमिकम्। दे० ३। १६॥

,, वज्रस्तेन यत्त्रिष्टुप्। ऐ० २। १६॥

,, वज्रस्त्रिष्टुप्। कौ० ७। २॥ श० ३। ६। ४। २१॥

,, त्रैष्टुभो वज्रः। गो० उ० १। १८॥

,, त्रिष्टुबिन्द्रस्य वज्रः। ऐ० २। २॥

,, त्रैष्टुभ इन्द्रः। कौ० ३। २॥ २२। ७॥

,, इन्द्रस्त्रिष्टुप्। श० ६। ६। २। ७॥

,, ऐन्द्रं त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम्। गो० उ० ४। ४॥

,, ऐन्द्रं हि त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम्। कौ० २६। २॥

,, त्रैष्टुभं वै माध्यन्दिनं सवनम्। ऐ० ६। ११॥

,, त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम्। ष० १। ४॥

,, एते वाव छन्दसां वीर्य्यवत्तमे यद्गायत्री च त्रिष्टुप् च। तां० २०। १६। ८॥

त्रिष्टुप् (छंद) वीर्य्यं वै त्रिष्टुप् । ऐ० १ । २१ ॥ ४ । ३, ११ ॥ ६ । १५ ॥ ष० ३ । ७ ॥

,, बलं वै वीर्य्यं त्रिष्टुप् । कौ० ७ । २ ॥ ८ । २ ॥ ११ । २ ॥ १६ । १ ॥ गो० उ० ५ । ५ ॥

,, बलं वीर्य्यं पुरस्तात्त्रिष्टुप् । कौ० ११ । २ ॥

,, ओजो वा इन्द्रियं वीर्यं त्रिष्टुप् । ऐ० १ । ५, २८ ॥ ८ । २ ॥

,, इन्द्रियं वै वीर्यं त्रिष्टुप् । तै० १ । ७ । ६ । ८ ॥

,, इन्द्रियं वै त्रिष्टुप् । तै० १ । ७ । ६ । २ ॥

,, उरस्त्रिष्टुप् । ष० २ । ३ ॥

,, उरस्त्रिष्टुभः । श० ८ । ६ । २ । ७ ॥

,, वृषा त्रिष्टुप् । कौ० २० । ३ ॥

,, त्रिष्टुप्छन्दा वै राजन्यः । तै० १ । १ । ६ । ६ ॥

,, त्रैष्टुभो वै राजन्यः । ऐ० १ । २८ ॥ ८ । २ ॥

,, (राजन्यस्य) त्रिष्टुप् छन्दः । तां० ६ । १ । ८ ॥

,, क्षत्रस्यैवैतच्छन्दो यत्त्रिष्टुप् । कौ० १० । ५ ॥

,, क्षत्रं वै त्रिष्टुप् । कौ० ७ । १० ॥

,, ब्रह्म गायत्री क्षत्रं त्रिष्टुप् । श० १ । ३ । ५ । ५ ॥

,, क्षत्रं त्रिष्टुप् । कौ० ३ । ५ ॥ श० ३ । ४ । १ । १० ॥

,, अथैतदधीतरसं शुक्रियं छन्दो यत्त्रिष्टुप् । ऐ० ६ । १२ ॥

,, त्रिष्टुबेव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, या राका सा त्रिष्टुप् । ऐ० ३ । ४७, ४८ ॥

,, त्रिष्टुब्भीयम् (पृथिवी) । श० २ । २ । १ । २० ॥

,, त्रैष्टुभो हि वायुः । श० ८ । ७ । ३ । १२ ॥

,, त्रैष्टुभेऽन्तरिक्षलोके त्रैष्टुभो वायुरध्यूढः । कौ० १४ । ३ ॥

,, यजुषां वायुर्दैवतं तदेव ज्योतिस्त्रैष्टुभं छन्दोऽन्तरिक्षं स्थानम् । गो० पू० १ । २६ ॥

,, त्रैष्टुभोऽन्तरिक्षलोकः । कौ० ८ । ६ ॥

,, त्रैष्टुभमन्तरिक्षम् । श० ८ । ३ । ४ । ११ ॥

,, अन्तरिक्षं त्रिष्टुप् । जै० उ० १ । ५ ५ । ३ ॥

त्रिष्टुप् (छंदः) अन्तरिक्षमु वै त्रिष्टुप् । श० १ । ८ । २ । १२ ॥

„ अन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रंस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो निर्भक्तो यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः । श० १ । ९ । ३ । १० ॥

„ त्रिष्टुबसौ (द्यौः) । श० १ । ७ । २ । १५ ॥

„ असावुत्तमः (लोकः=द्युलोकः) त्रिष्टुप् । तां० ७ । ३ । ९ ॥

„ त्रैष्टुभो वा एष य एष (सूर्यः) तपति । कौ० २५ । ४ ॥

„ त्रैष्टुब्जागतो वा आदित्यः । तां० ४ । ६ । २३ ॥

„ त्रैष्टुभाः पशवः । कौ० ८ । १ ॥ १० । २ ॥

„ अपानस्त्रिष्टुप् । तां० ७ । ३ । ८ ॥

„ यऽ एवायं प्रजननः प्राण एव त्रिष्टुप् । श० १० । ३ । १ । १ ॥

„ त्रैष्टुभं चक्षुः । तां० २० । १६ । ५ ॥

„ आत्मा वै त्रिष्टुप् । श० ६ । ४ । २ । ६ ॥

„ आत्मा त्रिष्टुप् । श० ६ । २ । १ । २४ ॥ ६ । ६ । २ । ७ ॥

„ आत्मा त्रिष्टुभः । श० ८ । ६ । २ । ३ ॥

„ त्रैष्टुभः पञ्चदशस्तोमः । तां० ५ । १ । १४ ॥

„ एतद्वै बृहतः स्वमायतनं यत्त्रिष्टुप् । तां० ४ । ४ । १० ॥

„ त्रैष्टुभं वै बृहत् । तां० ५ । १ । १४ ॥

„ त्रैष्टुभो ब्राह्मणाच्छंसी । तां० ५ । १ । १४ ॥

„ नाराशँस्या त्रिष्टुप् (अपुनीत) । जै० उ० १ । ५७ । १ ॥

„ त्रिष्टुब्दक्षिणा (दिक्) । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥

„ त्रिष्टुब्रुद्राणां पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥

„ रुद्रास्त्रिष्टुभं समभरन् । जै० उ० १ । १८ । ५ ॥

„ यस्यैकादश तास्त्रिष्टुभम् । कौ० ९ । २ ॥

„ एकादशाक्षरा वै त्रिष्टुप् । कौ० ३ । २ ॥ १० । २ ॥ तां० ६ । ३ । १३ ॥ ऐ० ३ । १२ ॥ ८ । २ ॥ श० १ । ३ । ५ । ५ । तै० ३ । ८ । १२ । १ ॥ गो० उ० १ । १८ ॥ ३ । १० ॥

त्रिष्टुप् (छंदः) चतुश्चत्वारिंशदक्षरा वै त्रिष्टुप् । श० ८ । ५ । १ । ११ ॥

" चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप् । कौ० १६ । ७ ॥ जै० उ० ४ । २ । ५ ॥

त्रीणि रोचनानि सवनानि वै त्रीणि रोचनानि । श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥

त्रेता (युगम्) उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति । ऐ० ७ । १५ ॥

त्रैककुभम् (साम) ताꣳस्त्रिककुबधिनिधाया चरतस एतत्सामापश्यन्यत्त्रिककुबपश्यत्तस्मात्त्रैककुभम् । तां० ८ । १ । ४॥

" त्रैककुभं पशुकामाय ब्रह्मसाम कुर्य्यात् "त्वमङ्ग प्रशꣳसिष" इत्येतासु । तां० ८ । १ । ३ ॥

" त्रिवीर्य्यं वा एतत्साम त्रीन्द्रियमैन्द्रश्च ऋच ऐन्द्रꣳ सामैन्द्रेति निधनमिन्द्रिय एव वीर्य्ये प्रतितिष्ठति । तां० ८ । १ । ७ ॥

" ओजस्येव तद्वीर्य्ये प्रतितिष्ठत्योजो वीर्य्यं त्रैककुभम् । तां० १५ । ६ । ५ ॥

त्रैतम् (साम) नाथविन्दु (त्रैतं) साम विन्दते नाथम् (=याचितफलमिति सायणः) । तां० १४ । ११ । २३ ॥

" त्रैतं भवति प्रतिष्ठायै । तां० १४ । ११ । २१ ॥

त्रैशोकम् (साम) त्रैशोकं ज्योगामयाविने ब्रह्मसाम कुर्य्यात् । तां० ८ । १ । ८ ॥

" इमे वै लोकाः सहासꣳस्ते ऽशोचꣳस्तेषामिन्द्र एतेन साम्ना शुचमपहन्यत्त्रयाणां शोचतामपाहꣳस्तस्मात्त्रैशोकम् । तां० ८ । १ । ९ ॥

" अप पाप्मानꣳ हते त्रैशोकेन तुष्टुवानः । तां० १२ । १० । २२ ॥

त्र्यनीकः (अग्निः) त्र्यनीक इति सवनान्येवानीकानि । ऐ० ३ । ३९ ॥

त्र्यम्बकः अम्बिका ह वै नामास्य (रुद्रस्य) स्वसा, तयास्यैष सह भागस्तद्यदस्यैष स्त्रिया सह भागस्तस्मात् त्र्यम्बकाः पुरोडाशाः) नाम श० २ । ६ । २ । ९ ॥

त्वक् त्वक् प्रस्तावः । जै० उ० १ । ३९ । ६ ॥

त्वक् त्वक्सूददोहाः । श० ८ । १ । ४ । ५ ॥

त्वष्टा वाग्वै त्वष्टा वाग्घीदं सर्वं ताष्टीव । ऐ० २ । ४ ॥

" (ऋ० १ । १२ । ६) इन्द्रो वै त्वष्टा । ऐ० ६ । १० ॥

" त्वष्टा वै पशूनामीष्टे । श० ३ । ७ । ३ । ११ ॥

" त्वष्टुर्हि पशवः । श० ३ । ८ । ३ । ११ ॥

" त्वष्टा पशूनां मिथुनानाꣳ रूपकृद्रूपपतिः । तै०२।५।७।४ ॥

" त्वष्टा वै पशूनां मिथुनानाꣳ रूपकृत् । तै० ३ । ८ । ११ । २ ॥

" त्वष्टा वै पशूनां रूपाणां विकर्त्ता । तां० ६ । १० । ३ ॥

" त्वष्टा हि रूपाणि विकरोति । तै० २ । ७ । २ । १ ॥

" त्वाष्ट्राणि वै रूपाणि । श० २ । २ । ३ । ४ ॥

" त्वष्टा वै रूपाणामीशे । तै० १ । ४ । ७ । १ ॥

" त्वष्टा वै रूपाणामीष्टे । श० ५ । ४ । ५ । ८ ॥

" त्वष्टा रूपेण । तै० १ । ८ । १ । २ ॥

" त्वष्टा (श्रियः) रूपाणि (आदत्त) । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥

" त्वष्टा वै रेतः सिक्तं विकरोति । कौ० ३ । ६ ॥

" त्वष्टा वै सिक्तꣳ रेतो विकरोति । श० १ । ६ । २ । १० ॥ ३ । ७ । २ । ८ ॥ ४ । ४ । २ । १६ ॥

" रेतःसिक्तिर्वै त्वाष्ट्रः । कौ० १६ । ६ ॥

" त्वष्टः समिधां पते । तै० ३ । ११ । ४ । १ ॥

" त्वष्टुर्ह वै पुत्रः । त्रिशीर्षा षडक्ष आस तस्य त्रीण्येव मुखान्यासु-स्तद्यदेवꣳरूप आस तस्माद्विश्वरूपो नाम । श० १ । ६ । ३ । १ ॥ ५ । ५ । ४ । २ ॥

" त्वाष्ट्रं दशकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ५ । ४ । ५ । ८ ॥

" (श्रीः) त्वाष्ट्रं दशकपालं पुरोडाशं (अपश्यत्) । श० ११ । ४ । ३ । ५ ॥

" (प्रजापतिः) त्वाष्ट्रमधि (आलिप्सत) । श० ६ । २ । १ । ५ ॥

" वारुणी च हि त्वाष्ट्री चाविः । श० ७ । ५ । २ । २० ॥

" त्वाष्ट्रं वडवमालभेत प्रजकामः । गो० उ० २ । १ ॥

त्वाष्ट्रीसाम इन्द्रं वा अद्यामथिणं भूतानि नास्वापयꣳस्तमेतेन त्वाष्ट्रयो ऽस्वापयꣳस्तद्वाव तास्तर्ह्यकामयन्त ॥ काम-

सनि साम त्वाष्ट्रीसाम काममेवैतेनावरुन्धे । तां० १२ । ५ । १९-२० ॥

त्वाष्ट्रीसाम इन्द्रो वृत्राद्बिभ्यद्गां प्राविशत्तं त्वाष्ट्र्यो ऽन्ववञ्जनयामेति तमेतैः समाभिरजनयञ्जायामहा इति वै सत्रमासते जायन्त एव । तां० १२ । ५ । २१ ॥

त्वेषं वचः एनश्च वैरहत्यञ्च त्वेषं वचः । तै० १ । ५ । ६ । ६ ॥

त्वेषः (यजु० १२ । ४८) (=महान्) त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षा इति महान्त्स भानुरर्णवो नृचक्षा इत्येतत् । श० ७ । १ । १ । २३ ॥

(द)

दक्षः दक्षो ह वै पार्वतिरेतेन यज्ञेनेष्ट्वा सर्वान् कामानाप । कौ० ४ । ४ ॥

„ स (प्रजापतिः) वै दक्षो नाम । श० २ । ४ । ४ । २ ॥

„ 'क्रतुं दक्षं वरुण संशिशाधि' (ऋ० ८ । ४२ । ३) इति वीर्यं प्रज्ञानं वरुण संशिशाधीति । ऐ० १ । १३ ॥

„ (यजु० १४ । ३) (=वीर्यम्) स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीदेति । स्वेन वीर्येणेह सीदेत्येतत् । श० ८ । २ । १ । ६ ॥

„ अथ यदस्मै तत्समृध्यते स दक्षः । श० ४ । १ । ४ । १ ॥

„ वरुणो दक्षः । श० ४ । १ । ४ । १ ॥

दक्षनिधनम् (साम) (प्रजापतिः) तासु (प्रजासु) एतेन (दक्षनिधनेन) साम्ना दक्षायेत्योजो वीर्य्यमदधाद्यदेतत्साम भवत्योज एव वीर्य्यमात्मन्धत्ते । तां० १४ । ५ । १३ ॥

दक्षिणः (अर्द्धः) दक्षिणो वा अर्द्ध आत्मनो (=शरीरस्य) वीर्य्यवत्तरः । तां० ५ । १ । १३ ॥

दक्षिणा तं (यज्ञं) देवा दक्षिणाभिरदक्षयंस्तद्यदेनं (यज्ञं) दक्षिणाभिरदक्षयंस्तस्माद्दक्षिणा नाम । श० २ । २ । २ । २ ॥ ४ । ३ । ४ । २ ॥

„ तद्यद्दक्षिणाभिर्यज्ञं दक्षयति तस्माद्दक्षिणा नाम । कौ० १५ । १ ॥

„ दक्षिणा वै यज्ञानां पुरोगवी । ऐ० ६ । ३५ ॥

दक्षिणा   एषा ह वै यज्ञस्य पुरोगवी यद्दक्षिणा । गो० उ० ६ । १४ ॥

"   शुभो वा एता यज्ञस्य यद्दक्षिणाः । तां० १६ । १ । १४॥

"   श्लेष्म वा एतद्यज्ञस्य यद्दक्षिणा । तां० १६ । १ । १३॥

"   यज्ञो ऽदक्षिणो रिष्यति तस्मादाहुर्दातव्यैव यज्ञे दक्षिणा भवत्यल्पिकापि । ऐ० ६ । ३५ ॥

"   तस्मान्नादक्षिणेन हविषा यजेत । श० १ । २ । ३ । ४॥

"   नादक्षिणꣳ हविः स्यादिति ह्याहुः । श० ११ । १ ।

"   ३ । ७ ॥ ११ । १ । ४ । ४ ॥

"   तस्मादृत्विग्भ्य एव दक्षिणा दद्यान्नानृत्विग्भ्यः । श० ४ । ३ । ४ । ५ ॥

"   अर्धा ह स्म वै पुरा ब्रह्मणे दक्षिणा नयन्तीति । अर्धा इतरेभ्य ऋत्विग्भ्यः । जै० उ० ३ । १७ । ५ ॥

"   तस्मादात्रेयाय प्रथमदक्षिणा यज्ञे दीयन्ते । गो० पू० २ । १७ ॥

"   चतस्रो वै दक्षिणाः । हिरण्यं गौर्वासो ऽश्वः । श० ४ । ३ । ४ । ७ ॥

"   अन्नं दक्षिणा । ऐ० ६ । ३ ॥

"   दक्षिणा वै स्तावाः (अप्सरसः, यजु० १८ । ४२) दक्षिणाभिर्हि यज्ञ स्तूयते ऽथो यो वै कश्च दक्षिणां ददाति स्तूयतऽ एव सः । श० ९ । ४ । १ । ११ ॥

"   दक्षिणाः सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

"   दक्षिणासु त्वेव न संवदितव्यꣳ संवादेनैवऽर्त्विजो ऽलोका इति । श० ९ । ५ । २ । १६ ॥

"   यन्माध्यन्दिने सवने दक्षिणा नीयन्ते स्वर्ग एतेन लोके हिरण्यं हस्ते भवति । गो० उ० ३ । १७ ॥

दक्षिणा दिक् पितॄणां वा एषा दिग्यद्दक्षिणा । ष० ३ । १ ॥

"   एषा वै (दक्षिणा) दिक् पितॄणाम् । श० १ । २ । ५ । १७ ॥

"   दक्षिणासंस्थो वै पितृयज्ञः । कौ० ५ । ७ ॥ गो० उ० १ । २५ ॥

दक्षिणा दिक् दक्षिणत उपसृजति। पितृलोकमेव तेन जयति। तै० २।१।८।१॥

,, मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु। श० ३।५।२।६॥

,, यम्येनाऽऽजद्विषेण (उद्गात्रा दीक्षामह्वा इति) पितरो दक्षिणतः (आगच्छन्)। जै० उ० २।७।२॥

,, घोरा वा एषा दिग्दक्षिणा शान्ता इतराः। गो० पू० २।१६॥

,, किंदेवतोऽस्यां दक्षिणायां दिश्यसीति। यमदेवत इति। श० १४।६।६।२२॥

,, यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा। श० ५।२।४।५॥

,, अथैनं (इन्द्रं) दक्षिणस्यां दिशि रुद्रा देवाः......अभ्यषिञ्चन्......भौज्याय। ऐ० ८।१४॥

,, रुद्रास्त्वा दक्षिणतोऽभिषिञ्चन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसा। तै० २।७।१५।५॥

,, (वायुः) यद्दक्षिणतो वाति। मातरिश्वैव भूत्वा दक्षिणतो वाति। तै० २।३।६।५॥

,, तस्मादेष (वायुः) दक्षिणैव भूयिष्ठं वाति। श० ८।१।१।७॥ ८।६।१।१७॥

,, दक्षिणतो वासीशानो भूतो वासि। जै० उ० ३।२१।२॥

,, तं (संज्ञप्तं पशुं) दक्षिणा दिग्व्यानेत्यनुप्राणद्व्यानमेवास्मिँस्तदधात्। श० ११।८।३।६॥

,, दक्षिणा दिक्। इन्द्रो देवता। तै० ३।११।५।१॥

,, अथ दक्षिणं परिदधाति। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै (यजु० ११।३)। श० १।३।४।३॥

,, अतो हीन्द्रस्तिष्ठन्दक्षिणतो नाष्ट्रा रक्षांᳪस्यपाहन्। श० १।४।५।३॥

,, एतद्ध देवा अबिभयुर्यद्वै नो यज्ञं दक्षिणतो रक्षांᳪसि नाष्ट्रा न हन्युरिति। श० ७।४।१।३७॥

,, धृष्णशङ्कुं दक्षिणतोऽघस्यैवानत्ययाय। श० १३।८।४।१॥

दक्षिणा दिक् दक्षिणामेव दिशꣳ सोमेन प्राजानन् । श० ३।२।३।१७
„ स (सोमः) दक्षिणां दिशं प्राज्ञानात् । कौ० ७ । ६ ॥
„ (हे देवा यूयं) अग्निना दक्षिणां (दिशं प्रजानाथ) । ऐ० १ । ७ ॥
„ दक्षिणा (दिक्) ब्रह्मणः । श० १३ । ५ । ४ । २४ ॥
„ दक्षिणामारोह त्रिष्टुप्त्वावतु बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्म ऋतुः क्षत्रं द्रविणम् । श० ५ । ४ । १ । ४ ॥
„ दक्षिणामाहुर्यजुषामपाराम् । तै० ३ । १२ । ६ । १ ॥
„ त्रिष्टुब्दक्षिणा (दिक्) । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥
„ तस्मादेतस्यां (दक्षिणस्यां) दिश्येतौ पशू (गौश्चाजश्च) भूयिष्ठौ । श० ७ । ५ । २ । १६ ॥
„ दक्षिणैव (दिक्) सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
„ तस्मादेतस्यां दक्षिणस्यां दिशि ये के च सत्वतां राजानो भौज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते भोजेत्येनानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥

दक्षिणाग्निः यजुर्वेदाद्दक्षिणाग्निः (अजायत) । ष० ४ । १ ॥
„ भ्रातृव्यदेवत्यो दक्षिणः (अग्निः) । तै० १ । ६ । ५ । ४ ॥

दण्डः (दण्डः) मुखसंमितो भवति । श० ३ । २ । १ । ३४ ॥
„ वज्रो वै दण्डो विरक्षस्तायै । श० ३ । २ । १ । ३२ ॥
„ तस्मादिषुहतो वा दण्डहतो वा दशमीं (रात्रिं) नैर्देश्यं (=दुःखनिवृत्तिं) गच्छति । तां० २२ । १४ । ३ ॥

दधि (इन्द्रः) यदब्रवीद्धिनोति मेति तस्माद्दधि । श० १ । ६ । ४ । ८ ॥
„ ऐन्द्रं वै दधि । श० ७ । ४ । १ । ४२ ॥
„ अथ यदनडुह्यै वहलायाऽ ऐन्द्रं दधि भवति स इन्द्रस्य चतुर्थो भागः । श० ५ । २ । ४ । १३ ॥
„ इन्द्रियं वै दधि । तै० २ । १ । ५ । ६ ॥
„ इन्द्रियं वा एतदस्मिन् लोके यद्दधि । ऐ० ८ । १६ ॥
„ दधि हैवास्य लोकस्य रूपम् । श० ७ । ५ । १ । ३ ॥
„ अथ यदि दधि (आहरेत्) वैश्यानां स भक्षः । ऐ० ७ । २९ ॥
„ ऊर्ग्वा अन्नाद्यं दधि । तै० २ । ७ । २ । २ ॥

दधि सोमो वै दधि । कौ० ८ । ६ ॥

„ सरस्वत्यै दधि । श० ४ । २ । ५ । २२ ॥

दधिक्रा (ऋक्) देवपवित्रं वै दधिक्रा । ऐ० ६ । ३६ ॥

„ अन्नं वै दधिक्रा । गो० उ० ६ । १६ ॥

दध्यङ् इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव । तै० १ । ५ । ८ । १ ॥

„ दध्यङ् वा आङ्गिरसो देवानां पुरोधानीय आसीत् । तां० १२ । ८ । ६ ॥

„ (यजु० ११ । ३३) वाग्वै दध्यङ्ङाथर्वणः । श०६।४।२।३ ॥

दनायुः, दनुः अथ (वृत्रः) यदपात्समभवत्तस्मादहिस्तं दनुश्च दनायुश्च मातेव च पितेव च परिजगृहतुस्तस्माद्दानव इत्याहुः । श० १ । ६ । ३ । ६ ॥

दन्ताः यस्मादधरे (दन्ताः) पश्चाग्रे जायन्ते ऽथोत्तरे यस्मादणीयाꣳस एवाधरे प्रथीयाꣳस उत्तरे यस्माद्दꣳष्ट्रा वर्षीयाꣳसो यस्मात्समा एव जम्भ्याः । श० ११ । ४ । १ । ५ ॥

दन्दशूकाः नैते क्रिमयो नाक्रिमयो यद्दन्दशूकाः । श० ५ । ४ । १ । २ ॥

„ लोहिता इव हि दन्दशूकाः । श० ५ । ४ । १ । २ ॥

दर्भस्तम्बः अग्निवान् वै दर्भस्तम्बः । तै०२ । २ । १ । ५ ॥ ३ । ७ । ३ । ३ ॥

दर्भाः उभयम्वेतदन्नं यद्दर्भा आपश्च ह्येता ओषधयश्च या वै वृत्राद् बीभत्समाना आपो धन्व दृभन्त्य उदायंस्ते दर्भा अभवन्यद्दृभन्त्य उदायंस्तस्माद्दर्भास्ता हैताः शुद्धा मेध्या आपो वृत्राभिप्रक्षरिता यद्दर्भा यद्वु दर्भास्तेनौषधयः । श० ७ । २ । ३ । २ ॥

„ ते (दर्भाः) हि शुद्धा मेध्याः । श० ७ । ३ । २ । ३ ॥ ६ । २ । १ । १२ ॥

„ मेध्या वै दर्भाः । श० ३ । १ । ३ । १८ ॥ ५ । २ । १ । ८ ॥

„ आपो दर्भाः । श० २ । २ । ३ । ११ ॥

„ आपो वै दर्भाः । तै० ३ । ३ । २ । १ ॥

„ अपां वा एतत्तेजो वर्चः । यद्दर्भाः । तै० २ । ७ । ६ । ५ ॥

„ पवित्रं वै दर्भाः । श० ३ । १ । ३ । १८ ॥ तै० १ । ३ । ७ । १ ॥ ३ । ८ । २ । ३ ॥

दर्शपूर्णमासौ एष वै पूर्णमाः। य एष (सूर्यः) तपत्यहरहर्ह्येवैष पूर्णो ऽथैष एव दर्शो यच्चन्द्रमा ददृश इव ह्येषः। अथोऽइतरथाहुः। एष एव पूर्णमा यच्चन्द्रमा एतस्य ह्यनु पूरणं पौर्णमासीत्याचक्षते ऽथैष एव दर्शो य एष (सूर्यः) तपति ददृश इव ह्येषः। श० ११। २। ४। १-२॥

" सवृत(? समृत-)यज्ञो वा एष यद्दर्शपूर्णमासौ। गो० उ० २। २४॥

" दर्शपूर्णमासौ वा अश्वस्य मेध्यस्य पदे। तै० ३। ९। २३। १॥

" स यो हैवं विद्वानग्निहोत्रं च जुहोति दर्शपूर्णमासाभ्यां च यजते मासिं मासि हैवास्याश्वमेधेनेष्टं भवति। श० ११। २। ५। ५॥

दविद्युतती दविद्युतती वै गायत्री। तां० १२। १। २॥

दशपेयः अथ यद्दशमे ऽहन्प्रसूतो भवति तस्माद्दशपेयो ऽथो यद्दश दशैकैकं चमसमनु प्रसृप्ता भवन्ति तस्माद्वेव दशपेयः। श० ५। ४। ५। ३॥

दशममहः अथ यद्दशममहरुपयन्ति। संवत्सरमेव देवतां यजन्ते। श० १२। १। ३। २०॥

" श्रीर्वै दशममहः। ऐ० ५। २२॥

" मितमेतद्देवकर्म्म यद्दशममहः। कौ० २७। १॥

" प्रतिष्ठा दशममहः। कौ० २७। २॥ २६। ५॥

" अन्तो वा एष यज्ञस्य यद्दशममहः। तै० २। २। ६। १॥

दशरात्रः अथ यद्दशरात्रमुपयन्ति। विश्वानेव देवान्देवतां यजन्ते। श० १२। १। ३। १७॥

दश वीराः (यजु० १६। ४८॥) प्राणा वै दश वीराः। श० १२। ८। १। २२॥

दशहोता तस्मै (ब्रह्मणे) दशमꣳ हूतः प्रत्यश्रृणोत्। स दशहूतो ऽभवत्। दशहूतो ह वै नामैषः। तं वा एतं दशहूतꣳ सन्तं दशहोतेत्याचक्षते परोक्षेण, परोक्षप्रिया इव हि देवाः। तै० २। ३। ११। १॥

दशहोता वाचस्पतिर्होता दशहोतॄणाम् । तै० ३ । १२ । ५ । १ ॥
„ प्रजापतिर्वै दशहोतॄणाᳪं होता । तै० २ । ३ । ५ । ६ ॥
„ प्रजापतिर्वै दशहोता । तै० २ । २ । १ । १ ॥ २ । २ । ३ । २ ॥ २ । २ । ८ । ५ ॥ २ । २ । ६ । ३ ॥
„ यज्ञो वै दशहोता । तै० २ । २ । १ । ६ ॥
„ अग्निहोत्रं वै दशहोतुर्निदानम् । तै० २ । २ । ११ । ६ ॥

दशाहानि विराड् वा एषा समृद्धा यद्दशाहानि । तां० ४ । ८ । ६ ॥

दस्युः त एते ऽन्ध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः । ऐ० ७ । १८ ॥

दाक्षायणयज्ञः (इष्टिः) दक्षो ह वै पार्वतिरेतेन यज्ञेनेष्ट्वा सर्वान् कामानाप । कौ० ४ । ४ ॥
„ स (प्रजापतिः) वै दक्षो नाम । तद्यदेनेन सोऽग्रे ऽयजत तस्माद्दाक्षायणयज्ञो नामोतैनमेके वसिष्ठयज्ञ इत्याचक्षते । श० २ । ४ । ४ । २ ॥

दाता अग्निर्वै दाता स एवास्मै यज्ञं ददाति । कौ० ४ । २ ॥

दारु कार्ष्णायसेन दारु (संदध्यात्) । जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥
„ दारु च चर्म च श्लेष्मणा (संदध्यात्) । जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥

दारुपात्रम् अग्निवद्धै दारुपात्रम् । तै० ३ । २ । ३ । ८ ॥

दावसुनिधनम् (साम) आशिषमेवास्मा एतेनाशास्ते । तां० १५ । ५ । १३ ॥

दाशस्पत्यम् (साम) यां वै गां प्रशᳪंसन्ति दशस्पत्येति तां प्रशᳪंसन्त्यहरेवैतेन प्रशᳪंसन्ति । तां० १३ । ५ । २७ ॥

दाश्वान् (यजु० । १२ । १०६ ॥ १३ । ४२ ॥) यजमानो वै दाश्वान् । श० २ । ३ । ४ । ३८, ४० ॥ ७ । ३ । १ । २६ ॥ ७ । ५ । २ । ३६ ॥

दिङ्निधनम् (देवाः) अन्तरिक्षं दिङ्निधनेन (अभ्यजयन्) । तां० १० । १२ । ३ ॥

दिद्यवः इषवो वै दिद्यवः । श० ५ । ४ । २ । २ ॥

दिव ऊधः (यजु० १२ । २०) आपो दिव्र ऊधः । श० ६ । ७ । ४ । ५ ॥

दिवा व्युष्टिर्वै दिवा, व्येवास्मै वासयति । तां० ८ । १ । १३ ॥

दिवाकीर्त्यम् (अहः) शिरो वै दिवाकीर्त्यम् । तां० २४।१४।४॥२५।१।८॥

दिवाकीर्त्यानि (सामानि) रश्मयो वै दिवाकीर्त्यानि । ऐ० ४ । १९ ॥ तै० १ ।.२ । ४ । २ ॥

" रश्मयो वा एत आदित्यस्य यद्दिवाकीर्त्यानि । तां० ४ । ६ । १३ ॥

" स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यन्तमसाविध्यत्तस्य देवा दिवाकीर्त्यैस्तमोपाघ्नन् । तां० ४.६।१३॥

दिवि श्रव उत्तमम् (यजु० १२ । ११३) चन्द्रमा वाऽ अस्य (सोमस्य) दिवि श्रव उत्तमम् । श० ७ । ३ । १ । ४६ ॥

दिवोऽर्णः (यजु० १२ । ४९) आपो वाऽ अस्य (अग्नेः) दिवोऽर्णः । श० ७ । १ । १ । २४ ॥

दिव्यं नभः आपो वै दिव्यं नभः । श० ३ । ८ । ५ । ३ ॥

दिव्यं रोचनम् असौ वाऽ आदित्यो दिव्यꣳ रोचनम् । श० ६ । २ । १ । २६ ॥

दिव्यानि धामानि (यजु० ११ । ५) इमे वै लोका दिव्यानि धामानि । श० ६ । ३ । १ । १७ ॥

दिव्यो गन्धर्वः (यजु० ११ । ७) असौ वाऽ आदित्यो दिव्यो गन्धर्वः । श० ६ । ३ । १ । १९ ॥

दिव्यौ श्वानौ (, कालकञ्जाख्यानामसुराणांमध्ये) द्वावुदपततां । तौ दिव्यौ श्वानावभवताम् । (पश्यत-मैत्रायणीसंहितां १ । ६ । ९ ॥ काठकसंहितां ८ । १ ॥) । तै० १ । १ । २ । ५-६ ॥

दिशः पञ्च वै दिशः । श० ५ । ४ । ४ । ६ ॥

" पञ्च वा इमा दिशश्चतस्रस्तिरश्च एकोर्ध्वा । ऐ० ६ । ३२ ॥

" तद्या अमुष्मादादित्यादर्वाच्यः पञ्च दिशस्ता नाकसदः । श०८। ६ । १ । १४ ॥

" याः (अमुष्मादादित्यात्) पराच्यः (पञ्च दिशः) ताः पञ्च चूडाः । श० ८ । ६ । १ । १४ ॥

" सप्त दिशः । श० ९ । ५ । २ । ८ ॥

" दिशः सप्तहोत्राः (यजु० १३ । ५) । श० ७ । ४ । १ । २० ॥

दिशः नव दिशः । श० ६ । ३ । १ । २१ ॥ ६ । ८ । २ । १० ॥

„ दश दिशः । श० ६ । ३ । १ । २१ ॥ ८ । ४ । २ । १३ ॥

„ दिशो वै स नाकः स्वर्गो लोकः । श० ८ । ६ । १ । ४ ॥

„ स्वर्गो हि लोको दिशः । श० ८ । १ । २ । ४ ॥

„ ता वाऽ एता देव्यः । दिशो ह्येताः । श० ९ । ५ । १ । ३६ ॥

„ दिशो ऽग्निः । श० ६ । २ । २ । ३४ ॥ ६ । ३ । १ । २१ ॥ ६ । ८ । २ । १० ॥

„ 'विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् (ध्रुवासि दिशो ऽसि '-यजु० ११ । ५८) इति दिशो हैतद्यजुरेतद्वै विश्वे देवा वैश्वानरा एषु लोकेषूखायामेतेन चतुर्थेन यजुषा दिशो ऽदधुः । श० ६ । ५ । २ । ६ ॥

„ ता (दिशः) उ एव विश्वे देवाः । जै० उ० २ । २ । ४ ॥ २ । ११ । ५ ॥

„ स (प्रजापतिः) विश्वान्देवानसृजत तान्दिक्षूपादधात् । श०६। १ । २ । ६ ॥

„ वायुर्दिशां यथा गर्भः । श० १४ । ६ । ४ । २१ ॥

„ दिशो लोगेष्टकाः । श० ७ । ३ । १ । १३, २७ ॥

„ दिशो वै हरितः । श० २ । ५ । १ । ५ ॥

„ दिशः शिक्यं दिग्भिर्हीमे लोकाः शक्नुवन्ति स्थातुं यच्छक्नुवन्ति तस्माच्छिक्यम् । श० ६ । ७ । १ । १६ ॥

„ ऋतवो वै दिशः प्रजननः । गो० उ० ६ । १२ ॥

„ दिशो मे श्रोत्रे श्रिताः । तै० ३ । १० । ८ । ६ ॥

„ अथ यत्तच्छ्रोत्रमासीत्ता इमा दिशो ऽभवन् । जै० उ० २ । २ । ४ ॥

„ तद्यत्तच्छ्रोत्रं दिशस्ताः । जै० उ० १ । २८ । ६ ॥

„ यत्तच्छ्रोत्रं दिश एव तत् । श० १० । ३ । ३ । ७ ॥

„ श्रोत्रं दिशः । जै० उ० ३ । २ । ८ ॥

„ दिशो वै श्रोत्रं दिशः परꣳ रजः । श० ७ । ५ । २ । २० ॥

„ दिशो वै लोहमय्यः (सूच्यः) । श० १३ । २ । १० । ३ ॥

„ दिशो वा अयस्मय्यः (सूच्यः) । तै० ३ । ६ । ६ । ५ ॥

दिशः अवान्तरदिशो रजताः (सूच्यः) । श० १३ । २ । १० । ३ ॥

" अवान्तरदिशा रजताः (सूच्यः) । तै० ३ । ९ । ६ । ५ ।

" दिशो वाऽ अस्य (सूर्यस्य) बुध्न्या उपमा विष्ठाः (यजु० १३ । ३) । श० ७ । ४ । १ । १४ ॥

" छन्दांꣳसि वै दिशः । श० ८।३।१।१२॥९।५।१।३९॥

" दिशो वै विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः (यजु० १५ । ४) ॥ श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

" दिशो वै परिभूश्छन्दः (यजु० १५ । ४ ॥) । श० ८ । ५ । २ । ३ ॥

" दिशः परिधयः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥ ऐ० ५ । २८ ॥

" दिशः परिधानीया । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥

" दिशो वै प्राणः । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥

" दिशः समानः । जै० उ० ४ । २२ । ९ ॥

" दिशां वा एतत्साम यद्वैरूपम् । तां० १२ । ४ । ७ ॥

" अपरिमिता हि दिशः । श० ६ । ५ । २ । ७ ॥

" एतद्वै देवा इमाँल्लोकानुखां कृत्वा दिग्भिरदृꣳहन्दिग्भिः पर्यतन्वन् । श० ६ । ५ । २ । ११ ॥

दीक्षा फाल्गुने दीक्षेरन् । तां० ५ । ९ । ७ ॥

" या वै दीक्षा सा निषत् । तत्सत्रं तस्मादेनानासदित्याहुः । श० ४ । ६ । ८ । १ ॥

" प्राणा दीक्षा । श० १३ । १ । ७ । २ ॥ तै० ३ । ८ । १० । २ ॥

" वाग्दीक्षा । तया प्राणो दीक्षया दीक्षितः । तै० ३ । ७ । ७ । ७ ॥

" वाग्दीक्षा । कौ० ७ । १ ॥

" आपो दीक्षा । तया वरुणो राजा दीक्षया दीक्षितः । तै० ३ । ७ । ७ । ६ ॥

" दिशो दीक्षा । तया चन्द्रमा दीक्षया दीक्षितः । तै० ३ । ७ । ७ । ६ ॥

" पृथिवी दीक्षा । तयाग्निर्दीक्षया दीक्षितः । तै० ३ । ७ । ७ । ४-५ ॥

" अन्तरिक्षं दीक्षा । तया वायुर्दीक्षया दीक्षितः । तै० ३।७।७।५॥

दीक्षा द्यौर्दीक्षा । तयादित्यो दीक्षया दीक्षितः । तै० ३ । ७ । ७ । ५ ॥

„ ओषधयो दीक्षा । तया सोमो राजा दीक्षया दीक्षितः । तै० ३ । ७ । ७ । ६-७ ॥

„ ऋतं वाव दीक्षा सत्यं दीक्षा । ऐ० १ । ६ ॥

„ सत्ये ह्येव दीक्षा प्रतिष्ठिता भवति । श० १४ । ६ । ६ । २४ ॥

„ एतद्दीक्षायै (रूपं) यच्छ्रद्धा । श० १२ । ८ । २ । ४ ॥

„ तपो दीक्षा । श० ३ । ४ । ३ । २ ॥

„ प्रजापतिरकामयताश्वमेधेन यजेयेति । स तपो ऽतप्यत । तस्य तेपानस्य । सप्तात्मनो देवता उदक्रामन् । सा दीक्षाभवत् । तै० ३ । ८ । १० । १ ॥

„ दीक्षा सोमस्य राज्ञः पत्नी । गो० उ० २ । ६ ॥

दीक्षितः स वै धीक्षते । वाचे हि धीक्षते यज्ञाय हि धीक्षते यज्ञो हि वाग् धीक्षितो ह वै नामैतद्यद्दीक्षित इति । श० ३ । २ । २ । ३० ॥

„ कस्य स्विद्धेतोर्दीक्षित इत्याचक्षते श्रेष्ठां धियं क्षियतीति । गो० पू० ३ । १६ ॥

„ न ह वै दीक्षितो ऽग्निहोत्रं जुहुयान्न पौर्णमासेन यज्ञेन यजेत ... न मिथुनं चरेत्... कृष्णाजिनं वसीत कुरीरं धारयेन्मुष्टी कुर्यादङ्गुष्ठप्रभृतयस्तिस्र उच्छ्रयेन्मृगशृङ्गं गृह्णीयात्तेन कषेत । गो० पू० ३ । २१ ॥

„ अथ न दीक्षितः काष्ठेन वा नखेन वा कण्डूयेत । श० ३ । २ । १ । ३१ ॥

„ तस्माद्दीक्षितः कृष्णविषाणयैव कण्डूयेत नान्येन कृष्णविषाणायाः । श० ३ । २ । १ । ३१ ॥

„ नैनं (दीक्षितं) अन्यत्र चरन्तमभ्यस्तमियात् । न स्वपन्तमभ्युदियात् । श० ३ । २ । २ । २७ ॥

„ अथ यद्दीक्षितः । अवत्यं वा व्याहरति क्रुध्यति वा तन्मिथ्याकरोति । श० ३ । २ । २ । २४ ॥

„ स यः सत्यं वदति स दीक्षितः । कौ० ७ । ३ ॥

दीक्षितः अथ य एतमेतद्दीक्षयन्ति तद् द्वितीयम्म्रियते । वपन्ति केशश्मश्रूणि । निकृन्तन्ति नखान् । प्रत्यञ्जन्त्यङ्गानि । प्रत्यचत्यङ्गुलीः । अपवृतो ऽपवेष्टित आस्ते । न जुहोति । न यजते । न योषितं चरति । अमानुषीं वाचं वदति मृतस्य वावैष तदा रूपम्भवति । जै० उ० ३ । ६ । ४ ॥

„ यज्ञादु ह वा एष पुनर्जायते यो दीक्षते । ऐ० ७ । २२ ॥

„ एवं वाऽ एष यज्ञꣳ सम्भरति यो दीक्षते । श० ३ । २ । २ । ३ ॥

„ यद्ह दीक्षते तद्विष्णुर्भवति । श० ३ । २ । १ । १७ ॥

„ उभयं वाऽ एषो ऽत्र भवति यो दीक्षते विष्णुश्च यजमानश्च । श० ३ । २ । १ । १७ ॥

„ यद्वै दीक्षन्ते । अग्नाविष्णू एव देवते यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । १ ॥

„ अग्नीषोमौ वाऽ एतमन्तर्जम्भऽ आदधाते यो दीक्षते । श० ३ । ३ । ४ । २१ ॥ ३ । ६ । ३ । १६ ॥

„ हविर्वाऽ एष देवानां यो दीक्षते तदेनमन्तर्जम्भऽ आदधाते तत्पशुनात्मानं निष्क्रीणीते । श० ३ । ३ । ४ । २१ ॥

„ उद्गृभ्णीते वाऽ एषो ऽस्माल्लोकाद्देवलोकमभि यो दीक्षते । श० ३ । १ । ४ । १ ॥

„ देवान्वाऽ एष उपोत्क्रामति यो दीक्षते । श० ३ । १ । १ । १ ॥

„ देवान्वाऽ एष उपावर्तते यो दीक्षते स देवानामेको भवति । श० ३ । १ । १ । ८, ६ ॥

„ देवगर्भो वा एष यद्दीक्षितः । कौ० ७ । २ ॥

„ गर्भो वा एष भवति यो दीक्षते छन्दाꣳसि प्रविशति तस्मान्न्यक्नाङ्गुलिरिव भवति । श० ३ । २ । १ । ६ ॥

„ गर्भो (यज्ञस्य) दीक्षितः । श० ३ । १ । ३ । २८ ॥

„ स (क्षत्रियः) ह दीक्षमाण एव ब्राह्मणतामभ्युपैति । ऐ० ७ । २३ ॥

„ तस्मादपि (दीक्षितं) राजन्यं वा वैश्यं वा ब्राह्मण इत्येव ब्रूयाद् ब्राह्मणो हि जायते यो यज्ञाज्जायते । श० ३।२।१।४०॥

दीक्षितः सिषासवो (="लुब्धकामाः फलार्थिनः" इति सायणः) वा एते यद्दीक्षिताः । ऐ० ६ । ७ ॥

„ दीक्षितस्यैव प्राचीनवंशशा (शाला) नादीक्षितस्य । श० ३ । १ । १ । ७ ॥

„ (अथर्व० ११ । ५ । ६ ॥) एष (आदित्यः) दीक्षितः । गो० पू० २ । १ ॥

„ यो वै दीक्षितानां पापं कीर्त्तयति तृतीयं (अंशम्) एषाᳬ स पाप्मनो हरत्यश्नोदस्तृतीयं पिपीलिकास्तृतीयम् । तां० ५ । ६ । १० ॥

दीयतम (ऋ० ३ । २७ । १५) चक्षुर्वै दीदयेव । श० १ । ४ । ३ । ७ ॥

दीप्यमानः "वि पाजसा पृथुना शोशुचानः" (यजु० ११ । ४९) इति । वि पाजसा पृथुना दीप्यमान इत्येतत् (शोशुचानः=दीप्यमानः) । श० ६ । ४ । ४ । २१ ॥

दीर्घम् (साम) आयुर्वै दीर्घम् । तां० १३ । ११ । १२ ॥

दीर्घश्मश्रुः (अथर्व० ११ । ५ । ६) एष (आदित्यः) दीर्घश्मश्रुः । गो० पू० २ । १ ॥

दुन्दुभिः परमा वा एषा वाग्या दुन्दुभौ । तै० १ । ३ । ६ । २-३ ॥

„ एषा वै परमा वाग्या सप्तदशानां दुन्दुभीनाम् । श० ५ । १ । ५ । ६ ॥

दुरः वृष्टिर्वै दुरः । ऐ० २ । ४ ॥

दुराध्यः ये वै स्तेना रिपवस्ते दुराध्यः । तां० ४ । ७ । ५ ॥

दुरोणसत् (यजु० १२ । १४) दुरोणसदिति विषमसदित्येतत् । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥

दुर्याः गृहा वै दुर्याः । ऐ० १ । १३ ॥ श० १ । १ । २ । २२ ॥ ३ । ३ । ४ । ३० ॥

दुवस्यत (यजु० १२ । ३०) समिधाग्निं दुवस्यतेति । समिधाग्निं नमस्यतेत्येतत् । श० ६ । ८ । १ । ६ ॥

दुश्चरितम् वृजिनमनृतं दुश्चरितम् । तै० ३ । ३ । ७ । १० ॥

दुष्टरः दुष्टरस्तरन्नरातीरिति दुस्तरो ह्येष रक्षोभिर्नाष्ट्राभिः । श० ५ । २ । ४ । १६ ॥

दूरोहः असौ वै दूरोहो यो ऽसौ (सूर्य्यः) तपति। ऐ० ४। २०॥

दूरोहणम् (यजु० १५। ४) असौ वाऽ आदित्यो दूरोहणं छन्दः। श०
८। ५। २। ६॥

" स्वर्गो वै लोको दूरोहणम्। ऐ० ४। २०, २१॥

दूर्वा स (प्रजापतिः) अब्रवीत्। अयं (प्राणः) वाव माधूर्वीदिति यद-
ब्रवीदधूर्वीन्मेति तस्माद् धूर्वा, धूर्वा ह वै तां दूर्वेत्याचक्षते
परोऽक्षम्। श० ७। ४। २। १२॥

" क्षत्रं वा एतदोषधीनां यद् दूर्वा। ऐ० ८। ८॥

" तदेतत्क्षत्रं प्राणो ह्येष रसो (यद् दूर्वा) लोमान्यन्या ओषधयः,
एतां (दूर्वां) उपदधत्सर्वा ओषधीरुपदधाति। श० ७। ४।
२। १२॥

दूर्वेष्टका प्राणो दूर्वेष्टका। श० ७। ४। २। २०॥

" पशवो वै दूर्वेष्टका। श० ७। ४। २। १०, १९॥

दृवा (इषुः) स यया प्रथमया (इष्वा) समर्पयेन पराभिनत्ति सैका सेयं
पृथिवी सैषा दृवा नाम। श० ५। ३। ५। २९॥

दृशानः (यजु० ११। २३) व्यचिष्टमन्नैरभसं दृशानमित्यवकाशवन्त-
मन्नैरन्नादं दीप्यमानमित्येतत्। श० ६।
३। ३। १९॥

दृषदुपले हनू एव दृषदुपले। श० १। २। १। १७॥

देवक्षेत्रम् देवक्षेत्रं वा एते ऽभ्यारोहन्ति ये स्वर्णिधनमुपयन्ति। तां०
५। ७। ८॥

देवता यां वै देवतामृगभ्यनूक्ता यां यजुः सैव देवता सर्क्सो देवता
तद्यजुः। श० ६। ५। १। २॥ ७। ५। १। ४॥

" त्रयस्त्रिꣳशद् देवताः। तां० ४। ४। ११॥

" अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या
देवताः। ऐ० १। १॥

" आपो वै सर्व्वा देवताः। ऐ० २। १६॥ कौ० ११। ४॥ तै०
३। २। ४। ३॥ ३। ३। ४। ५॥ ३। ७। ३। ४॥ ३। ६।
७। ५॥

देवता अथो खल्वाहुर्यस्यै वाव कस्यै च देवतायै पशुरालभ्यते सैव मेधपतिरिति । ऐ० २ । ६ ॥

,, देवतैव मेधपतिरिति । कौ०१० । ४ ॥"देवाः" शब्दमपि पश्यत ।

देवपात्रम् देवपात्रं वाऽ एष यदग्निः । श० १ । ४ । २ । १३ ॥

,, देवपात्रं द्रोणकलशः । तां० ६ । ५ । ७ ॥

,, देवपात्रं वै वषट्कारः । गो० उ० ३ । १ ॥

,, देवपात्रं वा एतद्यद्वषट्कारः । ऐ० ३ । ५ ॥

,, देवपात्रं वाऽ एष यद्वषट्कारः । श० १ । ७ । २ । १३ ॥

देवयजनम् भौमं देवयजनम् । गो० पू० २ । १४ ॥

,, देवयजनं वै वरं पृथिव्यै । ऐ० १ । १३ ॥

,, ऋत्विजो देवजयनम् । गो० पू० २ । १४ ॥

,, श्रद्धा देवयजनम् । गो० पू० २ । १४ ॥

,, आत्मा देवयजनम् । गो० पू० २ । १४ ॥

देवयानः देवयाना वै ज्योतिष्मन्तः पन्थानः । ऐ० ३ । ३८ ॥

,, त्रयो वै देवयाना पन्थानः । गो० उ० १ । १ ॥

,, ये चत्वारः पथयो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी वियन्ति । मं० २ । १ । १० ॥

,, यमाहुरर्ज्यिज्ञः पन्था इत्येव वाव देवयानः पन्थाः । तां० २५ । १२ । ३ ॥

देवयोनिः अग्निर्वै देवयोनिः । ऐ० १ । २२ । २ । ३ ॥

देवरथः इयं (पृथिवी) वै देवरथः । तां० ७ । ७ । १४ ॥

,, देवरथो वै रथन्तरम् । तां० ७ । ७ । १३ ॥

,, देवरथो वा एष यद्यज्ञः । कौ० ७ । ७ ॥ ऐ० २ । ३७ ॥

,, देवरथो वा अग्नयः । कौ० ५ । १० ॥

देवरातः (=शुनःशेपः) नेति होवाच विश्वामित्रो देवा वा इमं मह्यम-रासतेति स ह देवरातो वैश्वामित्र आस । ऐ० ७ । १७ ॥

देवलोकः त्रयो वै देवलोकाः । गो० उ० १ । १ ॥

,, सप्त वै देवलोकाः । ऐ० २ । १७ ॥

,, सप्त देवलोकाः । श० ६ । ५ । २ । ८ ॥

देवलोकः चतस्रो दिशस्त्रय इमे लोका एते वै सप्त देवलोकाः । श० १० । २ । ४ । ४ ।

„ एकविꣳशतिर्वै देवलोकाः । द्वादशमासाः पञ्चर्त्तवः । त्रय इमे लोकाः । असावदित्य एकविꣳशः । तै० ३ । ८ । १० । ३ ॥ ३ । ८ । ७ । २ ॥ ३ । ८ । २० । २ ॥

„ वेदिर्वै देवलोकः । श० ८ । ६ । ३ । ६ ॥

„ देवलोको वा एष यद्विषुवान् । तां० ४ । ६ । २ ॥

„ उत्तरो वै देवलोकः । श० १२ । ७ । ३ । ७ ॥

„ देवलोको वा इन्द्रः । कौ० १६ । ८ ॥

„ देवलोको वा आदित्यः । कौ० ५ । ७ ॥ गो० उ० १ । २५ ॥

„ आदित्य एव देवलोकः । जै० उ० ३ । १३ । १२ ॥

„ विद्यया देवलोकः (जय्यः) । श० १४ । ४ । ३ । २४ ॥

देवधर्मं देवधर्मं वा एतद्यत्प्रयाजाश्चानुयाजाश्च । ऐ० १ । २६ ॥

देववाहनः (ऋ० ३ । २७ । १४) मनो वै देववाहनं मनो हीदं मनस्विनं भूयिष्ठं वनीवाह्यते । श० १ । ४ । ३ । ६ ॥

देवविशः मरुतो ह वै देवविशो ऽन्तरिक्षभाजना ईश्वराः। कौ० ७ । ८ ॥

देवसत्यम् एतद्ध देवसत्यं यच्चन्द्रमाः । कौ० ३ । १ ॥

देवसंस्फानः आदित्यो वै देवसंस्फानः । गो० उ० ४ । ६ ॥

देवसवः यो वै सोमेन सूयते । स देवसवः । यः पशुना सूयते स देवसवः । तै० २ । ७ । ५ । १ ॥

देवसुरभीणि अग्निर्वै देवानाꣳ होत्रमुपैप्स्यञ्शरीरमधूनुत तस्य यन्माꣳसमासीत्तद् गुग्गुल्वभवद्यत् स्नाव तत्सुगन्धितेजनं (=तृण विशेष इति सायणः) यदस्थि तत् पीतुदार्वेतानि वै देवसुरभीणि । तां० २४ । १३ । ५ ॥

देवसूः एता ह वै देवताः सवस्येशते । तस्माद्देवस्वो नाम तदेनमेता एव देवताः सुवते ताभिः सूतः श्वः सूयते । श० ५ । ३ । ३ । १२ ॥

देवसोमम् एतद्ध देवसोमं यच्चन्द्रमाः । ऐ० ७ । ११ ॥

देवस्थानम् (साम) वरुणाय देवता राज्याय नातिष्ठन्त स एतद्देवस्थानमपश्यत्ततो वै तास्तस्मै। राज्यायातिष्ठन्त तिष्ठन्ते

ऽस्मै समानाः श्रैष्ठ्याय । क्षत्रस्येवास्य प्रकाशो भवति य एवं वेद । तां० १५ । ३ । ३०-३१ ॥

देवस्थानम् (साम) देवस्थानेन वै देवाः स्वर्गे लोके प्रत्यतिष्ठन् । तां० १५ । ३ । २६ ॥

" देवस्थानं भवति प्रतिष्ठायै । तां० १५ । ३ । २८ ॥

देवा अपाव्याः प्राणा वै देवा अपाव्याः । तै० ३ । ८ । १७ । ५ ॥

देवा अभिद्यवः मासा देवा अभिद्यवः । गो० पू० ५ । २३ ॥

देवा आज्यपाः प्रयाजानुयाजा वै देवा आज्यपाः । श० १ । ४ । २ । १७ ॥ १ । ७ । ३ । ११ ॥

देवा आशापालाः शतं वै तल्प्या राजपुत्रा देवा आशापालाः । तै० ३ । ८ । ६ ३ ॥

देवाः दिवा वै नोऽभूदिति । तद् देवानां देवत्वम् । तै० २ । २ । ६ । ६ ॥

" दिवा देवानसृजत नक्तमसुरान् यद्दिवा देवानसृजत तद् देवानां देवत्वम् । ष० ४ । १ ॥

" तस्मै मनुष्यान्त्ससृजानाय (प्रजापतये) दिवा (=दिवसः) देवत्रा (=द्योतनशील इति सायणः) अभवत् । तदनु देवानसृजत । तद् देवानां देवत्वम् । तै० २ । ३ । ८ । ३ ॥

" तद् देवानां देवत्वं यद् दिवमभिपद्यासृज्यन्त । श० ११ । १ । ६ । ७ ॥

" तद्वेव देवानां देवत्वं यदस्मै ससृजानाय दिवेवास । श० ११ । १ । ६ । ७ ॥

" मर्त्या ह वाऽ अग्रे देवा आसुः । स यदैव ते संवत्सरमापुरथामृता आसुः । श० ११ । १ । २ । १२ ॥

" मर्त्या ह वाऽ अग्रे देवा आसुः । स यदैव ते ब्रह्मणापुरथामृता आसुः । श० ११ । २ । ३ । ६ ॥

" (यथा वै मनुष्या एवं देवा अग्र आसन्......त एतं चतुर्विंꣳशतिरात्रमपश्यन्तमाहरन्तेनायजन्त ततो वै तेऽवर्तिं पाप्मानं मृत्युमपहत्य दैवीꣳ सꣳसदमगच्छन्—तैत्तिरीयसंहितायाम् ७ । ४ । २ । १ ॥)

" एतेन वै (अष्टरात्रेण) देवा देवत्वमगच्छन् । देवत्वं गच्छति य एवं वेद । तां० २२ । ११ । २-३ ॥

देवा: उभये ह वाऽ इदमग्रे सहासुर्देवाश्च मनुष्याश्च। श० २ । ३ । ४ । ४ ॥

;, उभयम्वैतत् प्रजापतिर्यश्च देवा यश्च मनुष्याः । श० ६ । ८ । १ । ४ ॥

„ प्राचीनप्रजनना वै देवाः प्रतीचीनप्रजनना मनुष्याः । श० ७ । ४ । २ । ४० ॥

„ प्राची हि देवानां दिक् । श० १ । २ । ५ । १७ ॥

„ देवानां वा एषा दिग्यत्प्राची । ष० ३ । १ ॥

„ यद्वै मनुष्याणां प्रत्यक्षन्तद् देवानां परोक्षमथ यन्मनुष्याणां परोक्षन्तद्व देवानां प्रत्यक्षम् । तां २२ । १० । ३ ॥

„ तस्मै (चन्द्रमसे) ह स्म पूर्वाह्णे देवा अशनमभिहरन्ति मध्यन्दिने मनुष्याऽ अपराह्णे पितरः । श० १ । ६ । ३ । १२ ॥

„ द्राघीयो हि देवायुरंह्रसीयो मनुष्यायुषम् । श० ७ । ३ । १ । १० ॥

„ देवानां वै विधामनु मनुष्याः । श० ६ । ७ । ४ । ८ ॥ ९ । १ । १ । १८ ॥

„ स (सूर्यः) यत्रोदङ्ङावर्त्तते । देवेषु तर्हि भवति देवांस्तर्ह्यभिगोपायत्यथ यत्र दक्षिणावर्त्तते पितृषु तर्हि भवति पितॄंस्तर्ह्यभिगोपायति । श० २ । १ । ३ । ३ ॥

„ देवाश्च वा असुराश्च प्रजापतेर्द्वयाः पुत्रा आसन् । तां० १८ । १ । २ ॥

„ उभये वा एते प्रजापतेरध्यसृजन्त । देवाश्चासुराश्च । तै० १ । ४ । १ । १ ॥

„ सः (प्रजापतिः)......अकामयत प्रजायेयेति । स तपोऽतप्यत । सोऽन्तर्वानभवत् । स जघनादसुरानसृजत......स मुखाद्देवानसृजत । तै० २ । २ । ६ । ५-८ ॥

„ सः (प्रजापतिः) आस्येनैव देवानसृजत......तस्मै ससृजानाय दिवेवास । ...... अथ योऽयमवाङ् प्राणः, तेनासुरानसृजत । ......तस्मै ससृजानाय तम इवास । श० ११ । १ । ६ । ७-८ ॥

„ (प्रजापतेः) कनीयांसः (पुत्राः) देवाः । तां० १८ । १ । २ ॥

देवाः कानीयसा एव देवा ज्यायसा असुराः । श० १४ । ४ । १ । १ ॥

,, कनीयस्विन इव वै तर्हि (युद्धसमये) देवा आसन् भूयस्विनो ऽसुराः । तां० १२ । १३ । ३१ ॥

,, ते देवाश्चक्रमचरञ्छालम् (=चक्रव्यतिरिक्तं साधनमिति सायणः, तत्साधनाः) असुरा आसन् । श० ६ । ८ । १ । १ ॥

,, एकाक्षरं वै देवानामवमं छन्द आसीत्सप्ताक्षरं परममन्वाक्षरम सुराणामवमं छन्द आसीत् पञ्चदशाक्षरं परमम् । तां० १२ । १३ । २७ ॥

,, उत्तरावर्तो वै देवा आहुतिमजुहवुः । अवाचोमसुराः । तै० २ । १ । ४ । १ ॥

,, देवानां वै यज्ञꣳहत्वाꣳ स्यजिघाꣳसन् । तां० १४।१२।७॥

,, त्रयां वै देवाः । वसवो रुद्रा आदित्याः । श० ४ । ३ । ५ । १ ॥

,, एते वै त्रया देवा यद्वसवो रुद्रा आदित्याः । श० १ । ३ । ४ । १२ ॥ १ । ५ । १ । १७ ॥ १ । ८ । ३ । ८ ॥

,, कतमे ते त्रयो देवा इति । इमऽ एव त्रयो लोका एषु हीमे सर्वे देवा इति कतमौ व द्वौ देवावित्यन्नं चैव प्राणश्चेति कतमो ऽध्यर्ध इति यो ऽयं पवत इति कतम एको देव इति प्राण इति । श० ११ । ६ । ३ । १० ॥

,, (=देवताः) त्रयस्त्रिꣳशद् देवताः । तां० ४ । ४ । ११ ॥

,, त्रयस्त्रिꣳशद्वै देवताः । तै० १ । २ । २ । ५ ॥ १ । ८ । ७ । १ ॥ २ । ७ । १ । ३-४ ॥

,, त्रयस्त्रिंशद्वै सर्वा देवताः । कौ० ८ । ६ ॥

,, त्रयस्त्रिꣳशद्वै देवाः प्रजापतिश्चतुस्त्रिꣳशः । श० १२।६।१।३७॥

,, त्रयस्त्रिꣳशद् देवताः प्रजापतिश्चतुस्त्रिꣳशः । तां० १० । १ । १६ ॥ १२ । १३ । २४ ॥

,, अष्टौ वसवः । एकादश रुद्रा द्वादशादित्या इमेऽ एव द्यावा-पृथिवी त्रयस्त्रिꣳश्यौ त्रयस्त्रिꣳशद्वै देवाः प्रजापतिश्चतु-स्त्रिꣳशः । श० ४ । ५ । ७ । २ ॥

,, देवता वाव त्रयस्त्रिꣳशो ऽष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशा·

दित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्च । तां० ६ । २ । ५ ॥

देवाः (त्रयस्त्रिंशत्—) अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्च । ऐ० २ । १८, ३७ ॥ ३ । २२ ॥

,, अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या वाग्द्वात्रिंशी स्वरस्त्रयस्त्रिंशस्त्रयस्त्रिंशद् देवाः । गो० उ० २ । १३ ॥

,, त्रयस्त्रिंशद्वै देवाः सोमपास्त्रयस्त्रिंशदसोमपा अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्चैते देवाः सोमपा एकादश प्रयाजा एकादशानुयाजा एकादशोपयाजा एते ऽसोमपाः पशुभाजनाः । ऐ० २ । १८ ॥

,, त्रयस्त्रिंशद्वै सोमपा देवता याः सोमाहुतीरन्वायत्ता अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या इन्द्रो द्वात्रिंशः प्रजापतिस्त्रयस्त्रिंशस्त्रयस्त्रिंशत्पशुभाजनाः । कौ० १२ । ६ ॥

,, कतमे ते (देवाः) त्रयस्त्रिꣳशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्तऽ एकत्रिꣳशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च । श० ११ । ६ । ३ । ५ ॥

,, कतमे ते (देवाः) त्रयश्च त्री च शता त्रयश्च त्री च सहस्रेति ॥ स (याज्ञवल्क्यः) होवाच । महिमान एवैषां (देवानां) एते त्रयस्त्रिꣳशत्त्वेव देवा इति । श० ११ । ६ । ३ । ४–५ ॥

,, पञ्चधा वै देवा व्युत्क्रामन् अग्निर्वसुभिः, सोमो रुद्रैः, इन्द्रो मरुद्भिः, वरुण आदित्यैः, बृहस्पतिर्विश्वैर्देवैः । गो० उ०२।२॥

,, तस्य वाऽ एतस्य वाससः । अग्नेः पर्यासो भवति वायोरनुछादो नीविः पितॄणाꣳ सर्पाणां प्रघातो विश्वेषां देवानां तन्तव आरोका नक्षत्रणामेवꣳ हि वाऽ एतत्सर्वे देवा अन्वायत्ताः । श० ३ । १ । २ । १८ ॥

,, अग्निर्वायुरादित्य एतानि ह तानि देवानाꣳ हृदयानि (यजु० १६ । ४६) । श० ६ । १ । १ । २३ ॥

,, अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः । ऐ० १ । १ ॥

,, तद्यदेतस्मिन्नाके स्वर्गे लोके देवा असीदंस्तस्माद्देवा नाकसदः । श० ८ । ६ । १ । १ ॥

देवाः द्यौर्वै सर्वेषां देवानामायतनम् । श० १४ । ३ । २ । ८ ॥

" पृथिवी वै सर्वेषां देवानामायतनम् । श० १४ । ३ । २ । ४ ॥

" देवगृहा वै नक्षत्राणि । तै० १ । ५ । २ । ६ ॥

" नरो वै देवानां ग्रामः । तां० ६ । ६ । २ ॥

" स यदेव यजेत । तेन देवेभ्य ऋणं जायते तद्ध्येभ्य एतत्करोति यदेनान्यजते यदेभ्यो जुहोति । श० १ । ७ । २ । २ ॥

" देवा यज्ञियाः । श० १ । ५ । २ । ३ ॥

" दिवं तृतीयं देवान्यज्ञो ऽगात् । ऐ० ७ । ५ ॥

" यज्ञ उ देवानामात्मा । श० ८ । ६ । १ । १० ॥

" यज्ञो वै देवानामात्मा । श० ६ । ३ । २ । ७ ॥

" सर्वेषां वाऽ एष भूतानाᳬं सर्वेषां देवानामात्मा यद्यज्ञः । श० १४ । ३ । २ । १ ॥

" एतद्वै देवानामपराजितमायतनं यद्यज्ञः । तै० ३ । ३ । ७ । ७ ॥

" यज्ञ उ देवानामन्नम् । श० ८ । १ । २ । १० ॥

" ततो देवा यज्ञोपवीतिनो भूत्वा दक्षिणं जान्वाच्योपासीदन् (प्रजापतिः) तान् (देवान्) अब्रवीद् यज्ञो वो ऽन्नममृतत्वं व ऊर्ग्वः सूर्य्यो वो ज्योतिरिति । श० २ । ४ । २ । १ ॥

" किं नु ते ऽस्मासु (देवेषु) इति । अमृतमिति । जै० उ० ३ । २६ । ८ ॥

" ऊर्गिति देवाः (उपासते) । श० १० । ५ । २ । २० ॥

" साम देवानामन्नम् । तां० ६ । ४ । १३ ॥

" एतद्वै देवानां परममन्नं यत्सोमः । एतन्मनुष्याणां यत्सुरा । तै० १ । ३ । ३ । २-३ ॥

" एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमाः । श० १ । ६ । ४ । ५ ॥ २ । ४ । २ । ७ ॥ ११ । १ । ४ । ४ ॥

" हविर्वै देवानाᳬं सोमः । श० ३ । ५ । ३ । २ ॥

" एतद्वै देवानां परममन्नं यन्नीवाराः । तै० १ । ३ । ६ । ८ ॥

" इतः (हविः-) प्रदानाद्धि देवा उपजीवन्ति । श० १ । २ । ५ । २४ ॥

" उभये देवमनुष्याः पशूनुपजीवन्ति । श० ६ । ४ । ४ । २२ ॥

देवाः तस्यै (वाचे) द्वौ स्तनौ देवा उपजीवन्ति स्वाहाकारं च वषट्कारं च । श० १४ । ८ । ९ । १ ॥

,, जीवं वै देवानाꣳ हविरमृतममृतानाम् । श० १ । २ । १ । २० ॥

,, एकं वा एतद्देवानामहः यत्संवत्सरः । तै० ३ । ६ । २२ । १ ॥

,, संवत्सरो वै देवानां गृहपतिः । तां० १० । ३ । ६ ॥

,, संवत्सरो वै देवानां जन्म । श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥

,, संवत्सरः खलु वै देवानां पूः । तै० १ । ७ । ७ । ५ ॥

,, स (अयास्य आङ्गिरसः) प्राणेन देवान् देवलोके ऽदधात् । जै० उ० २ । ८ । ३ ॥

,, प्राणेन वै देवा अन्नमदन्ति । अग्निरु देवानां प्राणः । श० १० । १ । ४ । १२ ॥

,, न ह वा अनार्षेयस्य देवा हविरश्नन्ति । कौ० ३ । २ ॥

,, न हि देवा अहुतस्याश्नन्ति । तै० १ । ६ । ६ । ४ ॥

,, न ह वा अव्रतस्य देवा हविरश्नन्ति । ऐ० ७ । ११ ॥ कौ० ३ । १ ॥

,, सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा । श० १४ । ३ । २ । ९ ॥

,, यज्ञो वै स्वः (यजु० १ । ११) अहर्देवाः सूर्य्यः । श० १ । १ । २ । २१ ॥

,, देवा वै स्वः । श० १ । ९ । ३ । १४ ॥

,, अहरेव देवाः । श० २ । १ । ३ । १ ॥

,, अहर्वै देवा अश्रयन्त रात्रीमसुराः । ऐ० ४ । ५ ॥

,, अहर्वै देवा आश्रयन्त रात्रीमसुराः । गो० उ० ५ । १ ॥

,, देवा वै नृषद्सः (यजु० १४ । २४ ॥) । श० ८ । ४ । २ । ५ ॥

,, गातुविदो हि देवाः । श० ४ । ४ । ४ । १३ ॥

,, देवानां वा एतद्यज्ञियं गुह्यं नाम यच्चतुर्होतारः । ऐ० ५ । २३ ॥

,, युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस इति युञ्जन्तु त्वा देवा इत्येवैतदाह (मरुतः=देवाः-अमरकोषे ३ । ३ । ५८) । श० ५ । १ । ४ । ९ ॥

,, देवा महिमानः (यजु० ३१ । १६) । श० १० । २ । २ । २ ॥

,, अमृता देवाः । श० २ । १ । ३ । ४ ॥

,, देवा वै मृत्योरबिभयुस्ते प्रजापतिमुपाधावꣳस्तेभ्य एतेन

नवरात्रेणामृतत्वं प्रायच्छत् । तां० २२ । १२ । १ ॥

देवाः देवा वै सर्पाः । तेषामियᳬ (पृथिवी) राज्ञी । तै० २ । २ । ६ । २ ॥

" विप्रा विप्रस्य (यजु० ११ । ४) इति प्रजापतिर्वै विप्रो देवा विप्राः । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥

" स ह स न मनुष्यो य एवंविद्देवानाᳪ हैव स एकः । श० १० । ३ । ५ । १३ ॥

" अथ हैते मनुष्यदेवा ये ब्राह्मणाः । ष० १ । १ ॥

" एते वै देवा अहुतादो यद् ब्राह्मणाः । गो० उ० १ । ६ ॥

" ब्राह्मणो वै सर्वा देवताः । तै० १ । ४ । ४ । २, ४ ॥

" आहुतिभिरेव देवान्प्रीणाति दक्षिणाभिर्मनुष्यदेवान्ब्राह्मणांछुश्रुवुषो ऽनूचानान् । श० २ । २ । २ । ६ ॥

" द्वया वै देवाः । अहैव देवा अथ ये ब्राह्मणाः शुश्रुवाᳬसो ऽनूचानास्ते मनुष्यदेवाः । श० २ । २ । २ । ६ ॥ ४ । ३ । ४ । ४ ॥

" विद्वाᳬसो हि देवाः (देवः=सुरः=विबुधः-अमरकोषे १ । १ । ७ ॥ विबुधः=पण्डितः-वैजयन्तीकोषे त्र्यक्षरकांडे पुँल्लिङ्गाध्याये श्लो० ६६ ॥ मेदिनीकोषे धान्तवर्गे श्लो० ३६ ॥) । श० ३ । ७ । ३ । १० ॥

" धर्म इन्द्रो राजेत्याह तस्य देवा विशस्तऽ इमऽ आसत इति श्रोत्रिया अप्रतिग्राहका उपसमेता भवन्ति तानुपदिशति सामानि वेदः सो ऽयमिति (अयमेव भावः-शाङ्खायनश्रौतसूत्रे १६ । २ । २८-३० ॥ आश्वलायनश्रौतसूत्रे १० । ७ । ८ ॥) । श० १३ । ४ । ३ । १४ ॥

" (यजु० १२ । ७५) ऋतवो वै देवाः । श० ७ । २ । ४ । २६ ॥

" वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः । ते देवा ऋतवः । श० २ । १ । ३ । १ ॥

" तस्मात्प्राणा देवाः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥

" प्राणा देवाः । श० ६ । ३ । १ । १५ ॥

" चक्षुर्देवः । गो० पू० २ । १० (११) ॥

" मनो देवः । गो० पू० २ । १० ॥

" मनो वै देववाहनं मनो हीदं मनस्विनं भुयिष्ठं वमीवाह्यते । श० १ । ४ । ३ । ६

देवा: वाक् च वै मनश्च देवानां मिथुनम् । ऐ० ५ । २३ ॥
,, वागेव देवाः । श० १४ । ४ । ३ । १३ ॥
,, वाग्देवः । गो० पू० २ । १० ॥
,, वाग्वै देवानां पुरान्नमास । तै० १ । ३ । ५ । १ ॥
,, वागिति सर्वे देवा: । जै० उ० १ । ६ । २ ॥
,, वायुर्वै देवः । जै० उ० ३ । ४ । ८ ॥
,, सा या पूर्वाहुतिः । ते देवा: । श० २ । ३ । २ । १६ ॥
,, अह्नः पूर्वाह्णे देवा: । श० २ । १ । ३ । १ ॥
,, तस्मै (वृत्राय) ह स्म पूर्वाह्णे देवाः । अशनमभिहरन्ति । श० १ । ६ । ३ । १२ ॥
,, य एवापूर्यते ऽर्धमासः स देवा: । श० २ । १ । ३ । १ ॥
,, य एवापूर्य्यते तं (अर्धमासं) देवा उपायन् । श० १ । ७ । २ । २२ ॥
,, अर्धमासे देवा इज्यन्ते । तै० १ । ४ । ६ । १ ॥
,, देवाश्च वाऽ असुराश्च । उभये प्राजापत्याः प्रजापतेः पितुर्दाय-मुपेयुरेतावेवार्धमासौ (शुक्लकृष्णपक्षौ) । श० १ । ७ । २ । २२॥
,, यशो देवा: । श० २ । १ । ४ । ६ ॥
,, तस्माद् (देवा:) यश: । श० ३ । ४ । २ । ८ ॥
,, देवा वै यशस्कामा: सत्रमासत । तां० ७ । ५ । ६ ॥
,, ते (देवा:) आसत । श्रियं गच्छेम यशः स्यामान्नादाः स्यामेति । श० १४ । १ । १ । ३ ॥
,, श्रीर्देवा: । श० २ । १ । ४ । ६ ॥
,, सर्वे वै देवास्त्विषिमन्तो हरस्विनः । तै० ३ । ८ । ७ । ३ ॥
,, तिर इव वै देवा मनुष्येभ्यः । श० ३ । १ । १ । ८ ॥ ३ । ३ । ४ । ६ ॥
,, परोऽक्षं वै देवा: । श० ३ । १ । ३ । २५ ॥
,, परोऽक्षकामा हि देवाः । श० ६ । १ । १ । २ ॥ ७ । ४ । १ । १०॥
,, परोक्षप्रिया इव हि देवा भवन्ति प्रत्यक्षद्विषः । गो० पू० २ । २१॥
,, यद्व ह किं च देवाः कुर्वते स्तोमेनैव तत्कुर्वते यज्ञो वै स्तोमो यज्ञेनैव तत्कुर्वते । श० ८ । ४ । ३ । २ ॥

देवाः मनो ह वै देवा मनुष्यस्याजानन्ति । श० २ । १ । ४ । १ ॥ २ । ४ । १ । ११ ॥

„ मनो देवा मनुष्यस्याजानन्ति । श० ३ । ४ । २ । ६ ॥

„ (देवाः प्रजापतिमब्रुवन्) शाम्यतेति न श्राम्येति । श० १४ । ८ । २ । २ ॥

„ जाग्रति देवाः । श० २ । १ । ४ । ७ ॥

„ न वै देवाः स्वपन्ति । श० ३ । २ । २ । २२ ॥

„ यो वै देवानां पथैति स ऋतस्य पथैति । श० ४ । ३ । ४ । १६ ॥

„ एकꣳ ह वै देवा व्रतं चरन्ति सत्यमेव । श० ३ । ४ । २ । ८ ॥

„ एकꣳ ह वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं तस्मादु सत्यमेव वदेत् । श० १४ । १ । १ । ३३ ॥

„ सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः । श० १ । १ । १ । ४ ॥ १ । १ । २ । १७ ॥ ३ । ३ । २ । २ ॥ ३ । ६ । ४ । १ ॥

„ सत्यसंहिता वै देवाः । ऐ० १ । ६ ॥

„ सत्यमया उ देवाः । कौ० २ । ८ ॥

„ शैशिरेणर्त्तुना देवाः । त्रयस्त्रिꣳशे ऽमृतꣳ स्तुतं सत्येन रेवतीः क्षत्रम् । हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २ । ६ । १९ । २ ॥

„ त्रिषत्या हि देवाः । ष० १ । १ ॥ तै० ३ । २ । ३ । ८ ॥

„ अपहतपाप्मानो देवाः । श० २ । १ । ३ । ४ ॥

„ अथ देवाः । अन्यो ऽन्यस्मिन्नेव जुह्वतश्चेरुस्तेभ्यः प्रजापतिरात्मानं प्रददौ । श० ५ । १ । १ । २ ॥ ११ । १ । ८ । २ ॥

„ ते देवाः प्रजापतिमेवाभ्ययजन्त । अन्योऽन्यस्यासन्नसुरा अजुहवुः । ......प्रजापतिर्देवानुपावर्तत । गो० उ० १ । ७ ॥

„ अथ देवा ऊर्ध्वं पृष्ठेभ्यो ऽपश्यन् । त उपपक्षावग्रे ऽवपन्त । अथ श्मश्रूणि । अथ केशान् । ततस्ते ऽभवन् । सुवर्गं लोकमायन् । यस्यैवं वपन्ति । भवत्यात्मना । अथो सुवर्गं लोकमेति । तै० १ । ५ । ६ । २ ॥

„ देवा वै छन्दांꣳस्यब्रुवन् युष्माभिः स्वर्गं लोकमयामेति । तां० ७ । ४ । २ ॥

देवाः छन्दोभिर्हि देवाः स्वर्गं लोकं समाश्नुवत। श० ३।९।३।१०॥
,, सर्वैर्वै छन्दोभिरिष्ट्वा देवाः स्वर्गं लोकमजयन्। ऐ० १।६॥
,, यज्ञेन वै देवा दिवमुपोदक्रामन्। श० १।७।३।१॥
,, (यज्ञेन वै देवाः सुवर्गं लोकमायन्। तैत्तिरीयसंहितायाम् ६। ३।४।७॥ पशुना वै देवाः सुवर्गं लोकमायन्। तै० सं० ६।३।१०।२॥)
,, यज्ञेन वै तद्देवा यज्ञमयजन्त यदग्निनाऽग्निमयजन्त ते स्वर्गं लोकमायन्। ऐ० १।१६॥
,, तं (अग्निं) देवा रोहिण्यामादधत ततो वै ते सर्वान्रोहानरोहन्। तै० १।१।२।२॥
,, आनन्दात्मानो हैव सर्वे देवाः। श० १०।३।५।१३॥
,, इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः। कौ० ६।१४॥ गो० उ० १।३॥
,, इन्द्राग्नी वै देवानामोजिष्ठौ। तां० २४।१७।३॥ ष० ३।७॥
,, इन्द्राग्नी वै सर्वे देवाः। कौ० १२।६॥ १६।११॥ श० ६।१। २।२८॥
,, हव्यवाहनो वै (अग्निः) देवानाम्। श० २।६।१।३०॥
,, अग्निर्वै देवानां होता। ऐ० १।२८॥ ३।१४॥
,, अग्निरेव देवानां दूत आस। श० ३।५।१।२१॥
,, वरुणो वै देवानाꣳ राजा। श० १२।८।३।१०॥
,, तस्मादाहुर्विष्णुर्देवानाꣳ श्रेष्ठ इति। श० १४।१।१।५॥
,, रुद्रो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानाम्। कौ० २५।१३॥
,, विश्वे वै देवा देवानां यशस्वितमाः। तै० ३।८।७।२॥ श० १३।१।२।८॥
,, इयं पृथिव्यदितिः सेयं देवानां पत्नी। श० १।३।१।१५, १७॥ ५।३।१।४॥
,, ओषधयो वै देवानां पत्न्यः। श० ६।५।४।४॥
,, देवाननु वयाꣳस्योषधयो वनस्पतयः। श० १।५।२।४॥
,, अर्वावसुर्ह वै देवानां ब्रह्मा। कौ० ६।१३॥
,, अर्वाग्वसुर्ह वै देवानां ब्रह्मा पराग्वसुरसुराणाम्। गो०उ०१।१॥

देवाः बृहस्पतिर्ह वै देवानां ब्रह्मा । कौ० ६ । १३ ॥

,, बृहस्पतिर्वै देवानां ब्रह्मा । श० १ । ७ । ४ । २१ ॥ ४ । ६ । ६ । ७ ॥

,, बृहस्पतिर्वा आङ्गिरसो देवानां ब्रह्मा । गो० उ० १ । १ ॥

,, बृहस्पतिर्वै देवानां पुरोहितः । ऐ० ८ । २६ ॥

,, बृहस्पतिर्वै देवानामुद्गाता । तां० ६ । ५ । ५ ॥

,, तं (शर्यातं [? शर्यातिं] मानवं) देवा बृहस्पतिनोद्गात्रा दीक्षामहा इति पुरस्तादागच्छन् । जै० उ० २ । ७ । २ ॥

,, मरुतो वै देवानां विशः । ऐ० १ । ६ ॥ तां० ६ । १० । १० ॥ १८ । १ । १४ ॥

,, अग्निगुश्चापापश्च । उभौ देवानाᳬ शमितारौ । तै० ३ । ६ । ६ । ४ ॥

,, घृतं वै देवानां फाण्टं मनुष्याणाम् । श० ३ । १ । ३ । ८ ॥

,, घृतं वै देवा वज्रं कृत्वा सोममघ्नन् । गो० उ० २ । ४ ॥

,, देवव्रतं वै घृतम् । तां० १८ । २ । ६ ॥

,, (गुग्गुलु, सुगन्धितेजनम्, पीतुदारु चेति) एतानि वै देवसुरभीणि । तां० २४ । १३ । ५ ॥

,, देवानां वाऽ एतद्रूपं यत्सक्तवः । श० १३ । २ । १ । ३ ॥

,, देवानां वाऽ एतद्रूपं यद्धिरण्यम् । श० १२ । ८ । १ । १५ ॥

,, तद्धि देवानां यच्छृतम् । श० ३ । ८ । ३ । ७ ॥

,, श्रुतकामा इव हि देवाः । तै० ३ । २ । ८ । १२ ॥

,, श्रुतं वै देवानाᳬ हविर्नाश्रुतम् । श० ३ । २ । २ । १० ॥

,, कृत्तिकाः प्रथमं । विशाखे उत्तमे । तानि देवनक्षत्राणि । तै० १ । ५ । २ । ७ ॥

,, देवक्षेत्रं वा एतद्यत्षष्ठमहः । ऐ० ५ । ६ ॥

,, देवक्षेत्रं वै षष्ठमहः । गो० उ० ६ । १० ॥

,, सर्वदेवत्यं षष्ठमहः । कौ० २१ । ४ ॥

,, देवायतनं वै षष्ठमहः । कौ० २३ । ५ ॥

,, गृहा वै देवानां द्वादशाहः । तां० १० । ५ । १६ ॥

,, हयो भूत्वा देवानवहत् । श० १० । ६ । ४ । १ ॥

,, देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति रुदन्ति नृत्यन्ति स्फुटन्ति खिद्यन्त्युन्मीलन्ति निमीलन्ति । ष० ५ । १० ॥

देवाः प्रातर्यावाणः एते वाव देवा प्रातर्यावाणो यदग्निरुषा अश्विनौ। ऐ० २। १५॥

,, छन्दाᳪसि वै देवाः प्रातर्यावाणः। श० ३। ९। ३। ८॥

देवा द्रविणोदाः (यजु० १२। २) प्राणा वै देवा द्रविणोदाः। श० ६। ७। २। ३॥

देवा धिष्ण्याः (यजु० १२। ४६) प्राणा वै देवा धिष्ण्यास्ते हि सर्वा धिय इष्णन्ति। श० ७। १। १। २४॥

देवा मरीचिपाः तस्य (सूर्यस्य) ये रश्मयस्ते देवा मरीचिपाः। श० ४। १। १। २५॥

देवा वयोनाधाः (यजु० १४। ७) प्राणा वै देवा वयोनाधाः प्राणैर्हीदᳪ सर्वं वयुनं नद्धमथो छन्दाᳪसि वै देवा वयोनाधाश्छन्दोभिर्हीदᳪ सर्वं वयुनं नद्धम्। श० ८। २। २। ८॥

देवाव्यम् (यजु० ११। ८) देवाव्यमिति यो देवानवदित्येतत्। श० ६। ३। १। २०॥

देविका प्राणो वा अपानो व्यानस्तिस्रो देव्यः। ऐ० २। ४॥

,, अथैष कः प्रजापतिस्तद्यद्देव्यश्च कश्च तस्माद्देविकाः, पञ्च भवन्ति पञ्च हि दिशः। श० ६। ५। १। ३९॥

,, ता वाऽ एता देव्यः। दिशो ह्येता (देव्यः=दश दिशः–हरिवंशपुराणे २५। ६॥)। श० ९। ५। १। ३९॥

,, छन्दांसि वै देविकाः। कौ० १९। ७॥

,, छन्दाᳪसि देव्यः। श० ९। ५। १। ३९॥

,, अन्तरिक्षं देवी। जै० उ० ३। ४। ८॥

देवी "देविकाः" शब्दं पश्यत।

दैर्घश्रवसम् (साम) दीर्घश्रवा वै राजन्य ऋषिर्ज्योगपरुद्धो ऽशनायᳪश्चरन् स एतद्दैर्घश्रवसमपश्यत्तेन सर्वाभ्यो दिग्भ्यो ऽन्नाद्यमवारुन्ध सर्वाभ्यो दिग्भ्यो ऽन्नाद्यमवरुन्धे दैर्घश्रवसेन तुष्टुवानः। तां० १५। ३। २५॥

दैवातिथम् (साम) देवातिथिः सपुत्रो ऽशनायᳪश्चरन्नरण्य उर्वारूण्यविन्दत्तान्येतेन साम्नोपासीदत्ता अस्मै गावः

पृश्नयो भूत्वोदतिष्ठन् यदेतत्साम भवति पशूनां पुष्ट्यै । तां० ९ । २ । १९ ॥

दैवातिथम् (साम) आ त्वेता निषीदतेति दैवातिथम् । तां० ९ । २ । १८॥

दैवानि पवित्राणि छन्दांसि वै देवानि पवित्राणि । तां० ६ । ६ । ६ ॥

दैवी सभा तं वागेव भूत्वा ऽग्निः प्राविशन्मनो भूत्वा चन्द्रमाश्चक्षुर्भूत्वा-ऽऽदित्यश्श्रोत्रम्भूत्वा दिशः प्राणो भूत्वा वायुः ॥ एषा वै दैवी परिषद्दैवी सभा दैवी संसत् । जै० उ० २ । ११ । १२-१३ ॥

दैवोदासम् (साम) अयन्त इन्द्र सोम इति दैवोदासम् । तां० ९ । २ । ८ ॥

दैव्या अध्वर्य्यवः वत्सा वै दैव्या अध्वर्य्यवः । श० १ । ८ । १ । २७ ॥

दैव्यो होतारः दैव्या वाऽ एते होतारो यत्परिधयो ऽग्नयो हि । श० १ । ८ । ३ । १०, २१ ॥

„ प्राणापानौ वै दैव्या होतारा (=होतारौ) । ऐ० २ । ४ ॥

दैव्यो विशः दैव्यो वाऽ एता विशो यत्पशवः । श० ३ । ७ । ३ । ९ ॥

दोहः "सूददोहाः" शब्दं पश्यत ।

द्यावाक्षामा (यजु०१२ । १) इमे वै द्यावापृथिवी द्यावाक्षामा । श० ६ । ७ । २ । ३ ॥

द्यावापृथिवीयम् (सूक्तम्) चक्षुषी द्यावापृथिवीयम् । कौ० १६ । ४ ॥

द्यावापृथिव्यौ इमे वै द्यावापृथिवी रोदसी (यजु० ११ । ४३ ॥ १२ । १०७ ॥) । श० ६ । ४ । ४ । २ ॥ ६ । ७ । ३ । २ ॥ ७ । ३ । १ । ३० ॥

„ इमे (द्यावापृथिव्यौ) ह याव रोदसी । जै० उ० १ । ३२ । ४ ॥

„ द्यावापृथिवी वै रोदसी । ऐ० २ । ४१ ॥

„ (=रोदसी) यदरोदीत् (प्रजापतिः) तदनयोः (द्यावापृथिव्योः) रोदस्त्वम् । तै० २ । २ । ९ । ४ ॥

„ (वायोः) मेनका च सहजन्या (यजु० १५ । १६) चाप्सरसाविति दिक् चोपदिशा चेति ह स्माह माहित्थिरिमे तु ते द्यावापृथिवी । श० ८ । ६ । १ । १७ ॥

द्यावा पृथिव्यौ इमौ वै लोकौ (=द्यावापृथिव्यौ) रौहिणौ (पुरोडाशौ)। श० १४।२।१।४॥

" इमे ("द्यावापृथिव्यौ" इति सायणः) वै हरी विपक्षसा (यजु० २३।६)। तै० ३।९।४।२॥

" इमे वै द्यावापृथिवी परीशासौ। श० १४।२।१।१६॥

" द्यावापृथिवी वै गोआयुषी। कौ० २६।२॥

" इमे वै द्यावापृथिवी[1] द्यावाक्षामा (यजु० १२।२॥)। श० ६।७।२।३॥

" उपहूते द्यावापृथिवी पूर्वजेऽऋतावरी देवी देवपुत्रेऽइति। तदिमे द्यावापृथिवीऽउपह्वयते ययोरिदꣳ सर्वमधि। श० १।८।१।२६॥

" इमौ वै लोकौ रेतःसिचाविमौ ह्येव लोकौ रेतः सिञ्चत इतो वाऽ अयं (लोकः) ऊर्ध्वꣳ रेतः सिञ्चति धूमꣳ सामुत्र वृष्टिर्भवति तामसावमुतो वृष्टिं तदिमा अन्तरेण प्रजायन्ते। श० ७।४।२।२२॥

" यदा वै द्यावापृथिवी सञ्जानाथेऽअथ वर्षति। श० १।८।३।१२॥

" (यजु० ३८।१५) प्राणोदानौ वै द्यावापृथिवी। श० १४।२।२।३६॥

" इमे हि द्यावापृथिवी प्राणोदानौ। श० ४।३।१।२२॥

" द्यावापृथिवी वै मित्रावरुणयोः प्रियं धाम। तां० १४।२।४॥

" द्यावापृथिवी वै देवानां हविर्धाने आस्ताम्। ऐ० १।२९॥

" द्यावापृथिवी वै सत्यसाधयित्र्यौ। कौ० ४।१४॥

" द्यावापृथिव्योर्वा एष गर्भो यत्सोमो राजा। ऐ० १।२६॥

" द्यावापृथिवी वै प्रतिष्ठे। ऐ० ४।१०॥

" प्रतिष्ठे वै द्यावापृथिवी। कौ० ३।८॥५।२॥८।१॥१६।३॥

" प्रतिष्ठे वै द्यावापृथिव्यौ। गो० उ० १।२०॥

" द्यावापृथिव्य एककपालः पुरोडाशो भवति। श० २।५।१।१७॥

द्युतानो मारुतः यो वाऽ अयं (वायुः) पवतऽ एष द्युतानो मारुतः । श० ३ । ६ । १ । १६ ॥

,, द्युतानो मारुतस्तेषां (देवानां व्रात्यानामिति सायणः) गृहपतिरासीत् । तां० १७ । १ । ७ ॥

द्युमत्तमा (यजु० २७ । ११) द्युमत्तमेति वीर्यवत्तमेत्येतत् । श० ६ । २ । १ । ३२ ॥

द्यौः अद्युतद्दिवया अद इति तद्दिवो दिवत्वम् । तां० २० । १४ । २ ॥

,, अथ यत्कपालमासीत्सा द्यौरभवत् । श० ६ । १ । २ । ३ ॥

,, (प्रजापतिः) व्यानादमुं (द्यु--)लोकम् (प्रावृहत्) । कौ० ६ । १० ॥

,, (असुराः) हरिणीं (पुरं) हादो दिवि चक्रिरे । कौ० ८ । ८ ॥

,, (असुराः) हरिणीं (पुरीम्) दिवि (चक्रिरे) । श० ३ । ४ । ४ । ३ ॥

,, (असुराः) हरिणीं दिवम् (अकुर्वत) । ऐ० १ । २३ ॥

,, हरिणी (=सुवर्णमयी) द्यौः । गो० उ० २ । ७ ॥

,, हरिणीव हि द्यौः । श० १४ । १ । ३ । २९ ॥

,, असौ (द्यौः) हरिणी । तै० १ । ८ । ९ । १ ॥

,, दिवो (रूपं) हरिण्यः (सूच्यः) । तै० ३ । ९ । ६ । ५ ॥

,, दिवो (रूपं) हिरण्यकशिपु । तै० ३ । ९ । २० । २ ॥

,, (यजु० १२ । १८) प्राणो वै दिवः । श० ६ । ७ । ४ । ३ ॥

,, प्राणो ऽसौ (द्यु-) लोकः । श० १४ । ४ । ३ । ११ ॥

,, असौ (द्यौः) जगती । जै० उ० १ । ५५ । ३ ॥

,, जागतो ऽसौ (द्यु-) लोकः । कौ० ८ । ९ ॥

,, दिवि विष्णुर्व्यक्रꣳस्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो यो ऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः । श० १ । ९ । ३ । १० ॥

, असौ वै (द्यु-) लोको ऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः (यजु० १५ । ४) । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

,, असौ वै (द्यु-) लोको विष्पर्धाश्छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ६ ॥

द्यौ: द्यौर्वै शम्भूश्छन्दः (यजु० १५।४॥)। श० ८।५।२।३॥
,, त्रिष्टुबसौ (द्यौः)। श० १।७।२।१५॥
,, असावुत्तमः (लोकः=द्युलोकः) त्रिष्टुप्। तां० ७।३।९॥
,, या द्यौः सा ऽनुमतिः सो एव गायत्री। ऐ० ३।४८॥
,, असौ वै (द्यु-) लोको बृहच्छन्दः (यजु० १५।५)। श० ८।५।२।५॥
,, उपहूत बृहत्सह दिवा। तै० ३।५।८।१॥ श० १।८।१।१६॥
,, द्यौर्बृहत्। तां० १६।१०।८॥
,, द्यौर्वै बृहद्। श० ६।१।२।३७॥
,, बृहद्वयसौ (द्यौः)। श० १।७।२।१७॥
,, असौ (द्यु-) लोको बृहत्। ऐ० ८।२॥
,, असौ (द्यौः) बृहत्। कौ० ३।५॥ तै० १।४।६।२॥ तां० ७।६।१७॥
,, असौ (द्यौः) एवान्तर्यामः। श० ४।१।२।२७॥
,, असौ (द्यौः) विश्वकर्म्मा। तै० ३।२।३।७॥
,, अयं वै (पृथिवी-) लोको मित्रो ऽसौ (द्युलोकः) वरुणः। श० १२।६।२।१२॥
,, द्यावापृथिवी वै मित्रावरुणयोः प्रियं धाम। तां० १४।२।४॥
,, एष वाऽ अतिष्ठा वैश्वानरः (यद् द्यौः)। श० १०।६।१।६॥
,, असौ वै (द्यु-) लोकः समुद्रो नभस्वान् (यजु० १८।४५)। श० ९।४।२।५॥
,, अदो वै ब्रध्नस्य विष्टपं (ऋ० ८।६९।७) यत्र (दिवि) असौ (सूर्यः) तपति। कौ० १७।३॥
,, वागिति द्यौः। जै० उ० ४।२२।११॥
,, मूर्धा त्वाऽएष वैश्वानरस्य (यद् द्यौः)। श० १०।६।१।६॥
,, द्यौर्महदुक्थम्। श० १०।१।२।२॥
,, यत् (अग्नेः) शुचि (रूपं) तद्दिवि (न्यधत्त)। श० २।२।१।१४॥

द्यौः यानि शुक्लानि (लोमानि) तानि दिवो रूपम् । श० ३ । १ । १ । ३ ॥

„ (यदि वेतरथा) यान्येव कृष्णानि (लोमानि) तानि दिवो रूपम् । श० ३ । २ । १ । ३ ॥

„ द्यौर्वा अस्य (अग्नेः) परमं जन्म । श० ६ । २ । ३ । ३६ ॥

„ द्यौः सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । ११ ॥

„ असौ वै (द्यु-) लोकः स्वराट् (यजु० १३ । २४) । श० ७ । ४ । २ । २३ ॥

„ स सुवरिति व्याहरत् । स दिवमसृजत । अग्निष्टोममुक्थ्यमतिरात्रमृचः । तै० २ । २ । ४ । ३ ॥

„ स्वरित्यसौ (द्यु-) लोकः । श० ८ । ७ । ४ । ५ ॥

„ असौ (द्यु-) लोकः स्वः । ऐ० ६ । ७ ॥

„ (प्रजापतिः) स्वरित्येव सामवेदस्य रसमादत्त । सो ऽसौ द्यौरभवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् स आदित्योऽभवद्रसस्य रसः । जै० उ० १ । १ । ५ ॥

„ (सूर्य्यो द्युस्थानः-) सूर्य्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्य इति तदमुं लोकं (=द्युलोकं) लोकानामाप्नोति तृतीयसवनं यज्ञस्य । कौ० १४ । १ ॥

„ द्यौर्वै तृतीयसवनम् । श० १२ । ८ । २ । १० ॥

„ असौ वै (द्यु-) लोकस्तृतीयसवनम् । गो० उ० ४ । १८ ॥

„ साम्नामादित्यो देवतं तदेव ज्योतिर्जागतंच्छन्दो द्यौः स्थानम् । गो० पू० १ । २६ ॥

„ आदित्येन दिवा नक्षत्रैस्तेनासौ लोकस्त्रिवृत् । तां० १० । १ । १ ॥

„ द्यौरसि वायौ श्रिता । आदित्यस्य प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । १० ॥

„ वायुरस्यन्तरिक्षे श्रितः । दिवः प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । ९ ॥

„ द्यौरन्तरिक्षे प्रतिष्ठिता । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥

„ यानि पुण्डरीकाणि तानि दिवो रूपम् । श० ५ । ४ । ५ । १४ ॥

„ साम वा असौ (द्यु-) लोकः । ऋगयम् (भूलोकः) । तां० ४ । ३ । ५ ॥

„ दिवमेव साम्ना (जयति) । श० ४ । ६ । ७ । २ ॥

„ असौ (द्यौः) वै जुहूः । तै० ३ । ३ । १ । १ ॥ ३ । ३ । ६ । ११ ॥

„ असौ (द्यु-) लोक उत्तरौष्ठः । कौ० ३ । ७ ॥

„ द्यौर्वा ऽ उत्तरꣳ सधस्थम् (यजु० १५ । ५४ ॥ १७ । ७३ ॥) । श० ८ । ६ । ३ । २३ ॥ ६ । २ । ३ । ३५ ॥

द्यौ द्यौरुत्तरवेदिः । श०७ । ३ । १ । २७ ॥

,, द्यौरेव तृतीया चितिः । श० ८ । ७ । ४ । १४ ॥

,, द्यौर्वै तृतीयꣳ रजः (यजु० १२ । २० ॥) । श० ६ । ७ । ४ । ५ ॥

,, अथ तृतीययाऽऽवृताऽमुमेव लोकं (दिवं) जयति यदुचाऽमुष्मिँ-लोके । तदेतया चैनं श्रद्धया समधयति यथैवैनमेतच्छ्रद्धयाऽग्ना-घभ्यादधति समयमितो भविष्यतीति । एतं चास्मै लोकम्प्रच्छ-ति यमभिजायते । जैं०उ०३ । ११ । ७ ॥

,, द्यौर्हविर्धानम् । तै० २ । १ । ५ । १ ॥

,, द्यौस्सूक्तम् । जै०उ० ३ । ४ । २ ॥

,, द्यौर्वाऽ अपाꣳ सदनं दिवि ह्यापः सन्नाः । श०७ । ५ । २ । ५६ ॥

,, यदापो ऽसौ (द्यौः) तत् । श० १४ । १ । २ । ९ ॥

,, आपो वै द्यौः । श० ६ । ४ । १ । ९ ॥

,, द्यौर्वै वृष्टिः पूर्वचित्तिः । श० १३ । २ । ६ । १४ ॥ तै०३ । ९।८।२॥

,, वृष्टिर्वै द्यौः । तै० ३ । २ । ८ । ३ ॥ ३ । ३ । ९ । ४ ॥ ३ ८।५।२-३॥

,, वर्षतु ते द्यौरिति (यजु० १ । २५) । श० १ । २ । ४ । १६ ॥

,, तस्यै वाऽ एतस्यै वसोर्धारायै । द्यौरेवात्मा । श०९ । ३ । ३ । १५ ॥

,, किं नु ते मयि (दिवि) इति । तृप्तिरिति । जैं० उ०३ । २६ । ४ ॥

,, तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः । तै० २ । ७ । १६ । ३ ॥ २ । ८ । ६ । ५ ॥ ३ । ७ । ५ । ४–५ ॥ ३ । ७ । ९ । १५ ॥

,, असौ (द्यौः) पिता । तै० ३ । ८ । ९ । १ ॥ श० १३ । १ । ६ । १ ॥

,, उपहूतो द्यौष्पिता । श० १ । ८ । १ । ४१ ॥

,, द्यौर्यशः । श० १२ । ३ । ४ । ७ ॥

,, द्यौरेव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, द्यौर्वै सर्वेषां देवानामायतनम् । श० १४ । ३ । २ । ८ ॥

,, ऐन्द्रो ऽसौ (द्यु-)लोकः । जैं०उ० १ । ३७ । ३ ॥

,, द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी । श० १४ । ८ । ४ । २१ ॥

,, ऐन्द्री द्यौः । तां० १५ । ४ । ८ ॥

,, द्यौर्ब्राह्मणी । जैं० उ० ३ । ४ । ८ ॥

,, प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये। ऐ० ३ । ३३ ॥

द्यौः प्रजापतिर्ह वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ । दिवं वोषसं वा मिथुन्य-
नया स्यामिति तां सम्बभूव । श० १ । ७ । ४ । १ ॥

„ असौ (द्युलोकः) भविष्यत् । तै० ३ । ८ । १८ । ६ ॥

„ सर्वयात्मनार्त्तिमारिष्यसि क्षिप्रे ऽमुं लोकं (=द्युलोकं) एष्यसीति
(द्युलोकगमनम्=मरणम्) । श० १ । ४ । ३ । २१ ॥

„ अप्रतिष्ठितो दरिद्रः क्षिप्रे ऽमुं (द्यु-)लोकमेष्यसि । श० १ । ६ ।
१ । १८ ॥

„ (देवाः) अमुं (द्युलोकं) बर्हिर्णिधनेन (अभ्यजयन्) । तां० १० ।
१२ । ३ ॥

„ द्यौर्लोकं द्युलोकं शस्यया (जयति) । श० १४ । ६ । १ । ९ ॥

द्यौतानम् (साम) द्युतानो मारुतस्तेषां (देवानां ब्रात्यानामिति सायणः)
गृहपतिरासींत्त एतेन स्तोमेनायजन्त ते सर्व
आर्ध्नुवन् यदेतत्साम भवत्यृध्या एव । तां० १७ ।
१ । ७ ॥

द्रप्सः (यजु० १३ । ५) असौ वाऽआदित्यो द्रप्सः । श० ७ । ४ ।
१ । २० ॥

„ स्तोको वै द्रप्सः । गो० उ० २ । १२ ॥

द्रवदिडम् (साम) इमं वाव देवा लोकं द्रवदिडेनाभ्यजयन् । तां० १० ।
१२ । ४ ॥

द्रविणोदाः (यजु० ११ । २१) द्रविणोदा इति द्रविणꣳ ह्येभ्यो ददाति ।
श० ६ । ३ । ३ । १३ ॥

द्रष्टा अग्निर्वै द्रष्टा । गो० उ० २ । १९ ॥

द्रु वनस्पतयो वै द्रु । तै० १ । ३ । ९ । १ ॥

द्रोणकलशः देवपात्रं द्रोणकलशः । तां० ६ । ५ । ७ ॥

„ प्राजापत्यो ह्येष देवतया यद् द्रोणकलशः । तां० ६ ।
५ । ६ ॥

„ प्राजपत्यो द्रोणकलशः । तां० ६ । ५ । १८ ॥

„ प्रजापतिर्वै द्रोणकलशः । श० ४ । ३ । १ । ६ ॥ ४ । ५ ।
५ । ११ ॥

„ यज्ञो वै द्रोणकलशः । श० ४ । ५ । ८ । ५ ॥

द्रोणकलशः राष्ट्रं द्रोणकलशः। तां० ६ । ६ । १ ॥
" प्राणा वै द्रोणकलशः । तां० ६ । ५ । १५ ॥
" यस्य कामयेदसुर्य्यमस्य यज्ञं कुर्य्यां वाचं वृञ्जीयेति द्रोणकलशं प्रोहन्बाहुभ्यामक्षमुपस्पृशेत् । तां० ६ । ५ । १५ ॥

द्वंद्वम् द्वंद्वं वै वीर्यम् । कौ० ८ । ७ ॥ श० १४ । १ । ३ । १ ॥

द्वादश रात्रयः संवत्सरस्य प्रतिमा वै द्वादश रात्रयः । तै० १ । १ । ६ । ७ ॥ १ । १ । ९ । १० ॥

द्वादशाहः तन्त्रं वा एतद्वितायते यदेव द्वादशाहस्तस्यैते मयूखा यद्गायऽयसंख्याथाय । तां० १० । ५ । ६ ॥
" ओको वै देवानां द्वादशाहो यथा वै मनुष्या इमं लोकमाविष्टा एवं देवता द्वादशाहमाविष्टा देवतावताह वा एतेन यजते य एवं विद्वान् द्वादशाहेन यजते । तां० १० । ५ । १५ ॥
" वाग् द्वादशाहः । तां ११ । १० । १९ ॥ १२ । ५ । १३ ॥
" गृहा वै देवानां द्वादशाहः । तां० १० । ५ । १६ ॥
" षट्त्रिंशदहो वा एष यद् द्वादशाहः । ऐ० ४ । २४ ॥
" बृहत्या वा एतदयनं यद् द्वादशाहः । ऐ० ४ । २४ ॥
" ज्येष्ठयज्ञो वा एष यद् द्वादशाहः । ऐ० ४ । २५ ॥
" प्रजापतियज्ञो वा एष यद् द्वादशाहः । ऐ० ४ । २५ ॥

द्वापरः (युगम्) संजिहानस्तु द्वापरः । ऐ० ७ । १५ ॥

द्वाविंशः (स्तोमः) " वर्चो द्वाविंशः " शब्दं पश्यत

द्वितीयः द्वितीयवान् हि वीर्य्यवान् । श० ३ । ७ । ३ । ८ ॥

द्वितीयमहः क्षत्रं द्वितीयम् (अहः) । तां० ११ । ११ । ९ ॥
" वृषण्वद्वा एतदैन्द्रं त्रैष्टुभमहर्यत् द्वितीयम् । तां० ११ । ६ ३ ॥ ११ । ८ । ५ ॥
" वार्ष्मं द्वितीयमहः । तां० ११ । ८ । ४ ॥

द्वितीया चितिः यदूर्ध्वं प्रतिष्ठायाऽ अवाचीनं मध्यात् । तद् द्वितीया चितिः । श० ८ । ७ । ४ । २० ॥
" अन्तरिक्षमेव द्वितीया चितिः । श० ८ । ७ । ४ । १३ ॥

द्विदेवत्याः (ग्रहाः) (यजमानस्य) प्राणाः द्विदेवत्याः । कौ० १३। ५,६॥
" प्राणा वै द्विदेवत्याः । ऐ० २ । २८ ॥

द्विपदाः (ऋचः) पुरुषो द्विपदाः । तै० ३ । ६ । १२ । ३ ॥

द्विपाद् द्विपाद्वाऽ अयं पुरुषः । श० २ । ३ । ४ । ३३ ॥

„ द्विपाद्वै पुरुषः । ऐ० ४ । ३ ॥ ५ । १७,१६,२१ ॥ गो०पू०४।२४॥ गो०उ० ६ । १२ ॥ तै० ३ । ६ । १२ । ३ ॥

„ द्विपाद्यजमानः । कौ० १६ । ११ ॥ तां० ४ । ४ । ११ ॥ तै० । १ । ७ । ४ । ४ ॥

„ चन्द्रमा द्विपात्तस्य पूर्वपक्षापरपक्षौ पादौ । गो० पू० २ । ८ ॥

„ तस्माद् द्विपाच्चतुष्पादमत्ति । तै० २ । १ । ३ । ९ ॥

द्विप्रतिष्ठः द्विप्रतिष्ठः पुरुषः । गो०पू० ४ । २४ ॥ गो० उ०६ । १२ ॥

„ द्विप्रतिष्ठः (पुरुषः) । तै० ३ । ९ । १२ । ३ ॥

„ द्विप्रतिष्ठो वै पुरुषः । ऐ० २ । १८ ॥ २ । ३१ ॥ ५ । ३ । ६ । २ ॥

द्वियजुः (इष्टका) श्रोणी द्वियजुः । श० ७ । ५ । १ । ३५ ॥

„ यजमानो वै द्वियजुः । श० ७ । ४ । २ । १६, २४ ॥

द्विरात्रः व्युष्टिर्वा एष द्विरात्रः । तै० १ । ८ । १० । ३ ॥

द्वैगतम् (साम) द्विगद्वा एतेन भार्गवो द्विः स्वर्गं लोकमगच्छदागत्य पुनरगच्छद् द्वयोः कामयोरवरुध्यै द्वैगतं क्रियते । तां० १४ । ९ । ३२ ॥

द्व्युदासम् (साम) द्व्युदासं भवति स्वर्गस्य वा एतौ लोकस्यावसानदेशौ पूर्वेणैव पूर्व्यमहः सꣳस्थापयन्त्युत्तरेणोत्तरमहरभ्यतिवदन्ति । तां० ५ । ७ । ४ ॥

(ध)

धनम् अमेन्यस्मे नृम्णानि धारयेत्यक्रुध्यन्नो धनानि धारयेत्येवैतदाह । (नृम्णानि=धनानि) । श० १४ । २ । २ । ३० ॥

„ ‘ इहैव रातयः सन्तु ’ (यजु० ३८ । १३) इतीहैव नो धनानि सन्त्वित्येवैतदाह (रातयः=धनानि) । श० १४ । २ । २ । ३६ ॥

„ राष्ट्राणि वै धनानि । ऐ० ८ । २६ ॥

„ तस्माद्धिरण्यं कनिष्ठं धनानाम् । तै० ३ । ११ । ८ । ७ ॥

धनुः वार्त्रघ्नं वै धनुः । श० ५ । ३ । ५ । २७ ॥

धरुणः धरुणो मातरं धयन्नित्यग्निमेवैतत्पृथिवीं धयन्तमाह । श० ४ । ६ । ६ । ६ ॥

धरुणः (यजु० १४। २३) असावेवादित्यो धरुण एकविंशस्तद्य-त्तमाह धरुण इति यदा ह्येवैषो ऽस्तमेत्यथेदं सर्वं ध्रियते। श० ८। ४। १। १२॥

धरुणा (यजु० १३। १६) प्रतिष्ठा वै धरुणम्। श० ७। ४। २। ५॥

धर्त्रम् (यजु० १४। २३) वायुर्वाव धर्त्रं चतुष्टोमः स आभिश्चतसृ-भिर्दिग्भिः स्तुते। श० ८। ४। १। २६॥

,, प्रतिष्ठा वै धर्त्रम्। श० ८। ४। १। २६॥

धर्म्म धर्म्म (साम) भवति धर्म्मस्य धृत्यै। तां० १४। ११। ३४॥

,, वरुणः (एवैनं) धर्म्मपतीनाम् (सुवते)। तै० १। ७। ४। २॥

,, धरुण धर्म्मणां पते। तै० ३। ११। ४। १॥

धर्मः (यजु० ३८। १४) एष धर्मो य एष (सूर्यः) तपत्येष हीदं सर्वं धारयत्येतेनेदं सर्वं धृतम्। श० १४। २। २। २९॥

,, यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्तस्मात्सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीति। श० १४। ४। २। २६॥

,, तस्माद्धर्मात्परं नास्ति। श० १४। ४। २। २३॥

,, धर्मो हैनं (ब्रह्मचारिणं) गुप्तो गोपायति (धर्मो रक्षति रक्षितः- मनुस्मृतौ ८। १५॥)। गो० पू० २। ४॥

,, धर्म्मो वा अधिपतिः। तै० ३। ९। १६। २॥

,, धर्मो मनुष्यः। गो० उ० २। १३॥

,, धर्मो ह्यापः। श० ११। १। ६। २४॥

धवित्राणि प्राणा वै धवित्राणि। १४। ३। १। २१॥

धाता यत् (प्रजापतिर्दिक्षु प्रतिष्ठायेदं सर्वं) दधद्यदधदंतिष्ठत्त-स्माद्धाता। श० ९। ५। १। ३५॥

,, प्रजापतिर्धाता। श० ९। ५। १। ३८॥

,, स यः स धातासौ स आदित्यः। श० ९। ५। १। ३७॥

,, यः सूर्यः स धाता स उ एव वषट्कारः। ऐ० ३। ४८॥

,, यो धाता स वषट्कारः। ऐ० ३। ४७॥

,, अग्निर्वै धाता। तै० ३। ३। १०। २॥

,, मृत्युस्तदभवद्धाता। तै० ३। १२। ९। ६॥

,, चन्द्रमा वै धाता। ष० ४। ६॥

धाता चन्द्रमा एव धाता च विधाता च । गो० उ० १ । १० ॥
„ इयं (पृथिवी) वै धाता । तै० ३ । ८ । २३ । ३ ॥
„ संवत्सरो वै धाता । तै० १ । ७ । २ । १ ॥
„ धाता षड्ढोतॄणाᳬ होता । तै० २ । ३ । ५ । ६ ॥
„ धाता षड्ढोता । तै० २ । ३ । १ । १ ॥
„ धाता षड्ढोत्रा । तै० २ । २ । ८ । ४ ॥
„ धात्रः षट्कपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥

धानाः नक्षत्राणां वा एतद्रूपम् । यद्धानाः । तै० ३ । ८ । १४ । ५ ॥
„ अहोरात्राणां वाऽ एतद्रूपं यद्धानाः । श० १३ । २ । १ । ४ ॥
„ पशवो वै धानाः । कौ० १८ । ६ ॥ गो० उ० ४ । ६ ॥
„ हर्योर्धानाः । श० ४ । २ । ५ । २२ ॥

धान्यम् धान्यमसि धिनुहि देवानिति (यजु० १ । २०) धान्यᳬ हि देवान्धिनवदित्यु हि हविर्गृह्यते । श० १ । २ । १ । १८ ॥
„ दश ग्राम्याणि धान्यानि भवन्ति । व्रीहियवास्तिलमाषा अणुप्रियंगवो गोधूमाश्च मसूराश्च खल्वाश्च खलकुलाश्च । श० १४ । ६ । ३ । २२ ॥

धामच्छद् धामधामच्छद् । श० १० । १ । ३ । १० ॥

धाय्या (ऋक्) यत्र यत्र वै देवा यज्ञस्य छिद्रं निरजानंस्तद्धाय्याभिरपिदधुस्तद्धाय्यानां धाय्यात्वम् । ऐ० ३ । १८ ॥
„ धाय्याभिर्वै प्रजापतिरिमाँल्लोकानधयद्यं यं काममकामयत । ऐ० ३ । १८ ॥
„ पत्नी धाय्या । ऐ० ३ । २३ ॥ गो० उ० ३ । २१, २२ ॥
„ पत्नी वै धाय्या । ऐ० ३ । २४ ॥
„ महिषी धाय्या । कौ० १५ । ४ ॥
„ प्राणो वै धाय्या । कौ० १५ । ४ ॥
„ प्राणो धाय्या । जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥
„ वायुर्धाय्या । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥
„ तद्धैके । पुरस्ताद् धाय्ये दधत्यन्नं धाय्ये, मुखत इदमन्नाद्यं दध्म इति वदन्तस्तदु तथा न कुर्यात् । श० १ । ४ । १ । ३७ ॥
„ स्यूमहैतद्यज्ञस्य यद्धाय्याः । ऐ० ३ । १८ ॥

धारका धारका ह वै नामैषैतया ह वै प्रजापतिः प्रजा धारयाञ्चकार। श० ११।६।२।१०॥

धारा तद्यदब्रवीत् (ब्रह्म) आभिर्वा अहमिदं सर्वं धारयिष्यामि यदिदं किंचेति तस्मात् धारा अभवंस्तद्धाराणां धारात्वं यच्चासु ध्रियते। गो० पू० १।२॥

धियः प्राणा धियः। श० ६।३।१।१३॥

,, कर्म्माणि धियः (ऋ० ३।६२।१० सायणभाष्यं पश्यत)। गो० पू० १।३२॥

धिषणा (यजु० ११।६१) वाग्वै धिषणा। श० ६।५।४।५॥

,, विद्या वै धिषणा। तै० ३।२।२।२॥

,, अन्तो वै धिषणा। ऐ० ५।२॥

धिष्ण्याः एतानि (स्वानः, भ्राजः, अङ्घारिः, बम्भारिः, हस्तः, सुहस्तः, कृशानुः) वै धिष्ण्यानां नामानि। श० ३।३।३।११॥

धूः तेन पुरुषेणासुरानधूर्वन् यदधूर्वंꣳस्तद्धुरां धूस्त्वम्। ष० २।३॥

,, प्राणा वै धुरः। तां० १४।६।१८॥

,, (प्रजापतिः तेभ्यः (देवेभ्यः) एतान् धुरः प्राणान्प्रायच्छन्मनः प्रथममथ प्राणमथ चक्षुरथ श्रोत्रमथ वाचं ताभ्यः पञ्चभ्यो धूर्भ्यः पुरुषञ्च पशूꣳश्च निरमिमीत। ष० २।३॥

,, अग्निर्हि वै धूः। श० १।१।२।६॥

,, (यजु० १।८) एष वै धुर्यो ऽग्निः। तै० ३।२।४।३॥

,, अग्निर्वा ऽ एष धुर्यः (=युगस्य धुरि भव इति सायणः)। श० १।१।२।१०॥

धूमः "दिव्यꣳ सुपर्णं वयसा बृहन्तम्" (यजु० १८।५१) इति दिव्यो वा ऽ एष (अग्निः) सुपर्णो वयसो बृहन्धूमेन (वयः=धूमः)। श० ६।४।४।३॥

,, "पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तम्" (यजु० ११।२३) इति पृथुर्वा ऽ एष (अग्निः) तिर्यङ् वयसो बृहन्धूमेन वयः=धूमः)। श० ६।३।३।१६॥

,, धूमो वा ऽ अस्य (अग्नेः) श्रवो वयः (यजु० १२।१०६) स ह्येनममुष्मिँल्लोके (श्रावयति)। श० ७।३।१।२६॥

धृतव्रत: एष (राजा) च श्रोत्रियश्चैतौ ह वै द्वौ मनुष्येषु धृतव्रतौ। श० ५।४।४।५॥

धृति: क्षेमो वै धृतिः। श० १३।१।४।३॥

धेना (यजु० १३।३८) अन्नं वै धेनाः। श० ७।५।२।११॥

,, धेना बृहस्पतेः पत्नी। गो० उ० २।६॥

धेनु: आपो वै धेनव आपो हीदं सर्वं हिन्वन्ति। कौ० १२।१॥

,, माता धेनुः। श० २।२।१।२१॥५।३।१।४॥

,, इयं (पृथिवी) वै धेनुः। श० १२।६।२।११॥

,, वाग्वै धेनुः। तां० १८।६।२१॥ गो० पू० २।२१॥

,, वाचमेव तद्देवा धेनुमकुर्वत। श० ६।१।२।१७॥

,, वाचं धेनुमुपासीत। श० १४।८।६।१॥

,, स धेन्वै चानडुहश्च (मांसं ?) नाश्नीयाद्धेन्वनडुहौ वाऽ इदᳫं सर्वं बिभृतः। श० ३।१।२।२१॥

,, तदुहोवाच याज्ञवल्क्यो ऽश्नाम्येवाहं (धेन्वनडुहोर्मांसम् ?) अᳫंसलं चेद्भवतीति (पश्यत—का० श्रौ० सू० ७।५३॥ अस्योपरि याज्ञिकदेवकृता टीकाऽपि द्रष्टव्या॥ इदं ब्राह्मणवाक्यं धर्म्मविरुद्धम्। अथवा केनचिदत्र प्रक्षिप्तं स्यात्)। श० ३। १।२।२१॥

"गौः" शब्दमपि पश्यत॥

ध्रुव: (ग्रहः) तद्यदेतं (असुराः) न शेकुरुद्धन्तुं तस्माद् ध्रुवो नाम। श० ४।२।४।१६॥

ध्रुवम् यद्वै स्थिरं यत्प्रतिष्ठितं तद् ध्रुवम्। श० ८।२।१।४॥

,, ध्रुवा सीदेति स्थिरा सीदेत्येतत्। श० ६।१।२।२८॥

ध्रुवा यच्चतुर्ध्रुवायां गृह्णात्यनुष्टुभे तद् गृह्णाति............इयं (पृथिवी) वाऽ अनुष्टुबस्यै वाऽ इदᳫं सर्वं प्रभवति तस्मादु ध्रुवाया एव सर्वो यज्ञः प्रभवति। (ध्रुवा=पृथिवी—यादवप्रकाशकृते वैजयन्तीकोषे द्व्यक्षरकाण्डे नानालिङ्गाध्याये श्लो० ४४)। श० १। ३।२।१६॥

,, इयं (पृथिवी) एव ध्रुवा (ध्रुवा=स्थिरा=अचला=पृथिवी॥ अमरकोषे २।१।२॥)। श० १।३।२।४॥

ध्रुवा पृथिवी ध्रुवा । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥ ३ । ३ । ६ । ११ ॥
,, यजमानो वै ध्रुवा । श० १ । ८ । १ । ३९ ॥
,, आत्मा ध्रुवा । तै० ३ । ३ । १ । ५ ॥ ३ । ३ । ७ । १० ॥
,, आत्मैव ध्रुवा (यज्ञस्य) । श० १ । ४ । ५ । ५ ॥
,, आत्मैव ध्रुवा तद्वाऽ आत्मन एवेमानि सर्वाण्यङ्गानि प्रभवन्ति तस्मादु ध्रुवाया एव सर्वो यज्ञः प्रभवति । श० १ । ३ । २ । २ ॥

ध्रुवा दिक् (="मध्यदेशः" इति सायणः) अथैनं (इन्द्रं) अस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि साध्याश्चाऽऽप्त्याश्च देवाः... ...अभ्यषिञ्चन् ......राज्याय (सायणकृते ऽथर्ववेदभाष्ये ३ । २७ । ५—ध्रुवा दिक् = अधो दिक्) । ऐ० ८ । १४ ॥
,, तस्मादस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि ये के च कुरु-पञ्चालानां राजानः सवशोशीनराणां राज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते राजेत्येनानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥
,, इयं दिक् (ध्रुवा दिक्="अधरा दिक्" इति सायणः) । अदितिः (="भूमिः" इति सायणः) देवता । तै० ३ । ११ । ५ । ३ ॥
,, किंदेवतोऽस्यां ध्रुवायां दिश्यसीति । अग्निदेवत इति । श० १४ । ६ । ६ । २५ ॥

(न)

न (=इव) वियत्सूर्यो न रोचते बृहद्भा इति (यजु० १२ । ३४) वियत्सूर्य इव रोचते बृहद्भा इत्येतत् । श० ६ । ८ । १ । १४ ॥
,, (ऋ० १ । ३६ । १३) "ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविते"ति यद्वै देवानां नेति तदेषामोमिति तिष्ठ देव इव सवितेत्येव । ऐ० २ । २ ॥
,, यद्वै नेत्यृच्योमिति तत् । श० १ । ४ । १ । ३० ॥

नक्तोषासा (यजु० १२ । २) अहोरात्रे वै नक्तोषासा॥ श० ६ । ७ । २।३॥

नक्षत्राणि नवा इमानि क्षत्राण्यभूवन्निति । तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम् । तै० २ । ७ । १८ । ३ ॥
,, ते ह देवा ऊचुः । यानि वै तानि क्षत्राण्यभूवन्न वै तानि क्षत्राण्यभूवन्निति । तद्वै नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम् । श० १ । २ । २ । १८ ॥

नक्षत्राणि यो वा इह यजते । अमुᳫं स लोकं नक्षते । तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम् । तै० १ । ५ । २ । ५ ॥

„ तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वं यन्न क्षियन्ति । गो० उ० १ । ८ ॥

„ (अभेकुरयो ऽप्सरसः । यजु० १८ । ४०) भाकुरयो ह नामैते भाᳫं हि नक्षत्राणि कुर्वन्ति । श० ९ । ४ । १ । ९ ॥

„ नक्षत्राणि वै जनयो ये हि जनाः पुण्यकृतः स्वर्गं लोकं यन्ति तेषामेतानि ज्योतीᳫंषि । श० ६ । ५ । ४ । ८ ॥

„ नक्षत्राणि वै रोचना दिवि (यजु० २३ । ५)। तै० ३ । ९ । ४ । २ ॥

„ अथ यन्नक्षत्राणीत्याख्यायते तल्लोकम्पृणा (इष्टका) । श० १० । ५ । ४ । ५ ॥

„ नक्षत्राणां वाऽ एतद्रूपं यल्लाजाः । श० १३ । २ । १ । ५ ॥

„ नक्षत्राणां वा एतद्रूपम् । यद्धानाः । तै० ३ । ८ । १४ । ५ ॥

„ तानि (पुण्डरीकाणि) नक्षत्राणाᳫं रूपम् । श०५ । ४ । ५ । १४॥

„ देवगृहा वै नक्षत्राणि । तै० १ । ५ । २ । ६ ॥

„ यानि वा पृथिव्याश्चित्राणि तानि नक्षत्राणि । तै० १।५।२।६॥

„ यथैवासौ सूर्य्य एवम् (नक्षत्रम्), तेषाम् (नक्षत्राणाम्) एष (सूर्य्यः) उद्यन्नेव वीर्य्यं क्षत्रमादत्त । श० २।१।२।१८॥

„ ज्योतिर्वै नक्षत्राणि । कौ० २७ । ६ ॥

„ सप्तविᳫं शतिर्न्नक्षत्राणि । तां० २३ । २३ । ३ ॥

„ तानि वाऽ एतानि सप्तविᳫंशतिर्नक्षत्राणि सप्तविᳫंशतिः सप्तविᳫंशतिर्होपनक्षत्राण्येकैकं नक्षत्रमनूपतिष्ठन्ते । श० १० । ५ । ४ । ५ ॥

„ ब्राह्मणो वा अष्टाविᳫंशो नक्षत्राणाम् । तै० १ । ५। ३ । ४॥

„ यावन्त्येतानि नक्षत्राणि तावन्तो लोमगर्ता यावन्तो लोमगर्तास्तावन्तः सहस्रसंवत्सरस्य मुहूर्ताः । श०१० । ४ । ४ । २ ॥

„ कृत्तिकाः प्रथमं । विशाखे उत्तमं । तानि देवनक्षत्राणि । तै० १ । ५ । २ । ७॥

„ यानि देवनक्षत्राणि तानि दक्षिणेन परियन्ति । तै०१।५।२।७॥

नक्षत्राणि एकं द्वे त्रीणि । चत्वारीति वाऽ अन्यानि नक्षत्राण्यथैता एव भूयिष्ठा यत्कृत्तिकाः । श० २ । १ । २ । २ ॥

" अनूराधाः प्रथमम् । अपभरणीरुत्तमम् । तानि यमनक्षत्राणि । तै० १ । ५ । २ । ७ ॥

" यानि यमनक्षत्राणि तान्युत्तरेण (परियन्ति) । तै० १ । ५ । २ । ७–८ ॥

" तस्मात्सोमो राजा सर्वाणि नक्षत्राण्युपैति । ष० ३ । १२ ॥

" नक्षत्राणि स्थ चन्द्रमसि श्रितानि । संवत्सरस्य प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । १३ ॥

" संवत्सरो ऽसि नक्षत्रेषु श्रितः । ऋतूनां प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । १४ ॥

" (नक्षत्राणि) संवत्सरस्य प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । १३ ॥

" नक्षत्राणां वा एषा दिग्यदुदीची । ष० ३ । १ ॥

" यान्येव देवनक्षत्राणि । तेषु कुर्वीत यत्कारी स्यात् । पुण्याह एव कुरुते । तै० १ । ५ । २ । ६ ॥

" यत् पुण्यं नक्षत्र । तद्वषट्कुर्वीतोपव्युषं । यदा वै सूर्य उदेति । अथ नक्षत्रं नैति । यावति तत्र सूर्यो गच्छेत् । यत्र जघन्यं पश्येत् । तावति कुर्वीत । यत्कारी स्यात् । पुण्याह एव कुरुते । तै० १ । ५ । २ । १ ॥

नचिकेताः उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसन्ददौ । तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस । तै० ३ । ११ । ८ । १ ॥ (काठकोपनिषदि १ । १ । १ ॥ महाभारते, अनुशासनपर्वणि, अ० ७१ ॥)

नडः (=नलः) अथैष एव नडो नैषिधो (? नैषधो) यदन्वाहार्यपचनः । श० २ । ३ । २ । २ ॥

नदी तस्माद्यऽ एतासां नदीनां पिबन्ति रिप्रतरा शपनतरा आहनस्य-वादितरा भवन्ति । श० ६ । ३ । १ । २४ ॥

नदीपतिः अपां वाऽ एष पतिर्यन्नदीपतिः । श० ५ । ३ । ४ । १० ॥

नपुंसकम् यच्छिद्युता तेन नपुंसकम् । ष० १ । २ ॥

नभः, नभस्यः (यजु० ७ । ३० ॥ १४ । १५ ॥) एतौ (नभश्च नभस्यश्च) एव वार्षिकौ (मासौ) अमुतो वै दिवो वर्षति तेनो हैतौ नभश्च नभस्यश्च । श० ४ । ३ । १ । १६ ॥

नभः, नभस्यः बिदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽ अङ्गिर आयुना नाम्नेहि (यजु० ५।९॥) इति । श० ३।५।१।३२॥

„ अन्तरिक्षं, वै नभाꣳसि । तस्य रुद्रा अधिपतयः । तै० ३।८।१८।१॥

नभसस्पतिः वायुर्वै नभसस्पतिः । गो० उ० ४।६॥

„ अग्निर्वै नभसस्पतिः । गो० उ० ४।६॥

नमः (यजु० ११।५) अन्नं नमः । श० ६।३।१।१७॥

„ यज्ञो वै नमः । श० २।४।२।२४॥ श० २। ६। १। ४२॥ ६।१।१।१६॥

„ (यजु० १३।८) यज्ञो वै नमः । श० ७।४।१।३०॥

„ तस्मादु ह नायज्ञियं ब्रूयान्नमस्तऽ इति यथा हैनं (अयज्ञियं) ब्रूयाद्यज्ञस्त इति तादृक्तत् । श० ७।४।१।३०॥

नमस्यः (ऋ०३।२७।१३) नमस्यो ह्येषः (अग्निः) । श० १।४।१।२६॥

„ पितरो नमस्याः । श० १।५।२।३॥

नमुचिः (असुरः) 'अपां फेनेन नमुचे (:) शिर इन्द्रोदवर्तयः, विश्वा यदजय(:) स्पृधः' (ऋ० ८।१४।१३) इति पाप्मा वै नमुचिः । श० १२।७।३।४॥

„ इन्द्रस्येन्द्रियमन्नस्य रसꣳ सोमस्य भक्षꣳ सुरयासुरो नमुचिरहरत्सो (इन्द्रः) ऽश्विनौ च सरस्वतीं चोपाधावच्छेपानो ऽस्मि नमुचये न त्वा दिवा न नक्तꣳ हनानि न दण्डेन धन्वना न पृथेन न मुष्टिना न शुष्केण नार्द्रेणाथ मऽ इदमहार्षीक्षिदिं मऽ आजिहीर्षथेति ॥ ते (अश्विनौ सरस्वती च) अब्रुवन् । अस्तु नो ऽत्राप्यथाहरामेति सह न एतदथाहरतेत्यब्रवीदिति ॥ तावश्विनौ च सरस्वती च । अपां फेनं वज्रमसिञ्चन्न शुष्को नार्द्र इति तेनेन्द्रो नमुचेरासुरस्य व्युष्टायाꣳ रात्रावनुदितऽ आदित्ये न दिवा न नक्तमिति शिर उदवासयत् । श० १२।७।३।१—३॥

नमुचिः (असुरः) युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् (ऋ० १० । १३१ । ४ ॥ यजु० १० । ३३ ॥) इत्याश्राव्याहाश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रꣳ सुत्रामाणं यजेति । श० ५ । ५ । ४ । २५ ॥

" "यमश्विना नमुचेरासुरादधि" (यजु० १९ । ३४) इत्यश्विनौ ह्येतं (सोमं) नमुचेरध्याहरताꣳ "सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय" इति... । श० १२ । ८ । १ । ३ ॥

" (नमुचिः) तस्य (इन्द्रस्य) एतयैव सुरयेन्द्रियं वीर्यꣳ सोमपीथमन्नाद्यमहरत्स ह न्यर्णः शिश्ये । श० १२ । ७ । १ । १० ॥

" तस्य (नमुचेः) शीर्षश्छिन्ने लोहितमिश्रः सोमोऽतिष्ठत् । श० १२ । ७ । ३ । ४ ॥

" (नमुचिरुवाच—) न मा शुष्केण नार्द्रेण हनः । न दिवा न नक्तमिति । स एतमपां फेनमसिञ्चत् । न वा एष शुष्को नार्द्रो व्युष्टासीत् । अनुदितः सूर्य्यः । न वा एतद्दिवा । न नक्तं । तस्य (नमुचेः) एतस्मिँल्लोके । अपां फेनेन शिर उदवर्त्तयत् । तै० १ । ७ । १ । ६—७ ॥

" इन्द्रश्च वै नमुचिश्चासुरः समदधातान्न नौ नक्तान्न दिवाहनन्नार्द्रेण न शुष्केणेति तस्य व्युष्टायामनुदित आदित्येऽपां फेनेन शिरोऽच्छिनत् । तां० १२ । ६ । ८ ॥

" नमुचिर्ह वै नामासुर आस तमिन्द्रो निविव्याध तस्य पदा शिरोऽभितष्ठौ स यदभिष्ठित उदबाधत स उच्छ्वङ्कस्तस्य पदा शिरः प्रचिच्छेद ततो रक्षः समभवत् । श० ५ । ४ । १ । ९ ॥

नरः (यजु० १३ । ५२) मनुष्या वै नरः । श० ७ । ५ । २ । ३९ ॥

" मनुष्या नरः । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥

" पुमांसो वै नरः स्त्रियो नार्यः । ऐ० ३ । ३४ ॥

नरः प्रजा वै नरः। ऐ० २।४॥६।२७, ३२॥ श० १।५।१।२०॥
१।८।२।१२॥ गो० उ० ६।८॥

„ नरो वै देवानां ग्रामः। तां० ६।९।२॥

नरकः दश पुरुषे स्वर्गनरकाणि तान्येनं स्वर्गं गतानि स्वर्गं गमयन्ति नरकं गतानि नरकं गमयन्ति। जै० उ० ४।२५।६॥

„ मनो नरको वाङ् नरकः प्राणो नरकश्चक्षुर्नरकश्श्रोत्रं नरकस्त्वङ् नरको हस्तौ नरको गुदं नरकश्शिश्नं नरकः पादौ नरकः। जै० उ० ४।२६।१॥

नराशंसः मनुष्या वै नराशंसः। तै० २।७।५।२॥

„ प्रजा वै नरो वाक् शंसः। ऐ० २।४।६। २७, ३२॥ गो० उ० ६।८॥

„ प्रजा वै नरस्ता अन्तरिक्षमनु वावद्यमानाः प्रजाश्चरन्ति यद्वै वदति शंसतीति वै तदाहुस्तस्मादन्तरिक्षं नराशंसः। श० १।८।२।१२॥

„ अन्तरिक्षं वै नराशंसः। श० १।८।२।१२॥

नराशंसपङ्क्तिः द्विनाराशंसं प्रातःसवनं द्विनाराशंसं माध्यन्दिनं सवनं सकृन्नाराशंसं तृतीयसवनमेष वै यज्ञो नराशंसपङ्क्तिः। ऐ० २।२४॥

नलः "नडः" शब्दं पश्यत।

नवदशः (स्तोमः) "तपो नवदशः" शब्दं पश्यत।

„ यन्नवदशः प्रजननं तेन (अवरुन्धे)। तां० १९। १८।३॥

नवनीतम् नवनीतं गर्भाणाम् (सुरभि)। ऐ० १।३॥

नवरात्रः (प्रजापतिः) तेभ्यः (देवेभ्यः) एतेन नवरात्रेणामृतत्वं प्रायच्छत्। तां० २२।१२।१॥

नवाहः नवाहो वै संवत्सरस्य प्रतिमा। ष० ३।१२॥

नाकः तम् (त्रयस्त्रिंशं स्तोमं) उ नाक इत्याहुर्न हि प्रजापतिः कस्मै चनाकम् (अकम्=दुःखहेतुरिति सायणः)। तां० १०।१।१८॥

„ न हि तत्र गताय कस्मै चनाकं भवति। श० ८।४।१।२४॥

„ न वै तत्र जग्मुषे किञ्चनाकम्। तां० २१।८।४॥

नाकः नाकꣳ रोहति स्वर्गमेव तल्लोकꣳ रोहति। तां० १८।७।१०॥

„ (यजु० १२।२॥) स्वर्गो वै लोको नाकः । श० ६।३।३। १४॥ ६।७।२।४॥

नाकः षट्त्रिंशः (यजु० १४। २३) संवत्सरो वाव नाकः षट्त्रिꣳशस्तस्य चतुर्विꣳशतिरर्धमासा द्वादश मासास्तद्यत्तमाह नाक इति न हि तत्र गताय कस्मै चनाकं भवति। श० ८।४।१।२४॥

नाकः स्वर्गो लोकः दिशो वै स नाकः स्वर्गो लोकः। श० ८।६।१४॥

नाकसदः (इष्टकाः) तद्यदेतस्मिन्नाके स्वर्गे लोके देवा असीदंस्तस्माद्देवा नाकसदः। श० ८।६।१।१॥

„ आत्मा वै नाकसदः। श० ८।६।१।१२, १३॥

„ यऽ इमे चत्वार ऋत्विजो गृहपतिपञ्चमास्ते नाकसदः। श० ८।६।१।११॥

„ तथा अमुष्मादादित्यादर्वाच्यः पञ्च दिशस्ता नाकसदः। श० ८।६।१।१४॥

नानदम् (साम) सो (वृत्र इन्द्रेण) ऽभिहतो व्यनदद्यद् व्यनदत्तन्नानदसामाऽभवत्तन्नानदस्य नानदत्वम्। ऐ० ४।२॥

„ इन्द्रः प्रजापतिमुपाधावद् वृत्रꣳ हनानीति तस्मा एतामनुष्टुभमपहरसं प्रायच्छत्तया नास्तृणुत यदस्तृतो व्यनदत्तन्नानदस्य नानदत्वम्। तां० १२।१३।४॥

„ अभ्रातृव्यं वा एतद् भ्रातृव्यहा साम यन्नानदम्। ऐ० ४।२॥

नाभानेदिष्ठः रेतो वै नाभानेदिष्ठः। ऐ० ६।२७॥ गो०उ०६।८॥

नाभानेदिष्ठम् (सूक्तम्) स एष सहस्रसनिर्मन्त्रो यन्नाभानेदिष्ठम्। ऐ० ५।१४॥

„ यदि नाभानेदिष्ठं रेतो ऽस्यांतरियाद्। ऐ० ५।१५॥

„ रेतो हि नाभानेदिष्ठीयम्। तां० २०।६।२॥

नाभिः प्राणो वा अयं सन्नाभेरिति तस्मान्नाभिस्तन्नाभेर्नाभित्वम्। ऐ० १।२०॥

„ नव प्राणाः...............(नाभिः) दशमी प्राणानाम्। तां० ६।८।३॥

नाभिः नाभिदघ्ना (आसन्दी) भवति । अत्र (नाभिप्रदेशे) वाऽ अन्नं प्रतितिष्ठति......अत्रोऽप्यय रेतस आशयः । श०३। ३। ४।२८ ॥

,, एवꣳ हैव गुदः प्राणः समन्तं नाभि पर्यक्तः । श० ८ । १ । ३ । १० ॥

,, मध्यं वै नाभिर्मध्यमभयम् । श० १ । १ । २ । २३ ॥

,, एतद्धै पशोर्मेध्यतरं यदुपरिनाभि पुरीषसꣳहिततरं यदवाङ् नाभेः । श० ६ । ७ । १ । १० ॥

,, यद्धै प्राणस्यामृतमूर्ध्वं तन्नाभेरूर्ध्वैः प्राणैरुच्चरत्यथ यन्मर्त्यं पराक्तन्नाभिमत्येति । श० ६ । ७ । १ । ११ ॥

नाम तस्मात्पुत्रस्य जातस्य नाम कुर्यात्पाप्मानमेवास्य तदपहत्यपि द्वितीयमपि तृतीयमभिपूर्वमेवास्य तत्पाप्मानमपहन्ति । श० ६ । १ । ३ । ९ ॥

,, राध्नोति हैव य एवं विद्वान्द्वितीयं नाम कुरुते । श० ३ । ६ । २ । २४ ॥

नारायणः पुरुषो ह नारायणो ऽकामयत । अतितिष्ठेयꣳ सर्वाणि भूतान्यहमेवेदꣳ सर्वꣳ स्यामिति स एतं पुरुषमेधं पञ्चरात्रं यज्ञक्रतुमपश्यत्तमाहरत्तेनायजत तेनेष्ट्वात्यतिष्ठत्सर्वाणि भूतानीदꣳ सर्वमभवदतितिष्ठति सर्वाणि भूतानीदꣳ सर्वं भवति य एवं विद्वान् पुरुषमेधेन यजते यो वैतदेवं वेद । (पञ्चरात्रम्=वैष्णवग्रन्थविशेषः ॥ विष्णुः=नारायणः-अमरकोषे १ । १ । १८ ॥) । श० १३ । ६ । १ । १ ॥

,, पुरुषं ह वै नारायणं प्रजापतिरुवाच । गो० पू० ५ । ११ ॥ श० १२ । ३ । ४ । १ ॥

नाराशंसम् अथैतन्मृद्विव छन्दः शिथिरं यन्नाराशंसम् । ऐ० ६ । १६ ॥

,, विकृतिर्वै नाराशंसं किमिव च वै किमिव च रेतो विक्रियते तत्तदा विकृतं प्रजातं भवति । ऐ० ६ । १६ ॥

नाराशंसी यद्ब्रह्मणः शमलमासीत् सा गाथा नाराशꣳस्यभवत् । तै० १ । ३ । २ । ६ ॥

नारी पुमांसो वै नरः स्त्रियो नार्यः । ऐ० ३ । ३४ ॥

नार्मेधसम् (साम) नृमेधसमाङ्गिरसꣳ सत्रमासीनꣳ ऋषभिरभ्याह्वयन् सो ऽग्निमुपाधावत्पाहि नो अग्न एकयेति तं वैश्वानरः पर्य्युदतिष्ठत्ततो वै स प्रत्यतिष्ठत्ततो गातुमविन्दत । तां० ८ । ८ । २२ ॥

नासिका नासिकेऽउ वै प्राणस्य पन्थाः । श० १२ । ६ । १ । १४ ॥

" मध्यमेतत्प्राणानां यन्नासिके । श० १३ । ४ । ४ । ६ ॥

" नासिके वा एते यज्ञस्य यदुष्णिक्ककुभौ । तां०८ । ५ । ४ ॥

निकायश्छन्दः (यजु०१५ । ५) वायुर्वै निकायश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

निगदः ऊर्ग्वै रसो निगदः । कौ० १२ । १ ॥

निग्राभ्याः तद्यदेना उरसि इन्द्रः) न्यगृह्णीत तस्मान्निग्राभ्या नाम । श० ३ । ६ । ४ । १५ ॥

निचाय्य (=दृष्ट्वा) अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्येत्यग्नेर्ज्योतिर्दृष्ट्वेत्येतत् । श० ६ । ३ । १ । १३, ४१ ॥

निचृत् (छन्दः) निचृन्निपूर्वस्य चृतेः । दै० ३ । २० ॥

निदाघः निदाघे वा नि नो ऽग्रं धीयाताऽइति । श० १३ । ८ । १ । ४ ॥

निधनकामम् (साम) अथैतन्निधनकामꣳ सर्वेषां कामानामवरुध्यै । तां० १२ । ९ । १२ ॥

निधनम् (साम) अनायतनं वा एतत्साम यदनिधनम् । तां० ५ । २ । ५॥

" अथ यदस्यां दिशि (=पृथिव्यां) या देवता ये मनुष्या ये पशवो यदन्नाद्यं तत्सर्वं निधनेनाप्नोति । जै० उ० १ ३१ । ६ ॥

" अस्तमितः (आदित्यः) एव निधनम् । जै० उ० १ १२ । ४ ॥

" चन्द्रमा नक्षत्राणि पितर एतन्निधनम् । जै० उ० १ । १६ । २ ॥

" (प्रजापतिः) निधनम्पितृभ्यः (प्रायच्छत्) । जै० उ० १ । १२ । २ ॥

" अमावास्या निधनम् । ष० ३ । १ ॥

" प्रजापतिरेव निधनम् । जै० उ० १ । ५८ । ६ ॥

" (प्रजापतिः) हेमन्तं निधनं (अकरोत्) । जै० उ० १ । १२ । ७ ॥

निधनम् (साम) हेमन्तो निधनम् । ष० ३ । १ ॥
,, (प्रजापतिः) छन्दो निधनम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १३ । ३ ॥
,, (प्रजापतिः) श्रोत्रं निधनम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १३ । ५ ॥
,, (प्रजापतिः) वृष्टिं निधनम् (अकरोत्) । जै०उ०१ । १३ । १॥
,, दिश एव निधनम् । जै० उ० १ । ३६ । ८ ॥
,, मज्जा निधनम् । जै० उ० १ । ३६ । ६ ॥
,, वीर्य्यं वै निधनम् । तां० ७ । ३ । १३ ॥
,, प्रतिष्ठा वै निधनम् । कौ० २७ । ६ ॥ २८ । ३ ॥
निधा पाशा वै निधा । ऐ० ३ । १९ ॥
निधिः पृथिवी ह्येष निधिः । श० ६ । ५ । २ । ३ ॥
निनर्दः बलं निनर्दः । गो० उ० ६ । १२ ॥
निमेषः निमेषो वषट्कारः । तै० २ । १ । ५ । ८ ॥
नियुतः पशवो वै नियुतः । तां० ४ । ६ । ११ ॥ श०४ । ४ । १ । १७ ॥
,, उदानो वै नियुतः । श० ६ । २ । २ । ६॥
निरुक्तम् (गानम्) एतद्ध गायत्रस्य क्रूरं यन्निरुक्तम् (गानम्) । तां० ७ । १ । ८ ॥
,, उच्चैर्निरुक्तमनुब्रूयादेतद्ध वा एकं वाचो ऽनन्ववसितं पाप्मना यन्निरुक्तं तस्मान्निरुक्तमनुब्रूयाद्यजमानस्यैव पाप्मनो ऽपहत्यै । कौ० ११ । १ ॥
,, परिमितं वै निरुक्तम् ॥ श० ५ । ४ । ४ । १३ ॥
,, निरुक्ता हि वाङ् निरुक्तो हि मन्त्रः । श० १। ४।४' ६ ॥
निर्ऋतिः इयं (पृथिवी) वै निर्ऋतिरियं वै तं निरर्पयति यो निर्ऋच्छति । श० ७ । २ । १ । ११ ॥
,, इयं (पृथिवी) वै निर्ऋतिः । श० ५ । २ । ३ । ३ ॥
,, इयं (पृथिवी) निर्ऋतिः । तै० १ । ६ । १ । १ ॥
,, निर्ऋत्यै मूलवर्हणी (=मूलनक्षत्रमिति सायणः) । तै० १ । ५ । १ । ४ ॥ (३ । १ । २ । ३ ॥)
,, पाप्मा वै निर्ऋतिः । श० ७ । २ । १ । १ ॥

निर्ऋति: घोरा वै निर्ऋतिः । श० ७ । २ । १ । ११ ॥
" तिग्मतेजा वै निर्ऋतिः । श० ७ । २ । १ । १० ॥
" कृष्णा वै निर्ऋतिः । श० ७ । २ । १ । ७ ॥
" नैर्ऋतो वै पाशः । श० ७ । २ । १ । १५ ॥
" नैर्ऋता वै तुषाः । श० ७ । २ । १ । ७ ॥
" निर्ऋतेर्वा एतन्मुखं यद्वयांसि यच्छकुनयः । ऐ० २ । १५ ॥
" या वाऽ अपुत्रा पत्नी सा निर्ऋतिगृहीता । श०५।३।१।१३ ॥

निविद: निविद्भिर्न्यवेदयन्तन्निविदां निवित्त्वम् । तै०२। २। ८। ५ ॥
" (देवाः) निविद्भिर्न्यवेदयन् । श० ३ । ६ । ३ । २८ ॥
" तं (यज्ञं) वित्त्वा निविद्भिर्न्यवेदयन्यद्वित्त्वा निविद्भिर्न्यवेदयंस्तन्निविदां निवित्त्वम् । ऐ० ३ । ६ ॥
" अथो अन्नं निविद इत्याहुः । कौ० १५ । ३, ४ ॥
" प्राणा वै निविदः । कौ० १५ । ३, ४ ॥
" स्वर्गस्य हैव लोकस्य रोहो यन्निविद् । ऐ० ३ । १६ ॥
" सौर्य्या वा एता देवता यन्निविदः । ऐ० ३ । ११ ॥
" आदित्यां निवित् । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥
" अथ वै निविदसावेव यो ऽसौ (सूर्य्यः) तपत्येष हीदं सर्वं निवेदयेन्नति । कौ० १४ । १ ॥
" चक्षुर्निवित् । जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥
" यदन्तरात्मंस्तन्निवित् । कौ०१५ । ३ ॥ गो० उ०३ ।२१-२२ ॥
" गर्भा वा एत उक्थानां यन्निविदः । ऐ० ३ । १० ॥
" पेशा वा एत उक्थानां यन्निविदः । ऐ० ३ । १० ॥
" क्षत्रं निविद् । ऐ० २ । ३३ ॥ ३ । १६ ॥

निषध: (सामविशेष:) निषेधेन (वै देवाः पशून्) पर्य्यगृह्णन् । तां०१५। ९ । ११ ॥
" उत्सेधनिषेधौ ब्रह्मसामनी भवत उत्सेधेनवास्मै पशूनुत्सिध्य निषेधेन परिगृह्णाति । तां० १९ । ७ । ४ ॥

निष्केवल्यम् (शस्त्रम्) निष्केवल्यं वह्वचो देवताः प्राच्यः शस्यन्ते वह्य ऊर्ध्वाः,अथैतदिन्द्रस्यैव निष्केवल्यं तन्निष्केवल्यस्य निष्केवल्यत्वम् । कौ० १५ । ४ ॥

निष्केवल्यम्(शस्त्रम्)आत्मा यजमानस्य निष्केवल्यम्। ऐ० ८।२॥
निष्ट्या (नक्षत्रम्) निष्ट्या हृदयम (नक्षत्रियस्य प्रजापतेः)। तै० १। ५।२।२॥
,, (="स्वातिः" इति सायणः) वायोर्निष्ट्या। तै० १। ५।१।३॥ ३।१।१।१०॥
,, यां कामयेत दुहितरं प्रिया स्यादिति। तान्निष्ट्यायां दद्यात्। (पत्युः) प्रियैव भवति। नैव तु (पितुर्गृहं) पुनरागच्छति। तै० १।५।२।३॥
निह्नवः (सामविशेषः) ऋषयो वा इन्द्रं प्रत्यक्षन्नापश्यन् स वसिष्ठोऽकामयत कथमिन्द्रं प्रत्यक्षं पश्येयमिति स एतन्निहवमपश्यत्ततो वै स इन्द्रं प्रत्यक्षमपश्यत्। तां० १५।५।२४॥
,, सेन्द्रं वा एतत्साम यदेतत्साम भवति सेन्द्रत्वाय। तां० १५।५।२४॥
,, निह्नवो भवत्यन्नाद्यस्यावरुध्यै। तां० १५।५।२२॥
निह्नवानं छन्दः एतद्वै निह्नवानं छन्दो यन्न शंसिषमिति। तां०८।८।१२॥
नीवाराः स (बृहस्पतिः) नीवारान्निरवृणीत्। तन्नीवाराणां नीवारत्वम्। तै० १।३।६।७॥
,, अथ बृहस्पतये वाचे। नैवारं चरुं निर्वपति। श० ५।३।३।५॥
,, स (बृहस्पतिः) एतं बृहस्पतये तिष्याय नैवारं चरुं पयसि निरवपत्। तै० ३।१।४।६॥
,, एतद्वै देवानां परममन्नं यन्नीवाराः। तै० १।३।६।८॥
,, एते ब्रह्मणा पच्यन्ते यन्नीवाराः। श० ५।१।४।१४॥
,, एते वै ब्रह्मणा पच्यन्ते यन्नीवाराः। श० ५।३।३।५॥
नृचक्षाः (यजु० १२।२०) प्रजापतिर्वै नृचक्षाः। श० ६।७।४।५॥
,, (यजु० १४।२४) देवा वै नृचक्षसः। श० ८।४।२।५॥
नृम्णम् (यजु० ३८।१४) अमेन्यस्मे नृम्णानि धारयेत्यक्रुध्यन्नो धनानि धारयेत्येवैतदाह। (नृम्णानि=धनानि)। श० १४।२।२।३०॥
,, अन्नं वै नृम्णम्। कौ० २७।४॥

नृमणा (यजु० १२ । १८) प्रजापतिर्वै नृमणा । श० ६ । ७ । ४ । ३, ५ ॥

नृवाहसा (यजु० २३ । ६) अहोरात्रे वै नृवाहसा (नृवाहसौ) । तै० ३ । ९ । ४ । ३ ॥

नृषद् (यजु० १२ । १४) प्राणो वै नृषन्मनुष्या नरस्तद्यो ऽयं मनुष्येषु प्राणो ऽग्निस्तमेतदाह । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥

,, (यजु० १७ । १२) प्राणो वै नृषद् । श० ९ । २ । १ । ८ ॥

,, एष (सूर्यः) वै नृषत् । ऐ० ४ । २० ॥

नेष्टा पत्नीभाजनं वै नेष्टा । ऐ० ६ । ३ ॥ गो० उ० ४ । ५ ॥

,, अग्निर्हि देवानां पात्नीवतो नेष्टर्त्विजाम् । कौ० २८ । ३ ॥

नैपातिथम् (ब्रह्मसाम) सामार्षेयवत् स्वर्गाय युज्यते स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः । तां० १४ । १० । ५ ॥

नैमिशीयाः एतेन (द्वादशसंवत्सराख्येन सत्रेण) वै नैमिशीयाः सर्व्वांमृद्धिमार्ध्नुवन् । तां० २५ । ६ । ४ ॥

नैषादः एतद्वा अवरार्ध्यमन्नाद्यं यन्नैषादः । कौ० २५ । १५ ॥

नौधसम् (साम) देवा वै ब्रह्म व्यभजन्त तान्नोधाः काक्षीवत आगच्छत्ते ऽब्रुवन्नृषिर्नं आगछंस्तस्मै ब्रह्म ददामेति तस्मा एतत्साम प्रायच्छन्यन्नोधसे प्रायच्छंस्तस्मान्नौधसम् । तां० ७ । १० । १० ॥

,, बृहद्ध्येतत्परोक्षं यन्नौधसम् । तां० ७ । १० । ८ ॥

,, ब्रह्म वै नौधसम् । तां० ७ । १० । १० ॥ ११ । ४ । ९ ॥

,, ब्रह्मवर्चसकाम एतेन (नौधसेन) स्तुवीत । तां० ७ । १० । ११ ॥

न्यग्रोधः ते यन्न्यञ्चो ऽरोहंस्तस्मान्न्यङ् रोहति न्यग्रोहो न्यग्रोहो वै नाम तन्न्यग्रोहं सन्तं न्यग्रोध इत्याचक्षते । ऐ० ७ । ३० ॥

,, न्यञ्चो न्यग्रोधा रोहन्ति । श० १३ । २ । ७ । ३ ॥

,, अधि देवा यज्ञेनेष्ट्वा स्वर्गं लोकमायंस्तत्रैतांश्चमसान्न्युब्जंस्ते न्यग्रोधा अभवन् न्युब्जा इति हाप्येनानेतर्ह्याचक्षते कुरुक्षेत्रे ते ह प्रथमजा न्यग्रोधानां तेभ्यो हान्ये ऽधिजाताः । ऐ० ७ । ३० ॥

,, अस्थिभ्य एवास्य स्वधाऽस्रवत्स न्यग्रोधो ऽभवत् । श० १२ । ७ । १ । ९ ॥

न्यग्रोधः तेषां चमसानां रसो ऽवाङैत्ते (न्यग्रोधस्य) ऽवरोधा अभवन्नथ य ऊर्ध्वस्तानि फलानि ऐ० ७ । ३१ ॥

,, परोक्षमिव ह वा एष सोमो राजा यन्न्यग्रोधः । ऐ० ७।३१॥

,, क्षत्रं वा एतद्वनस्पतीनां यन्न्यग्रोधः । ऐ० ७। ३१ ॥ ८। १६ ॥

,, नैयग्रोधेन जन्यः (अभिषिञ्चति) । मित्राण्येवास्मै कल्पयति। तै० १ । ७ । ८ । ७ ॥

न्यर्बुदम् यो वै वाचो भूमा । तन्न्यर्बुदम् । तै० ३ । ८ । १६ । ३ ॥

न्युब्जः "न्यग्रोधः" शब्दं पश्यत ।

न्यूङ्खः अन्नं न्यूङ्खः । कौ० २२ । ६, ८ ॥ २५ । १३ ॥ ३० । ५ ॥

,, अन्नं वै न्यूंखः । ऐ० ५ । ३ ॥ ६ । २९, ३०, ३६ ॥ गो० उ० ६ । ८, १२ ॥

(प)

पक्षिणः ये वै विद्वाᳬसस्ते पक्षिणो ये ऽविद्वाᳬसस्ते ऽपक्षास्त्रिवृत्पञ्चदशावेव स्तोमौ पक्षौ कृत्वा स्वर्गं लोकं प्रयन्ति । तां० १४ । १ । १३ ॥

पक्षौ बृहद्रथन्तरे छन्दो द्यावापृथिवी देवते पक्षौ । श० १० । ३ । २ । ४ ॥

पङ्क्तिः (छन्दः) पङ्क्तिः पचिनी पञ्चपदा । ऐ० ३ । १३ ॥

,, पञ्चपदा पङ्क्तिः । ऐ० ५ । १८, १९, २१ ॥ ६ । २० ॥ कौ० १ । ३, ४ ॥ ११ । २ ॥ १३ । २ ॥ श० ९ । २ । ३ । ४१ ॥ तां० १२ । १ । ६ ॥ गो० पू० ४ । २४ ॥ गो० उ० ४ । ४ ॥

,, अथ यः पङ्क्तिं पञ्चपदां सप्तदशाक्षरां सर्वैर्यज्ञैर्यजमानं स्वर्गं लोकमभिवहन्तीं विद्यात्...। गो० पू० ३ । ८ ॥

,, पञ्चाक्षरा पङ्क्तिः । तै० २ । ७ । १० । २ ॥

,, यस्य दश ताः पङ्क्तिम् । कौ० ६ । २ ॥

,, चत्वारिंशदक्षरा पङ्क्तिः । कौ० १७ । ३ ॥

,, पंक्तिर्विष्णोः पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥

,, पङ्क्तिश्छन्दो मरुतो देवता श्रीवन्तौ । श० १० । ३ । २ । १० ॥

पङ्क्तिः (छन्दः) पङ्क्तिर्वै तन्द्रं छन्दः । श० ८ । २ । ४ । ३ ॥ ८ । ५ । २ । ६ ॥

„ पृथुरिव वै पङ्क्तिः । श० १२ । २ । ४ । ६ ॥ गो० पू० ५ । ४ ॥

„ पक्षौ पङ्क्तयः । श० ८ । ६ । २ । ३, १२ ॥

„ श्रोत्रं पङ्क्तिः । श० १० । ३ । १ । १ ॥

„ पङ्क्तिरूर्ध्वा (दिक्) । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥

„ पाङ्क्तᳪ ह्यन्नम (अद्यं खाद्यं चोष्यं लेह्यं पेयमिति सायणः) । तां० ५ । २ । ७ ॥

„ पाङ्क्तमन्नम् । तां० १२ । १ । ६ ॥

„ पङ्क्तिर्वा अन्नम् । ऐ० ६ । २० ॥

„ अन्नं वै पङ्क्तिः । गो० उ० ६ । २ ॥

„ प्रतिष्ठा वै पङ्क्तिः । कौ० ११ । ३ ॥ १७ । ३ ॥

„ पाङ्क्त इतर आत्मा लोम त्वङ् माᳪसमस्थि मज्जा । तां० ५ । १ । ४ ॥

„ पाङ्क्तो ऽयं पुरुषः पंचधा विहितो लोमानि त्वङ् मांसमस्थि मज्जा । ऐ० २ । १४ ॥ ६ । २९ ॥

„ पाङ्क्तः पुरुषः । कौ० १३ । २ ॥ तां० २ । ४ । २ ॥ गो० उ० ४ । ७ ॥

„ यजमानच्छन्दसं पङ्क्तिः । कौ० १७ । २ ॥

„ पाङ्क्तः पशुः । श० १ । ५ । २ । १६ ॥

„ पाङ्क्ताः पशवः । ऐ० ३ । २३ ॥ ४ । ३ ॥ ५ । ४, ६, १८, १९ ॥ कौ० १३ । २ ॥ तै० १ । ६ । ३ । २ ॥ तां० २ । ४ । २ ॥ गो० उ० ३ । २० ॥ ४ । ७ ॥

„ पांक्तो यज्ञः । श० १ । ५ । २ । १६ ॥ गो० पू० ४ । २४ ॥ गो० उ० २ । ३ ॥ ३ । २० ॥ ४ । ४, ७ ॥

„ पाङ्क्तो वै यज्ञः । ऐ० १ । ५ ॥ ३ । २३ ॥ ५ । ४, १८, १९ ॥ कौ० १ । ३, ४ ॥ २ । १ ॥ १३ । २ ॥ तै० १ । ३ । ३ । १ ॥ तां० ६ । ७ । १२ ॥

„ पाङ्क्तं हि पञ्चममहः । कौ० २६ । ५ ॥

पञ्च चूडाः (इष्टकाः) होत्राः पञ्च चूडाः । श० ८ । ६ । १ । ११ ॥
,, याः (अमुष्मादादित्यात्) पराच्यः (पञ्च दिशः) ताः पञ्च चूडाः । श० ८ । ६ । १ । १४ ॥
,, मिथुनं पञ्च चूडाः । श० ८ । ६ । १ । १२ ॥
,, प्रजा पञ्च चूडाः । श० ८ । ६ । १ । १३ ॥

पञ्च जनाः देवमनुष्याणां गन्धर्वाप्सरसां सर्पाणां च पितृणां चैतेषां वा एतत्पञ्चजनानामुक्थम (वैश्वदेवम्) । ऐ० ३ । ३१ ॥
,, विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना इति । ये देवा असुरेभ्यः पूर्वे पञ्च जना आसन् य एवासावादित्ये पुरुषो यश्चन्द्रमसि यो विद्युति यो ऽप्सु यो ऽयमक्षन्नन्तरेप एव ते । तदेषा (अदितिः) एव । जै० उ० १ । ४१ । ७॥

पञ्चदशः (स्तोमः) क्षत्रं वा एतदहरभिनिर्वदति यत्पञ्चदशम् । तां० ११ । ११ । ८ ॥
,, क्षत्रं पञ्चदशः । ऐ० ८ । ४ ॥ तां० १६ । १७ । ३ ॥
,, तस्माद्राजन्यस्य पञ्चदश स्तोमः । तां० ६ । १ । ८॥
,, तान् (पशून्) इन्द्रः पञ्चदशेन स्तोमेन नाप्नोत् । तै० २ । ७ । १४ । २ ॥
,, ग्रीष्मेण देवा ऋतुना रुद्राः पञ्चदशे स्तुतम् । बृहता यशसा बलम् । हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २ । ६ । १९ । १ ॥
,, ओजो वा इन्द्रियं वीर्य्यं पञ्चदशः । ऐ० ८ । ३, ४ ॥
,, ओजो वीर्य्यं पञ्चदशः । तां० ११ । ६ । ११ ॥ ११ । ११ । १४ ॥ २० । १० । १ ॥
,, तं (पञ्चदशं स्तोमं) वोजो बलमित्याहुः । तां० १० । १ । ६ ॥
,, वीर्य्यं पञ्चदशः । ऐ० ८ । ४ ॥
,, त्रैष्टुभः पञ्चदशस्तोमः । तां० ५ । १ । १४ ॥
,, पञ्चदशो वै वज्रः । कौ० ७ । २ ॥ १५ । ४ ॥ ष० ३ । ४ ॥ तै० २ । २ । ७ । २ ॥ तां० २ । ४ । २ ॥ श० १ । ३ । ५ । ७ ॥ ३ । ६ । ४ । २५ ॥

पञ्चदशः (स्तोमः) पञ्चदशो हि वज्रः । श० ४ । ३ । ३ । ४ ॥

„ वज्रो वै पञ्चदशः । तां० १६ । २ । ५ ॥

„ पञ्चदश एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ चन्द्रमा वै पञ्चदशः । एष हि पञ्चदश्यामपक्षीयते पञ्चदश्यामापूर्य्यते । तै० १ । ५ । १० । ५ ॥

„ अर्द्धमासः पञ्चदशः । तां० ६ । २ । २ ॥

„ अर्द्धमास एव पञ्चदशस्यायतनम् । तां० १० । १ । ४ ॥

„ यत्पञ्चदशो यदेवास्य (यजमानस्य) उरस्तो बाह्वोरपूतं तत्तेनापहन्ति । तां० १७ । ५ । ६ ॥

„ ग्रीवाः पञ्चदशाश्चतुर्दश ह्येवैतस्यां करूकराणि भवन्ति वीर्यं पञ्चदशम् । गो० पू० ५ । ३ ॥

„ प्राणो वै त्रिवृदात्मा पञ्चदशः । तां० १९ । ११ । ३ ॥

„ पञ्चदशश्चैकविंशश्च बार्हतौ तौ गौश्चाविश्चान्वसृज्येतां तस्मात्तौ बार्हतं प्राचीनं भास्कुरुतः । तां० १० । २ । ६ ॥

पञ्चबिलः तद्यत्पञ्च हवीꣳषि भवन्ति तेषां पञ्च बिलानि तस्माच्चरुः पञ्चबिलो नाम । श० ५ । ५ । १ । १ ॥

पञ्चममहः पाङ्क्तं हि पञ्चममहः । कौ० २९ । ५ ॥

„ पशवः पञ्चममहः । कौ० २३ । ४ ॥

„ विषुवान्वै पञ्चममहः । तां० १३ । ४ । १६ ॥ १३ । ५ । १० ॥

पञ्चमी चितिः यजमान एव पञ्चमी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । १६ ॥

„ ग्रीवा एव पञ्चमी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । २१ ॥

पञ्चविंशः (स्तोमः) एतेन वै गौराङ्गिरसः सर्वं पाप्मानमतरत्सर्वं पाप्मानन्तरत्येतेन स्तोमेन तुष्टुवानः । तां० १६ । ७ । ७ ॥

„ चतुर्विꣳशो वै संवत्सरो ऽन्नं पञ्चविꣳशम् । तां० ४ । १० । ५ ॥

„ "गर्भाः पञ्चविंशः" शब्दमपि पश्यत ।

पञ्च व्याहृतयः ता वा एताः पञ्च व्याहृतयो भवन्त्यो श्रावयास्तु श्रौषड्यज ये यजामहे वौषडिति । श० १ । ५ । २ । १६ ॥

पञ्च व्याहृतयः ओ श्रावयेति वै देवाः । विराजमभ्याजुहुवुरस्तु श्रौषडिति वत्समुपावासृजन् यजेत्युदजयन्ये यजामहऽ इत्युपासीदन्वषट्कारेणैव विराजमदुहतेयं (पृथिवी) वै विराडस्यै वाऽ एष दोहः । श॰ १ । ५ । २ । २० ॥

„ ओ श्रावयेति वै देवाः । पुरोवातꣳ ससृजिरे ऽस्तु श्रौषडित्यभ्राणि समप्लावयन्यजेति विद्युतं ये यजामह इति स्तनयित्नुं वषट्कारेणैव प्रावर्षयन् । श॰ १ । ५ । २ । १८ ॥

पञ्चहोता तस्मै (ब्रह्मणे) पञ्चमꣳ हूतः प्रत्यश्रृणोत् । स पञ्चहूतोऽभवत् पञ्चहूतो ह वै नामैषः । तं वा एतं पञ्चहूतꣳ सन्तं पञ्चहोतेत्याचक्षते परोक्षप्रिया इव हि देवाः । तै॰ २ । ३ । ११ । ३-४ ॥

„ संवत्सरो वै पञ्चहोता । तै॰ २ । २ । ३ । ६ ॥

„ अग्निः पञ्चहोत्रा । तै॰ २ । २ । ८ । ४ ॥

„ अग्निः पञ्चहोता । तै॰ २ । ३ । १ । १ ॥

„ अग्निः पञ्चहोतॄणाꣳ होता । तै॰ २ । ३ । ५ । ६ ॥

„ सुवर्ग्यो वै पञ्चहोता । तै॰ २ । २ । ८ । २ ॥

„ चातुर्मास्यानि पञ्चहोतुः (निदानम) । तै॰ २ । २ । ११ । ६॥

पञ्चालाः क्रिवय इति ह वै पुरा पञ्चालानाचक्षते । श॰ १३ । ५ । ४ । ७ ॥

„ तस्मादस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि ये के च कुरुपञ्चालानां राजानः सवशोशीनराणां राज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते राजेत्येनानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ॰ ८ । १४ ॥

पतङ्गः पतन्निव ह्येष्वङ्गेष्वति रथमुदीक्षते । पतङ्ग इत्याचक्षते । जै॰ उ॰ ३ । ३५ । २ ॥

„ (ऋ॰ १० । १७७ । १) प्राणो वै पतङ्गः । कौ॰ ८ । ४ । जै॰ उ॰ ३ । ३५ । २ ॥ ३ । ३६ । २ ॥

पतिः तस्मादेकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति नैकस्यै बहवः सहपतयः । ऐ॰ ३ । २३ ॥

„ तस्मादेकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति न हैकस्या बहवः सहपतयः । गो॰ उ॰ ३ । २० ॥

पत्नी श्रियै वाऽ एतद्रूपं यत्पत्न्यः । श० १३ । २ । ६ । ७ ॥
,, श्रिया वा एतद्रूपम् । यत्पत्न्यः । तै० ३ । ६ । ४ । ७—८ ॥
,, गृहा वै पत्न्यै प्रतिष्ठा । श० ३ । ३ । १ । १० ॥
,, गार्हपत्यभाजो वै पत्न्यः । कौ० ३ । ६ ॥
,, अयज्ञो वा एषः । यो ऽपत्नीकः । तै० २ । २ । २ । ६ ॥
,, तस्मादपत्नीको ऽप्यग्निहोत्रमाहरेत् । ऐ० ७ । ६ ॥
,, अथो अर्द्धो वा एष आत्मनः । यत्पत्नी । तै० ३ । ३ । ३ । ५ ॥
,, जघनार्धो वाऽ एष यज्ञस्य यत्पत्नी । श० १ । ३ । १ । १२ ॥ २ । ५ । २ । २६ ॥ ३ । ८ । २ । २ ॥
,, पूर्वार्धो वै यज्ञस्याध्वर्युर्जघनार्धः पत्नी । श० १ । ९ । २ । ३ ॥
,, पत्नी धाय्या । गो० उ० ३ । २१, २२ ॥ ऐ० ३ । २३ ॥
,, पत्नी स्थाली । तै० २ । १ । ३ । १ ॥
,, पत्नीभाजनं वै नेष्टा । ऐ० ६ । ३ ॥ गो० उ० ४ । ५ ॥
,, अन्तभाजो वै पत्न्यः । कौ० १६ । ७ ॥
,, चतस्रो जायाः (=पत्न्यः) उपक्लृप्ता भवन्ति । महिषी वावाता परिवृक्ता पालागली । श० १३ । ४ । १ । ८ ॥
,, सा (सुकन्या) होवाच यस्मै मां पिता ऽदान्नैवाहं तं जीवन्तꣳ हास्यामीति । श० ४ । १ । ५ । ९ ॥
("जाया," "योषा," "स्त्री" इत्येतानपि शब्दान् पश्यत)

पथिकृत् अग्निर्वै पथिकृत् । कौ० ४ । ३ ॥
,, अग्निर्वै पथः कर्ता । श० ११ । १ । ५ । ६ ॥

पथ्या स्वस्तिः वाग्वै पथ्या स्वस्तिः । कौ० ७ । ६ ॥ श० ३ । २ । ३ । ८ ॥ ४ । ५ । १ । ४ ॥
,, वाग्घ्येषा (पथ्या स्वस्तिः) निदानेन । श० ३ । २ । ३ । १५ ॥
,, सा (पथ्या स्वस्तिः) उदीचीं दिशं प्राजानात् । कौ० ७ । ६ ॥
,, उदीचीमेव दिशम् । पथ्यया स्वस्त्या प्राजानंस्तस्मादत्रोत्तराहि वाग्वदति कुरुपञ्चालत्रा । श० ३ । २ । ३ । १५ ॥
,, (हे देवा ! यूयं) मयैव (पथ्यया) प्राचीं दिशं प्रजानाथ । ऐ० १ । ७ ॥

पथ्या स्वस्तिः यत्पथ्यां (=अदितिं) यजति तस्मादसौ (आदित्यः) पुर उदेति पश्चाऽस्तमेति पथ्यां ह्येषो ऽनुसंचरति । ऐ० १ । ७ ॥

" पथ्या पूष्ण. पत्नी । गो० उ० २ । ६ ॥

पदनिधनम् (साम) इमं वाव देवा लोकं पदनिधनेनाभ्यजयन् । तां० १० । १२ । ३ ॥

पदपङ्क्तिश्छन्दः (यजु० १५ । ४) अयं वै लोकः पदपङ्क्तिश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

पदम् आत्मा वै पदम् । कौ० २३ । ६ ॥

पदस्तोभः (सामविशेषः) पदोरुत्तममपश्यत्तत्पदस्तोभस्य पदस्तोभत्वम् । तां० १३ । ५ । २४ ॥

" इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छत्तं षोडशभिर्भोगैः पर्य्यभुजत्स एतं पदस्तोभमपश्यत्तेनापावेष्टयद-पवेष्टयन्निव गायेत् पाप्मनो ऽपहत्यै । तां० १३ । ५ । २२ ॥

पद्या (विराट्) पद्यया वै देवाः स्वर्गं लोकमायन् । तां० ८ । ५ । ७ ॥

पयः यत्पयस्तद्रेतः । गो० उ० २ । ६ ॥

" पयो हि रेतः । श० ६ । ५ । १ । ५६ ॥

" रेतः पयः । श० १२ । ४ । १ । ७ ॥

" (अग्निः) तां (गां) सम्बभूव तस्याᳪ (गवि) रेतः प्रासिञ्चत्तत्पयो ऽभवत् । श० २ । २ । ४ । १५ ॥

" तस्मात्प्रथमदुग्धं (पयः) उष्णं भवत्यग्नेर्हि रेतः । श० २ । २ । ४ । १५ ॥

" समानजन्म वै पयश्च हिरण्यञ्चोभयᳪ ह्यग्निरेतसम् । श० ३ । २ । ४ । ८ ॥

" क्षत्रं वै पयः । श० १२ । ७ । ३ । ८ ॥

" (यज्ञस्य) प्राणः पयः । श० ६ । ५ । ४ । १५ ॥ ९ । २ । ३ । ३१ ॥

" अन्तर्हितमिव वा एतद्यत्पयः । तां० ६ । ६ । ३ ॥

" (यजु० १२ । ११३ ॥) रसो वै पयः । श० ४ । ४ । ४ । ८ ॥ ७ । ३ । १ । ४६ ॥

पयाः आपो हि पयः । कौ० ५ । ४ ॥ गो० उ० १ । २२ ॥

" अपामेष ओषधीनाꣳ रसो यत्पयः । श० १२ । ८ । २ । १३ ॥

" एष ह वै सर्वासामोषधीनां रसो यत्पयः । कौ० २ । १ ॥

" पयो वा ओषधयः । तै० ३ । ७ । १ । ५, ६, ७, ८ ॥

" सोमः पयः । श० १२ । ७ । ३ । १३ ॥

" सौर्य्यं पयः । तै० ३ । ९ । १७ । ४ ॥

" जागतमयनं भवति पशुकामस्यैडानिधनं पयसामुष्मिँल्लोक उपतिष्ठते । तां० १३ । ४ । १० ॥

" ऐन्द्रं पयः । गो० उ० १ । २२ ॥

" तद्यदेवात्र पयस्तन्मित्रस्य, सोम एव वरुणस्य । श० ४ । १ । ४ । ९ ॥

" वैश्वदेवं हि पयः । गो० उ० १ । १७ ॥

" पितृदेवत्यं पयः । कौ० १० । ६ ॥

" वायव्यं पयो भवति । श० २ । ६ । ३ । ६ ॥

" स (वनस्पतिः) उ वै पयोभाजनः । कौ० १० । ६ ॥

पयस्या यदस्मात् (प्रजापतेः) तद्रेतः परापतदेषा सा पयस्या मैत्रावरुणी । श० ६ । ५ । १ । ५६ ॥

" मैत्रावरुणी पयस्या । श० २ । ४ । ४ । १४ ॥

" मैत्रावरुणी पयस्या भवति । श० ५ । ५ । १ । १ ॥

" मित्रावरुणयोः पयस्या । श० ४ । २ । ५ । २२ ॥

" एतद्वै मित्रावरुणयोः स्वं हविर्यत्पयस्या । कौ० १८ । १२ ॥

" संस्थितायां चोदवसानीयायां मैत्रावरुण्या पयस्यया यजेत तस्या उक्तं ब्राह्मणं नैतयानिष्ट्वाग्निचिन्मैथुनं चरेतेति । कौ० १९ । ७ ॥

" योषा पयस्या रेतो वाजिनम् । श० २ । ४ । ४ । २१ ॥ २ । ५ । १ । १६ ॥

परं रजः (यजु० १३ । ४४) श्रोत्रं वै परꣳ रजो दिशो वै श्रोत्रं, दिशः परꣳ रजः । श० ७ । ५ । २ । २० ॥

परमं व्योम (यजु० १३ । ४२, ४४) इमे वै लोकाः परमं व्योम । श० ७ । ५ । २ । १८, २० ॥

परमपुरुषः यो विद्युति स परमपुरुषः । जैं० उ० १ । २७ । २ ॥

परमम् अन्तो वै परमम् । ऐ० ५ । २१ ॥

परमा परावत् अनुष्टुब् वै परमा परावत् । ऐ० ३ । १५ ॥

परमेष्ठी (यजु०१४ । ९) आपो वै प्रजापतिः परमेष्ठी ता हि परमे स्थाने तिष्ठन्ति । श० ८ । २ । ३ । १३ ॥

" तत एतं परमेष्ठी प्राजापत्यो यज्ञमपश्यद्यद्दर्शपूर्णमासौ ताभ्यामयजत......स आपो ऽभवत...... परमाद्वा ऽएतत्स्थानाद्वर्षति यद्दिवस्तस्मात्परमेष्ठी नाम । श० ११ । १ । ६ । १६ ॥

" अयं वा इदं परमो ऽभूदिति । तत्परमेष्ठिनः परमेष्ठित्वम् । तै० २ । २ । १० । ५ ॥

" परमेष्ठी वा एषः । यदोदनः । तै० १ । ७ । १० । ६ ॥

" ऋतमेव परमेष्ठि । तै० १ । ५ । ५ । १ ॥

" परमेष्ठी स्वाराज्यम् । परमेष्ठितां गच्छति य एवं वेद । तां० १९ । १३ । ३, ४ ॥ २२ । १८ । ४, ५ ॥

" प्रजापतिं विस्रस्तं देवता आदाय व्युदक्रामंस्तस्य (प्रजापतेः) परमेष्ठी शिर आदायोत्क्रम्यातिष्ठत् । श० ८ । ७ । ३ । १५ ॥

परशुः वज्रो वै परशुः । श० ३ । ६ । ४ । १० ॥

पराकः (त्रिरात्रः) यद्वा एतस्याकन्तदस्य पराक् तत् पराकस्य पराकत्वम् । तां० २१ । ८ । ३ ॥

" पराङ्वैतेन स्वर्गं लोकमाक्रमते । तां० २१ । ८ । २॥

" पराकेण वै देवाः स्वर्गं लोकमायन् । स्वर्गकामो यजेत । तां० २१ । ८ । २ ॥

पराग्वसुः अर्वाग्वसुर्ह वै देवानां ब्रह्मा पराग्वसुरसुराणाम् । गो० उ० १ । १ ॥

(" परावसुः " शब्दमपि पश्यत)

पराणि (परःसामाख्यान्यहानि) परैर्वै देवा आदित्यं सुवर्गं लोकमपारयन् यदपारयन् तत् पराणां परत्वम् । तै० १ । २ । ४ । ३ ॥

" परैर्वै देवा आदित्यꣳ स्वर्गं लोकमपारयन्यदपारयꣳस्तत्पराणां परत्वम् ।

("स्पराणि" शब्दमपि पश्यत)। तां० ४। ५। ३॥

परावत: (ऋ० १०। ६३। १) अन्तो वै परावतः। ऐ० ५। २॥ कौ० २२। ५॥ २३। ७॥

परावसु: परावसुर्ह वै नामासुराणाꣳ होता। श० १। ५। १। २३॥ ("पराग्वसुः" शब्दमपि पश्यत)

परिक्षित् अग्निर्हीमाः प्रजा परिक्षेत्यग्निं हीमाः प्रजाः परिक्षियन्ति। ऐ० ६। ३२॥

" अग्निर्वै परिक्षित्। ऐ० ६। ३२॥ गो० उ० ६। १२॥

" संवत्सरो वै परिक्षित् संवत्सरो हीदं सर्वं परिक्षियतीति। गो० उ० ६। १२॥

" संवत्सरो वै परिक्षित्। ऐ० ६। ३२॥

परिचरा यजमानः परिचरा। तां० ३। १। ३॥ ३। ३। २॥ ३। ८। ३॥ ३। १२। ३॥

परितस्थुष: इमे वै लोकाः परितस्थुषः। तै० ३। ९। ४। २॥

परिधय: परिधीन् परिदधाति। श० १। ३। ३। १३॥

" दिशः परिधयः। ऐ० ५। २८॥ तै० २। १। ५। २॥

" इमे वै लोकाः परिधयः। तै० ३। ८। १८। ४॥

" गुप्त्यै वाऽ अभितः परिधयो भवन्ति। श० १। ३। ४। ८॥

परिधानीया दिशः परिधानीया। जै० उ० ३। ४। २॥

" श्रोत्रम्परिधानीया। जै० उ० ३। ४। ३॥

" प्रतिष्ठा परिधानीया। कौ० १५। ३॥ १६। ४॥

" प्रतिष्ठा वै परिधानीया। गो० उ० ३। २१, २२॥

परिपति: मनो वै परिपतिः। गो० उ० २। ३॥

परिप्लवम् देवचक्रं वा एतत्परिप्लवम्। कौ० २०। १॥

परिभूश्छन्द: (यजु० १५। ४) दिशो वै परिभूश्छन्दः। श० ८। ५। २। ३॥

परिमर: यो ह वै ब्रह्मणः परिमरं वेद पर्येनं द्विषन्तो भ्रातृव्याः परि सपत्ना म्रियन्ते। ऐ० ८। २८॥

परिमाद: (बहुवचने) त्वक् च वा एतल्लोम च महाव्रतस्य यत्परिमादः। तां० ५। ६। ११॥

परिवत्सरः सूर्य्यः परिवत्सरः । तां० १७ । १३ । १७ ॥

" आदित्यः परिवत्सरः । तै० १ । ४ । १० । १ ॥

" परिवत्सरो बलिवर्दः । तै० ३ । ८ । २० । ५ ॥

परिवापः (=लाजा इति सायणः) भारत्यै परिवापः । तै० १ । ५ । ११ । २ ॥

" अन्नमेव परिवापः । ऐ० २ । २४ ॥

परिवृक्ती (=परिवृक्ता) या वा अपुत्रा पत्नी सा परिवृत्ती (परिवृक्ती) । श० ५ । ३ । १ । १३ ॥

" सुवरिति परिवृक्ती । तै० ३ । ९ । ४ । ५ ॥

परिश्रित् योनिर्वै परिश्रितः । श० ७ । १ । १ । १२ ॥

" परिश्रिद्भिरेवास्य रात्रीराप्नोति । श० १० । ४ । ३ । १२ ॥

" परिश्रित एव श्रीस्तद्धि रात्रीणाᳩ रूपम् । श० १० । २ । ६ । १७ ॥

" अस्थीन्येव श्रीस्तद्धि परिश्रिताᳩ रूपम् । श० १० । २ । ६ । १८ ॥

" अस्थीनि वै परिश्रितः । श० ७ । १ । १ । १५ ॥

" लोमानि वै परिश्रितः । श० ८ । १ । १ । १० ॥

" तस्य (अस्य लोकस्य) आप एव परिश्रितः । श० १० । ५ । ४ । १ ॥

" आपः परिश्रितः । श० ७ । १ । १ । १३ ॥ ८ । २ । १ । २० ॥

" आपो वै परिश्रितः । श० ८ । ४ । ३ । ८ ॥

परिष्टुब्धेडम् (साम) (देवाः) अन्तरिक्षं परिष्टुब्धेडेन (अभ्यजयन्) । तां० १० । १२ । ४ ॥

परिष्टोभन्ती परिष्टोभन्ती त्रिष्टुप् । तां० १२ । १ । २ ॥

परिसारकम् तस्माद्धाप्येतर्हि परिसारकमित्याचक्षते यदेनं सरस्वती समंतं परिससार । ऐ० २ । १९ ॥

परिस्रुत् शिश्नादेवास्य रसो ऽस्रवत्सा परिस्रुदभवत् । श० १२ । ७ । १ । ७ ॥

" नैष सोमो न सुरा यत् परिस्रुत् । श० ५ । १ । २ । १४ ॥

परीशासौ इमे वै द्यावापृथिवी परीशासौ । श० १४ । २ । १ । १६॥

परुच्छेपः असुरीन्द्रं प्रत्यक्रमत पर्वन्पर्वन्मुष्कान्कृत्वा तामिन्द्रः प्रतिजि- गीषन्पर्वन्पर्वञ्छेपांस्यकुरुत । कौ० २३ । ४ ॥

,, इन्द्र उ वै परुच्छेपः । कौ० २३ । ४ ॥

परोरजाः एष वाव स परो रजा इति होवाच । य एष (सूर्यः) तपति । तै० ३ । १० । ९ । ४ ॥

पर्जन्यः (अर्वाग्वसुः=पर्जन्यः, यजु० १५ । १९) अथ यदर्वाग्वसुरि- त्याह्वातो (पर्जन्यात्) ह्यर्वाग्वसु वृष्टिरन्नं प्रजाभ्यः प्रदीयते । श० ८ । ६ । १ । २० ॥

,, पर्जन्यो मे मूर्द्धिन श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ८ ॥

,, पर्जन्यो वा उद्गाता । श० १२ । १ । १ । ३ ॥

,, क्रन्दतीव हि पर्जन्यः । श० ६ । ७ । ३ । २ ॥

,, पर्जन्यः सदस्यः । गो० पू० १ । १३ ॥

,, पर्जन्यः (संवत्सरस्य) वसोर्धारा । तै० ३ । ११ । १० । ३ ॥

,, तान् (देवान्) आदित्यः पर्जन्यः पुरोबलाको भूत्वा ऽभिप्रैत्तान् वृष्ट्या ऽशन्या विद्युता ऽहन् । ष० १ । २ ॥

,, पर्जन्यो वै भवः पर्जन्याद्धीदꣳ सर्वं भवति । श० ६ । १ । ३ । १५ ॥

,, पर्जन्यो वा अग्निः । श० १४ । ६ । १ । १३ ॥

,, षड्भिः पार्जन्यैर्वा मारुतैर्वा (पशुभिः) वर्षासु (यजते) । श० १३ । ५ । ४ । २८ ॥

,, तौ (अनड्वाहौ) यदि कृष्णौ स्यातामन्यतरो वा कृष्णस्तत्र विद्याद्वर्षिष्यत्यैष्मः पर्जन्यो वृष्टिमान् भविष्यतीति । श० ३ । ३ । ४ । ११ ॥

पर्णः (=पलाशः) तस्य (सोमस्य) पर्णमच्छिद्यत तत्पर्णोभवत् तस्प- र्णस्य पर्णत्वम् । तै०१ । १ । ३ । १० ॥३ । २ । १ । १॥

,, तृतीयस्यामितो दिवि सोम आसीत् । तं गायत्र्या- हरत् । तस्य पर्णमच्छिद्यत । तत्पर्णो ऽभवत् । तत्पर्णस्य पर्णत्वम् । तै० १ । १ । ३ । १० ॥ ३ । २ । १ । १ ॥

पर्ण: (=पलाश:) यत्र वै गायत्री सोममच्छापतत्तदस्याऽ आहरन्त्याऽ अपादस्ताभ्यायत्य पर्णं प्रचिच्छेद गायत्र्यै वा सोमस्य वा राज्ञस्तत्पतित्वा पर्णो ऽभवत्तस्मात्पर्णो नाम। श० १।७।१।१॥

" गायत्रो वै पर्ण:। तै० ३।२।१।१॥

" सोमो वै पर्णः। श० ६।५।१।१॥

" ब्रह्म वै पर्ण:। तै० १।७।१।६॥ ३।२।१।१॥

" देवा वै ब्रह्मन्नवदन्त। तत्पर्ण उपाश्टृणोत्। सुश्रवा वै नाम। तै० १।१।३।११॥

" देवानां ब्रह्मवादं वदतां यत्। उपाश्टृणोः सुश्रवा वै श्रुतो ऽसि। ततो मामाविशतु ब्रह्मवर्चसम्। तै० १।२।१।६॥

" पर्णमयेनाध्वर्य्युरभिषिञ्चति। तै० १।७।८।७॥
("पलाशः" शब्दमपि पश्यत)

पर्य्याय: यत्पर्य्यायैः पर्य्यायमनुदन्त तत्पर्य्यायाणां पर्य्यायत्वम्। ऐ० ४।५॥

" यत्पर्य्यायैः पर्य्यायमनुदन्त तस्मात्पर्य्यायाः तत्पर्य्यायाणां पर्य्यायत्वम्। गो० उ० ५।१॥

" (देवा:) तान् (असुरान्) समन्तं पर्य्यायं प्राणुदन्त यत्पर्य्यायं प्राणुदन्त तत्पर्य्यायाणां पर्य्यायत्वम्। तां० ६।१।३॥

पर्य्यास: प्रतिष्ठा वै पर्य्यासाः। कौ० २५।१५॥

पर्शव: (बहुवचने) तस्मादिमा उभयत्र पर्शवो बद्धाः कीकसासु च जत्रुषु च। श० ८।६।२।१०॥

" पर्शव उ ह वै वङ्क्रयः। कौ० १०।४॥

" पर्शवो बृहत्यः। श० ८।६।२।१०॥

पलाश: मांसेभ्य एवास्य (प्रजापतेः) पलाशः समभवत् तस्मात्स बहुरस लोहितरसः। श० १३।४।४।१०॥

" सर्वेषां वा एष वनस्पतीनां योनिर्यत्पलाशः। ऐ० २।१॥

" तेजो वै ब्रह्मवर्चसं वनस्पतीनां पलाशः। ऐ० २।१॥

" पालाशं (यूपं कुर्वीत) ब्रह्मवर्चसकामः। कौ० १०।१॥

" ब्रह्म वै पलाशस्य पलाशम् (=पर्णम्)। श० २।६।२।८॥

पलाशः ब्रह्म वै पलाशः । श० १ । ३ । ३ । १९ ॥ ५ । २ । ४ । १८ ॥ ६ । ६ । ३ । ७ ॥

" पालाशं (शङ्कुं) पुरस्ताद्, ब्रह्म वै पलाशः । श० १३ । ८ । ४ । १ ॥

" सोमो वै पलाशः । कौ० २ । २ ॥ श० ६ । ६ । ३ । ७ ॥

" पालाशं (यूपं) पुष्टिकामस्य (करोति) । ष० ४ । ४ ॥

("पर्णः" शब्दमपि पश्यत)

पवमानः यो वा अग्निः स पवमानस्तदप्येतदृषिणोक्तमग्निर्ऋषिः पवमान इति । ऐ० २ । ३७ ॥

" प्राणो वै पवमानः । श० २ । २ । १ । ६ ॥

" अयं वायुः पवमानः । श० २ । ५ । १ । ५ ॥

" (वायुः) यत्पश्चाद्वाति । पवमान एव भूत्वा पश्चाद्वाति । तै० २ । ३ । ९ । ६ ॥

" तस्मादुत्तरतः पश्चादयं (वायुः) भूयिष्ठं पवते सवितृप्रसूतो ह्येष एतत्पवते । ऐ० १ । ७ ॥

" आत्मा वै यज्ञस्य पवमानः । तां० ७ । ३ । ७ ॥

" सोमो वै पवमानः । श० २ । २ । ३ । २२ ॥

" माध्यन्दिनस्य पवमानः (स्वर्ग्यः) । तां० ७ । ४ । १ ॥

" पवमानोक्थं वा एतद्यद्वैश्वदेवम् (शस्त्रम्) । कौ० १६ । ३ ॥

पवित्रम् पवित्रं वै दर्भाः । श० ३ । १ । ३ । १८ ॥ तै० १ । ३ । ७ । १ ॥ ३ । ८ । २ । ३ ॥

" पवित्रं वाऽ आपः । श० १ । १ । १ । १ ॥ ३ । १ । २ । १० ॥

" अग्निर्वाव पवित्रम् । तै० ३ । ३ । ७ । १० ॥

" (यजु० १ । १२) अयं वै पवित्रं योऽयं (वायुः) पवते । श० १ । १ । ३ । २ ॥ १ । ७ । १ । १२ ॥

" पवित्रं वै वायु । तै० ३ । २ । ५ । ११ ॥

" प्राणापानौ पवित्रे । तै० ३ । ३ । ४ । ४ ॥ ३ । ३ । ६ । ७ ॥

" प्राणोदानौ पवित्रे । श० १ । ८ । १ । ४४ ॥

पशवः (अग्निः) एतान्पञ्च पशूनपश्यत् । पुरुषमश्वं गामविमजं यदपश्यत्तस्मादेते पशवः । श० ६ । २ । १ । २ ॥

" (प्रजापतिः) तेषु (पशुषु) एतं (अग्निं) अपश्यत्तस्माद्वेवैते पशवः । श० ६ । २ । १ । ४ ॥

पशवः अग्निर्वै पशूनामीष्टे । श० ४ । ३ । ४ । ११ ॥
„ तऽएते सर्वे पशवो यदग्निः । श० ६ । २ । १ । १२ ॥
„ आग्नेयो वाव सर्वः पशुः । ऐ० २ । ६ ॥
„ आग्नेयाः पशवः । तै० १ । १ । ४ । ३ ॥
„ अग्निर्ह्येष यत्पशवः । श० ६ । २ । १ । १२ ॥
„ अग्निरेष यत्पशवः । श० ६ । ३ । २ । ६ ॥
„ पशुरेष यदग्निः । श० ६ । ४ । १ । २ ॥ ७ । २ । ४ । ३० ॥ ७ । ३ । २ । १७ ॥
„ ते देवा अब्रुवन्पशुर्वाऽ अग्नि । श० ६ । ३ । १ । २२ ॥
„ अग्निर्हि देवानां पशुः । ऐ० १ । १५ ॥
„ योनिर्वै पशूनामाहवनीयः (अग्निः) । कौ० १८ । ६ ॥ गो० उ० ४ । ६ ॥
„ रौद्रा वै पशवः । श० ६ । ३ । २ । ७ ॥
„ रुद्रः (एवैनं राजानं) पशूनां (सुवते) । तै० १ । ७ । ४ । १ ॥
„ रुद्र ! पशूनां पते । तै० ३ । ११ । ४ । २ ॥
„ रुद्रँ हि नाति पशवः । श० ३ । २ । ४ । २० ॥
„ ततो वै स (अर्य्यमा) पशुमानभवत् । तै० ३ । १ । ४ । ६ ॥
„ एताभिः (एकोनविंशतिभी रात्रिभिः) वायुरारण्यानां पशूनामाधिपत्यमाश्नुत । तां० २३ । १३ । २ ॥
„ ते (पशवः) अब्रुवन्वायुर्वा अस्माकमीशे । जै० उ० १ । ५२ । ४ ॥
„ वायुप्रणेत्रा वै पशवः । श० ४ । ४ । १ । १५ ॥
„ ते वायुश्च पशवश्चाब्रुवन्निरुक्तं साम्नो वृणीमहे पशव्यमिति । जै० उ० १ । ५२ । ४ ॥
„ त्वष्टा वै पशूनामीष्टे । श० ३ । ७ । ३ । ११ ॥
„ त्वष्टा पशूनां मिथुनानाँ रूपकृद्रूपपतिः । तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥
„ त्वष्ट्रुर्हि पशवः । श० ३ । ८ । ३ । ११ ॥
„ पशवो वै सविता । श० ३ । २ । ३ । ११ ॥
„ अन्तरिक्षदेवत्याः खलु वै पशवः । तै० ३ । २ । १ । ३ ॥
„ पशवो वै वैश्वदेवम् (शस्त्रम्) । कौ० १६ । ३ ॥
„ वैश्यो वाऽ एता विशो यत्पशवः । श० ३ । ७ । ३ । ६

पशवः सप्त ग्राम्याः पशवः सप्तारण्याः । श० ३ । ८ । ४ । १६ ॥ ६ । ५ । २ । ८ ॥

„ अस्मै वै लोकाय ग्राम्याः पशव आलभ्यन्ते । अमुष्मा आरण्याः । तै० ३ । ६ । ३ । १ ॥

„ नानारूपा ग्राम्याः पशवः । तां० ६ । ८ । १२ ॥

„ विश्वरूपं वै पशूनाꣳ रूपम् । तां० ५ । ४ । ६ ॥

„ सप्त ग्राम्याः पशवः । तां० २ । ७ । ८ ॥ २ । १४ । २ ॥ ३ । ३ । २॥

„ सप्त हि ग्राम्याः पशवः । श० ६ । ३ । १ । २० ॥

„ सप्त वै ग्राम्याः पशवः (अजा ऽश्वो गौर्महिषी वराहो हस्त्यश्वतरी च ॥ अथवा—अजाविकं गवाश्वं च गर्दभोष्ट्रनरस्तथा) । ऐ० २ । १७ ॥

„ एकरूपा आरण्याः पशवः (गोमायुर्गौर्मृगो गवय उष्ट्रः शरभो हस्ती मर्कट इति सप्त संख्याका इति सायणः) । तां० ६ । ८ । ८ ॥

„ अपशवो वा एते । यदजावयश्चारण्याश्च । एते वै सर्व्वे पशवः । यद्गव्या इति । तै० ३ । ६ । ६ । २ ॥

„ अपशवो वा एते । यदारण्याः । तै० ३ । ६ । १ । ३ ॥

„ त्रयो ह त्वाव (?) पशवो ऽमेध्याः । दुर्वराह एडकः श्वा । श० १२ । ४ । १ । ४ ॥

„ तस्मादश्वः पशूनां यशस्वितमः । श० १३ । १ । २ । ८ ॥ तै० ३ । ८ । ७ । २ ॥

„ पशवो वै घृतश्च्युतः । तां० ६ । १ । १७ ॥

„ पशवो वै हविष्मन्तः (ऋ० ३ । २७ । १) । श० १ । ४ । १ । ६ ॥

„ पशवो वै हविष्पङ्क्तिः । कौ० १३ । २ ॥

„ हविर्हि पशवः । ऐ० ५ । ६ ॥

„ सर्वासाꣳ हि देवतानाꣳ हविः पशुः । श० ३ । ८ । ३ । १४ ॥

„ पशवः सोमो राजा । तै० १ । ४ । ७ । ६ ॥

„ पशवो हि सोम इति । श० १२ । ७ । २ । २ ॥

„ पशुर्वै प्रत्यक्षꣳ सोमः । श० ५ । १ । ३ । ७ ॥

„ सोम एवैष प्रत्यक्षं यत्पशुः । कौ० १२ । ६ ॥

पशव: पशवो वै हरिश्रियः । तां० १५ । ३ । १० ॥

,, श्रीर्वै पशवः । तां० १३ । २ । २ ॥

,, श्रीर्हि पशवः । श० १ । ८ । १ । ३६ ॥

,, पशवो यशः । श० १२ । ८ । ३ । १ ॥ गो० उ० ५ । ६ ॥

,, एष वाव सुवीरो यस्य पशवः । तां० १३ । १ । ४ ॥

,, तस्माद्यस्य पशवो भवन्त्यपैव स पाप्मानꣳ हते । श० ८ । २ । ३ । १४ ॥

,, पशवो वै महस्तस्माद्यस्यैते बहवो भवन्ति भूयिष्ठमस्य कुले महीयन्ते । श० ११ । ८ । १ । ३ ॥

,, यो वै पशूनां भूमानङ्गच्छति स स्वाराज्यं गच्छति । तां० २४ । ६ । ३ ॥

,, शान्तिः पशवः । तां० ४ । ५ । १८ ॥ ४ । ६ । ११ ॥ ५ । ३ । १२॥

,, इन्द्रियं वै वीर्यꣳ रसः पशवः । तां० १३ । ७ । ४ ॥

,, पशवो वै वसु । तां० ७ । १० । १७ ॥ १३ । ११ । २ ॥

,, पशवो वसु । श० ३ । ७ । ३ । ११, १३ ॥

,, पशवो वै रयिः । त० १ । ४ । ४ । ९ ॥

,, पशवो वै रायः । श० ३ । ३ । १ । ८ ॥ ४ । १ । २ । १५ ॥

,, पशवो वै रायस्पोषः । श० ३ । ४ । १ । १३ ॥

,, पुष्टिः पशवः । श० ३ । १ । ४ । ६ ॥

,, पौष्णाः पशवः । श० ५ । २ । ५ । ६॥

,, पूषा वै पशूनामीष्टे । श० १३ । ३ । ८ । २ ॥

,, पूषा पशुभि (अवति) । तै० १ । ७ । ६ । ६ ॥ ३ । १ । ५ । १२ ॥

,, पशवो वै पूषा । श० ३ । १ । ४ । ९ ॥ ३ । ६ । १ । १० ॥ ५ । ३ । ५ । ८, ३५ ॥ तै० ३ । ८ । ११ । २ ॥ तां० १८ । १ । १६ ॥

,, पशवो वै पूषा (यजु० २२ । २०) । श० १३ । १ । ८ । ६ ॥

,, पशवो हि पूषा । श० ५ । २ । ५ । ८ ॥

,, पशवः पूषा । ऐ० २ । २४ ॥ तां० २३ । १६ । ५ ॥

,, साहस्राः पशवः । कौ० २१ । ५ ॥

,, पशवः सहस्रम । तां० १६ । १० । १२ ॥

,, कल्याणी (प्रजापतेस्तनूः) तत्पशवः । ऐ० ५ । २५ ॥ कौ० २७ । ५ ॥

पशवः एषा वै प्रजापतेः पशुष्टा तनूर्यच्छिपिविष्टः। तां० १८। ६। २६॥
,, पशव शिपिः। तै० १। ३। ८। ५॥
,, पशवो वै मरुतः। ऐ० ३। १९॥
,, पशुर्वै मेधः। ऐ० २। ६॥
,, वाजो वै पशवः। ऐ० ५। ८॥
,, पशवो वै वाजिनम्। तै० १। ६। ३। १०॥
,, अन्नं पशवः। श० ६। २। १। १५॥ ७। ५। २। ४२॥
,, अन्नं वै पशवः। श० ६। ८। २। ७॥
,, पशुर्वाऽ अन्नम्। श० ५। १। ३। ७॥
,, पशवो वाऽ अन्नम्। श० ४। ६। ९। १॥
,, पशवो ह्यन्नम्। श० ३। २। १। १२॥
,, अन्नमु पशोर्माᳬसम्। श० ७। ५। २। ४२॥
,, पशवो वै धानाः। गो० उ० ४। ६॥ कौ० १८। ६॥
,, पशवो वा इडा। कौ० ३। ७॥ ५। ७॥ २९। ३॥ श० १। ८। १। १२॥ ७। १। १। २७॥ ष० २। २॥ तां० ७। ३। १५॥ १४। ५। ३१॥ गो० उ० १। २५॥ तै० १। ६। ६। ६॥ ऐ० २। ९, १०, ३०॥
,, तस्मादाहुः प्राणाः पशवः। श० ७। ५। २। ६॥
,, प्राणाः पशवः। तै० ३। २। ८। ६॥
,, स (प्रजापतिः) प्राणेभ्य एवाधि पशून्निरमिमीत। श० ७। ५। २। ६॥
,, गृहा हि पशवः। श० १। ८। २। १४॥
,, पशवो वा उत्तरवेदिः। तै० १। ६। ४। ३॥
,, पशवो वै चतुरुत्तराणि छन्दाᳬसि। तां० ४। ४। ६॥
,, हविर्वाऽ एष देवानां यो दीक्षते तदेनमन्तर्जम्भऽ आदधाते तत् (अग्नीषोमीयेण) पशुनात्मानं निष्क्रीणाति। श० ३। ३। ४। २१॥
,, आत्मा वै पशुः। कौ० १२। ७॥
,, यजमानः पशुः। तै० २। १। ५। २॥ २। २। ८। २॥
,, वज्रो वै पशवः। श० ६। ४। ४। ६॥ ८। २। ३। १४॥
,, पशवो वै ग्रावाणः। तां० ६। ९। १३॥

पशव: पशवो वा उक्थानि । कौ० २८ । १० ॥ २९ । ८ ॥ तै० १ । २ । २ । २ ॥ ष० ३ । ११ ॥ तां० ४ । ५ । १८ ॥ १९ । ६ । ३ ॥

,, पशवो वा उक्थानि पशवो विश्वं ज्योतिः । तां० १६ । १० । २॥

,, पशव उक्थानि । ऐ० ४ । १, १२ ॥ गो० उ० ६ । ७ ॥ तै० १ । ८ । ७ । २ ॥ कौ० २१ । ५ ॥

,, पशव ऊषाः । श० ७ । १ । १ । ६ ॥ ७ । ३ । १ । ८ ॥

,, पशवो वा ऊषाः । श० ५ । २ । १ । १६ ॥

,, संज्ञानꣳ ह्येतत्पशूनां यदूषाः । तै० १ । १ । ३ । २ ॥

,, पशवो वै नियुतः । तां० ४ । ६ । ११ ॥ श० ४ । ४ । १ । १७ ॥

,, प्रजा पशवः सूक्तम् । कौ० १४ । ४ ॥

,, स्तोमो हि पशुः । तां० ५ । १० । ८ ॥

,, पशवो वै सप्तदशः । तां० १६ । १० । ७ ॥

,, पशवो वै समीषन्ती (विष्टुतिः) । तां० ३ । ११ । ४ ॥

,, (प्रजापतिः) स्वरिति पशून् (अजनयत्) । श० २ । १ । ४ । १३॥

,, संवत्सरं पशवोऽनु प्रजायन्ते । तां० १८ । ४ । ११ ॥

,, न ह वा अनृषभाः पशवः प्रजायन्ते । तां० १३ । ५ । १८ ॥ १३ । १० । ११ ॥ १५ । ३ । १७ ॥

,, तस्मात् पशोर्जायमानादापः पुरस्ताद्यन्ति । तै० २ । २ । ९ । ३ ॥

,, तस्माज्जातं पुत्रं पशवोऽभिहिङ्कुर्वन्ति । तां० १२ । १० । १४ ॥

,, (पशुभ्यः प्रजापतिः) हिङ्कारम्प्रायच्छत् । जै० उ० १ । ११ । ५॥

,, (प्रजापतिः) प्रतिहारमारण्येभ्यः पशुभ्यः (प्रायच्छत्) । जै० उ० १ । ११ । ९ ॥

,, पशवो वै प्रतिहर्त्ता । तां० ६ । ७ । १५ ॥

,, हुम्बो इति पशुकामस्य । वो इति ह पशवो वाश्यन्ते । जै० उ० ३ । १३ । २ ॥

,, पशवः स्वरः । गो० उ० ३ । २२ ॥ ४ । २ ॥

,, पशवो वै स्वरः । ऐ० ३ । २४ ॥

,, पशवो वै बृहद्रथन्तरे । तां० ७ । ७ । १ ॥

,, पशवो वै श्यैतम् (साम) । तां० ७ । १० । १३ ॥

,, पशुकाम एतेन (श्यैतेन साम्ना) स्तुवीत । तां० ७ । १० । १४॥

पशवः पशवो वै वामदेव्यम् (साम) । तां० ४ । ८ । १५ ॥ ७ । ६ । ६ ॥ ११ । ४ । ८ ॥ १४ । ६ । २४ ॥

„ वामं हि पशवः । ए० ५ । ६ ॥

„ पशवो वै वारवन्तीयम् (साम) । तां० ५ । ३ । १२ ॥

„ (विष्णुः पशून्) वारवन्तीयेन (साम्ना) अवारयत । तै० २ । ७ । १४ । २ ॥

„ पशवो वै वैरूपम् (साम) । तां० १४ । ६ । ८ ॥

„ पशवो वै लोम (साम) । तां० १३ । ११ । ११ ॥

„ पशवो वै रौरवम् (साम) । तां० ७ । ५ । ८ ॥

„ पशवो ऽन्नाद्यं यज्ञायज्ञीयम् (साम) । तां० १५ । ९ । १२ ॥

„ पशवो वै यण्वम् (साम) । तां० १३ । ३ । ६ ॥

„ पशवो वै श्रुद्धचं (साम) पशूनामवरुध्यै । तां० १५ । ५ । ३४॥

„ पशवः सदोविशीयम् (ब्रह्मसाम) । तां० १८ । ४ । ६ ॥

„ पशवो वै सुरूपं (साम) पशूनामवरुध्यै । तां० १४ । ११ । ११॥

„ पशवः कालेयम् (साम) । तां० ११ । ४ । १० ॥ १५ । १० । १५॥

„ पशून् मह्यमित्यब्रवीत् (इन्द्रं) रायोवाजस्तस्मा एतेन रायोवाजीयेन (साम्ना) पशून् प्रायच्छत् पशुकाम एतेन स्तुवीत पशुमान् भवति । तां० १३ । ४ । १७ ॥

„ पशवो वै रयिष्ठम (साम) । तां० १४ । ११ । ३१ ॥

„ पशवः शाक्वर्यः । तां० १३ । १ । ३ ॥

„ पशवो वै शाक्वर्यः । तां० १३ । ४ । १३ ॥ १३ । ५ । १८ ॥

„ पशवो वै शक्वरीः । तै० १ । ७ । ५ । ४ ॥

„ पशवः शक्वरी । तां० १६ । ७ । ६ ॥

„ पशवो वै रेवत्यो मधुप्रियम । तां० १३ । ७ । ३ ॥

„ पशवो वै रेवत्यः । तां० १३ । १० । ११ ॥

„ पशवो वै रेवत्यः । तां० १३ । ७ । ३ ॥ १३ । ६ । २५ ॥

„ रेवन्तो हि पशवः । श० २ । ३ । ४ । २६ ॥

„ रेवन्तो हि पशवस्तस्मादाह रेवती रमध्वम (यजु० ६ । ८) इति । श० ३ । ७ । ३ । १३ ॥

„ कतमो यज्ञ इति पशव इति । श० ११ । ६ । ३ । ६ ॥

„ पशवो हि यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । ६ ॥

पशव: पशवो यज्ञः । श० ३ । २ । ३ । ११ ॥

,, पशवो वै बर्हिः । ऐ० २ । ४ ॥

,, पशवो वै यूपमुच्छ्रयन्ति । श० ३ । ७ । २ । ४ ॥

,, पशवश्छन्दोमाः । ऐ० ५ । १६, १७, १८, १९ ॥ तां० १४ । ७ । ६॥

,, पशवो वै छन्दाᳬसि । श० ७ । ५ । २ । ४२॥ ८ । ३ । १ । १२॥

,, पशवश्छन्दांसि । ऐ० ४ । २१ ॥ कौ० ११ । ५ ॥ तां० १६ । ५ । ११ ॥

,, पाङ्क्ता वै पशवः । श० १ । ८ । १ । १२ ॥

,, पाङ्क्ताः पशवः । ऐ० ३ । २३ ॥ ४ । ३ ॥ ५ । ४, ६, १८, १९ ॥ कौ० १३ । २ ॥ तै० १ । ६ । ३ । २ ॥ तां० २ । ४ । २ ॥ गो० उ० ३ । २० ॥ ४ । ७ ॥

,, पाङ्क्तः पशुः । श० १ । ५ । २ । १६ ॥ ३ । १ । ४ । २० ॥

,, गायत्राः पशवः । तै० ३ । २ । १ । १ ॥

,, त्रैष्टुभाः पशवः । कौ० ८ । १ ॥ १० । २ ॥

,, पशवो जगती । कौ० १६ । २ ॥ १७ । २, ६ ॥ १६ । ६ ॥ २ । १ ॥ श० ३ । ४ । १ । १३ ॥ ८ । ३ । ३ । ३ ॥ तै० ३ । २ । ८ । ३ ॥

,, जागताः पशवः । कौ० ३० । २ ॥ ष० ३ । ७ ॥ गो० उ० ४ । १६॥

,, पशवो बृहती । कौ० १७ । २ ॥ २९ । ३ ॥ ष० ३ । १० ॥

,, पशवो वै बृहती । तां० १६ । १२ । ६ ॥

,, बार्हताः पशवः । ऐ० ४ । ३ ॥ ५ । ६॥ कौ० २३ । १ ॥ २६ । ३ ॥ तै० १ । ४ । ५ । ५ ॥ श० १३ । ४ । ३ । १५ ॥

,, पशवो वा उष्णिक् । तां० ८ । १० । ४ ॥

,, पशवो वालखिल्याः । तां० २० । ६ । २ ॥

,, पशवो वा अक्षरपङ्क्तयः । कौ० १६ । ८ ॥

,, पशवः पृष्ठ्यानि । कौ० २१ । ५ ॥

,, पशवः प्रगाथः । ऐ० ३ । १९, २३, २४ ॥ ६ । २४ ॥ गो० उ० ३ । २१, २२ ॥ ४ । २ ॥

,, पशवो वै प्रगाथः । कौ० १५ । ४ ॥ १८ । २ ॥

,, पशवो वै प्रयाजाः । कौ० ३ । ४ ॥

,, पशवः परिमादः । श० १० । १ । २ । ८ ॥

पशवः अथ यत्स्रुचि परिशिनष्टि ते पशवः । श० २ । ३ । २ । १६ ॥

„ पशवो वै पुरीषम् (यजु० १३ । ३१ ॥) । श० १ । २ । ५ । १७ ॥ ६ । ३ । १ । ३८ ॥ ७ । ५ । १ । ९ ॥

„ पशवः पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १२ ॥

„ पशवो वै वयांꣳसि । श० ९ । ३ । २ । ७ ॥

„ वपुर्हि पशवः । ऐ० ५ । ६ ॥

„ तस्मादुपक्षुद्राः पशवः । तां० १३ । ४ । ५ ॥

„ अष्टाशफाः पशवः । तां० १५ । १ । ८ ॥

„ तस्माद् द्व्योपशाः (=द्विशृङ्गा इति सायणः) पशवः । तां० १३ । ४ । ३ ॥

„ षोडशकला वै पशवः । श० १२ । ८ । ३ । १३ ॥ १३ । ३ । ६ । ५॥

„ षोडशकलाः पशवः (शिरो ग्रीवा मध्यदेहः पुच्छमिति चत्वार्यङ्गानि च चत्वारः पादाः अष्टौ शफा इत्येवं षोडशसंख्याका इति सायणः) । तां० ३ । १२ । २ ॥ १९ । ६ । २ ॥

„ तस्मादसंश्लिष्टाः (=स्वेच्छाचारिण इति सायणः) पशवः । तां० १३ । ४ । ६ ॥

„ एतद्वै पशूनां भूयिष्ठꣳ रूपं यद्रोहितम् । तां० १६ । ६ । २ ॥

„ तस्मादुभयतः प्राणाः पशवः । तां० ७ । ३ । २८ ॥

„ त्रिरह्नः पशवः प्रेरते । प्रातः संगवे सायम् । तै० १ । ४ । ६ । २ ॥

„ त्रिवृद्वै पशुः पिता माता पुत्रो ऽथो गर्भ उल्वं जरायु । श० ८ । ६ । २ । २ ॥

„ तस्माद्यदा वर्षत्यथ पशवः प्रतितिष्ठन्ति । श० ८ । २ । ३ । ८ ॥

„ (सः) चक्षुरेव पशूनामादत्त । तस्मादेते चाकश्यमाना इवैव न जानन्त्यथ यदैवोपजिघ्रन्त्यथ जानन्ति । श० ११ । ८ । ३ । १० ॥

„ वाचा पशून्दाधार तस्माद्वाचा सिद्धा वाचाहूता आयन्ति तस्मादु नाम जानते । तां० १० । ३ । १३ ॥

„ मनुष्याननु पशवः । श० १ । ५ । २ । ४ ॥

„ वाग्दैवत्यं साम वाचो मनो देवता मनसः पशवः पशूनामोषधय ओषधीनामापः । तदेतदप्सु ओतं सामाऽप्सु प्रतिष्ठितमिति । जै० उ० १ । ५६ । १४ ॥

पशवः तं (पशुं) देवा अब्रुवन्नेहि स्वर्गं वै त्वा लोकं गमयिष्यामः । ऐ० २ । ६ ॥

„ प्रातः पशुमालभन्ते तस्य वपया प्रचरन्ति । तां० ५ । १० । ६ ॥

„ प्रातर्वै पशूनालभन्ते । श० ३ । ७ । २ । ४ ॥

„ अथैतत्पशुं घ्नन्ति यत्संज्ञपयन्ति । श० ३ । ८ । २ । ४ ॥

„ यत्पशुꣳ संज्ञपयन्ति विशासति तत्तं घ्नन्ति । श० २ । २ । २ । १ ॥ ११ । १ । २ । १ ॥

„ षड्विꣳशतिरस्य (पशोः) वङ्क्रयः । तै० ३ । ६ । ६ । ३ ॥

„ स्वादिष्ठा वै देवेषु पशव आसन् मदिष्ठा असुरेषु । तां० ८ । ४ । ६ ॥

„ तस्माद्घ्नमानाः पच्यमानाः पशवो न क्षीयन्ते । श० ७ । ५ । २ । २ ॥

„ तस्मादुभये देवमनुष्याः पशूनुपजीवन्ति । श० ६ । ४ । ४ । २२॥

„ पुरुषः पशूनाम् (अधिपतिः) । तां० ६ । २ । ७ ॥

„ यथा ह वा अस्मिंल्लोके मनुष्याः पशूनश्नन्ति यथैभिर्भुञ्जत एवमेवामुष्मिँल्लोके पशवो मनुष्यानश्नन्त्येवमेभिर्भुञ्जते । कौ० ११ । ३ ॥

„ सर्वं पशुभिर्विन्दते । तां० १३ । १ । ३ ॥

„ विश्वꣳ हि पशुभिर्विन्दते । तां० १३ । १ । ७ ॥

पशुपतिः ओषधयो वै पशुपतिस्तस्माद्यदा पशव ओषधीर्लभन्ते ऽथ पतीयन्ति । श० ६ । १ । ३ । १२ ॥

„ एतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः=शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नवमः । श० ६ । १ । ३ । १८ ॥

„ अग्निर्वै स देवस्तस्यैतानि नामानि, शर्व इति यथा प्राच्या आचक्षते भव इति यथा वाहीकाः पशूनां पती रुद्रो ऽग्निरिति । श० १ । ७ । ३ । ८ ॥

„ अग्निर्वै पशूनामीष्टे । श० ४ । ३ । ४ । ११ ॥

„ देवं वा एतं (पशुपतिं) मृगयुरिति वदन्ति ("मृगव्याधः" शब्दमपि पश्यत) । तां० १४ । ६ । १२ ॥

„ यत्पशुपतिर्वायुस्तेन । कौ० ६ । ४ ॥

पशुबन्धः इममेव (भू-)लोकं पशुबन्धेनाभिजयति । अथो अग्निष्टोमेन । तै० ३ । १२ । ५ । ६ ॥

„ स यत्पशुबन्धेन यजते । आत्मानमेवैतन्निष्क्रीणीते । श० ११ । ७ । १ । ३ ॥

„ पशुबन्धः षड्ढोतुः (निदानम्) । तै० २ । २ । ११ । ६ ॥

„ षट्सु षट्सु (मासेषु) पशुबन्धयाजी (अश्नाति) । श० १० । १ । ५ । ४ ॥

„ उभयꣳ सौत्रामणीष्टिश्च पशुबन्धश्च । श० १२ । ७ । २ । २१ ॥

„ अथैषाज्याहुतिर्यद्धविर्यज्ञो यत्पशुः (=पशुयज्ञः) । श० १ । ७ । २ । १० ॥

पशुमान् (=पशुपतिः) स (रुद्रः) एतमेव वरमवृणीत पशूनामाधिपत्यं तदस्यैतत्पशुमन्नाम । ऐ० ३ । ३३ ॥

पश्यतः असौ वा आदित्यः पश्यतः । एष एव तदजायत । एतेन हि पश्यति । जै० उ० १ । ५६ । ६ ॥

पसः (यजु० २३ । २२) राष्ट्रं पसः । श० १३ । २ । ९ । ६ ॥ तै० ३ । ९ । ७ । ४ ॥

पस्त्याः विशो वै पस्त्याः । श० ५ । ३ । ५ । १९ ॥ श० ५ । ४ । ४ । ५ ॥

पाकयज्ञाः सायंप्रातर्होमौ स्थालीपाको नवश्च यः । बलिश्च पितृयज्ञश्चाष्टका सप्तमः पशुरित्येते पाकयज्ञाः । गो० पू० ५ । २३ ॥

„ पशव्यो हि पाकयज्ञः । श० २ । ३ । १ । २१ ॥

पाञ्चजन्यः (यजु० १८ । ६७) (ये ऽग्नयः पाञ्चजन्याः=) ये केचाग्नयः पञ्चचितिकाः । श० ९ । ५ । १ । ५३ ॥

पाणि: पाणी वै गभस्ती । श० ४ । १ । १ । ९ ॥

पातु (यजु० ५ । ११) इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पात्वितीन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्ताद्गोपायत्वित्येवैतदाह । श० ३ । ५ । २ । ४ ॥

पात्नीवतः (ग्रहः) रेतःसिक्तिर्वै पात्नीवतग्रहः । कौ० १६ । ६ ॥

„ रेतो वै पात्नीवतः । गो० उ० ४ । ५ ॥ ऐ० ६ । ३ ॥

„ अग्निर्हि देवानां पात्नीवतो नेष्टर्त्विजाम् । कौ० २८ । ३ ॥

पात्राणि कति पात्राणि यज्ञं वहन्तीति त्रयोदशेति ब्रूयात्......, (प्रजापतिः) प्राणापानाभ्यामेवोपाꣳश्वन्तर्यामौ निरमिमीत । व्यानादुपाꣳशुसवनं । वाच ऐन्द्रवायवं । दक्षक्रतुभ्यां

मैत्रावरुणं । श्रोत्रादाश्विनं । चक्षुषः शुक्रामन्थिनौ । आत्मन आग्रयणं । अङ्गेभ्य उक्थ्यं । आयुषो ध्रुवं । प्रतिष्ठाया ऋतुपात्रे । तै० १ । ५ । ४ । १, २ ॥

पात्राणि द्वंद्वं पात्राण्युदाहरति शूर्पं चाग्निहोत्रहवणीं च स्फ्यं च कपालानि च शम्यां च कृष्णाजिनं चोलूखलमुसले दृषदुपले तद्दश । श० १ । १ । १ । २२ ॥

पाथ्यो वृषा (यजु० ११ । ३४) मनो वै पाथ्यो वृषा । श० ६ । ४ । २ । ४ ॥

पादः प्रतिष्ठा वै पादः । श० १३ । ८ । ३ । ८ ॥

पान्तम् (ऋ० ८ । ६२ । १ ॥) अहर्वै पान्तम् । तां० ६ । १ । ७ ॥

पापम् (कर्म) तद्यथा श्वः प्रैष्यन् पापात्कर्मणो जुगुप्सेतैवमेवाहरहः पापात्कर्मणो जुगुप्सेताकालात् । जै० उ० ४ । २५ । ४ ॥

पाप्मा पाप्मा वाऽ अशस्तिः (यजु० ११ । १५) । श० ६ । ३ । २ । ७ ॥

„ पाप्मा वै सपत्नः । श० ८ । ५ । १ । ६ ॥

„ पाप्मा वै वृत्रः । श० ११ । १ । ५ । ७ ॥ १३ । ४ । १ । १३ ॥

„ वृत्रहणं पुरंदरमिति (यजु० ११ । ३३) पाप्मा वै वृत्रः पाप्महनं पुरंदरमिति (वृत्रः=पाप्मा) । श० ६ । ४ । २ । ३ ॥

„ तथैवैतद्यजमानः पौर्णमासेनैव वृत्रं पाप्मानꣳ हत्वापहतपाप्मैतत्कर्मारभते (वृत्रः=पाप्मा) । श० ६ । २ । २ । १९ ॥

„ अग्ने त्वं तरा मृधः (यजु० ११ । ७२) इत्यग्ने त्वं तर सर्वान्पाप्मन इत्येतत् । श० ६ । ६ । ३ । ४ ॥

„ पाप्मा वै मृधः (यजु० ११ । १८) । श० ६ । ३ । ३ । ८ ॥

„ वरुणो वाऽ एतं गृह्णाति यः पाप्मना गृहीतो भवति । श० १२ । ७ । २ । १७ ॥

„ अङ्गे अङ्गे वै पुरुषस्य पाप्मोपश्लिष्टः । तै० ३ । ८ । १७ । ४ ॥

„ श्रमो वै पाप्मा । श० ६ । ३ । ३ । ७ ॥

„ दिवेव (दिवसा इव पुण्यरूपेण तेजसा युक्ता इति सायणः) ह्यपहतपाप्मानः । तम इव ह्यनपहतपाप्मानः । ऐ० ४ । २५ ॥

„ श्रियं पाप्मा (निवर्तते) । श० १० । २ । ६ । १९ ॥

„ स यथाहिस्त्वचो निर्मुच्येतैवꣳ सर्वस्मात्पाप्मनो निर्मुच्यते । श० ४ । ४ । ५ । २३ ॥ (प्रश्नोपनिषदि ५ । ५ ॥)

पाप्मा तं देवा यथेषीकां मुञ्जाद्विवृहेदेवꣳ सर्वस्मात्पाप्मनो व्यवृहन्। श० ४। ३। ३। १६॥ (कठोपनिषदि २। ३। १७)

„ तद्यथाहिर्जीर्णायास्त्वचो निर्मुच्येत इषीका वा मुञ्जात्। एवं हैवैते सर्वस्मात्पाप्मनः सम्प्रमुच्यन्ते ये शाकलां जुह्वति। गो० उ० ४। ६॥

पारमेष्ठ्यम् अथैनं (इन्द्रं) ऊर्ध्वायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः... अभ्यषिञ्चन्.........पारमेष्ठ्याय माहाराज्यायाऽऽधिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय। ऐ० ८। १४॥

पारिप्लवम् (आख्यानम्) तद्यत्पुनः पुनः (संवत्सरं) परिप्लवते तस्मात्पारिप्लवम्। श० १३। ४। ३। १५॥

पारुच्छेपम् रोहितं वै नामैतच्छन्दो यत्पारुच्छेपम्। गो० उ० ६। १०॥

„ एतेन (पारुच्छेपेन) ह वा इन्द्रः सप्त स्वर्गाँल्लोकानारोहत्। गो० उ० ६। १०॥

पार्थम् (साम) एतेन वै पृथी (श० ५। ३। ५। ४॥ पृथुः ?) वैन्य उभयेषां पशूनामाधिपत्यमाश्नुतोभयेषां पशूनामाधिपत्यमश्नुते पार्थेनतुष्टुवानः। तां० १३। ५। २०॥

पार्थानि (हवींषि) संवत्सरो वै पार्थानि। श० ६। ३। ४। १८॥

पार्थुरश्मम् (साम) क्षत्रम्मह्यमित्यब्रवीत् (इन्द्रं) पृथुरश्मिस्तस्मा एतेन पार्थुरश्मेन क्षत्रं प्रायच्छत्, क्षत्रकाम एतेन स्तुवीत क्षत्रस्यैवास्य प्रकाशो भवति। तां० १३। ४। १७॥

„ पार्थुरश्मꣳ राजन्याय ब्रह्मसाम कुर्य्यात्। तां० १३। ४। १८॥

पालागलः (=दूतः) प्रहेयो वै पालागलो ऽध्वानं वै प्रहित एति। श० ५। ३। १। ११॥

पावकः (यजु० १७। ९) यद्वै शिवꣳ शान्तं तत्पावकम्। श० ६। १। २। ३०॥

„ यत् (अग्नेः) पावकं (रूपम्) तदन्तरिक्षे (न्यधत्त)। श० २। २। १। १४॥

„ अन्नं वै पावकम्। श० २। २। १। ●॥

पावमान्यः (ऋचः) पवित्रं वै पावमान्यः । कौ० ८ । ५ ॥ ३० । ८ ॥ गो० उ० ६ । १६ ॥

पावीरवी वाग्वै सरस्वती पावीरवी । ऐ० ३ । ३७ ॥

पाशः वारुणो वै पाशः । तै० ३ । ३ । १० । १ ॥ श० ६ । ७ । ३ । ८ ॥
,, नैर्ऋतो वै पाशः । श० ७ । २ । १ । १५ ॥

पाष्ठौहम् (साम) पष्ठवाड् वा एतेनाङ्गिरसश्चतुर्थस्याह्नो वाचं वदन्तीमुपाशृणोत्स होवागिति निधनमुपैत्तदस्याभ्युदितं तदहरवसत् । तां० १२ । ५ । ११ ॥

पितरः सो (प्रजापतिः) ऽसुरान् सृष्ट्वा पितेवामन्यत । तदनु पितॄनसृजत । तत्पितॄणां पितृत्वम् । तै० २ । ३ । ८ । २ ॥
,, अग्निमुखा एव तत्पितृलोकाज्जीवलोकमभ्यायन्ति । श० १३ । ८ । ४ । ६ ॥
,, मनुष्या वै जागरितं पितरः सुप्तम् । श० १२ । ९ । २ । २ ॥
,, रात्रिः पितरः । श० २ । १ । ३ । १ ॥
,, तत्तमसः पितृलोकादादित्यं ज्योतिरभ्यायन्ति । श० १३ । ८ । ४ । ७ ॥
,, तिर इव वै पितरो मनुष्येभ्यः । श० २ । ४ । २ । २१ ॥
,, तिर इव वै पितरः । श० २ । ६ । १ । १९ ॥ १३ । ८ । ३ । २ ॥
,, अन्तर्हितो हि पितृलोको मनुष्यलोकात् । तै० १ । ६ । ८ । ६ ॥
,, अध इव हि पितृलोकः । श० १४ । ६ । १ । १० ॥
,, अवान्तरदिशो वै पितरः । श० १ । ८ । १ । ४० ॥ २ । ६ । १ । १०, ११ ॥
,, उभे दिशावन्तरेण विदधाति प्राचीं च दक्षिणां चैतस्याᳯं ह दिशि पितृलोकस्य द्वारम् । श० १३ । ८ । १ । ५ ॥
,, दक्षिणावृद्धि पितॄणाम् । तै० १ । ६ । ८ । ५ ॥
,, पितॄणां वा एषा दिग्यद्दक्षिणा । ष० ३ । १ ॥
,, यम्येनाऽऽजघ्निवेण (उद्गात्रा दीक्षामहा इति) पितरो दक्षिणतः (आगच्छन्) । जै० उ० २ । ७ । २ ॥
,, दक्षिणासंस्थो वै पितृयज्ञः । कौ० ५ । ७ ॥ गो० उ० १ । २५ ॥

पितरः स (सूर्यः) यत्रोदङ्ङावर्त्तते। देवेषु तर्हि भवति देवांस्तर्ह्यभिगोपायत्यथ यत्र दक्षिणावर्त्तते पितृषु तर्हि भवति पितृंस्तर्ह्यभिगोपायति । श० २ । १ । ३ । ३ ॥

„ मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु । श० ३ । ५ । २ । ६ ॥

„ अथैनं (प्रजापतिं) पितरः । प्राचीनावीतिनः सव्यं जान्वाच्योपासीदंस्तान् (प्रजापतिः) अब्रवीन्मासि वो ऽशनꣳ स्वधा वो मनोजवो वश्चन्द्रमा वो ज्योतिरिति । श० २ । ४ । २ । २ ॥

„ मासि पितृभ्यः क्रियते । तै० १ । ४ । ६ । १ ॥

„ तृतीये हि लोके पितरः । तां० ९ । ८ । ५ ॥

„ तृतीये वा इतो लोके पितरः । तै० १ । ३ । १० । ५ ॥ १ । ६ । ८ । ७ ॥

„ अन्तरिक्षं तृतीयं पितॄन्यज्ञो ऽगात् । ऐ० ७ । ५ ॥

„ पितरो नमस्याः । श० १ । ५ । २ । ३ ॥

„ यानग्निरेव दहन्त्स्वदयति ते पितरो ऽग्निष्वात्ताः । श० २ । ६ । १ । ७ ॥

„ ये वा अयज्वानो गृहमेधिनः । ते पितरो ऽग्निष्वात्ताः । तै० १ । ६ । ९ । ६ ॥

„ अर्द्धमासा वै पितरो ऽग्निष्वात्ताः । तै० १ । ६ । ८ । ३ ॥

„ अथ पितृभ्यो ऽग्निष्वात्तेभ्यः । निवान्यायै दुग्धे सकृदुपमथित एकशलाकया मन्थो भवति । श० २ । ६ । १ । ६ ॥

„ अथ ये दत्तेन पक्वेन लोकं जयन्ति ते पितरो बर्हिषदः । श० २ । ६ । १ । ७ ॥

„ ये वै यज्वानः । ते पितरो बर्हिषदः । तै० १ । ६ । ९ । ६ ॥

„ मासा वै पितरो बर्हिषदः । तै० १ । ६ । ८ । ३ ॥ ३ । ३ । ६ । ४ ॥

„ पितृभ्यो बर्हिषद्भ्यः । अन्वाहार्यपचने धानाः कुर्वन्ति ततो ऽर्धाः पिꣳषन्त्यर्धा इत्येव धाना अपिष्टा भवन्ति ता धानाः पितृभ्यो बर्हिषद्भ्यः । श० २ । ६ । १ । ५ ॥

पितरः तद्ये सोमेनेजानाः । ते पितरः सोमवन्तः । श० २ । ६ । १ । ७ ॥
,, स पितृभ्यः सोमवद्भ्यः । षट्कपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० २ । ६ । १ । ४ ॥
,, सोमप्रयाजा हि पितरः । तै० १ । ६ । ६ । ५ ॥
,, इन्द्र इव हि पितरः । मन इव । तां० ६ । ६ । १६-२० ॥
,, पितृदेवत्यः सोमः । श० ३ । २ । ३ । १७ ॥
,, पितृलोकः सोमः । कौ० १६ । ५ ॥
,, पितृदेवत्यो वै सोमः । श० २।४।२।१२ ॥ ४।४।२।२ ॥
,, स्वाहा सोमाय पितृमते । मं० २ । ३ । १ ॥
,, सोमाय वा पितृमते (षट्कपालं पुरोडाशं निर्वपति) । श० २ । ६ । १ । ४ ॥
,, संवत्सरो वै सोमः पितृमान् । तै० १ । ६ । ८ । २ ॥ १ । ६ । ६ । ५ ॥
,, ओषधिलोको वै पितरः । श० १३ । ८ । १ । २० ॥
,, षड् वाऽ ऋतवः पितरः । श० ६ । ४ । ३ । ८ ॥
,, ऋतवः पितरः । कौ० ५ । ७ ॥ श० २ । ४ । २ । २४ ॥ २ । ६ । १ । ४ ॥ गो० उ० १ । २४ ॥ ६ । १५ ॥
,, ऋतवो वै पितरः । श० २ । ६ । १ ।३२ ॥
,, यदृतवः पितरः प्रजापतिं पितरं पितृयज्ञेनायजन्त तत्पितृयज्ञस्य पितृयज्ञत्वम् । तै० १ । ४ । १० । ८ ॥
,, शरद्धेमन्तः शिशिरस्ते (ऋतवः) पितरः । श० २ । १ । ३ । १ ॥
,, ऋतवः खलु वै देवाः पितरः । ऋतूनेव देवान् पितॄन् प्रीणाति । तान् प्रीतान् । मनुष्याः पितरो ऽनु प्रपिपते । तै० १ । ३ । १० । ५ ॥
,, यमो वैवस्वतो राजेत्याह तस्य पितरो विशस्तऽ इमऽ आसतऽ इति स्थाविरा उपसमेता भवन्ति तानुपदिशति यजूꣳषि वेदः सो ऽयमिति (आश्वलायनश्रौतसूत्रे १० । ७ । २ ॥ शाङ्खायन-श्रौतसूत्रे १६ । २ । ४-६ ॥) । श० १३ । ४ । ३ । ६ ॥
,, क्षत्रं वै यमो विशः पितरः । श० ७ । १ । १ । ४ ॥

पितरः पितृलोको यमः । कौ० १६ । ८ ॥

„ (प्रजापतिः) निधनम्पितृभ्यः (प्रायच्छत्) तस्मादु ते निधनसंस्थाः । जै० उ० १ । १२ । २ ॥

„ यानेवैषां तस्मिन्त्संग्रामे ऽघ्नंस्तान्पितृयज्ञेन समैरयन्त पितरो वै तऽ आसंस्तस्मात्पितृयज्ञो नाम । श० २ । ६ । १ । १ ॥

„ यः (अर्धमासः) अपक्षीयते स पितरः । श० २ । १ । ३ । १ ॥

„ अपक्षयभाजो वै पितरः । कौ० ५ । ६ ॥

„ अपराह्णः पितरः । श० २ । १ । ३ । १ ॥

„ तस्मै (चन्द्रमसे) ह स्म पूर्वाह्णे देवा अशनमभिहरन्ति मध्यन्दिने मनुष्याऽ अपराह्णे पितरः । श० १ । ६ । ३ । १२ ॥

„ अपराह्णभाजो वै पितरस्तस्मादपराह्णे पितृयज्ञेन चरन्ति । गो० उ० १ । २४ ॥

„ अन्तभाजो वै पितरः । कौ० १६ । ८ ॥

„ यदि नाश्नाति पितृदेवत्यो भवति । श० ११ । १ । ७ । २ ॥

„ मर्त्याः पितरः । श० २ । १ । ३ । ४ ॥

„ अनपहतपाप्मानः पितरः । श० २ । १ । ३ । ४ ॥

„ पितृलोकः पितरः । कौ० ५ । ७ ॥ गो उ० १ । २५ ॥

„ पितृदेवत्यो वै कूपः खातः । श० ३ । ६ । १ । १३ ॥ ३ । ७ । १ । ६ ॥

„ पितृदेवत्या वै नीविः । श० २ । ४ । २ । २४ ॥ २ । ६ । १ । ४२ ॥

„ अथ या रोहिणी श्येताक्षी (गौः) सा पितृदेवत्या यामिदं पितृभ्यो घ्नन्ति । श० ३ । ३ । १ । १४ ॥

„ अथ यदध्वर्य्युः पितृभ्यो निपृणाति, जीवानेव तत् पितृननु मनुष्याः पितरो ऽनुपवहन्ति । गो० उ० १ । २५ ॥

„ पितॄणां मघाः (नक्षत्रम्) । तै० १ । ५ । १ । २ ॥ ३ । १ । १ । ६ ॥

„ पितरः प्रजापतिः । गो० उ० ६ । १५ ॥

„ मनः पितरः । श० १४ । ४ । ३ । १३ ॥

„ गृहाणाꣳ ह पितर ईशते । श० २ । ४ । २ । २४ ॥

„ गृहाणाꣳ हि पितर ईशते । श० २ । ६ । १ । ४२ ॥

पितरः सर्वतः पितरः । श० २ । ६ । १ । ११ ॥

" सकृदु ह्येव पराञ्चः पितरः । श०२ । ४। २ । ८ ॥ ४ । ४ । २ । ३ ॥

" सकृदिव वै पितरः । कौ० ५ । ६ ॥ १० । ४ ॥

" पराञ्च उ वै पितरः । कौ० ५ । ६ ॥

" ह्रीका हि पितरः । तै० १ । ३ । १० । ६ ॥ १ । ६ । ९ । ७ ॥

" हरणभागा हि पितरः । तै० १ । ३ । १० । ७ ॥

" ऊष्मभागा हि पितरः । तै० १ । ३ । १० । ६ ॥

" देवा वा एते पितरः । कौ० ५ । ६ ॥

" देवा वा एते पितरः । गो० उ० १ । २४ ॥

" स्विष्टकृतो वै पितरः । गो० उ० १ । २५ ॥

" त्रया वै पितरः (सोमवन्तः, बर्हिषदः, अग्निष्वात्ताः) । श० ५ । ५ । ४ । २८ ॥ १४ । १ । ३ । २४ ॥

" ऊमा वै पितरः प्रातःसवन ऊर्वा माध्यन्दिने काव्यास्तृतीयसवने (ऊमाः=ऋतुविशेषः, तैत्तिरीयसंहितायाम् ४ । ४ । ७ । २ ॥ ५ । ३ । ११ । ३ ॥ सायणभाष्ये ऽपि) । ऐ० ७ । ३४ ॥

" एतद्ध वै पितरो मनुष्यलोकाऽ आभक्ता भवन्ति यदेषां प्रजा भवति । श० १३ । ८ । १ । ६ ॥

" (अयास्य आङ्गिरसः) व्यानेन पितॄन् पितृलोके (अदधात्) । जै० उ० २ । ८ । ३ ॥

" कव्यवाहनः (वाऽ अग्निः) पितॄणाम् । श० २ । ६ । १ । ३० ॥

" अथ यदेव प्रजामिच्छेत । तेन पितृभ्यऽ ऋणं जायते तद्ध्येभ्यऽ एतत्करोति यदेषाᳬ सन्तताव्यवच्छिन्ना प्रजा भवति । श० १ । ७ । २ । ४ ॥

" यत्पीतस्तं तत्पितॄणाम् । ष० ४ । १ ॥

" स्वधाकारो हि पितॄणाम् । तै० १ । ६ । ९ । ५ ॥ ३ । ३ । ६ । ४॥

" स्वधो वै पितॄणामन्नम् । श० १३ । ८ । १ । ४ ॥

" स्वधाकारं पितरः (उपजीवन्ति) । श० १४ । ८ । ६ । १ ॥

" कर्मणा पितृलोकः (जय्यः) । श० १४ । ४ । ३ । २४ ॥

पितरा युवाना (यजु० १५ । ५३) वाक् च वै मनश्च पितरा युवाना । श० ८ । ६ । ३ । २२ ॥

पिता प्राणो वै पिता । ऐ० २ । ३८ ॥

" (यजु० ३७ । २०) एष वै पिता य एष (सूर्यः) तपति । श० १४ । १ । ४ । १५ ॥

" सा (सुकन्या) होवाच यस्मै मां पितादान्नैवाहं तं (पतिं) जीवन्तꣳ हास्यामीति । श० ४ । १ । ५ । ८ ॥

पिता वैश्वानरः संवत्सरो वै पिता वैश्वानरः प्रजापतिः । श० १ । ५ । १ । १६ ॥

पितुः (यजु० २ । २० ॥ १२ । ६५ ॥) अन्नं वै पितुः । श० १ । ९ । २ । २० ॥ ७ । २ । १ । १५ ॥

" अथैव पितुं मे गोपायेत्याह । अन्नमेवैतेन स्पृणोति । तै० १ । १ । १० । ४ ॥

" अन्नं वै पितु । ऐ० १ । १३ ॥

" दक्षिणा वै पितु । ऐ० १ । १३ ॥

पितुषणिः पितुषणिरित्यन्नं वै पितु दक्षिणा वै पितु तामेनेन (सोमेन) सनोत्यन्नसनिमेवैनं (सोमं) तत्करोति । ऐ० १ । १३ ॥

पितृमान्पैतृमत्यः यो वै ज्ञातो ज्ञातकुलीनः स पितृमान्पैतृमत्यः । श० ४ । ३ । ४ । १९ ॥

पिन्वन्त्यपीया (ऋक्) तयदेव वृत्रं हतमापो व्यायन् यत्प्रापिन्वंस्तस्मात्पिन्वन्त्यपीया । कौ० १५ । ३ ॥

" पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानव इति पिन्वन्त्यपीयापो वै पिन्वन्त्यपीया । कौ० १५ । ३ ॥

पिपीलिकमध्या (अनुष्टुप्) इन्द्रो वृत्रं हत्वा नास्तृषीति मन्यमानां परां परावतमगच्छत् स एतां (पिपीलिकमध्यां) अनुष्टुभं व्यौहत्तस्मध्ये व्यवासर्पदिन्द्र गृहे वा एषोऽभये यजते ऽभय उत्तिष्ठति य एवं विद्वानेतासु (पिपीलिकमध्यासु) स्तुते । तां० १५ । ११ । ८ ॥

" पिपीलिकामध्यंत्यौपमिकम् । दे० ३ । १० ॥

पिपीलिका पिपीलिका पेलतेर्गतिकर्मणः । दे० ३ । ९ ॥

पिपृताम् (यजु० १३ । ३१) पिपृतां नो भरीमभिरिति बिभृतां नो

भरीमभिरित्येतत् । श० ७ । ५ । १ । १० ॥

पिलिप्पिला श्रीर्वै पिलिप्पिला । तै० ३ । ९ । ५ । ३ ॥ श० १३ । २ । ६ । १६ ॥

पिशङ्गिला रात्रिर्वै पिशङ्गिला । तै० ३ । ९ । ५ । ३ ॥

,, अहोरात्रे वै पिशंगिले । श० १३ । २ । ६ । १७ ॥

पिशाचः अथ यः कामयेत पिशाचान् गुणीभूतान पश्येयमिति...... । सा० वि० ३ । ७ । ३ ॥

पीतुदारु (="उदुम्बर इति केचिद्देवदारुरन्ये" इति सायणः) (अग्नेः) यदस्थि तत्पीतुदारु । तां० २४ । १३ । ५ ॥

,, शरीरꣳ हैवास्य (अग्नेः) पीतुदारु । श० ३ । ५ । २ । १५ ॥

,, अथ (प्रजापतेः)यदापोमयं तेज आसीत् । यो गन्धः स सार्धꣳ समवद्रुत्य चक्षुष्ट उद्भिनत्स एष वनस्पतिरभवत्पीतुदारुस्तस्मात्स सुरभिर्गन्धाद्धि समभवत्तस्मादु ज्वलनस्तेजसो हि समभवत् । श० १३ । ४ । ४ । ७ ॥

पुञ्जिकस्थला (यजु० १५ । १५) (अग्नेः) पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसाविति दिक् चोपदिशा चेति ह स्माह माहित्थिः सेना च तु ते समितिश्च । श०८। ६। १। १६ ॥

पुण्डरीकम् अङ्गिरसः सुवर्गं लोकं यन्तः । अप्सु दीक्षातपसी प्रावेशयन् । तत्पुण्डरीकमभवत् । तै० १ । ८ । २ । १ ॥

,, यानि पुण्डरीकाणि तानि दिवो रूपम् । तानि नक्षत्राणाꣳ रूपम् । श० ५ । ४ । ५ । १४ ॥

,, "पुष्करम्" शब्दमपि पश्यत ।

पुण्यं कर्म पुण्यं कर्म सुकृतस्य लोकः । तै० ३ । ३ । १० । २ ॥

,, ये हि जनाः पुण्यकृतः स्वर्गं लोकं यन्ति तेषामेतानि (नक्षत्राणि) ज्योतीꣳषि । श० ६ । ५ । ४ । ८ ॥

पुत्रः पुन्नाम नरकमनेकशततारं तस्मात् त्राति पुत्रस्तत्पुत्रस्य पुत्त्रत्वम् । गो० पू० १ । २ ॥

,, पुत्रो वै वीरः (यजु० ४ । २३) । श० ३ । ३ । १ । १२ ॥

,, आत्मासि पुत्र मा मृथाः स जीव शरदः शतम् । मं० १ । ५ । १८ ॥

,, पुत्रो हि हृदयम् । तै० २ । २ । ७ । ४ ॥

पुत्रः नापुत्रस्य लोको ऽस्ति । ऐ० ७ । १३ ॥

„ तस्मादुत्तरवयसे पुत्रान्पितोपजीवत्युप ह वाऽ एनं पूर्ववयसे पुत्रा जीवन्ति । श० १२ । २ । ३ । ४ ॥

„ उप ह वा एनं पूर्वे वयसि पुत्राः पितरमुपजीवन्त्युपोत्तमे वयसि पुत्रान् पितोपजीवति । गो० पू० ४ । १७ ॥

„ अनुरूप एनं पुत्रो जायते य एवं वेद । तां० ११ । ६ । ५ ॥

„ प्रतिरूपो हैवास्य (यजमानस्य) प्रजायामाजायते नाप्रतिरूप-स्तस्मात्प्रतिरूपमनुरूपं कुर्वन्ति । गो० उ० ३ । २२ ॥

पुनःपदम् प्राणाः पुनःपदम् । कौ० २३ । ६ ॥

पुनःस्तोमः (क्रतुः) यो बहु प्रतिगृह्य गरगीरिव मन्यते स एतेन (पुनः-स्तोमेन) यजेत । तां० १९ । ४ । २ ॥

पुनर्जन्म ते यऽ एवमेतद्विदुः । ये वैतत्कर्म कुर्वते मृत्वा पुनः सम्भवन्ति ते सम्भवन्त एवामृतत्वमभिसम्भवन्त्यथ यऽ एवं न विदुर्ये वैतत्कर्म न कुर्वते मृत्वा पुनः सम्भवन्ति त एतस्य (मृत्योः) एवान्नं पुनः पुनर्भवन्ति । श० १० । ४ । ३ । १० ॥

पुनर्वसू (नक्षत्रविशेषः) अदित्यै पुनर्वसू । तै० १ । ५ । १ । १ ॥

„ एवा न देव्यदितिरनर्वा । विश्वस्य भर्त्री जगतः प्रतिष्ठा । पुनर्वसू हविषा वर्धयन्ती । तै० ३ । १ । १ । ४ ॥

पुनश्चितिः तद्यच्चितꣳ सन्तं पुनश्चिनोति तस्मात्पुनश्चितिः । श० ८ । ६ । ३ । १३ ॥

पुमान् वीर्य्यं पुमान् । श० २ । ५ । २ । ३६ ॥

पुरः (यजु० १३ । ५४ ॥) अग्निर्वै पुरस्तद्यत्तमाह पुर इति प्राञ्चꣳ ह्यग्निमुद्धरन्ति प्राञ्चमुपचरन्ति । श० ८ । १ । १ । ४ ॥

„ अग्निरेव पुरः । श० १० । ३ । ५ । ३ ॥

„ मन एव पुरः । मनो हि प्रथमं प्राणानाम् । श० १० । ३ । ५ । ७ ॥

पुरन्धिर्योषा (यजु० २२ । २२) पुरन्धिर्योषेति । योषित्येव रूपं दधाति तस्माद्रूपिणी युवतिः प्रिया भावुका । श० १३ । १ । ९ । ६ ॥

पुरश्चरणम् "पुरः" "चरणम्" चेत्येतौ शब्दावपि पश्यत ।

„ अथैतं विष्णुं यज्ञम् । एतैर्यजुर्भिः पुर इवैव बिभ्रति तस्मात्पुरश्चरणं नाम । श० ४ । ६ । ७ । ४ ॥

पुरश्चरणम् तद्वाऽ एतदेव पुरश्चरणम् । य एष (सूर्यः) तपति । श० ४ । ६ । ७ । २१ ॥

पुरीषम् अन्नं पुरीषम् । श० ८ । १ । ४ । ५ ॥ ८ । ७ । ३ । २ ॥

,, अन्नं वै पुरीषम् । श० ८ । ५ । ४ । ४ ॥ ८ । ६ । १ । २१ ॥ १४ । ३ । १ । २३ ॥

,, माꣳसं पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १९ ॥

,, माꣳसं वै पुरीषम् । श० ८ । ६ । २ । १४ ॥ ८ । ७ । ३ । १ ॥

,, पुरीष्य इति वै तमाहुर्यः श्रियं गच्छति समानं वै पुरीषं च करीषं च । श० २ । १ । १ । ७ ॥

,, स एष प्राण एव यत्पुरीषम् । श० ८ । ७ । ३ । ६ ॥

,, पुरीषं वाऽ इयम् (पृथिवी) । श० १२ । ५ । २ । ५ ॥

,, ऐन्द्रꣳ हि पुरीषम् । श० ८ । ७ । ३ । ७ ॥

,, अथ यत्पुरीषꣳ स इन्द्रः । श० १० । ४ । १ । ७ ॥

,, दक्षिणाः पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १५ ॥

,, देवाः पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १७ ॥

,, नक्षत्राणि पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १४ ॥

,, वयाꣳसि पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १३ ॥

,, प्रजा पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १६ ॥

,, प्रजा पशवः पुरीषम् । तै० ३ । २ । ८ । ९ ॥ ३ । २ । ९ । १२ ॥

,, (यजु० १३ । ३१) पशवो वै पुरीषम् । श० ७ । ५ । १ । ९ ॥ १ । २ । ५ । १७ ॥ ६ । ३ । १ । ३८ ॥

,, पशवः पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १२ ॥

,, गोष्ठः पुरीषम् । तां० १३ । ४ । १३ ॥

,, पुरीतत्पुरीषम् । श० ८ । ५ । ४ । ६ ॥

पुरीष्यः पुरीष्य इति वै तमाहुर्यः श्रियं गच्छति । श० २ । १ । १ । ७ ॥

पुरुदस्मः बहुदान इति हैतद्यदाह पुरुदस्म इति । श० ४ । ५ । २ । १२ ॥

पुरुषः स वाऽ अयं पुरुषः सर्वासु पूर्षु पुरिशयः । श० १४ । ५ । ५ । १८ ॥

,, इमे वै लोका पूरयमेव पुरुषो यो ऽयं (वायुः) पवते सो ऽस्यां पुरि शेते तस्मात्पुरुषः । श० १३ । ६ । २ । १ ॥

पुरुषः प्राण एव स पुरि शेते सं पुरि शेत इति पुरिशयं सन्तं प्राणं पुरुष इत्याचक्षते । गो० पू० १ । ३६ ॥

,, स यत् पूर्वो ऽस्मात् । सर्वस्मात्सर्वान्पाप्मन औषत्तस्मात्पुरुषः । श० १४ । ४ । २ । २ ॥

,, अथ यः पुरुषस्स प्राणास्तत्साम तद्ब्रह्म तदमृतम् । जै० उ० १ । २५ । १० ॥

,, पुरुषो वाऽ अक्षितिः । श० १४ । ४ । ३ । ७ ॥

,, पुरुषो वै सहस्रस्य प्रतिमा (यजु० १३ । ४१) । श० ७ । ५ । २ । १७ ॥

,, (प्रजापतिः) मनसः पुरुषम् (निरमिमीत) । श० ७ । ५ । २ । ६ ॥

,, प्राजापत्यो वै पुरुषः । तै० २ । २ । ५ । ३ ॥

,, पुरुषो वै प्रजापतेर्नेदिष्टम् । श० ४ । ३ । ४ । ३ ॥

,, पुरुषः प्रजापतिः । श० ६ । २ । १ । २३ ॥ ७ । १ । १ । ३७ ॥

,, पुरुषो हि प्रजापतिः । श० ७ । ४ । १ । १५ ॥

,, वैष्णवाः पुरुषाः । श० ५ । २ । ५ । २ ॥

,, (प्रजापतिः) वैश्वकर्मणं पुरुषं (आलिप्सत) । श० ६ । २ । १ । ५ ॥

,, सौम्यो वै देवतया पुरुषः । तै० १ । ७ । ८ । ३ ॥

,, पुरुषं प्रथममालभते । पुरुषो हि प्रथमः पशूनाम् । श० ६ । २ । १ । १८ ॥

,, पुरुषः पशूनाम् (अधिपतिः) । तां० ६ । २ । ७ ॥

,, पशवः पुरुषः । तै० ३ । ३ । ८ । २ ॥

,, पुरुषस्तेन यज्ञो यदेनं पुरुषस्तनुत एष वै तायमानो यावानेव पुरुषस्तावान् विधीयते तस्मात् पुरुषो यज्ञः । श० १ । ३ । २ । १ ॥

,, पुरुषो यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । २३ ॥

,, पुरुषो वै यज्ञः । कौ० १७ । ७ ॥ २५ । १२ ॥ २८ । ६ ॥ श० १ । ३ । २ । १ ॥ ३ । ५ । ३ । १ ॥ तै० ३ । ८ । २३ । १ ॥ गो० पू० ४ २४ ॥ गो० उ० ६ । १२ ॥

पुरुषः पुरुषो वै यज्ञः । तस्य यानि चतुर्विंशतिर्वर्षाणि तत्प्रातःसवनम् ।...अथ यानि चतुश्चत्वारिंशतं वर्षाणि तन्माध्यन्दिनं सवनम् ...अथ यान्यष्टाचत्वारिंशतं वर्षाणि तत्तृतीयसवनम् ।...स (महिदास ऐतरेयः) षोडश शतं(२४+४४+४८=११६) वर्षाणि जिजीव । (एवं छांदोग्योपनिषदि ३ । १६ । १—७) । जै० उ० ४ । २ । १—११ ॥

„ पुरुषो वै यज्ञस्तेनेदं सर्वं मितम् (तैत्तिरीयसंहितायाम् ५ । २ ५ । १ः—यज्ञेन वै पुरुषः सम्मितः ॥) । श० १० । २ । १ । २ ॥

„ पुरुषसम्मितो यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । २३ ॥

„ अपाङ्गर्भः पुरुषः स यज्ञः । गो० पू० १ । ३९ ॥

„ पुरुष उद्गीथः । जै० उ० १ । ३३ । ९ ॥

„ पुरुषो ह्युद्गीथः । जै० उ० ४ । ६ । १ ॥

„ पुरुषो ऽग्निः । श० १० । ४ । १ । ६ ॥

„ पुरुषो वा ऽ अग्निः । श० १४ । ९ । १ । १५ ॥

„ पुरुषो वै समुद्रः । जै० उ० ३ । ३५ । ५ ॥

„ पुरुषः सुपर्णः (यजु० १३ । १६) । श० ७ । ४ । २ । ५ ॥

„ पुरुषो वाव संवत्सरः । गो०पू० ५ । ३, ५ ॥

„ पुरुषो वै संवत्सरः । श० १२ । २ । ४ । १ ॥

„ पुरुष एव सविता । जै० उ० ४ । २७ । १७ ॥

„ पुरुषो वाव होता । गो० उ० । ६ । ६ ॥

„ पुरुष एव षष्ठमहः । कौ० २३ । ४ ॥

„ अथैष एष पुरुषो यो ऽयं चक्षुषि । जै० उ० १ । २७ । २ ॥

„ पुरुषं ह वै नारायणं प्रजापतिरुवाच । गो० पू० ५ । ११ ॥ श० १२ । ३ । ४ । १ ॥

„ षोडशकलो वै पुरुषः । तै० १ । ७ । ५ । ५ ॥ श० ११ । १ । ६ । ३६ ॥ जै० उ० ३ । ३८ । १ ॥

„ सप्तदशो वै पुरुषो दश प्राणाश्चत्वार्यङ्गान्यात्मा पञ्चदशो ग्रीवाः षोडश्यः शिरः सप्तदशम् । श० ६ । २ । २ । ९ ॥

„ असङ्गो ह्ययं पुरुषः । श० १४ । ७ । १ । १७ ॥

„ काममय एवायं पुरुष इति स यथाकामो भवति तथाक्रतुर्भवति

यथाक्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसम्पद्यते । श० १४ । ७ । २ । ७ ॥

पुरुषः अथ खलु क्रतुमयो ऽयं पुरुषः स यावत्क्रतुरयमस्माल्लोकात्प्रैत्ये-वंक्रतुर्हामुं लोकं प्रेत्याभिसम्भवति । श० १० । ६ । ३ । १ ॥

,, व्याममात्रो वै पुरुषः । श० ७ । १ । १ । ३७ ॥

,, द्विप्रतिष्ठो वै पुरुषः । ऐ० २ । १८ ॥ ३ । ३१ ॥ ५ । ३ ॥ ६ । २ ॥

,, द्विप्रतिष्ठः पुरुषः । गो० पू० ४ । २४ ॥ गो० उ० ६ । १२ ॥

,, द्विप्रतिष्ठः (पुरुषः) । तै० ३ । ६ । १२ । ३ ॥

,, द्विपाद्वै पुरुषः । ऐ० ४ । ३ ॥ ५ । १७, १६, २१ ॥ गो० पू० ४ । २४ ॥ गो० उ० ६ । १२ ॥ तै० ३ । ६ । १२ । ३ ॥

,, पुरुषो वै ककुप् । तां० ८ । १० । ६ ॥ १३ । ६ । ४ ॥ १६ । ११ । ७ ॥ १६ । ३ । ४ ॥ २० । ४ । ३ ॥

,, वैराजो वै पुरुषः । तां० २ । ७ । ८ ॥ १६ । ४ । ५ ॥ तै० ३ । ६ । ८ । २ ॥

,, गायत्रो वै पुरुषः । ऐ० ४ । ३ ॥

,, औष्णिहो वै पुरुषः । ऐ० ४ । ३ ॥

,, पांक्तः पुरुषः । कौ० १३ । २ ॥ तां० २ । ४ । २ ॥ गो० उ० ४ । ७ ॥

,, पाङ्क्तो ऽयं पुरुषः पंचधा विहितो लोमानि त्वङ् मांसमस्थि मज्जा । ऐ० २ । १४ ॥ ६ । २६ ॥

,, पाङ्क्तो ह्ययं पुरुषः पञ्चधा विहितो लोमानि त्वगस्थि मज्जा मस्तिष्कम् । गो० उ० ६ । ६ । ८ ॥

,, पाङ्क्तो वै पुरुषो लोम त्वङ् माꣳसमस्थि मज्जा । श० १० । २ । ३ । ५ ॥

,, त्वङ् माꣳसꣳ स्नाय्वस्थि मज्जा । एतमेव तत्पञ्चधा विहितमात्मानं वरुणपाशान्मुञ्चति (यजमानः=पुरुषः) । तै० १ । ५ । ६ । ७ ॥

,, षड्विधो वै पुरुषः षडङ्गः । ऐ० २ । ३६ ॥

,, सप्तपुरुषो ह्ययं पुरुषो यच्चत्वार आत्मा त्रयः पक्षपुच्छानि । श० ६ । १ । १ । ६ ॥

,, एतावन्तः (७२०) एव पुरुषस्यास्थीनि च मज्जानश्च......,

एतावन्तः (१४४०) एव पुरुषस्य स्थुरामांसानि......,एतावन्तः (२८८०) एव स्नावा बन्ध्याः......,एतावन्तः (१०८००) एव पुरुषस्य पेशशमराः । गो० पू० ५ । ५ ॥

पुरुष. अवछितो ह वै पुरुषः । तस्मादस्य यत्रैव क्व च कुशो वा यद्वा विकृन्तति तत एव लोहितमुत्पतति तस्मिन्नेतां त्वचमदधुर्वास एव तस्मान्नान्यः पुरुषाद्वासो विभर्त्येताꣳ ह्यस्मिंस्त्वचमदधुस्तस्मादु सुवासा एव बुभूषेत्स्वया त्वचा समृध्याऽ इति तस्मादप्यश्लीलꣳ सुवाससं दिदृक्षन्ते स्वया हि त्वचा समृद्धो भवति । श० ३ । १ । २ । १६ ॥

,, द्वे वै पुरुषकपाले । कौ० ३० । ४ ॥

,, विदलसंहित इव वै पुरुषस्तद्धापि स्यूमेव मध्ये शीर्ष्णो विज्ञायते । ऐ० ४ । २२ ॥

,, विꣳशो वै पुरुषो दश हि हस्त्या अङ्गुल्यो दश पाद्याः । तां० २३ । १४ । ५ ॥

,, चतुर्विꣳशो वै पुरुषो दश हस्त्या अङ्गुलयो दश पाद्याश्चत्वार्यङ्गानि । श० ६ । २ । १ । २३ ॥

,, एतावान्पुरुषो यदात्मा प्रजा जाया । तां० ३ । ४ । ३ ॥ ३ । १३ । ३ ॥

,, शतायुर्वै पुरुषः । कौ० ११ । ७ ॥

,, शतायुर्वै पुरुषः शतपर्वा शतवीर्य्यः शतेन्द्रिय उप य एकशततमः स आत्मा । कौ० १८ । १० ॥

,, शतायुर्वै पुरुषः शतपर्वा शतवीर्यः शतेन्द्रिय उप यैकशततमी (ऋक्) स यजमानलोकः । कौ० २५ । ७ ॥

,, शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्य्यः । तै० ३ । ८ । १५ । ३ ॥ ३ । ८ । १६ । २ ॥ तां० ५ । ६ । १३ ॥

,, शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्य्यः । आत्मैकशतः । तै० १ । ७ । ६ । ४ ।

,, शतायुः पुरुषः शतेन्द्रियः । तै० १ । ३ । ७ । ७ ॥ १ । ७ । ६ । २ ॥ १ । ७ । ८ । २ ॥ १ । ७ । १० । ६ ॥

,, शतायुर्वै पुरुषः शतवीर्य्यः शतेन्द्रियः । ऐ० २ । १७ ॥ ४ । १९॥ ६ । २ ॥

पुरुषः सोऽयꣳ (पुरुषः) शतायुः शततेजाः शतवीर्यः । श० ४ । ३ । ४ । ३ ॥

" शतायुर्वाऽअयं पुरुषः शततेजाः शतवीर्य्यः । श० ५ । ४ । १ । १३ ॥

" अपि हि भूयाꣳसि शताद्वर्षेभ्यः पुरुषो जीवति । श० १ । ९ । ३ । १९ ॥

" यद्वै पुरुषवान्कर्म चिकीर्षति शक्नोति वै तत्कर्तुम् । श० ५ । २ । ५ । ४ ॥

" "अनद्धा पुरुषः" शब्दमपि पश्यत ।

पुरुषमेधः तस्य (पुरुषस्य वायोः) यदेषु लोकेष्वन्नं तदस्यान्नं मेधस्तद्यदस्यैतदन्नं मेधस्तस्मात्पुरुषमेधो ऽथो यदस्मिन्मेध्यान्पुरुषानालभते तस्माद्वेव पुरुषमेधः (शाङ्खायनश्रौतसूत्रे १६ । १० । ९ ॥ १६ । १२ । १७, २१ ॥ वैतानसूत्रे ३७ । १५, १६, १८, १९, २३—२६ ॥) । श० १३ । ६ । २ । १ ॥

" अश्वमेधात्पुरुषमेधः । गो० पू० ५ । ७ ॥

" इमे वै लोकाः पुरुषमेधः । श० १३ । ६ । १ । ९ ॥

" सर्वं पुरुषमेधः । श० १३ । ६ । १ । ६ ॥

" पुरुषं वै देवाः पशुमालभन्त तस्मादालब्धान्मेध उदक्रामत्सोऽश्वं प्राविशत् । ऐ० २ । ८ ॥

" सः (प्रजापतिः) पुरुषमेधेनेष्ट्वा विराडिति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥

" पुरुषो ह नारायणोऽकामयत । अतितिष्ठेयꣳ सर्वाणि भूतान्यहमेवेदꣳ सर्वꣳ स्यामिति स एतं पुरुषमेधं पञ्चरात्रं यज्ञक्रतुमपश्यत्तमाहरत्तेनायजत तेनेष्ट्वात्यतिष्ठत्सर्वाणि भूतानीदꣳ सर्वमभवदतितिष्ठति सर्वाणि भूतानीदꣳ सर्वं भवति य एवं विद्वान् पुरुषमेधेन यजते यो वैतदेवं वेद । श० १३ । ६ । १ । १ ॥

पुरोडाशः सः (कूर्मरूपेणाच्छन्नः पुरोडाशः) वा एभ्यः (मनुष्येभ्यः) तत्पुरोऽदशयत । य एभ्यो यज्ञं प्रारोचयत्तस्मात्पुरोदाशः पुरोदाशो ह वै नामैतद्यत्पुरोडाश इति । श० १ । ६ । २ । ५ ॥

पुरोडाशः पुरो वा एतान्देवा अक्रत यत्पुरोडाशस्तत्पुरोडाशानां पुरोडाशत्वम् । ऐ० २ । २३ ॥

,, यजमानो वै पुरोडाशः । तै० ३ । २ । ८ । ६ ॥ ३ । २ । ८ । ७॥

,, आत्मा वै यजमानस्य पुरोडाशः । कौ० १३ । ५, ६ ॥

,, पशोर्वै प्रतिमा पुरोडाशः । तै० ३ । २ । ८ । ८ ॥

,, पशुर्ह वाऽ एष आलभ्यते यत्पुरोडाशः । श०१ । २ । ३ । ५ ॥

,, स वा एष पशुरेवालभ्यते यत्पुरोडाशस्तस्य यानि किशारूणि तानि रोमाणि ये तुषाः सा त्वग्ये फलीकरणास्तदसृग्यत्पिष्टं किक्नसास्तन्मांसं यत्किंचित्कं सारं तदस्थि सर्वेषां वा एष पशूनां मेधेन यजते यः पुरोडाशेन यजते । ऐ० २ । ६ ॥

,, पशवो वै पुरोडाशः । तां० २१ । १० । १० ॥ तै० १ । ८ । ६ । ३ ॥

,, मेधो वा एष पशूनां यत्पुरोडाशः । कौ० १० । ५ ॥

,, तर्तिर्वै यज्ञस्य पुरोडाशः । कौ० १० । ५ ॥

,, शिरो ह वाऽ एतद्यज्ञस्य यत्पुरोडाशः । श० १ । २ । १ । २॥

,, तस्य (यज्ञस्य) एतच्छिरः । यत्पुरोडाशः । तै० ३ । २ । ८ । ३ ॥

,, मस्तिष्को वै पुरोडाशः । तै० ३ । २ । ८ । ७ ॥

,, विड्डुत्तरः पुरोडाशः । श० ११ । २ । ७ । १६ ॥

,, आग्नेयः पुरोडाशो भवति । श० २ । ४ । ४ । १२॥

,, इन्द्रस्य पुरोडाशः । श० ४ । २ । ५ । २२ ॥

पुरोधाता पृथिवी पुरोधाता । ऐ० ८ । २७ ॥

,, अन्तरिक्षं पुरोधाता । ऐ० ८ । २७ ॥

,, द्यौः पुरोधाता । ऐ० ८ । २७ ॥

पुरोऽनुवाक्या (ऋक्) प्राण एव पुरोऽनुवाक्या । श० १४ । ६ । १ । १२ ॥

,, पृथिवीलोकमेव पुरोऽनुवाक्यया (जयति)। श० १४ । ६ । १ । ८ ॥

पुरोरुक् (देवाः) पुरोरुग्भिः प्रारोचयन् । श० ३ । ९ । ३ । २८ ॥

पुरोरुक् तं (यज्ञं) पुरोरुग्भिः प्रारोचयन्यत्पुरोरुग्भिः प्रारोचयंस्तत्पुरोरुचां पुरोरुक्त्वम् । ऐ० ३ । ६ ॥

" अथ वै पुरोरुगसावेव यो ऽसौ (सूर्यः) तपत्येष हि पुरस्ताद्रोचते । कौ० १४ । ४ ॥

" अथ वै पुरोरुगात्मैव । कौ० १४ । ४ ॥

" अथ व पुरोरुक् प्राण एव । कौ० १४ । ४ ॥

" वीर्य्यं वै पुरोरुक् । श० ४ । ४ । २ । ११ ॥

" पुरोरुग्वै वाक् ॥ कौ० १४ । ५ ॥

पुरोवातः सः (प्रजापतिः) पुरोवातमेव हिङ्कारमकरोत् । जै० उ० १ । १२ । ६ ॥

पुरोहितः न ह वा अपुरोहितस्य राज्ञो देवा अन्नमदन्ति तस्माद्राजा यक्ष्यमाणो ब्राह्मणं पुरो दधीत । ऐ० ८ । २४ ॥

" आदित्यो वाव पुरोहितः । ऐ० ८ । २७ ॥

" वायुर्वाव पुरोहितः । ऐ० ८ । २७ ॥

" अग्निर्वाव पुरोहितः । ऐ० ८ । २७ ॥

" अग्निर्वा एष वैश्वानरः पञ्चमेनिर्यत्पुरोहितः । ऐ० ८ । २५ ॥

" अग्निर्वा एष वैश्वानरः पञ्चमेनिर्यत्पुरोहितस्तस्य वाच्येवैका मेनिर्भवति पादयोरेका त्वच्येका हृदय एकोपस्थ एका ताभिर्ज्वलन्तीभिर्दीप्यमानाभिरुपोदेति राजानम् । ऐ० ८।२४॥

" अथ यदस्य (राज्ञः) अनिरुद्धो वेश्मसु (पुरोहितः) वसति तेनास्य तां शमयति या ऽस्योपस्थे मेनिर्भवति । ऐ०८ । २४ ॥

" अर्धात्मो ह वा एष क्षत्रियस्य यत्पुरोहितः । ऐ० ७ । २६ ॥

पुष्करपर्णम् आपः पुष्करपर्णम् । श० ६ । ४ । १ । ६ ॥ १० । ५ । २ । ६ ॥

" आपो वै पुष्करपर्णम् । श० ६ । ४ । २ । २ ॥ ७ । ३ । १ । ९ ॥ ७ । ४ । १ । ८ ॥

" द्यौः पुष्करपर्णम् । श० ६ । ४ । १ । ९ ॥

" इयं (पृथिवी) वै पुष्करपर्णम् । श० ७ । ४ । १ । १२ ॥

" प्रतिष्ठा वै पुष्करपर्णम् । श० ७ । ४ । १ । १२ ॥

" वाक् पुष्करपर्णम् । श० ६ । ४ । १ । ७ ॥

पुष्करपर्णम् योनिर्वै पुष्करपर्णम् । श० ६ । ४ । १ । ७ ॥ ६ । ४ । ३ । ६ ॥ ८ । ६ । ३ । ७ ॥

पुष्करम् इन्द्रो वृत्रꣳ हत्वा नास्तृषीति मन्यमानोऽपः प्राविशत्ता अब्रवीद्बिभेमि वै पुरं मे कुरुतेति स यो ऽपाꣳ रस आसीत्त-मूर्ध्वꣳ समुदौहंस्तामस्मै पुरमकुर्वंस्तद्यदस्मै पुरमकुर्वंस्तस्मा-त्पूष्करं पूष्करꣳ ह वै तत्पुष्करमित्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ७ । ४ । १ । १३ ॥

„ ब्रह्म ह वै ब्रह्माणं पुष्करे ससृजे । गो० पू० १ । १६ ॥

„ (=पुण्डरीकम्) इन्द्रो वृत्रमहंस्तस्येयं (पृथिवी) चित्राण्यु-पैद्रूपाण्यसौ (द्यौः) नक्षत्राणामवकाशेन पुण्डरीकञ्जायते यत् पुष्करस्रजं प्रतिमुञ्चते वृत्रस्यैव तद्रूपं क्षत्रम् प्रतिमुञ्चते (Compare वैदिकनिघंटु १ । ३-पुष्करम्=अन्तरिक्षम्) । तां० १८ । ९ । ६ ॥

„ आपो वै पुष्करम् । श० ६ । ४ । २ । २ ॥ ७ । ४ । १ । ८ ॥

पुष्टिः सरस्वती पुष्टिः पुष्टिपत्नी । तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥

„ सरस्वती पुष्टिं (पुष्टिः) पुष्टिपतिः । श० ११ । ४ । ३ । १६ ॥

पूः आत्मा (=शरीरं) वै पूः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥

„ लेखा हि पुरः । श० ६ । ३ । ३ । २५ ॥

„ ते देवाः प्रतिबुध्याग्निमयीः पुरस्त्रिपुरं पर्यास्यन्त । ऐ० २ । ११ ॥

पूतभृत् वैश्वदेवो वै पूतभृत् । श० ४ । ४ । १ । १२ ॥

पूतीकाः गायत्री सोममहरत्तस्या अनुविसृज्य सोममरक्षिः पर्णमच्छि-नत्तस्य योꣳशुः परापतत्स पूतीको ऽभवत्तस्मिन् देवा ऊतिमविन्दन्नूतीको वा एष यत्पूतीकानभिषुण्वन्त्यूतिमेवास्मै विन्दन्ति । तां० ९ । ५ । ४ ॥

„ तस्य (सोमस्य) ये ह्रियमाणस्याꣳशवः परापतꣳस्ते पूतीका अभवन् । तां० ८ । ४ । १ ॥

„ यदि सोमं न विन्देयुः पूतीकानभिषुणुयुर्यदि न पूतीकानर्जु-नानि । तां० ९ । ५ । ३ ॥

„ "आदाराः" शब्दमपि पश्यत ।

पूर्णम् सर्वं वै पूर्णम् । श० ४ । २ । २ । २ ॥ ५ । २ । ३ । १ ॥

पूर्णम् सर्वं वै तद्यत्पूर्णम् । श० ४ । २ । ३ । २ ॥

,, सर्वमेतद्यत्पूर्णम् । श० ९ । २ । ३ । ४३ ॥

पूर्णाहुतिः इयं (पृथिवी) वै पूर्णाहुतिः । श० १३ । १ । ८ । ८ ॥ तै० ३ । ८ । १० । ५ ॥

,, सर्व्वं वै पूर्णाहुतिः । तै० ३ । ८ । १० । ५ ॥

पूर्वचित्तिः द्यौर्वै वृष्टिः पूर्वचित्तिः । तै० ३ । ९ । ५ । २ ॥ श० १३ । २ । ६ । १४ ॥

पूर्वपक्षः सञ्ज्ञानं विज्ञानं दर्शादृष्टेति । एतावनुवाकौ पूर्वपक्षस्याहोत्राणां नामधेयानि । तै० ३ । १० । १० । २ ॥

पूर्व्वमहः ब्रह्म वै पूर्व्वमहः । तां० ११ । ११ । ९ ॥

पूर्व्ववाट् न्याहवनीयो गार्हपत्यमकामयत । नि गार्हपत्य आहवनीयं । तौ विभाजं नाशक्नोत् । सो ऽश्वः पूर्व्ववाड् भूत्वा । प्राञ्चं पूर्व्वमुदवहत् । तत्पूर्व्ववाहः पूर्व्ववाट्त्वम् । तै० १ । १ । ५ । ६ ॥

पूर्वाहुतिः अग्नेः पूर्व्वाहुतिः । तै० २ । १ । ७ । १ ॥

,, एष वा अग्निहोत्रस्य स्थाणुः । यत्पूर्व्वाहुतिः । तै० २ । १ । ४ । ३ ॥

पूषा स शौद्रं वर्णमसृजत पूषणमियं (पृथिवी) वै पूषेयꣳ हीदꣳ सर्वं पुष्यति यदिदं किं च । श० १४ । ४ । २ । २५ ॥

,, इयं वै पृथिवी पूषा । श० २ । ५ । ४ । ७ ॥ ३ । २ । ४ । १९ ॥

,, इयं (पृथिवी) वै पूषा । श० ६ । ३ । २ । ८ ॥ १३ । २ । २ । ६ ॥ १३ । ४ । १ । १४ ॥ तै० १ । ७ । २ । ५ ॥

,, (यजु० ३८ । ३, १५) अयं वै पूषा यो ऽयं (वातः) पवतऽ एष हीदꣳ सर्वं पुष्यति । श० १४ । २ । १ । ९ ॥ १४ । २ । २ । ३१ ॥

,, पूष्णः पोषेण मह्यं दीर्घायुत्वाय शतशारदाय शतꣳ शरद्भ्य आयुषे वर्चसे । तै० १ । २ । १ । १९ ॥

,, पूषा ऽपोषयत् । तै० १ । ६ । २ । २ ॥

,, पुष्टिर्वै पूषा । तै० २ । ७ । २ । १ ॥ श० ३ । १ । ४ । ९ ॥

,, असौ वै पूषा यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । कौ० ५ । २ ॥ गो० उ० १ । २० ॥

पूषा (अग्ने !) त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना । तै० ३ । ११ । २ । १॥
„ अन्नं वै पूषा । कौ० १२ । ८ ॥ तै० १ । ७ । ३ । ६ ॥ ३ । ८ । २३ । २ ॥
„ पशवः पूषा । ऐ० २ । २४ ॥ तां० २३ । १६ । ५ ॥
„ पशवो हि पूषा । श० ५ । २ । ५ । ८ ॥
„ (यजु० २१ । २०) पशवो वै पूषा । श० १३ । १ । ८ । ६ ॥
„ पशवो वै पूषा । श० ३ । १ । ४ । ६ ॥ ३ । ९ । १ । १० ॥ ५ । ३ । ५ । ८, ३५ ॥ तै० ३ । ८ । ११ । २ ॥ तां० १८ । १ । १६ ॥
„ पौष्णाः पशवः । श० ५ । २ । ५ । ६ ॥
„ पूषा वै पशूनामीष्टे । श० १३ । ३ । ८ । २ ॥
„ पूषा पशुभिः (अवतु) । तै० १ । ७ । ६ । ६ ॥ ३ । १ । ५ । १२ ॥
„ पूष्णो रेवती (नक्षत्रम्) । गावः परस्ताद्वत्सा अवस्तात् । तै० १ । ५ । १ । ५ ॥
„ पूषा रेवत्यन्वेति पन्थाम् । तै० ३ । १ । २ । ९ ॥
„ पूषा विशां विट्पतिः । तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥
„ प्रजननं वै पूषा । श० ५ । २ । ५ । ८ ॥
„ पूषा वै पथीनामधिपतिः । श० १३ । ४ । १ । १४ ॥
„ पूषा वै श्लोणस्य (=त्वग्दोषस्येति सायणः) भिषक् । तै० ३ । ६ । १७ । २ ॥
„ पूषा (श्रियः) भगम् (आदत्त) । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥
„ पूषा भगं भगपतिः । श० ११ । ४ । ३ । १५ ॥
„ पथ्या पूष्णः पत्नी । गो० उ० २ । ६ ॥
„ योषा वै सरस्वती वृषा पूषा । श० २ । ५ । १ । ११ ॥
„ पूषा भागदुघोऽशनं पाणिभ्यामुपनिधाता । श० १ । १ । २ । १७॥
„ पूषा वै देवानां भागदुघः । श० ५ । ३ । १ । ९ ॥
„ पूषा भागदुघः । श० ३ । ६ । ४ । ३ ॥
„ (देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे) पूष्णो हस्ताभ्याम् । तै० २ । ६ । ५ । २ ॥
„ तस्य (पूष्णः) दन्तान्परोवाप तस्मादाहुरदन्तकः पूषा करम्भभाग इति । कौ० ६ । १३ ॥

पूषा तस्मादाहुरदन्तकः पूषेति । श० १ । ७ । ४ । ७ ॥

„ तस्मादाहुरदन्तकः पूषा पिष्टभाजन इति । गो० उ० १ । २ ॥

„ तस्माद्यं पूष्णे चरुं कुर्वन्ति प्रपिष्टानामेव कुर्वन्ति यथादन्तकायैवम् । श० १ । ७ । ४ । ७ ॥

„ पूष्णः करम्भः (=यवपिष्टमाज्यसंयुतमिति सायणः) । तै० १ । ५ । ११ । ३ ॥ श० ४ । २ । ५ । २२ ॥

„ स हि पौष्णो यच्छ्यामः (गौः) । श० ५ । २ । ५ । ८ ॥

„ अग्नापौष्णमेकादशकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ५ । २ । ५ । ५ ।

पृतना युधो वै पृतनाः । श० ५ । २ । ४ । १६ ॥

पृतन्युः (=पाप्मा, यजु० १५ । ५१) अधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यव इत्यधस्पदं कुरुताꣳ सर्वान्पाप्मन इत्येतत् । श० ८ । ६ । ३ । २० ॥

पृथिवी तां (भूमिं) अप्रथयत्सा पृथिव्यभवत् । श० ६ । १ । १ । १५॥ ६ । १ । ३ । ७ ॥

„ स (प्रजापतिः) वराहो रूपं कृत्वोपन्यमज्जत् । स पृथिवीमध आर्च्छत् तस्या उपहत्योदमज्जत् तत्पुष्करपर्णे प्रथयत् तत्पृथिव्यै पृथिवित्वम् । तै० १ । १ । ३ । ६-७ ॥

„ इयती ह वाऽ इयमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्री तामेमूष इति वराह उज्जघान सो ऽस्याः (पृथिव्याः) पतिः प्रजापतिः । श० १४ । १ । २ । ११ ॥

„ अश्वा ह वाऽ इयं (पृथिवी) भूत्वा मनुमुवाह सो ऽस्याः पतिः प्रजापतिः । श० १४ । १ । ३ । २५ ॥

„ प्राजापत्यो वा अयं (भू-) लोकः । तै० १ । ३ । ७ । ५ ॥

„ इयं (पृथिवी) यमी । श० ७ । २ । १ । १० ॥ गो० उ० ४ । ८॥

„ यमो ह वाऽ अस्याः (पृथिव्याः) अवसानस्येष्टे । श० ७ । १ । १ । ३ ॥

„ आग्नेयी पृथिवी । तां० १५ । ४ । ८ ॥

„ पृथिव्यग्नेः पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥

„ सेयं (पृथिवी) देवानां पत्नी । श० १ । ३ । १ । १५, १७ ॥

पृथिवी इयं (पृथिवी) ह्यग्निः । श० ६ । १ । १ । १४ ॥ ६ । १ । २ । २६ ॥

" इयं (पृथिवी) वाऽ अग्निः । श० ७ । ३ । १ । २२ ॥

" अयं वाऽ अग्निर्लोकः। श० १ । ६ । २ । १३ ॥

" अयं वै (पृथिवी-) लोको ऽग्निः । श० १४ । ६ । १ । १४ ॥

" आग्नेयो ऽयं (पृथिवी-) लोकः । जै० उ० १ । ३७ । २ ॥

" आग्निगर्भा पृथिवी । श० १४ । ९ । ४ । २१ ॥

" सा (अदितिः=पृथिवी) अग्निं गर्भे बिभर्तु । श० ६ । ५ । १ । ११ ॥

" इयं वै पृथिव्यदितिः । श० २ । २ । १ । १६ ॥ ३ । ३ । १ । ४॥

" इयं (पृथिवी) वा अदितिः । गो० उ० १ । २५ ॥

" इयं (पृथिवी) वाऽ अदितिर्मही (यजु० ११ । ५६) । श० ६ । ५ । १ । १० ॥

" इयं (पृथिवी) एव मही । जै० उ० ३ । ४ । ७ ॥

" पृथिवीं मातरं महीम् । तै० २ । ४ । ६ । ८ ॥

" उपहूता पृथिवी माता । श० १ । ८ । १ । ४१ ॥

" इयं (पृथिवी) वै माता । तै० ३ । ८ । ९ । १ ॥ श० १३ । १ । ६ । १ ॥

" "नमो मात्रे पृथिव्यै" (यजु० ६ । २२) । श० ५ । २ । १ । १८ ॥

" तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः । तै० २ । ७ । १६ । ३ ॥ ३। ८ । ६ । ५ ॥ ३ । ७ । ५ । ४-५ ॥ ३ । ७ । ६ । १५ ॥

" मातेव वा इयं (पृथिवी) मनुष्यान्बिभर्ति । श० ५ । ३ । १ । ४॥

" धेनुरिव वाऽ इयं (पृथिवी) मनुष्येभ्यः सर्वान्कामान्दुहे माता धेनुर्मातेव वाऽ इयं (पृथिवी) मनुष्यान्बिभर्त्ति । श० २ । २ । १ । २१ ॥

" इयं (पृथिवी) वै धेनुः । श० १२ । ६ । २ । ११ ॥

" इयं (पृथिवी) वै विश्वायुः । तै० ३ । २ । ३ । ७ ॥

" (=विश्वधायाः) अस्याᳫं (पृथिव्यां) हीदᳫं सर्वᳫं हितम् । श० ७ । ४ । २ । ७ ॥

पृथिवी इयं (पृथिवी) वै देव्यदितिर्विश्वरूपी। तै० १ । ७ । ६ । ७॥
„ इयं (पृथिवी) वै पृश्निः । तै० १ । ४ । १ । ५ ॥
„ इयं (पृथिवी) वै वशा पृश्निः । श० १ । ८ । ३ । १५ ॥
„ इयं (पृथिवी) वै वशा पृश्निर्यदिदमस्यां मूलि चामूलं चान्नाद्यं प्रतिष्ठितं तेनेयं वशा पृश्निः । श० ५ । १ । ३ । ३ ॥
„ इयं (पृथिवी) वा अग्निहोत्री (गौः) । तै०१ । ४ । ३ । १ ॥
„ महिषी हीयम् (पृथिवी) । श० ६ । ५ । ३ । १ ॥
„ इयं (पृथिवी) वाऽ अविरियं ह्मीमाः सर्वाः प्रजा अवति । श० ६ । १ । २ । ३३ ॥
„ इयं वै पृथिवी देवी देवयजनी । श० ३ । २ । २ । २० ॥
„ पृथिवी वै सर्वेषां देवानामायतनम् । श० १४ । ३ । २ । ४ ॥
„ भूरिति वाऽ अयं (पृथिवी-) लोकः । श० ८ । ७ । ४ । ५ ॥
„ भूः (यजु० १३ । १८) हीयम् (पृथिवी) । श० ७ । ४ । २ । ७॥
„ स भूरिति व्याहरत् । स भूमिमसृजत । अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ यजूंषि । तै० २ । २ । ४ । २ ॥
„ स (प्रजापतिः) भूरित्येवर्ग्वेदस्य रसमादत्त । सेयं पृथिव्यभवत् । तस्य यो, रसः प्राणेदत् सो ऽग्निरभवद्रसस्य रसः । जै० उ० १ । १ । ३ ॥
„ अयं (भू-) लोक ऋग्वेदः । ष० १ । ५ ॥
„ भूरित्यृग्भ्यो क्षरत् सो ऽयं (पृथिवी-) लोको ऽभवत् । ष० १ । ५ ॥
„ भूमिः (यजु० १३ । १८) हीयम् (पृथिवी) । श० ७ । ४ । २ । ७॥
„ इयं (पृथिवी) वै भूमिरस्यां वै स भवति यो भवति । श० ७ । २ । १ । ११ ॥
„ अयं वै (पृथिवी-) लोको भूतम् । तै० ३ । ८ । १८ । ५ ॥
„ इयं वै पृथिवी भूतस्य प्रथमजा (यजु० ३७ । ४) । श० १४ । १ । २ । १० ॥
„ इयं (पृथिवी) उ वाऽ एषां लोकानां प्रथमासृज्यत । श० ६ । ५ । ३ । १ ॥

पृथिवी इयं (पृथिवी) वै निर्ऋतिः । श० ५ । २ । ३ । ३ ॥ तै० १ । ६ । १ । १ ॥

„ इयं (पृथिवी) कद्रूः । श० ३ । ६ । २ । २ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै सार्पराज्ञीयं हि सर्पतो राज्ञी । कौ० २७ । ४ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै सार्पराज्ञी । तां० ४ । ९ । ६ ॥

„ इयं वै पृथिवी सर्पराज्ञी । श० २ । १ । ४ । ३० ॥ ४ । ६ । ९ । १७ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै सर्पराज्ञीयं हि सर्पतो राज्ञी । ऐ० ५ । २३ ॥ तै० १ । ४ । ६ । ६ ॥

„ देवा वै सर्पाः । तेषामियꣳ (पृथिवी) राज्ञी । तै० २ । २ । ६ । २॥

„ अयं वै (पृथिवी-) लोकः सुक्षितिः (यजु० ३७ । १०) अस्मिन्हि लोके सर्वाणि भूतानि क्षियन्ति । श० १४ । १ । २ । २४ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै सरघा । तै० ३ । १० । १० । १ ॥

„ अयं वै (पृथिवी-) लोको मित्रो ऽसौ (द्युलोकः) वरुणः । श० १२ । ९ । २ । १२ ॥

„ द्यावापृथिवी वै मित्रावरुणयोः प्रियं धाम । तां० १४ । २ । ४ ॥

„ इयं (पृथिवी) वामभृत् । श० ७ । ४ । २ । ३५ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै वरिष्ठा संवत् (यजु० ११ । १२) । श० ६ । ३ । २ । २ ॥

„ अयं वै पृथिवी-) लोको ऽवस्यूर्दुवस्वान् । श० ९ । ४ । २ । ७॥

„ अयं वै (पृथिवी-) लोको भद्रः । ऐ० १ । १३ ॥

„ अयं लोको बर्हिः (ऋ० ६ । १६ । १०) । श० १ । ४ । १ । २४ ॥

„ अयं वै (पृथिवी-) लोको बर्हिः । श० १ । ८ । २ । ११ ॥ १ । ९ । २ । २९ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै सत्या चर्षणीधृदनर्वा (ऋ० ४ । १७ । २०) । ऐ० ३ । ३८ ॥

„ इयं (पृथिवी) एव सत्यमियꣳ ह्येवैषां लोकानामद्धातमाम् । श० ७ । ४ । १ । ८ ॥

„ अयं वै (पृथिवी-) लोको विशालं छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

पृथिवी इयं (पृथिवी) वै देव्यदितिर्विश्वरूपी। तै० १।७।६।७॥

„ इयं (पृथिवी) वै पृश्निः। तै० १।४।१।५॥

„ इयं (पृथिवी) वै वशा पृश्निः। श० १।८।३।१५॥

„ इयं (पृथिवी) वै वशा पृश्निर्यदिदमस्यां मूलि चामूलं चान्नाद्यं प्रतिष्ठितं तेनेयं वशा पृश्निः। श० ५।१।३।३॥

„ इयं (पृथिवी) वा अग्निहोत्री (गौः)। तै०१।४।३।१॥

„ महिषी हीयम् (पृथिवी)। श० ६।५।३।१॥

„ इयं (पृथिवी) वाऽ अविरिथं हीमाः सर्वाः प्रजा अवति। श० ६।१।२।३३॥

„ इयं वै पृथिवी देवी देवयजनी। श० ३।२।२।२०॥

„ पृथिवी वै सर्वेषां देवानामायतनम्। श० १४।३।२।४॥

„ भूरिति वाऽ अयं (पृथिवी-) लोकः। श० ८।७।४।५॥

„ भूः (यजु० १३।१८) हीयम् (पृथिवी)। श० ७।४।२।७॥

„ स भूरिति व्याहरत्। स भूमिमसृजत। अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ यजूंषि। तै० २।२।४।२॥

„ स (प्रजापतिः) भूरित्येवर्ग्वेदस्य रसमादत्त। सेयं पृथिव्यभवत्। तस्य यो, रसः प्राणेदत् सो ऽग्निरभवद्रसस्य रसः। जै० उ० १।१।३॥

„ अयं (भू-) लोक ऋग्वेदः। ष० १।५॥

„ भूरित्यृग्भ्यो क्षरत् सो ऽयं (पृथिवी-) लोको ऽभवत्। ष० १।५॥

„ भूमिः (यजु० १३।१८) हीयम् (पृथिवी)। श० ७।४।२।७॥

„ इयं (पृथिवी) वै भूमिरस्यां वै स भवति यो भवति। श० ७।२।१।११॥

„ अयं वै (पृथिवी-) लोको भूतम्। तै० ३।८।१८।५॥

„ इयं वै पृथिवी भूतस्य प्रथमजा (यजु० ३७।४)। श० १४।१।२।१०॥

„ इयं (पृथिवी) उ वाऽ एषां लोकानां प्रथमासृज्यत। श० ६।५।३।१॥

पृथिवी इयं (पृथिवी) वै निर्ऋतिः । श० ५ । २ । ३ । ३ ॥ तै० १ । ६ । १ । १ ॥

„ इयं (पृथिवी) कद्रूः । श० ३ । ६ । २ । २ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै सार्पराज्ञीयं हि सर्पतो राज्ञी । कौ० २७ । ४ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै सार्पराज्ञी । तां० ४ । ९ । ६ ॥

„ इयं वै पृथिवी सर्पराज्ञी । श० २ । १ । ४ । ३० ॥ ४ । ६ । ६ । १७ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै सर्पराज्ञीयं हि सर्पतो राज्ञी । ऐ० ५ । २३ ॥ तै० १ । ४ । ६ । ६ ॥

„ देवा वै सर्पाः । तेषामियꣳ (पृथिवी) राज्ञी । तै० २ । २ । ६ । २॥

„ अयं वै (पृथिवी-) लोकः सुक्षितिः (यजु० ३७ । १०) अस्मिन्हि लोके सर्वाणि भूतानि क्षियन्ति । श० १४ । १ । २ । २४ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै सरघा । तै० ३ । १० । १० । १ ॥

„ अयं वै (पृथिवी-) लोको मित्रो ऽसौ (द्युलोकः) वरुणः । श० १२ । ६ । २ । १२ ॥

„ द्यावापृथिवी वै मित्रावरुणयोः प्रियं धाम । तां० १४ । २ । ४ ॥

„ इयं (पृथिवी) वामभृत् । श० ७ । ४ । २ । ३५ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै वरिष्ठा संवत् (यजु० ११ । १२) । श० ६ । ३ । २ । २ ॥

„ अयं वै पृथिवी-) लोको ऽवस्यूर्दुवस्वान् । श० ९ । ४ । २ । ७॥

„ अयं वै (पृथिवी-) लोको भद्रः । ऐ० १ । १३ ॥

„ अयं लोको बर्हिः (ऋ० ६ । १६ । १०) । श० १ । ४ । १ । २४ ॥

„ अयं वै (पृथिवी-) लोको बर्हिः । श० १ । ८ । २ । ११ ॥ १ । ६ । २ । २९ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै सत्या चर्षणीधृदनर्वा (ऋ० ४ । १७ । २०) । ऐ० ३ । ३८ ॥

„ इयं (पृथिवी) एव सत्यमियꣳ ह्येवैषां लोकानामद्धातमाम् । श० ७ । ४ । १ । ८ ॥

„ अयं वै (पृथिवी-) लोको विशालं छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

पृथिवी अयं वै (पृथिवी-) लोको रथन्तरं छन्दः (यजु० १५।५) । श० ८।५।२।५॥

" इयं वै पृथिवी रथन्तरम् । ऐ० ८।१॥

" इयं (पृथिवी) वै रथन्तरम् । कौ० ३।५॥ ष० २।२॥ तै० १।४।६।२॥ तां० ६।८।१५॥ १५।१०।१५॥ श० ५।५।३।५॥ ९।१।२।३६॥

" अयं वै (पृथिवी-) लोको रथन्तरम् । ऐ० ८।२॥

" रथन्तरꣳ ह्यीयम (पृथिवी) । श० १।७।२।१७॥

" उपहूतꣳ रथन्तरꣳ सह पृथिव्या । श० १।८।१।१६॥ तै० ३।५।८।१॥

" राथन्तरो वा अयं (पृथिवी-) लोकः । तै० १।१।८।१॥

" अयं वै (पृथिवी-) लोक एवश्छन्दः (यजु० १५।४) । श० ८।५।२।३॥

" अयं वै (पृथिवी-) लोको विराट् (यजु० १३।२४) । श० ७।४।२।२३॥

" इयं (पृथिवी) वै विराट् । श० १२।६।१।४०॥ गो० उ० ६।२॥

" विराड् ढीयम् (पृथिवी) । श० २।२।१।२०॥

" इयं (पृथिवी) वै धाता । तै० ३।८।२३।३॥

" इयं (पृथिवी) वै सविता । श० १३।१।४।२॥ तै० ३।६।१३।२॥

" पृथिवी सावित्री । जै० उ० ४।२७।१॥ गो० पू० १।३३॥

" इयं (पृथिवी) वै माद्विनम (ऋ० ४।१७।२०) । ऐ० ३।३८॥

" एष वै प्रतिष्ठा वैश्वानरः (यत्पृथिवी) । श० १०।६।१।४॥

" इयं (पृथिवी) वै वैश्वानरः । श० १३।३।८।३॥

" पादौ त्वाऽएतौ वैश्वानरस्य (यत्पृथिवी) । श० १०।६।१।४॥

" पृथिवी वेदिः । ऐ० ५।२८॥ तै० ३।३।६।२,८॥

" इय (पृथिवी) वै वेदिः । श० ७।३।१।१५॥ ७।५।२।३१॥

" एतावती वै पृथिवी । यावती वेदिः । तै० ३।२।९।१२॥

पृथिवी तस्मादाहुर्यावती वेदिस्तावती पृथिवीति । श० १ । २ । ५ । ७ ॥
" यावती वै वेदिस्तावती पृथिवी । श० ३ । ७ । २ । १ ॥
" यावती वै वेदिस्तावतीयम्पृथिवी । जैं० उ० १ । ५ । ५ ॥
" वेदिर्वै परो ऽन्तः पृथिव्याः । तै० ३ । ९ । ५ । ५ ॥
" तस्याः (पृथिव्याः) एतत्परिमितं रूपं यदन्तर्वेद्यथैष भूमाऽपरिमितो यो बहिर्वेदि । ऐ० ८ । ५ ॥
" इयं (पृथिवी) वै स्वयमातृण्णा (इष्टका) । श० ७ । ४ । २ । १ ॥
" इयं (पृथिवी) वै श्रीः । ऐ० ८ । ५ ॥
" श्रीर्वा ऽ इयं (पृथिवी) तस्माद्यो ऽस्यै भूयिष्ठं विन्दते स एव श्रेष्ठो भवति । श० ११ । १ । ६ । २३ ॥
" तस्माद्यो ऽस्यै (पृथिव्यै) भूयिष्ठं लभते स एव श्रेष्ठो भवति । श० १२ । ६ । १ । ४७ ॥
" तस्य पृथिवी सदः । तै० २ । १ । ५ । १ ॥
" यन्मृदियं (पृथिवी) तत् । श० १४ । १ । २ । ९ ॥
" इयं (पृथिवी) वै वल्मीकवपा । श० ६ । ३ । ३ । ५ ॥
" श्रोत्रꣳ ह्येतत्पृथिव्या यद्वल्मीकः । तै० १ । १ । ३ । ४ ॥
" इयं (पृथिवी) याज्या । श० १ । ७ । २ । ११ ॥
" इयꣳ (पृथिवी) हि याज्या । श० १ । ४ । २ । १९ ॥
" वागिति पृथिवी । जैं० उ० ४ । २२ । ११ ॥
" इयं (पृथिवी) वै वाक् । श० ४ । ६ । ९ । १६ ॥
" वागेवायं (पृथिवी-) लोकः । श० १४ । ४ । ३ । ११ ॥
" इयं (पृथिवी) वै वागदो (अन्तरिक्षम्) मनः । ऐ० ५ । ३३ ॥
" पृथिवी ध्रुवा (ध्रुवा=स्थिरा=अचला=पृथिवी ॥ अमरकोषे २ । १ । २) । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥ ३ । ३ । ६ । ११ ॥
" इयं (पृथिवी) एव ध्रुवा । (ध्रुवा=पृथिवी-वैजयन्तीकोषे द्व्यक्षरकांडे नानालिङ्गाध्याये श्लो० ४४ ॥) । श० १ । ३ । २ । ४ ॥
" इयं (पृथिवी) वै जगत्यस्याꣳ हीदꣳ सर्वं जगत् । श० ६ । २ । १ । २९ ॥ ६ । २ । २ । ३२ ॥

पृथिवी जगती हीयम् (पृथिवी) । श० २ । २ । १ । २० ॥

„ इयं (पृथिवी) वै गायत्री । तां० ७ । ३ । ११ ॥ १४ । १ । ४ ॥

„ गायत्रो ऽयं (भू-) लोकः । कौ० ८ । ६ ॥

„ गायत्री वाऽ इयं पृथिवी । श० ४ । ३ । ४ । ६ ॥ ५ । २ । ३ । ५॥

„ इयं (पृथिवी) वा अनुष्टुप् । श० १ । ३ । २ । १६ ॥ तां० ८ । ७ । २ ॥

„ या पृथिवी सा कुहूः सो एवानुष्टुप् । ऐ० ३ । ४८ ॥

„ त्रिष्टुब्भीयम् (पृथिवी) । श० २ । २ । १ । २० ॥

„ इयं (पृथिवी) वाऽ अनुमतिः । श० ५ । २ । ३ । ४ ॥ तै० १ । ६ । १ । १, ४ ॥

„ इयं (पृथिवी) वा उत्तान आङ्गीरसः । तै० २ । ३ । २ । ५ ॥ २ । ३ । ४ । ६ ॥

„ स यया प्रथमया (इष्टया) समर्पयेत पराभिनत्ति सैका सेयं पृथिवी सैषा इषा नाम । श० ५ । ३ । ५ । २६ ॥

„ इयं (पृथिवी) वाऽ अषाढा । श० ६ । ५ । ३ । १ ॥ ७ । ४ । २ । ३२ ॥ ८ । ५ । ४ । २ ॥

„ यथेयं पृथिव्युर्व्येवमुरुर्भूयासम् । श० २ । १ । ४ । २८ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै पूषा । तै० १ । ७ । २ । ५ ॥ श० ६ । ३ । २ । ८ ॥ १३ । २ । २ । ६ ॥ १३ । ४ । १ । १४ ॥

„ अयं (भूलोकः) एवर्त्तनिधनम् । तां० २१ । २ । ७ ॥

„ इयं (पृथिवी) वाऽ उपयाम इयं वाऽ इदमन्नाद्यमुपयच्छति पशुभ्यो मनुष्येभ्यो वनस्पतिभ्यः । श० ४ । १ । २ । ८ ॥

„ इयꣳ (पृथिवी) ह वाऽ उपाꣳशुः । श० ४ । १ । २ । २७ ॥

„ इयं (पृथिवी) एव स्तन्त्रियः । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥

„ इयं वै क्षेत्रं पृथिवी । कौ० ३० । ११ ॥ गो० उ० ५ । १० ॥

„ इयं (पृथिवी) वै देवरथः । तां० ७ । ७ । १४ ॥

„ अयमेव (भू-) लोको ज्योतिः । ऐ० ४ । १५ ॥

„ इयं वै (पृथिवी) ज्योतिः । तां० १६ । १ । ७ ॥

„ अयं वै (पृथिवी-) लोको भर्गः । श० १२ । ३ । ४ । ७ ॥

„ पशिव्येव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

पृथिवी अयं वै (पृथिवी-) लोको गृहपतिः । श० १२ । १ । १ । १॥ गो० पू० ४ । १ ॥

„ अयं वै (भू-) लोको गार्हपत्यः । श० ७ । १ । १ । ६ ॥ ८ । ६ । ३ । १४ ॥ ष० १ । ५ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै पूर्णाहुतिः । तै० ३ । ८ । १० । ५ ॥ श० १३ । १ । ८ । ८ ॥

„ सर्वं वा इयम् (पृथिवी) । श० ४ । २ । २ । १ ॥

„ इयं वै पृथिवी प्रतिष्ठा । श० १ । ९ । १ । २६ ॥ १ । ९ । ३ । ११॥

„ इयं (पृथिवी) वाऽ अस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा । श० ४ । ५ । २ । १५ ॥

„ प्रतिष्ठा वा अयं लोकः । कौ० ६ । ४ ॥ १४ । ३ ॥

„ इयं (पृथिवी) खलु वै प्रतिष्ठा । ऐ० ८ । १ ॥

„ सेयं (पृथिवी) प्रतिष्ठा । श० २ । २ । १ । १६ ॥

„ पृथिव्यामिमे लोकाः (प्रतिष्ठिताः) । जै० उ० १ । १० । २ ॥

„ इयं (पृथिवी) वै स्वर्गस्य लोकस्य प्रतिष्ठा । गो० उ० ६ । २ ॥

„ अन्तरिक्षं पृथिव्यां (प्रतिष्ठितम्) । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २॥

„ इयं (पृथिवी) अन्तरिक्षम् (पृथिवी=अन्तरिक्षम्-वैदिकनिघण्टौ १ । ३) । ऐ० ३ । ३१ ॥

„ त्रिवृद्धीयम् (पृथिवी) । श० ६ । ५ । ३ । २ ॥

„ अग्निना पृथिव्यौषधिभिस्तेनायं (पृथिवी-) लोकस्त्रिवृत् । तां० १० । १ । १ ॥

„ प्रजातिर्वा अयं लोकः । कौ० १४ । ३ ॥

„ योनिर्वाऽ इयम् (पृथिवी) । श० १२ । ४ । १ । ७॥

„ इयं वै प्रतिष्ठा जनूरासां प्रजानाम् । श० ३ । ६ । ३ । २ ॥

„ नाम मे शरीरम्मे प्रतिष्ठा मे । तन्मे त्वयि (पृथिव्याम्) । जै० उ० ३ । २० । ८ ॥

„ पृथिवी मे शरीरे श्रिता । तै० ३ । १० । ८ । ७॥

„ पृथिवी वा अन्नानां शमयित्री । कौ० ६ । १४ ॥

„ इयं (पृथिवी) वा (प्रजापतेः) अन्नादो (तनूः) । कौ० २७ । ५ ॥

पृथिवी पृथिवी ह्येव निधिः । श० ६ । ५ । २ । ३ ॥
,, अयं वै लोको दक्षिणं हविर्धानम् । कौ० ६ । ४ ॥
,, अयं वै (पृथिवी-) लोकः प्रातःसवनम् । श० १२ । ८ । २ । ८ ॥ गो० उ० ३ । १६ ॥
,, अयमेव (भू-) लोकः प्रथमा चितिः । श० ८ । ७ । ४ । १२॥
,, (असुराः) अयस्मयीं (पुरं) अस्मिन् (पृथिवीलोके ऽकुर्वत) । कौ० ८ । ८ ॥
,, ते (असुराः) वा अयस्मयीमेवेमां (पृथिवीं) अकुर्वत । ऐ० १ । २३ ॥
,, अयस्मयी पृथिवी । गो० उ० २ । ७ ॥
,, अस्य वै (भू-) लोकस्य रूपमयस्मय्यः (सूच्यः) । तै० ३। ९ । ६ । ५ ॥
,, रजतेव हीयं पृथिवी । श० १४ । १ । ३ । १४ ॥
,, इयं (पृथिवी) वै रजता । तै० १ । ८ । ६ । १ ॥
,, पृथिवी होता चतुर्होतॄणाम् । तै० ३ । १२ । ५ । १ ॥
,, यानि कृष्णानि (लोमानि) तान्यस्यै (पृथिव्यै रूपम्) । श० ३ । २ । १ । ३ ॥
,, (यदि वेतरथा) यानि शुक्लानि (लोमानि) तान्यस्यै (पृथिव्यै रूपम्) । श० ३ । २ । १ । ३ ॥
,, यानि बिसानि तान्यस्यै पृथिव्यै रूपम् । श० ५ । ४ । ५ । १४॥
,, दधि हैवास्य (भू-) लोकस्य रूपम् । श० ७ । ५ । १ । ३ ॥
,, इयं (पृथिवी) उ वै यज्ञो ऽस्याᳮ हि यज्ञस्तायते । श० ६ । ४ । १ । ६ ॥
,, हविर्य्यज्ञैर्व्वै देवा इमं (पृथिवी-) लोकमभ्यजयन् । तां० १७ । १३ । १८ ॥
,, इयं (पृथिवी) वाऽ उप । ह्ययेनेयमुप यद्धीदं किं च जायते ऽस्यां तदुपजायते ऽथ यन्न्यृछत्यस्यामेव तदुपोप्यते । श० २ । ३ । ४ । ६ ॥
,, परिमण्डलः (=गोलाकारः) उ वाऽ अयं (पृथिवी-) लोकः । श० ७ । १ । १ । ३७ ॥

पृथिवी अथ यत्कपालमासीत्सा पृथिव्यभवत् । श० ६ । १ । १ । ११ ॥
" समुद्रो ह्रीमां (पृथिवीं) अभितः पिन्वते । श० ७ । ४ । १ । ९॥
" पृथिव्यप्सु (प्रतिष्ठिता) । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥
" पृथिव्यस्यप्सु श्रिता । अग्नेः प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । ६ ॥
" तस्य प्रथमयाऽऽवृतेममेव लोकं जयति यदु चास्मिँल्लोके । तदेतेन चैनम्प्राणेन समर्धयति यमभिसम्भवत्येतां चाऽस्मा आशाम्प्रयच्छति यामभिजायते । जै० उ० ३ । ११ । ५ ॥
" असुराणां वा इयं (पृथिवी) अग्र आसीत् । तै० ३ । २ । ९ । ६॥
" तिस्रो वाऽ इमाः पृथिव्य इयमहैका द्वेऽअस्याः परे । श० ५ । १ । ५ । २१ ॥

पृथी, पृथिः, पृथुः पृथिर्वैन्यः । अभ्यषिच्यत । तै० १ । ७ । ७ । ४ ॥
" पृथुर्ह वै वैन्यो मनुष्याणां प्रथमो ऽभिषिषिचे । श० ५ । ३ । ५ । ४ ॥
" एतेन (पार्थेन साम्ना) वै पृथी वैन्य उभयेषां पशूना-माधिपत्यमाश्नुत । तां० १३ । ५ । २० ॥
" तद्ध पृथुर्वैन्यो दिव्यान् व्रात्यान् पप्रच्छ । जै० उ० १ । १० । ९ ॥ १ । ३४ । ६ ॥ १ । ४५ । १ ॥

पृथु (ऋ० ६ । १६ । १२) असौ (द्युस्थानं=द्युलोकः) वै पृथु यस्मिन्देवाः । श० १ । ४ । १ । २७ ॥

पृथुकाः रुद्राणां वा एतद्रूपम् । यत्पृथुकाः । तै० ३ । ८ । १४ । ३ ॥

पृथु श्रवाय्यम् (ऋ० ६ । १६ । १२) श्रोत्रं वै पृथु श्रवाय्यम् । श्रोत्रेण हीदमुरु पृथु शृणोति । श० १ । ४ । ३ । ४ ॥

पृश्नि अन्नं वै देवा पृश्नीति वदन्ति । तां० १२ । १० । २४ ॥
" अन्नं वै पृश्नि । श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥ तै० २ । २ । ६ । १ ॥
" इयं (पृथिवी) वै पृश्निः । तै० १ । ४ । १ । ५ ॥

पृषदाज्यम् अन्नꣳ हि पृषदाज्यम् । श० ३ । ८ । ४ । ८ ॥
" प्राणो हि पृषदाज्यम् । श० ३ । ८ । ४ । ८ ॥
" प्राणः पृषदाज्यम् । श० ३ । ८ । ३ । ८ ॥
" पयः पृषदाज्यम् । श० ३ । ८ । ४ । ८ ॥
" पशवो वै पृषदाज्यम् । तै० १ । ६ । ३ । २ ॥

पृश्य: पृष्ठ्यो वै रेतःसिचौ। श० ७।५।१।१३॥ ८।६।२।७॥
,, उरो वै प्रति पृष्ट्यः। श० ८।६।२।७॥
पृष्ठानि पृष्ठैर्वै देवाः स्वर्गं लोकमस्पृत्तन्। कौ० २४।८॥
,, पृष्ठानि वा असृज्यन्त तैर्देवाः स्वर्गं लोकमायन्। तां० ७। ७।१७॥
,, स्वर्गो लोकः पृष्ठानि। तां० १६।१५।६॥
,, तदाहुर्नानालोकानि पृष्ठानि। तां० १६।१५।६॥
,, एतानि खलु वै सामानि यत्पृष्ठानि। तै० १।८।८।३॥
,, स्वराणि पृष्ठानि भवन्ति। कौ० २४।८॥
,, सर्वाणि हि पृष्ठानीन्द्रस्य निष्केवल्यानि। तां० ७।८।५॥
,, पिता वै वामदेव्यं पुत्राः पृष्ठानि। तां० ७।६।१॥
,, आत्मा वै पृष्ठानि। कौ० २५।१२॥ तां० २२।६।४॥
,, ऋतवो वै पृष्ठानि। श०१३।३।२।१॥ तै० ३।६।६।१॥
,, सप्त पृष्ठानि। श० ६।५।२।८॥
,, अन्नं पशवः पृष्ठानि। तां० १६।१५।८॥
,, अन्नं पृष्ठानि। तां० १६।६।४॥
,, वीर्य्यं वै पृष्ठानि। तां० ४।८।७॥ १८।८।८॥
,, तेजो ब्रह्मवर्च्चसं पृष्ठानि। तां० १६।१५।७॥
,, श्रीर्वै पृष्ठानि। ऐ० ६।५॥ गो० उ० ५।११॥
पृष्ठ्यः अन्वञ्च इवाङ्गिरसः। सर्वैः स्तोमैः सर्वैः पृष्ठैर्गुरुभिः सामभिः स्वर्गं लोकमस्पृशन्यदस्पृशंस्तस्मात्पृष्ठ्यः। श० १२।२। २।११॥
,, (आङ्गिरसाः) सर्वैः पृष्ठ्यैः स्वर्गं लोकमभ्यस्पृशन्त यदभ्यस्पृशन्त तस्मात्स्पृश्यस्तं वा एतं स्पृश्यं सन्तं पृष्ठ्य इत्याचक्षते परोक्षेण। गो० पू० ४।२३॥
,, पिता वा अभिप्लवः पुत्रः पृष्ठ्यः। गो० पू० ४।१७॥
पृष्ठ्यानि श्रीः पृष्ठ्यानि। कौ० २१।५॥
,, पशवः पृष्ठ्यानि। कौ० २१।५॥
पौरुमद्गम् (साम) देवाश्च वासुराश्चास्पर्द्धन्त ते देवा असुराणां पौरुमद्गेन पुरो ऽमजयन्यत् पुरो ऽमजयंस्तस्मात्पौरुमद्गम्। तां० १२।३।१४॥

पौरुमद्गम् (साम) अहर्वा एतद्व्लीयमानं तद्रक्षा९ꣳस्यसचन्त तस्माद्देवाः पौरुमद्गेन रक्षा९ꣳस्यपाघ्नन्नप पाप्मान९ꣳ हते पौरुमद्गेन तुष्टुवानः । तां० १२ । ३ । १३ ॥

पौरुहन्मनम् (साम) पुरुहन्मा वा एतेन वैखानसो ऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः । तां० १४ । ६ । २६ ॥

पौर्णमासम् (हविः) सवृत (? समृत-) यज्ञो वा एष यद्दर्शपूर्णमासौ । गो० उ० २ । २४ ॥

,, वार्त्रघ्नं वै पौर्णमासं (हविः) । इन्द्रो ह्येतेन वृत्रमहन् । श० १ । ६ । ४ । १२ ॥

,, तथैवैतद्यजमानः पौर्णमासेनैव वृत्रं पाप्मान९ꣳ हत्वापहतपाप्मैतत्कर्मारभते । श० ६ । २ । २ । १६ ॥

,, अग्नीषोमीय९ꣳ हि पौर्णमास९ꣳ हविर्भवति । श० १ । ८ । ३ । २ ॥

,, अथैष क्लृप्तः प्रतिष्ठितो यज्ञो यत्पौर्णमासम् । श० २ । ५ । २ । ४८ ॥ २ । ६ । २ । १६ ॥

,, प्रतिष्ठा वै पौर्णमासम् । कौ० ५ । ८ ॥ १८ । १४ ॥ गो० उ० १ । २६ ॥

,, पौर्णमासः सरस्वान् । गो० उ० १ । १२ ॥

पौर्णमासी (रात्रिः) असौ वै चन्द्रः पशुस्तं देवाः पौर्णमास्यामालभन्ते । श० ६ । २ । २ । १७ ॥

,, ब्रह्म वै पौर्णमासी क्षत्रममावास्या । कौ० ४ । ८ ॥

,, कामो वै पौर्णमासी । तै० ३ । १ । ४ । १५ ॥

,, पौर्णमास्यः प्रतिहारः । ष० ३ । १ ॥

पौष्कलम् (साम) अथैतत्पौष्कलमेतेन वै प्रजापतिः पुष्कलान्पशूनसृजत तेषु रूपमदधाद्यदेतत्साम भवति पशुष्वेव रूपं दधाति । तां० ८ । ५ । ६ ॥

प्र (=पराक्) प्रेति वै प्राण एति ('आ' इति) उदानः । श० १ । ४ । १ । ५ ॥

,, प्राणो वै प्र प्राणं हीमानि सर्वाणि भूतान्यनुप्रयंति । ऐ० २ । ४० ॥

प्र (=पराक्) तद्यत्प्रेति तत्प्राणस्तदयं (भू–) लोकः । जै० उ० २ । ६ । ४ ॥
,, प्राणो वै प्रवान् । श० १ । ४ । ३ । ३ ॥
,, प्रेति पशवो वितिष्ठन्तऽ एति समावर्तन्ते । श० १ । ४ । १ । ६ ॥
,, प्रेति वै रेतः सच्यतऽ एति प्रजायते । श० १ । ४ । १ । ६॥
,, अन्तरिक्षं वै प्रांतरिक्ष हीमानि सर्वाणि भूतान्यनुप्रयंति । ऐ० २ । ४? ॥
,, प्रवद्धि प्रथमस्याह्नो रूपम् । कौ० २० । २ ॥

प्रउगम् (उक्थम्) ता अमुतो ऽर्वाच्यो देवतास्तृतीयसवनात्प्रातः-सवनमभिप्रायुञ्जत तद्यदभिप्रायुञ्जत तत्प्रउगस्य प्रउगत्वम् । कौ० १४ । ५ ॥
,, प्रह्नोक्थं वा एतद्यत्प्रउगम् । ऐ० ३ । १ ॥
,, तदेतत्पवमानोक्थमेव यत्प्रउगम् । कौ० १४ । ४ ॥
,, प्राणानां वा एतदुक्थं यत्प्रउगम् । ऐ० ३ । ३ ॥
,, प्राणाः प्रउगम् । कौ० १४ । ४ ॥ २८ । ६ ॥
,, तस्माद् बह्व्यो देवताः प्रउगे शस्यन्ते । कौ० १४ । ५ ॥ २८ । ६ ॥
,, आतिच्छन्दसः प्रउगः । कौ० २३ । ६ ॥

प्रगाः ये दश प्रगा इम एव ते दश प्राणाः । जै० उ० १ । २१ । ३ ॥
प्रगाथः प्राणापानौ वै बार्हतः प्रगाथः । कौ० १५ । ४ ॥ १८ । २ ॥
,, पशवो वै प्रगाथः । कौ० १५ । ४ ॥ १८ । २ ॥
,, पशवः प्रगाथः । ऐ० ३ । १६, २३, २४ ॥ ६ । २४ ॥ गो० उ० ३ । २१, २२ ॥ ४ । २ ॥
,, अन्तरिक्षम्प्रगाथः । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥
,, मनः प्रगाथः । जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥

प्र च च एतद्धै सर्वं स्वस्त्ययनं यत्प्र च च । ऐ० ३ । २६ ॥
प्रचेताः प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु । श० ३ । ५ । २ । ५ ॥
,, प्रच्छच्छन्दः (यजु० १५ । ५) अन्नं प्रच्छच्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

प्रजननः प्राणः किं छन्दः । का देवता यस्मादिदं प्राणाद्रेतः सिच्यतऽ इत्यतिच्छन्दाश्छन्दः प्रजापतिर्देवता । श० १० । ३ । २ । ७ ॥

प्रजननम् संवत्सरो वै प्रजननम् । गो० पू० २ । १५ ॥

„ अग्निः प्रजननम् । गो० पू० २ । १५ ॥

प्रजाः यज्ञाद्धि प्रजाः प्रजायन्ते । श० ४ । ४ । २ । ६ ॥

„ यज्ञं वाऽ अनु प्रजाः । श० १ । ८ । ३ । २७ ॥

„ प्रजा वै तोकम् (यजु० १३ । ५२ ॥) । श० ७ । ५ । २ । ३६ ॥

„ प्रजा वै सूनुः (यजु० १२ । ५१) । श० ७ । १ । १ । २७ ॥

„ प्रजा वै तन्तुः । ऐ० ३ । ११, ३८ ॥

„ प्रजा वा अप्तुरित्याहुः । गो० उ० ५ । ६ ॥

„ प्रजा वै विश्वज्योतिः । श० ६ । ५ । ३ । ५ ॥ ७ । ४ । २ । २६ ॥ ८ । ३ । २ । २ ॥

„ प्रजा वाऽ अरीः (यजु० ६ । ३६) । श० ३ । ६ । ४ । २१ ॥

„ प्रजा वाऽ इषः । श० १ । ७ । ३ । १४ ॥ ४ । १ । २ । १५ ॥

„ प्रजा वै भूतानि । श० २ । ४ । २ । १ ॥ ३ । ५ । २ । १३ ॥ ४ । ५ । ३ । १ ॥

„ प्रजा वै बर्हिः । कौ० ५ । ७ ॥ १८ । १० ॥ तै० १ । ६ । ३ । १० ॥ श० १ । ५ । ३ । १६ ॥ २ । ६ । १ । २३, ४४ ॥ ४ । ४ । ५ । १४ ॥ गो० उ० १ । २४ ॥

„ प्रजानुरूपः । ऐ० ३ । २३ ॥ कौ० १५ । ४ ॥ २२ । ८ ॥ जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥

„ प्रजा शस्त्रम् । श० ५ । २ । २ । २० ॥

„ प्रजा पशवः सूक्तम् । कौ० १४ । ४ ॥

„ प्रजा वा उक्थानि । तै० १ । ८ । ७ । २ ॥

„ प्रजाः सतो बृहती । गो० उ० ६ । ८ ॥

„ तस्मात्पश्चाद्वरीयसः प्रजननादिमाः प्रजाः प्रजायन्ते । श० ३ । ५ । १ । ११ ॥

„ न्यूनाद्वाऽ इमाः प्रजाः प्रजायन्ते । श० ११ । १ । २ । ४ ॥

„ तस्मात्प्रजा दशमासो गर्भं भृत्वैकादशमनु प्रजायन्ते तस्माद्

द्वादशन्नाभ्यर्तिहरन्ति द्वादशेन हि परिगृहीताः । तां० ६ । १ । ३ ॥

प्रजा: संवत्सरं हि प्रजाः पशवो ऽनु प्रजायन्ते । तां० १० । १ । ६ ॥

„ एष वै प्रजनयिता यन्मुष्करः । श० ३ । ७ । २ । ८ ॥

„ अर्द्धमासशो हि प्रजाः पशव ओजो बलं पुष्यन्ति । तां० १० । १ । ६ ॥

„ यस्य हि प्रजा भवत्येक आत्मना भवत्यथोत दशधा प्रजया हविष्क्रियते । श० १ । ८ । १ । ३४ ॥

„ यस्य हि प्रजा भवत्यमुं लोकमात्मनैत्यथास्मिं लोके प्रजा यजते तस्मात्प्रजोत्तरा देवयज्या । श० १ । ८ । १ । ३१ ॥

„ आदित्या (=अदितेरुत्पन्नाः) वा इमाः प्रजाः । तां० १८ । ८ । १२ ॥

„ द्रय्यो ह वाऽ इदमग्रे प्रजा आसुः । आदित्याश्चैवाङ्गिरसश्च । श० ३ । ५ । १ । १३ ॥

„ वैश्वदेव्यो वै प्रजाः । तै० १ । ६ । २ । ५ ॥ १ । ७ । १० । २ ॥

„ आयस्यो वै प्रजाः । श० १३ । ३ । ४ । ५ ॥

„ आयास्यो (? आयस्यः) वै प्रजाः । तै० ३ । ८ । ११ । ४ ॥

„ आद्या हीमाः प्रजा विशः । श० ४ । २ । १ । १७ ॥

प्रजातिः रेतो वै प्रजातिः । श० १४ । ८ । २ । ६ ॥

„ त्रिवृद्धि प्रजातिः पिता माता पुत्रो ऽथो गर्भ उल्वं जरायु । श० ६ । ५ । ३ । ५ ॥

प्रजापतिः तद्यदब्रवीत् (ब्रह्मा)—प्रजापतेः प्रजाः सृष्ट्वा पालयस्वेति तस्मात्प्रजापतिरभवत् तत्प्रजापतेः प्रजापतित्वम् । गो० पू० १ । ४ ॥

„ एष वै प्रजापतिः । यदग्निः । तै० १ । १ । ५ । ५ ॥

„ प्रजापतिरेषो ऽग्निः । श० ६ । ५ । ३ । ७ ॥ ६ । ८ । १ । ४ ॥

„ प्रजापतिर्वाऽ अग्निः । श० २ । ३ । ३ । १८ ॥

„ प्रजापतिरग्निः । श० ६ । २ । १ । २३, ३० ॥ ६ । ५ । ३ । ८ ॥ ७ । २ । २ । १७ ॥

„ अग्निर्वै देवतानां मुखं प्रजनयिता स प्रजापतिः । श० २ । ५ । १ । ८ ॥ ३ । ६ । १ । ६ ॥

प्रजापतिः स यः स प्रजापतिर्व्यस्रꣳसत । अयमेव स यो ऽयमग्निश्चीयते ऽथ या अस्मात्ताः प्रजा मध्यत उदक्रामन्नेतास्ता वैश्वदेव्य इष्टकाः । श० ८ । २ । २ । ८ ॥

„ यो ह खलु वाव प्रजापतिः स उ वेवेन्द्रः । तै० १ । २ । २ । ५॥

„ एष प्रजापतिर्यद्धृदयम् । श० १४ । ८ । ४ । १ ॥

„ यः प्रजापतिस्तन्मनः । जै० उ० १ । ३३ । २ ॥

„ प्रजापतिर्वै मनः । कौ० १० । १ ॥ २६ । ३॥ सा०१ । १ । १ ॥ तै० ३ । ७ । १ । २ ॥ श० ४ । १ । १ । २२ ॥

„ प्रजापतिर्वै मनश्छन्दः (यजु० १५ । ४) । श० ८ । ५ । २ । ३॥

„ मन इव हि प्रजापतिः । तै० २ । २ । १ । २ ॥

„ अपूर्वा (प्रजापतेस्तनूविशेषः) तन्मनः । ऐ० ५ । २५ ॥ कौ० २७ । ५ ॥

„ वाग्वै प्रजापतिः । श० ५ । १ । ५ । ६ ॥ १३ । ४ । १ । १५ ॥

„ वाग्घि प्रजापतिः । श० १ । ६ । ३ । २७ ॥

„ प्रजापतिर्हि वाक् । तै० १ । ३ । ४ । ५ ॥

„ वाग्वाऽ अस्य (प्रजापतेः) स्वो महिमा । श० २ । २ । ४ । ४ ॥ १ । ४ । २ । १७ (अग्नेः ?) ॥

„ प्रजापतिर्वा इदमेक आसीत्तस्य वागेव स्वमासीद्वाग् द्वितीया स ऐक्षतेमामेव वाचं विसृजा इयं वा इदꣳ सर्वं विभवन्त्येष्यतीति स वाचं व्यसृजत (काठकसंहितायाम् १२ । ५ ॥ २७ । १ :—प्रजापतिर्वा इदमासीत्तस्य वाग् द्वितीयासीत्ताम्मिथुनं समभवत्सा गर्भमधत्त सास्मादपाक्रामत्सेमाः प्रजा असृजत सा प्रजापतिमेव पुनः प्राविशत्) । तां० २० । १४ । २ ॥

„ (प्रजापतिः) वाचमयच्छत्स संवत्सरस्य परस्ताद्व्याहरद्द्वादशकृत्वः । ऐ० २ । ३३ ॥

„ स (प्रजापतिः) संवत्सरे व्याजिहीर्षत् । श० ११ । १ । ६ । ३ ॥

„ प्रजापतिर्वै वाक्पतिः (यजु० ४ । ४) । श० ३ । १ । ३ । २२ ॥

„ प्रजापतिर्वै वाचस्पतिः । श० ५ । १ । १ । १६ ॥

„ स (प्रजापतिः) हैवं षोडशधा ऽऽत्मानं विकृत्य सार्धं समैत् । जै० उ० १ । ४८ । ७ ॥

प्रजापतिः तद्वै लोमेति द्वेऽ अक्षरे । त्वगिति द्वे ऽसृगिति द्वे मेद इति द्वे माꣳसमिति द्वे स्नावेति द्वेऽ अस्थीति द्वे मज्जेति द्वे ताः षोडश कला अथ य एतदन्तरे प्राणः सञ्चरति स एव सप्तदशः प्रजापतिः । श० १० । ४ । १ । १७ ॥

" तस्माऽ एतस्मै सप्तदशाय प्रजापतये । एतत्सप्तदशमन्नꣳ समस्कुर्वन्य एष सौम्योध्वरो ऽथ या अस्य ताः षोडश कला एते ते षोडशर्त्विजः । श० १० । ४ । १ । १९ ॥

" षोडशकलः प्रजापतिः । श० ७ । २ । २ । १७ ॥

" स एष संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलः । श० १४ । ४ । ३ । २२ ॥

" प्रजापतिर्वै सप्तदशः । तां० २ । १० । ५ ॥ १७ । ९ । ४ ॥ गो० उ० २ । १३ ॥ ५ । ८ ॥ तै० १ । ५ । १० । ६ ॥

" सप्तदशो वै प्रजापतिः । ऐ० १ । १६ ॥ ४ । २६ ॥ कौ० ८ । २ ॥ १० । ६ ॥ १६ । ४ ॥ श० १ । ५ । २ । १७ ॥ ५ । १ २ । ११ ॥ गो० उ० १ । १९ ॥

" सप्तदशः प्रजापतिः । तै० १ । ३ । ३ । २ ॥

" द्वादश वै मासाः संवत्सरस्य पञ्चर्तव एष एव प्रजापतिः सप्तदशः । श० १ । ३ । ५ । १० ॥

" सप्तदशो वै प्रजापतिर्द्वादश मासाः पंचर्तवो हेमन्तशिशिरयोः समासेन तावान्त्संवत्सरः संवत्सरः प्रजापतिः । ऐ० १ । १॥

" संवत्सरो वै प्रजापतिरेकशतविधः । तस्याहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः षष्टिर्मासस्याहोरात्राणि मासि वै संवत्सरस्याहोरात्राण्याप्यन्ते चतुर्विꣳशतिरर्धमासास्त्रयोदश मासास्त्रय ऋतवस्ताः शतविधाः संवत्सर एवैकशततमी विधा । श० १० । २ । ६ । १ ॥

" प्रजापतेर्ह वै प्रजाः ससृजानस्य पर्वाणि विसस्रꣳसुः स वै संवत्सर एव प्रजापतिस्तस्यैतानि पर्वाण्यहोरात्रयोः सन्धी पौर्णमासी चामावास्या च ऽर्तुमुखानि । स विस्रस्तैः । न शशाक सꣳहातुं तमेतैर्हविर्यज्ञैर्देवा अभिषज्यन्नग्निहोत्रेणैवाहोरात्रयोः सन्धी तत्पर्वाभिषज्यंस्तत्समदधुः पौर्णमास्येन

चैवामावास्येन च पौर्णमासीं चामावास्यां च तत्पर्वाभिषज्यंस्तत्समदधुश्चतुर्मास्यैरेवऽर्त्तुमुखानि तत्पर्वाभिषज्यंस्तत्समदधुः । श० १ । ६ । ३ । ३५, ३६ ॥

प्रजापति: (प्रजापतिः) प्रजाः सृष्ट्वा सर्वमाजिमित्वा व्यस्रंसत । श० ६ । १ । २ । १२ ॥

" प्रजापतिं विस्रस्तं देवता आदाय व्युदक्रामंस्तस्य (प्रजापतेः) परमेष्ठी शिर आदायोत्क्रम्यातिष्ठत् । श० ८ । ७ । ३ । १५ ॥

" तत एतं परमेष्ठी प्राजापत्यो (=आपः) यज्ञमपश्यद्यद्दर्शपूर्णमासौ । श० ११ । १ । ६ । १६ ॥

" संवत्सरो वै पिता वैश्वानरः प्रजापतिः । श० १ । ५ । १ । १६॥

" स (संवत्सरः) एव प्रजापतिस्तस्य मासा एव सद्दीक्षिणः । तां० १० । ३ । ६ ॥

" संवत्सरो वै प्रजापतिः । श० ८ । ३ । ३ । १८ ॥ ३ । २ । २ । ४ ॥ ५ । १ । २ । ९ ॥

" संवत्सरः प्रजापतिः । ऐ० २ । १७ ॥ तां० १६ । ४ । १२ ॥ गो० उ० ३ । ८ ॥

" प्रजापतिः संवत्सरः । ऐ० ४ । २५ ॥

" स एष प्रजापतिरेव संवत्सरः । कौ० ६ । १५ ॥

" संवत्सरो यज्ञः प्रजापतिः । श० २ । २ । २ । ४ ॥

" एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत्प्रजापतिः । श० ४ । ३ । ४ । ३ ॥

" स वै यज्ञ एव प्रजापतिः । श० १ । ७ । ४ । ४ ॥

" यज्ञ उ वै प्रजापतिः । कौ० १० । १ ॥ १३ । १ ॥ २५ । ११ ॥ २६ । ३ ॥ तै० ३ । ३ । ७ । ३ ॥

" यज्ञः प्रजापतिः । श० ११ । ६ । ३ । ९ ॥

" प्रजापतिर्यज्ञः । ऐ० २ । १७ ॥ ४ । २६ ॥ श० १ । १ । १ । १३ ॥ १ । ५ । २ । १७ ॥ ३ । २ । २ । ४ ॥ तै० ३ । २ । ३ । १ ॥ गो० उ० ३ । ८ ॥ ४ । १२ ॥ ६ । १ ॥

" प्रजापतिर्वै यज्ञः । गो० उ० २ । १८ ॥ तै० १ । ३ । १० । १०॥

" प्राजापत्यो यज्ञः । तै० ३ । ७ । १ । २ ॥

" प्रजापतिरश्वमेधः । श० १३ । २ । २ । १३ ॥ १३ । ४ । १ । १५ ॥

प्रजापतिः एष ह प्रजानां प्रजापतिर्यद्विश्वजित् । गो० पू० ५ । १० ॥

„ प्रजापतिर्विश्वजित् । कौ० २५ । ११, १२, १५ ॥

„ यो ह्येव सविता स प्रजापतिः । श० १२ । ३ । ५ । १ ॥ गो० पू० ५ । २२ ॥

„ प्रजापतिर्वै सविता । तां० १६ । ५ । १७ ॥

„ प्रजापतिः सविता भूत्वा प्रजा असृजत । तै० १ । ६ । ४ । १॥

„ प्राणो हि प्रजापतिः प्रजापतिꣳ ह्येवेदꣳ सर्वमनु (प्रजायते) । श० ४ । ५ । ५ । १३ ॥

„ अथ यस्स प्राण आसीत्स प्रजापतिरभवत् । जै० उ० २ । २ । ६ ॥

„ प्राणा उ वै प्रजापतिः । श० ८ । ४ । १ । ४ ॥

„ प्राणः प्रजापतिः । श० ६ । ३ । १ । ९ ॥

„ अथ य एतदन्तरेण प्राणः संचरति स एव सप्तदशः प्रजापतिः । श० १० । ४ । १ । १७ ॥

„ तस्मादु प्रजापतिः प्राणः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥

„ प्राजापत्यः प्राणः । तै० ३ । ३ । ७ । २ ॥

„ अन्नं वाऽ अयं प्रजापतिः । श० ७ । १ । २ । ४ ॥

„ अन्नं वै प्रजापतिः । श० ५ । १ । ३ । ७ ॥

„ वायुर्हीत्र प्रजापतिस्तदुक्तमृषिणा पवमानः प्रजापतिरिति । ऐ० ४ । २६ ॥

„ स यो ऽयं (वायुः) पवते स एष एव प्रजापतिः । जै० उ० १ । ३४ । ३ ॥

„ अर्धꣳ ह प्रजापतेर्वायुरर्धं प्रजापतिः । श० ६ । २ । २ । ११ ॥

„ एतद्वै प्रजापतेः प्रत्यक्षं रूपं यद्वायुः । कौ० १९ । २ ॥

„ स एष वायुः प्रजापतिरस्मिंस्त्वेऽउभे ऽन्तरिक्षे समन्तं पर्यक्तः । श० ८ । ३ । ४ । १५ ॥

„ प्रजापतिः प्रणेता । तै० २ । ५ । ७ । ३ ॥

„ प्रजापतिर्वै भूतः । तै० २ । १ । ९ । ३ ॥

„ प्रजापतिर्बन्धुः । तै० ३ । ७ । ५ । ५ ॥

„ प्रजापतिरूनातिरिक्तयोः प्रतिष्ठा । ऐ० ५ । २४ ॥

प्रजापतिः एकविंशो वै प्रजापतिर्द्वादश मासाः पंचर्तवस्त्रय इम लोका असावादित्य एकविंशः । ऐ० १ । ३० ॥

„ रूपमेव तत्प्रजापतिर्हिरण्यमन्तत आत्मनो ऽकुरुत...तस्मादाहुर्हिरण्मयः प्रजापतिरिति । श० १० । १ । ४ । ६ ॥

„ प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः । श० ६ । २ । २ । ५ ॥

„ प्रजापतिर्वै ब्रह्मा । गो० उ० ५ । ८ ॥

„ प्राजापत्यो वै ब्रह्मा । गो० उ० ३ । १८ ॥

„ प्राजापत्यो ब्रह्मा । तै० ३ । ३ । ८ । ६ ॥

„ ब्रह्म वै प्रजापतिर्ब्राह्मो हि प्रजापतिः । श० १३ । ६ । २ । ८ ॥

„ प्रजापतिर्वै चन्द्रमाः । श० ६ । १ । ३ । १६ ॥

„ असौ वै चन्द्रः प्रजापतिः । श० ६ । २ । २ । १६ ॥

„ सोमो हि प्रजापतिः । श० ५ । १ । ५ । २६ ॥

„ सोमो वै प्रजापतिः । श० ५ । १ । ३ । ७ ॥

„ स (प्रजापतिः) वै दक्षो नाम । श० २ । ४ । ४ । २ ॥

„ प्रजापतिर्वाव महान् । तां० ४ । १० । २ ॥

„ प्रजापतिर्वै महान्देवः । श० ६ । १ । ३ । १६ ॥

„ अश्वा ह वा ऽ इयं (पृथिवी) भूत्वा मनुमुवाह सो ऽस्याः पतिः प्रजापतिः । श० १४ । १ । ३ । २५ ॥

„ प्रजापतिर्वै मनुः स हीदꣳ सर्वममनुत । श० ६ । ६ । १ । १९ ॥

„ एष (प्रजापतिः) वै वसिष्ठः (=सर्वश्रेष्ठ इति सायणः) । श० २ । ४ । ४ । २ ॥

„ प्रजापतिर्वै वसिष्ठः । कौ० २५ । २ ॥ २६ । १५ ॥

„ तां (प्रादेशमात्रीं पृथिवीं) एमूष इति वराह उज्जघान सो ऽस्याः (पृथिव्याः) पतिः प्रजापतिः । श० १४ । १ । २ । ११ ॥

„ स (प्रजापतिः) वै वराहो रूपं कृत्वा उपन्यमज्जत् । स पृथिवीमध आर्च्छत् । तस्या उपहत्योदमज्जत् । तै० १ । १ । ३ । ६ ॥

„ प्रजापतिर्वै विश्वकर्मा (यजु० १३ । १६ ॥ १४ । ५, ६) । श० ७ । ४ । २ । ५ ॥ ८ । २ । १ । १० ॥ ८ । २ । ३ । १३ ॥

„ प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा विश्वकर्मा ऽभवत् । ऐ० ४ । २२ ॥

प्रजापतिः प्रजापतिर्वै व्योमा (यजु० १४ । २३) । श० ८ । ४ । १ । ११॥
,, प्रजापतिर्वै सुपर्णो गरुत्मान् (ऋ० १० । १४९ । ३) । श० १० । २ । २ । ४ ॥
,, प्रजापतिर्वै मूर्धा (यजु० १४ । ६) । श० ८ । २ । ३ । १० ॥
,, वयुनाविदित्येष (प्रजापतिः) हीदं वयुनमविन्दत् । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥
,, प्रजापतिव युञ्जानः (यजु० ११ । १) स मन एतस्मै कर्मणेऽयुङ्क्त । श० ६ । ३ । १ । १२ ॥
,, प्रजापतिर्वै विष्टम्भः (यजु० १४ । ६) । श० ८ । २ । ३ । १२॥
,, प्रजापतिर्वा ओदनः । श० १३ । ३ । ६ । ७ ॥ तै० ३ । ८ । २ । ३ ॥ ३ । ६ । १८ । २ ॥
,, प्रजापतेर्वा एतद्रूपम् । यत्सक्तवः । तै० ३ । ८ । १४ । ५ ॥
,, प्रजापतिः स्वरः । ष० ३ । ७ ॥
,, प्रजापतिः स्वरसामानः । कौ० २४ । ४, ५, ६ ॥
,, प्राजापत्यं वै वामदेव्यम् । तां० ४ । ८ । १५ ॥ ११ । ४ । ८ ॥
,, प्रजननं वै वामदेव्यम् (साम) । श० ५ । १ । ३ । १२ ॥
,, प्रजापतिर्वै वामदेव्यम् (साम) । श० १३ । ३ । ३ । ४ ॥
,, यच्छ्यैतेन (साम्ना) हिङ्करोति प्रजापतिरेव भूत्वा प्रजा अभिजिघ्रति । तां० ७ । १० । १६ ॥
,, प्रजापतिर्वै हिङ्कारः । तां० ६ । ८ । ५ ॥
,, सर्वाणि छन्दांꣳसि प्रजापतिः । श० ६ । २ । १ । ३० ॥
,, प्रजापतेर्वा एतान्यङ्गानि यच्छन्दांसि । ऐ० २ । १८ ॥
,, पाङ्क्तः प्रजापतिः । श० १० । ४ । २ । २३ ॥
,, आनुष्टुभः प्रजापतिः । तै० ३ । ३ । २ । १ ॥
,, अतिच्छन्दा वै प्रजापतिः । कौ० २३ । ४, ८ ॥
,, प्रजापतेर्वा एतदुक्थं यत्प्रातरनुवाकः । ऐ० २ । १७ ॥
,, प्रजापतिर्वै प्रातरनुवाकः । कौ० ११ । ७ ॥ २५ । १० ॥
,, प्राजापत्यं वै षष्ठमहः । कौ० २३ । ८ ॥ २५ । ११, १५ ॥
,, प्रजापतियज्ञो वा एष यद् द्वादशाहः । ऐ० ४ । २५ ॥
,, अथास्य (प्रजापतेः) इन्द्र ओज आदायोदङ्ङुदक्रामत्स उदुम्बरो ऽभवत् । श० ७ । ४ । १ । ३६ ॥

प्रजापतिः प्राजापत्यो वा उदुम्बरः । तां० ६ । ४ । १ ॥

" प्राजापत्य उदुम्बरः । श० ४ । ६ । १ । ३ ॥

" प्राजापत्यो ऽश्वः । श० १३ । १ । १ । १ ॥ तै० १ । १ । ५ । ५ ॥ ३ । २ । २ । १ ॥

" प्राजापत्यो वाऽ अश्वः । श० ६ । ५ । ३ । ९ ॥ तै० ३ । ८ । २२ । ३ ॥ ३ । ६ । १६ । १ ॥

" प्रजापतिरालब्धो ऽश्वो ऽभवत् । तै० ३ । ९ । २१ । १ ॥ ३ । ६ । २२ । १, २ ॥

" प्रजापतेरुत्तरा (आहुतिः) । तै० २ । १ । ७ । १ ॥

" प्राजापत्यमेतत्कर्म यदुखा । श० ६ । २ । २ । २३ ॥

" निष्ट्या (नक्षत्रं) हृदयम् (नक्षत्रियस्य प्रजापतेः) । तै० १ । ५ । २ । २ ॥

" स यदुपांशु तत्प्राजापत्यं रूपम् । श० १ । ६ । ३ । २७ ॥

" तस्मात् यत्किंच प्राजापत्यं यज्ञे क्रियतऽ उपांश्वेव तत्क्रियत ऽहव्यवाड्ढि वाक् प्रजापतयऽ आसीत् । श० १ । ४ । ५ । १२ ॥

" स (प्रजापतिः) तूष्णीं मनसा ध्यायत्तस्य यन्मनस्यासीत्तद् बृहत्समभवत् । तां० ७ । ६ । १ ॥

" (प्रजापतिः) श्रोत्रादविम् (निरमिमीत) । श० ७ । ५ । २ । ६ ॥

" (यो ऽयं चक्षुषि पुरुषः) एष प्रजापतिः । जै० उ० १ । ४३ । १० ॥ ४ । २४ । १३ ॥

" प्रजापतिः सदस्यः । गो० उ० ५ । ४ ॥

" प्रजापतिर्वाऽ उद्गाता । श० ४ । ३ । २ । ३ ॥

" एष वै यजमानस्य प्रजापतिर्यदुद्गाता । तां० ७ । १० । १६ ॥

" प्राजापत्य उद्गाता । तां० ६ । ४ । १ ॥ ६ । ५ । १८ ॥

" प्रजापतिरुद्गीथः । तै० ३ । ८ । २२ । ३ ॥

" अथर्वा वै प्रजापतिः । गो० पू० १ । ४ ॥

" एष वै प्रजापतेः प्रत्यक्षतमां यद्राजन्यस्तस्मादेकः सन्बहूनामीष्टे यद्वेव चतुरक्षरः प्रजापतिश्चतुरक्षरो राजन्यः । श० ५ । १ । ५ । १४ ॥

प्रजापतिः सत्यꣳ हि प्रजापतिः । श० ४ । २ । १ । २६ ॥
„ प्रजापतिर्वै गार्हपत्यः । कौ० २७ । ४ ॥
„ प्रजापतेर्वा एतौ स्तनौ यद् घृतश्च्युन्निधनञ्च (साम) मधुश्च्युन्निधनञ्च (साम), यज्ञो वै प्रजापतिस्तमेताभ्यां दुग्धे यद्कामङ्कमयेत तन्दुग्धे । तां० १३ । ११ । १८ ॥
„ घृतञ्च वै मधु च प्रजापतिरासीत् । तै० ३ । ३ । ४ । १ ॥
„ प्रजापतिर्ह्यात्मा । श० ६ । २ । २ । १२ ॥
„ आत्मा ह्ययं प्रजापतिः । श० ४ । ६ । १ । १ ॥ ११ । ५ । ९ । १ ॥
„ आत्मा वै प्रजापतिः । श० ४ । ५ । ९ । २ ॥
„ पुरुषः प्रजापतिः । श० ६ । २ । १ । २३ ॥ ७ । १ । १ । ३७ ॥
„ पुरुषो हि प्रजापतिः । श० ७ । ४ । १ । १५ ॥
„ प्राजापत्यो वै पुरुषः । तै० २ । २ । ५ । ३ ॥
„ पुरुषो वै प्रजापतेर्नेदिष्ठम् । श० ४ । ३ । ४ । ३ ॥ ५ । १ । ३ । ८ ॥
„ एष उ एव प्रजापतिर्यो यजते । ऐ० २ । १८ ॥
„ यजमानो ह्येव स्वे यज्ञे प्रजापतिः । श० १ । ६ । १ । २० ॥
„ पितरः प्रजापतिः । गो० उ० ६ । १५ ॥
„ अꣳशुर्वै नाम ग्रहः स प्रजापतिः । श० ४ । १ । १ । २ ॥
„ प्रजापतिर्वाऽ एष यदꣳशुः (ग्रहः) । श० ४ । ६ । १ । १ ॥
„ प्रजापतिर्ह वाऽ एष यदꣳशुः (ग्रहः) । श० ११ । ५ । ६ । १ ॥
„ ऋषभो वै पशूनां प्रजापतिः । श० ५ । २ । ५ । १७ ॥
„ प्रजननं प्रजापतिः । श० ५ । १ । ३ । १० ॥
„ स प्रजापतिरब्रवीद्थ कोऽहमिति यदेवैतदवोच इत्यब्रवीत्ततो वै को नाम प्रजापतिरभवत्को वै नाम प्रजापतिः । ऐ० ३ । २१ ॥
„ को हि प्रजापतिः । श० ६ । २ । २ । ५ ॥
„ को वै प्रजापतिः । गो० उ० ६ । ३ ॥
„ प्रजापतिर्वै कः । ऐ० २ । ३८ ॥ ६ । २१ ॥ कौ० ५ । ४ ॥

२४ । ४, ५, ९ ॥ तां० ७ । ८ । ३ ॥ श० ६ । ४ । ३ । ४ ॥ ७ । ३ । १ । २० ॥ तै० २ । २ । ५ । ५ ॥ जै० उ० ३ । २ । १० ॥ गो० उ० १ । २२ ॥

प्रजापतिः कं वै प्रजापतिः । श० २ । ५ । २ । १३ ॥

" प्रजापतिर्वै भरतः (यजु० १२ । ३४) स हीदꣳ सर्वं बिभर्ति । श० ५ । ८ । १ । १४ ॥

" स (प्रजापतिः) उ वाव भुवनस्य गोपाः । जै० उ० ३ । २ । ११ ॥

" प्रजापतिर्वै बृहदुक्षः । श० ४ । ४ । १ । १४ ॥

" प्रजापतिर्वै बृहन्विपश्चित् (यजु० ११ । ४) । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥

" विप्रा विप्रस्य (यजु० ११ । ४) इति प्रजापतिर्वै विप्रो देवा विप्राः । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥

" प्रजापतिर्वै नृमणा (यजु० १२ । १८ ॥) । श० ६ । ७ । ४ । ३, ५ ॥

" प्रजापतिर्वै नृचक्षाः (यजु० १२ । २० ॥) । श० ६ । ७ । ४ । ५ ॥

" प्रजापतिर्धाता । श० ९ । ५ । १ । ३८ ॥

" प्रजापतिर्वै जमदग्निः । श० १३ । २ । २ । १४ ॥

" भूतो वै प्रजापतिः । तै० ३ । ७ । १ । ३ ॥ ३ । ७ । २ । १ ॥

" प्रजापतिर्वै चतुर्होता । तै० २ । २ । ३ । ५ ॥

" प्रजापतिर्वै दशहोता । तै० २ । २ । १ । १ ॥ २ । २ । ३ । २॥ २ । २ । ८ । ५ ॥ २ । २ । ९ । ३ ॥

" प्रजापतिर्वै दशहोतृणाꣳ होता । तै० २ । ३ । ५ । ६ ॥

" प्रजापतिर्वै द्रोणकलशः । श० ४ । ३ । १ । ६ ॥ ४ । ५ । ५ । ११ ॥

" प्राजापत्यो ह्येष देवतया यद् द्रोणकलशः । तां० ६ । ५ । ६ ॥

" प्रजापतिरेव निधनम् । जै० उ० १ । ५८ । ९ ॥

" प्रजापतिर्वै क्षत्रम् । श० ८ । २ । ३ । ११ ॥

" प्रजापतिर्वै चित्पतिः । श० ३ । १ । ३ । २२ ॥

प्रजापतिः इमे लोकाः प्रजापतिः । श० ७ । ५ । १ । २७ ॥

" प्रजापतिर्वाऽ अतीमान् (त्रीन्) लोकांश्चतुर्थः । श० ४ । ६ । १ । ४ ॥

" द्यावापृथिवी हि प्रजापतिः । श० ५ । १ । ५ । २६ ॥

" प्राजापत्यो वाऽ अयं (भू-) लोकः । तै० १ । ३ । ७ । ५ ॥

" प्रजापतिर्वै पृथिव्यै जनिता । श० ७ । ३ । १ । २० ॥

" सप्तविधो वाऽ अग्रे प्रजापतिरसृज्यत । श० १० । २ । ३ । १८॥

" स एव पुरुषो प्रजापतिरभवत् । सप्तपुरुषो ह्ययं पुरुषः (प्रजापतिः) यच्चत्वार आत्मा त्रयः पक्षपुच्छानि । श० ६ । १ । १ । ५—६ ॥

" यान्त्वै तान्त्सप्त पुरुषान् । एकं पुरुषमकुर्वन्त्स प्रजापतिरभवत् । श० १० । २ । २ । १ ॥

" एक उ वै प्रजापतिः । कौ० २९ । ७ ॥

" प्रजापतिर्वा एकः । तै० ३ । ८ । १६ । १ ॥

" एको वै प्रजापतिः । तां० १६ । १६ । ४ ॥

" प्रजापतिर्वा इदमेक आसीत् । तां० १६ । १ । १ ॥

" प्रजापतिर्ह वा इदमग्र एक एवास । श० २ । २ । ४ । १ ॥

" प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीदेक एव । श० ७ । ५ । २ । ६ ॥

" प्रजापतिर्वा इदमेक एवाग्र आस । सो ऽकामयत प्रजायेय भूयान्त्स्यामिति । ऐ० २ । ३३ ॥

" प्रजापतिर्वा इदमेक असीत् सोकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति । तां० ४ । १ । ४ ॥

" प्रजापतिर्वावेदमग्र आसीत् । सो ऽकामयत बहुस्स्याम्प्रजायेय भूमानं गच्छेयमिति । जै० उ० १ । ४६ । १ ॥

" प्रजापतिरकामयत बहु स्याम प्रजायेयेति । तां० ६ । १ । १ ॥ ६ । ५ । १ ॥ ७ । ५ । १ ॥ ७ । ६ । १ ॥ १० । ३ । १ ॥

" स (प्रजापतिः) तूर्ष्णीं मनसाध्यायत्तस्य यन्मनस्यासीत्तद् बृहत्समभवत् । स आदीधीत गर्भो वै मे ऽयमन्तर्हितस्तं वाचा प्रजनया इति । स वाचं व्यसृजत (मैत्रायणीसंहितायाम् ४ । २ । १:—स मनसात्मानमध्यायत् सो ऽन्तर्गर्भणभवत्) । तां० ७ । ६ । १—३ ॥

प्रजापतिः सः (प्रजापतिः) ………अकामयत प्रजायेयेति । स तपो ऽतप्यत । सो ऽन्तर्वानभवत् । स जघनादसुरानसृजत…… स मुखाद्देवानसृजत । तै० २ । २ । ९ । ५—८ ॥

" स (प्रजापतिः) आस्येनैव देवानसृजत………तस्मै ससृजानाय दिवेवास । …… …अथ यो ऽयमवाङ् प्राणः, तेनासुरानसृजत । ………तस्मै ससृजानाय तम इवास । श० ११ । १ । ६ । ७—८ ॥

" उभये वा एते प्रजापतेरध्यसृजन्त । देवाश्चासुराश्च । तै० १ । ४ । १ । १ ॥

" देवाश्च वाऽ असुराश्च । उभये प्राजापत्याः प्रजापतेः पितुर्दायमुपेयुरेतावेवार्धमासौ (=शुक्लकृष्णपक्षौ) । श० १ । ७ । २ । २२ ॥

" देवाश्च वाऽ असुराश्च । उभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे । श० १ । ५ । ४ । ६ ॥

" तस्य (प्रजापतेः) विश्वे देवाः पुत्राः । श० ६ । ३ । १ । १७॥

" प्रजापतिः सर्वा देवताः । तै० ३ । २ । ७ । ३ ॥

" प्रजापतिमु वाऽ अनु सर्वे देवाः । श० १३ । ५ । ३ । ३ ॥

" उभयम्वेतत्प्रजापतिर्यच्च देवा यच्च मनुष्याः । श० ६ । ८ । १ । ४ ॥

" प्रजापते त्वं निधिपाः पुराणः । देवानां पिता जनिता प्रजानाम् । पतिर्विश्वस्य जगतः परस्पाः । तै० २ । ८ । १ । ३ ॥

" स एव (प्रजापतिः) पिता पुत्रः । यद्वो (प्रजापतिः) ऽग्निमसृजत तेनैषो ऽग्नेः पिता यदेतमग्निः समदधात्तेनैतस्याग्निः पिता यदेव देवानसृजत तेनैष देवानां पिता यदेनं देवाः समदधुस्तेनैतस्य देवाः पितरः । श० ६ । १ । २ । २६॥

" सः (प्रजापतिः) अग्निमब्रवीत्त्वं वै मे ज्येष्ठः पुत्राणामसि । जै० उ० १ । ५१ । ५ ॥

" मातेव च पितेव च प्रजापतिः । श० ५ । १ । ५ । २६ ॥

" रूपं वै प्रजापतिः…नाम वै प्रजापतिः । तै० २ । २ । ७ । १ ॥

" सर्वमु ह्येवेदं प्रजापतिः । श० ५ । १ । १ । ४ ॥

प्रजापतिः सर्वमु हीदं प्रजापतिः । श० १० । २ । ३ । १८ ॥

„ सर्वꣳ हि प्रजापतिः । श० १३ । ६ । १ । ६ ॥

„ सर्वं वै प्रजापतिः । श० १ । ३ । ५ । १० ॥ ४ । ५ । ७ । २ ॥ गो० उ० १ । २६ ॥ कौ० ६ । १५ ॥ २५ । १२ ॥

„ प्रजापतिरेव सर्वम् । कौ० ६ । १५ ॥ २५ । १२ ॥

„ अपरिमितो वै प्रजापतिः । ऐ० २ । १७ ॥ ६ । २ ॥

„ अपरिमित उ वै प्रजापतिः । कौ० ११ । ७ ॥

„ अपरिमितो हि प्रजापतिः । गो० उ० १ । ७ ॥

„ उभयम्वेतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च तथा यजुष्कृतायै करोति यदेवास्य निरुक्तं परिमितꣳ रूपं तदस्य तेन संस्करोत्यथ या अयजुष्कृतायै यदेवास्यानिरुक्तमपरिमितꣳ रूपं तदस्य तेन संस्करोति । श० ६ । ५ । ३ । ७ ॥

„ सः (प्रजापतिः) अब्रवीदनिरुक्तं साम्नो वृणे स्वर्ग्यमिति । जै० उ० १ । ५२ । ६ ॥

„ सः (प्रजापतिः) ऐक्षत यन्निरुक्तमाहरिष्याम्यसुरा मे यज्ञꣳ हनिष्यन्तीति सो ऽनिरुक्तम् (=परोक्षम्) आहरत् । तां० १८ । १ । ३ ॥

„ अनिरुक्तो वै प्रजापतिः । ऐ० ६ । २०॥ तै० १ । ३ । ८ । ५ ॥ श० १ । १ । १ । १३ ॥ ६ । २ । २ । २१ ॥ तां० १८ । ६ । ८ ॥

„ अनिरुक्त उ वै प्रजापतिः । कौ० २३ । २, ६ ॥ २६ । ७ ॥ तां० ७ । ८ । ३ ॥

„ तदाहुः । किन्देवत्यान्याज्यानीति प्राजापत्यानीति ह ब्रूयादनिरुक्तो वै प्रजापतिरनिरुक्तान्याज्यानि । श० १ । ६ । १ । २० ॥

„ प्रजापतिर्वै देवानामन्नादो वीर्य्यवान् । तै० ३ । ८ । ७ । १ ॥

„ प्रजापति र्वै देवानां वीर्यवत्तमः । श० १३ । १ । २ । ५ ॥

„ अथ यत्परं भाः (सूर्यस्य) प्रजापतिर्वा सः । श० १ । ९ । ३ । १० ॥

„ यत्परं भाः प्रजापतिर्वा स इन्द्रो वा । श० २ । ३ । १ । ७ ॥

„ प्रजापतिर्वा अमृतः । श० ६ । ३ । १ । १७ ॥

प्रजापतिः यावान्वै प्रजापतिरूर्द्ध्वस्तावाँस्तिर्य्यङ् । तां० १८ । ६ । २ ॥

„ प्रजापतिश्चतुस्त्रिँशो देवतानाम् । तां० १७ । ११ । ३ ॥ २२ । ७ । ५ ॥

„ त्रयस्त्रिँशद्वै देवताः । प्रजापतिश्चतुस्त्रिँशः । तै० १ । „ ८ । ७ । १ ॥ २ । ७ । १ । ३—४ ॥

„ पूर्ण इव हि प्रजापतिः । तै० २ । २ । १ । २ ॥

„ प्रजापतिर्हि स्वाराज्यम् । तां० १९ । १३ । ३ ॥ २२ । १८ । ४ ॥

„ अन्तो वै प्रजापतिः । श० ५ । १ । ३ । १३ ॥

„ प्राजापत्यो वै वल्मीकः । तै० ३ । ७ । २ । १ ॥

„ तदेता वाऽ अस्य (प्रजापतेः) ताः पञ्च मर्त्यास्तन्व आसं-लोम त्वङ् मांसमस्थि मज्जाथैता अमृता मनो वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रम् । श० १० । १ । ३ । ४ ॥

„ (प्रजापतेर्नक्षत्रियस्य) ऊरू विशाखे (=नक्षत्रविशेषः) । तै० १ । ५ । २ । २ ॥

„ हस्तः (नक्षत्रम्) एवास्य (नक्षत्रियस्य प्रजापतेः) हस्तः । तै० १ । ५ । २ । २ ॥

„ प्रजापतेर्वा एतदुदरं यत्सदः । तां० ६ । ४ । ११ ॥

„ प्रजापतेर्वा एतानि श्मश्रूणि यद्वेदः । तै० ३ । ३ । ६ । ११ ॥

„ प्राजापत्यो वेदः (=दर्भमुष्टिः) । तै० ३ । ३ । २ । १ ॥

„ प्राजापत्यो वै वेदः । तै० ३ । ३ । ७ । २ ॥ ३ । ३ । ८ । ६ ॥

„ तस्य (प्रजापतेः) यः श्लेष्मासीत्स सार्धँ समवद्रुत्य मध्यतो नस्त उदभिनत्स एव वनस्पतिरभवद्रज्जुदालस्तस्मात्स श्लेष्मणः श्लेष्मणो हि समभवत् । श० १३ । ४ । ४ । ६ ॥

„ प्रजापतेर्वाऽ एतेऽ अन्धसी यत्सोमश्च सुरा च । श० ५ । १ । २ । १० ॥

„ स (प्रजापतिः) सर्वाणि भूतानि सृष्ट्वा रिरिचान इव मेने स मृत्योर्बिभयांचकार । श० १० । ४ । २ । २ ॥

„ तदभ्यमृशदस्त्वित्यस्तु भूयोऽस्तु इत्येव तदब्रवीत् (प्रजापतिः) ततो ब्रह्मैव प्रथममसृज्यत त्रय्येव विद्या । श० ६ । १ । १ । १० ॥

प्रजापतिः प्रजापतिः प्रजा असृजत ता अस्मै श्रैष्ठ्याय नातिष्ठन्त स आसान्दिशां प्रजानाञ्च रसं प्रवृह्य स्रजं कृत्वा प्रत्यमुञ्चत ततोऽस्मै प्रजाः श्रैष्ठ्यायातिष्ठन्त । तां० १६ । ४ । १ ॥

" ताः (प्रजाः) अस्मात् (प्रजापतेः) सृष्टा अपाक्रामꣳस्तासान्दिविसञ्च्याददं इति प्राणानादत्त ता एनं प्राणेष्वात्तेषु पुनरुपावर्त्तन्त । तां० ७ । ५ । २ ॥

" प्रजापतिः पशूनसृजत ते ऽस्मात्सृष्टा अपाक्रामꣳस्तानेतेन (श्यैतेन) साम्नाभिव्याहरत्ते ऽस्मा अतिष्ठन्त । तां० ७ । १० । १३ ॥

" (रुद्रः) तं (प्रजापतिम्) अभ्यायत्याविध्यत् । ऐ० ३ । ३३ ॥

" तꣳ (प्रजापतिं) रुद्रो ऽभ्यायत्य विव्याध । श० १ । ७ । ४ । ३ ॥

" प्रजापते रोहिणी (नक्षत्रम्) । तै० १ । ५ । १ । १ ॥

" या (प्रजापतेर्दुहिता) रोहित् (=रक्तवर्णा मृगी) सा रोहिणी (अभूत्) । ऐ० ३ । ३३ ॥

" रोहिणी देव्युदगात् पुरस्तात्......वर्धयन्ती । तै०३।१।१।२ ॥

" विराट् सृष्टा प्रजापतेः । ऊर्ध्वारोहद्रोहिणी । योनिरग्नेः प्रतिष्ठितिः । तै० १ । २ । २ । २७ ॥

" स (प्रजापती रुद्रेण) विद्धः ऊर्ध्व उदप्रपतत्तमेतं मृगः (=मृगशीर्षनक्षत्रम्) इत्याचक्षते । ऐ० ३ । ३३ ॥

" एतद्वै प्रजापतेः शिरो यन्मृगशीर्षम् । श० २ । १ । २ । ८ ॥

" स (प्रजापतिः) पुरुषमेधेनेष्ट्वा विराडिति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥

" प्रजापतिर्वैराजम् (साम) । तां० १६ । ५ । १७ ॥

" वाजपेययाजी वाव प्रजापतिमाप्नोति तां १८ । ६ । ४ ॥

" प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये । ऐ० ३ । ३३ ॥

" प्रजापतिर्ह वै स्वां दुहितरमभिदध्यौ । दिवं वोषसं वा मिथुन्येनया स्यामिति ताꣳ सम्बभूव । श० १ । ७ । ४ । १ ॥

प्रजापतिः प्रजापतिरुपसमध्यैत् स्वां दुहितरं, तस्य रेतः परापतत्तदस्यां न्यषिच्यत तदश्रीणादिदं मे मादुषदिति तत्सदकरोत्पशूनेव। तां० ८।२।१०॥

" यदस्मात् (प्रजापतेः) तद्रेतः परापतदेषा पयस्या मैत्रावरुणी। श० ६।५।१।५६॥

" तान् (अग्निवाय्वादित्यचन्द्रमसः) दीक्षितांस्तेपानानुषाः प्राजापत्याऽप्सरोरूपं कृत्वा पुरस्तात्प्रत्युदैत्तस्यामेषां मनः समपतत्ते रेतोऽसिञ्चन्त ते प्रजापतिं पितरमेत्याब्रुवन् रेतो वा असिचामहा इदं नो मामुया भूदिति। कौ० ६।१॥

" सा (सीता सावित्री) ह पितरं प्रजापतिमुपससार। तꣳ होवाच। नमस्ते अस्तु भगवः। तै० २।३।१०।१॥

" प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत्सूर्यां सावित्रीम्। ऐ० ४।७॥

प्रणवः प्रणवेनैव साम्नो रूपमुपगच्छत्योꣃम् ओꣃमित्येतेनो हास्यैष सर्व एव ससामा यज्ञो भवति। श० १।४।१।१॥

" यच्छुद्धं प्रणवं कुर्वन्ति तदस्य (भू-) लोकस्य रूपं यन्मकारान्तं तदमुष्य (द्युलोकस्य)। कौ० १४।३॥

" अमृतं वै प्रणवः। गो० उ० ३।११॥ ("प्रणवः" इत्यस्य स्थाने "प्राणः" इति-कौ० ११।४॥)

" ब्रह्म वै प्रणवः। कौ० ११।४॥

" ब्रह्म ह वै प्रणवः। गो० उ० ३।११॥ ("ओम्" शब्दमपि पश्यत)

प्रणीताः (आपः) यदापः प्राणयंस्तस्मादापः प्रणीतास्तत्प्रणीतानां प्रणीतात्वम्। श० १२।६।३।८॥

प्रणीर्यज्ञानाम् वायुर्वै प्रणीर्यज्ञानां यदा हि प्राणित्यथ यज्ञोऽथाग्निहोत्रम्। ऐ० २।३४॥

प्रतरणः (ऋ० १।६१।१६) (प्रतरणः=) प्रतारयिता। ऐ० १।१३॥

प्रतिगरः गृणाति ह वाऽ एतद्धोता यच्छꣳसति। तस्मा एतद् गृणते प्रत्यवाध्वर्युरागृणाति तस्मात्प्रतिगरो नाम। श० ४।३।२।१॥

प्रतिगरः मदो वै प्रतिगरः । श० ४ । ३ । २ । ५ ॥

प्रतिग्रहः यो बहु प्रतिगृह्य गरगीरिव मन्यते स एतेन (पुनःस्तोमेन) यजेत । तां० १६ । ४ । २ ॥

प्रतिप्रस्थाता कृतानुकर एव प्रतिप्रस्थाता । श० २ । ५ । २ । ३४ ॥

प्रतिमा (यजु० १४ । १८) असौ वै लोकः प्रतिमैष ह्यन्तरिक्षलोके प्रतिमित इव । श० ८ । ३ । ३ । ५ ॥

प्रतिरवाः (यजु० ३८ । १५) प्राणा वै प्रतिरवाः प्राणान्हीदꣳ सर्वं प्रतिरतम् । श० १४ । २ । २ । ३४ ॥

प्रतिराधः प्रतिराधेन वै देवा असुरान्प्रतिराध्याथैनानत्यायन् । ऐ० ६ । ३३ ॥

„ ता वै प्रतिराधैः प्रत्यराध्नुवन् तद्यत्प्रतिराधैः प्रत्यराध्नुवन् तस्मात्प्रतिराधास्तत्प्रतिराधानां प्रतिराधत्वम् । गो० उ० ६ । १३ ॥

प्रतिरूपः य आदित्ये (पुरुषः) स प्रतिरूपः । प्रत्यङ् ह्येष सर्वाणि रूपाणि । जै० उ० १ । २७ । ५ ॥

प्रतिष्ठा (=पादः) द्विपदो छन्दो विष्णुर्देवता प्रतिष्ठे (=पादौ) । श० १० । ३ । २ । ११ ॥

„ इयं वै पृथिवी प्रतिष्ठा । श० १ । ६ । १ । २६ ॥ १ । ६ । ३ । ११ ॥

„ गृहा वै प्रतिष्ठा । श० १ । ९ । ३ । १८ ॥

„ याश्चतस्रः प्रतिष्ठा इमा एव ताश्चतस्रो दिशः । जै० उ० १ । २१ । २ ॥

„ चक्षुर्वै प्रतिष्ठा । श० १४ । ६ । २ । ३ ॥

„ प्रतिष्ठा वै स्विष्टकृत् । कौ० ३ । ८ ॥ ऐ० २ । १० ॥

„ प्रतिष्ठा वै स्वाहाकृतयः । ऐ० २ । ४ ॥

„ प्रतिष्ठा वा अवसानम् । कौ० ११ । ५ ॥ गो० उ० ३ । ११ ॥

प्रतिष्ठा चरित्रम् (यजु० १४ । १२ ॥ १५ । ६४ ॥) इमऽ उ लोकाः प्रतिष्ठा चरित्रम् । श० ८ । ३ । १ । १० ॥ ८ । ७ । ३ । १९ ॥

प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशः (यजु० १४ । २३) संवत्सरो वाव प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिꣳशस्तस्य चतुर्विꣳशतिरर्धमासाः षडृतवो द्वेऽ

अहोरात्रे संवत्सर एव प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिꣳशस्तद्य-त्तमाह प्रतिष्ठेति संवत्सरो हि सर्वेषां भूतानां प्रतिष्ठा। श० ८। ४। १। २२॥

प्रतिसराः (यजु० १३। ९-१३ एते पञ्च मंत्राः प्रतिसराख्याः) राक्षोघ्ना वै प्रतिसराः। श० ७। ४। १। ३३॥

प्रतिहर्त्ता व्यानः प्रतिहर्त्ता। कौ० १७। ७॥ गो० उ० ५। ४॥

" पशवो वै प्रतिहर्त्ता। तां० ६। ७। १५॥

" रौद्रो वै प्रतिहर्त्ता। गो० उ० ३। १९॥

" भविष्यत्प्रति चाहरत् (=प्रतिहर्ता ऽऽसीत्)। तै० ३। १२। ९। ३॥

प्रतिहारः अश्विनौ प्रतिहारः। जै० उ० १। ५८। ६॥

" चन्द्रमाः प्रतिहारः। जै० उ० १। ३६। ६॥

" (प्रजापतिः) शरदम्प्रतिहारम् (अकरोत्)। जै० उ० १। १२। ७॥

" शरत्प्रतिहारः। ष० ३। १॥

" पौर्णमास्यः प्रतिहारः। ष० ३। १॥

" (प्रजापतिः) विद्युतम्प्रतिहारम् (अकरोत्)। जै० उ० १। १३। १॥

" अपराह्णः प्रतिहारः। जै० उ० १। १२। ४॥

" (प्रजापतिः) स्तोमम्प्रतिहारम् (अकरोत्)। जै० उ० १। १३। ३॥

" (प्रजापतिः) चक्षुः प्रतिहारं (अकरोत्)। जै० उ० १। १३। ५॥

" अस्थि प्रतिहारः। जै० उ० १। ३६। ६॥

" (प्रजापतिः) प्रतिहारमारण्येभ्यः पशुभ्यः (प्रायच्छत्)। जै० उ० १। ११। ६॥

" दिशो ऽवान्तरदिश आकाश एष प्रतिहारः। जै० उ० १। १६। २॥

" अथ यदमुष्यां दिशि (दिवि) तत्सर्वम्प्रतिहारेणाप्नोति। जै० उ० १। ३१। ७॥

प्रतीकम् मुखं प्रतीकम् । श० १४ । ४ । ३ । ७ ॥

प्रतीची दिक् मनुष्याणां वा एषा दिग्यत्प्रतीची । ष० ३ । १ ॥

" प्रतीच्यध्वर्योः (दिक्) । श० १२ । ५ । ४ । २४ ॥

" यत्पश्चाद्वासि वरुणो राजा भूतो वासि (प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकुः (=सर्पविशेषः) रक्षिता—अथर्ववेदे ३ । २७ । ३ ॥) । जै० उ० ३ । २१ । २ ॥

" या प्रतीची (दिक्) सा सर्पाणाम् । श० ३ । १ । १ । ७ ॥

" प्रतीची दिक् । सोमो देवता । तै० ३ । ११ । ५ । २ ॥

" (हे देवा यूयं) सोमेन प्रतीचीं (दिशं प्रजानाथ) । ऐ० १ । ७ ॥

" (वायुः) यत्पश्चाद्वाति पवमान एव भूत्वा पश्चाद्वाति । तै० २ । ३ । ९ । ६ ॥

" स (सविता) प्रतीचीं दिशं प्राजानात् । कौ० ७ । ६ ॥

" प्रतीचीमेव दिशꣳ सवित्रा प्राजानन् । श० ३ । २ । ३ । १८ ॥

" तस्मादुत्तरतः पश्चादयं भूयिष्ठं पवमानः (=वायुः) पवते सवितृप्रसूतो ह्येष एतत्पवते । ऐ० १ । ७ ॥

" अथैनं (इन्द्रं) प्रतीच्यां दिश्यादित्या देवाः...अभ्यषिञ्चन् ...स्वाराज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥

" आदित्यास्त्वा पश्चादभिषिञ्चन्तु जागतेन छन्दसा । तै० २ । ७ । १५ । ५ ॥

" जगती प्रतीची दिक् । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥

" प्रतीचीमारोह । जगती त्वावतु वैरूपꣳ साम सप्तदशस्तोमो वर्षा ऋतुर्विड् द्रविणम् । श० ५ । ४ । १ । ५ ॥

" विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा । श० ५ । २ । ४ । ५ ॥

" अथर्वणामङ्गिरसां प्रतीची (दिक्) । तै० ३ । १२ । ९ । १ ॥

" उशनसा काव्येन (उशनाश्च दीक्षामहा इति) असुराः

पश्चात् (आगच्छन्) । जै० उ० २ । ७ । २ ॥

प्रतीची दिक् तस्मादु ह न प्रतीचीनशिराः शयीत । नेद्देवानभिप्रसार्य शयाऽ इति । श० ३ । १ । १ । ७ ॥

" वारणं (शङ्कुं) पश्चाद्घं मे वारयाताऽ इति । श० १३ । ८ । ४ । १ ॥

" प्रतीच्येव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥

" तस्माद्धेदं प्रत्यञ्चि दीर्घारण्यानि भवन्ति । ऐ० ३ । ४४ ॥ गो० उ० ४ । १० ॥

,, तस्मादेतस्यां प्रतीच्यां दिशि ये के च नीच्यानां राजानो ये ऽपाच्यानां स्वाराज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते स्वराडित्ये-नानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥

प्रतीचीनेडम् (साम) पराचीभिर्वा अन्याभिरिडाभीरेतो दधदेत्यथैत-त्प्रतीचीनेडङ्कशीतं प्रजात्यै । तां० १५ । ५ । १६॥

प्रतूर्तम् (यजु० ११ । १२) यद्वै क्षिप्रं तत्तूर्तमथ यत्क्षिप्रात्क्षेपीयस्त-त्प्रतूर्तम् । श० ६ । ३ । २ । २ ॥

प्रतूर्तिरष्टादश: (यजु०१४ । २ । ३) संवत्सरो वाव प्रतूर्तिरष्टादशस्तस्य द्वादश मासाः पञ्चऽर्तवः संवत्सर एव प्रतूर्तिरष्टादशस्त-द्यत्तमाह प्रतूर्तिरिति संवत्सरो हि सर्वाणि भूतानि प्रतिरति । श० ८ । ४ । १ । १३ ॥

प्रतूर्वन् (यजु० ११ । १५) (=त्वरमाणः) प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्तीरिति पाप्मा वाऽ अशस्तिस्त्वरमाण एह्यवक्रामन् पाप्मानमित्येत् । श० ६ । ३ । २ । ७ ॥

प्रत्नम् (यजु० ११ । ४८) (=सनातनम्) अयं वो गर्भ ऋत्वियः प्रत्नꣳ सधस्थमासददित्ययं वो गर्भ ऋतव्यः सनातनꣳ सध-स्थमासददित्येतत् । श० ६ । ४ । ४ । १७ ॥

प्रत्यक्षम् प्रत्यक्षं वै तद्यत्पश्यति । श० ८ । २ । १ । ६ ॥

प्रत्याश्रावणम् अथ यत्प्रत्याश्रावयति यज्ञऽ एवैतदुपावर्त्तते ऽस्तु तथेति । श० १ । ५ । २ । ७ ॥

प्रत्याश्रावितम् अपानः प्रत्याश्रावितम् । तै० २ । १ । ५ । ६ ॥

प्रथमा चितिः अयमेव (भू–) लोकः प्रथमा चितिः । श०८ । ७ । ४ । १२॥

प्रथमा चितिः यैवेयं प्रतिष्ठा यश्चायमवाङ् प्राणस्तत्प्रथमा चितिः। श० ८।७।४।१६॥

प्रदरः प्रह्लादो वै कायाधवः। विरोचनं स्वं पुत्रमुदास्यत्। स प्रदरोऽभवत्। तस्मात्प्रदरादुदकं नाऽऽचामेत्। तै० १।५।१०।७॥

प्रदाता इन्द्रो वै प्रदाता स एवास्मै यज्ञं प्रयच्छति। कौ० ४।२॥

प्रदाव्यः एष ह वा अग्निर्वैश्वानरो यत्प्रदाव्यः। गो० उ० ४।८॥

प्रप्रोथाः (सोमस्य ह्रियमाणस्य) यत्प्राप्रोथन्त प्रप्रोथाः। तां० ८। ४।१॥

प्रभूतिः (=प्राणः) प्राणं वा अनु प्रजाः पशवः प्रभवन्ति। जै० उ० २। ४।६॥

प्रमंहिष्ठीयम् (साम) प्रमꣳहिष्ठीयेन वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्रावर्त्तयत्तमस्तृणुत। तां० १२।६।६॥

प्रमा (यजु० १४।१८) अन्तरिक्षलोको वै प्रमान्तरिक्षलोको ह्यस्माल्लोकात्प्रमित इव। श० ८।३।३।५॥

प्रमायुकः एष ह वै प्रमायुको यो ऽन्धो वा बधिरो वा। श० १२।२। २।४॥ गो० पू० ४।२०॥

प्रम्लोचन्ती (यजु० १५।१७) (आदित्यस्य) प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसाविति दिक् चोपदिशा चेति ह स्माह माहित्थिरहोरात्रे तु ते, ते हि प्र च म्लोचतो ऽनु च म्लोचतः। श० ८।६।१।१८॥

प्रयाजाः तस्रो देवाः। अर्चन्तः श्राम्यन्तश्चेरुस्तऽ एतान्प्रयाजान् ददृशुस्तैरयजन्त तैर्ऋतूनसंवत्सरं प्राजयन्नृतुभ्यः संवत्सरात्सपत्नानन्तरायँस्तस्मात्प्रजयाः, प्रजया ह वै नामैतद्यत्प्रयाजा इति। श० १।५।३।३॥

" ते (प्रयाजाः) याऽ आज्यहविषो भवन्ति। श० १।५ ३।४॥

" ऋतवो ह वै प्रयाजाः। तस्मात्पञ्च (प्रयाजाः) भवन्ति पञ्च ह्यृतवः। ० १।५।३।१॥

" ऋतवो हि प्रयाजाः। श० १।३।२।८॥

" ऋतवो वै प्रयाजाः। कौ० ३।४॥

प्रयाजाः प्रयाजाः प्राञ्चो हूयन्ते तद्धि प्राणरूपम् । श० ११ । २ । ७ । २७ ॥

„ य इमे शीर्षन्प्राणास्ते प्रयाजाः । ऐ० १ । १७॥

„ प्राणा वै प्रयाजाः । ऐ० १ । ११ ॥ कौ० ७ । १ ॥ १० । ३ ॥ श० ११ । २ । ७ । २७ ॥

„ रेतःसिच्यं वै प्रयाजाः । कौ० १० । ३ ॥

„ पशवो वै प्रयाजाः । कौ० ३ । ४ ॥

प्रयाजानुयाजाः प्राणा वै प्रयाजानुयाजाः । श० १४ । २ । २ । ५१ ॥

„ ऋतवो वै प्रयाजानुयाजाः । कौ० १ । ४ ॥

„ प्रयाजानुयाजा वै देवा आज्यपाः । श० १ । ४ । २ । १७॥ १ । ७ । ३ । ११ ॥

प्रवतः शश्वतीरपः संवत्सरो वै प्रवतः शश्वतीरपः । तां० ४ । ७ । ६ ॥

प्रवर्ग्यः अथ यत् प्रावृज्यत तस्मात्प्रवर्ग्यः । श० १४ । १ । १ । १० ॥

„ तं न सर्वस्माऽ इव प्रवृञ्ज्यात् । सर्वं वै प्रवर्ग्यः । श० १४ । २ । २ । ४६ ॥

„ तस्य (मखस्य=विष्णोः) धनुरार्त्निरूर्द्ध्वा पतित्वा शिरोऽच्छिनत्स प्रवर्ग्यो ऽभवत् । तां० ७ । ५ । ६ ॥

„ इमे वै लोकाः प्रवर्ग्यः । श० १४ । ३ । २ । २३ ॥

„ अग्निर्वायुरादित्यस्तदेते प्रवर्ग्याः । श० ९ । २ । १ । २१ ॥

„ एता वै देवताः प्रवर्ग्यः । अग्निर्वायुरादित्यः । श० १४ । ३ । २ । २४ ॥

„ एष (आदित्यः) उ प्रवर्ग्यः । श० १४ । १ । १ । २७ ॥

„ आदित्यः प्रवर्ग्यः । श० १० । २ । ५ । ४ ॥

„ अथ यत्प्रवर्ग्येण यजन्ते । आदित्यमेव देवतां यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । ५ ॥

„ एष (वायुः) उ प्रवर्ग्यः । श० १४ । २ । १ । ८ ॥

„ संवत्सरो वै प्रवर्ग्यः । श० १४ । ३ । २ । २२ ॥

„ अग्निहोत्रं वै प्रवर्ग्यः । । श० १४ । ३ । २ । २६ ॥

„ यजमानो वै प्रवर्ग्यः । श० १४ । ३ । २ । २५ ॥

„ शिरः प्रवर्ग्यः । श० ३ । ४ । ४ । १ ॥ १४ । २ । १ । ५ ॥ १४ । ३ । १ । १६ ॥

प्रवर्ग्यः शिर एतद्यज्ञस्य यत्प्रवर्ग्यः । श० ६ । २ । १ । २२ ॥
„ शिरो ह वा एतद्यज्ञस्य यत्प्रवर्ग्यः । गो० उ० २ । ६ ॥
„ सम्राट् प्रवर्ग्यः । श० १४ । १ । ३ । १२ ॥
('घर्मः' शब्दमपि पश्यत)

प्रवह्लिकाः (ऋचः) प्रवह्लिकाभिर्वै देवा असुरान्प्रवह्याथैनानत्यायन् । ऐ० ६ । ३३ ॥
„ तद्यथाभिर्हं वै देवा असुराणां रसान् प्रवत्रहुस्तस्मात्प्रवह्लिकाः । तत्प्रवह्लिकानां प्रवह्लिकात्वम् । गो० उ० ६ । १३ ॥

प्र वो वाजाः ऋतव एव प्र वो वाजाः । गो० पू०५ । २३ ॥

प्रष्टिवाही प्रष्टिवाही वै दैवरथः । तै० १ । ३ । ६ । ४ ॥ १ । ७ । ९ । १ ॥

प्रस्तरः अयं वै स्तुपः (=ऊर्ध्वंबद्धकेशसंघातात्मक इति सायणः) प्रस्तरः । श० १ । ३ । ३ । ७, १२ ॥ १ । ३ । ४ । १० ॥
„ यज्ञो वै प्रस्तरः । श० ३ । ४ । ३ । १९ ॥
„ यजमानो वै प्रस्तरः । ऐ० २ । ३ ॥ श० १ । ८ । १ । ४४ ॥ १ । ८ । ३ । ११, १४, १६ ॥ तै० ३ । ३ । ६ । ७, ८ ॥ ३ । ३ । ९ । २, ३ ॥ तां० ६ । ७ । १७ ॥
„ क्षत्रं वै प्रस्तरः । श० १ । ३ । ४ । १० ॥

प्रस्तावः मुखꣳ हि साम्नः प्रस्तावः । तां० १२ । १० । ७ ॥
„ अग्निर्वायुरसावादित्य एष प्रस्तावः । जै० उ० १ । १९ । २ ॥
„ अर्धोदितः (आदित्यः) प्रस्तावः । जै० उ० १ । १२ । ४ ॥
„ अग्निः प्रस्तावः । जै० उ० १ । ३३ । ५ ॥
„ ग्रीष्मः प्रस्तावः । ष० ३ । १ ॥
„ (प्रजापतिः) ग्रीष्मꣳप्रस्तावम्(अकरोत्) । जै० उ० १ । १२ । ७॥
„ अर्द्धमासाः प्रस्तावः । ष० ३ । १ ॥
„ (प्रजापतिः) जीमूतान् प्रस्तावम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १३ । १ ॥
„ त्वक् प्रस्तावः । जै० उ० १ । ३६ । ६ ॥
„ (चक्षुषः) कृष्णं प्रस्तावः । जै० उ० १ । ३४ । १ ॥
„ मण्डलꣳप्रस्तावः । जै० उ० १ । ३३ । ९ ॥

प्रस्ताव: अनिरुक्तो वै प्रस्तावः । जै० उ० १ । ३५ । ३ ॥

" (प्रजापतिः) ऋचः प्रस्तावम् (अकरोत्)। जै० उ० १ । १३ । ३ ॥

" (प्रजापतिः) वाचं प्रस्तावम् (अकरोत्)। जै० उ० १ । १३ । ५ ॥

" (प्रजापतिः) प्रस्तावम्मनुष्येभ्यः (प्रायच्छत्)। जै० उ० १ । ११ । ६ ॥

" यद्दक्षिणायां दिशि तत्सर्वं प्रस्तावेनाप्नोति । जै० उ० १ । ३१ । ४ ॥

प्रस्तोता अपानः प्रस्तोता । कौ० १७ । ७ ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥

प्रह्लाद: प्रह्लादो वै कायाधवः । विरोचनं स्वं पुत्रमुदास्यत् । स प्रदरोऽभवत् । तै० १ । ५ । १० । ७ ॥

" प्रह्लादो ह वै कायाधवो विरोचनꣳ स्वं पुत्रमपन्यधत्त । नेदेनं देवा अहनन्निति । तै० १ । ५ । ९ । १ ॥

प्राची दिक् प्राचीमेव दिशम् । अग्निना प्राजानन् । श० ३ । २ । ३ । १६ ॥

" स (अग्निः) प्राचीं दिशं प्राजानात् । कौ० ७ । ६ ॥

" प्राची हि दिगग्नेः । श० ६ । ३ । ३ । २ ॥

" प्राची दिक् । अग्निर्देवता । तै० ३ । ११ । ५ । १ ॥

" अग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा । श० ५ । २ । ४ । ५ ॥

" यत्पुरस्ताद्वासीन्द्रो राजा भूतो वासि । जै० उ० ३ । २१ । २ ॥

" (हे देवा ! यूयं) मयैव (पथ्यया) प्राचीं दिशं प्रजानाथ । ऐ० १ । ७ ॥

" यत्पथ्यां (=अदितिं) यजति तस्मादसौ (आदित्यः) पुर उदेति पश्चाऽस्तमेति पथ्यां ह्येषो ऽनुसंचरति । ऐ० १ । ७ ॥

" प्राचोमावर्त्तयति । देवलोकमेव तेन जयति । तै० २ । १ । ८ । १ ॥ ३ । २ । १ । ३ ॥

" पुरस्ताद्वै देवाः प्रत्यञ्चो मनुष्यानभ्युपावृत्तास्तस्मात्तेभ्यः प्राङ् तिष्ठन्जुहोति । श० २ । ६ । १ । ११ ॥

" प्राची हि देवानां दिक् । श० १ । २ । ५ । १७ ॥

" देवानां वा एषा दिग्यत्प्राची । ष० ३ । १ ॥

प्राची दिक् अथैनं (इन्द्रं) प्राच्यां दिशि वसवो देवाः...अभ्यषिञ्चन्... साम्राज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥

,, वसवस्त्वा पुरस्तादभिषिञ्चन्तु गायत्रेण छन्दसा । तै० २ । ७ । १५ । ५ ॥

,, प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरꣳ साम त्रिवृत्स्तोमो वसन्त ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् । श० ५ । ४ । १ । ३ ॥

,, गायत्री वै प्राची दिक् । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥

,, स (वायुः) युत्पुरस्ताद्वाति । प्राण एव भूत्वा पुरस्ताद्वाति । तस्मात्पुरस्ताद्वान्तं सर्वाः प्रजाः प्रतिनन्दन्ति । तै० २ । ३ । ६ । ४—५ ॥

,, अनभिजिता वा एषोद्गातॄणां दिग्यत् प्राची । तां० ६ । ५ । २० ॥

,, तं (शर्यातं [? शर्यातिं] मानवं) देवा बृहस्पतिनोद्गात्रा दीक्षामहा इति पुरस्तादागच्छन् । जै० उ० २ । ७ । २ ॥

,, तस्य साम्न इयमेव प्राची दिग्घिङ्कारः । जै० उ० १ । ३१ । २ ॥

,, प्राची दिग्घोतुः । श० १३ । ५ । ४ । २४ ॥

,, ऋचां प्राची महती दिगुच्यते । तै० ३ । १२ । ६ । १ ॥

,, प्राञ्चो ऽन्य ऋत्विज आर्त्विज्यं कुर्वन्ति तस्मादेषा दिशां वीर्यवत्तमैताꣳ हि भूयिष्ठाः प्रीणन्ति । तां० ६ । ४ । १४ ॥

,, तेजो वै ब्रह्मवर्चसं प्राची दिक् । ऐ० १ । ८ ॥

,, पालाशं (शङ्कुं) पुरस्ताद्, ब्रह्म वै पलाशः । श० १३ । ८ । ४ । १ ॥

,, तस्मादिमाः प्रजाः प्राच्यः सर्पन्ति । श० ११ । १ । ६ । २१ ॥

,, दीक्षितस्यैव प्राचीनवꣳशा (शाला) नादीक्षितस्य । श० ३ । १ । १ । ७ ॥

,, प्राच्येव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, तस्माद्धेदं प्राच्यो ग्रामता बहुलाविष्टाः । ऐ० ३ । ४४ ॥ गो० उ० ४ । १० ॥

,, तस्मादेतस्यां प्राच्यां दिशि ये के च प्राच्यानां राजानः साम्राज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते सम्राडित्येनानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥

प्राजापत्यो यज्ञ: प्राजापत्येनैव यज्ञेन यजते कामप्रेण । अपुनर्मारं (=पुनर्मरणरहितामवस्थाम्) एव गच्छति । तै० ३ । ६ । २२ । ४ ॥

प्राण: यद्वै प्राणेनान्नमात्मन्प्रणयते तत्प्राणस्य प्राणत्वम् । श० १२ । ६ । १ । १४ ॥

" प्रेति ('प्र' इति) वै प्राण एति ('आ' इति) उदान: । श० १ । ४ । १ । ५ ॥

" उद्यन्नु खलु वा आदित्य: सर्वाणि भूतानि प्रणयति तस्मादेनं प्राण इत्याचक्षते । ऐ० ५ । ३१ ॥

" तदसौ वा आदित्य: प्राण: । जै० उ० ४ । २२ । ९ ॥

" आदित्यो वै प्राण: । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥

" उद्यत इव ह्ययं प्राण: । ष० २ । २ ॥

" प्राणो वाऽ अर्क: । श० १० । ४ । १ । २३ ॥ १० । ६ । २ । ७ ॥

" प्राणो वै सविता । ऐ० १ । १९ ॥

" प्राणो ह वाऽ अस्य सविता । श० ४ । ४ । १ । ५ ॥

" प्राण एव सविता । श० १२ । ९ । १ । १६ ॥ गो० पू० १ । ३३ ॥

" प्राणो वै सावित्रग्रह: । कौ० १६ । २ ॥

" प्राण: सोम: । श० ७ । ३ । १ । २ ॥

" प्राण: (यज्ञस्य) सोम: । कौ० ९ । ६ ॥

" प्राणो हि सोम: । तां० ९ । ६ । १, ५ ॥

" प्राणो वै सोम: । श० ७ । ३ । १ । ४५ ॥

" चन्द्रमा वै प्राण: । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥

" प्राणो वाऽ अग्नि: । श० २ । २ । २ । १५ ॥ ६ । ५ । १ । ६८ ॥

" तदग्निर्वै प्राण: । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥

" प्राणा अग्नि: । श० ६ । ३ । १ । २१ ॥ ६ । ८ । २ । १० ॥

" ते वाऽ एते प्राणा एव यद् (आहवनीयगार्हपत्यान्वाहार्यपचनाख्या:) अग्नय: । श० २ । २ । २ । १८ ॥

" प्राणो ऽमृतं तद्ध्यग्ने रूपम् । श० १० । २ । ६ । १८ ॥

" अमृतमु वै प्राणा: । श० ६ । १ । २ । ३२ ॥

" प्राणो वै जातवेदा: स हि जातानां वेद । ऐ० २ । ३९ ॥

प्राणः वायुर्वै प्राणः । कौ० ८ । ४ ॥ जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥
,, वायुर्हि प्राणः । ऐ० २ । २६ ॥ ३ । २ ॥
,, प्राणो हि वायुः । तां० ४ । ६ । ८ ॥
,, प्राणो वै वायुः । कौ० ५ । ८ ॥ १३ । ५ ॥ ३० । ५ ॥ श० ४ । ४ । १ । १५ ॥ ६ । २ । २ । ६ ॥ गो० उ० १ । २६ ॥
,, प्राणा उ वा वायुः । श० ८ । ४ । १ । ८ ॥
,, यः स प्राणो ऽयमेव स वायुर्यो ऽयं पवते । श० १० । ३ । ३ । ७॥
,, यस्स प्राणो वायुस्सः । जै० उ० १ । २८ । १ ॥
,, सा ऽयं (वायुः) पुरुषे ऽन्तः प्रविष्टस्त्रेधा विहितः प्राण, उदानो व्यान इति । श० ३ । १ । २ । २० ॥
,, स (वायुः) यत्पुरस्ताद्वाति प्राण एव भूत्वा पुरस्ताद्वाति । तै० २ । ३ । ९ । ४—९ ॥
,, वायुर्मे प्राणे श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ४ ॥
,, प्राणापानौ मे श्रुतम्मे । तन्मे त्वयि (वायौ) । जै० उ० ३ । २१ । १० ॥
,, विच्छन्दाश्छन्दो वायुर्देवता प्राणाः । श० १० । ३ । २ । १२ ॥
,, यो वै प्राणः स वातः । श० ५ । २ । ४ । ९ ॥
,, प्राणो वै वातः । श० १ । १ । २ । १४ ॥
,, प्राणा वै वातहोमाः । श० ९ । ४ । २ । १० ॥
,, प्राणो मातरिश्वा । ऐ० २ । ३८ ॥
,, प्राणा वै मारुताः । श० ९ । ३ । १ । ७ ॥
,, प्राणो वै मरुतः स्वापयः । ऐ० ३ । १६ ॥
,, प्राणो वनस्पतिः । कौ० १२ । ७ ॥
,, प्राणो वै वनस्पतिः । ऐ० २ । ४, १० ॥
,, यः प्राणः स वरुणः । गो० उ० ४ । ११ ॥
,, कतमे रुद्रा इति । दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशः । श० ११ । ६ । ३ । ७ ॥
,, प्राणा वै रुद्राः । प्राणा हीदं सर्वं रोदयन्ति । जै० उ० ४ । २ । ६ ॥
,, प्राणा वै वसवः । तै० ३ । २ । ३ । ३ ॥ ३ । २ । ५ । २ ॥

प्राणः प्राणा वै वसवः । प्राणा हीदं सर्वं वस्वाददते । जै० उ० ४ । २ । ३ ॥

" प्राणो वै मित्रः (यजु० ११ । ५३ ॥ १४ । २४) । श० ६ । ५ । १ । ५ ॥ ८ । ४ । २ । ६ ॥ १२ । ६ । २ । १२ ॥

" प्राणो वै हरिः स हि हरति । कौ० १७ । १ ॥

" प्राणा वै साध्या देवाः (यजु० ३१ । १६) तऽ एतं (प्रजापतिं) अग्रऽ एवमसाधयन् । श० १० । २ । २ । ३ ॥

" प्राणा वै देवा द्रविणोदाः (यजु० १२ । २ ॥) । श० ६ । ७ २ । ३ ॥

" प्राणा वै देवा धिष्ण्यास्ते हि सर्वा धिय इष्णन्ति । श० ७ १ । १ । २४ ॥

" प्राणा धियः । श० ६ । ३ । १ । १३ ॥

" प्राणा वै देवा वयोनाधाः (यजु० १४ । ७ ॥) प्राणैर्हीदं सर्वं वयुनं नद्धम् । श० ८ । २ । २ । ८ ॥

" प्राणा वै देवा अपाव्याः । तै० ३ । ८ । १७ । ५ ॥

" तस्मात्प्राणा देवाः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥

" प्राणा देवाः । श० ६ । ३ । १ । १५ ॥

" प्राणा वै विश्वे देवाः (यजु० ३८ । १५) । श० १४ । २ । २ । ३७ ॥

" प्राणा वा ऋषयः (यजु० १५ । १० ॥) । ऐ० २ । २७ ॥ श० ६ । १ । १ । १ ॥ ८ । ६ । १ । ५ ॥ १४ । ५ । २ । ५ ॥

" प्राणा उ वाऽ ऋषयः । श० ८ । ४ । १ । ५ ॥

" प्राणा ऋषयः । श० ७ । २ । ३ । ५ ॥

" प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः (यजु० १३ । ५४) । श० ८ । १ १ । ६ ॥

" तदन्नं वै विश्वस्प्राणो मित्रम् । जै० उ० ३ । ३ । ६ ॥

" प्राणा वालखिल्याः । कौ० ३० । ८ ॥ ऐ० ६ । २६ ॥

" प्राणा वै वालखिल्याः । ऐ० ६ । २८ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥

" यदि वालखिल्याः (ऋचः) प्राणानस्यांतरियात् । ऐ० ५ । १५ ॥

" वालमात्रादु हेमे प्राणा असम्भिन्नास्ते यद्वालमात्रादसम्भिन्ना-स्तस्माद्वालखिल्याः । श० ८ । ३ । ४ । १ ॥

प्राणः वालमात्रा उ हेमे प्राणा असंभिन्नास्तद्यदसंभिन्नास्तस्माद्वाल-खिल्याः । कौ० ३० । ८ ॥

,, प्राणो वाऽ ऋक् प्राणेन ह्यर्चति । श० ७ । ५ । २ । १२ ॥

,, प्राण एव यजुः । श० १० । ३ । ५ । ४ ॥

,, प्राणो वै यजुः प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि युज्यन्ते । श० १४ । ८ । १४ । २ ॥

,, प्राणा वै गयाः । श० १४ । ८ । १५ । ७ ॥

,, प्राणा रश्मयः । तै० ३ । २ । ५ । २ ॥

,, प्राणा वै सुरभयः । तै० ३ । ६ । ७ । ५ ॥

,, प्राणो वै वयः (ऋ० ३ । २९ । ८) ऐ० १ । २८ ॥

,, प्राणापानौ वा अक्षरपङ्क्तयः । कौ० १६ । ८ ॥

,, प्राणो वै हितं प्राणो हि सर्वेभ्यो भूतेभ्यो हितः । श० ६ । १ २ । १४ ॥

,, प्राणो वै होता । ऐ० ६ । ८, १४ ॥ गो० उ० ५ । १४ ॥

,, अथ यै हविष्पङ्क्तिः प्राण एव । कौ० १३ । २ ॥

,, प्राणा एव सप्तमी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । २१ ॥

,, प्राणा वै सत्यम् । श० १४ । ५ । १ । २३ ॥

,, प्राणो महाव्रतम् । श० १० । १ । २ । ३ ॥

,, प्राणा वै महिषाः (यजु० १२ । २०) । श० ६ । ७ । ४ । ५ ॥

,, प्राण एव महान् । श० १० । ४ । १ । २३ ॥

,, प्राणा एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, प्राणो महः । श० १२ । ३ । ४ । १० ॥

,, प्राणो वै संवत्सरः । तां० ५ । १० । ३ ॥

,, प्राणा वै सजाताः प्राणैर्हि सह जायते । श० १ । ६ । १ । १५ ॥

,, प्राणा वै सीताः । श० ७ । २ । ३ । २ ॥

,, प्राणो वै सिन्धुश्छन्दः (यजु० १५ । ४) । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

,, एष (यो ऽयं दक्षिणे ऽक्षन्पुरुषो मृत्युनामा सः) उ एव प्राणः । एष हीमाः सर्वाः प्रजाः प्रणयति तस्यैते प्राणाः स्वाः स यदा स्वपित्यथैनमेते प्राणाः स्वा अपियन्ति तस्मात्स्वाप्ययः स्वाप्ययो ह वै तꣳ स्वप्न इत्याचक्षते परोऽक्षम् । श० १० । ५ । २ । १४॥

प्राणः सर्वे ह वाऽ एते स्वपतोऽपक्रामन्ति प्राण एव न। श० ३।२।२।२३॥

„ तदाहुः को ऽस्वप्तुमर्हतीति यद्वाव प्राणो जागार तदेव जागरितमिति। तां० १०।४।४॥

„ प्राणो वै स्वयमातृण्णा (इष्टका) प्राणो ह्येवैतत्स्वयमात्मन आतृन्ते। श० ७।४।२।२॥

„ प्राणो वै स्वयमातृण्णा (इष्टका)। श० ८।७।२।११॥

„ प्राणा वै स्वाशिरः। तां० १४।११।९॥

„ प्राणा वै वामम्। श० ७।४।२।३५॥

„ प्राणो वाऽ अस्य (यजमानस्य) सा रम्या तनूः। श० ७।४।१।१६॥

„ प्राणो वै युवा सुवासाः (ऋ० ३।८।४)। ऐ० २।२॥

„ योऽयमनिरुक्तः प्राणः स सुरूपकृत्नुः। कौ० १९।४॥

„ प्राणो वै सुसन्दृक्। तै० १।६।६।६॥

„ प्राणो वै सुशर्मा सुप्रतिष्ठानः। श० ४।४।१।१४॥

„ प्राणो वै सूददोहाः। श० ७।१।१।२६॥

„ प्राणः सूददोहाः। श० ७।१।१।१५॥ ७।३।१।४५॥

„ प्राणः स्रुचः। श०।६।३।१।८॥

„ प्राणो वै स्रुवः। तै० ३।३।१।५॥

„ प्राण एव स्रुवः सोऽयं प्राणः सर्वाण्यङ्गान्यनुसञ्चरति। तस्मादु स्रुवः सर्वा अनु स्रुचः सञ्चरति। श० १।३।२।३॥

„ प्राणाः शिक्यं प्राणैर्ह्ययमात्मा शक्नोति स्थातुं यच्छक्नोति तस्माच्छिक्यम्। श० ६।७।१।२०॥

„ प्राणा वै शाकलाः। श० १४।२।२।३१॥

„ प्राणाः शाकलाः। श० १४।२।२।५१॥

„ प्राणाः शिल्पानि। कौ० २५।१२, १३॥

„ प्राणो वै मधु (यजु० ३७।१३)। श० १४।१।३।३०॥

„ प्राणो वै रं प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि रतानि। श० १४।८।१३।३॥

प्राणः प्राणा वै दश वीराः (यजु० १६ । ४८ ॥) । श० १२ । ८ । १ । २२ ॥

„ प्राणो वै दिवः । श० ६ । ७ । ४ । ३ ॥

„ प्राणा वै ग्रहाः । श० ४ । २ । ४ । १३ ॥ ४ । ५ । ९ । ३ ॥

„ प्राणो वै ज्योतिः (यजु० १४ । १७) । श० ८ । ३ । २ । १४ ॥

„ प्राणो वै विश्वज्योतिः (इष्टका) । श० ७ । ४ । २ । २८ ॥ ८ । ३ । २ । १४ ॥ ८ । ७ । १ । २२ ॥

„ प्राणो वै हिरण्यम् । श० ७ । ५ । २ । ८ ॥

„ प्राणो वै रुक् (यजु० १३ । ३९) प्राणेन हि रोचते । श० ७ । ५ । २ । १२ ॥

„ प्राणो वाव कः । जै० उ० ४ । २३ । ४ ॥

„ प्राणो हि प्रजापतिः । श० ४ । ५ । ५ । १३ ॥

„ प्राणा उ वै प्रजापतिः । श० ८ । ४ । १ । ४ ॥

„ प्राणः प्रजापतिः । श० ६ । ३ । १ । ९ ॥

„ तस्मादु प्रजापतिः प्राणः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥

„ अथ यस्स प्राण आसीत्स प्रजापतिरभवत् । जै० उ० २ । २ । ६॥

„ अथ य एतदन्तरेण प्राणः संचरति स एव सप्तदशः प्रजापतिः । श० १० । ४ । १ । १७ ॥

„ प्राजापत्यः प्राणः । तै० ३ । ३ । ७ । २ ॥

„ प्राणो वै कूर्मः प्राणो हीमाः सर्वाः प्रजाः करोति । श० ७ । ५ । १ । ७ ॥

„ प्राणो हि वै क्षत्रं त्रायते हैनं प्राण क्षणितोः । श० १४ । ८ । १४ । ४ ॥

„ प्राणो वै तनूनपात् स हि तन्वं पाति । ऐ० २ । ४ ॥

„ प्राणो वै गोपाः । स हीदं सर्वमनिपद्यमानो गोपायति । जै० उ० ३ । ३७ । २ ॥

„ प्राणो वै पिता । ऐ० २ । ३८ ॥

„ प्राणो वै नृषद् (यजु० १२ । १४ ॥ १७ । १२ ॥) । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥ ९ । २ । १ । ८ ॥

„ तस्या एतस्यै वाचः प्राणा एवाऽसुः । जै० उ० १ । ४० । ७ ॥

प्राणः प्राणो वाऽ असुः । श० ६ । ६ । २ । ६ ॥
„ प्राणो वाऽ अङ्गिराः । श० ६ । ५ । २ । ३, ४ ॥
„ प्राणा इन्द्रियाणि । तां० २ । १४ । २ ॥ २२ । ४ । ३ ॥
„ (=मुखाद्यवयवाः); स (सोमः) अस्य (इन्द्रस्य) विष्वङ्ङेव प्राणेभ्यो दुद्राव मुखाद्धैवास्य न दुद्रावाथ सर्वेभ्यो ऽन्येभ्यः प्राणेभ्यो ऽद्रवत् । श० १ । ६ । ३ । ७ ॥
„ प्राणो वै समञ्चनप्रसारणं यस्मिन्वाऽ अङ्गे प्राणो भवति तत्सं चाञ्चति प्र च सारयति । श० ८ । १ । ४ । १० ॥
„ प्राणो वाऽ अर्णवः (यजु० १३ । ५३ ॥) । श० ७ । ५ । २ । २१॥
„ अन्नꣳ हि प्राणाः । श० ४ । ३ । ४ । २५ ॥
„ अन्नꣳ हि प्राणः । श० २ । २ । १ । ६ ॥
„ अन्नं प्राणः । कौ० २५ । १३ ॥
„ प्राणो वै भक्षः । श० ४ । २ । १ । २९ ॥
„ प्राणो वै सखा भक्षः । श० १ । ८ । १ । २३ ॥
„ प्राण एष स पुरि शेते सं पुरि शेत इति पुरिशयं सन्तं प्राणं पुरुष इत्याचक्षते । गो० पू० १ । ३९ ॥
„ प्राणो वै पतङ्गः (ऋ० १० । १७७ । १ ॥) । कौ० ८ । ४ ॥ जै० उ० ३ । ३५ । २ ॥ ३ । ३६ । २ ॥
„ प्राणा वै प्रतिरवाः (यजु० ३८ । १५) प्राणान्हीदꣳ सर्वं प्रतिरतम् । श० १४ । २ । २ । ३४ ॥
„ (प्रजापतिः) प्राणमुद्गीथम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १३ । ५॥
„ एष वशी दीप्ताग्र उद्गीथो यत्प्राणः । जै० उ० २ । ४ । १ ॥
„ प्राणो वै यज्ञस्योद्गाता । श० १४ । ६ । १ । ८ ॥
„ प्राण उद्गाता । कौ० १७ । ७ ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥
„ ते य एवेमे मुख्याः प्राणा एत एवोद्गातारश्चोपगातारश्च । जै० उ० १ । २२ । ५ ॥
„ प्राणः सामवेदः । श० १४ । ४ । ३ । १२ ॥
„ स यः प्राणस्तत्साम । जै० उ० १ । २५ । १० ॥
„ तस्मात्प्राण एव साम । जै० उ० ३ । १ । १८ ॥
„ प्राणो वै साम प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि सम्यञ्चि । श० १४ । ८ । १४ । ३ ॥

प्राणाः प्राणा वै सामानि । श० ६ । १ । २ । ३२ ॥

" प्राणो वाव साम्नस्सुवर्णम् । जै० उ० १ । ३६ । ४ ॥

" प्राणो वै वामदेव्यम् । श० ६ । १ । २ । ३८ ॥

" प्राणो वै हिङ्कारः । श० ४ । २ । २ । ११ ॥

प्राणो हि वै हिङ्कारस्तस्मादपिगृह्य नासिके न हिङ्कर्तुंꣳ शक्नोति । श० १ । ४ । १ । २ ॥

" प्राणो वै स्वरः । तां० २४ । ११ । ६ ॥

" प्राणाः स्वरः । तां० ७ । १ । १० ॥ १७ । १२ । २ ॥

" प्राणाः स्वरसामानः । तां० २४ । १४ । ४ ॥ २५ । १ । ८ ॥

" प्राणो वै स्तवः । कौ० ८ । ३ ॥

" प्राणा वै स्तोमाः । श० ८ । ४ । १ । ३ ॥

" प्राणो वै वषट्कारः । श० ४ । २ । १ । २९ ॥

" प्राणा वै स्वाहाकृतयः । कौ० १० । ५ ॥

" प्राणोऽसौ (द्यु-) लोकः । श० १४ । ४ । ३ । ११ ॥

" प्राणो भरतः । ऐ० २ । २४ ॥

" एष (अग्निः) उ वाऽ इमाः प्रजाः प्राणो भूत्वा बिभर्त्ति तस्माद्वेवाह भरतवदिति । श० १ । ५ । १ । ८ ॥

" (=भूतिः) प्राणं वा अनु प्रजाः पशवो भवन्ति । जै० उ० २ । ४ । ७ ॥

" (=प्रभूतिः) प्राणं वा अनु प्रजाः पशवः प्रभवन्ति । जै० उ० २ । ४ । ६ ॥

" प्राणा उ ह वाव राजन् मनुष्यस्य सम्भूतिरेवेति । जै० उ० ४ । ७ । ४ ॥

" प्राणं वा अनु प्रजाः पशवस्सम्भवन्ति । जै० उ० २ । ४ । ५ ॥

" प्राणा वै ब्रह्म । तै० ३ । २ । ८ । ८ ॥

" प्राणा उ वै ब्रह्म । श० ८ । ४ । १ । ३ ॥

" प्राणो वै ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । २ ॥ जै० उ० । ३ । ३८ । २॥

" प्राणो वै सम्राट् ! परमं ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । ३ ॥

" प्राणो वै ब्रह्म पूर्व्यम् (यजु० ११ । ५) । श० ६ । ३ । १ । १७॥

" प्राणा वै बृहत्यः । ऐ० ३ । १४ ॥

प्राण: प्राणो बृहत् । तां० ७ । ६ । १४, १७ ॥ १८ । ६ । २६ ॥

,, एष (प्राणः) उ एव बृहस्पतिः । श० १४ । ४ । १ । २२ ॥

,, एष (प्राणः) उऽ एव ब्रह्मणस्पतिः । वाग्वै ब्रह्म तस्या एष पतिस्तस्मादु ह ब्रह्मणस्पतिः । श० १४ । ४ । १ । २३ ॥

,, प्राणो वै वाचस्पतिः । श० ४ । १ । १ । ६ ॥

,, प्राणो वाचस्पतिः (यजु० ११ । ७) । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥

,, वाग्वाऽ इदं कर्म प्राणो वाचस्पतिः (यजु० ३० । १) । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥

,, नमो वाचे प्राणपत्न्यै स्वाहा । ष० २ । ६ ॥

,, वाक् च वै प्राणश्च मिथुनम् । श० १ । ४ । १ । २ ॥

,, तस्मात्सर्वे प्राणा वाचि प्रतिष्ठिताः । श० १२ । ८ । २ । २५ ॥

,, तस्याः (वाचः) उ प्राण एव रसः । जै० उ० १ । १ । ७ ॥

,, यावद्वै प्राणेष्वापो भवन्ति तावद्वाचा वदति । श० ५ । ३ । ५ । १६ ॥

,, प्राणा वा आपः । तै० ३ । २ । ५ । २ ॥ तां० ६ । ९ । ४ ॥

,, सा ह वागुवाच । (हे प्राण !) यद्वाऽ अहं वसिष्ठास्मि त्वं तद्वसिष्ठो ऽसीति । श० १४ । ९ । २ । १४ ॥

,, तयोः (सदसतोः) यत् सत् तत्साम तन्मनस्स प्राणः । जै० उ० १ । ५३ । २ ॥

,, अर्द्धभाग्वै मनः प्राणानाम् । ष० १ । ५ ॥

,, मनो वै प्राणानामधिपतिर्मनसि हि सर्वे प्राणाः प्रतिष्ठिताः । श० १४ । ३ । २ । ३ ॥

,, मनसि वै सर्वे प्राणाः प्रतिष्ठिताः । श० ७ । ५ । २ । ६ ॥

,, प्राणश्रेयस्यो वै ब्रह्मा । ष० २ । ६ ॥

,, प्राणा वै भुजः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥

,, प्राणा वा ऋतुयाजाः । ऐ० २ । २६ ॥ कौ० १३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । ७ ॥

,, प्राणो वै धाय्या । कौ० १५ । ४ ॥

,, प्राणो धाय्या । जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥

,, दिशो वै प्राणाः । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥

प्राणः प्राणा वै धुरः । तां० १४ । ९ । १८ ॥

" प्राणा वाऽ अवकाशाः । कौ० ८ । ६ ॥ श० १४ । १ । ४ । १ ॥

" प्राणा अवकाशाः । श० १४ । २ । २ । ५१ ॥

" प्राणा दीक्षा । तै० ३ । ८ । १० । २ ॥ श० १३ । १ । ७ । २ ॥

" प्राणो वै ककुप्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

" प्राणा वा उष्णिक्ककुभौ । तां० ८ । ५ । ५ ॥

" प्राणो वै गायत्री । श० ६ । ४ । २ । ५ ॥ ष० ३ । ७ ॥

" प्राणो गायत्री । श० ६ । २ । १ । २४ ॥ ६ । ६ । २ । ७ ॥ १० । ३ । १ । १ ॥ तां० ७ । ३ । ८ ॥ १६ । ३ । ६ ॥

" प्राणो वै गायत्र्यः । कौ० १५ । २ ॥ १६ । ३ ॥ १७ । २ ॥

" तत्प्राणो वै गायत्रम् (साम) । जै० उ० १ । ३७ । ७ ॥

" प्राणा वै छविमाणि । श० १४ । ३ । १ । २१ ॥

" प्राणो वा मकृभीत्त्यः । कौ० ८ । ५ ॥

" प्राणा वै प्रावाणः (यजु० ३८ । १५) । श० १४ । २ । २ । ३३॥

" स एषो ऽश्मा ऽऽखणं यत्प्राणः । स यथा अश्मानमाखणमृत्वा लोष्टो विध्वँसत एवमेव स विध्वँसते य एवं विद्वाँसमुपवदति । जै० उ० १ । ६० । ७—८ ॥

" य इमे शीर्षन्प्राणास्ते प्रयाजाः । ऐ० १ । १७ ॥

" प्रयाजाः प्राञ्चो हूयन्ते तद्धि प्राणरूपम् । श० ११ । २ । ७ । २७ ॥

" प्राणा वै प्रयाजाः । ऐ० १ । ११ ॥ कौ० ७ । १ ॥ १० । ३ ॥ श० ११ । २ । ७ । २७ ॥

" प्राणा वै प्रयाजानुयाजाः । श० १४ । २ । २ । ५१ ॥

" प्राणो वै प्रायणीयः (यागः) । ऐ० १ । ७ ॥

" प्राणः सर्वं ऋत्विजः । ऐ० ६ । १४ ॥

" प्राणाः पशवः । तै० ३ । २ । ८ । ९ ॥

" प्राणो मनुष्याः । श० १४ । ४ । ३ । १३ ॥

" प्राणो वै पवमानः । श० २ । २ । १ । ६ ॥

" प्राणो वै माध्यन्दिनः पवमानः । श० १४ । ३ । १ । २९ ॥

" (पुरुषस्य) ये ऽवाञ्चः (प्राणाः) तत्तृतीयसवनम् । कौ० २५ । १२ ॥

" प्राणा वै यशो वीर्यम् । श० १० । ६ । ५ । ६ ॥

प्राणः प्राणा वै यशः । श० । १४ । ५ । २ । ५ ॥

„ अथ यत्प्राणा अश्रयन्त तस्मादु प्राणाः श्रियः । श० ६ । १ । १ । ४ ॥

„ प्राणा वै द्विदेवत्याः । ऐ० २ । २८ ॥

„ प्राणा द्विदेवत्याः । कौ० १३ । ५, ६ ॥

„ प्राणो ह वाऽ अस्य (यज्ञस्य) उपाᳬशुः । श० ४ । १ । १ । १॥

„ अथवा उपांशुः प्राण एव । कौ० १२ । ४ ॥

„ प्राणो ह्युपाᳬशुरिमाᳬ (पृथिवीं) ह्येव प्राणान्नभिप्राणिति । श० ४ । १ । २ । २७ ॥

„ उपाᳬश्वायतनो वै प्राणः । श० १० । ३ । ५ । १५ ॥

„ प्राणा वै त्रिवृत् । तां० २ । १५ । ३ ॥ ३ । ६ । ३ ॥

„ त्रिवृद्धि प्राणः । तै० ३ । २ । ३ । ३ ॥

„ त्रय इमे पुरुषे प्राणाः । श० १ । ३ । ५ । १३ ॥

„ स वा अयं त्रेधा विहितः प्राणः, प्राणो ऽपानो व्यान इति । कौ० १३ । ६ ॥

„ त्रयो वै प्राणाः प्राण उदानो व्यानः । श० ६ । ४ । २ । ५ ॥ ६ । ४ । २ । १० ॥

„ प्राणो वा अपानो व्यानस्तिस्रो देव्यः । ऐ० २ । ४ ॥

„ पञ्चधा विहितो वाऽ अयᳬ शीर्षन्प्राणो मनो वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रम् । श० ६ । २ । २ । ५ ॥

„ षड्ऋतुनेति यजन्ति प्राणमेव तद्यजमाने दधति । कौ० १३ । ९ ॥

„ षड् वाऽ इमे शीर्षन्प्राणाः । श० १२ । ६ । १ । ६ ॥ १४ । १ । ३ । ३२ ॥

„ षड्ढि प्राणाः । श० ६ । ७ । १ । २० ॥

„ सप्त शिरसि प्राणाः । तां० २ । १४ । २ ॥ २२ । ४ । ३ ॥

„ सप्त शीर्षन्प्राणाः । श० ६ । ५ । २ । ८ ॥

„ सप्त वै शीर्षन्प्राणाः । ऐ० १ । १७ ॥ तै० १ । २ । ३ । ३ ॥

„ अष्टौ प्राणाः । श० ९ । २ । २ । ६ ॥

„ नव प्राणाः । श० ६ । ३ । १ । २१ ॥ ६ । ८ । २ । १० ॥ तां० ७ । ७ । ६ ॥

प्राणः नव वै प्राणाः । ऐ० ४ । १६ ॥ गो० पू० ४ । ६ ॥ कौ० ७ । १० ॥ ष० ३ । १२ ॥ तां० ४ । ५ । २१ ॥ १४ । ७ । ६ ॥

„ नव वै प्राणाः सप्त शीर्षन्नवाञ्चौ द्वौ । श० ६ । ४ । २ । ५ ॥ ८ । ४ । ३ । ७ ॥

„ नवेमे पुरुषे प्राणाः । श० १ । ५ । २ । ५ ॥

„ नव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दशमी । तै० १ । ३ । ७ । ४ ॥ २ । २ । १ । ७ ॥

„ नव प्राणाः.........(नाभिः) दशमी प्राणानाम् । तां० ६ । ८ । ३ ॥

„ दश प्राणाः । श० ६ । ३ । १ । २१ ॥

„ दशेमे प्राणाः । कौ० २६ । ८ ॥

„ दश वै पुरुषे प्राणाः । गो० उ० ६ । २ ॥

„ दश वाऽ इमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशो यस्मिन्नेते प्राणाः प्रतिष्ठिताः । श० ३ । ८ । १ । ३ ॥

„ द्वादशेमे पुरुषे प्राणाः । गो० पू० ५ । ५ ॥

„ त्रयोदशेमे पुरुषे प्राणाः । गो० पू० ५ । ५ ॥

„ त्रयोदशेमे पुरुषे प्राणा नाभिस्त्रयोदशी । श० १२ । ३ । २ । २ ॥

„ एतावन्तः (त्रीणि च शतानि षष्टिश्च) एव पुरुषस्य प्राणाः । गो० पू० ५ । ५ ॥

„ एकपुत्र इति चैकितानेयः । एको ह्येवैष पुत्रो यत्प्राणः ॥ स उ एव द्विपुत्र इति । द्वौ हि प्राणापानौ ॥ स उ एव त्रिपुत्र इति । त्रयो हि प्राणो ऽपानो व्यानः ॥ स उ एव चतुष्पुत्र इति । चत्वारो हि प्राणो ऽपानो व्यानस्समानः ॥ स उ एव पञ्चपुत्र इति । पञ्च हि प्राणो ऽपानो व्यानस्समानो ऽवानः ॥ स उ एव षट्पुत्र इति । षड्ढि प्राणो ऽपानो व्यानस्समानो ऽवान उदानः ॥ स उ एव सप्तपुत्र इति सप्त हीमे शीर्षण्याः प्राणाः ॥ स उ एव नवपुत्र इति सप्त हि शीर्षण्याः प्राणा द्वाववाञ्चौ ॥ स उ एव दशपुत्र इति । सप्त शीर्षण्याः प्राणा द्वाववाञ्चौ नाभ्यां दशमः ॥ स उ एव बहुपुत्र इति । एतस्य हीयं सर्वाः प्रजाः (?) । जै० उ० २ । ५ । २—११ ॥

„ को हि तद्वेद यावन्त इमे ऽन्तरात्मन्प्राणाः । श० ७ । २ । २ । २० ॥

प्राण: बहुधा ह्येवैष निविष्टो यत्प्राणः । जै० उ० ३ । २ । १३ ॥

„ तस्मात्सर्वे प्राणाः प्राणोदानयोरेव प्रतिष्ठिताः । श० १२ । ६ । १ । १० ॥

„ न वाऽ अस्थिषु प्राणो ऽस्ति । श० ७ । १ । १ । १५ ॥

„ प्राणो वै हृदयमतो ह्ययमूर्ध्वः प्राणः संचरति । श० ३ । ८ । ३ । १५ ॥

„ प्राणो हृदये (श्रितः) । तै० ३ । १० । ८ । ५ ॥

„ तस्मादयमात्मन्प्राणो मध्यतः । श० ७ । ३ । १ । २ ॥

„ नासिकेऽउ वै प्राणस्य पन्थाः । श० १२ । ६ । १ । १४ ॥

„ बर्हिर्हि प्राणः । तां० ७ । ६ । १४ ॥

„ तं (पशुं संज्ञप्तं) प्राची दिक् । प्राणेत्यनुप्राणत्प्राणमेवास्मिँस्तद्दधात् । श० ११ । ८ । ३ । ६ ॥

„ पुरस्तात्प्रत्यङ् प्राणो धीयते । श० ७ । ५ । १ । ७ ॥

„ प्राणो हि प्रियः प्रजानाम् । प्राण इव प्रियः प्रजानां भवति । य एवं वेद । तै० २ । ३ । ६ । ५ ॥

„ प्राणो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च । श० १४ । ६ । २ । १ ॥

„ तं (प्राणं) पाप्मा नाऽन्वसृज्यत । न ह्येतेन प्राणेन पापं वदति न पापं ध्यायति न पापम्पश्यति न पापं शृणोति न पापं गन्धमपानिति । तेनाऽपहत्य मृत्युमपहत्य पाप्मानं (देवाः) स्वर्गं लोकमायन् । जै० उ० २ । १ । १९—२० ॥

„ प्राणा वै समिधः । ऐ० २ । ४ ॥ श० १ । ५ । ४ । १ ॥

„ प्राणा वै समिधः (यजु० १७ । ७९) प्राणा ह्येतꣳ समिन्धते । श० ९ । २ । ३ । ४४ ॥

„ प्राणै ह्ययं पुरुषः समिद्धः । श० १ । ५ । ४ । १ ॥

„ यत्र वै प्राणो ऽङ्गं नाभिप्राप्नोति शुष्यति वा वैतन्म्लायति वा । श० ८ । ७ । २ । १४ ॥

„ यत्रायं पुरुषो म्रियतऽ उदस्मात्प्राणाः क्रामन्त्याहो नेति, नेति होवाच याज्ञवल्क्यो ऽत्रैव (प्राणाः) समवनीयन्ते । श० १४ । ६ । २ । १२ ॥

„ प्रादेशमात्रं ह्रीम आत्मनो ऽभि प्राणः । कौ० २ । २ ॥

प्राण: प्राणो वै प्रवान् । श० १ । ४ । ३ । ३ ॥

„ (प्रजापतिः) प्राणादेवेमं लोकं (पृथिवीं) प्रावृहत् । कौ० ६ । १० ॥

„ लेखासु हीमे प्राणाः । श० ७ । २ । २ । १८ ॥

„ आयत इव ह्ययमवाङ् प्राणः । ष० २ । २ ॥

„ शिरो वै प्राणानां योनिः । श० ७ । ५ । १ । २२ ॥

„ प्राणो हि रेतसां विकर्त्ता । श० १३ । ३ । ८ । १ ॥

„ प्राणो रेतः । ऐ० २ । ३८ ॥

„ अध्रुवं वै तद्यत्प्राणः । श० १० । २ । ६ । १९ ॥

प्राणभृतः (इष्टकाः) अन्नं प्राणभृदन्नꣳ हि प्राणान्बिभर्त्ति । श० ८ । १ । ३ । १ ॥

„ अङ्गानि प्राणभृन्त्यङ्गानि हि प्राणान्बिभ्रति । श० ८ । १ । ३ । १ ॥

प्राणापानौ शतꣳ शतानि पुरुषः समेनाष्टौ शता यन्मितं तद्वदन्ति । अहोरात्राभ्यां पुरुषः समेन तावत्कृत्वः प्राणिति चाप चानितीति । श० १२ । ३ । २ । ८ ॥

„ प्राणापानौ पवित्रे । तै० ३ । ३ । ४ । ४ ॥ ३ । ३ । ६ । ७ ॥

„ प्राणापानौ मित्रावरुणौ । तै० ३ । ३ । ६ । ६ ॥ तां० ६ । १० । ५ ॥ ६ । ८ । १६ ॥

„ मित्रावरुणौ (एवैनं) प्राणापानाभ्याम् (अवतः) । तै० १ । ७ । ६ । ६ ॥

„ प्राणापानावेवाध्वर्यू । गो० पू० २ । १० ॥

„ प्राणापानौ देवः । गो० पू० २ । १० ॥

„ प्राणापानौ ब्रह्म । गो० पू० २ । १० (११) ॥

„ प्राणापानौ वै बृहद्रथन्तरे । तां० ७ । ६ । १२ ॥

„ प्राणापानौ वा एतौ देवानाम् । यदर्काश्वमेधौ । तै० ३ । ६ । २१ । ३ ॥

„ प्राणापाना उपांश्वन्तर्यामौ (ग्रहौ) । ऐ० २ । २१ ॥

„ प्राणापानौ वा उपांश्वन्तर्यामौ (ग्रहौ) । कौ० ११ । ८ ॥ १२ । ४ ॥

प्राणापानौ प्राणापानौ वै गो आयुषी । कौ० १६ । २ ॥

„ प्राणापानावेव यत्प्रायणीयोदयनीये । कौ० ७ । ५ ॥

„ प्राणापानौ वै दैव्या होतारः । ऐ० २ । ४ ॥

„ प्राणापानौ वा अक्षरपङ्क्तयः । कौ० १६ । ८ ॥

„ प्राणप्रानौ वै बार्हतः प्रगाथः । कौ० १५ । ४ ॥ १८ । २ ॥

„ वाक् च वै प्राणापानौ च वषट्कारः । ऐ० ३ । ८ ॥

„ वाक् च ह वै प्राणापानौ च वषट्कारः । गो० उ० ३ । ६ ॥

प्राणोदानौ सो ऽयं (वायुः) पुरुषे ऽन्तः प्रविष्टः प्राङ् च प्रत्यङ् च तादिमौ प्राणोदानौ । श० १ । १ । ३ । २ ॥ १ । ८ । ३ । १२ ॥

„ ते (पवित्रे--यजु० १ । १२) वै द्वे भवतः । ······तादिमौ प्राणोदानौ (श्वासप्रश्वासौ रुधिरादिनां शोधकावित्यर्थः) । श० १ । १ । ३ । २ ॥

„ प्राणोदानौ पवित्रे । श० १ । ८ । १ । ४४ ॥

„ इमे हि द्यावापृथिवी प्राणोदानौ । श० ४ । ३ । १ । २२ ॥

„ प्राणोदानौ वै द्यावापृथिवी । श० १४ । २ । २ । ३६ ॥

„ प्राणोदानौ मित्रावरुणौ । श० ३ । २ । २ । १३ ॥

„ प्राणोदानौ वै मित्रावरुणौ । श० १ । ८ । ३ । १२ ॥ ३ । ६ । १ । १६ ॥ ५ । ३ । ५ । ३४ ॥ ६ । ५ । १ । ५६ ॥

„ प्राणोदानौ वा ऽअध्वर्यू । श० ५ । ५ । १ । ११ ॥

„ प्राणोदानावेव यत्प्रायणीयोदयनीये । कौ० ७ । ५ ॥

„ प्राणोदानावेवाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च । श० २ । २ । २ । १८॥

„ प्राणोदानाऽ उ वै रेतः सिक्तं विकुरुतः । श० ९ । ५ । १ । ५६ ॥

प्रातः देवस्य सवितुः प्रातःप्रसवः प्राणः । तै० १ । ५ । ३ । १ ॥

प्रातःसवनम् अग्नेर्वै प्रातःसवनम् । कौ० १२ । ६ ॥ १४ । ५ ॥ २८ । ५ ॥

„ आग्नेयं वै प्रातस्सवनम् । जै० उ० १ । ३७ । २ ॥

„ वसूनां वै प्रातःसवनम् । कौ० १६ । १ ॥ ३० । १ ॥

„ वसूनामेव प्रातःसवनम् । श० ४ । ३ । ५ । १ ॥

„ तं (आदित्यं) वसवो ऽष्टकपालेन (पुरोडाशेन) प्रातः-सवने ऽभिषज्यन् । तै० १ । ५ । ११ । ३ ॥

प्रातःसवनम् अथेमं विष्णुं यज्ञं त्रेधा व्यभजन्त । वसवः प्रातःसवनꣳ रुद्रा माध्यन्दिनꣳ सवनमादित्यास्तृतीयसवनम् । श० १४ । १ । १ । १५ ॥

" गायत्रं हि प्रातःसवनम् । गो० उ० ३ । १६ ॥

" गायत्रं वै प्रातःसवनम् । ऐ० ६ । २, ६ ॥ ष० १ । ४ ॥ तां० ६ । ३ । ११ ॥

" अयं वै लोकः (पृथिवी) प्रातःसवनम् । श० १२ । ८ । २ । ८ ॥ गो० उ० ३ । १६ ॥

" तस्य (पुरुषस्य) य ऊर्ध्वाः प्राणास्तत्प्रातःसवनम् । कौ० २५ । १२ ॥

" ब्रह्म वै प्रातःसवनम् । कौ० १६ । ४ ॥

" त्रिवृत्पञ्चदशौ (स्तोमौ) प्रातःसवनम् (वहतः) । तां० १६ । १० । ५ ॥

" अनिरुक्तं प्रातःसवनम् । तां० १८ । ६ । ७ ॥

" पीतवद्वै प्रातःसवनम् । ऐ० ४ । ४ ॥

" व्यृद्धं वा एतदपशव्यं यत्प्रातःसवनमनिडꣳ हि । तां० ६ । ९ । २३ ॥

" ऊमा वै पितरः प्रातःसवने । ऐ० ७ । ३४ ॥

" एकच्छन्दः प्रातःसवनम् । ष० १ । ३ ॥

" उद्यन्तं (सूर्यमीप्सन्ति) प्रातःसवनेन । कौ० १८ । ९ ॥

प्रातरनुवाकः प्रातर्वै स (प्रजापतिः) तं देवेभ्यो ऽन्वब्रवीद्यत्प्रातरन्वब्रवीत्तत्प्रातरनुवाकस्य प्रातरनुवाकत्वम् । ऐ० २ । १५ ॥

" यदेवैनं प्रातरन्वाह तत्प्रातरनुवाकस्य प्रातरनुवाकत्वम् । कौ० ११ । १ ॥

" सर्वं प्रातरनुवाकः । कौ० ११ । ७ ॥

" प्रजापतिर्वै प्रातरनुवाकः । कौ० ११ । ७ ॥ २५ । १० ॥

" प्रजापतेर्वा एतदुक्थं यत्प्रातरनुवाकः । ऐ० २ । १७ ॥

" वाक् प्रातरनुवाकः । कौ० ११ । ८ ॥

" शिरो वा एतद्यज्ञस्य यत्प्रातरनुवाकः । ऐ० २ । २१ ॥

प्रातर्यावाणः एते वाव देवा प्रातर्यावाणो यदग्निरुषा अश्विनौ । ऐ० २ । १५ ॥

प्रायणीय: (यागः) स्वर्गं वा एतेन लोकमुपप्रयंति यत् प्रायणीयस्तत्प्रायणीयस्य प्रायणीयत्वम् । ऐ० १ । ७ ॥

,, आदित्य एव प्रायणीयो भवति । श० ३ । २ । ३ । ६॥

,, अथ यत् प्रायणीयेन यजन्ते । अदितिमेव देवतां यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । २ ॥

,, प्राणो वै प्रायणीयः । ऐ० १ । ७ ॥

प्रायणीयम् (अहः) प्रायणीयेन वा अह्ना देवाः स्वर्गं लोकं प्रायन्यत् प्रायंॅस्तत् प्रायणीयस्य प्रायणीयत्वम् । तां० ४ । २ । २ ॥

,, यदमुत्र राजानं क्रेष्यन्नुपप्रैष्यन्यजते । तस्मात्प्रायणीयं नाम । श० ४ । ५ । १ । २ ॥

,, त्रिवृद्वै प्रायणीयमहः । तां० १० । ५ । ४ ॥

,, त्रिवृत्प्रायणीयमहः । तां० १० । ५ । ४ ॥

,, ब्रह्म प्रायणीयमहः । तां० ११ । ४ । ६, ६ ॥

,, तातिर्वै यज्ञस्य प्रायणीयम् । कौ० ७ । ६ ॥

,, प्राणापानावेव यत्प्रायणीयोदयनीये । कौ० ७ । ५ ॥

प्रायणीयोदयनीयौ (यज्ञस्य) बाहू प्रायणीयोदयनीयौ । श० ३ । २ । ३ । २० ॥

प्रावित्रम् यज्ञो वै प्रावित्रम् । श० १ । ५ । २ । १ ॥

प्रावृट् तस्मात्प्रावृषि सर्वा वाचो वदन्ति । तै० १ । ८ । ४ । २ ॥

प्राशित्रम् लोकः प्राशित्रम् । श० ११ । २ । ७ । १६ ॥

प्रासहा सेना वा इन्द्रस्य प्रिया जाया वावाता प्रासहा नाम । ऐ० ३ । २२ ॥

,, सेना ह नाम पृथिवी (=विस्तीर्णेति सायणः) धनञ्जया विश्वव्यचा अदितिः सूर्य्यत्वक् । इन्द्राणी देवी प्रासहा ददाना । तै० २ । ४ । २ । ७ ॥

,, इन्द्रो वै प्रासहस्पतिस्तुविष्मान् । ऐ० ३ । २२ ॥

प्रियङ्गवः प्रियङ्गुतण्डुलैर्जुहोति । प्रियाङ्गा ह वै नामैते । एतैर्वै देवा अश्वस्याङ्गानि समदधुः । तै० ३ । ८ । १४ । ६ ॥

,, स (रुद्रः) एतंॅ रुद्रायाऽऽर्द्रायै प्रैयङ्गवं चरुं पयसि निरवपत् । ततो वै स पशुमानभवत् । तै० ३ । १ । ४ । ४ ॥

प्रियङ्गवः भौज्यं वा एतदोषधीनां यत्प्रियङ्गवः । ऐ० ८ । १६ ॥

प्रियम् प्रजा वै प्रियाणि पशवः प्रियाणि । तां० ८ । ५ । १५ ॥

प्रेतिः (यजु० १५ । ६) अन्नं प्रेतिः । श० ८ । ५ । ३ । ३ ॥

प्रैषाः यज्ञो वै देवेभ्य उदक्रामत्तं प्रैषैः प्रैषमैच्छन् तत्प्रैषाणां प्रैषत्वम् । ऐ० ३ । ६ ॥

„ तं देवाः प्रैषैः प्रैषं (=प्रकृष्टं सोमस्यान्वेषणमिति सायण) ऐच्छन् । तत्प्रैषाणां प्रैषत्वम् । तै० २ । २ । ८ । ५ ॥

„ (देवाः) प्रैषैरेव प्रैषमैच्छन् । श० ३ । ९ । ३ । २८ ॥

„ बार्हता वै प्रैषाः । श० १२ । ८ । २ । १४ ॥

प्रोक्षणयः (बहुवचने) दिव्या आपः प्रोक्षणयः । तै० २ । १ । ५ । १ ॥

प्रोक्षणी आपः प्रोक्षण्यः । ऐ० ५ । २८ ॥

प्रोष्ठपदाः (नक्षत्रम्) (देवाः) प्रोष्ठपदेपूदयच्छन्त (स्वकीयान्यायुधान्यसुरयोधनायोद्यतवन्तः) । तै० १ । ५ । २ । ९ ॥

„ अहेर्बुध्नियस्योत्तरे (प्रोष्ठपदाः) । तै० १ । ५ । १ । ५ ॥ ३ । १ । २ । ९ ॥

„ अजस्यैकपदः पूर्वे प्रोष्ठपदाः । तै० १ । ५ । १ । ५ ॥ ३ । १ । २ । ८ ॥

प्लक्षः तस्यावाङ् मेधः पपात । स एष वनस्पतिरजायत तं देवाः प्रावश्यंस्तस्मात्प्रख्यः प्रख्यो ह वै नामैतद्यत्प्लक्षः । श० ३ । ८ । ३ । १२ ॥

„ स्वाराज्यं च ह वा एतद्वैराज्यं च वनस्पतीनाम् (यत्प्लक्षः) । ऐ० ७ । ३२ ॥ ८ । १६ ॥

„ यशसो वा एष वनस्पतिरजायत यत्प्लक्षः । ऐ० ७ । ३२ ॥

प्लवः (सामविशेषः) यत् प्लवो भवति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै । तां० १४ । ५ । १७ ॥

प्रेङ्खः (प्रेङ्खः) प्रेङ्खमास्था होता शंसति महस एव तद्रूपं क्रियते । तां० ५ । ५ । ६ ॥

„ महो वै प्रेङ्खः । तै० १ । २ । ६ । ६ ॥

(फ)

फल्गुन्यः (नक्षत्रम्) अर्जुन्यो वै नामैतास्ता एतत्परोऽक्षमाचक्षते फल्गुन्य इति । श० २ । १ । २ । ११ ॥

फल्गुन्यः (नक्षत्रम्) अर्यम्णो वा एतन्नक्षत्रं यत्पूर्वे फल्गुनी । तै० १ । १ । २ । ४ ॥ १ । ५ । १ । २ ॥ ३ । १ । १ । ८ ॥

" भगस्य वा एतन्नक्षत्रं यदुत्तरे फल्गुनी । तै० १ । १ । २ । ४ ॥ १ । ५ । १ । २ ॥ ३ । १ । १ । ८ ॥

" एता वाऽ इन्द्रनक्षत्रं यत्फल्गुन्यः । श० २ । १ । २ । ११ ॥

" मुखमुत्तरे फल्गू पुच्छं पूर्वे । कौ० ५ । १ ॥

" मुखे (संवत्सरस्य) उत्तरे फल्गुन्यौ पुच्छं पूर्वे । गो० उ० १ । १९ ॥

" एषा वै प्रथमा रात्रिः संवत्सरस्य यदुत्तरे फल्गुनी । तै० १ । १ । २ । ९ ॥

" एषा ह संवत्सरस्य प्रथमा रात्रिर्यत्फाल्गुनी पौर्णमासी योत्तरैषोत्तमा या पूर्वा मुखत एव तत्संवत्सरमारभते । श० ६ । २ । २ । १८ ॥

" मुखं वा एतत्संवत्सरस्य यत्फाल्गुनी पौर्णमासी । कौ० ४ । ४ ॥ ५ । १ ॥ तां० ५ । ९ । ८ ॥ गो० उ० १ । १९ ॥

" एषा वै जघन्या रात्रिः संवत्सरस्य यत्पूर्वे फल्गुनी । तै० १ । १ । २ । ९ ॥

फाण्टम् फाण्टं मनुष्याणाम् । श० ३ । १ । ३ । ८ ॥

फाल्गुनानि (=हैमन्तानि तृणानि) इन्द्रो वृत्रमहन् तस्य वल्कः परा ऽपतत् तानि फाल्गुनान्यभवन् । तै० १ । ४ । ७ । ६ ॥

" द्वयानि वै फाल्गुनानि । लोहितपुष्पाणि चारुणपुष्पाणि च स यान्यरुणपुष्पाणि फाल्गुनानि तान्यभिषुणुयादेष वै सोमस्य न्यङ्गो यदरुणपुष्पाणि । श० ४ । ५ । १० । २ ॥

" पशवो वै फाल्गुनानि । तै० १ । ४ । ७ । ६ ॥

फेनः स (फेनः) यद्वोपहन्यते मृदेव भवति । श० ६ । १ । ३ । ३ ॥
('नमुचिः' शब्दमपि पश्यत)

(ब)

बदरम् यत्क्रीहा तद् बदरम् (अभवत्) । श० १२ । ७ । १ । ३ ॥

बभ्रुः (यजु० १२ । ७५) सोमो वै बभ्रुः । श० ७ । २ । ४ । २६ ॥

बभ्रुः (आजद्विषः) बभ्रेनाऽऽजद्विषेण (उद्गात्रा दीक्षामहा इति) पितरो दक्षिणतः (आगच्छन्) । जै० उ० २ । ७ । २ ॥

बर्हिः प्रजा वै बर्हिः । कौ० ५ । ७ ॥ १८ । १० ॥ तै० १ । ६ । ३ । १० ॥ श० १ । ५ । ३ । १६ ॥ २ । ६ । १ । १३, ४४ ॥ ४ । ४ । ५ । १४ ॥ गो० उ० १ । २४ ॥

" पशवो वै बर्हिः । ऐ० २ । ४ ॥

" ओषधयो बर्हिः । ऐ० ५ । २८ ॥ श० १ । ३ । ३ । ९ ॥ १ । ८ । २ । ११ ॥ १ । ९ । २ । २६ ॥ तै० २ । १ । ५ । १ ॥

" (ऋ० ६ । १६ । १०) अयं लोको बर्हिः । श० १ । ४ । १ । २४ ॥

" अयं वै लोको बर्हिः । श० १ । ८ । २ । ११ ॥ १ । ९ । २ । २९ ॥

" बर्हिर्यजति शरदमेव, शरदि हि बर्हिष्ठा ओषधयो भवन्ति । कौ० ३ । ४ ॥

" शरद् बर्हिरिति हि शरद् बर्हिर्या इमा ओषधयो ग्रीष्महेमन्ताभ्यां नित्यक्ता भवन्ति ता वर्षा वर्द्धन्ते ताः शरदि बर्हिषो रूपं प्रस्तीर्णाः शेरे तस्माच्छरद् बर्हिः । श० १ । ५ । ३ । १२ ॥

" क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतरं बर्हिः । श० १ । ३ । ४ । १० ॥

" भूमा वै बर्हिः । श० १ । ५ । ४ । ४ ॥

बर्हिषदः (पितरः) मासा वै पितरो बर्हिषदः । तै० १ । ६ । ८ । ३ ॥

बलभिद् (क्रतुः) यद् बलभिदा (यजते) बलमेवास्मै भिनत्ति । तां० १९ । ७ । ३ ॥

बलम् बलं वै सहः । श० ८ । ६ । २ । १४ ॥

" बलं वै शवः (यजु० १२ । १०६ ॥ १८ । ५१) । श० ७ । ३ । १ । २९ ॥ ९ । ४ । ४ । ३ ॥

बलम् बलं हृदये (श्रितम्) । तै० ३ । १० । ८ । ८ ॥

„ इन्द्रो बलं बलपतिः । श० ११ । ४ । ३ । १२ ॥ तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥

बलिवर्दः परिवत्सरो बलिवर्दः । तै० ३ । ८ । २० । ५ ॥

बहिष्पवमानः (स्तोत्रम्) मुखं वा एतद्यज्ञस्य यद् बहिष्पवमानः । ऐ० २ । २२ ॥

„ बहिष्पवमानेन वै यज्ञः (=अग्निष्टोम इति सायणः) सृज्यते । तां० ६ । ६ । २२ ॥

बहिष्पवमान्यः (स्तोत्रीयाः) स्त्रियो बहिष्पवमान्यः । तां० ६ । ८ । ५ ॥

बहु अन्तो वै बहु । ऐ० ५ । २. १५ ॥

बादरायणः विष्वक्सेनो व्यासाय पाराशर्याय व्यासः पाराशर्यो जैमिनये जैमिनिः पौष्पिण्ड्याय पौष्पिण्ड्यः पाराशर्यायणाय पाराशर्यायणो बादरायणाय बादरायणस्ताण्डिशाट्यायनिभ्यां ताण्डिशाट्यायनिनौ बहुभ्यः । सा० वि० ३ । ६ । ३ ॥

बार्हदुक्थम् (साम) बृहदुक्थो वा एतेन वाम्नेयो ऽग्नस्य पुरोधामागच्छदन्नं वै ब्रह्मणः पुरोधान्नाद्यस्यावरुध्यै । तां० १४ । ६ । ३८ ॥

बार्हद्गिरम् (साम) ब्रह्मवर्चसम्मह्यमित्यब्रवीत् (इन्द्रं) बृहद्गिरिस्तस्मा एतेन बार्हद्गिरेण ब्रह्मवर्चसं प्रायच्छद् ब्रह्मवर्चसकाम एतेन स्तुवीत ब्रह्मवर्चसी भवति । तां० १३ । ४ । १७ ॥

„ बार्हद्गिरं ब्राह्मणाय (कुर्य्यात्) । तां० १३ । ४ । १८ ॥

बाहुः बाहुर्वाऽ अरत्निः । श० ६ । ३ । १ । ३३ ॥ ६ । ७ । १ । १४ ॥ १४ । १ । २ । ६ ॥

„ पञ्चदशौ हि बाहू । श० ८ । ४ । ४ । ६ ॥

„ वीर्यं वाऽ एतद्राजन्यस्य यद् बाहू । श० ५ । ४ । १ । १७ ॥

„ तस्माद् बाहुर्वार्य्यो (राजन्यः) बाहुभ्यां ह्यि सृष्टः । तां० ६ । १ । ८ ॥

„ तस्माद्राजा बाहुबली भावुकः । श० १३ । २ । २ । ५ ॥

„ बाहू वै मित्रावरुणौ । श० ५ । ४ । १ । १५ ॥

„ बाहू वै स्रुचौ । श० ७ । ४ । १ । ३६ ॥

बाहू (="आर्द्रानक्षत्रम्" इति सायणः) रुद्रस्य बाहू । तै० १ । ५ । १ । १॥

बिल्वः अथ (प्रजापतेः) यत्कुन्तापमासीत् । यो मज्जा स साधं͠ सम-वद्रुत्य श्रोत्रत उद्भिनत्स एव वनस्पतिरभवद्बिल्वस्तस्मात्त-स्यान्तरतः सर्वमेव फलमाद्यं भवति तस्माद्धारिद्र इव भाति। श० १३ । ४ । ४ । ८ ॥

,, बैल्वं (यूपं कुर्वीत) अन्नाद्यकामः । कौ० १० । १ ॥

,, बिल्वं ज्योतिरिति वा आचक्षते । ऐ० २ । १ ॥

,, बैल्वं (यूपं) ब्रह्मवर्चसकामस्य (करोति) । ष० ४ । ४ ॥

,, षड् बैल्वाः (यूपाः) भवन्ति । ब्रह्मवर्चसस्यावरुद्ध्यै । तै० ३ । ८ । २० । १ ॥

बिसानि यानि बिसानि तान्यस्यै पृथिव्यै रूपम् । श० ५ । ४ । ५ । १४ ॥

बुद्धिः बृहस्पतिरिव बुद्ध्या (भूयासम्) । मं० २ । ४ । १४ ॥

बुधः महीन्दीक्षाꣳ सौमायनो (=सोमपुत्रः) बुधो यवुदयच्छदनन्व-त्सर्वमाप्नोन्मन्माꣳस्ते मेदोधा इति । तां० २४ । १८ । ६ ॥

बुध्न्या उपमा विष्ठाः (यजु०१३ । ३) दिशो वाऽ अस्य (सूर्यस्य) बुध्न्या उपमा विष्ठाः । श० ७ । ४ । १ । १४ ॥

बृहच्छन्दः (यजु० १५ । ५), असौ वै (द्यु-)लोको बृहच्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ५॥

बृहच्छोचाः उदानो वै बृहच्छोचाः । श० १ । ४ । ३ । ३ ॥

बृहज्ज्योतिः असौ वाऽ आदित्यो बृहज्ज्योतिः । श० ६ । ३ । १ । १५॥

बृहत् (साम) बृहन्मय्यां इदं͠ स ज्योगन्तरभूदिति तद् बृहतोबृहत्त्वम। तां० ७ । ६ । ५ ॥

,, त्वामिद्धि हवामहे [ऋ० ६ । ४६ । १] इत्यस्यामृच्युत्प-न्नं साम बृहत्-इति 'ऐ० ४ । १३' भाष्ये सायणः) ॥

,, साम वै बृहत् । तां० ७ । ६ । १७ ॥

,, भारद्वाजं वै बृहत् । ऐ० ८ । ३ ॥

,, बृहता वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत्तस्य तेजः परापतत्त-त्सौभरमभवत् । तां० ८ । ८ । ६ ॥

,, बृहतो ह्येतत्तेजो यत्सौभरम् । तां० ८ । ८ । १० ॥

,, सौभरं भवति बृहतस्तेजः । तां० १२ । १२ । ७ ॥

बृहत् (साम) द्व्यक्षरं बृहत् । तै० २ । १ । ५ । ७ ॥
„ बृहद्धि पूर्वं रथन्तरात् । तां० ११ । १ । ४ ॥
„ यद्ध्रस्वं तद्रथन्तरं यद्दीर्घं तद् बृहत् । कौ० ३ । ५ ॥
„ यद् बृहत्तद्रैवतम् । ऐ० ४ । १३ ॥
„ बृहदेतत्परोक्षं यद्वैरूपम् (साम) । तां० १२ । ८ । ४ ॥
„ यद् बृहत्तद्वैराजम् (साम) । ऐ० ४ । १३ ॥
„ अन्तो बृहत्साम्नाम् । तां० १६ । १२ । ८ ॥
„ श्रैष्ठ्यं वै बृहत् । ऐ० ८ । २ ॥
„ ज्यैष्ठ्यं वै बृहत् । ऐ० ८ । २ ॥
„ यथा वै पुत्रो ज्येष्ठ एवं बृहत्प्रजापतेः । तां० ७ । ६ । ५॥
„ ऊर्द्धमिव हि बृहत् । तां० ८ । ६ । ११ ॥
„ द्यौर्वै बृहद् । श० ९ । १ । २ । ३७ ॥
„ द्यौर्बृहत् । तां० १६ । १० । ८ ॥
„ बृहद्धयसौ (द्यौः) । श० १ । ७ । २ । १७ ॥
„ असौ (द्यौः) बृहत् । कौ० ३ । ५ ॥ तै० १ । ४ । ६ । २ ॥ तां० ७ । ६ । १७ ॥
„ असौ (द्यु-) लोको बृहत् । ऐ० ८ । २ ॥
„ उपहूतं बृहत्सह दिवा । तै० ३ । ५ । ८ । १ ॥ श० १ । ८ । १ । १९ ॥
„ स्वर्गो लोको बृहत् । तां० १६ । ५ । १५ ॥
„ बृहद्वै सुवर्गो लोकः । तै० १ । २ । २ । ४ ॥ तां० ९ । १ । ३१ ॥
„ बृहता वै देवाः स्वर्गं लोकमायन् । तां० १८ । २ । ८ ॥
„ आदित्यो बृहत् । ऐ० ५ । ३० ॥
„ प्राणो बृहत् । तां० ७ । ६ । १४, १७ ॥ १८ । ६ । २६ ॥
„ क्षत्रं बृहत् । ऐ० ८ । १, २ ॥
„ मनो वै बृहत् । तां० ७ । ६ । १७ ॥
„ मनो बृहत् । ऐ० ४ । २८ ॥
„ स (प्रजापतिः) तूष्णीं मनसा ध्यायत्तस्य यन्मनस्यासीत्तद् बृहत्समभवत् । तां० ७ । ६ । १ ॥

बृहत (साम) वर्ष्म वै बृहत् । तां० ११ । ६ । ४ ॥
,, ऐन्द्रं वै बृहत् । तां० ७ । ६ । १७ ॥
,, बृहद्विराट् । तै० १ । ४ । ४ । ६ ॥
,, एतद्वै बृहतः स्वमायतनं यत्त्रिष्टुप् । तां० ४ । ४ । १० ॥
,, त्रैष्टुभं वै बृहत् । तां० ५ । १ । १४ ॥
,, स बृहदसृजत तत्स्तनयित्नोर्घोषोन्वसृज्यत । तां० ७ । ८ । १० ॥
,, अहर्वार्हतम् । ऐ० ५ । ३० ॥

बृहती (छन्दः) बृहती बृंहतेर्वृद्धिकर्मणः । दै० ३ । ११ ॥
,, बृहती मर्य्या ययेमान् लोकान् व्यापामेति तद् बृहत्या बृहत्त्वम् । तां० ७ । ४ । ३ ॥
,, यस्य नव ता बृहतीम् । कौ० ६ । २ ॥
,, षट्त्रिंशदक्षरा बृहती । श० ८ । ३ । ३ । ८ ॥ तै० ३ । ६ । १२ । १ ॥ तां० १० । ३ । ६ ॥ गो० पू०४।१२ ॥
,, षट्त्रिंशदक्षरा वै बृहती । ऐ० ४ । २४ ॥ ७ । १ ॥ श० ३ । ५ । १ । ६ ॥
,, ता वा एता बृहत्यो यत् षट्त्रिंशदक्षराः । तां०१६ । ११ । १० ॥
,, एतया हि देवा इमाँल्लोकानाश्नुवत ते वै दशभिरेवाक्षरैरिमं लोकमाश्नुवत दशभिरन्तरिक्षं दशभिर्दिवं चतुर्भिश्चतस्रो दिशो द्वाभ्यामेवास्मिँल्लोके प्रत्यतिष्ठंस्तस्मादेतां बृहतीत्याचक्षते । ऐ० ४ । २४ ॥
,, पञ्चदशश्चैकविंशश्च बार्हतौ तौ गौश्चाविश्चान्वसृज्येतां तस्मात्तौ बार्हतं प्राचीनं भास्कुरुतः । तां० १०।२। ६ ॥
,, गोऽश्वमेव हि बृहती । कौ० ११ । २ ॥
,, पशवो बृहती । कौ० १७ । २ ॥ २६ । ३ ॥ ष०३। १० ॥
,, पशवो वै बृहती । तां० १६ । १२ । ६ ॥
,, बार्हताः पशवः । ऐ० ४ । ३ ॥ ५ । ६ ॥ कौ० २३। १ ॥ २६ । ३ ॥ तै० १ । ४ । ५ । ५ ॥ श० १३। ४। ३। १५ ॥
,, बृहती वाव छन्दसां स्वराट् । तां० १० । ३ । ८ ॥

बृहती (छन्दः) स्वराज्यं छन्दसां बृहती । तां० २४ । ६ । ३ ॥
„ श्रीर्वै बृहती । कौ० २८ । ७ ॥ २६ । ५ ॥
„ श्रीर्वै यशश्छन्दसां बृहती । ऐ० १ । ५ ॥
„ बृहत्यां वा असावादित्यः श्रियां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितस्तपति । गो० उ० ५ । ७ ॥
„ बार्हतो वा एष य एष (सूर्यः) तपति । कौ० १५ । ४॥ २५ । ४ ॥ गो० उ० ३ । २० ॥
„ बृहती स्वर्गो लोकः । श० १० । ५ । ४ । ६॥
„ बृहत्यामधि स्वर्गो लोकः प्रतिष्ठितः । श० १३ । ५ । ४ । २८ ॥
„ बार्हतो वा असौ (स्वर्गः) लोकः । तै० १ । १ । ८ । २॥
„ बार्हतो वै स्वर्गो लोकः । गो० पू० ४ । १२ ॥
„ बार्हताः स्वर्गा लोकाः । ऐ० ७ । १ ॥
„ बृहत्या वै देवाः स्वर्गं लोकमायन् । तां० १६ । १२ । ७॥
„ पवमानस्य बृहती (स्वर्ग्या) । तां० ७ । ४ । १ ॥
„ अयं मध्यमो (लोकः=अन्तरिक्षं) बृहती । तां० ७ । ३ । ६ ॥
„ बृहती हि संवत्सरः । श० ६ । ४ । २ । १० ॥
„ वाग्वै बृहती । श० १४ । ४ । १ । २२ ॥
„ यदस्यै वाचो बृहत्यै पतिस्तस्माद् बृहस्पतिः । जै० उ० २ । २ । ५ ॥
„ मनो बृहती । श० १० । ३ । १ । १ ॥
„ प्राणा वै बृहत्यः । ऐ० ३ । १४ ॥
„ व्यानो बृहती । तां० ७ । ३ । ८ ॥
„ आत्मा वै बृहती । ऐ० ६ । २८ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥
„ बार्हतं हि माध्यन्दिनं सवनम् । तां० ९ । ७ । ७ ॥
„ बार्हता वै प्रैषा बार्हता ग्रावाणः । श० १२ । ८ । २ । १४॥
„ बृहत्या वा एतदयनं यद् द्वादशाहः । ऐ० ४ । २४ ॥
„ एतद्वै रथन्तरस्य स्वमायतनं यद् बृहती । तां० ४ । ४ । १० ॥

बृहती (छन्दः) बृहत्यां भूयिष्ठानि सामानि भवन्ति । तां० ७ । ३ । १६॥

" सा बृहत्यभवत्तयेमान् लोकान् (देवाः) व्याप्नुवन् । तां० ७ । ४ । २ ॥

" एषा वै प्रतिष्ठिता बृहती या पुनःपदा ॥ तां० १७ । १ । १३ ॥

" पर्शवो बृहत्यः । श० ८ । ६ । २ । १० ॥

बृहदुक्षः प्रजापतिर्वै बृहदुक्षः । श० ४ । ४ । १ । १४ ॥

बृहद्भाः सुवर्गो वै लोको बृहद्भाः । तै० ३ । ३ । ७ । ६ ॥

बृहद्रथन्तरे (सामनी) अनड्वाहौ वा एतौ देवयानौ यजमानस्य यद् बृहद्रथन्तरे । तां० १२ । ४ । १४ ॥

" बृहद्रथन्तरे छन्दो द्यावापृथिवी देवते पक्षौ । श० १० । ३ । २ । ४ ॥

" एते वै यज्ञस्य नावौ संपारिण्यौ यद् बृहद्रथन्तरे ताभ्यामेव तत्संवत्सरं तरन्ति । ऐ० ४ । १३ ॥

" पादौ वै बृहद्रथन्तरे शिर एतद् (आरम्भणीयम्) अहः । ऐ० ४ । १३ ॥

" पक्षौ वै बृहद्रथन्तरे शिर एतद् (आरम्भणीयम्) अहः । ऐ० ४ । १३ ॥

" बृहद्रथन्तरे (महाव्रतस्य) पक्षौ । तां० १६ । ११ । ११ ॥

" उभे बृहद्रथन्तरे भवतस्तद्धि स्वाराज्यम् । तां० १९ । १३ । ५ ॥

" पशवो वै बृहद्रथन्तरे । तां० ७ । ७ । १ ॥

" प्राणापानौ वै बृहद्रथन्तरे । तां० ७ । ६ । १२ ॥

" ज्योगामयाविने उभे (बृहद्रथन्तरे) कुर्य्यादपक्रान्तौ वा एतस्य प्राणापानौ यस्य ज्योगामयति प्राणापानावेवास्मिन्दधाति । तां० ७ । ६ । १२ ॥

बृहद्वयः अश्वो वै बृहद्वयः । तै० ३ । ८ । ५ । ३ ॥ श० १३ । २ । ६ । १५ ॥

बृहन् एष वै शुक्रो य एष (सूर्यः) तपत्येष उ एव बृहन् । श० ४ । ५ । ६ । ६ ॥

बृहन्विपश्चित् (यजु० ११ । ४) प्रजापतिर्वै बृहन्विपश्चित् । श० ६ । ३ । १ । १६ ॥

बृहस्पतिः वाग्वै बृहती तस्या एष पतिस्तस्मादु बृहस्पतिः । श० १४ । ४ । १ । २२ ॥

,, यदस्यै वाचो बृहत्यै पतिस्तस्माद् बृहस्पतिः । जै० उ० २ । २ । ५ ॥

,, बृहस्पतिः (एवैनं) वाचं (सुवते) । तै० १ । ७ । ४ । १ ॥

,, अथ बृहस्पतये वाचे । नैवारं चरुं निर्वपति । श० ५ । ३ । ३ । ५ ॥

,, ये (प्रजापते रेतःपिण्डा दग्धाः सन्तः) ऽङ्गारा आसंस्ते ऽङ्गिरसो ऽभवन्यदङ्गाराः पुनरवशान्ता उददीप्यन्त तद् बृहस्पतिरभवत् । ऐ० ३ । ३४ ॥

,, स (बृहस्पतिः) एतं बृहस्पतये तिष्याय नैवारं चरुं पयसि निरवपत् । ततो वै स ब्रह्मवर्चस्यभवत् । तै० ३ । १ । ४ । ६ ॥

,, बृहस्पतेस्तिष्यः (नक्षत्रविशेषः) । तै० १ । ५ । १ । २ ॥ ३ । १ । १ । ५ ॥

,, (यजु० ३८ । ८) अयं वै बृहस्पतिर्यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १४ । २ । २ । १० ॥

,, एष (प्राणः) उ एव बृहस्पतिः । श० १४ । ४ । १ । २२ ॥

,, अथ यस्सो ऽपान आसीत्स बृहस्पतिरभवत् । जै० उ० २ । २ । ५ ॥

,, यश्चक्षुः स बृहस्पतिः । गो० उ० ४ । ११ ॥

,, द्युम्नꣳ हि बृहस्पतिः । श० ३ । १ । ४ । १६ ॥

,, बृहस्पतिरिव बुद्ध्या (भूयासम्) । मं० २ । ४ । १४ ॥

,, बृहस्पतिर्वै सर्वं ब्रह्म । गो० उ० १ । ३, ४ ॥

,, ब्रह्म वै बृहस्पतिः । ऐ० १ । १३ ॥ १ । १९ ॥ २ । ३८ ॥ ४ । ११ ॥ कौ० ७ । १० ॥ १२ । ८ ॥ १८ । २ ॥ श० ३ । १ । ४ । १५ ॥ ३ । ९ । १ । ११ ॥ जै० उ० १ । ३७ । ६ ॥

,, ब्रह्म बृहस्पतिः । गो० उ० ६ । ७ ॥

,, ब्रह्म वै देवानां बृहस्पतिः । तै० १ । ३ । ८ । ४ ॥ १ । ८ । ६ । ४ ॥

बृहस्पतिः बृहस्पतिर्ब्रह्म ब्रह्मपतिः । तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥
,, बृहस्पते ब्रह्मणस्पते । तै० ३ । ११ । ४ । २ ॥
,, बृहस्पतिर्वै देवानां ब्रह्मा । श० १ । ७ । ४ । २१ ॥ ४ । ६ । ६ । ७ ॥
,, बृहस्पतिर्ह वै देवानां ब्रह्मा । कौ० ६ । १३ ॥
,, बृहस्पतिर्वा आङ्गिरसो देवानां ब्रह्मा । गो० उ० १ । १ ॥
,, ते ऽङ्गिरस आदित्येभ्यः प्रजिघ्युः श्वः सुत्या नो याजयत न इति तेषां ह्यग्निर्दूत आस त आदित्या ऊचुरथास्माकमद्य सुत्या तेषां नस्त्वमेव (अग्ने !) होतासि, बृहस्पतिर्ब्रह्मा ऽयास्य उद्गाता, घोर आङ्गिरसो ऽध्वर्युरिति । कौ० ३० । ६॥
,, बृहस्पतिर्वै देवानामुद्गाता । तां० ६ । ५ । ५ ॥
,, तं (शर्यातं [? शार्याति] मानवं) देवा बृहस्पतिनोद्गात्रा दीक्षामहा इति पुरस्तादागच्छन् । जै० उ० २ । ७ । २ ॥
,, बृहस्पतिः पुर एता । तै० २ । ५ । ७ । ३ ॥
,, बृहस्पतिव देवानां पुरोहितः । ऐ० ८ । २६ ॥
,, धेना बृहस्पतेः पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥
,, बृहस्पतिर्विश्वैर्देवैः (उदक्रामत्) । ऐ० १ । २४ ॥
,, यजमानदेवत्यो वै बृहस्पतिः । तै० १ । ८ । ३ । १ ॥
,, बार्हस्पत्यो वा एष देवतया यो वाजपेयेन यजते । तै० १ । ३ । ६ । ८—९ ॥
,, बार्हस्पत्योऽष्टकपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥
,, एषा वा ऊर्ध्वा बृहस्पतेर्दिक् । श० ५ । ५ । १ । १२ ॥
,, बृहस्पतिः (श्रियः) ब्रह्मवर्चसम् (आदत्त) । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥
,, सः (बृहस्पतिः प्रजापतिं) अब्रवीत्क्रौञ्चं साम्नो वृणे ब्रह्मवर्चसमिति । जै० उ० १ । ५१ । १२ ॥
,, बृहस्पतेर्माध्यन्दिनः । तै० १ । ५ । ३ । २ ॥
,, मित्राबृहस्पती वै यज्ञपथः । श० ५ । ३ । २ । ४ ॥
,, शंयुर्ह वै बार्हस्पत्यः सर्वान् यज्ञाञ्छमयांचकार । कौ० ३ । ८ ॥

बृहस्पतिः शंयुर्ह वै बार्हस्पत्यो ऽञ्जसा यज्ञस्य सᳬंस्थां विदांचकार स देवलोकमपीयाय । तत्तवन्तर्हितमिव मनुष्येभ्य आस । श० १ । ६ । १ । २४ ॥

बृहस्पतिसव. स एष बृहस्पतिसवो, बृहस्पतिरकामयत देवानां पुरोधां (=पौरोहित्यं) गच्छेयमिति स एतेनायजत स देवानां पुरोधामगच्छत् । तां० १७ । ११ । ४ ॥

बेकुरा तस्यै (वाचे) जुहुयाद् बेकुरा नामासि । तां० ६ । ७ । ६ ॥

ब्रध्नः असौ वा आदित्यो ब्रध्नः । तै० ३ । ६ । ४ । १ ॥

ब्रध्नस्य विष्टपम् (ऋ० ८ । ६६ । ७) (=द्यौः), अदो वै ब्रध्नस्य विष्टपं यत्रासौ (सूर्यः) तपति । कौ० १७ । ३ ॥

,, स्वर्गो वै लोको ब्रध्नस्य विष्टपम् । ऐ० ४ । ४ ॥

ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशः (यजु० १४ । २३) संवत्सरो वाव ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिᳬंशस्तस्य चतुर्विंᳬंशतिरर्धमासाः सप्तऽर्तवो द्वे अहोरात्रे संवत्सर एव ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिᳬंशस्तद्यत्तमाह ब्रध्नस्य विष्टपमिति स्वाराज्यं वै ब्रध्नस्य विष्टपᳬं स्वाराज्यं चतुस्त्रिᳬंशः । श० ८ । ४ । १ । २३ ॥

ब्रध्नो ऽरुषः (यजु० २१ । ५) असौ वाऽ आदित्यो ब्रध्नो ऽरुषः । श० १३ । २ । ६ । १ ॥

ब्रह्म (वागिति) एतदेषां (नाम्नां) ब्रह्मैतद्धि सर्वाणि नामानि बिभर्ति । श० १४ । ४ । ४ । १ ॥

,, वाग्ब्रह्म । गो० पू० २ । १० (११) ॥

,, वाग्वै ब्रह्म । ऐ० ६ । ३ ॥ श० २ । १ । ४ । १० ॥ १४ । ४ ।१ । २३ ॥ १४ । ६ । १० । ५ ॥

,, वाग्धि ब्रह्म । ऐ० २ । १५ ॥ ४ । २१ ॥

,, वागिति तद्ब्रह्म । जै० उ० २ । ६ । ६ ॥

,, सा या सा वाग्ब्रह्मैव तत् । जै० उ० २ । १३ । २ ॥

,, ब्रह्म वै वाचः परमं व्योम । तै० ३ । ६ । ५ । ५ ॥

,, तस्यै वाचः सत्यमेव ब्रह्म । श० २ । १ । ४ । १० ॥

,, सत्यं ब्रह्म । श० १४ । ८ । ५ । १ ॥

ब्रह्म ब्रह्म वाऽ ऋतम् । श० ४ । १ । ४ । १० ॥
,, मनो ब्रह्म । गो० पू० २ । १० (११) ॥ ष० १ । ५ ॥
,, मनो वै सम्राट् ! परमं ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । १५ ॥
,, हृदयं वै सम्राट् ! परमं ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । १८ ॥
,, चक्षुर्ब्रह्म । गो० पू० २ । १० (११) ॥
,, चक्षुर्वै ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । ८ ॥
,, श्रोत्रं वै सम्राट् ! परमं ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । १२ ॥
,, श्रोत्रं वै ब्रह्म श्रोत्रेण हि ब्रह्म शृणोति श्रोत्रे ब्रह्म प्रतिष्ठितम् । ऐ० २ । ४० ॥
,, ब्रह्म वै गायत्री । ऐ० ४ । ११ ॥ कौ० ३ । ५ ॥
,, ब्रह्म हि गायत्री । तां० ११ । ११ । ६ ॥
,, ब्रह्म गायत्री । श० ४ । ४ । १ । १८ ॥
,, ब्रह्म वै प्रणवः । कौ० ११ । ४ ॥
,, ब्रह्म ह वै प्रणवः । गो० उ० ३ । ११ ॥
,, भूरिति वै प्रजापतिः ब्रह्माजनयत । श० २ । १ । ४ । १२ ॥
,, स (प्रजापतिः) श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत त्रयीमेव विद्याम् । श० ६ । १ । १ । ८ ॥
,, ततः (प्रजापतिः) ब्रह्मैव प्रथममसृज्यत त्रय्येव विद्या तस्मादाहुर्ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रथमजमिति । श० ६ । १ । १ । १० ॥
,, ब्रह्म वाऽ ऋक् । कौ० ७ । १० ॥
,, ब्रह्म वै मन्त्रः । श० ७ । १ । १ । ५ ॥
,, ब्रह्म (=मन्त्र इति सायणः) हि देवान् प्रच्यावयति । श० ३ । ३ । ४ । १७ ॥
,, वेदो ब्रह्म । जै० उ० ४ । २५ । ३ ॥
,, (=वेदः) सताक्षरं वै ब्रह्मऽर्गित्येकाक्षरं यजुरिति द्वे सामेति द्वेऽअथ यदतो ऽन्यद् ब्रह्मैव तद्, द्व्यक्षरं वै ब्रह्म तदेतत्सर्वं सप्ताक्षरं ब्रह्म । श० १० । २ । ४ । ६ ॥
,, एतद्ध यजुः (उर्वन्तरिक्षमन्वेमीति) ब्रह्म रक्षोहा । श० ४ । १ । १ । २० ॥
,, ब्रह्म वै प्रजापतिः । श० १३ । ६ । २ । ८ ॥

बृह्म ब्रह्म वै बृहस्पतिः । कौ० ७ । १० ॥ १२ । ८ ॥ १८ । २ ॥ ऐ० १ । १३ ॥ १ । १६ ॥ २ । ३८ ॥ ४ । ११ ॥ श० ३ । १ । ४ । १५ ॥ ३ । ६ । १ । ११ ॥ जै० उ० १ । ३७ । ६ ॥

" ब्रह्म बृहस्पतिः । गो० उ० ६ । ७ ॥

" ब्रह्म वै देवानां बृहस्पतिः । तै० १ । ३ । ८ । ४ ॥ १ । ८ । ६ । ४ ॥

" बृहस्पतिर्वै सर्वं ब्रह्म । गो० उ० १ । ३, ४ ॥

" बृहस्पतिर्ब्रह्म ब्रह्मपतिः । तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥

" ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिः । कौ० ८ । ५ ॥ ६ । ५ ॥ तां० १६ । ५ । ८ ॥

" ब्रह्म ब्रह्मा ऽभवत्स्वयम् । तै० ३ । १२ । ६ । ३ ॥

" ब्रह्म ह वै ब्राह्मणं पुष्करे ससृजे । गो० पू० १ । १६ ॥

" चन्द्रमा वै ब्रह्म । ऐ० २ । ४१ ॥

" आदित्यो वै ब्रह्म । जै० उ० ३ । ४ । ६ ॥

" (यजु० १३ । ३) असौ वाऽ आदित्यो ब्रह्म । श० ७ । ४ । १ । १४ ॥ १४ । १ । ३ । ३ ॥

" ब्रह्माग्निः । श० १ । ३ । ३ । १६ ॥

" ब्रह्म वा अग्निः । कौ० ६ । १, ५ ॥ १२ । ८ ॥ श० २ । ५ । ४ । ८ ॥ ५ । ३ । ५ । ३२ ॥ तै० ३ । ६ । १६ । ३ ॥

" ब्रह्म ह्यग्निः । श० १ । ५ । १ । ११ ॥

" अग्निरु वै ब्रह्म । श० ८ । ५ । १ । १२ ॥

" अग्निरेव ब्रह्म । श० १० । ४ । १ । ५ ॥

" (यजु० १७ । १४) अयमग्निर्ब्रह्म । श० ६ । २ । १ । १५ ॥

" अग्निर्ह वै ब्रह्मणो वत्सः । जै० उ० २ । १३ । १ ॥

" ब्रह्म ह्यग्निस्तस्मादाह ब्राह्मणेति । श० १ । ४ । २ । २ ॥

" मुखꣳ ह्येतदग्नेर्यद् ब्रह्म । श० ६ । १ । १ । १० ॥

" अथ यत्रैतदङ्गाराश्चाकाशयन्तऽ इव । तर्हि हैष (अग्निः) भवति ब्रह्म । श० २ । ३ । २ । १३ ॥

" अयं वाऽ अग्निर्ब्रह्म च क्षत्रं च । श० ६ । ६ । ३ । १५ ॥

" अग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञः । श० ३ । २ । २ । ७ ॥

" ब्रह्म वै यज्ञः । ऐ० ७ । २२ ॥

" ब्रह्म हि यज्ञः । श० ५ । ३ । २ । ४ ॥

ब्रह्म ब्रह्म यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । १५ ॥

,, तस्मादपि (दीक्षितं) राजन्यं वा वैश्यं वा ब्राह्मण इत्येव ब्रूयाद् ब्रह्मणो हि जायते यो यज्ञाज्जायते । श० ३ । २ । १ । ४० ॥

,, ब्रह्म वै वाजपेयः । तै० १ । ३ । २ । ४ ॥

,, अयं वै ब्रह्म यो ऽयं (वायुः) पवते । ऐ० ८ । २८ ॥

,, प्राणो वै सम्राट् ! परमं ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । ३ ॥

,, तद्यद्ध ब्रह्म स प्राणः । जै० उ० १ । ३३ । २ ॥

,, प्राणा वै ब्रह्म । तै० ३ । २ । ८ । ८ ॥

,, प्राणो वै ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । २ ॥ जै० उ० ३ । ३८ । २ ॥

,, प्राणा उ वै ब्रह्म । श० ८ । ४ । १ । ३ ॥

,, प्राणापानौ ब्रह्म । गो० पू० २ । १० । (११) ॥

,, ब्रह्म हि पूर्व्वं क्षत्रात् । तां० ११ । १ । २ ॥

,, सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद्ब्रह्म । श० १४ । ४ । २ । २३ ॥

,, ब्रह्मणः क्षत्रं निर्म्मितम् । तै० २ । ८ । ८ । ६ ॥

,, तद्यत्र वै ब्रह्मणः क्षत्रं वशमेति तद्राष्ट्रं समृद्धं तद्वीरवदाहास्मिन् वीरो जायते । ऐ० ८ । ६ ॥

,, अभिगन्तैव ब्रह्म कर्ता क्षत्रियः । श० ४ । १ । ४ । १ ॥

,, ब्रह्म वै ब्राह्मणः । तै० ३ । ६ । १४ । २ ॥ श० १३ । १ । ५ । ३ ॥

,, ब्रह्म हि ब्राह्मणः । श० ५ । १ । ५ । २ ॥

,, ब्रह्मणो वा एतद्रूपं यद्ब्राह्मणः । श० १३ । १ । ५ । २ ॥

,, ब्रह्म हि वसन्तः (ऋतुः) । श० २ । १ । ३ । ५ ॥

,, ब्रह्म वै रथन्तरम् । ऐ० ८ । १, २ ॥ तां० ११ । ४ । ६ ॥

,, विद्युद्ध्येव ब्रह्म । श० १४ । ८ । ७ । १ ॥

,, ब्रह्मैव मित्रः । श० ४ । १ । ४ । १ ॥

,, ब्रह्म हि मित्रः । श० ४ । १ । ४ । १० ॥ ५ । ३ । २ । ४ ॥

,, ब्रह्म वै पर्णः । तै० १ । ७ । १ । ६ ॥ ३ । २ । १ । १ ॥

,, देवानां ब्रह्मवादं वदतां यत् । उपाश्रृणोः (हे पर्ण ! त्वम्) सुश्रवा वै श्रुतोसि । तन्मे मामाविशतु ब्रह्मवर्चसम् । तै० १ । २ । १ । ६ ॥

ब्रह्म ब्रह्म वै पलाशः। श० १।३।३।१६॥५।२।४।१८॥६।६।३।७॥

„ ब्रह्म वै पौर्णमासी क्षत्रममावास्या। कौ० ४।८॥

„ यदमृतं तद्ब्रह्म। गो० पू० ३।४॥

„ अथ यद्ब्रह्म तदमृतम्। जै० उ० १।२५।१०॥

„ अभयं वै ब्रह्माभयꣳ हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेद। श० १४।७।२।३१॥

„ ब्रह्म वै भूतानां ज्येष्ठं तेन को ऽर्हति स्पर्द्धितुम्। तै० २।८।८।१०॥

„ तस्माद्दाहुर्ब्रह्मैव देवानाꣳ श्रेष्ठमिति। श० ८।४।१।३॥

„ तदेतद् ब्रह्म यशश्श्रिया परिवृढम्। ब्रह्म ह तु सन् यशसा श्रिया परिवृढो भवति य एवं वेद। जै० उ० ४।२४।११॥

„ षोडशकलं वै ब्रह्म। जै० उ० ३।३८।८॥

„ सच्चाऽसच्चाऽसच्च सच्च वाक् च मनश्च [मनश्च] वाक् च चक्षुश्च श्रोत्रं च श्रोत्रं च चक्षुश्च श्रद्धा च तपश्च तपश्च श्रद्धा च तानि षोडश। षोडशकलम्ब्रह्म। स य एवमेतत्षोडशकलम्ब्रह्म वेद तमेवैतत्षोडशकलम्ब्रह्माप्येति। जै० उ० ४।२५।१-२॥

„ कतम एको देव इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते। श० १४।६।६।१०॥

„ ब्रह्म देवानजनयत्। तै० २।८।८।९॥

„ ब्रह्मणो वै रूपमहः क्षत्रस्य रात्रिः। तै० ३।६।१४।३॥

„ ब्रह्मणो वाऽ एतद्रूपं यदहः। श० १३।१।५।४।

„ द्वे वै ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चैवामूर्त्तञ्च। श० १४।५।३।१॥

„ तदेतन्मूर्तम् (ब्रह्मणो रूपम्) यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षाच्च। श० १४।५।३।२॥

„ इदमेव मूर्त्तं (ब्रह्मणो रूपम्) यदन्यत्प्राणाच्च यश्चायमन्तरात्मन्नाकाशः। श० १४।५।३।६॥

„ अथामूर्त्तम (ब्रह्मणो रूपम्)। वायुश्चान्तरिक्षं च। श० १४।५।३।४॥

„ अथामूर्तम् (ब्रह्मणो रूपम्)। प्राणश्च यश्चायमन्तराकाशः। श० १४।५।३।८॥

ब्रह्म ब्रह्मैव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, तस्माद्राहुर्ब्रह्मणा द्यावापृथिवी विष्टब्धेऽइति । श० ८ । ४ । १ । ३॥

,, तद् (ब्रह्म) इदमन्तरिक्षम् । जै० उ० २ । ६ । ६ ॥

,, ब्रह्म वै त्रिवृत् । तां० २ । १६ । ४ ॥ १९ । १७ । ३ ॥ २३ । ७ । ५ ॥ जै० उ० ३ । ४ । ११ ॥

,, ब्रह्म तपसि (प्रतिष्ठितम्) । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥

,, (हे राजन्) त्वं ब्रह्मासीतीतरः (ऋत्विक्) प्रत्याह वरुणो ऽसि सत्यौजा इति । श० ५ । ४ । ४ । १० ॥

,, स होवाच गार्ग्यः । यश्चायमात्मनि (शरीरे) पुरुषः एतमेवाहं ब्रह्मोपासऽ इति स होवाचाजातशत्रुर्मा मैतस्मिन्त्संवदिष्ठा आत्मन्वीति वाऽ अहमेतमुपासऽ इति । श० १४ । ५ । १ । १३ ॥ ('ब्राह्मणः' शब्दमपि पश्यत)

ब्रह्मचर्यम् तस्मा एतत्प्रोवाचाष्टाचत्वारिंशद्वर्षं सर्ववेदब्रह्मचर्यं, तच्चतुर्धा वेदेषु व्यूह्य द्वादश वर्षं ब्रह्मचर्यं द्वादश वर्षाण्यवरार्द्धमपि स्नायंश्चरेद्यथाशक्त्यपरम् । गो० पू० २ । ५ ॥

ब्रह्मचारी अथ हैतद्देवानां परिपूतं यद्ब्रह्मचारी । गो० पू० २ । ७ ॥

,, स (ब्रह्मचारी) यन्मृगाजिनानि वस्ते......स यदहरहराचार्याय कर्म करोति......स यत्सुषुप्सुर्निद्रां निनयति...... स यत्क्रुद्धो वाचा न कंचन हिनस्ति पुरुषात्पुरुषात्पापीयानिव मन्यमानः......अथाद्भिः श्लाघमानो न स्नायात्.........तां (कुमारीं) नग्नां नोद्वीक्षेतेति वेति वा मुखं विपरिधापयेत् ......तासां (ओषधीनां) पुण्यं गन्धं प्रच्छिद्य नोपजिघ्रेत् । गो० पू० २ । २ ॥

,, ब्रह्मचारी भैक्षं चरति । सं० ५ ॥

,, स (ब्रह्मचारी) एव विद्वान्यस्या एव भूयिष्ठꣳ श्लाघेत तां भिक्षेतेत्याहुस्तल्लोक्यमिति स (ब्रह्मचारी) यद्यन्यां भिक्षितव्यां न विन्देदपि स्वामेवाचार्यजायां भिक्षेताथो स्वां मातरं नैनꣳ (ब्रह्मचारिणं) सप्तमी (रात्रिः) अभिक्षितातीयात्तमेवं विद्वाꣳसमेवं चरन्तꣳ सर्वे वेदा आविशन्ति यथा ह वाऽ अग्निः समिद्धो रोचतऽ एवꣳ ह वै स स्नात्वा रोचते यऽ एवं विद्वान्ब्रह्मचर्यं चरति । श० ११ । ३ । ३ । ७ ॥

ब्रह्मचारी सप्तमीं नातिनयेत्सप्तमीमतिनयन्न ब्रह्मचारी भवति, समिद्धेक्षे सप्तरात्रमचरितवान् ब्रह्मचारी पुनरुपनेयो भवति । गो० पू० २ । ६ ॥

„ (ब्रह्मचारी) अहीर्भूत्वा भिक्षते य एवास्य मृत्यौ पादस्तमेव तेन परिक्रीणाति तꣳ संस्कृत्यात्मन्धत्ते । श० ११ । ३ । ३ । ५ ॥

„ ब्रह्म वै मृत्यवे प्रजाः प्रायच्छत् । तस्मै ब्रह्मचारिणमेव न प्रायच्छत्सो (मृत्युः) ऽब्रवीदस्तु मह्यमप्येतस्मिन्भाग इति यामेव रात्रिꣳ समिधं नाहरातौ इति तस्माद्यां रात्रिं ब्रह्मचारी समिधं नाहरत्यायुष एव तामवदाय वसति तस्माद्ब्रह्मचारी समिधमाहरेन्नेदायुषो ऽवदाय वसानीति । श० ११ । ३ । ३ । १ ॥

„ ब्रह्म ह वै प्रजा मृत्यवे सम्प्रायच्छत्, ब्रह्मचारिणमेव न सम्प्रददौ, स होवाचास्यामस्मिन्निति किमिति यां रात्रीं समिधमनाहृत्य वसेत्तामायुषो ऽवरुन्धीयेति, तस्माद्ब्रह्मचार्य्यहरहः समिध आहृत्य सायं प्रातरग्निं परिचरेत् । गो० पू० २ । ६ ॥

„ (ब्रह्मचारी) न श्मशानमातिष्ठेत्, स चेदभितिष्ठेदुदकं हस्ते कृत्वा । गो० पू० २ । ७ ॥

„ (ब्रह्मचारी) अध एवासीत, अधः शयीत, अधस्तिष्ठेदधो व्रजेदेवं ह स्म वै तत्पूर्वे ब्राह्मणा ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति । गो० पू० २ । ४ ॥

„ (ब्रह्मचारी) नोपरिशायी स्यान्न गायनो न नर्त्तनो न सरणो न निष्ठीवेत् । गो० पू० २ । ७ ॥

„ तदाहुः । न ब्रह्मचारी सन्मध्वश्नीयादोषधीनां वाऽ एष परमो रसो यन्मधु नेदन्नाद्यस्यान्तं गच्छानीत्यथ ह स्माह श्वेतकेतुरारुणेयो ब्रह्मचारी सन्मध्वश्नंस्त्रय्यै वाऽ एतद्विद्यायै शिष्टं यन्मधु...यथा ह वाऽ ऋचं वा यजुर्वा साम वाभिव्याहरेत्तादृक्तद्य एवं विद्वान्ब्रह्मचारी सन्मध्वश्नाति तस्मादु काममेवाश्नीयात् । श० ११ । ५ । ४ । १८ ॥

ब्रह्मचारी तस्मादुत ब्रह्मचारी मधु नाऽश्नीयाद्वेदस्य स्राव इति। कामं ह त्वाचार्यदत्तमश्नीयात्। जै० उ० १। ५४। १॥

" तस्माद्ब्रह्मचारिण आचार्यं गोपायन्ति । गृहान्पशून्नेन्नो ऽपहरानिति। श० ३। ६। २। १५॥

" अथ (आचार्यः) अस्मै (ब्रह्मचारिणे) सावित्रीमन्वाह। श० ११। ५। ४। ६॥

" पञ्च ह वा एते ब्रह्मचारिण्यग्नयो धीयन्ते द्वौ पृथग्घस्तयोर्मुखं हृदय उपस्थ एव पञ्चमः। गो० पू० २। ४॥

ब्रह्मणस्पतिः एष (प्राणः) उऽएव ब्रह्मणस्पतिः। वाग्वै ब्रह्म तस्या एष पतिस्तस्मादु ह ब्रह्मणस्पतिः। श० १४। ४। १। २३॥

" (यजु० ३७। ७) एष वै ब्रह्मणस्पतिर्य एष (सूर्यः) तपति। श० १४। १। २। १५॥

" बृहस्पते ब्रह्मणस्पते। तै० ३। ११। ४। २॥

" ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिः। कौ० ८। ५॥ ९। ५॥ तां० १६। ५। ८॥

" श्रोत्रं ब्राह्मणस्पत्यः (प्रगाथः)। कौ० १५। ३॥

ब्रह्मणो वत्सः अग्निर्ह वै ब्रह्मणो वत्सः। जै० उ० २। १३। १॥

ब्रह्म पूर्व्यम् (यजु० ११। ४) प्राणो वै ब्रह्म पूर्व्यम्। श० ६। ३। १। १७॥

ब्रह्मयज्ञः स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञः। श० ११। ५। ६। २॥

" तस्य वाऽ एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य वागेव जुहूर्मन उपभृच्चक्षुर्ध्रुवा मेधा स्रुवः सत्यमवभृथः स्वर्गो लोक उदयनम्। श० ११। ५। ६। ३॥

" तस्य वाऽ एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य चत्वारो वषट्कारा यद्वातो वाति यद्विद्योतते यत्स्तनयति यदवस्फूर्जति तस्मादेवंविद्वाते वाति विद्योतमाने स्तनयत्यवस्फूर्जत्यधीयीतैव वषट्काराणामच्छम्बट्काराय। श० ११। ५। ६। ८॥ (आप० धर्मसूत्रे। १। ४। १२॥ मनु० २। १०६॥) 'स्वाध्यायः' शब्दमपि पश्यत॥

ब्रह्मवर्चसम् इरम्भा इति ब्रह्मवर्चसकामस्य। भातीव हि ब्रह्मवर्चसम्। जै० उ० ३। १३। १॥

" ब्रह्मवर्चसं वै रथन्तरम्। तै० २। ७। १। १॥

ब्रह्मवेदः ब्रह्मवेदः (=अथर्ववेदः) एव सर्वम्। गो० पू० ५। १५॥ ('अथर्ववेदः' शब्दमपि पश्यत)।

ब्रह्महत्या एव ह वै साक्षान्मृत्युर्यद्ब्रह्महत्या । श० १३ । ३ । ५ । ३ ॥

ब्रह्मा यमेवामुं त्रय्यै विद्यायै तेजो रसं प्रावृहत्तेन ब्रह्मा ब्रह्मा भवति । कौ० ६ । ११ ॥

" अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियत इति त्रय्या विद्ययेति । ऐ० ५ । ३३ ॥

" अथ केन ब्रह्मत्वं (क्रियते) इत्यनया (ऋग्यजुःसामाख्यया) त्रय्या विद्ययेति ह ब्रूयात् । श० ११ । ५ । ८ । ७ ॥

" तस्माद्यो ब्रह्मनिष्ठः स्यात्तं ब्रह्माणं कुर्वीत । गो० उ० १। ३ ॥

" एष ह वै विद्वान्त्सर्वविद् ब्रह्मा यद् भृग्वङ्गिरोविद् (=अथर्ववेदविद्) । गो० पू० २ । १८ ॥ ५ । ११ ॥

" यज्ञस्य हैष भिषग्यद् ब्रह्मा यज्ञायैव तद्भेषजं कृत्वा हरति । ऐ० ५ । ३४ ॥

" ब्रह्मा वाऽ ऋत्विजां भिषक्तमः । श० १ । ७ । ४ । १९ ॥ १४ । २ । २ । १९ ॥

" स (ब्रह्मा) यदत ऊर्ध्वमसꣳस्थितं यज्ञस्य तदभिगोपायति । श० १ । ७ । ४ । १८ ॥

" ब्रह्मा वै यज्ञस्य दक्षिणत आस्तेऽभिगोप्ता । श० १ । ७ । ४ ।१८॥

" ब्रह्मा हि यज्ञं दक्षिणतोऽभिगोपायति । श ५ । ४। ३ । २६ ॥

" ब्रह्मा वै यज्ञस्य दक्षिणत आस्ते ब्रह्मा यज्ञं दक्षिणतो गोपायति । श० । १२ । ६ । १ । ३८ ॥

" दक्षिणत आयतनो वै ब्रह्मा । तै० ३ । ९ । ५ । १ ।

" तस्मात्स (ब्रह्मा) तूष्णीमास्ते । जै० उ० ३ । १६ । २ ॥

" ब्रह्मा वा ऋत्विजामनिरुक्तः । तां० १८ । १ । २३ ॥

" बृहस्पतिर्ह वै देवानां ब्रह्मा । कौ० ६ । १३ ॥

" बार्हस्पत्यो ब्रह्मा । श० १३ । २ । ६ । ९ ॥

" बार्हस्पत्यो वै ब्रह्मा । तै० ३ । ९ । ५ । १ ॥

" अर्वावसुर्ह वै देवानां ब्रह्मा । कौ० ६ । १३ ॥

" अर्वाग्वसुर्ह वै देवानां ब्रह्मा पराग्वसुरसुराणाम । गो०उ०१।१॥

" शरद्ब्रह्मा तस्माद्यदा सस्यं पच्यते ब्रह्मण्वत्यः प्रजा इत्याहुः । श० ११ । २ । ७ । ३२ ॥

" चन्द्रमा ब्रह्मा (आसीत्) । गो० पू० १ । १३ ॥

ब्रह्मा चन्द्रमा वै ब्रह्मा । श० १२ । १ । १ । २ ॥ गो० पू० २ । २४ ॥
,, चन्द्रमा वै ब्रह्माऽधिदैवं मनोऽध्यात्मम् । गो०पू० ४ । २ ॥
,, तस्य (पुरुषस्य) मन एव ब्रह्मा । कौ० १७ । ७ ॥
,, मन एव ब्रह्मा । गो० पू० २ । १० ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥
,, मनो ब्रह्मा । गो० पू० २ । १० (११) ॥
,, मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा । श० १४ । ६ । १ । ७ ॥
,, हृदयं (वै यज्ञस्य) ब्रह्मा । श० १२ । ८ । २ । २३ ॥
,, चक्षुर्ब्रह्मा । तै० २ । १ । ५ । ६ ॥
,, अग्निर्वै ब्रह्मा । ष० १ । १ ॥
,, बलं वै ब्रह्मा । तै० ३ । ८ । ५ । २ ॥
,, ब्रह्म ब्रह्माऽभवत्स्वयम् । तै० ३ । १२ । ६ । ३ ॥
,, ब्रह्म ह वै ब्रह्माणं पुष्करे ससृजे । गो० पू० १ । १६ ॥
,, या सा प्रथमा (ओङ्कारस्य) मात्रा ब्रह्मदेवत्या रक्ता वर्णेन यस्तां ध्यायेत नित्यं स गच्छेद्ब्राह्मं पदम् । गो० पू० १ । २५ ॥
,, प्रजापतिर्वै ब्रह्मा । गो० उ० ५ । ८ ॥
,, प्राजापत्यो ब्रह्मा । तै० ३ । ३ । ८ । ३ ॥
,, प्राजापत्यो वै ब्रह्मा । गो० उ० ३ । १८ ॥
,, प्राणदेवत्यो वै ब्रह्मा । ष० २ । ६ ॥
,, ततो ब्रह्मा जनकः (वैदेहः) आस । श० ११ । ६ । २ । १० ॥

ब्रह्मा कृष्णः (यजु० २३ । १३) चन्द्रमा वै ब्रह्मा कृष्णः । श० १३ । २ । ७ । ७ ॥

ब्राह्मणः ब्राह्मणो वै सर्वा देवताः । तै० १ । ४ । ४ । २, ४ ॥
,, एते वै देवा अहुतादो यद् ब्राह्मणाः । गो० उ० १ । ६ ॥
,, एता वै प्रजा हुतादो यद् ब्राह्मणाः । ऐ० ७ । १९ ॥
,, अथ हैते मनुष्यदेवा ये ब्राह्मणाः । ष० १ । १ ॥ ('देवाः' शब्दमपि पश्यत)
,, दैव्यो वै वर्णो ब्राह्मणः । तै० १ । २ । ६ । ७ ॥
,, आहुतिर्वा एषा यद्ब्राह्मणस्य मुखम् । तां० १६ । ६ । १४ ॥
,, आग्नेयो ब्राह्मणः । तां० १५ । ४ । ८ ॥
,, आग्नेयो वै ब्राह्मणः । तै० २ । ७ । ३ । १ ॥

ब्राह्मणः एष वा अग्निर्वैश्वानरः । यद्ब्राह्मणः । तै० ३ । ७ । ३ । २ ॥

„ एष ह वै सान्तपनोऽग्निर्यद् ब्राह्मणो यस्य गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनगोदानचूडाकरणोपनयनाप्लवनाग्निहोत्रव्रतचर्यादीनि कृतानि भवन्ति स सान्तपनः । गो० पू० २ । २३ ॥

„ अग्ने महाँ असि ब्राह्मण भारत । कौ० ३ । २ ॥ श० १ । ४ । २ । २ ॥ तै० ३ । ५ । ३ । १ ॥

„ ब्रह्मणो वाऽ एतद्रूपं यद् ब्राह्मणः । श० १३ । १ । ५ । २ ॥

„ ब्रह्म वै ब्राह्मणः । तै० ३ । ९ । १४ । २ ॥ श० १३ । १ । ५ । ३ ॥

„ ब्रह्म हि ब्राह्मणः । श० ५ । १ । ५ । २ ॥

„ एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाॅं राजा (यजु० १० । १८) इति ··· तस्माद् ब्राह्मणो नाद्यः सोमराजा हि भवति । श० ५ । ४ । २ । ३ ॥

„ सोमराजानो ब्राह्मणाः । तै० १ । ७ । ४ । २ ॥ १ । ७ । ६ । ७ ॥

„ सौम्यो हि ब्राह्मणः । तै० २ । ७ । ३ । १ ॥

„ सोमो वै ब्राह्मणः । तां० २३ । १६ । ५ ॥

„ स यदि सोमं, ब्राह्मणानां स भक्षो ब्राह्मणांस्तेन भक्षेण जिन्विष्यसि ब्राह्मणकल्पस्ते प्रजायामाजनिष्यत आदाय्यापाय्यावसायी यथाकामप्रयाप्यो यदा वै क्षत्रियाय पापं भवति ब्राह्मणकल्पोऽस्य प्रजायामाजायत ईश्वरो हाऽस्माद् द्वितीयो वा तृतीयो वा ब्राह्मणतामभ्युपैतोः स ब्रह्मबन्धवे न जिज्यूषितः । ऐ० ७ । २९ ॥

„ अशिव इव वाऽ एष भक्षो यत्सुरा ब्राह्मणस्य । श० १२ । ८ । १ । ५ ॥

„ स (क्षत्रियः) ह दीक्षमाण एव ब्राह्मणतामभ्युपैति । ऐ० ७ । २३ ॥

„ तस्मादपि (दीक्षितं) राजन्यं वा वैश्यं वा ब्राह्मण इत्येव ब्रूयाद् ब्रह्मणो हि जायते यो यज्ञाज्जायते । श० ३ । २ । १ । ४० ॥

„ य उ वै कश्च यजते ब्राह्मणीभूयेवैव यजते । श० १३ । ४ । १ । ३ ॥

ब्राह्मणः तस्माद् ब्राह्मणो नैव गायेन्न नृत्येन्माग्लागृधः स्यात् । गो० पू० २ । २१ ॥

" तद्ध्येव ब्राह्मणेनैष्टव्यं यद्ब्रह्मवर्चसी स्यादिति । श० १ । ९ । ३ । १६ ॥

" यो वै ब्राह्मणानामनूचानतमः स एषां वीर्यवत्तमः । श० ४ । ६ । ६ । ५ ॥

" इदं वै यस्मिन्वसति ब्राह्मणो वा राजा वा श्रेयान्मनुष्यो न्वेव तमेव नार्हति वक्तुमिदं मे त्वं गोपाय प्राहं वत्स्यामीति । श० २ । ४ । १ । १० ॥

" तस्माद्ब्राह्मणं प्रथमं यन्तमितरे त्रयो वर्णाः पश्चादनुयन्ति । श० ६ । ४ । ४ । १३ ॥

" तस्मान्न कदा चन ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च वैश्यं च शूद्रं च पश्चादन्वितः । श० ६ । ४ । ४ । १३ ॥

" यो वै राजा ब्राह्मणादबलीयानमित्रेभ्यो वै स बलीयान् भवति । श० ५ । ४ । ४ । १५ ॥

" प्रतिलोमं वै तद्यद्ब्राह्मणः क्षत्रियमुपेयात् । श० १४ । ५ । १ । १५ ॥

" तत्तदवक्लृप्तमेव । यद् ब्राह्मणोऽराजन्यः स्याद्यद्यु राजानं लभेत समृद्धं तत् । श० ४ । १ । ४ । ६ ॥

" तस्मादेष ब्राह्मणयज्ञ एव यत्सौत्रामणी । श०१२ । ९ । १ । १॥

" इष्टापूर्त्तं वै ब्राह्मणस्य । तै० ३ । ९ । १४ । ३ ॥ श० १३ । १ । ५ । ६ ॥

" यज्ञ उवाच ब्राह्मणस्यैव तृप्तिमनु तृप्येयमिति । श० १ । ७ । ३ । २८ ॥

" एतानि वै ब्रह्मण आयुधानि यद्यज्ञायुधानि । ऐ० ७ । १९ ॥

" तस्य ब्राह्मणस्यानग्निकस्य नैव दैवं दद्यान्न पित्र्यं न चास्य स्वाध्यायाशिषो न यज्ञ आशिषः स्वर्गङ्गमा भवन्ति । गो० पू० २ । २३ ॥

" सर्वस्यैव न वेद यो ब्राह्मणः सन्नश्वमेधस्य न वेद, सो ऽब्राह्मणः । श० १३ । ४ । २ । १७॥

ब्राह्मणः यद्ब्राह्मणः (=ब्राह्मणनक्षत्रम्) एव रोहिणी। तस्मादेव।
तै० २।७।६।४॥

,, ब्राह्मणो वा अष्टाविꣳशो नक्षत्राणाम्। तै० १।५।३।४॥

,, गायत्रो वै ब्राह्मणः। ऐ० १।२८॥

,, गायत्रछन्दा वै ब्राह्मणः। तै० १।१।६।६॥

,, तस्माद् ब्राह्मणो मुखेन वीर्य्यङ्करोति मुखतो हि सृष्टः। तां० ६।१।६॥

,, ब्राह्मणो मनुष्याणां (मुखम्)। तां० ६।१।६॥

,, अस्य सर्वस्य ब्राह्मणो मुखम्। श० ३।६।१।१४॥

,, ब्राह्मणो वा उपद्रष्टा। गो० उ० २।१६॥

,, ब्राह्मणो वै प्रजानामुपद्रष्टा। तै० २।२।१।३, ५॥

,, ब्राह्मणो हि रक्षसामपहन्ता। श० १।१।४।६॥ १।२।१।८॥ १।३।४।१३॥

,, वसन्तो वै ब्राह्मणस्यर्तुः। तै० १।१।२।६॥ श० १३।४।१।३॥

,, तस्माद् ब्राह्मणो वसन्तऽ आदधीत ब्रह्म हि वसन्तः (ऋतुः)। श० २।१।३।५॥

,, सामवेदो ब्राह्मणानां प्रसूतिः। तै० ३।१२।९।२॥

,, बार्हद्गिरं (साम) ब्राह्मणाय (कुर्य्यात्)। तां० १३।४।१८॥

,, ब्राह्मणेषु ह पशवो ऽभविष्यन्। श० ४।४।१।१८॥ ('ब्रह्म' शब्दमपि पश्यत)

ब्राह्मणाच्छंसी ऐन्द्राबार्हस्पत्यं ब्राह्मणाच्छंसिन उक्थं भवति। गो० उ० ४।१४, १६॥

,, ऐन्द्रो ब्राह्मणाच्छंसी। तै० १।७।६।१॥ श० ९।४।३।७॥

,, आत्मा वै ब्राह्मणाच्छंसी। कौ० २८।६॥

,, वैरूपं ब्राह्मणाच्छंसिनः। कौ० २५।११॥

,, वसिष्ठाद्ब्राह्मणाच्छंसी (न प्रच्यवते)। गो० उ० ३।२३॥

,, त्रैष्टुभो ब्राह्मणाच्छꣳसी। तां० ५।१।१४॥

ब्राह्मणी यौर्ब्राह्मणी। जै० उ० ३।४।६॥

(भ)

भक्षः प्राणो वै भक्षः। श० ४। २। १। २९॥

भगः (यजु० ११। ७) यशो भगः। श० ६। ३। १। १६॥

" तस्य (भगस्य) चक्षुः परापतत्तस्मादाहुरन्धो वै भग इति। गो० उ० १। २॥

" तस्य (भगस्य) अक्षिणी निर्जघान तस्मादाहुरन्धो भग इति। कौ० ६। १३॥

" तस्मादाहुरन्धो भग इति। श० १। ७। ४। ६॥

" भगस्य वा एतन्नक्षत्रं यदुत्तरे फल्गुनी। तै० १। १। २। ४॥ १। ५। १। २॥ ३। १। १। ८॥

भद्रः (अथर्व० ७। ९। १) अयं वै लोको भद्रः। ऐ० १। १३॥

भद्रम् (यजु० १९। ११) अन्नं वै भद्रम्। तै० १। ३। ३। ६॥

" भद्रमेभ्यो ऽभूदिति कल्याणमेवैतन्मानुष्यै वाचो वदति। श० ४। ६। ९। १९॥

भद्रम् (साम) गोतमस्य भद्रं (साम) भवति। तां० १३। १२। ६॥

" आशिषमेवास्मा (यजमानाय) एतेन (भद्रेण साम्ना) आशास्ते। तां० १३। १२। ७॥

" एतेन वै गोतमो जेमानं महिमानमगच्छत् तस्माद्ये च पराञ्चो गोतमाद्ये चार्वाञ्चस्त उभये गोतम ऋषयो ब्रुवते। तां० १३। १२। ८॥

भद्रा (प्रजापतेस्तनूविशेषः) भद्रा तत्सोमः। ऐ० ५। २५॥ कौ० २७। ५॥

भरतः (यजु० १२। ३४) प्रजापतिर्वै भरतः, स हीदꣳ सर्वं बिभर्ति। श० ६। ८। १। १४॥

" स ह्येष (सूर्यः) भर्ता। श० ४। ६। ७। २१॥

" अग्निर्वै भरतः स वै देवेभ्यो हव्यं भरति। कौ० ३। २॥

" एष (अग्निः) हि देवेभ्यो हव्य भरति तस्माद्भरतो ऽग्निरित्याहुः। श० १। ४। २। २॥ १। ५। १। ८॥

" एष (अग्निः) उ वा ऽ इमाः प्रजाः प्राणो भूत्वा बिभर्त्ति तस्माद्वेवाह भरतवदिति। श० १। ५। १। ८॥

" प्राणो भरतः। ऐ० २। २४॥

भरतः (दौष्यन्तिः) तस्मादु भरतो दौष्यन्तिः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन्परीयायाश्वैरु च मेध्यैरीजे । ऐ० ८ । २३ ॥

,, अष्टासप्ततिं भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु । गङ्गायां वृत्रघ्ने ऽबध्नात्पञ्चपञ्चाशतं हयान् । ऐ० ८ । २३ ॥ श० १३ । ५ । ४ । ११ ॥

,, शकुन्तला नाडपित्यप्सरा भरतं दधे परः सहस्रानिन्द्रायाश्वान्मेध्यान्य आहरद्विजित्य पृथिवीᳬ सर्वामिति । श० १३ । ५ । ४ । १३ ॥

,, शतानीकः समन्तासु मेध्यᳬ सात्राजितो हयम् । आदत्त यज्ञं काशीनां भरतः सत्वतामिव । श० १३ । ५ । ४ । २१ ॥

भरताः ततो वै वसिष्ठपुरोहिता भरताः प्राजायन्त । तां० १५।५।२४॥

,, तस्माद्धाप्येतर्हि भरताः सत्वनां (? सत्वतां) वित्तिं प्रयन्ति तुरीये हैव संग्रहीतारो वदन्ते ('भरतः' शब्दमपि पश्यत) । ऐ० २ । २५ ॥

,, तस्माद्धेदं भरतानां पशवः सायंगोष्ठाः सन्तो मध्यन्दिने संगविनीमायंति । ऐ० ३ । १८ ॥

भरद्वाजः (यजु० १३ । ५५) मनो वै भरद्वाज ऋषिरन्नं वाजो यो वै मनो बिभर्त्ति सोऽन्नं वाजं भरति तस्मान्मनो भरद्वाज ऋषिः । श० ८ । १ । १ । ६ ॥

,, भरद्वाजस्य वाजभृद्वाजकर्मीयं वा (साम) । आर्षेय ब्रा० १ । २ । १ । २ । २ ॥

,, भरद्वाजो वै त्रिभिरायुर्भिर्ब्रह्मचर्य्यमुवास । तᳩ ह जीर्णᳬ स्थविरᳩ शयानमिन्द्र उपव्रज्योवाच ।····अनन्ता वै वेदाः । तै० ३ । १० । ११ । ३ ॥

भर्गः अयं वै (पृथिवी–) लोको भर्गः । श० १२ । ३ । ४ । ७ ॥

,, पृथिव्येव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, ऋग्वेदो वै भर्गः । श० १२ । ३ । ४ । ६ ॥

,, ऋग्वेद एव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, होतैव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, अग्निर्वै भर्गः । श० १२ । ३ । ४ । ८ ॥ जै० उ० ४ । २८ । २ ॥

,, अग्निरेव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

भर्गः वसव एव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, वाग्वै भर्गः । श० १२ । ३ । ४ । १० ॥

,, वागेव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, वसन्त एव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, गायत्र्येव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, प्राच्येव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, आदित्यो वै भर्गः । जै० उ० ४ । २८ । २ ॥

,, चन्द्रमा वै भर्गः । जै० उ० ४ । २८ । २ ॥

,, (ऋ० ३ । ६२ । १०) भर्गो देवस्य कवयो ऽन्नमाहुः । गो० पू० १ । ३२ ॥

,, वीर्यं वै भर्ग एष विष्णुर्यज्ञः । श० ५ । ४ । ५ । १ ॥

,, त्रिवृदेव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

भवः पर्जन्यो वै भवः पर्जन्याद्धीदꣳ सर्वं भवति । श० ६ । १ । ३ । १५॥

,, यन्नव आपस्तेन (भवः=जन्म—अमरकोषे ३ कांडे,२०५ श्लोके ॥ जन्म=आपः—वैदिकनिघंटौ १ । १२ ॥) । कौ० ६ । २ ॥

,, अग्निर्वै स देवस्तस्यैतानि नामानि, शर्व इति यथा प्राच्या आचक्षते भव इति यथा वाहीकाः पशूनां पती रुद्रो, ऽग्निरिति । श० १ । ७ । ३ । ८ ॥

,, एतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः=शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नवमः । श० ६ । १ । ३ । १८ ॥

भविष्यत् असौ (द्युलोकः) भविष्यत् । तै० ३ । ८ । १८ । ६ ॥

,, भविष्यत्प्रति चाहरत् (=प्रतिहर्ता ऽऽसीत्) । तै० ३ । १२ । ६ । ३ ॥

भव्यम् परिमितं वै भूतमपरिमितं भव्यम् । ऐ० ४ । ६ ॥

भाः असौ वा आदित्यो भा इति । जै० उ० । १ । ४ । १ ॥

,, श्रीर्वै भाः । जै० उ० १ । ४ । १ ॥

भानुः अजस्रेण भानुना दीद्यतमित्यजस्रेणार्चिषा दीप्यमानमित्येतत् । श० ६ । ४ । १ । २ ॥

भान्तः पञ्चदशः (यजु० १४ । २३) वज्रो वै भान्तो वज्रः पञ्चदशो ऽथो चन्द्रमा वै भान्तः पञ्चदशः स च पञ्चदशाहान्यापूर्यते पञ्चदशापक्षीयते तद्यत्तमाह भान्त इति भाति हि चन्द्रमाः । श० ८ । ४ । १ । १० ॥

भारः (यजु० २३ । २६) श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः । श० १३ । २ । ६ । ३ ॥

,, राष्ट्रं वै भारः । तै० ३ । ६ । ७ । १ ॥

भारतः एष (अग्निः) उ वाऽ इमाः प्रजाः प्राणो भूत्वा बिभर्ति तस्मा-द्वेवाह भारतेति । श० १ । ४ । २ । २ ॥

,, अग्ने महाँ असि ब्राह्मण भारत । कौ० ३ । २ ।। श० १ । ४ । २ । २ ॥ तै० ३ । ५ । ३ । १ ॥

भारती भारत्यै परिवापः (= लाजा इति सायणः) । तै० १ । ५ । ११ । २ ॥

भार्गवम् (साम) प्रवद्भार्गवं भवति । प्रवता (साम्ना) वै देवाः स्वर्गं लोकं प्रायन्नुद्वतोदायन् । तां० १४ । ३ । २३, २४ ॥

भासम् (साम) स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यं तमसाविध्यत् स न व्यरोचत तस्यात्रिर्भासेन तमो ऽपाहन् स व्यरोचत यद्वै तद्भा अभवत्तद्भासस्य भासत्वम् । तां० १४ । ११ । १४ ॥

,, भासं भवति भाति तुष्टुवानः । तां० १४ । ११ । १२ ॥

भुजः प्राणा वै भुजः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥

भुजिष्याः अन्नं भुजिष्याः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥

भुज्युः (यजु० १८ । ४२) यज्ञो वै भुज्युर्यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि भुन-क्ति । श० ९ । ४ । १ । ११ ॥

भुरण्युः (यजु० १५ । ५१) भुरण्युरिति भर्तेत्येतत् । श० ८ । ६ । ३ । २० ॥

,, (यजु० १३ । ४२) भुरण्युमिति भर्तारमित्येतत् । श० ७ । ५ । २ । १९ ॥

भुवः (यजु० १३ । ५४) अग्निर्वै भुवो ऽग्नेर्हीदꣳ सर्वं भवति । श० ८ । १ । १ । ४ ॥

,, भुव इत्यन्तरिक्षलोकः । श० ८ । ७ । ४ । ५ ॥

,, स भुव इति व्याहरत् । सो ऽन्तरिक्षमसृजत । चातुर्मास्यानि सामानि । तै० २ । २ । ४ । २-३ ॥

,, भुवरिति यजुर्भ्योऽक्षरत् सो ऽन्तरिक्षलोको ऽभवत् । ष० १ । ५ ॥

भुवः (प्रजापतिः) भुव इत्येव यजुर्वेदस्य रसमादत्त । तदिदमन्तरिक्षमभवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् स वायुरभवद्रसस्य रसः । जै० उ० १ । १ । ४ ॥

,, भुव इति (प्रजापतिः) क्षत्रम् (अजनयत) । श० २ । १ । ४ । १२ ॥

,, भुव इति (प्रजापतिः) प्रजाम् (अजनयत) । श० २ । १ । ४ । १३ ॥

भुवनपतिः (यजु० ११ । २ ॥) एतानि वै तेषामग्नीनां नामानि यद्भुवपतिर्भुवनपतिर्भूतानां पतिः । श० १ । ३ । ३ । १७ ॥

भुवनम् यज्ञो वै भुवनम् । तै० ३ । ३ । ७ । ५ ॥

,, यज्ञो वै भुवनस्य नाभिः । तै० ३ । ६ । ५ । ५ ॥

भुवनस्य गोपाः स (प्रजापतिः) उ वाव भुवनस्य गोपाः । जै० उ० ३ । २ । ११ ॥

भुवपतिः (यजु० ११ । २) एतानि वै तेषामग्नीनां नामानि यद्भुवपतिर्भुवनपतिर्भूतानां पतिः । श० १ । ३ । ३ । १७ ॥

भुवस्पतिः प्रच्यवस्व भुवस्पतऽ इति भुवनानाꣳ ह्येष (सोमः) पतिः । श० ३ । ३ । ४ । १४ ॥

भूः (यजु० १३ । १८) भूर्हीयम् (पृथिवी) । श० ७ । ४ । २ । ७ ॥

,, स (प्रजापतिः) भूरित्येवर्ग्वेदस्य रसमादत्त । सेयं पृथिव्यभवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् सो ऽग्निरभवद्रसस्य रसः । जै० उ० १ । १ । ३ ॥

,, भूरित्यृग्भ्योऽक्षरत् सो ऽयं (पृथिवी–) लोको ऽभवत् । ष० १ । ५ ॥

,, स भूरिति व्याहरत् । स भूमिमसृजत । अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ यजूꣳषि । तै० २ । २ । ४ । २ ॥

,, भूरिति वाऽ अयं (पृथिवी–) लोकः । श० ८ । ७ । ४ । ५ ॥

,, भूरिति वै प्रजापतिः ब्रह्माजनयत । श० २ । १ । ४ । १२ ॥

,, भूरिति वै प्रजापतिः । आत्मानमजनयत । श० २ । १ । ४ । १३ ॥

भूतः प्रजापतिर्वै भूतः । तै० २ । १ । ६ । ३ ॥

भूतम् अयं वै (पृथिवी–)लोको भूतम् । तै० ३ । ८ । १८ । ५ ॥

,, भूतꣳ ह प्रस्तोतैषां (विश्वसृजाम्) आसीत् । तै० ३ । १२ । ९ । ३ ॥

भूतम् परिमितं वै भूतमपरिमितं भव्यम् । ऐ० ४ । ६ ॥

भूतवान् (=भूतपतिः=रुद्रः) तेषां (देवानाम्) या एव घोरतमास्तन्व आसंस्ता एकधा समभरंस्ताः संभृता एष देवो (रुद्रः) ऽभवत्तदस्यैतद्भूतवन्नाम, भवति वै स यो ऽस्यैतदेवं नाम वेद। ऐ० ३ । ३३ ॥

भूतस्य प्रथमजा (यजु० ३७ । ४) इयं वै पृथिवी भूतस्य प्रथमजा । श० १४ । १ । २ । १० ॥

भूतानां पतिः (यजु० ११ । २ ॥) एतानि वै तेषामग्नीनां नामानि यद्भुवपतिर्भुवनपतिर्भूतानां पतिः । श० १ । ३ । ३ । १७॥

" भूतानां पतिर्गृहपतिरासीदुषाः पत्नी । श० ६ । १ । ३ । ७ ॥

" यः स भूतानां पतिः संवत्सरः सः । श० ६ । १ । ३ । ८॥

भूतानि प्रजा वै भूतानि । श० २ । ४ । २ । १ ॥ ३ । ५ । २ । १३ ॥ ४ । ५ । ३ । १ ॥

" तद्यानि तानि भूतानि ऋतवस्ते । श० ६ । १ । ३ । ८ ॥

भूतिः (=प्राणः) प्राणं वा अनु प्रजाः पशवो भवन्ति । जै० उ० २ । ४ । ७ ॥

भूतेच्छदः (ऋचः) तद्यदेतान् (असुरान्) इमे देवाः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो ऽछादयंस्तस्माद् भूतेछदस्तद् भूतेछदां भूतेछदत्वम् । गो० उ० ६ । १४ ॥

" तेषां वै देवा असुराणां भूतेछद्भिरेव भूतं छादयित्वा ऽथैनानत्यायन् । ऐ० ६ । ३६ ॥

" इमे वै लोका भूतेछदः । गो० उ० ६ । १४ ॥

भूमा श्रीर्वै भूमा । श० ३ । १ । १ । १२ ॥

" पुष्टिर्वै भूमा । तै० ३ । ८ । ८ । ३ ॥

" भूमा वै सहस्रम् । श० ३ । ३ । ३ । ८ ॥

" अजावी आलभते भूम्ने । तै० ३ । ८ । ८ । ३ ॥

भूमिः अभूदिव वा इदमिति तद्भूमेर्भूमित्वम् । तां० २० । १४ । २ ॥

" अभूद्वा इदमिति तद्भूम्यै भूमित्वम् । तै० १ । १ । ३ । ७ ॥

" अभूद्वाऽ इयं प्रतिष्ठेति । तद्भूमिरभवत् । श० ६ । १ । १ । १५ ॥ ६ । १ । ३ । ७ ॥

भूमिः इयं (पृथिवी) वै भूमिरस्यां वै स भवति यो भवति । श० ७। २। १। ११ ॥

,, (यजु० १३ । १८) भूमिर्हीयम् (पृथिवी) । श० ७ । ४ । २ । ७॥

भूरिजः भरणाद् भूरिज उच्यते । दै० ३ । २१ ॥

भूर्भुवस्स्वः भूर्भुवस्स्वरिति सा त्रयी विद्या । जै० उ० २ । ९ । ७ ॥

,, एता वै व्याहृतयः (=भूर्भुवस्स्वरिति) सर्वप्रायश्चित्तयः । जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥

भृगुः ताभ्यः श्रान्ताभ्यस्तप्ताभ्यः संतप्ताभ्यो (अद्भ्यः) यद्रेत आसीत्तद्भृज्यत यदभृज्यत तस्माद् भृगुः समभवत् तद् भृगोर्भृगुत्वम् । गो० पू० १ । ३ ॥

,, वायुरापश्चन्द्रमा इत्येते भृगवः । गो० पू० २ । ८ (६) ॥

,, वरुणस्य वै सुषुवाणस्य भर्गोऽपाक्रामत्स त्रेधापतद्भृगुस्तृतीयमभवच्छ्रायन्तीयं (साम) तृतीयमपस्तृतीयं प्राविशत् । तां० १८ । ६ । १ ॥

,, तस्य (प्रजापतेः) यद् रेतसः प्रथमंमुददीप्यत तदसावादित्योऽभवद्यद् द्वितीयमासीत्तद्भृगुरभवत्तं वरुणो न्यगृह्णीत तस्मात्स भृगुर्वारुणिः । ऐ० ३ । ३४ ॥

भृग्वङ्गिरसः अथाङ्गारैरभ्यूहति । भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् (यजु० १ । १८) इत्येतद्वै तेजिष्ठं तेजो यद्भृग्वङ्गिरसाम् । श० १ । २ । १ । १३ ॥

,, एतद्वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वंगिरसः । गो० पू० ३ । ४ ॥

भेकुरयः (अप्सरसः, यजु० १८ । ४०) (=नक्षत्राणि) भाकुरयो ह नामैते भाꣳ हि नक्षत्राणि कुर्वन्ति । श० ९ । ४ । १ । ९ ॥

भेषजम् यद् भेषजं तदमृतम् । गो० पू० ३ । ४ ॥

,, शान्तिर्वै भेषजमापः । कौ० ३ । ६ ७, ८, ९ ॥ गो० उ० १ । २५ ॥

भौज्यम् तस्मादेतस्यां दक्षिणस्यां दिशि ये के च सत्वतां राजानो भौज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते भोजेत्येनानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥

,, अथैनं (इन्द्रं) दक्षिणस्यां दिशि रुद्रा देवाः...अभ्यषिञ्चन्... भौज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥

भौज्यम् ऊर्जो वा एषो ऽन्नाद्याद्वनस्पतिरजायत यदुदुम्बरो भौज्यं वा एतद्वनस्पतीनाम् । ऐ० ७ । ३२ ॥

भ्रजश्छन्दः (यजु० १५ । ५) अग्निर्वै भ्रजश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ५॥

भ्राजः अग्नेर्भ्राजसा (त्वाभिषिञ्चामीति) । श० ५ । ४ । २ । २ ॥

" ततो ऽस्मिन् (सूर्ये) एतद् भ्राज आस । श० ४ । ५ । ४ । ५ ॥

भ्राट् भ्राजं गच्छेति सोमो वै भ्राट् । श० ३ । २ । ४ । ६ ॥

भ्रातृव्यः भ्रातृव्यो वा अररुः । तै० ३ । २ । ६ । ४ ॥

" इमं देवाः । असपत्नꣳ सुवध्वमितीमं देवा अभ्रातृव्यꣳ सुवध्वमित्येवैतदाह । श० ५ । ४ । २ । ३ ॥

" त्वयायं वृत्रं वधेदिति (यजु० १० । ८) त्वयायं द्विषन्तं भ्रातृव्यं वधेदित्येवैतदाह (वृत्रः=भ्रातृव्यः) । श० ५ । ३ । ५ । २८ ॥

" स यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात्स सौत्रामण्या यजेत । श० १२ । ७ । ३ । ४ ॥

भ्रूणहत्या अमृत्युर्वा अन्यो भ्रूणहत्याया इत्याहुः । भ्रूणहत्या वाव मृत्युरिति । तै० ३ । ६ । १५ । २ ॥

(म)

मखः मख इत्येतद्यज्ञनामधेयं छिद्रप्रतिषेधसामर्थ्यात्, छिद्रं खमित्युक्तं तस्य मेति प्रतिषेधः । मा यज्ञं छिद्रं करिष्यतीति । गो० उ० २ । ५ ॥

" यज्ञो वै मखः । तै० ३ । २ । ८ । ३ ॥ तां० ७ । ५ । ६ ॥ श० ६ । ५ । २ । १ ॥

" स उ एव मखः स विष्णुः । श० १४ । १ । १ । १३ ॥

" (यजु० ३७ । ११) एष वै मखो य एष (सूर्यः) तपति । श० १४ । १ । ३ । ५ ॥

" ("विष्णुः" शब्दमपि पश्यत)

मघवान् स उ एव मखः स विष्णुः । तत इन्द्रो मखवानभवन्मखवान्ह वै तं मघवानित्याचक्षते परोऽक्षम् । श० १४ । १ । १ । १३ ॥

" इन्द्रो वै मघवान् । श० ४ । १ । २ । १५, १६ ॥

मघाः (नक्षत्रविशेषः) पितॄणां मघाः । तै० १ । ५ । १ । २ ॥ ३ । १ । १ । ६ ॥

मज्जा हारिद्र इव हि मज्जा । श० १३ । ४ । ४ । ८ ॥

„ षष्टिश्च ह वै त्रीणि च शतानि पुरुषस्य मज्जानः । श० १० । ५ । ४ । १२ ॥

„ मज्जा यजुः । श० ८ । १ । ४ । ५ ॥

„ मज्जानोज्योतिस्तद्धि यजुष्मतीनाᳬं रूपम् । श० १० । २ । ६ । १८ ॥

मण्डूकः एतद्वै यत्रैतं प्राणा ऋषयोग्रे ऽग्निᳬं समस्कुर्वंस्तमद्भिरवोक्षंस्ता आपः समस्कन्दंस्ते मण्डूका अभवन् । श० ९ । १ । २ । २१ ॥

„ तस्मान्मण्डूकः पशूनामनुपजीवनीयतमो यातयामा हि सः । श० ६ । १ । २ । २४ ॥

मतिः (यजु० १३ । ५८) वाग्वै मतिर्वाचा हीदᳬं सर्वं मनुते । श० ८ । १ । २ । ७ ॥

मत्स्यः मत्स्यः सांमदो राजेत्याह तस्योदकेचरा विशस्तऽ इम आसतऽ इति मत्स्याश्च मत्स्यहनश्चोपसमेता भवन्ति तानुपदिशतीतिहासो वेदः सो ऽयमिति । श० १३ । ४ । ३ । १२ ॥

मदः यो वाऽ ऋचि मदो यः सामन्रसो वै सः । श० ४ । ३ । २ । ५ ॥

मदिन्तमः (यजु० ६ । २७) मदिन्तम इति स्वादिष्ठ इत्येवैतदाह । श० ३ । ६ । ३ । २५ ॥

मद्राः तस्मादेतस्यामुदीच्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तं जनपदा उत्तरकुरव उत्तरमद्रा इति वैराज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते विराडित्येनानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥

मधु (यजु० ३७ । १३) प्राणो वै मधु । श० १४ । १ । ३ । ३० ॥

„ (यजु० ११ । ३८) रसो वै मधु । श० ६ । ४ । ३ । २ ॥ ७ । ५ । १ । ४ ॥

„ अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नित्यपो देवा रसवतीरगृह्णन्नित्येवैतदाह । श० ५ । ३ । ४ । ३ ॥

„ ओषधीनां वाऽ एष परमो रसो यन्मधु । श० ११ । ५ । ४ । १८ ॥

मधु रसो वा एष ओषधिवनस्पतिषु यन्मधु । ऐ० ८ । २० ॥
,, तस्मादुत स्त्रियो मधु नाऽश्नन्ति पुत्राणामिदं व्रतं चराम इति वदन्तीः । जै० उ० १ । ५५ । २ ॥
,, (एक आहुः—) न ब्रह्मचारी सन्मध्वश्नीयादोषधीनां वाऽ एष परमो रसो यन्मधु नेदन्नाद्यस्यान्तं गच्छानीति । श० ११ । ५ । ४ । १८ ॥
,, यथा ह वाऽ ऋचं वा यजुर्वा साम वाभिव्याहरेत्तादृक्तद्य एवं विद्वान्ब्रह्मचारी सन्मध्वश्नाति । श० ११ । ५ । ४ । १८ ॥
,, एतद्वै प्रत्यक्षात्सोमरूपं यन्मधु । श० १२ । ८ । २ । १५ ॥
,, अन्नं वै मधु । तां० ११ । १० । ३ ॥
,, परमं वा एतदन्नाद्यं यन्मधु । तां० १३ । ११ । १७ ॥
,, महत्यै वा एतद्देवतायै रूपम् । यन्मधु । तै० ३ । ८ । १४ । २ ॥
,, मध्वमुष्य (स्वर्गस्य लोकस्य रूपम्) । श० ७ । ५ । १ । ३ ॥
,, गायत्रमयनं भवति ब्रह्मवर्चसकामस्य स्वर्गाधनम्मधुनामुष्मिल्लोक उपतिष्ठते । तां० १३ । ४ । १० ॥
,, सर्वं वाऽ इदं मधु यदिदं किं च । श० ३ । ७ । १ । ११ ॥ १४ । १ । ३ । १३ ॥

मधुः (मासः) एतौ (मधुश्च माधवश्च) एव वासन्तिकौ (मासौ) स यद्वसन्तऽ ओषधयो जायन्ते वनस्पतयः पच्यन्ते तेनो हैतौ मधुश्च माधवश्च । श० ४ । ३ । १ । १४ ॥

मधुकृतः या एताः पूर्वपक्षापरपक्षयो रात्रयः । ता मधुकृतः । तै० ३ । १० । १० । १ ॥

मधुदैव्यम् एतद्वै मधुदैव्यं यदाज्यम् । ऐ० २ । २ ॥

मधुपर्कः एष ह्यारण्यानां रसः । कौ० ४ । १२ ॥

मधुप्रियम् पशवो वै रेवत्यो मधुप्रियम् । तां० १३ । ७ । ३ ॥

मधुमती ओषधयो मधुमतीः । तै० ३ । २ । ८ । २ ॥

मधुवृषाः (पूर्वपक्षापरपक्षयोः) यान्यहानि ते मधुवृषाः । तै० ३ । १० । १० । १ ॥

मधुसारघम् यशो ह वै मधुसारघम् । श० ३ । ॥ । ३ । १३ ॥

मध्यन्दिनः आत्मा मध्यन्दिनः । कौ० २५ । १२ ॥ २८ । ९ ॥
„ आत्मा यजमानस्य मध्यन्दिनः । ऐ० ३ । १८ ॥
„ मध्यन्दिनो मनुष्याणाम् । श० २ । ४ । २ । ८ ॥
„ मध्यन्दिने मनुष्याः (वृत्रायाशनमभिहरन्ति) । श० १ । ६ । ३ । १२ ॥
„ बृहस्पतेर्मध्यन्दिनः । तै० १ । ५ । ३ । २ ॥
मध्यम् (यजु० २३ । २६) श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यम् । श० १३ । २ । ९ । ४ ॥ तै० ३ । ९ । ७ । १ ॥
„ प्रजा वै पशवो मध्यम् । श० १ । ६ । १ । १७ ॥
„ त्रिष्टुप् छन्द इन्द्रो देवता मध्यम् । श० १० । ३ । २ । ५ ॥
मध्यमा चितिः अन्तरिक्षं वै मध्यमा चितिः । श० ८ । ७ । २ । १८ ॥
„ उदरं मध्यमा चितिः । श० ८ । ७ । २ । १८ ॥
मनः मनो वै बृहत् । तां० ७ । ६ । १७ ॥
„ मनो बृहत् । ऐ० ४ । २८ ॥
„ मनो बृहती । श० १० । ३ । १ । १ ॥
„ मनो ब्रह्म । गो० पू० २ । १० (११) ॥ ष० १ । ५ ॥
„ मनो वै सम्राट् ! परमं ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । १५ ॥
„ मन एव ब्रह्मा । गो० पू० २ । १० ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥
„ मनो ब्रह्मा । गो० पू० २ । १० (११) ॥
„ मनो वै यज्ञस्य ब्रह्मा । श० १४ । ६ । १ । ७ ॥
„ तस्य (पुरुषस्य) मन एव ब्रह्मा । कौ० १७ । ७ ॥
„ मनो होता । तै० २ । १ । ५ । ९ ॥
„ मनो वै यज्ञस्य मैत्रावरुणः । ऐ० २ । ५, २६, २८ ॥
„ मनो वै पाथ्यो वृषा (यजु० ११ । ३४ ॥) । श० ६ । ४ । २ । ४ ॥
„ मनो वै परिपतिः । गो० उ० २ । ३ ॥
„ तदेता वाऽ अस्य (प्रजापतेः) ताः पञ्च मर्त्यास्तन्व आसंल्लोम त्वङ् मांसमस्थि मज्जाथैता अमृता मनो वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रम् । श० १० । १ । ३ । ४ ॥
„ अपूर्वा (प्रजापतेस्तनूविशेषः) तन्मनः । ऐ० ५ । २५ ॥ कौ० २७ । ५ ॥

मनः मन इव हि प्रजापतिः। तै० २।२।१।२॥
,, यः प्रजापतिस्तन्मनः। जै० उ० १।३३।२॥
,, प्रजापतिर्वै मनः। कौ० १०।१॥ २६।३॥ श० ४।१।१।२२॥
,, मनो वै प्रजापतिः। तै० ३।७।१।२॥
,, मनो हि प्रजापतिः। सा० १।१।१॥
,, मन एव सर्वम्। गो० पू० ५।१५॥
,, मनो वै भरद्वाज ऋषिरन्नं वाजो यो वै मनो बिभर्त्ति सो ऽन्नं वाजं भरति तस्मान्मनो भरद्वाज ऋषिः (यजु० १३।५५)। श० ८।१।१।९॥
,, मनो ऽन्तरिक्षलोकः। श० १४।४।३।११॥
,, मनः पितरः। श० १४।४।३।१३॥
,, मनो ह वायुर्भूत्वा दक्षिणतस्तस्थौ। श० ८।१।१।७॥
,, न वै वातात् किञ्चनाशीयो ऽस्ति न मनसः किञ्चनाशीयो ऽस्ति तस्मादाह वातो वा मनो वेति। श० ५।१।४।८॥
,, मन एवाग्निः। श० १०।१।२।३॥
,, मनो ह वाऽ अस्य सविता। श० ४।४।१।७॥
,, मन एव सविता। गो० पू० १।३३॥ जै० उ० ४।२७।१५॥
,, मनो वै सविता। श० ६।३।१।१३, १५॥
,, मनः सावित्रम्। कौ० १६।४॥
,, यन्मनः स इन्द्रः। गो० उ० ४।११॥
,, मनः प्रगाथः। जै० उ० ३।४।३॥
,, मन एव वत्सः। श० ११।३।१।१॥
,, मनो ह वाऽ अंशुः (ग्रहः)। श० ११।५।६।२॥
,, मनो वा ऋतम्। जै० उ० ३।३६।५॥
,, मनो वै सरस्वान्। श० ७।५।१।३१॥ ११।२।४।६॥
,, स एष ह्रदः कामानाम्पूर्णो यन्मनः। जै० उ० १।५८।३॥
,, मनो वै समुद्रः (यजु० १३।५३)। श० ७।५।२।५२॥
,, मनो वै समुद्रश्छन्दः (यजु० १५।४)। श० ८।५।२।४॥
,, वाग्वै समुद्रो मनः समुद्रस्य चक्षुः। तां० ६।४।७॥

मनः तस्य (मनसः) एषा कुल्या यद्वाक् । जै० उ० १ । ५८ । ३ ॥

" मनो वै ग्रावस्तोत्रीया । ऐ० ६ । २ ॥

" कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धा ऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव । श० १४ । ४ । ३ । ६ ॥

" नेव हि सन्मनो नेवासत् । श० १० । ५ । ३ । २ ॥

" अनिरुक्तᳫ हि मनो ऽनिरुक्तᳫ ह्येतद्यत्तूष्णीम् । श० १ । ४ । ४ । ५ ॥

" अपरिमिततरमिव हि मनः परिमिततरेव हि वाक् । श० १ । ४ । ४ । ७ ॥

" मनो वा एतद्यदपरिमितम् । कौ० २६ । ३ ॥

" अनन्तं वै मनः । श० १४ । ६ । १ । ११ ॥

" मनो देवः । गो० पू० २ । १० ॥

" वृषा हि मनः । श० १ । ४ । ४ । ३ ॥

" वाक् च वै मनश्च देवानां मिथुनम् । ऐ० ५ । २३ ॥

" वागिति मनः । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥

" वाक् च वै मनश्च हविर्धाने । कौ० ९ । ३ ॥

" मनो हि पूर्वं वाचो यद्धि मनसाभिगच्छति तद्वाचा वदति । तां० ११ । १ । ३ ॥

" वाग्वै मनसो ह्रसीयसी । श० १ । ४ । ४ । ७ ॥

" वाचो मनो देवता मनसः पशवः । जै० उ० १ । ५६ । १४ ॥

" इयं (पृथिवी) वै वागदो (अन्तरिक्षम्) मनः । ऐ० ५ । ३३ ॥

" अलग्ल(म्र)मिव ह वै वाग्वदेद्यन्मनो न स्यात्तस्मादाह धृता मनसेति । श० ३ । २ । ४ । ११ ॥

" न ह्ययुक्तेन मनसा किं चन सम्प्रति शक्नोति कर्तुम् । श० ६ । ३ । १ । १४ ॥

" अन्यत्रमना अभूवं नादर्शमन्यत्रमना अभूवं नाश्रौषमिति मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति । श० १४ । ४ । ३ । ८ ॥

" अर्द्धभाग्वै मनः प्राणानाम् । ष० १ । ५ ॥

" मनसि वै सर्वे प्राणाः प्रतिष्ठिताः । श० ७ । ५ । २ । ६ ॥

" मनो वै प्राणानामधिपतिर्मनसि हि सर्वे प्राणाः प्रतिष्ठिताः । श० १४ । ३ । २ । ३ ॥

मनः मनो यजमानस्य (रूपम्) । श० १२ । ८ । २ । ४ ॥

" मनसा वाऽ इद्ꣳ सर्वमाप्तम् । श० १ । ७ । ४ । २२ ॥ ५ । ४ । ३ । ९ ॥

" असंप्रेषितं वा इदं मनः । ऐ० ६ । २ ॥

" मनो हृदये (श्रितम्) । तै० ३ । १० । ८ । ६ ॥

" कस्मिन्नु मनः प्रतिष्ठितं भवतीति हृदयऽ इति । श० १४ । ६ । ९ । २५ ॥

" मनसि ह्ययमात्मा प्रतिष्ठितः । श० ६ । ७ । १ । २१ ॥

" वागेवर्चश्च सामानि च मन एव यजूꣳषि । श० ४ । ६ । ७ । ५ ॥

" अथ यन्मनो यजुष्टत् । जै० उ० १ । २५ । ८ ॥

" मनो वै यजुः । श० ७ । ३ । १ । ४० ॥

" मनो यजुर्वेदः । श० १४ । ४ । ३ । १२ ॥

" मनो ऽध्वर्युः । श० १ । ५ । १ । २१ ॥

" मनो वाव साम्नश्शीः । जै० उ० १ । ३८ । २ ॥

" तयोः (सदसतोः) यत् सत् तत्साम तन्मनस्स प्राणः । जै० उ० १ । ५३ । २ ॥

" स (प्रजापतिः) मन एव हिङ्कारमकरोत् । जै० उ० १ । १३ । ५॥

" चन्द्रमा मे मनसि स्थितः । तै० ३ । १० । ८ । ५ ॥

" मनश्चन्द्रमाः । जै० उ० ३ । २ । ६ ॥

" तद्यत्तन्मनश्चन्द्रमास्सः । जै० उ० १ । २८ । ५ ॥

" यत्तन्मन एव स चन्द्रमाः । श० १० । ३ । ३ । ७ ॥

" मनो वै देववाहनं मनो हीदं मनस्विनं भूयिष्ठं वनीवाह्यते । श० १ । ४ । ३ । ६ ॥

" अथ यत्कृष्णं तद्रूपं रूपमन्नस्य मनसो यजुषः । जै० उ० १ । २५ । ८ ॥

मनश्छन्दः (यजु० १५ । ४) प्रजापतिर्वै मनश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ३ ॥

मनुः प्रजापतिर्वै मनुः स हीदꣳ सर्वममनुत । श० ६ । ६ । १ । १९॥

" (यजु० ३७ । १२) अश्वा ह वाऽ इयं (पृथिवी) भूत्वा मनुमुवाह सो ऽस्याः पतिः प्रजापतिः । श० १४ । १ । ३ । २५ ॥

मनुः (यजु० १५ । ४९) ये विद्वाꣳसस्ते मनवः । श० ८ । ६ । ३ । १८ ॥

„ आयुर्वै मनुः । कौ० २६ । १७ ॥

„ य एवं मनुष्याणां मनुष्यत्वं वेद । मनस्येव भवति । नैनं मनुः (=मननशक्तिरिति सायणः) जहाति । तै० २ । ३ । ८ । ३ ॥

„ (=मनुष्यः) अग्निर्होता मनुर्वृतो ऽयं (अग्निः) हि सर्वतो मनुष्यैर्वृतः । ऐ० २ । ३४ ॥

„ मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह । तस्य मनुष्या विशः । श० १३ । ४ । ३ । ३ ॥

„ मनोर्यज्ञ ऽ इत्यु वा ऽ आहुः । श० १ । ५ । १ । ७ ॥

„ मनुर्ह वा ऽ अग्रे यज्ञेनेजे तदनुकृत्येमाः प्रजा यजन्ते । श० १ । ५ । १ । ७ ॥

„ (मनुमत्स्यकथा--) तस्य (मनोः) अवनेनिजानस्य मत्स्यः पाणीऽआपेदे । स हास्मै वाचमुवाद । बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीत्यौघ इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति । श० १ । ८ । १ । १--२ ॥

„ सा (मनोर्दुहिता) एषा निदानेन यदिडा । श० १ । ८ । १ । ११ ॥ ('इडा' शब्दमपि पश्यत)

„ मनुर्वै यत्किञ्चावदत्तद्भेषजम्भेषजतायै । तां० २३ । १६ । ७ ॥

„ अथैतन्मनुर्वप्त्रे मिथुनमपश्यत् । स श्मश्रूण्यग्रे ऽवपत । अथो-पपक्षौ । अथ केशान् । ततो वै स प्राजायत । प्रजया पशुभिः । यस्यैवं वपन्ति । प्र प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जायते । तै० १ । ५ । ६ । ३ ॥

मनुष्यलोकः सो ऽयं मनुष्यलोकः पुत्रेणैव जय्यो नान्येन कर्मणा । श० १४ । ४ । ३ । २४ ॥

„ उदीचीमावृत्य दोग्धि मनुष्यलोकमेव तेन जयति । तै० २ । १ । ८ । १ ॥ ३ । २ । १ । ३ ॥

मनुष्यसवः य इष्ट्या सूयते स मनुष्यसवः । तै० २ । ७ । ५ । १ ॥

मनुष्याः स (प्रजापतिः) पितॄन्त्सृष्ट्वा मनस्यत् । तदनु मनुष्यानसृजत । तन्मनुष्याणां मनुष्यत्वम् । य एवं मनुष्याणां मनुष्यत्वं

वेद । मनस्येव भवति । नैनं मनुः (=मननशक्तिरिति सायणः) जहाति । तै० २ । ३ । ८ । ३ ॥

मनुष्याः पुरुषो (=मनुष्यः) वै प्रजापतेर्नेदिष्ठम् । श० २ । ५ । १ । १॥

,, उभयम्वैतत् प्रजापतिर्यश्च देवा यश्च मनुष्याः । श० ६ । ८ । १ । ४ ॥

,, उभये ह वाऽ इदमग्रे सहासुर्देवाश्च मनुष्याश्च । श० २ । ३ । ४ । ४ ॥

,, देवानां वै विधामनु मनुष्याः । श० ६ । ७ । ४ । ९ ॥ ६ । १ । १ । १६ ॥

,, मनुष्याननु पशवः, देवाननु वयांस्योषधयो वनस्पतयः । श० १ । ५ । २ । ४ ॥

,, द्राघीयो हि देवायुषꣳ ह्रसीयो मनुष्यायुषम् । श० ७ । ३ । १ । १० ॥

,, उभये देवमनुष्याः पशूनुपजीवन्ति । श० ६ । ४ । ४ । २२ ॥

,, एतद्वै देवानां परममन्नं यत्सोमः । एतन्मनुष्याणां यत्सुरा । तै० १ । ३ । ३ । ३ ॥

,, सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः । श० १ । १ । १ । ४ ॥ १ । १ । २ । १७ ॥ ३ । ३ । २ । २ ॥ ३ । ९ । ४ । १ ॥

,, अनृतसंहिता वै मनुष्या इति । ऐ० १ । ६ ॥

,, मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह तस्य मनुष्या विशस्तऽ इमऽ आसतऽ इत्यश्रोत्रिया गृहमेधिन उपसमेता भवन्ति तानुपदिशत्यृचो वेदः । श० १३ । ४ । ३ । ३ ॥

,, मनुष्या वै जन्तवः । श० ७ । ३ । १ । ३२ ॥

,, द्विरह्नो मनुष्येभ्य उपह्रियते प्रातश्च सायञ्च । तै० १ । ४ । ६ । २ ॥

,, अथैनं (प्रजापतिं) मनुष्याः । प्रावृता उपस्थं कृत्वोपासी-दंस्तान् (प्रजापतिः) अब्रवीत् सायम्प्रातर्वो ऽशनं प्रजा वो मृत्युर्वो ऽग्निर्वो ज्योतिरिति । श० २ । ४ । २ । ३ ॥

,, नैव देवाः (प्रजापतेराज्ञाम्) अतिक्रामन्ति । न पितरो न पशवो मनुष्या एवैके ऽतिक्रामन्ति तस्माद्यो मनुष्याणां

मेध्यत्यशुभे मेध्यति विहृच्छति हि न छायनाय चन भवत्यनृतᳪ हि कृत्वा मेध्यति तस्माद् सायम्प्रातराश्येव स्यात् स यो हैवं विद्वान् सायम्प्रातराशी भवति सर्वᳪ हैवायुरेति । श० २ । ४ । २ । ६ ॥

मनुष्याः फाण्टं मनुष्याणाम् । श० ३ । १ । ३ । ८ ॥

„ हन्तकारं मनुष्याः (उपजीवन्ति) । श० १४ । ८ । ६ । १ ॥

„ रयिरिति मनुष्याः (उपासते) । श० १० । ५ । २ । २० ॥

„ मध्यन्दिनो मनुष्याणाम् । श० २ । ४ । २ । ८ ॥

„ तस्मै (वृत्राय) ह स्म पूर्वाह्णे देवा अशनमभिहरन्ति मध्यन्दिने मनुष्याऽ अपराह्णे पितरः । श० १ । ६ । ३ । १२ ॥

„ (अस्य भूलोकस्य) मनुष्या यजुष्मत्यः (इष्टकाः) । श० १० । ५ । ४ । १ ॥

„ मनुष्याणां वा एषा दिग्यत्प्रतीची । ष० ३ । १ ॥

„ प्राचीनप्रजनना वै देवाः प्रतीचीनप्रजनना मनुष्याः । श० ७ । ४ । २ । ४० ॥

„ एषा (उदीची) वै देवमनुष्याणाᳪ शान्ता दिक् । तै० २ । १ । ३ । ५ ॥

„ उदीची हि मनुष्याणां दिक् । श० १ । २ । ५ । १७ ॥ १ । ७ । १ । १२ ॥

„ एषा (उदीची) वै मनुष्याणां दिक् । तै० १ । ६ । ९ । ७ ॥

„ उदीचीमावृत्य दोग्धि मनुष्यलोकमेव तेन जयति । तै० २ । १ । ८ । १ ॥ ३ । २ । १ । ३ ॥

„ तस्मान्मानुषऽ उदीचीनवᳪशामेव शालां वा विमितं वा मिन्वन्ति । श० ३ । १ । १ । ७ ॥

„ अथ योत्तरा (आहुतिः) ते मनुष्याः । श० २ । ३ । २ । १६ ॥

„ (मनुष्याः प्रजापतिमब्रुवन्—) दत्तेति न आत्थेति । श० १४ । ८ । २ । ३ ॥

„ अथ यदेव वासयेत । तेन मनुष्येभ्य ऋणं जायते तद्धचेभ्य एतत्करोति यदेनान्वासयते यदेभ्यो ऽशनं ददाति । श० १ । ७ । २ । ५ ॥

मनुष्याः (प्रजापतिः) प्रस्तावम्मनुष्येभ्यः (प्रायच्छत्) । जै० उ० १ । ११ । ६ ॥

मनोजवाः मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु । श० ३ । ५ । २ । ६ ॥

मनोता तिस्रो वै देवानां मनोतास्तासु हि तेषां मनांस्योतानि वाग्वै देवानां मनोता तस्यां हि तेषां मनांस्योतानि गौर्हि देवानां मनोता तस्यां हि तेषां मनांस्योतानि, अग्निर्वै देवानां मनोता तस्मिन्हि तेषां मनांस्योतान्यग्निः सर्वा मनोता अग्नौ मनोताः सगच्छन्ते । ऐ० २ । १० ॥

,, अग्निर्वै देवानां मनोता तस्मिन् ह्येषां मनांस्योतानि भवन्ति । १० । ६ ॥

,, अग्निः सर्वा मनोता । कौ० १० । ६ ॥

,, वाग्वै देवानां मनोता । कौ० १० । ६ ॥

,, गौर्वै देवानां मनोता । कौ० १० । ६ ॥

मन्त्रः वाग्वै मन्त्रः । श० ६ । ४ । १ । ७ ॥

,, वाग्घि मन्त्रः । श० १ । ४ । ४ । ११ ॥

,, ब्रह्म वै मन्त्रः । श० ७ । १ । १ । ५ ॥

,, यांश्च ग्रामे यांश्चारण्ये जपन्ति मन्त्रान् नानार्थान् बहुधा जनासः... । गो० पू० ५ । २५ ॥

मन्त्रकृत् एष वाव पिता यो मन्त्रकृत् । तां० १३ । ३ । २४ ॥

मन्थावलः (जीवविशेषः) यानि पर्णानि ते मन्थावलाः (समभवन्) । ऐ० ३ । २६ ॥

मन्थी अत्तैव शुक्र आद्यो मन्थी । श० ४ । २ । १ । ३ ॥

,, आद्यो वै मन्थी । श० ५ । ४ । ४ । २१ ॥

,, चन्द्रमा एव मन्थी । श० ४ । २ । १ । १ ॥

मन्दस्व (यजु० १२ । १०८) मन्दस्व धीतिभिर्हित इति दीप्यस्व धीतिभिर्हित इत्येतत् । श० ७ । ३ । १ । ३१ ॥

मन्युः पशूनां वा एष मन्युः । यद्वराहः । तै० १ । ७ । ६ । ४ ॥

,, वराहं क्रोधः (गच्छति) । गो० पू० २ । २ ॥

मन्विद्धः (अग्निः) इमं (अग्निं) हि मनुष्या इन्धते । ऐ० २ । ३४ ॥

,, मनुर्ह्येतमग्रऽ ऐन्द्ध तस्मादाह मन्विद्ध इति । श० १ । ४ । २ । ५ ॥

मयः यद्धि शिवं तन्मयः । तै० २ । २ । ५ । ५ ॥

„ (हे ऽश्व ! त्वं) मयो ऽसि । तां० १ । ७ । १ ॥

मयन्दम् (यजु० १४ । ६) यद्वाऽ अनिरुक्तं तन्मयन्दम् । श० ८ । २ । ३ । ११ ॥

मयुः (यजु० १३ । ४७) किम्पुरुषो वै मयुः (अमरकोषे कां० १ स्वर्गवर्ग श्लो० ७४) । श० ७ । ५ । २ । ३२ ॥

मरीचिः एता वाऽ आपः स्वराजो यन्मरीचयः । श० ५ । ३ । ४ । २१॥

„ यः कपाले रसो लिप्त आसीत्ता मरीचयो ऽभवन् । श० ६ । १ । २ । २ ॥

मरुतः मरुतो रश्मयः । तां० १४ । १२ । ९ ॥

„ ये ते मारुताः (पुरोडाशाः) रश्मयस्ते । श० ९ । ३ । १ । २५ ॥

„ युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस इति युञ्जन्तु त्वा देवा इत्येवैतदाह (मरुतः=देवाः—अमरकोषे ३ । ३ । ५८) । श० ५ । १ । ४ । ६ ॥

„ गणशो हि मरुतः । तां० १९ । १४ । २ ॥

„ मरुतो गणानां पतयः । तै० ३ । ११ । ४ । २ ॥

„ सप्त हि मारुतो गणः । श० २ । ५ । १ । १३ ॥

„ सप्त वै मारुतो गणः । श० ५ । ४ । ३ । १७ ॥

„ सप्त गणा वै मरुतः । तै० १ । ६ । २ । ३ ॥ २ । ७ । २ । २ ॥

„ सप्त-सप्त हि मारुता गणाः (७×७=४९—यजु० १७ । ८०—८५ ॥ ३९ । ७ ॥) । श० ९ । ३ । १ । २५ ॥

„ मारुतः सप्तकपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥

„ मारुतस्तु सप्तकपालः (पुरोडाशः) । श० २ । ५ । १ । १२ ॥

„ मारुतꣳ सप्तकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ५ । ३ । १ । ६॥

„ मरुतो वै देवानां भूयिष्ठाः । तां० १४ । १२ । ९ ॥ २१ । १४ । ३॥

„ मरुतो हि देवानां भूयिष्ठाः । तै० २ । ७ । १० । १ ॥

„ मरुतो ह वै देवविशो ऽन्तरिक्षभाजना ईश्वराः । कौ० ७ । ८ ॥

„ विशो वै मरुतो देवविशः । २ । ५ । १ । १२ ॥

„ मरुतो वै देवानां विशः । ऐ० १ । ९ ॥ तां० ६ । १० । १० ॥ १८ । १ । १४ ॥

मरुतः अद्भुतादो वै देवानां मरुतो विट् । श० ४ । ५ । २ । १६ ॥

,, विड् वै मरुतः । तै० १ । ८ । ३ । ३ ॥ २ । ७ । २ । २ ॥

,, विशो मरुतः । श० २ । ५ । २ । ६, २७ ॥ ४ । ३ । ३ । ६ ॥

,, विशो वै मरुतः । श० ३ । ९ । १ । १७ ॥

,, मारुतो हि वैश्यः । तै० २ । ७ । २ । २ ॥

,, कीनाशाः (=कृषौ कर्म्मकरा इति सायणः) आसन्मरुतः सुदानवः (=सुष्ठु दातार इति सायणः) । तै० २ । ४ । ८ । ७ ॥

,, पशवो वै मरुतः । ऐ० ३ । १९ ॥

,, अन्नं वै मरुतः । तै० १ । ७ । ३ । ५ ॥ १ । ७ । ५ । २ ॥ १ । ७ । ७ । ३ ॥

,, प्राणा वै मारुताः । श० ९ । ३ । १ । ७ ॥

,, मारुता वै ग्रावाणः । तां० ९ । ९ । १४ ॥

,, मरुतो वै देवानामपराजितमायतनम् । तै० १ । ४ । ६ । २ ॥

,, अप्सु वै मरुतः शिताः (? श्रिताः) । कौ० ५ । ४ ॥

,, अप्सु वै मरुतः श्रितः (श्रिताः) । गो० उ० १ । २२ ॥

,, आपो वै मरुतः । ऐ० ६ । ३० ॥ कौ० १२ । ८ ॥

,, मरुतोऽद्भिरग्निमतमयन् । तस्य तान्तस्य हृदयमाच्छिन्दन् साऽशनिरभवत् । तै० १ । १ । ३ । १२ ॥

,, मरुतो वै वर्षस्येशते । श० ९ । १ । २ । ५ ॥

,, षड्भिः पार्जन्यैर्वा मारुतैर्वा (पशुभिः) वर्षासु (यजते) । श० १३ । ५ । ४ । २८ ॥

,, इन्द्रस्य वै मरुतः । कौ० ५ । ४, ५ ॥

,, अथैनं (इन्द्रं) ऊर्ध्वायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः...... अभ्यषिञ्चन्...पारमेष्ठ्याय माहाराज्यायाऽऽधिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय । ऐ० ८ । १४ ॥

,, हेमन्तेनर्त्तुना देवा मरुतस्त्रिणवे (स्तोमे) स्तुतं बलेन शक्करीः सहः । हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २ । ६ । १९ । २ ॥

,, मारुत्यो वत्सतर्य्यः । तां० २१ । १४ । १२ ॥

,, पङ्क्तिश्छन्दो मरुतो देवता ग्रीवन्तौ । श० १० । ३ । २ । १० ॥

,, मरुत्स्तोमो वा एषः (षोडशः स्तोमः) । तां० १७ । १ । ३ ॥

मरुतः क्रीडिनः मरुतो ह वै क्रीडिनो वृत्रꣳ हनिष्यन्तमिन्द्रमागतं तमभितः परि चिक्रीडुर्महयन्तः । श० २ । ५ । ३ । २०॥

„ ते (मरुतः) एनं (इन्द्रं) अध्यक्रीडन् तत्क्रीडिनां क्रीडित्वम् । तै० १ । ६ । ७ । ५ ॥

„ इन्द्रस्य वै मरुतः क्रीडिनः । कौ० ५ । ५ ॥

„ इन्द्रो वै मरुतः क्रीडिनः । गो० उ० १ । २३ ॥

मरुतः सान्तपनाः मरुतो ह वै सांतपना मध्यन्दिने वृत्रꣳ सन्तेपुः स संतप्तो ऽनन्नेव प्राणन्परिदीर्णः शिश्ये । श० २ । ५ । ३ । ३ ॥

„ इन्द्रो वै मरुतः सान्तपनाः । गो० उ० १ । २३ ॥

मरुतः स्वतवसः घोरा वै मरुतः स्वतवसः । कौ० ५ । २ ॥ गो० उ० १ । २० ॥

मरुतः स्वापयः प्राणो वै मरुतः स्वापयः । ऐ० ३ । १६ ॥

मरुत्वतीयग्रहः सवनततिर्वै मरुत्वतीयग्रहः । कौ० १५ । १ ॥

मरुत्वतीयम् (शस्त्रम्) पवमानोक्थं वा एतद्यन्मरुत्वतीयम् । ऐ० ८ । १ ॥ कौ० १५ । २ ॥

„ तदेतद्वार्त्रघ्नमेवोक्थं यन्मरुत्वतीयमेतेन हेन्द्रो वृत्रमहन् । कौ० १५ । २ ॥

„ तदेतत्पृतनाजिदेव सूक्तं यन्मरुत्वतीयमेतेन हेन्द्रः पृतना अजयत् । कौ० १५ । ३ ॥

मरुत्स्तोमः अथैष मरुत्स्तोम एतेन वै मरुतो ऽपरिमितां पुष्टिमपुष्यन्नपरिमितां पुष्टिं पुष्यति य एवं वेद । तां० १९ । १४ । १ ॥

मर्त्यः अनात्मा हि मर्त्यः । श० २ । २ । २ । ८ ॥

मसूस्यानि (धान्यविशेषः) सर्वासां वा एतद्देवतानाꣳ रूपम् । यन्मसूस्यानि । तै० ३ । ८ । १४ । ६ ॥

महः पशवो वै महस्तस्माद्यस्यैते बहवो भवन्ति भूयिष्ठमस्य कुले महीयन्ते । श० ११ । ८ । १ । ३ ॥

„ यज्ञो वै देवानां महः । श० १ । ६ । १ । ११ ॥

„ अध्वर्युरेव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ यजुर्वेदो महः । श० १२ । ३ । ४ । ९ ॥

महः यजुर्वेद एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, अन्तरिक्षलोको महः । श० १२ । ३ । ४ । ७ ॥
,, अन्तरिक्ष एव महः । गो० उ० ५ । १५ ॥
,, वायुर्महः । श० १२ । ३ । ४ । ८ ॥
,, वायुरेव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, प्राणो महः । श० १२ । ३ । ४ । १० ॥
,, प्राणा एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, प्रतीच्येव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, सुवर्गो वै लोको महः । तै० ३ । ८ । १८ । ५ ॥
,, असौ वै (स्वर्गो) लोको महाऽसि । तस्यादित्या अधिपतयः । तै० ३ । ८ । १८ । २ ॥
,, रुद्रा एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, ग्रीष्म एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, त्रिष्टुबेव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, पंचदश एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥
महत् महद्वा अन्तरिक्षम् । ऐ० ५ । १८, १९ ॥
,, अन्तो वै महत् । ऐ० ५ । २, १२ ॥
महदुक्थम् अशीतिभिर्हि महदुक्थमाख्यायते । श० १० । १ । २ । ६ ॥
,, महदुक्थमृचाम् (समुद्रः) । श० ९ । ५ । २ । १२ ॥
,, सर्वा हैता ऋचो यन्महदुक्थम् । श० १० । १ । १ । ५ ॥ १० । ४ । १ । १३ ॥
,, यदेतन्मण्डलं (सूर्यः) तपति । तन्महदुक्थं ता ऋचः स ऋचां लोकः । श० १० । ५ । २ । १ ॥
,, द्यौर्महदुक्थम् । श० १० । १ । २ । २ ॥
,, आत्मा महदुक्थम् । श० १० । १ । २ । ५ ॥
,, वाङ्महदुक्थम् । श० १० । १ । २ । ३ ॥
महर्त्विक् अश्वस्य वा आलब्धस्य महिमोदक्रामत् । स महर्त्विजः प्राविशत् । तन्महर्त्विजां महर्त्विक्त्वम् । तै० ३ । ८ । २ । ४ ॥
महादिवाकीर्त्यम् एतद्वै प्रत्यक्षं साम यन्महादिवाकीर्त्यम् । कौ० २५ । ४ ॥
महान् प्रजापतिर्वाव महान् । तां० ४ । १० । २ ॥

महान् अग्निर्वै महान् । जै० उ० ३ । ४ । ७ ॥

,, एष (अग्निः) एव महान् । श० १० । ४ । १ । ४ ॥

,, प्राण एव महान् । श० १० । ४ । १ । २३ ॥

महान् देवः एतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः=शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नवमः । श० ६ । १ । ३ । १८ ॥

,, (=रुद्रः) स एषो ऽष्टनामाऽष्टधा विहितो महान्देवः । कौ० ६ । ९ ॥ (अष्टमूर्त्तिः=महादेवः=रुद्रः—अमरकोषे काण्डे १, स्वर्गवर्गे । श्लो० ३७ ॥)

,, (प्रजापतिः) तं (रुद्रं) अब्रवीन्महान्देवो ऽसीति । तद्यदस्य तन्नामाकरोच्चन्द्रमास्तद्रूपमभवत्प्रजापतिर्वै चन्द्रमा प्रजापतिर्वै महान्देवः । श० ६ । १ । ३ । १६ ॥

,, यन्महान्देव आदित्यस्तेन । कौ० ६ । ६ ॥

,, एष ह वै महान्देवो यद्यज्ञः । गो० पू० २ । १६ ॥

,, 'पशुपतिः,' 'पशुमान्,' 'भूतवान्,' 'रुद्रः,' इत्येतानपि शब्दान् पश्यत ।

महानाम्न्यः (ऋचः); इन्द्रो वा एताभिर्महानात्मानं निरमिमीत तस्मान्महानाम्न्यः । ऐ० ५ । ७ ॥

,, महानाम्नीभिर्वा इन्द्रो वृत्रमहन् । कौ० २३ । २ ॥

,, (वृत्रवध समये) महान् घोष आसीत् तन्महानाम्न्यः (शक्वर्य्यः) । तां० १३ । ४ । १ ॥

,, वज्रो वै महानाम्न्यः । ष० ३ । ११ ॥

,, अथो इमे वै लोका महानाम्न्य इमे महान्तः । ऐ० ५ । ७ ॥

महायज्ञाः पञ्चैव महायज्ञाः । तान्येव महासत्राणि भूतयज्ञो मनुष्ययज्ञः पितृयज्ञो देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञ इति । श० ११ । ५ । ६ । १ ॥

महावीरः ते देवा अब्रुवन् । महान्वत नो वीरो ऽपादिति तस्मान्महावीरः । श० १४ । १ । १ । ११ ॥

,, स एष महावीरो मध्यन्दिनोत्सर्गः । कौ० ८ । ७ ॥

,, शिरो वा एतद्यज्ञस्य यन्महावीरः । कौ० ८ । ३ ॥

महावीरः असौ वै महावीरो यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । कौ० ८ । ३, ७ ॥ ('घर्मः' शब्दमपि पश्यत)

महावैश्वामित्रम् (साम) पाप्मानꣳ हत्वा यदमहीयन्त तत् महावैश्वामित्रस्य महावैश्वामित्रत्वम् । तां० १३ । ६ । १२ ॥

महावैष्टम्भम् (साम) महावैष्टम्भं ब्रह्मसाम भवत्यन्नाद्यस्यावरुध्यै । तां० १२ । ४ । १९ ॥

महाव्याहृतयः स तान् पंच वेदान् (सर्पवेदं पिशाचवेदमसुरवेदमितिहासवेदं पुराणवेदमिति) अभ्यश्राम्यदभ्यतपत्समतपत्तेभ्यः श्रान्तेभ्यस्तप्तेभ्यः सन्तप्तेभ्यः पञ्च महाव्याहृतीर्निरमिमीत वृधत् करद् गुहत् महत् तदिति । गो० पू० १ । १० ॥

,, किꣳ सर्वप्रायश्चित्तिमिति महाव्याहृतीरेव मघवन्निति । ष० १ । ६ ॥

महाव्रतम् महन्मर्य्या व्रतं यदिममधिन्वीदिति तन्महाव्रतस्य महाव्रतत्वम् । तां० ४ । १० । १ ॥

,, तं देवा भूतानाꣳ रसं तेजः सम्भृत्य तेनैनं (प्रजापतिं) अभिषज्यन् महानववर्त्तीति । तन्महाव्रतस्य महाव्रतत्वम् । तै० १ । २ । ६ । १ ॥

,, महद् व्रतमिति । तन्महाव्रतस्य महाव्रतत्वम् । तै० १ । २ । ६ । १ ॥

,, महतो व्रतमिति । तन्महाव्रतस्य महाव्रतत्वम् । तै० १ । २ । ६ । १ ॥

,, प्रजापतिर्वाव महाꣳस्तस्यैतद् व्रतमन्नमेव । तां० ४ । १० । २ ॥

,, अथ यन्महाव्रतमुपयन्ति । प्रजापतिमेव देवतां यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । २१ ॥

,, एष (अग्निः) एव महांस्तस्यैतदन्नं व्रतं तन्महाव्रतꣳ सामतः । श० १० । ४ । १ । ४ ॥

महाव्रतम् प्राण एव महांस्तस्यान्नमेव व्रतं तन्महाव्रतꣳ सामतः। श० १०। ४। १। २३॥

" प्राणो महाव्रतम्। श० १०। १। २। ३॥

" सर्वाणि हैतानि सामानि यन्महाव्रतम्। श० १०। १। १। ५॥

" अथ यदेतदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतं तानि सामानि स साम्नां लोकः। श० १०। ५। २। १॥

" महाव्रतꣳ साम्नाम् (समुद्रः)। श० ९। ५। २। १२॥

" बृहद्रथन्तरे (महाव्रतस्य) पक्षौ। तां० १६। ११। ११॥

" वामदेव्यमात्मा (महाव्रतस्य)। तां० १६। ११। ११॥

" यज्ञायज्ञीयꣳ (साम) ह्येव महाव्रतस्य पुच्छम्। तां० ५। १। १८॥

" यज्ञायज्ञीयं (साम) पुच्छम् (महाव्रतस्य)। तां० १६। ११। ११॥

" अन्तरिक्षं महाव्रतम्। श० १०। १। २। २॥

" अत्येतदन्यान्यहान्यहर्य्यन्महाव्रतम्। तां० ५। २। ११॥

" अन्तो महाव्रतम्। तां० ५। ६। १२॥

महाव्रतीयः (ग्रहः) महद्वाऽइदं व्रतमभूद्येनायꣳ समहास्तेति तस्मान्महाव्रतीयो नाम। श० ४। ६। ४। २॥

महाव्रीहयः साम्राज्यं वा एतदोषधीनां यन्महाव्रीहयः। ऐ० ८। १६॥

महाहविः महाहविषा ह वै देवा वृत्रं जघ्नुः। श० २। ५। ४। १॥

" महाहविर्होता सत्यहोतॄणाम्। तै० ३। १२। ५। २॥

महिमा (यजु० ११। १६) देवा महिमानः। श० १०। २। २। २॥

" (यजु० ११। ६) यज्ञो वै महिमा। श० ६। ३। १। १८॥

" राजा महिमा। श० १३। २। ११। २॥ तै० ३। ९। १०। १॥

महिषः (यजु० १२। १०५) अग्निर्वै महिषः स हीदं जातो महान्त्सर्वमैरणात्। श० ७। ३। १। २३॥

" (यजु० १२। १११) अग्निर्वै महिषः। श० ७। ३। १। २४॥

" (यजु० १२। २०) प्राणा वै महिषाः। श० ६। ७। ४। ५॥

" (यजु० १९। १२) ऋत्विजो वै महिषाः। श० १२। ८। १। २॥

महिषी यैव प्रथमा विन्ना (भार्य्या) सा महिषी। श० ६।५।३।१॥
" महिषी हीयं (पृथिवी) । श० ६।५।३।१॥
" महिषी हि वाक् । श० ६।५।३।४॥
" महिषी धाय्या । कौ० १५।४॥
" भूरिति महिषी । तै० ३।९।४।५॥

मही (यजु० ११।५१) इयं (पृथिवी) वाऽ अदितिर्मही। श० ६।५।१।१०॥
" इयं (पृथिवी) एव मही। जै० उ० ३।४।७॥
" पृथिवीं मातरं महीम् । तै० २।४।६।८॥
" (यजु० १।२०) मह्य इति ह वाऽ एतासामेकं नाम यज्ञवाम् । श० १।२।१।२२॥ ३।१।३।९॥

महेन्द्र यन्महानिन्द्रोऽभवत्तन्महेन्द्रस्य महेन्द्रत्वम् । ऐ० ३।२१॥
" इन्द्रो वाऽ एष पुरा वृत्रस्य वधादथ वृत्रꣳ हत्वा यथा महाराजो विजिग्यान एवं महेन्द्रोऽभवत् । श० १।६।४।२१॥ २।५।४।९॥ ४।३।३।१७॥

महयाः (=शाकर्यं:) महयामकरोत्तन्महयाः । तां० १३।४।१॥
मा (यजु० १४।१८॥) अयं वै (पृथिवी-)लोको मायं हि लोको मित इव। श० ८।३।३।५॥

मांसम् एतदु ह वै परममन्नाद्यं यन्माꣳसम् । श० ११।७।१।३॥
" अन्नमु पशोर्माꣳसम् । श० ७।५।२।४२॥
" माꣳसं वै पुरीषम् । श० ८।६।२।१४॥ ८।७।३।१॥
" माꣳसं पुरीषम् । श० ८।७।४।१९॥
" माꣳसꣳ सादनम् । श० ८।१।४।५॥
" माꣳसीयन्ति ह वै जुह्वतो यजमानस्याग्नयः । श० ११।७।१।२॥
" माꣳसीयन्ति वा आहिताग्नेरग्नयः। गो० उ० २।१॥ ('अग्नयो मांसकामाश्च इत्यपि श्रूयते श्रुतिः' इति नीलकण्ठीय-टीकायुते महाभारते वनपर्वणि अ० २०८ श्लो० १३॥ कुम्भघोणसंस्करणे-अ० २१२ श्लो १०॥ मनु० ४।२८-२८॥)

मांसम् (प्राशौदनिकस्य रक्षणकर्त्ता) न माꣳसमश्नीयात् । न स्त्रियमुपेयात् । यन्माꣳसमश्नीयात्। यत्स्त्रियमुपेयात्। निर्वीर्य्यः स्यात्। नैनमाग्निरुपनमेत्। तै० १।१।९।७–८॥

,, (यजमानः) अहतं वसानो ऽवभृथादुदैति चतुरो मासो न माꣳसमश्नाति, न स्त्रियमुपैति। तां० १७।१३।६, ११, १४॥

,, अमाꣳसाश्यनुब्रूते तपस्व्यनुब्रवाऽ इति। श० १४।१।१। २९॥

माः चन्द्रमा वै मा मासः। जै० उ० ३।१२।६॥

माघः माघे वा मा नो ऽघं भूदिति। श० १३।८।१।४॥

मातरिश्वा प्राणो मातरिश्वा। ऐ० २।३८।

,, अयं वै वायुर्मातरिश्वा यो ऽयं पवते। श० ६।४।३।४॥

,, अथ यद्दाक्षिणतो वाति। मातरिश्वेव भूत्वा दक्षिणतो वाति। तै० २।३।९।५॥

,, सर्व्वा दिशो ऽनुविवाति। सर्व्वा दिशो ऽनुसंवातीति। स वा एष मातरिश्वेव। तै० २।३।९।६॥

,, अन्तारिक्षं वै मातरिश्वनो घर्मः। तै० ३।२।३।२॥

माता न हि माता पुत्रꣳ हिनस्ति न पुत्रो मातरम्। श० ५।२। १।१८॥

मात्रा यद्वेव मिमीते तस्मान्मात्रा। श० ३।९।४।८॥

माधवः (मासः) एतौ (मधुश्च माधवश्च) एव वासन्तिकौ (मासौ) स यद्वसन्तऽ ओषधयो जायन्ते वनस्पतयः पच्यन्ते तेनो हैतौ मधुश्च माधवश्च। श० ४।३।१।१४॥

माधुच्छन्दसम् (साम) इदꣳ ह्यन्वोजसेति माधुच्छन्दसं प्रजापतेर्व्वा एषा तनूरयातयाम्नी प्रयुज्यते। तां० ९।२।१७।

,, माधुच्छन्दसं भवति सामार्धयवत् स्वर्गाय युज्यते स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः। तां० ११।९।६॥

माध्यन्दिनं सवनम् रुद्राणां माध्यन्दिनं सवनम्। कौ० १६।१॥ ३०।१॥ श० ४।३।५।१॥

,, रुद्रा एकादशकपालेन माध्यन्दिने सवने (अभिपद्यन्त्)। तै० १।५।११।३॥

माध्यन्दिनं सवनम् अथेमं विष्णुं यज्ञं त्रेधा व्यभजन्त । वसवः प्रातःसवनꣳ रुद्रा माध्यन्दिनꣳ सवनमादित्यास्तृतीयसवनम् । श० १४ । १ । २ । १५ ॥

,, ऊर्वाः (पितरः) माध्यन्दिने (सवने) । ऐ० ७ । ३४ ॥

,, मरुत्वद्धि माध्यन्दिनꣳ सवनम् । तां० ९ । ७ । २ ॥ १३ । ९ । २ ॥

,, इन्द्रस्य माध्यन्दिनं सवनम् । कौ० १४ । ५ ॥

,, ऐन्द्रं वै माध्यन्दिनं सवनम् । जै० उ० १ । ३७ । ३ ॥

,, एतद्वा ऽ इन्द्रस्य निष्केवल्यꣳ सवनं यन्माध्यन्दिनꣳ सवनं तेन वृत्रमजिघांꣳसत्तेन व्यजिगीषत । श० ४ । ३ । ३ । ६ ॥

,, ऐन्द्रं त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम् । गो० उ० ४ । ४ ॥

,, ऐन्द्रं हि त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम् । कौ० २९ । २ ॥

,, त्रैष्टुभं वै माध्यन्दिनं सवनम् । ऐ० ६ । ११ ॥

,, त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम् । ष० १ । ४ ॥

,, अन्तरिक्षलोको माध्यन्दिनं सवनम् । गो० उ० ४ । ४ ॥

,, अन्तरिक्षं वै माध्यन्दिनꣳ सवनम् । श० १२ । ८ । २ । ९ ॥

,, क्षत्रं माध्यन्दिनं सवनम् । कौ० १६ । ४ ॥

,, स्वर्गो वै लोको माध्यन्दिनं सवनम् । गो० उ० ३ । १७ ॥

,, एतद्वै यज्ञस्य स्वर्ग्यं यन्माध्यन्दिनꣳ सवनम् । तां० ७ । ४ । १ ॥

,, साध्या वै नाम देवा आसꣳस्ते ऽवछिद्य तृतीयसवनम्माध्यन्दिनेन सवनेन सह स्वर्गं लोकमायन् । तां० ८ । ३ । ५ ॥ ८ । ४ । ९ ॥

,, मध्ये सन्तं (सूर्यमीप्सन्ति) माध्यन्दिनेन सवनेन कौ० १८ । ९ ॥

माध्यन्दिनं सवनम् सप्तदशपञ्चविंशौ (स्तोमौ) माध्यदिनं सवनम् (वहतः) । तां० १६ । १० । ५ ॥

,, वाजवन्माध्यन्दिनं सवनम् । तां० १८ । ६ । ७ ॥

,, एतेन वै माध्यन्दिनं सवनं प्रतिष्ठितं यत्त्रिणिधनम् । तां० ७ । ३ । २ ॥

,, बार्हतं हि माध्यन्दिनं सवनम् । तां० ९ । ७ । ७ ॥

माध्यन्दिनः पवमानः प्राणो वै माध्यन्दिनः पवमानः । श० १४ । ३ । १ । २९ ॥

,, त्रिच्छन्दा माध्यन्दिनः पवमानः । ष० १ । ३ ॥

मानवम् (साम) एतेन वै मनुः प्रजातिं भूमानमगच्छत्प्रजायते बहुर्भवति मानवेन तुष्टुवानः । तां० १३ । ३ । १५ ॥

मानुषम् यदब्रुवन्मेदं प्रजापते रेतो दुषदिति तन्मादुषमभवत्तन्मादुषस्य मादुषत्वं मादुषं ह वै नामैतद्यन्मानुषं तन्मादुषं सन्मानुषमित्याचक्षते (इदं मे मादुषत् । तां० ८ । २ । १०) । ऐ० ३ । ३३ ॥

मामहानः (यजु० १७ । ५५) यजमानो वै मामहानः । श० ९ । २ । ३ । ९ ॥

मारणम् त्रिरात्रोपोषितः कृष्णचतुर्दश्यां शवादङ्गारमाहृत्य चतुष्पथे बाधकामिध्ममुपसमाधाय बैभीतकेन स्रुवेण सर्षपतैलेनाहुतिसहस्रं जुहुयात्सम्मील्येन यत्र वृक्षशब्दः स्यात्तत्र पुरुषः शूलहस्त उत्तिष्ठति तं ब्रूयादमुञ्जहीति हन्त्येनम् । सा० ३ । ६ । ३ ॥

मारुतो मरुतां गणः (यजु० १८ । ४५) अन्तरिक्षलोको वै मारुतो मरुतां गणः । श० ९ । ४ । २ । ६ ॥

मार्गीयवम् (साम) देवं वा एतं (पशुपतिं) मृगयुरिति वदन्त्येतेन (मार्गीयवेण) वै स उभयेषां पशूनामाधिपत्यमाश्नुतोभयेषां पशूनामाधिपत्यमश्नुते मार्गीयवेण तुष्टुवानः । तां० १४ । ९ । १२ ॥

मार्जालीयः (पुरुषस्य) बाहू मार्जालीयश्चाग्नीध्रीयश्च । कौ० १७ । ७ ॥

मार्जालीयः बाहुऽएवास्य (यज्ञस्य) आग्नीध्रीयश्च मार्जालीयश्च । श० ३ । ५ । ३ । ४ ॥

,, यामेन मार्जालीयमुपतिष्ठन्ते पितृलोकमेव तज्जयन्ति । तां० ५ । ४ । ११ ॥

मार्तण्डः (अदितिः) अविकृतꣳ हाष्टमं (पुत्रं) जनयाञ्चकार मार्तण्डꣳ संदेघो हैवास यावानेवोर्ध्वस्तावांस्तिर्यङ् पुरुषसंमित इत्यु हैकऽ आहुः । श० ३ । १ । ३ । ३ ॥

,, तदभ्यनूक्ता । (पश्यत ऋ० १० । ७२ । ८–) अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वं परिदेवाँ उपप्रैत् सप्तभिः परा मार्तण्डमास्यदिति । तां० २४ । १२ । ५–६ ॥

,, यं (मार्तण्डं) उ ह तद्विचक्रुः (देवा आदित्याः), स विवस्वानादित्यस्तस्येमाः प्रजाः । श० ३ । १ । ३ । ४ ॥

माषाः तदु ह स्माहापि वर्कुर्वार्ष्णो माषान्मे पचत न वा एतेषाꣳ हविर्गृह्णन्तीति । श० १ । १ । १ । १० ॥

मासाः मासाः (संवत्सरस्य) कर्मकाराः । तै० ३ । ११ । १० । २ ॥

,, मासा वै रश्मयः । तां० १४ । १२ । ९ ॥

,, मासा हवीꣳषि । श० ११ । २ । ७ । ३ ॥

,, यव्या मासाः । श० १ । ७ । २ । २६ ॥

,, मासा वै देवा अभिद्यवः । गो० पू० ५ । २३ ॥

,, मासा वै पितरो बर्हिषदः । तै० १ । ६ । ८ ।३॥ ३ । ३ ।६ ।४॥

,, मासा उपसदः । श० १० । २ । ५ । ६ ॥

,, उद्गाना मासाः । तां० ५ । १० । ३ ॥

,, पवित्रं पवयिष्यन्त्सहस्वान्त्सहीनारुणो ऽरुणरजा इति । एते ऽनुवाका अर्द्धमासानाञ्च मासानाञ्च नामधेयानि । तै० ३ । १० । १० । ३ ॥

किं नु ते ऽस्मासु (मासेषु) इति । इमानि स्थूलानि पर्वाणि । जै० उ० ३ । २३ । ८ ॥

माहाराज्यम् अथैनं (इन्द्रं) ऊर्ध्वायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः... अभ्यषिञ्चन्.........पारमेष्ठ्याय माहाराज्यायाऽऽधिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय । ऐ० ८ । १४ ॥

माहिनम् इयं (पृथिवी) वै माहिनम् । ऐ० ३ । ३८ ॥

मित्रः सर्वस्य ह्येव मित्रो मित्रम् । श० ५ । ३ । २ । ७ ॥

,, मित्रः (एवैनं) सत्यानां (सुवते) । तै० १ । ७ । ४ । १ ॥

,, मित्र ! सत्यानामाधिपते ! । तै० ३ । ११ । ४ । १ ॥

,, ब्रह्मैव मित्रः । श० ४ । १ । ४ । १ ॥

,, ब्रह्म हि मित्रः । श० ४ । १ । ४ । १० ॥ ५ । ३ । २ । ४ ॥

,, मित्रः क्षत्रं क्षत्रपतिः । श० ११ । ४ । ३ । ११ ॥ तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥

,, मित्रः (श्रियः) क्षत्रम् (आदत्त) । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥

,, अथ यत्रैतत्प्रातितरामिव तिरश्चीवार्चिः संशाम्यतो भवति तर्हि हैष (अग्निः) भवति मित्रः । श० २ । ३ । २ । १२ ॥

,, तं यद् घोरसंस्पर्शं सन्तं (अग्निं) मित्रकृत्येवोपासते तदस्य मैत्रं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥

,, (यजु० ११ । ५३ ॥ १४ । २४ ॥) प्राणो वै मित्रः । श० ६ । ५ । १ । ५ ॥ ८ । ४ । २ । ६॥ १२ । ९ । २ । १२ ॥

,, ते हेमे लोका मित्रगुप्तास्तस्मादेषां लोकानां न किञ्चन मीयते । श० ६ । ५ । ४ । १४ ॥

,, (यजु० ११।६४) अयं वै वायुर्मित्रो यो ऽयं पवते । श० ६ । ५ । ४ । १४ ॥

,, मित्रस्य सङ्क्षयः (कालविशेषः) । तै० १ । ५ । ३ । १ ॥

,, अहर्मित्रः । तां० २५ । १० । १० ॥

,, अहर्वै मित्रः । ऐ० ४ । १० ॥

,, मैत्रं वा अहः । तै० १ । ७ । १० । १ ॥

,, वरुण्या वाऽ एता ओषधयो याः कृष्टे जायन्ते ऽथैते मैत्रा यदकृष्टाः । श० ५ । ३ । ३ । ८ ॥

,, वरुण्या वाऽ एषा (शाखा) या परशुवृक्णाथैषा मैत्री (शाखा) या स्वयम्प्रशीर्णा । श० ५ । ३ । २ । ५ ॥

मित्रः वरुण्यो वाऽ एष यो ऽग्निना शृतो ऽथैष मैत्रो य ऊष्मणा शृतः । श० ५ । ३ । २ । ८ ॥

„ वरुण्यं वाऽ एतद्यन्मथितं (आज्यं) अथैतन्मैत्रं यत्स्वयमुदितम् । श० ५ । ३ । २ । ६ ॥

„ मैत्रो वै दक्षिणः । वरुणः सव्यः । तै० १ । ७ । १० । १ ॥

„ तद्यदेवात्र पयस्तन्मित्रस्य, सोम एव वरुणस्य । श० ४ । १ । ४ । ९ ॥

„ यः (अर्द्धमासः) आपूर्य्यते स मित्रः । तां० २५ । १० । १० ॥

„ यो (अर्धमासः) ऽपक्षीयते स मित्रः । श० २ । ४ । ४ । १८ ॥

„ यद्वाऽ ईजानस्य स्विष्टं भवति मित्रो ऽस्य तद् गृह्णाति । श० ४ । ५ । १ । ६ ॥

„ मित्रेणैव यज्ञस्य स्विष्टꣳ शमयति । तै० १ । २ । ५ । ३ ॥

„ मैत्रो नवकपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥

मित्रम् प्राणो मित्रम् । जै० उ० ३ । ३ । ६ ॥

मित्राबृहस्पती मित्राबृहस्पती वै यज्ञपथः । श० ५ । ३ । २ । ४ ॥

मित्रावरुणौ प्राणापानौ मित्रावरुणौ । तां० ६ । १० । ५ ॥ ९ । ८ । १६ ॥ तै० ३ । ३ । ६ । ९ ॥

„ (यजु० १४ । २४) प्राणो वै मित्रो ऽपानो वरुणः । श० ८ । ४ । २ । ६ ॥ १२ । ९ । २ । १२ ॥

„ मित्रावरुणौ (एवैनं) प्राणापानाभ्याम् (अवतः) । तै० १ । ७ । ६ । ६ ॥

„ प्राणोदानौ वै मित्रावरुणौ । श० १ । ८ । ३ । १२ ॥ ३ । ६ । १ । १६ ॥ ५ । ३ । ५ । ३४ ॥ ९ । ५ । १ । ५६ ॥

„ प्राणोदानौ मित्रावरुणौ । श० ३ । २ । २ । १३ ॥

„ अहोरात्रौ वै मित्रावरुणौ । तां० २५ । १० । १० ॥

„ अहर्वै मित्रो रात्रिर्वरुणः । ऐ० ४ । १० ॥

„ अर्द्धमासौ (=शुक्लकृष्णपक्षौ) वै मित्रावरुणौ । तां० २५ । १० । १० ॥

मित्रावरुणौ अथैतावेवार्धमासौ मित्रावरुणौ, य एवापूर्यते स वरुणो योऽपक्षीयते स मित्रः । श० २ । ४ । ४ । १८ ॥

„ बाहू वै मित्रावरुणौ । श० ५ । ४ । १ । १५ ॥

„ अयं वै (पृथिवी-) लोको मित्रो ऽसौ (द्युलोकः) वरुणः । श० १२ । ९ । २ । १२ ॥

„ द्यावापृथिवी वै मित्रावरुणयोः प्रियं धाम । तां० १४ । २ । ४ ॥

„ गोसंस्तवौ वै मित्रावरुणौ । कौ० १८ । १३ ।

„ अथ यद्गोऽआयुषी (स्तोमौ) उपयन्ति । मित्रावरुणावेव देवते यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । १६ ॥

„ अथ (अग्निः) यदुच्च हृष्यति नि च हृष्यति तदस्य मैत्रावरुणं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥

„ एतद्वै मित्रावरुणयोः स्वं हविर्यत्पयस्या । कौ० १८ । १२ ॥

„ मैत्रावरुणी पयस्या । श० २ । ४ । ४ । १४ ॥ ५ । ५ । १ । १ ॥

„ मैत्रावरुणी वा अनूबन्ध्या । कौ० ४ । ४ ॥

„ यदा न कश्चन रसः पर्यशिष्यत तत एषा मैत्रावरुणी वशा समभवत्तस्मादेषा न प्रजायते । श० ४ । ५ । १ । ९ ॥

„ सा हि मैत्रावरुणी यद्वशा । श० ५ । ५ । १ । ११ ॥

„ उदीची दिक् । मित्रावरुणौ देवता । तै० ३ । ११ । ५ । २॥

„ मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै (यजु० ११ । ३) । श० १ । ३ । ४ । ४ ॥

„ मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्य उत्तरासद्भ्यः स्वाहा । श० ५ । २ । ४ । ५ ॥

„ मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम् (यजु० २ । १६) । श० १ । ८ । ३ । १२ ॥

„ षड्भिर्मैत्रावरुणैः (पशुभिः) शरदि (यजते) । श० १३ । ५ । ४ । २८ ॥

मिथुनम् द्वंद्वं वै मिथुनम् । ऐ० ३ । ५० ॥ श० ११ । १ । २ । ६ ॥

मिथुनम् तस्माद्यः कश्च मिथुनमुपप्रैति गन्धं चैष स रूपं कामयते। शा० ९। ४। १। ४॥

,, तद्यथा हैवेदं मानुषस्य मिथुनस्यान्तं गत्वा संविद इव भवति। शा० १०। ५। २। ११॥

,, व्यृद्धं वाऽ एतन्मिथुनं यदन्यः पश्यति। शा० ४। ६। ७। ९॥

,, मिथुनं वै पशवः। ऐ० ४। २१॥ ५। १६, १७, १८। १९॥

मिमिक्षताम् (यजु० १३। ३२) इमं यज्ञं मिमिक्षतामितीमं यज्ञमवतामित्येतत्। शा० ७। ५। १। १०॥

मुखम् मुखं प्रतीकम्। शा० १४। ४। ३। ७॥

मुञ्जः अग्निर्देवेभ्य उदक्रामत्स मुञ्जं प्राविशत्तस्मात्स सुषिरः। शा० ६। ३। १। २६॥

,, सैषा योनिरग्नेर्यन्मुञ्जः। शा० ६। ३। १। २६॥

,, योनिरेषाग्नेर्यन्मुञ्जः। शा० ६। ६। १। २३॥

,, योनिर्मुञ्जाः। शा० ६। ६। २। १५॥

,, यज्ञिया हि मुञ्जाः। शा० १२। ८। ३। ६॥

,, ऊर्ग्वा मुञ्जाः। तै० ३। ८। १। १॥

मुदः (अप्सरसः, यजु० १८। ३८) ओषधयो वै मुद ओषधिभिर्हीदं सर्वं मोदते। शा० ९। ४। १। ७॥

मुन्ययनयज्ञः स एष सर्वकामस्य यज्ञः। कौ० ४। १०॥

मुष्करः (पशुः) प्रजननं वै मुष्करः। शा० ५। १। ३। १०॥

मुष्टिः (यजु० २३। २४) राष्ट्रं मुष्टिः। शा० १३। २। ९। ७॥ तै० ३। ९। ७। ५॥

मुसलम् योनिरुलूखलम्......शिश्नं मुसलम्। शा० ७। ५। १। ३८॥

मुहूर्ताः स (प्रजापतिः) पञ्चदशाह्नो रूपाण्यपश्यदात्मनस्तन्वो मुहूर्ताँ

,, लोकम्पृणाः पञ्चदशैव रात्रेस्तद्यन्मुहु त्रायन्ते तस्मान्मुहूर्ताः। शा० १०। ४। २। १८॥

,, लोकम्पृणाभिः (इष्टकाभिः) मुहूर्तान् (आप्नोति)। शा० १०। ४। ३। १२॥

,, अथ यत्क्षुद्राः सन्त इमाँल्लोकानापूरयन्ति तस्मात् (मुहूर्ताः) लोकम्पृणाः (इष्टकाः)। शा० १०। ४। २। १८॥

मुहूर्त्ताः चित्रः केतुर्दाता प्रदाता सविता प्रसविताभिशास्तानुमन्तेति
पेत ऽनुवाका मुहूर्त्तानां नामधेयानि । तै० ३ । १० । १० । ३॥

मूर्धा (यजु० १४ । ९) प्रजापतिर्वै मूर्धा । श० ८ । २ । ३ । १० ॥
,, एष वै मूर्धा य एष (सूर्यः) तपति । श० १३ । ४ । १ । १३ ॥

,, मूर्द्धा हृदये (श्रितः) । तै० ३ । १० । ८ । ९ ॥
,, स यो ह तत्राश्नीयाद्वा भक्षयेद्वा मूर्धा हास्य विपतेत् । श० ३ । ६ । १ । २३ ॥
,, मूर्धास्य विपतेद्य एनमुपवल्हेतेति । श० ११ । ४ । १ । ९ ॥
,, मूर्द्धा ते व्यपतिष्यत् । तै० ३ । १० । ९ । ५ ॥

मूलबर्हणी (=मूलनक्षत्रम्) मूलमेषामवृक्षामेति । तन्मूलबर्हणी । तै० १ । ५ । २ । ८ ॥

,, निर्ऋत्यै मूलबर्हणी । तै० १ । ५ । १ । ४ ॥ ३ । १ । २ । ३ ॥

मृगयुः देवं वा एतं (पशुपतिं) मृगयुरिति वदन्ति । तां० १४ । ९ । १२ ॥ 'मृगव्याधः' शब्दमपि पश्यत ।

मृगव्याधः (=Dog-star) य उ एव मृगव्याधः स (रुद्रः) उ एव सः (मृगव्याध एकादशरुद्रेष्वन्यतमः—नीलकण्ठीयटीकायुते महाभारत आदिपर्वणि अध्याये ६६, श्लो० २ ॥) । ऐ० ३ । ३३ ॥ 'मृगयुः' शब्दमपि पश्यत ।

मृगशीर्षम् (नक्षत्रम्) एतद्वै प्रजापतेः शिरो यन्मृगशीर्षम् । श० २ । १ । २ । ८ ॥
,, स (प्रजापती रुद्रेण) विद्ध ऊर्ध्व उदप्रपतत्तमेतं मृगः (=मृगशीर्षनक्षत्रम्) इत्याचक्षते । ऐ० ३ । ३३ ॥
,, सोमो राजा मृगशीर्षेण आगन् । तै० ३ । १ । १ । २ ॥
,, स (सोमः) एतꣳ सोमाय मृगशीर्षाय श्यामाकं चरुं पयसि निरवपत् । ततो वै स ओषधीनाꣳ राज्यमभ्यजयत् । तै० ३ । १ । ४ । ३ ॥

मृत् स (फेनः) यदोपहन्यते मृदेव भवति । श० ६ । १ । ३ । ३ ॥
,, यन्मृदियं तद् (पृथिवी) । श० १४ । १ । २ । ९ ॥

मृत्युः स समुद्रादमुच्यत स मुच्युरभवत्तं वा एतं मुच्युं सन्तं मृत्युरित्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया इव हि देवा भवन्ति प्रत्यक्षद्विषः । गो० पू० १ । ७ ॥

,, एष वै मृत्युर्यत्संवत्सरः । एष हि मर्त्यानामहोरात्राभ्यामायुः क्षिणोत्यथ म्रियन्ते । श० १० । ४ । ३ । १ ॥

,, एष एव मृत्युः । य एष (सूर्यः) तपति । श० २ । ३ । ३ । ७॥

,, स एष (आदित्यः) मृत्युः । श० १० । ५ । १ । ४ ॥

,, स एष एव मृत्युः । य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः । श० १० । ५ । २ । ३ ॥

,, स एष एव मृत्युः । य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषो यश्चायं दक्षिणे ऽक्षन्पुरुषस्तस्य हैतस्य हृदये पादावतिहितौ तौ हैतदाच्छिद्योत्क्रामति स यदोत्क्रामत्यथ हैतत्पुरुषो म्रियते । श० १० । ५ । २ । १३ ॥

,, अग्निर्वै मृत्युः । कौ० १३ । ३ ॥ श० १४ । ६ । २ । १० ॥

,, यो ऽग्निर्मृत्युस्सः । जै० उ० १ । २५ । ८ ॥ २ । १३ । २ ॥

,, सो (अग्निः=मृत्युः) ऽपामन्नम् । श० १४ । ६ । २ । १० ॥

,, अथैत एव मृत्यवो यदग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमाः ॥ ते ह पुरुषं जायमानमेव मृत्युपाशैरभिदधति । जै० उ० ४ । ९ । १-२ ॥

,, मृत्युस्तदभवद्धाता । शमितोग्रो विशांपतिः । तै० ३ । १२ । ९ । ६ ॥

,, मृत्युः शमिता । तां० २५ । १८ । ४ ॥

,, एको वा अमुष्मिँल्लोके मृत्युः । अशनया मृत्युरेव । तै० ३ । ९ । १५ । १–२ ॥

,, अशनाया हि मृत्युः । श० १० । ६ । ५ । १ ॥

,, अमृत्युर्वा अन्यो भ्रूणहत्याया इत्याहुः । भ्रूणहत्या वाव मृत्युरिति । तै० ३ । ९ । १५ । २ ॥

,, तस्य (अग्नेर्वैश्वानरस्य) एष घोषो भवति यमेतत्कर्णावपिधाय शृणोति स यदोत्क्रमिष्यन्भवति नैतं घोषं शृणोति । श० १४ । ८ । १० । १ ॥

मृत्युः मृत्युर्वै तमः । श० १४ । ४ । १ । ३२ ॥ गो० उ० ५ । १ ॥

" मृत्युर्वै तमश्छाया । ऐ० ७ । १२ ॥

" अमृतान्मृत्युः (निवर्तते) । श० १० । २ । ६ । १९ ॥

मृधः (यजु० ११। ७२) अग्ने त्वं तरा मृध इत्यग्ने त्वं तर सर्वान्पाप्मन इत्येतत् । श० ६ । ६ । ३ । ४ ॥

" (यजु० ११ । १८) पाप्मा वै मृधः । श० ६ । ३ । ३ । ८ ॥

मेखला सा (मेखला) वै शार्णी भवति । श० ३ । २ । १ । ११ ॥

" तथोऽप्येवैष एतां (मेखलां) मध्यत आत्मन ऊर्जं धत्त समाप्ति तया समाप्नोति । श० ३ । २ । १ । १० ॥

मेदः मेदो वै मेधः । श० ३ । ८ । ४ । ६ ॥

मेधः (यजु० १३ । ४७) (=अन्नं) मेधायेत्यन्नायेत्येतत् । श० ७ । ५ । २ ३२ ॥

" पुरुषं वै देवाः पशुमालभन्त तस्मादालब्धान्मेध उदक्रामत्सोऽश्वं प्राविशत्......तेऽश्वमालभन्त......ते गामालभन्त... स (मेधो देवैः) अनुगतो व्रीहिरभवत् । ऐ० २ । ८ ॥

" पुरुषᳪं ह वै देवाः । अग्रे पशुमालेभिरे तस्यालब्धस्य मेधोऽपचक्राम सोऽश्वं प्रविवेश तेऽश्वमालभन्त......ते गामालभन्त ......तेऽविमालभन्त......तेऽजमालभन्त......ताविमौ व्रीहियवौ (मेधः) । श० १ । २ । ३ । ६,७ ॥

" (देवाः) तं (मेधम्) खनन्त इवान्वीषुस्तमन्वविन्दंस्ताविमौ व्रीहियवौ । श० १ । २ । ३ । ७ ॥

" सर्वेषां वाऽ एष पशूनां मेधो यद्व्रीहियवौ । श० ३ । ८ । ३ । १ ॥

" मेदो वै मेधः । श० ३ । ८ । ४ । ६ ॥

" पशुर्वै मेधः । ऐ० २ । ६ ॥

" मेधो वा एष पशूनां यत्पुरोडाशः । कौ० १० । ५ ॥

" मेधो वा आज्यम् । तै० ३ । ९ । १२ । १ ॥

मेधपतिः यजमानो मेधपतिः । ऐ० २ । ६ ॥

" यजमानो वै मेधपतिः । कौ० १० । ४ ॥

" देवतैव मेधपतिरिति । कौ० १० । ४ ॥

मेधपतिः अथो खल्वाहुर्यस्यै वाव कस्यै च देवतायै पशुरालभ्यते सैव मेधपतिरिति । ऐ० २ । ६ ॥

मेध्यम् मेध्या वा आपः । श० १ । १ । १ । १ ॥ ३ । १ । २ । १० ॥

मेनका (यजु० १५ । १६) (वायोः) मेनका च सहजन्या चाप्सरसाविति दिक् चोपदिशा चेति ह स्माह माहित्थिरिमे तु ते द्यावापृथिवी । श० ८ । ६ । १ । १७ ॥

,, वृषणश्वस्य ह मेनस्य मेनका नाम दुहिता स ताᳮ हेन्द्रश्चकमे । ष० १ । १ ॥

मेनिः (क्रोधरूपा शक्तिरिति ऐ० ८ । २४ भाष्ये सायणः) अमेन्यस्मे नृम्णानि धारय' (यजु० ३८ । १४) इत्यकुध्यन्नो धनानि धारयेत्येवैतदाह । श० १४ । २ । २ । ३० ॥

,, ता वा एता अङ्गिरसां जामयो यन्मेनयः । गो० पू० १ । ९ ॥

मेषः स हि प्रत्यक्षं वरुणस्य पशुर्यन्मेषः । श० २ । ५ । २ । १६ ॥

,, सारस्वतं मेषम् (आलभते) । तै० १ । ८ । ५ । ६ ॥

मैत्रावरुणः (ऋत्विग्विशेषः) प्रणेता वा एष होत्रकाणां यन्मैत्रावरुणः । ऐ० ६ । ६ ॥ गो० उ० ५ । १२ ॥

,, यज्ञो वै मैत्रावरुणः । कौ० १३ । २ ॥

,, मनो वै यज्ञस्य मैत्रावरुणः । ऐ० २ । ५, २६, २८ ॥

,, मनो (वै यज्ञस्य) मैत्रावरुणः । श० १२ । ८ । २ । २३ ॥

,, चक्षुश्च मनश्च मैत्रावरुणः । ऐ० २ । २६ ॥

,, चक्षुर्मैत्रावरुणः । कौ० १३ । ५ ॥

,, गायत्रो वै मैत्रावरुणः । तां० ५ । १ । १५॥

,, तस्मान्मैत्रावरुणो वामदेवान्न प्रच्यवते । गो०उ०३ । २३ ॥

,, वामदेव्यं मैत्रावरुणसाम भवति । श० १३ । ३ । ३ । ४ ॥

,, शाक्करं (पृष्ठं) मैत्रावरुणस्य । कौ० २५ । ११ ॥

,, ऐन्द्रावरुणं मैत्रावरुणस्योक्थ्यं भवति । गो० उ० ४ । १४ ॥

मैधातिथम् (साम) एतेन वै मेधातिथिः काण्वो विभिन्दुकाद्धूर्न्नीर्गा उदसृजत पशूनामवरुध्यै मैधातिथं क्रियते । तां० १५ । १० । ११ ॥

म्लेच्छः ते ऽसुरा आत्तवचसो हे ऽलवो हे ऽलव इति ('हैलो हैल इति' इति काण्वशाखीयशतपथपाठः—See footnote No. 3 in the शतपथ translated by Prof. Eggeling. 'हेलयो हेलय इति' इति महाभाष्ये १। १ प्रथमाह्निके) वदन्तः परावभूवुः ॥ तत्रैतामपि वाचमूदुः उपजिज्ञास्यांꣳ स म्लेच्छस्तस्मान्न ब्राह्मणो म्लेच्छेदसुर्या हैषा वाक् । श० ३। २। १। २३-२४ ॥

(य)

यकृत् यकृत् सविता । श० १२। ९। १। १५ ॥
यक्षः यक्षमिव चक्षुषः प्रियो वो भूयासम् । मं० १। ७। १४ ॥
यजत्रम् यजत्रमिति यज्ञियमित्येतत् । श० ६। ६। ३। ६ ॥
यजमानः यद्यजते तद्यजमानः । श० ३। २। १। १७ ॥
,, एष उ एव प्रजापतिर्यो यजते । ऐ० २। १८ ॥
,, यजमानो ह्येव स्वे यज्ञे प्रजापतिः । श० १। ६। १। २० ॥
,, इन्द्रो वै यजमानः । श० २। १। २। ११ ॥ ४। ५। ४। ८ ॥ ५। १। ३। ४ ॥
,, यजमानो मेधपतिः । ऐ० २। ६ ॥
,, यजमानो वै मेधपतिः । कौ० १०। ४ ॥
,, यजमानो हि यज्ञपतिः । श० ४। २। २। १० ॥
,, यजमानो वै यज्ञपतिः (यजु० १। २) । श० १। १। २। १२ ॥ १। २। २। ८ ॥ १। ७। १। ११ ॥
,, यजमानो ऽग्निः । श० ६। ३। ३। २१ ॥ ६। ५। १। ८ ॥ ७। ४। १। २१ ॥ ९। २। ३। ३३ ॥
,, स उऽएव यजमानस्तस्मादाग्नेयो भवति । श० ३। ६। १। ६ ॥
,, आहवनीयभाग्यजमानः । कौ० ३। ९ ॥
,, मनो यजमानस्य (रूपम्) । श० १२। ८। २। ४ ॥
,, यजमानो वै दाश्वान् (यजु० १२। १०६ ॥ १३। ५२) । श० २। ३। ४। ३८, ४० ॥ ७। ३। १। २९ ॥ ७। ५। २। ३९ ॥

यजमानः यजमानो वै मामहानः (यजु० १७ । ५५) । श० ९ । २ । ३ । ६ ॥

,, यजमानो वै सुम्नयुः (ऋ० ३ । २७ । १) । श० १ । ४ । १ । २१ ॥

,, यजमानो वै हव्यदातिः (ऋ० ६ । १६ । १०) । श० १ । ४ । १ । २४ ॥

,, यजमानः पशुः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥ २ । २ । ८ । २ ॥

,, यजमानो वै यूपः । ऐ० २ । ३ ॥ श० १३ । २ । ६ । ६ ॥

,, एष वै यजमानो यद्यूपः । तै० १ । ३ । ७ । ३ ॥

,, यजमानो वाऽ एष निदानेन यद्यूपः । श० ३ । ७ । १ । ११ ॥

,, यजमानदेवत्यो वै यूपः । तै० ३ । ६ । ५ । २ ॥

,, यजमानो वै प्रस्तरः । ऐ० २ । ३ ॥ श० १ । ८ । १ । ४४ ॥ १ । ८ । ३ । ११, १४, १६ ॥ तै० ३ । ३ । ६ । ७, ८ ॥ ३ । ३ । ९ । २, ३ ॥ तां० ६ । ७ । १७ ॥

,, यजमानो यज्ञः । श० १३ । २ । २ । १ ॥

,, यजमानो वै यज्ञः । ऐ० १ । २८ ॥

,, आत्मा वै यज्ञस्य यजमानोऽङ्गान्यृत्विजः । श० ६ । ५ । २ । १६ ॥

,, संवत्सरो यजमानः । श० ११ । २ । ७ । ३२ ॥

,, एष वै यजमानो यत्सोमः । तै० १ । ३ । ३ । ५ ॥

,, यजमानो वाऽ अग्निष्ठा । श० ३ । ७ । १ । १६ ॥

,, यजमानो हि सूक्तम् । ऐ० ६ । ६ ॥

,, यजमानः स्रुचः । तै० ३ । ३ । ६ । ३ ॥

,, यजमानदेवत्या वपा । तै० ३ । ९ । १० । १ ॥

,, यजमानच्छन्दसमेवोष्णिक् । कौ० १७ । २ ॥

,, यजमानच्छन्दसं पंक्तिः । कौ० १७ । २ ॥

,, यजमानच्छन्दसं द्विपदा (ऋक्) । कौ० १७ । २ ॥

,, यजमानो वै द्वियजुः (इष्टका) । श० ७ । ४ । २ । १६,२४ ॥

,, (यजमानः) अहतं वसानोऽवभृथादुदैति चतुरो मासो } न मांसमश्नाति न स्त्रियमुपैति । तां० १६ । १३ । ६, ११, १४ ॥

यजमानः यां वै काश्च यज्ञऽ ऋत्विजऽ आशिषमाशासते यजमानस्यैव सा। श० १। ६। १। २१॥

„ त्वङ्माᳬसᳬस्नाय्वस्थि मज्जा। एतमेव तत्पञ्चधा विहितमात्मानं वरुणपाशान्मुञ्चति (यजमानः)। तै० १। ५। ६। ७॥

„ स ह सर्वतनूरेव यजमानो ऽमुष्मिँल्लोके सम्भवति य एवं विद्वान्निष्क्रीत्या यजते। श० ११। १। ८। ६॥

यजमानभागः यजमानो वै यजमानभागः। ऐ० ७। २६॥

„ यज्ञो वै यजमानभागः। ऐ० ७। २६॥

यजुर्वेदः यजो ह वै नामैतद्यद्यजुरिति। श० ४। ६। ७। १३॥

„ एष (वायुः) हि यन्नेवेदᳬसर्वं जनयत्येतं यन्तमिदमनु प्रजायते तस्माद्वायुरेव यजुः॥ अयमेवाकाशो जूः। यदिदमन्तरिक्षमेतᳬह्याकाशमनु जवते तदेतद्यजुर्वायुश्चान्तरिक्षं च यच्च जूश्च तस्माद्यजुः। श० १०। ३। ५। २॥

„ ......यजुरित्येष (पुरुषः) हीदᳬसर्वं युनक्ति। श० १०। ५। २। २०॥

„ प्राणो वै यजुः प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि युज्यन्ते। श० १४। ८। १४। २॥

„ प्राण एव यजुः। श० १०। ३। ५। ४॥

„ इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्म्मण इत्येवमादिं कृत्वा यजुर्वेदमधीयते। गो० पू० १। २९॥

„ अष्टौ (बृहतीसहस्राणि—८०००×३६=२८८००० अक्षराणि) यजुषाम्। श० १०। ४। २। २४॥

„ व्यृद्धमु वाऽ एतद्यज्ञस्य। यदयजुष्केण क्रियते। श० १३। १। २। १॥

„ (प्रजापतिः) यजुर्भ्यो ऽधि विष्णुम् (असृजत)। तै० २। ३। २। ४॥

„ यजूᳬषि विष्णु (स्वभागरूपेणाभजत)। श० ४। ६। ७। ३॥

यजुर्वेदः आज्याहुतयो ह वाऽ एता देवानाम् । यद्यजूꣳषि । श० ११ । ५ । ६ । ५ ॥

„ अन्नमेव यजुः । श० १० । ३ । ५ । ६ ॥

„ (सूर्यः) यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः । तै० ३ । १२ । ९ । १ ॥

„ (आदित्यस्थः) पुरुषो यजूꣳषि । श० १० । ५ । १ । ५ ॥

„ आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूꣳषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते । श० १४ । ६ । ४ । ३३ ॥

„ आदित्यानीमानि यजूꣳषीत्याहुः । श० ४ । ४ । ५ । १९ ॥

„ अथ य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः सोऽग्निस्तानि यजूꣳषि स यजुषां लोकः । श० १० । ५ । २ । १ ॥

„ अग्निर्यजुषाम् (समुद्रः) । श० ९ । ५ । २ । १२ ॥

„ मनो ऽध्वर्य्युः (=यजुर्विदृत्विक्) । श० १ । ५ । १ । २१ ॥

„ अथ यन्मनो यजुष्टत् । जै० उ० १ । २५ । ६ ॥

„ मनो यजुर्वेदः । श० १४ । ४ । ३ । १२ ॥

„ मन एव यजूꣳषि । श० ४ । ६ । ७ । ५ ॥

„ मनो वै यजुः । श० ७ । ३ । १ । ४० ॥

„ वागेवऽर्चश्च सामानि च । मन एव यजूꣳषि । श० ४ । ६ । ७ । ५ ॥

„ (प्रजापतिः) भुव इत्येव यजुर्वेदस्य रसमादत्त । तदिदमन्तरिक्षमभवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् स वायुरभवद्रसस्य रसः । जै० उ० १ । १ । ४ ॥

„ भुवरिति यजुर्भ्योऽक्षरत् सो ऽन्तरिक्षलोको ऽभवत् । ष० १।५॥

„ यजुषां वायुर्दैवतं तदेव ज्योतिस्त्रैष्टुभं छन्दो ऽन्तारिक्षं स्थानम् । गो० पू० १ । २९ ॥

„ वायोर्यजुर्वेदः (अजायत) । श० ११ । ५ । ८ । ३ ॥

„ अन्तरिक्षं वै यजुषामायतनम् । गो० पू० २ । २४ ॥

„ अन्तरिक्षलोको यजुर्वेदः । ष० १ । ५ ॥

„ अन्तरिक्षं यजुषा (जयति) । श० ४ । ६ । ७ । २ ॥

„ यजुर्वेदं क्षत्रियस्याहुर्योनिम् । तै० ३ । १२ । ६ । २ ॥

„ दक्षिणां (दिशं) आहुर्यजुषामपाराम् । तै० ३ । १२ । ६ । १ ॥

यजुर्वेदः सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत् । तै० ३ । १२ । ९ । १ ॥

,, यजुर्वेदो महः । श० १२ । ३ । ४ । ९ ॥

,, यजुर्वेद एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, अद्धा वै तद्यद्यजुः । श० १३ । ८ । २ । ७ ॥

,, तस्माद्यजूꣳषि निरुक्तानि सन्त्यनिरुक्तानि । श० ४ । ६ । ७ । १७ ॥

,, मज्जा यजुः । श० ८ । १ । ४ । ५ ॥

,, (दक्षिणनेत्रस्य) यदेव ताम्रमिव बभ्रुरिव तद्यजुषाम् (रूपम्)। जै० उ० ४ । २४ । १२ ॥

,, अथ यत्कृष्णं तदपां रूपमन्नस्य मनसो यजुषः । जै० उ० १ । २५ । ९ ॥

,, स (प्रजापतिः) यजूंष्येव हिङ्कारमकरोत् । जै० उ० १ । १३ । ३ ॥

,, तस्य (यमस्य) पितरो विशः······यजूꣳषि वेदः········ यजुषामनुवाकं व्याचक्षाण इवानुद्रवेत् । श० १३ । ४ । ३ । ६ ॥

,, वह्नी वै यजुःष्वाशीः । श० १ । २ । १ । ७ ॥ ३ । ५ । २ । ११ ॥ ३ । ६ । १ । १७ ॥

यजुष्मत्यः (इष्टकाः) यजुष्मतीभिरहान्यर्धमासान्मासानृतून्(आप्नोति)। श० १० । ४ । ३ । १२ ॥

,, अन्नं वै यजुष्मत्य इष्टकाः । श० ८ । ७ । २ । ८ ॥

,, यजुष्मत्यो ज्योतिस्तद्धयह्नाꣳ रूपम् । श० १० । २ । ६ । १७ ॥

,, मज्जानो ज्योतिस्ताद्धि यजुष्मतीनाꣳ रूपम् । श० १० । २ । ६ । १८ ॥

,, (अस्य लोकस्य) मनुष्या यजुष्मत्यः । श० १० । ५ । ४ । १ ॥

यज्ञः स (सोमः) तायमानो जायते स यन्जायते तस्माद्यज्ञो यज्ञो ह वै नामैतद्यद्यज्ञ इति । श० ३ । ६ । ४ । २३ ॥

,, प्राणः (यज्ञस्य) सोमः । कौ० ९ । ६ ॥

,, अध्वरो वै यज्ञः । श० १ । २ । ४ । ५ ॥ १ । ४ । १ । ३८–३९ ॥ १ । ४ । ५ । ३ ॥ २ । ३ । ४ । १० ॥ ३ । ५ । ३ । १७ ॥ ३ । ९ । २ । ११ ॥

यज्ञः यज्ञो वै मखः । श० ६ । ५ । २ । १ ॥ तै० ३ । २ । ८ । ३ ॥ तां० ७ । ५ । ६ ॥

,, मख इत्येतद्यज्ञनामधेयम् । गो० उ० २ । ५ ॥

,, यज्ञो वै नमः (यजु० १३ । ८ ॥) । श० ७ । ४ । १ । ३० ॥

,, यज्ञो वै नमः । श० २ । ४ । २ । २४ ॥ २ । ६ । १ । ४२ ॥ ९ । १ । १ । १६ ॥

,, यज्ञो वै स्वाहाकारः । श० ३ । १ । ३ । २७ ॥

,, यज्ञो वै भुज्युः (यजु० १८ । ४२) यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि भुनक्ति । श० ९ । ४ । १ । ११ ॥

,, यज्ञो भगः (यजु० ११ । ७) । श० ६ । ३ । १ । १९ ॥

,, गातुं वित्त्वेति यज्ञं वित्त्वेत्येवैतदाह । (गातुः=यज्ञः) । श० १ । ९ । २ । २८ ॥ ४ । ४ । ४ । १३ ॥

,, यज्ञो वाऽ ऋतस्य योनिः (यजु० ११ । ६) । श० १ । ३ । ४ । १६ ॥

,, यज्ञो ह वै मधुसारघम् । श० ३ । ४ । ३ । १३ ॥

,, यज्ञो वै महिमा (यजु० ११ । ६) । श० ६ । ३ । १ । १८ ॥

,, यज्ञो वै देवानां महः । श० १ । ९ । १ । ११ ॥

,, एष ह वै महान्देवो यद्यज्ञः । गो० पू० २ । १६ ॥

,, यज्ञो वै बृहन्विपश्चित् । श० ३ । ५ । ३ । १२ ॥

,, यज्ञो वा अर्य्यमा । तै० २ । ३ । ५ । ४ ॥

,, यज्ञो वै तार्प्यम् । तै० १ । ३ । ७ । १ ॥ ३ । ९ । २० । १ ॥

,, यज्ञो वै वसुः (यजु० १ । २) । श० १ । ७ । १ । ९, १४ ॥

,, यज्ञो विदद्वसुः । तां० १५ । १० । ४ ॥

,, यज्ञो वै विदद्वसुः । तां० ११ । ४ । ५ ॥

,, यज्ञोऽसुरेषु विदद्वसुः । तां० ८ । ३ । ३ ॥

,, यत्संयद्वसुः (यजु० १५ । १८) इत्याह यज्ञꣳ हि संयन्तीतीदं वस्विति । श० ८ । ६ । १ । १६ ॥

,, यज्ञो वै सुतर्मा नौः कृष्णाजिनं वै सुतर्मा नौर्वाग्वै सुतर्मा नौः । ऐ० १ । १३ ॥

,, यज्ञो वै स्वः (यजु० १ । ११) अहर्देवाः सूर्यः । श० १ । १ । २ । २१ ॥

यज्ञः यज्ञो वै सुम्नम् (यजु० १२ । ६७, १११) । श० ७ । २ । २ । ४ ॥ ७ । ३ । १ । ३४ ॥

„ यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म (यजु० १ । १) । श० १ । ७ । १ । ५ ॥

„ यज्ञो हि श्रेष्ठतमं कर्म्म । तै० ३ । २ । १ । ४ ॥

„ यज्ञो वै विद् (यजु० ३८ । १९) । श० १४ । ३ । १ । ९ ॥

„ यज्ञो वै विशो यज्ञे हि सर्वाणि भूतानि विष्टानि । श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥

„ ब्रह्म यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । १५ ॥

„ ब्रह्म हि यज्ञः । श० ५ । ३ । २ । ४ ॥

„ ब्रह्म वै यज्ञः । ऐ० ७ । २२ ॥

„ सैषा त्रयी विद्या (=ऋक्सामयजूंषि) यज्ञः । श० १। १ । ४ । ३ ॥

„ एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत्प्रजापतिः । श० ४ । ३ । ४ । ३ ॥

„ यज्ञः प्रजापतिः । श० ११ । ६ । ३ । ९ ॥

„ यज्ञ उ वै प्रजापतिः । कौ० १० । १ ॥ १३ । १ ॥ २५ । ११ ॥ २६ । ३ ॥ तै० ३ । ३ । ७ । ३ ॥

„ स वै यज्ञ एव प्रजापतिः । श० १ । ७ । ४ । ४ ॥

„ प्रजापतिर्यज्ञः । ऐ० २ । १७ ॥ ४ । २६ ॥ श० १ । १ । १ । १३ ॥ १ । ५ । २ । १७ ॥ ३ । २ । २ । ४ ॥ तै० ३ । २ । ३ । १ ॥ गो० उ० ३ । ८ ॥ ४ । १२ ॥ ६ । १ ॥

„ प्रजापतिर्वै यज्ञः । गो० उ० २ । १८ ॥ तै० १ । ३ । १० । १० ॥

„ प्राजापत्यो यज्ञः । तै० ३ । ७ । १ । २ ॥

„ इन्द्रो यज्ञस्यात्मा । श० ९ । ५ । १ । ३३ ॥

„ इन्द्रो यज्ञस्य देवता । ऐ० ५ । ३४ ॥ ६ । ९ ॥ श० २ । १ । २ । ११ ॥

„ इन्द्रो वै यज्ञस्य देवता । श० १ । ४ । १ । ३३ ॥ १ । ४ । ५ । ४ ॥ २ । ३ । ४ । ३८ ॥

„ तदाहुः किन्देवत्यो यज्ञ इति । ऐन्द्र इति ब्रूयात् । गो० उ० ३ । २३ ॥

„ एते वै यज्ञस्यान्त्ये तन्वौ यदग्निश्च विष्णुश्च । ऐ० १ । १ ॥

„ विष्णुर्यज्ञः । गो० उ० १ । १२ ॥ तै० ३ । ३ । ७ । ६ ॥

„ यो वै विष्णुः स यज्ञः । श० ५ । २ । ३ । ६ ॥

„ स यः स विष्णुर्यज्ञः सः । स यः स यज्ञोऽसौ स आदित्यः । श० १४ । १ । १ । ६ ॥

यज्ञः विष्णुर्वै यज्ञः । ऐ० १ । १५ ॥

„ यज्ञो विष्णुः । तां० १३ । ३ । २ ॥ गो० उ० ६ । ७ ॥

„ 'पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ' (यजु० १ । १२) इति यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञिये स्थ इत्येवैतदाह । श० १ । १ । ३ । १ ॥

„ यज्ञो वै विष्णुः (यजु० २२ । २०) । श० १३ । १ । ८ । ८ ॥

„ यज्ञो वै विष्णुः । कौ० ४ । २ ॥ १८ । ८, १४ ॥ तां० ९ । ६ । १० ॥ श० १ । १ । २ । १३ ॥ ३ । २ । १ । ३८ ॥ गो० उ० ४ । ६ ॥ तै० १ । २ । ५ । १ ॥

„ यज्ञो वै विष्णुः शिपिविष्टः । तां० ९ । ७ । १० ॥

„ विष्णवे हि गृह्णाति यो यज्ञाय (हविः) गृह्णाति । श० ३ । ४ । १ । १४ ॥

„ अथेमं विष्णुं यज्ञं त्रेधा व्यभजन्त । वसवः प्रातःसवनꣳ रुद्रा माध्यन्दिनꣳ सवनमादित्यास्तृतीयसवनम् । श० १४।१।१।१५॥

„ तद्यदेनेन (यज्ञेन विष्णुना) इमाꣳ सर्वाꣳ (पृथिवीं) समविन्दन्त तस्माद्वेदिर्नाम । श० १ । २ । ५ । ७ ॥

„ तं (यज्ञं) वेद्यामन्वविन्दन् । ऐ० ३ । ९ ॥

„ यज्ञो वै वैष्णुवारुणः । कौ० १६ । ८ ॥

„ मित्राबृहस्पती वै यज्ञपथः । श० ५ । ३ । २ । ४ ॥

„ यज्ञो वै देवेभ्यो ऽपाक्रामत्स सुपर्णरूपं कृत्वाचरत् तं देवा एतैः (सौपर्णैः) सामभिरारभन्त । तां० १४ । ३ । १० ॥

„ वय इव ह वै यज्ञो विधीयते तस्योपाꣳश्वन्तर्यामावेव पक्षावात्मोपाꣳशुसवनः । श० ४ । १ । २ । २५ ॥

„ यज्ञमुखं वा ऽ उपाꣳशुः । श० ५ । २ । ४ । १७ ॥

„ देवा यज्ञियाः । श० १ । ५ । २ । ३ ॥

„ एतद्वै देवानामपराजितमायतनं यद्यज्ञः । तै० ३ । ३ । ७ । ७ ॥

„ सर्वेषां वा ऽ एष भूतानाꣳ सर्वेषां देवानामात्मा यद्यज्ञः । श०१४। ३ । २ । १ ॥

„ यज्ञ उ देवानामात्मा । श० ८ । ६ । १ । १० ॥

„ यज्ञो वै देवानामात्मा । श० ९ । ३ । २ । ७ ॥

„ (प्रजापतिर्देवानब्रवीत्–) यज्ञो वो ऽन्नम् । श० २ । ४ । २ । १ ॥

यज्ञः यज्ञ उ देवानामन्नम् । श० ८ । १ । २ । १० ॥

,, देवरथो वा एष यद्यज्ञः । ऐ० २ । ३७ ॥ कौ० ७ । ७ ॥

,, एते वै यज्ञमवन्ति ये ब्राह्मणाः शुश्रुवाꣳसो ऽनूचाना एते ह्येनं तन्वतऽ एतऽ एनं जनयन्ति । श० १ । ८ । १ । २८ ॥

,, एतैर्ह्यत्र (यज्ञे) उभयैरर्थो भवति यद्देवैश्च ब्राह्मणैश्च । श० ३ । ३ । ४ । २० ॥

,, स हैष यज्ञ उवाच । नग्नताया वै बिभेमीति का ते ऽनग्नतेत्यभित एव मा परिस्तृणीयुरिति तस्मादेतदग्निमभितः परिस्तृणन्ति तृष्णाया वै बिभेमीति का ते तृप्तिरिति ब्राह्मणस्यैव तृप्तिमनुतृप्येयमिति तस्मात्संस्थिते यज्ञे ब्राह्मणं तर्पयितवै ब्रूयाद्यज्ञमेवैतत्तर्पयति । श० १ । ७ । ३ । २८ ॥

,, यद्वै यज्ञस्य न्यूनं प्रजननमस्य तदथ यदतिरिक्तं पशव्यमस्य तदथ यत्संकसुकꣳ श्रियाऽ अस्य तदथ यत्सम्पन्नꣳ स्वर्ग्यमस्य तत् । श० ११ । ४ । ४ । ८ ॥

,, त्रिवृद्धि यज्ञः । श० १ । १ । ४ । २३ ॥ १ । २ । ५ । १४ ॥ ३ । २ । १ । ३२ ॥

,, त्रिवृत्प्रायणा हि यज्ञास्त्रिवृदुदयनाः । श० २ । ३ । ४ । १७ ॥

,, ते वै पञ्चान्यद् भूत्वा पञ्चान्यद् भूत्वा कल्पेतामाहावश्च हिंकारश्च प्रस्तावश्च प्रथमा च ऋगुद्गीथश्च मध्यमा च प्रतिहारश्चोत्तमा च निधनश्च वषट्कारश्च ते यत्पञ्चान्यद् भूत्वा पञ्चान्यद् भूत्वा कल्पेतां तस्मादाहुः पाङ्क्तो यज्ञः पाङ्क्ताः पशव इति । ऐ० ३ । २३ ॥ गो० उ० ३ । २० ॥

,, पाङ्क्तो यज्ञः । श० १ । ५ । २ । १६ ॥ ३ । १ । ४ । २० ॥ गो० पू० ४ । २४ ॥ गो० उ० २ । ३ ॥ ३ । २० ॥ ४ । ४, ७ ॥

,, पाङ्क्तो वै यज्ञः । ऐ० १ । ५ ॥ ३ । २३ ॥ ५ । ४, १८, १९ ॥ कौ० १ । ३, ४ ॥ २ । १ ॥ १३ । २ ॥ तै० १ । ३ । ३ । १ ॥ श० १ । १ । २ । १६ ॥ तां० ६ । ७ । १२ ॥

,, यज्ञो वा आश्रावणम् । श० १ । ५ । १ । १ ॥ १ । ८ । ३ । ९ ॥

,, एष वै यज्ञो यदग्निः । श० २ । १ । ४ । १९ ॥

,, अग्निर्यज्ञः । श० ३ । २ ॥ २ । ७ ॥

यज्ञः अग्निरु वै यज्ञः । श० ५ । २ । ३ । ६ ॥

„ अग्निर्वै यज्ञः । श० ३ । ४ । ३ । १९ ॥ तां० ११ । ५ । २ ॥

„ अग्निर्वै योनिर्यज्ञस्य । श० १ । ५ । २ । ११, १४ ॥ ३ । १ । ३ । २८ ॥ ११ । १ । २ । २ ॥

„ शिर एतद्यज्ञस्य यदग्निः । श० ९ । २ । ३ । ३१ ॥

„ अग्निर्वै यज्ञमुखम् । तै० १ । ६ । १ । ८ ॥

„ एष हि यज्ञस्य सुक्रतुः (ऋ० १ । १२ । १) यदग्निः । श० १ । ४ । १ । ३५ ॥

„ वाग्घि यज्ञः । श० १ । ५ । २ । ७ ॥ ३ । १ । ४ । २ ॥

„ वाग्वै यज्ञः । ऐ० ५ । २४ ॥ श० १ । १ । २ । २ ॥ ३ । १ । ३ । २७ ॥ ३ । २ । २ । ३ ॥

„ वागु वै यज्ञः । श० १ । १ । ४ । ११ ॥

„ वाग्यज्ञस्य (रूपम्) श० १२ । ८ । २ । ४ ॥

„ अयं वै यज्ञो योऽयं (वायुः) पवते । ऐ० ५ । ३३ ॥ श० १ । ९ । २ । २८ ॥ २ । १ । ४ । २१ ॥ ४ । ४ । ४ । १३ ॥ ११ । १ । २ । ३ ॥

„ अयं वाव यज्ञो योऽयं (वायुः) पवते । जै० उ० ३ । १६ । १ ॥

„ अयमु वै यः (वायुः) पवते स यज्ञः । गो० पू० ३ । २ ॥ ४ । १ ॥

„ वातो वै यज्ञः । श० ३ । १ । ३ । २६ ॥

„ संवत्सरो यज्ञः प्रजापतिः । श० २ । २ । २ । ४ ॥

„ संवत्सरो यज्ञः । श० ११ । २ । ७ । १ ॥

„ संवत्सरसंमितो वै यज्ञः पञ्च वाऽ ऋतवः संवत्सरस्य तं पञ्चभिराप्नोति तस्मात्पञ्च जुहोति । श० ३ । १ । ४ । ५ ॥

„ यज्ञ एव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । ७ ॥

„ स यः स यज्ञोऽसौ स आदित्यः । श० १४ । १ । १ । ६ ॥

„ यज्ञो वै यजमानभागः । ऐ० ७ । २६ ॥

„ यजमानो वै यज्ञः । ऐ० १ । २८ ॥

„ यजमानो यज्ञः । श० १३ । २ । २ । १ ॥

„ आत्मा वै यज्ञस्य यजमानोऽङ्गान्यृत्विजः । श० ९ । ५ । २ । १६ ॥

„ आत्मा वै यज्ञः । श० ६ । २ । १ । ७ ॥

यज्ञः पुरुषो वै यज्ञस्तस्य शिर एव हविर्धाने मुखमाहवनीय उदरं सदो ऽन्नमुक्थानि बाहू मार्जालीयश्चाऽऽग्नीध्रीयश्च या इमा अन्तर्देवतास्ते अन्तःसदसं धिष्ण्या प्रतिष्ठा गार्हपत्यव्रतश्रवणाविति । कौ० १७ । ७ ॥

,, पुरुषो वै यज्ञस्तस्य शिर एव हविर्धानं मुखमाहवनीयः उदरं सदः, अन्तरुक्थानि, बाहू मार्जालीयश्चाग्नीध्रीयश्च, या इमा देवतास्तेऽन्तःसदसं धिष्ण्याः, प्रतिष्ठे गार्हपत्यव्रतश्रपणाविति । गो० उ० ५ । ४ ॥

,, पुरुषो वै यज्ञः । कौ० १७ । ७ ॥ २५ । १२ ॥ २८ । ९ ॥ श० १ । ३ । २ । १ ॥ ३ । ५ । ३ । १ ॥ तै० ३ । ८ । २३ । १ ॥ जै० उ० ४ । २ । १ ॥ गो० पू० ४ । २४ ॥ गो० उ० ६ । १२ ॥

,, पुरुषो यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । २३ ॥

,, स (पुरुषः) यज्ञः । गो० पू० १ । ३९ ॥

,, पुरुषो वै यज्ञस्तेनेदं सर्वं मितम् (तैत्तिरीयसंहितायाम् ५ । २ । ५ । १ः—यज्ञेन वै पुरुषः सम्मितः ॥) । श० १० । २ । १ । २ ॥

,, पुरुषसम्मितो यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । २३ ॥

,, पशवो यज्ञः । श० ३ । २ । ३ । ११ ॥

,, पशवो हि यज्ञः । श० ३ । १ । ४ । ९ ॥

,, कतमो यज्ञ इति पशव इति । श० ११ । ६ । ३ । ९ ॥

,, शतोन्मानो वै यज्ञः । श० १२ । ७ । २ । १३ ॥

,, यज्ञो वै भुवनज्येष्ठः । कौ० २५ । ११ ॥

,, यज्ञो वै भुवनस्य नाभिः । तै० ३ । ९ । ५ । ५ ॥

,, यज्ञो वै भुवनम् । तै० ३ । ३ । ७ । ५ ॥

,, यज्ञो वा अनः । श० १ । १ । २ । ७ ॥ ३ । ६ । ३ । ३ ॥

,, आपो वै यज्ञः । ऐ० २ । २० ॥ श० ३ । ८ । ५ । १ ॥

,, यज्ञो वाऽ आपः । कौ० १२ । १ ॥ श० १ । १ । १ । १२ ॥ तै० ३ । २ । ४ । १ ॥

,, अद्भिर्यज्ञः प्रणीयमानः प्राङ् तायते । तस्मादाचमनीयं पूर्वमाहारयति । गो० पू० १ । ३९ ॥

यज्ञः ऋतेरक्षा वै यज्ञः। ऐ० २ । ७ ॥

,, परोऽक्षं यज्ञः । श० ३ । १ । ३ । २५ ॥

,, अजातो ह वै तावत्पुरुषो यावन्न यजते स यज्ञेनैव जायते । जै० उ० ३ । १४ । ८ ॥

,, तन्न सर्व इवाभिप्रपद्येत ब्राह्मणो वैव राजन्यो वा वैश्यो वा ते हि यज्ञियाः । श० ३ । १ । १ । ९ ॥

,, अयज्ञो वा एषः । यो ऽपत्नीकः । तै० २ । २ । २ । ६ ॥

,, पूर्वार्धो वै यज्ञस्याध्वर्युर्जघनार्धः पत्नी । श० १ । ९ । २ । ३ ॥

,, जघनार्धो वाऽ एष यज्ञस्य यत्पत्नी । श० १ । ३ । १ । १२ ॥ २ । ५ । २ । २९ ॥ ३ । ८ । २ । २ ॥

,, अथ त्रीणि वै यज्ञस्येन्द्रियाणि । अध्वर्युर्होता ब्रह्मा । तै० ? । ८ । ६ । ६ ॥

,, मनोर्यज्ञऽ इत्यु वाऽ आहुः । श० १ । ५ । १ । ७ ॥

,, मनुर्ह वाऽ अग्रे यज्ञेनेजे तदनुकृत्येमाः प्रजा यजन्ते । श० १ । ५ । १ । ७ ॥

,, ज्येष्ठयज्ञो वा एष यद् द्वादशाहः । ऐ० ४ । २५ ॥

,, यज्ञं वाऽ अनु प्रजाः । श० १ । ८ । ३ । २७ ॥

,, यज्ञाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते । श० ४ । ४ । २ । ९ ॥

,, रेतो वाऽ अत्र यज्ञः । श० ७ । ३ । २ । ९ ॥

,, (यज्ञस्य) प्राणो धूमः । श० ६ । '। ३ । ८ ॥

,, एतच्छिरो यज्ञस्य यद्धिपुवान् । कौ० २६ । १ ॥

,, शिरो वै यज्ञस्यातिथ्यम् । बाहू प्रायणीयोदयनीयौ । श० ३ । २ । ३ । २० ॥

,, शिरो वा एतद्यज्ञस्य यदातिथ्यम् । ऐ० १ । १७, २५ ॥ कौ० ८।१॥

,, शिरो वै यज्ञस्याहवनीयः पूर्वो ऽर्धो वै शिरः पूर्वार्धमेवैतद्यज्ञस्य कल्पयति । श० १ । ३ । ३ । १२ ॥

,, एतद्वै यज्ञस्य शिरो यन्मन्त्रवान्ब्रह्मौदनः । गो० पू० २ । १६ ॥

,, शिरो वै यज्ञस्योत्तर आघारः । श० १ । ४ । ५ । ५ ॥ ३ । ७ । ४ । ७ ॥

,, उत्तरत उपचारो हि यज्ञः । श० ८ । ६ । १ ।१९ ॥

यज्ञः चक्षुषी वाऽ एते यज्ञस्य यदाज्यभागौ। श० ११।७।४।२॥ १४।२।२।५२॥

„ एतद्वै प्रत्यक्षाद्यज्ञरूपं यद् घृतम्। श० १२।८।२।१५॥

„ मृगधर्म्मा (=पलायनशीलः) वै यज्ञः। तां० ६।७।१०॥

„ यज्ञो वै मैत्रावरुणः। कौ० १३।२॥

„ मनो (वै यज्ञस्य) मैत्रावरुणः। श० १२।८।२।२३॥

„ मनो वै यज्ञस्य मैत्रावरुणः। ऐ० २।५, २६, २८॥

„ विराड् वै यज्ञः। श० १।१।१।२२॥ श० २।३।१।१८॥ ४।४।५।१९॥

„ वैराजो यज्ञः। गो० पू० ४।२४॥ गो० उ० ६।१५॥

„ यदु ह किं च देवाः कुर्वते स्तोमेनैव तत्कुर्वते यज्ञो वै स्तोमो यज्ञेनैव तत्कुर्वते। श० ८।४।३।२॥

„ नासामा यज्ञो ऽस्ति। श० १।४।१।१॥

„ एते वै यज्ञा वागन्ता ये यज्ञायज्ञीयान्ताः। तां० ८।६।१३॥

„ श्रायन्तीयं यज्ञविभ्रष्टाय ब्रह्मसाम कुर्य्यात्। तां० ८।२।९॥

„ यज्ञस्य शीर्षच्छिन्नस्य (रसो व्यक्षरत्स) पितॄनगच्छत्। श० १४।२।२।११॥ (विष्णुशब्दमपि पश्यत)

„ दक्षिणतो वै देवानां यज्ञं रक्षांस्यजिघांसन्। गो० उ० १।१८॥ २।१६॥

„ रक्षाꣳसि यज्ञं न हिꣳस्युरिति। श० १।८।१।१६॥

„ देवानां वै यज्ञꣳ रक्षाꣳस्यजिघाꣳसन्। तां० १४।१२।७॥

„ स्खलति वाऽ एष यो यज्ञपथादेत्येति वाऽ एष यज्ञपथाद्यद्यज्ञियाम्यज्ञेन प्रसजत्ययज्ञियान्वाऽ एतद्यज्ञेन प्रसजति शूद्रांस्त्वद्यांस्त्वत्॥ श० ५।३।२।४॥

„ यद्वै यज्ञस्यान्यूनातिरिक्तं तच्छिवम्। श० ११।२।३।९॥

„ यद्वै यज्ञस्यान्यूनातिरिक्तं तत्स्विष्टम्। श० ११।२।३।९॥

„ विष्णुर्वै यज्ञस्य दुरिष्टं पाति। ऐ० ३।३८॥ ७।५॥

„ यद्वै यज्ञस्य दुरिष्टं तद्वरुणो गृह्णाति। तां० १३।२।४॥ १५।१।३॥

„ वरुणेन (यज्ञस्य) दुरिष्टं (शमयति)। तै० १।२।५।३॥

यज्ञः यज्ञस्य (ईजानस्य) दुरिष्टं भवति वरुणो ऽस्य तद् गृह्णाति। श० ४। ५। १। ६॥

,, वरुणः (यज्ञस्य) स्विष्टम् (पाति)। ऐ० ३। ३८॥ ७। ५॥

,, अक्षरेणैव यज्ञस्य छिद्रमपिदधाति। तां० ८। ६। १३॥

,, यज्ञो यज्ञस्य प्रायश्चित्तिः। ऐ० ७। ४॥

,, यद्यज्ञे ऽभिरूपं तत्समृद्धम्। कौ० ९। ६॥ गो० उ० ४। १८॥

,, एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं यत्कर्म क्रियमाणमृगभिवदति। ऐ० १। ४, १३, १६, १७॥

,, व्यृद्धमु वाऽ एतद्यज्ञस्य। यदयजुष्केण क्रियते। श० १३। १। २। १॥

,, व्यृद्धं वै तद्यज्ञस्य यन्मानुषम्। श० १। ४। १। ३५॥ १। ४। ३। ३५॥ १। ८। १। २९॥ ३। २। २। १५॥ ३। ३। ४। ३१॥

,, स एतं त्रिवृतं सप्ततन्तुमेकविंशतिसंस्थं यज्ञमपश्यत्। गो० पू० १। १२॥

,, सप्त सुत्याः सप्त च पाकयज्ञाः हविर्यज्ञाः सप्ततथैकविंशतिः। सर्वे ते यज्ञा अङ्गिरसो ऽपियन्ति नूतना यानृषयो सृजन्ति ये च सृष्टाः पुराणैः। गो० पू० ५। २५॥

,, अथातो यज्ञक्रमा अग्न्याधेयमग्न्याधेयात्पूर्णाहुतिः पूर्णाहुतेरग्निहोत्रमग्निहोत्राद्दर्शपूर्णमासौ दर्शपूर्णमासाभ्यामाग्रयणमाग्रयणाच्चातुर्मास्यानि चातुर्मास्येभ्यः पशुबन्धः पशुबन्धादग्निष्टोमो ऽग्निष्टोमाद्राजसूयो राजसूयाद्वाजपेयो वाजपेयादश्वमेधो ऽश्वमेधात्पुरुषमेधः पुरुषमेधात्सर्वमेधः सर्वमेधाद्दक्षिणावन्तो दक्षिणावद्भ्यो ऽदक्षिणा अदक्षिणाः सहस्रदक्षिणे प्रत्यतिष्ठंस्ते वा एते यज्ञक्रमाः। गो० पू० ५। ७॥

,, अग्निष्टोम उक्थ्यो ऽग्निर्ऋतुः प्रजापतिः संवत्सर इति। एते ऽनुवाका यज्ञक्रतूनाञ्चर्तूनाञ्च संवत्सरस्य च नामधेयानि। तै० ३। १०। १०। ४॥

,, हवींᳬषि ह वाऽ आत्मा यज्ञस्य। श० १। ६। ३। ३९॥

,, आहुतिर्हि यज्ञः। श० ३। १। ४। १॥

यज्ञः वनस्पतयो हि यज्ञिया न हि मनुष्या यजेरन् यद्वनस्पतयो न स्युः । श० ३ । २ । २ । ९ ॥

,, यदि पालाशान् (परिधीन्) न विन्देत् । अथोऽअपि वैकङ्कता स्युर्यदि वैकङ्कतान्न विन्देदथोऽअपि कार्ष्मर्यमयाः स्युर्यदि कार्ष्मर्यमयान्न विन्देदथोऽअपि बैल्वाः स्युरथो खादिरा अथोऽऔदुम्बरा एते हि वृक्षा यज्ञियाः । श० १ । ३ । ३ । २० ॥

,, तस्मादेष (विकङ्कतः) यज्ञियो यज्ञपात्रीयो वृक्षः । श० २ । २ । ४ । १० ॥

,, यज्ञो विकङ्कतः । श० १४ । १ । २ । ५ ॥

,, कुलायमिव ह्येतद्यज्ञे क्रियते यत्पैतुदारवाः परिधयो गुग्गुलूर्णास्तुकाः सुगंधितेजनानीति । ऐ० १ । २८ ॥

,, स यः श्रद्दधानो यजते तस्येष्टं न क्षीयते । कौ० ७ । ४ ॥

,, यज्ञो वा अवति । तां० ६ । ४ । ५ ॥

,, इतःप्रदाना वै वृष्टिरितो ह्यग्निर्वृष्टिं वनुते स (अग्निः) एतैः (घृत–)स्तोकैरेतान्स्तोकान् वनुते तऽ एते स्तोका वर्षन्ति । श० ३ । ८ । २ । २२ ।

,, ततो ऽसुरा उभयीरोषधीर्याश्च मनुष्या उपजीवन्ति याश्च पशवः कृत्ययेव त्वद्विषेणेव त्वत्प्रलिलिपुरुतैवं चिद्देवानभिभवेमेति ततो न मनुष्या आशुर्न पशव आलिलिशिरे ता इमाः प्रजा अनाशकेन नोत्पराबभूवुः……ते (देवाः) होचुर्हन्तेदमासामपजिघांसामेति केनेति यज्ञेनैवेति । श० २ । ४ । ३ । २–३ ॥

,, एतेन वै देवाः । (आग्रयणाख्येन) यज्ञेनेष्ट्वोभयीनामोषधीनां याश्च मनुष्या उपजीवन्ति याश्च पशवः कृत्यामिव त्वद्विषमिव त्वदपजघ्नुस्तत आश्नन्मनुष्या आलिशन्त पशवः । श० २ । ४ । ३ । ११ ॥

,, भैषज्ययज्ञा वा एते यच्चातुर्मास्यानि तस्मादृतुसंधिषु प्रयुज्यंत ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते । गो० उ० १ । १९ ॥

,, भैषज्ययज्ञा वा एते यच्चातुर्मास्यानि तस्मादृतुसंधिषु प्रयुज्यन्त ऋतुसंधिषु हि व्याधिर्जायते । कौ० ५ । १ ॥

यज्ञः एष ह वै यजमानस्यामुष्मिल्लँोकऽ आत्मा भवति यद्यज्ञः स ह सर्वतनूरेव यजमानोऽमुष्मिल्लँोके सम्भवति य एवं विद्वान्निष्क्रीतया यजते । श० ११ । १ । ८ । ६॥

,, यज्ञेन वै देवा दिवमुपोदक्रामन् । श० १ । ७ । ३ । १॥

,, स्वर्गो वै लोको यज्ञः । कौ० १४ । १॥

,, (यज्ञेन वै देवाः सुवर्गं लोकमायन्–तैत्तिरीयसंहितायाम् ६ । ३ । ४ । ७॥)

,, यज्ञेन वै तद्देवा यज्ञमयजन्त यदग्निना ऽग्निमयजन्त ते स्वर्गं लोकमायन् । ऐ० १ । १६॥

यज्ञपतिः यजमानो हि यज्ञपतिः । श० ४ । २ । २ । १०॥

,, (यजु० १ । २॥) यजमानो वै यज्ञपतिः । श० १ । १ । २ । १२॥ १ । २ । २ । ८॥ १ । ७ । १ । ११॥

,, वत्सा उ वै यज्ञपतिं वर्धन्ति यस्य ह्येते भूयिष्ठा भवन्ति स हि यज्ञपतिर्वर्धते । श० १ । ८ । १ । २८॥

यज्ञायज्ञीयम् (साम) योनिर्वै यज्ञायज्ञीयमेतस्माद्वै योनेः प्रजापतिर्यज्ञमसृजत यद्यज्ञं यज्ञमसृजत तस्माद्यज्ञायज्ञीयम् । तां० ८ । ६ । ३॥

,, चन्द्रमा वै यज्ञायज्ञियं यो हि कश्च यज्ञः संतिष्ठतऽ एतमेव तस्याहुतीनाᳯं रसोऽप्येति तद्यदेतं यज्ञो यज्ञोऽप्येति तस्माच्चन्द्रमा यज्ञायज्ञियम् । श० ९ । १ । २ । ३९॥

,, देवा वै ब्रह्म व्यभजन्त तस्य यो रसोऽत्यरिच्यत तद्यज्ञायज्ञीयमभवत् । तां० ८ । ६ । १॥

,, एषा वै प्रत्यक्षमनुष्टुब्यद्यज्ञायज्ञीयम् । तां० १५ । ९ । १५॥

,, यज्ञायज्ञीयᳯं ह्येव महाव्रतस्य पुच्छम् । तां० ५ । १ । १८॥

,, यज्ञायज्ञीयं पुच्छम् (महाव्रतस्य) । तां० १६ । ११ । ११॥

,, अतिशयं वै द्विपदां यज्ञायज्ञीयम् । तां० ५ । १ । १९॥

,, वाचो रसो यज्ञायज्ञीयम् । तां० १८ । ५ । २१॥ १८ । ११ । ३॥

यज्ञायज्ञीयम् वाग्यज्ञायज्ञीयम् । तां० ५ । ३ । ७ ॥ ११ । ५ । २८ ॥

,, एते वै यज्ञा वागन्ता ये यज्ञायज्ञीयान्ताः । तां० ८ । ६ । १३ ॥

,, एषा वै शिशुमारी यज्ञपथे ऽप्यस्ता यज्ञायज्ञीयं यद्गिरागिरेत्याहात्मानं तदुद्गाता गिरति । तां० ८ । ६ । ९ ॥

,, पशवो ऽन्नाद्यं यज्ञायज्ञीयम् । तां० १५ । ९ । १२ ॥

,, पन्था वै यज्ञायज्ञीयम् । तां० ४ । २ । २१ ॥

,, कथमिव यज्ञायज्ञीयज्ञेयमित्याहुर्य्यथा ऽनड्वान् प्रस्नावयमाण इत्थमिव चेत्थमिव चेति । तां० ८ । ७ । ४ ॥

,, स्वर्गो वै लोको यज्ञायज्ञियम् । श० ६ । ४ । ४ । १० ॥

यण्वम् (साम) पशवो वै यण्वम् । तां० १३ । ३ । ६ ॥

यतिः इन्द्रो यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागभ्यवदत्सो ऽशुद्धो ऽमन्यत स एतच्छुद्धाशुद्धीयमपश्यत्तेनाशुद्ध्यत् (इन्द्रो यतीन्त्सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तान्दक्षिणत उत्तरवेद्या आदन्—तैत्तिरीयसंहितायाम् ६ । २ । ७ । ५ ॥) । तां० १४ । ११ । २८ ॥

,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागभ्यवदत्सो ऽशुद्धो ऽमन्यत स एते शुद्धाशुद्धीये (सामनी) अपश्यत्ताभ्यामशुद्ध्यत् । तां० १९ । ४ । ७ ॥

,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागभ्यवदत्स प्रजापतिमुपाधावत्तस्मा एतमुपहव्यं प्रायच्छत् । तां० १८ । १ । ९ ॥

,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्तेषां त्रय उदशिष्यन्त पृथुरश्मिर्बृहद्गिरी रायोवाजः । तां० १३ । ४ । १७ ॥

,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तेषां त्रय उदशिष्यन्त रायोवाजो बृहद्गिरिः पृथुरश्मिः । तां० ८ । १ । ४ ॥

,, (इन्द्रः) यतीन्त्सालावृकेभ्यः प्रादात् [(अहमिन्द्रः) यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छम्—शङ्करानन्दीयटीकायुतायां कौषीतकिब्राह्मणोपनिषदि ३ । १ ॥] । ऐ० ७ । २८ ॥

यतिः (=मेघः । इति सायणः—ऋ० १० । ७२ । ७ भाष्ये)

यद्वाहिष्ठीयम् (साम) ब्रह्मयशसं वा एतानि सामान्यृचा श्रोत्रीयाणि ब्रह्मयशसी भवति यद्वाहिष्ठीयेन तुष्टुवानः। तां० १५ । ५ । २६ ॥

यन्ता (ऋ० ३ । १३ । ३) अपानो वै यंता ऽपानेन ह्ययं यतः प्राणो न पराङ् भवति । ऐ० २ । ४० ॥

" वायुर्वै यंता वायुना हीदं यतमन्तरिक्षं न समृच्छति । ऐ० २ । ४१ ॥

यमः (यजु० ३७ । ११) एष वै यमो य एष (सूर्यः) तपत्येष हीदꣳ सर्वं यमयत्येतेनेदꣳ सर्वं यतम् । श० १४ । १ । ३ । ४ ॥

" अथैष एव गार्हपत्यो यमो राजा । श० २ । ३ । २ । २ ॥

" अग्निर्वाव यमः । गो० उ० ४ । ८ ॥

" (यजु० १२ । ६३) अग्निर्वै यम इयं (पृथिवी) यमस्याꣳ हीदꣳ सर्वं यतम् । श० ७ । २ । १ । १० ॥

" यमो ह वाऽ अस्याः (पृथिव्याः) अवसानस्येष्टे । श० ७ । १ । १ । ३ ॥

" (यजु० ३८ । ९ ॥) अयं वै यमो यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १४ । २ । २ । ११ ॥

" यमः पन्था । तै० २ । ५ । ७ । ३ ॥

" (यमाय) दण्डपाणये स्वाहा । प० ५ । ४ ॥

" यामं शुक्रं हरितमालभेत । गो० उ० २ । १ ॥

" क्षत्रं वै यमो विशः पितरः । श० ७ । १ । १ । ४ ॥

" यमो वैवस्वतो राजेत्याह तस्य पितरो विशः । श० १३ । ४ । ३ । ६ ॥

" पितृलोको यमः । कौ० १६ । ८ ॥

" किंदेवतोस्यां दक्षिणायां दिश्यसीति । यमदेवत इति । श० १४ । ६ । ९ । २२ ॥

" अनूराधाः प्रथमं अपभरणीरुत्तमं तानि यमनक्षत्राणि । तै० १ । ५ । २ । ७ ॥

यमी इयं (पृथिवी) यमी । श० ७ । २ । १ । १० ॥ गो० उ० ४ । ८ ॥

यवुः यवुर्नामासीत्याह । एतद्वा अश्वस्य प्रियं नामधेयम् । तै० ३ । ८ । ९ । २ ॥

यवाः ततो देवेभ्यः सर्वा एवौषधय ईयुर्यवा हैवैभ्यो नेयुः । तद्वै देवा अस्पृण्वत । त एतैः सर्वाः सपत्नानामोषधीरयुवत । यद्-युवत तस्माद्यवा नाम । श० ३ । ६ । १ । ८–९ ॥

,, निर्वरुणत्वाय (="वरुणकृतबाधपरिहाराय" इति सायणः) एव यवाः । तां० १८ । ९ । १७ ॥

,, वरुण्यो यवः । श० ४ । २ । १ । ११ ॥

,, वरुण्यो ह वाऽ अग्रे यवः । श० २ । ५ । २ । १ ॥

,, वारुणं यवमयं चरुं निर्वपति । तै० १ । ७ । २ । ६ ॥

,, वारुणो यवमयश्चरुः । श० ५ । २ । ४ । ११ ॥

,, तस्य (सोमस्य) अश्रु प्रास्कन्दत्ततो यवः समभवत् । श० ४ । २ । १ । ११ ॥

,, स यः सर्वासामोषधीनाᳫं रसऽ आसीत्तं यवेष्वदधुस्तस्मा-द्यत्रान्याऽ ओषधयो म्लायन्ति तदेते मोदमाना वर्द्धन्ते । श० ३ । ६ । १ । १० ॥

,, सैनान्यं वा एतदोषधीनां यद्यवाः । ऐ० ८ । १६ ॥

,, (देवाः) तं (मेधम्) खनन्त इवान्वीषुस्तमन्वविन्दंस्ता-विमौ व्रीहियवौ । श० १ । २ । ३ । ७ ॥

,, सर्वेषां वा एष पशूनां मेधो यद् व्रीहियवौ । श० ३ । ८ । ३ । १ ॥

,, (यजु० २३ । ३०) विड् वै यवः । श० १३ । २ । ९ । ८ ॥

,, राष्ट्रं यवः । तै० ३ । ९ । ७ । २ ॥

,, अथ ये फेनास्ते यवाः । श० १२ । ७ । १ । ४ ॥

,, (यजु० १४ । २६) ते (पूर्वपक्षा) हीदᳫं सर्वं युवते । श० ८ । ४ । २ । ११ ॥

,, स यो देवानाम् (अर्धमासः=शुक्लपक्षः) आसीत् । स यवा युवत (="समसृज्यन्त इति" सायणः) हि तेन देवाः । श० १ । ७ । २ । २५ ॥

(अथोऽ इतरथाहुः) यो ऽसुराणाम् (अर्धमासः=कृष्णपक्षः) स यवायुवत हि तं देवाः । श० १ । ७ । २ । २६ ॥

यवाः (यजु० १४ । २६) पूर्वपक्षा वै यवाः । श० ८ । ४ । २ । ११ ॥

यविष्ठः (यजु० १३ । ५२) एतद्धास्य (अग्नेः) प्रियं धाम यद्यविष्ठ इति यद्वै जात इदꣳ सर्वमयुवत तस्माद्यविष्ठः । श० ७ । ५ । २ । ३८ ॥

यविष्ठ्यः (ऋ० ६ । ६ । ११) यविष्ठो (=युवतम इति सायणः) ह्यग्निः । श० १ । ४ । १ । २६ ॥

यव्याः यव्या मासाः । श० १ । ७ । २ । २६ ॥

यशः सामवेद एव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, सामवेदो यशः । श० १२ । ३ । ४ । ९ ॥
,, उद्गातैव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, आदित्यो यशः । श० १२ । ३ । ४ । ८ ॥
,, आदित्य एव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, चक्षुर्यशः । श० १२ । ३ । ४ । १० ॥
,, चक्षुरेव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, प्राणा वै यशः । श० १४ । ५ । २ । ५ ॥
,, द्यौर्यशः । श० १२ । ३ । ४ । ७ ॥
,, द्यौरेव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, वर्षा एव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, जगत्येव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, सप्तदशः (स्तोमः) एव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, उदीच्येव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, पशवो यशः । श० १२ । ८ । ३ । १ ॥
,, (ऋ० १० । ७२ । १० ॥) यशो वै सोमो राजा । ऐ० १ । १३ ॥
,, यशो वै सोमः । श० ४ । २ । ४ । ९ ॥
,, सोमो वै यशः । तै० २ । २ । ८ । ८ ॥
,, यश उ वै सोमो राजान्नाद्यम् । कौ० ९ । ६ ॥
,, यशो हि सुरा । श० १२ । ७ । ३ । १४ ॥
,, यशो वै हिरण्यम् । ऐ० ७ । १८ ॥

यशः यशो देवाः । श० २ । १ । ४ । ९ ॥

,, तस्माद् (देवाः) यशः । श० ३ । ४ । २ । ८ ॥

याज्या इयꣳ (पृथिवी) हि याज्या । श० १ । ४ । २ । १९ ॥

,, इयं (पृथिवी) याज्या । श० १ । ७ । २ । ११ ॥

,, अन्तरिक्षलोकं याज्यया (जयति) । श० १४ । ६ । १ । ९ ॥

,, वृष्टिर्वै याज्या विद्युदेव विद्युद्धीदं वृष्टिमन्नाद्यं संप्रयच्छति । ऐ० २ । ४१ ॥

,, अन्नं वै याज्या । गो० उ० ३ । २२ ॥ ६ । ८ ॥

,, अन्नं याज्या । कौ० १५ । ३ ॥ १६ । ४ ॥ गो० उ० ३ । २१ ॥

,, अपानो याज्या । श० १४ । ६ । १ । १२ ॥

,, आसीनो याज्यां यजति । श० १ । ४ । २ । १६ ॥

,, प्रयच्छति (हविः) याज्यया । श० १ । ७ । २ । १७ ॥

,, प्रत्तिर्वै याज्या पुण्यैव लक्ष्मीः । ऐ० २ । ४० ॥

यातुः (=यो ऽयं दक्षिणे ऽक्षन्पुरुषः) एतेन हीदꣳ सर्वं यतम् । श० १० । ५ । २ । २० ॥

यामः (यजु० ११ । १३) अस्मिन्यामे वृषण्वसू ऽइत्यस्मिन्कर्मणि वृषण्वसूऽ इत्येतत् । श० ६ । ३ । २ । ३ ॥

यामम् (साम) एतेन वै यमो ऽनपजय्यममुष्य लोकस्याधिपत्यमाश्नुत । तां० ११ । १० । २१ ॥

,, एतेन वै यमी यमꣳ स्वर्गं लोकमगमयत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गात् लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः । तां० ११ । १० । २२ ॥

यामि (यजु० १८ । ४९) तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमान इति तत्त्वा याचे ब्रह्मणा वन्दमान इत्येतत्तदाशास्ते । (अथापि वर्णलोपो भवति तत्त्वा यामीति-निरुक्ते २ । १) । श० ९ । ४ । २ । १७ ॥

याविहोत्रम् यवा च हि वाऽ अयवा यवेतीवाथ येनैतेषाꣳ होता भवति तद्याविहोत्रमित्याचिक्षते । श० १ । ७ । २ । २६ ॥

युक्तिः (अहीनस्य) तद्यच्चतुर्विंशे ऽहन्युज्यंते सा युक्तिः । ऐ० ६ । २३॥

युञ्जानः (यजु० ११ । १) प्रजापतिर्वै युञ्जानः स मन एतस्मै कर्मणे ऽयुङ्क्त । श० ६ । ३ । १ । १२ ॥

युद्धम् नाराजकस्य युद्धमस्ति । तै० १ । ५ । ९ । १ ॥

,, युद्धं वै राजन्यस्य । तै० ३ । ९ । १४ । ४ ॥

,, युद्धं वै राजन्यस्य वीर्यम् । श० १३ । १ । ५ । ६ ॥

युधाजित् इन्द्रो वै युधाजित् । तां० ७ । ५ । १४ ॥

युवा सुवासाः (ऋ० ३ । ८ । ४) प्राणो वै युवा सुवासाः । ऐ० २ । २॥

यूनर्व्वा साम वै यूनर्व्वा । तां० ६ । ४ । ८ ॥

यूपः (देवाः) तं वै (यज्ञं) यूपेनैवायोपयंस्तद्यूपस्य यूपत्वम् । ऐ० २ । १ ॥

,, (देवाः) यदनेन (यूपेन यज्ञं) अयोपयंस्तस्माद्यूपो नाम । श० १ । ६ । २ । १ ॥ ३ । १ । ४ । ३ ॥ ३ । २ । २ । २ ॥

,, तस्माद्यूपऽ एव पशुमालभन्ते नऽर्ते यूपात्कदाचन । श० ३ । ७ । ३ । २ ॥

,, पशवे वै यूपमुच्छ्रयन्ति । श० ३ । ७ । २ । ४ ॥

,, गर्तन्वान्यूपो ऽतीक्ष्णाग्रो भवति । श० ५ । २ । १ । ७ ॥

,, अष्टाश्रिर्यूपो भवति । श० ५ । २ । १ । ५ ॥

,, सप्तदशारत्निर्यूपो भवति । तै० १ । ३ । ७ । २ ॥

,, खादिरो यूपो भवति । श० ३ । ६ । २ । १२ ॥

,, स्तुप एवास्य (यज्ञस्य) यूपः । श० ३ । ५ । ३ । ४ ॥

,, यूप स्थाणुः । श० ३ । ६ । २ । ५ ॥

,, खलेवाली यूपो भवत्येतया हि तं रसमुत्कृषन्ति । तां० १६ । १३ । ८ ॥

,, वैष्णवो हि यूपः । श० ३ । ६ । ४ । १ ॥

,, असौ वा अस्य (अग्निहोत्रस्य कर्त्तुः) आदित्यो यूपः । ऐ० ५ । २८ ॥

,, आदित्यो यूपः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥

,, वज्रो यूपः । श० ३ । ६ । ४ । १६ ॥

,, वज्रो वा एष यद्यूपः । कौ० १० । १ ॥ ऐ० २ । १, ३ ॥ ष० ४ । ४ ॥

,, वज्रो वै यूपशकलः । श० ३ । ८ । १ । ५ ॥

यूपः (चतुर्द्धाविभक्तस्य वज्रस्य) यूपस्तृतीयं (=तृतीयोंऽशः) वा यावद्वा। श० १। २। ४। १॥

,, एष वै यजमानो यद्यूपः। तै० १। ३। ७। ३॥

,, यजमानो वै यूपः। ऐ० २। ३॥ श० १३। २। ६। ९॥

,, यजमानदेवत्यो वै यूपः। तै० ३। ९। ५। २॥

,, यजमानो वाऽ एष निदानेन यद्यूपः। श० ३। ७। १। ११॥

योगः यद्योक्रूम्। स योगः। तै० ३। ३। ३। ३॥

योगक्षेमः यद्योक्रूं स योगः। यदास्ते स क्षेमः। योगक्षेमस्य क्लृप्त्यै। तै० ३। ३। ३। ३॥

योनिः योनिरुलूखलम्.........शिश्नं मुसलम्। श० ७। ५। १। ३८॥

,, योनिर्वाऽ उखा। श० ७। ५। २। २॥

,, योनिर्वाऽ उत्तरवेदिः। श० ७। ३। १। २८॥

,, योनिर्वै गार्हपत्या चितिः। श० ७। १। १। ८॥ ८। ६। ३। ८॥

,, योनिरेव वरुणः। श० १२। ९। १। १७॥

,, योनिर्वै पुष्करपर्णम्। श० ६। ४। १। ७॥

,, योनिर्मुञ्जाः। श० ६। ६। २। १५॥

,, परिमण्डला हि योनिः। श० ७। १। १। ३७॥

,, अन्धमिव वै तमो योनिः। जै० उ० ३। ९। २॥

,, माꣳसेन वाऽ उदरं च योनिश्च सꣳहिते। श० ८। ६। २। १४॥

योनिश्चतुर्विꣳशः (यजु० १४। २३) संवत्सरो वाव योनिश्चतुर्विꣳशस्तस्य चतुर्विꣳशतिरर्धमासास्तद्यत्तमाह योनिरिति संवत्सरो हि सर्वेषां भूतानां योनिः। श० ८। ४। १। १८॥

योषा योषा वाऽ इयं वाग्यदेनं न युवति। श० ३। २। १। २२॥

,, योषा हि वाक्। श० १। ४। ४। ४॥

,, वागिति स्त्री (=योषा)। जै० उ० ४। २२। ११॥

,, योषा वै वेदिः। श० १। ३। ३। ८॥

,, योषा वै वेदिर्वृषाग्निः। श० १। २। ५। १५॥

,, योषा वाऽ अग्निः। श० १४। ९। १। १६॥

,, योषा हि स्रुक्। श० १। ४। ४। ४॥

योषा योषा वै स्रुग्वृषा स्रुवः । श० १ । ३ । १ । ९ ॥

,, योषा वै पत्नी । श० १ । ३ । १ । १८ ॥

,, न वै योषा कंचन हिनस्ति । श० ६ । ३ । १ । ३९ ॥

,, तस्मात्पुमान्दक्षिणतो योषामुपशेते । जै० उ० १ । ५३ । ३ ॥

,, दक्षिणतो वै वृषा योषामुपशेते । श० ६ । ३ । १ । ३० ॥
७ । ५ । १ । ६ ॥

,, अरत्निमात्राद्धि वृषा योषामुपशेते । श० ६ । ३ । १ । ३० ॥
७ । ५ । १ । ६ ॥

,, पश्चाद्वै परीत्य वृषा योषामधिद्रवति तस्याᳲ रेतः सिञ्चति ।
श० २ । ४ । ४ । २३ ॥

,, रक्षाᳲसि योषितमनुसचन्ते तदुत रक्षाᳲस्येव रेत आद्-
धाति । श० ३ । २ । १ । ४० ॥

,, तस्माद्यदा योषा रेतो धत्ते ऽथ पयो धत्ते । श० ७ । १ । १ । ४४ ॥

,, पुरन्धिर्योषा (यजु० २२ । २२) इति । योषित्येव रूपं दधाति
तस्माद्रूपिणी युवतिः प्रिया भावुका । श० १३ । १ । ९ । ६ ॥

,, पुरन्धिर्योषेत्याह । योषित्येव रूपं दधाति । तस्मात्स्त्री युवतिः
प्रिया भावुका । तै ३ । ८ । १३ । २ ॥

,, एवमिव हि योषां प्रशᳲसन्ति पृथुश्रोणिर्विमृष्टान्तराᳲसा
मध्ये संग्राह्येति । श० १ । २ । ५ । १६ ॥

,, पश्चाद्वरीयसी पृथुश्रोणिरिति वै योषां प्रशंᳲसन्ति । श० ३ ।
५ । १ । ११ ॥

,, योषा वै सिनीवाली (यजु० ११ । ५६) एतदु वै योषायै समृद्ध-
ᳲ रूपं यत् सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा । श० ६ । ५ । १ । १० ॥

,, ('जाया,' 'पत्नी,' 'स्त्री' इत्येतानपि शब्दान् पश्यत) ।

यौक्ताश्वम् (साम) युक्ताश्वो वा आङ्गिरसः शिशू जातौ विपर्य्यहर-
त्तस्मान्मन्त्रोपाक्रामत्स तपो ऽतप्यत स एतद्यौक्ताश्वमप-
श्यत्तं मन्त्र उपावर्त्तत तद्वाव स तर्ह्यकामयत कामसनि
साम यौक्ताश्वं काममेवैतेनावरुन्धे । तां० ११ । ८ । ८ ॥

यौधाजयम् (साम) युधा मर्य्या अजैष्मेति तस्माद्यौधाजयम् । तां०
७ । ५ । १५ ॥

,, इन्द्रो वै युधाजित्तस्यैतद्यौधाजयम् । तां० ७ ।
५ । १४ ॥

यौधाजयम् वज्रो वै यौधाजयम् । तां० ७ । ५ । १२ ॥

(र)

रक्षांसि देवान्ह वै यज्ञेन यजमानांस्तानसुररक्षसानि ररक्षुर्न यक्ष्यध्व इति तद्यदरक्षंस्तस्माद्रक्षांॅसि । श० १ । १ । १ । १६ ॥

„ देवान्ह वाऽ अग्नी (गार्हपत्याहवनीयौ) आधास्यमानान् । तानसुररक्षसानि ररक्षुर्नाऽग्निर्जनिष्यते नाऽग्नी आधास्यध्वऽ इति तद्यदरक्षंस्तस्माद्रक्षांसि । श० २ । १ । ४ । १५ ॥

„ रक्षांॅसि यज्ञं न हिंॅस्युरिति । श० १ । ८ । १ । १६ ॥

„ एतद्वै देवा अविभयुर्यद्वै नो यज्ञं दक्षिणतो रक्षांॅसि नाष्ट्रा न हन्युरिति । श० ७ । ४ । १ । ३७ ॥

„ अतो हीन्द्रस्तिष्ठन्दक्षिणतो नाष्ट्रा रक्षांॅस्यपाहन् । श० १ । ४ । ५ । ३ ॥

„ दक्षिणतो वै देवानां यज्ञं रक्षांस्यजिघांसन् । गो० उ० १ ।१८॥ २ । १६ ॥

„ तुषैर्वै फलीकरणैर्देवा हविर्यज्ञेभ्यो रक्षांसि निरभजन्नस्ना महायज्ञात्स यदस्ना रक्षः संसृजतादित्याह रक्षांस्येव तत्स्वेन भागधेयेन यज्ञान्निरवदयते । ऐ० २ । ७ ॥

„ ततो देवा सर्वं यज्ञंॅ संवृज्याथ यत्पापिष्ठं यज्ञस्य भागधेयमासीत्तेनैनान् (असुरान्=रक्षांसि) निरभजन्नस्ना (=रुधिरेण) पशोः, फलीकरणैर्हविर्यज्ञात् सुनिर्भक्ता असन् । श० १ । ६ । २ । ३५ ॥

„ असृग्भाजनानि ह वै रक्षांसि । कौ० १० । ४ ॥

„ रक्षसां भागो ऽसि (यजु० ६ । १६) इति रक्षसांॅ ह्येष भागो यदसृक् । श० ३ । ८ । २ । १४ ॥

„ रक्षसां हि स भागः (असृग्रूपः) । श० १ । ६ । २ ३५ ॥

„ रक्षांॅसि योषितमनुसचन्ते तदुत रक्षांॅस्येव रेत आदधति । श० ३ । २ । १ । ४० ॥

„ तिर इवैतद्यद्रक्षांसि । ऐ० २ । ७ ॥

„ अमूलं वाऽ इदमुभयतः परिच्छिन्नंॅ रक्षो ऽन्तरिक्षमनुचरति। श० ३ । १ । ३ । १३ ॥

रक्षांसि अग्निर्हि रक्षसामपहन्ता । श० १ । २ । १ । ६, ६ ॥ १ । २ । २ । १३ ॥

,, अग्निर्वै रक्षसामपहन्ता कौ० ८ । ४ ॥ १० । ३ ॥

,, अग्निर्वै ज्योती रक्षोहा । श० ७ । ४ । १ । ३४ ॥

,, ते (देवाः) ऽविदुः । अयं (अग्निः) वै नो विरक्षस्तमः । श० ३ । ४ । ३ । ८ ॥

,, अग्नेर्वाऽ एतद्रेतो यद्धिरण्यं नाष्ट्राणाᳫं रक्षसामपहत्यै । श० १४ । १ । ३ । २९ ॥

,, सूर्यो हि नाष्ट्राणाᳫं रक्षसामपहन्ता । श० १ । ३ । ४ । ८ ॥

,, (इन्द्रः) तत् (रक्षः) सीसेनावजघान । तस्मात्सीसं मृदु सृतजवᳫं हि । श० ५ । ४ । १ । १० ॥

,, ते (देवाः) एतᳫं रक्षोहणं वनस्पतिमपश्यन्कार्ष्मर्य्यम् । श० ७ । ४ । १ । ३७ ॥

,, देवा ह वाऽ एतं वनस्पतिषु राक्षोघ्नं ददृशुर्यत्कार्ष्मर्य्यम् (=भद्रपर्णीति सायणः) । श० ३ । ४ । १ । १६ ॥

,, यदपामार्गहोमो भवति रक्षसामपहत्यै । तै० १ । ७ । १ । ८ ॥

,, अपामार्गैर्वै देवा दिक्षु नाष्ट्रा रक्षाᳫंस्यपामृजत । श० ५ । २ । ४ । १४ ॥

,, ब्राह्मणो हि रक्षसामपहन्ता । श० १ । १ । ४ । ६ ॥

,, साम हि नाष्ट्राणाᳫं रक्षसामपहन्ता । श० ४ । ४ । ५ । ६ ॥ १४ । ३ । १ । १० ॥

,, अङ्गिरसः स्वर्गं लोकं यतो रक्षाᳫंस्यन्वसचन्त तान्येतेन हरिवर्णोऽपाहन्त यदेतत्साम भवति रक्षसामपहत्यै । तां० ८ । ९ । ५ ॥

,, स यां वै दृप्तो वदति यामुन्मत्तः सा वै राक्षसी वाक् । ऐ० २ । ७ ॥

,, आपो वै रक्षोघ्नीः । तै० ३ । २ । ३ । १२ ॥ ३ । २ । ४ । २ ॥ ३ । २ । ६ । १४ ॥

,, अथोदकवतोत्तानेन पात्रेण (पात्रस्थं दधिमिश्रितं क्षीरं) अपिदधाति । नेदेनदुपरिष्टान्नाष्ट्रा रक्षाᳫंस्यवमृशानिति

वज्रो वाऽ आपस्तद्वज्रेणैवैतन्नाष्ट्रा रक्षाᳬस्यतो ऽपहन्ति । (रक्षांसि=Germs in the air ?) श० १ । ७ । १ । २० ॥

रक्षांसि कुबेरो वैश्रवणो राजेत्याह तस्य रक्षाᳬसि विशस्तानीमान्यासतऽ इति सेलगाः पापकृत उपसमेता भवन्ति तानुपदिशति देवजनविद्या वेदः सो ऽयमिति देवजनविद्याया एकं पर्व व्याचक्षाण इवानुद्रवेत् (एवं —शाङ्खायनश्रौतसूत्रे १६ । २ । १६–१८ ॥ आश्व० श्रौ० सू० १० । ७ । ६ ॥) । श० १३ । ४ । ३ । १० ॥

रजतम् एतत् (रजतं) रात्रिरूपम् । ऐ० ७ । १२ ॥

" अथ यदस्तमेति (आदित्यः) । एतामेव तद्रजतां कुशीमनुसंविशति । (रजता कुशी=रात्रिः) । तै० १ । ५ । १० । ७ ॥

" रजता (कुशी) रात्रिः (अभवत्) । तै० १ । ५ । १० । ७ ॥

" रजतेव हीयं पृथिवी । श० १४ । १ । ३ । १४ ॥

" इयं (पृथिवी) वै रजता । तै० १ । ८ । ९ । १ ॥

" अवान्तरदिशा रजताः । तै० ३ । ६ । ६ । ५ ॥

" अवान्तरादिशो रजताः (सूच्यः) । श० १३ । २ । १० । ३ ॥

" अन्तरिक्षस्य (रूपं) रजताः (सूच्यः) । तै० ३ । ९ । ६ । ५ ॥

" (असुराः) रजतां (पुरीं) अन्तरिक्षे (चक्रिरे) । श० ३ । ४ । ४ । ३ ॥

" सुवर्णेन रजतम् (संदध्यात्) । (एवं छान्दोग्योपनिषदि ४ । १७ । ७) । जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥ गो० पू० १ । १४ ॥

" रजतेन त्रपु (संदध्यात्) । (एवं छान्दोग्योपनिषदि ४ । १७ ७) । जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥

" रजतेन लोहम् (सन्दध्यात्) । गो० पू० १ । १४ ॥

रजांसि इमे वै लोका रजाᳬसि (यजु० ११ । ६) । श० ६ । ३ । १ । १८ ॥

" द्यौर्वै तृतीयᳬ रजः । श० ६ । ७ । ४ । ५ ॥

रज्जुः वरुण्या (="वरुणपाशात्मिका" इति सायणः) रज्जुः । श० १ । ३ । १ । १४ ॥

" वरुण्या वाऽ एषा यद्रज्जुः । श० ३ । २ । ४ । १८ ॥ ३ । ७ । ४ । १ ॥

रज्जुः वरुण्या वै यज्ञे रज्जुः। श० ६। ४। ३। ८॥

रज्जुदालः तस्य (प्रजापतेः) यः श्लेष्मासीत्स सार्धंᳬ समवद्रुत्य मध्यतो नस्त उद्भिनत्स एष वनस्पतिरभवद्रज्जुदालस्तस्मात्स श्लेष्मणः श्लेष्मणो हि समभवत्। श० १३। ४। ४। ६॥

रत्नधा (यजु० ३८। ५) यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्र इति यो धनानां दाता वसुवित्पणाय इत्येवैतदाह। श० १४। २। १। १५।

रथः तं वा एतं रसं सन्तं रथ इत्याचक्षते। गो० पू० २। २१॥

„ रसंतमᳬ ह वै तद्रथन्तरमित्याचक्षते परोऽक्षम्। श० ९। १। २। ३६॥

„ तस्माद्रथः पर्युतो दर्शनीयतमो भवति। श० १३। २। ७। ८॥

„ वज्रो वै रथः। तै० १। ३। ६। १॥ ३। १२। ५। ६॥ श० ५। १। ४। ३॥

„ (चतुर्धाविभक्तस्य वज्रस्य) रथस्तृतीयं (=तृतीयोंऽशः) वा यावद्वा। श० १। २। ४। १॥

„ असौ वाऽ आदित्य एष रथः। श० ९। ४। १। १५॥

„ वैश्वानरो वै देवतया रथः। तै० २। २। ५। ४॥

रथगृत्सः (यजु० १५। १५) तस्य (अग्नेः) रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्याविति वासन्तिकौ तावृतू। श० ८। ६। १। १६॥

रथन्तरम् (साम) रसंतमᳬ ह वै तद्रथन्तरमित्याचक्षते परोऽक्षम्। श० ९। १। २। ३६॥

„ रथम्मर्याः क्षेप्लातारीदिति तद्रथन्तरस्य रथन्तरत्वम्। तां० ७। ६। ४॥

„ स (प्रजापतिः) रथन्तरमसृजत तद्रथस्य घोषो ऽन्वसृज्यत। तां० ७। ८। ९॥

„ (अभि त्वा शूर नोनुमः [ऋ० ७। ३२। २२] इत्यस्यामृच्युत्पन्नं साम रथन्तरम्—पे० ४। १३ सायणभाष्ये)

„ (यजु० १५। ५) अयं वै (पृथिवी-) लोको रथन्तरं छन्दः। श० ८। ५। २। ५॥

„ इयं वै पृथिवी रथन्तरम्। पे० ८। १॥

रथन्तरम् इयं (पृथिवी) वै रथन्तरम् । कौ० ३ । ५ ॥ ष० २ । २ ॥ तै० १ । ४ । ६ । २ ॥ तां० ६ । ८ । १८ ॥ १५ । १० । १५ ॥ श० ५ । ५ । ३ । ५ ॥ ९ । १ । २ । ३६ ॥

,, अयं वै (पृथिवी-) लोको रथन्तरम् । ऐ० ८ । २ ॥

,, राथन्तरो वा अयं (भू-) लोकः । तै० १ । १ । ८ । १ ॥

,, रथन्तरꣳ ह्यीयम् (पृथिवी) । श० १ । ७ । २ । १७ ॥

,, उपहूतꣳ रथन्तरꣳ सह पृथिव्या । तै० ३ । ५ । ८ । १ ॥ श० १ । ८ । १ । १९ ॥

,, वाग्वै रथन्तरम् । ऐ० ४ । २८ ॥

,, वाग्रथन्तरम् । तां० ७ । ६ । १७ ॥

,, ब्रह्मवर्चसं वै रथन्तरम् । तै० २ । ७ । १ । १ ॥

,, ब्रह्म वै रथन्तरम् । ऐ० ८ । १, २ ॥ तां० ११ । ४ । ६ ॥

,, ऋग्रथन्तरम् । तां० ७ । ६ । १७ ॥

,, अपानो रथन्तरम् । तां० ७ । ६ । १४, १७ ॥

,, यद्ध्रस्वं तद्रथन्तरं यद्दीर्घं तद् बृहत् । कौ० ३ । ५ ॥

,, देवरथो वै रथन्तरम् । तां० ७ । ७ । १३ ॥

,, अन्नं वै रथन्तरम् । ऐ० ८ । १ ॥

,, राथन्तरी वै रात्री । ऐ० ५ । ३० ॥

,, गायत्री वै रथन्तरस्य योनिः । तां० १५ । १० । ५ ॥

,, गायत्रं वै रथन्तरम् । तां० ५ । १ । १५ ॥

,, गायत्रं वै रथन्तरं गायत्रच्छन्दः । तां० १५ । १० । ९ ॥

,, एतद्वै रथन्तरस्य स्वमायतनं यद् बृहती । तां० ४ । ३ । १०

,, अग्निर्वै रथन्तरम् । ऐ० ५ । ३० ॥

,, उप वै रथन्तरम् ("उपशब्दसम्बद्धं हि रथन्तरपृष्ठं ज्योतिष्टोमे" इति सायणः) । तां० १६ । ५ । १४ ॥

,, ऐडꣳ रथन्तरम् । तां० ७ । ६ । १७ ॥

,, त्रिवृच्च त्रिणवश्च राथन्तरौ तावजश्चाश्वश्चान्वसृज्येतां तस्मात्तौ राथन्तरं प्राचीनं प्रधूनुतः । तां० १० । २ । ५॥

,, चतुरक्षरꣳ रथन्तरम् । तै० २ । १ । ५ । ७ ॥

,, प्रजननं वै रथन्तरम् । तां० ७ । ७ । १६ ॥

,, यद्रथन्तरं तच्छाक्वरम् । ऐ० ४ । १३ ॥

रथन्तरम् रथन्तरमेतत्परोक्षं यच्छक्वर्य्यः । तां० १३ । २ । ८ ॥

,, यद्वै रथन्तरं तद्वैरूपम् (साम) । ऐ० ४ । १३ ॥

,, रथन्तरमेतत्परोक्षं यद्वैरूपम् (साम) । तां० १२ । २ । ५ ६ ॥

,, रथन्तरꣳ ह्येतत्परोक्षं यच्छ्यैतम् (यच्छ्यैतं साम) । तां० ७ । १० । ८ ॥

,, (सामवेद उवाच -) रथंतरं नाम मे सामाघोरञ्चाक्रूरञ्च । गो० पू० २ । १८ ॥

,, वसन्तेनर्त्तुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुतम् । रथन्तरेण तेजसा । हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २ । ६ । १९ । १ ॥

,, तेजो रथन्तरꣳ साम्नाम् । तां० १५ । १० । ६ ॥

,, रथन्तरꣳ साम्नाम् (प्रतिष्ठा) । तां० ९ । ३ । ४ ॥

,, रथन्तरं वै सम्राट् । तै० १ । ४ । ४ । ६ ॥

रथप्रोतः (यजु० १५ । १७) तस्य (आदित्यस्य) रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्याविति वार्षिकौ तावृतू । श० ८ । ६ । १ । १८ ॥

रथस्वनः, रथेचित्रः (यजु० १५ । १५) तस्य (वायोः) रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्याविति ग्रैष्मौ तावृतू । श० ८ । ६ । १ । १७ ॥

रथौजाः (यजु० १५ । १५) तस्य (अग्नेः) रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्याविति वासन्तिकौ तावृतू । श० ८ । ६ । १ । १६ ॥

रभसः (यजु० ११ । २३) व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानमित्यवकाशवन्तमन्नैरन्नादं दीप्यमानमित्येतत् । श० ६ । ३ । ३ । १९ ॥

रम् प्राणो वै रं प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि रतानि । श० १४ । ८ । १३ । ३ ॥

रम्या तनूः प्राणो वाऽ अस्य (यजमानस्य) सा रम्या तनूः । श० ७ । ४ । १ । १६ ॥

रयिः रयिरिति मनुष्याः (उपासते) । श० १० । ५ । २ । २० ॥

,, वीर्यं वै रयिः । श० १३ । ४ । २ । १३ ॥

,, पुष्टं वै रयिः । श० २ । ३ । ४ । १३ ॥

,, पशवो वै रयिः । तै० १ । ४ । ४ । ६ ॥

रयिः एष वै रयिर्वैश्वानरः (=आपः) । श० १० । ६ । १ । ५ ॥
„ रयिँ सोमो रयिपतिर्दधातु । तै० २ । ८ । १ । ६ ॥
रयिष्ठम् (साम) पशवो वै रयिष्ठं पशूनामवरुद्ध्यै । तां० १४ । ११ । ३१ ॥
रश्मयः अथ यः कपाले रसो लिप्त आसीत्ते रश्मयोऽभवन् । श० ६ । १ । २ । ३ ॥
„ युक्ता ह्यस्य (इन्द्रस्य) हरयः शतादशेति (ऋ० ६ । ४७ । १८) । सहस्रं हैत आदित्यस्य रश्मयः (हरयः=रश्मयः) । जै० उ० १ । ४४ । ५ ॥
„ अभीशवो वै रश्मयः । श० ५ । ४ । ३ । १४ ॥
„ रश्मयो ह्यस्य (सूर्यस्य) विश्वे देवाः । श० ३ । ९ । २ । ६,१२ ॥
„ तस्य (सूर्यस्य) ये रश्मयस्ते विश्वे देवाः । श० ४ । ३ । १ । २६ ॥
„ एते वै विश्वे देवा रश्मयः । श० २ । ३ । १ । ७ ॥
„ एते वै रश्मयो विश्वे देवाः । श० १२ । ४ । ४ । ६ ॥
„ तस्य (सूर्यस्य) ये रश्मयस्ते सुकृतः । श० १ । ९ । ३ । १० ॥
„ रश्मय एव हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३३ । २ ॥
„ रश्मयो वाव होत्राः । गो० उ० ६ । ६ ॥
„ रश्मयो वै दिवाकीर्त्यानि (सामानि) । तै० १ । २ । ४ । २ ॥
„ रश्मयो वा एत आदित्यस्य यद्दिवाकीर्त्यानि । तां० ४ । ६ । १३ ॥
„ तस्य (सूर्यस्य) ये रश्मयस्ते देवा मरीचिपाः । श० ४ । १ । १ । २५ ॥
„ मासा वै रश्मयो मरुतो रश्मयः । तां० १४ । १२ । ९ ॥
„ ये ते मारुताः (पुरोडाशाः) रश्मयस्ते । श० ९ । ३ । १ । २५ ॥
„ (यजु० १५ । ६ ॥) अन्नँ रश्मिः । श० ८ । ५ । ३ । ३ ॥
„ प्राणा रश्मयः । तै० ३ । २ । ५ । २ ॥
„ (यजु० १ । १२) एते वाऽ उत्पवितारो यत्सूर्यस्य रश्मयः । श० १ । १ । ३ । ६ ॥
„ एते वै पवितारो यत्सूर्यस्य रश्मयः । श० ३ । १ । ३ । २२ ॥

रश्मयः तद्यदेकैकस्य रश्मेर्द्वौ द्वौ वर्णौ भवतः । गो० उ० ६ । ६ ॥

,, (सविता) रश्मिभिर्वर्षं (समदधात्) । गो० पू० १ । ३६ ॥

रसः रसो वै मधु । श० ६ । ४ । ३ । २ ॥ ७ । ५ । १ । ४ ॥

,, अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नित्यपो देवा रसवतीरगृह्णन्नित्येवै-तदाह (मधु=रसः) । श० ५ । ३ । ४ । ३ ॥

,, स्वधायै त्वेति रसाय त्वेत्येवैतदाह (स्वधा=रसः) । श० ५ । ४ । ३ । ७ ॥

,, रसो वाऽ आपः । श० ३ । ३ । ३ । १८ ॥ ३ । ६ । ४ । ७ ॥

रहस्युः (देवमलिम्लुङ्) तान् (वैखानसानृषीन्) रहस्युर्देवमलिम्लुङ् मुनिमरणे ऽमारयत् । तां० १४ । ४ । ७ ॥

राका योत्तरा (पौर्णमासी) सा राका । ऐ० ७ । ११ ॥ प० ४ । ६ ॥ गो० उ० १ । १० ॥

,, योषाः सा राका । ऐ० ३ । ४८ ॥

,, या राका सा त्रिष्टुप् । ऐ० ३ । ४७, ४८ ॥

राजनम् (साम) एतद्वै साक्षादन्नं यद्राजनं पञ्चविंशं भवति पाङ्क्तं ह्यन्नम् । तां० ५ । २ । ७ ॥

राजन्यः एष वै प्रजापतेः प्रत्यक्षतमां यद्राजन्यस्तस्मादेकः सन्बहूना-मीष्टे यद्वेव चतुरक्षरः प्रजापतिश्चतुरक्षरो राजन्यः । श० ५ । १ । ५ । १४ ॥

,, तस्मादु बाहुवीर्य्यो (राजन्यः) बाहुभ्याᳫं हि सृष्टः । तां० ६ । १ । ८ ॥

,, क्षत्रं राजन्यः । ऐ० ८ । ६ ॥ श० १३ । १ । ५ । ३ ॥

,, क्षत्रस्य वाऽ एतद्रूपं यद्राजन्यः । श० १३ । १ । ५ । ३ ॥

,, ओजः क्षत्रं वीर्यं राजन्यः । ऐ० ८ । २, ३, ४ ॥

,, वृषा वै राजन्यः । तां० ६ । १० । ६ ॥

,, युद्धं वै राजन्यस्य वीर्यम् । श० १३ । १ । ५ । ६ ॥

,, युद्धं वै राजन्यस्य । तै० ३ । ९ । १४ । ४ ॥

,, तस्माद्राजन्यस्य पञ्चदश स्तोमस्त्रिष्टुप् छन्द इन्द्रो देवता ग्रीष्म ऋतुः । तां० ६ । १ । ८ ॥

,, त्रिष्टुप्छन्दा वै राजन्यः । तै० १ । १ । ९ । ६ ॥

राजन्यः आनुष्टुभो राजन्यः । तै० १ । ८ । ८ । २ ॥ तां० १८ । ८ । १४ ॥
,, ऐन्द्रो वै राजन्यः । तै० ३ । ८ । २३ । २ ॥
,, ऐन्द्रो राजन्यः । तां० १५ । ४ । ८ ॥
,, औदुम्बरेण राजन्यः अभिषिञ्चति । तै० १ । ७ । ८ । ७ ॥
,, पार्थुरश्मꣳ राजन्याय ब्रह्मसाम कुर्वीत । तां० १३ । ४ । १८ ॥
,, तस्मादपि (दीक्षितं) राजन्यं वा वैश्यं वा ब्राह्मण इत्येव ब्रूयात् ब्रह्मणो हि जायते यो यज्ञाज्जायते । श० ३ । २ । १ । ४० ॥ (क्षत्रशब्दमपि पश्यत)

राजसूयः (यज्ञ) राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति । श० ५ । १ । १ । १२ ॥ ९ । ३ । ४ । ८ ॥
,, स राजसूयेनेष्ट्वा राजेति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥
,, राज्ञ एव राजसूयम् । श० ५ । १ । १ । १२ ॥
,, यो राजसूयः । स वरुणसवः । तै० २ । ७ । ६ । १ ॥
,, वरुणसवो वाऽ एष यद्राजसूयम् । श० ५ । ३ । ४ । १२ ॥
,, तस्माद्राजसूयेनेजानः सर्वमायुरेति । तै० १ । ७ । ७ । ५ ॥

राजा स राजसूयेनेष्ट्वा राजेति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥
,, राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति । श० ५ । १ । १ । १२ ॥ ६ । ३ । ४ । ८ ॥
,, राज्ञ एव राजसूयम् । श० ५ । १ । १ । १२ ॥
,, यो वै राजा ब्राह्मणादबलीयानमित्रेभ्यो वै स बलीयान् भवति । श० ५ । ४ । ४ । १५ ॥
,, तस्माद्राजा बाहुबली भावुकः । श० १३ । २ । २ । ५ ॥
,, तस्माद्राजोरुबली भावुकः । श० १३ । २ । २ । ८ ॥
,, राजानो वै राष्ट्रभृतस्ते हि राष्ट्राणि बिभ्रति । श० ९ । ४ । १ । १ ॥
,, नाऽराजकस्य युद्धमस्ति । तै० १ । ५ । ९ । १ ॥
,, तद्यथा महाराजः पुरस्तात्सैनानीकानि प्रत्युह्याभयं पन्थानमन्वियात् । कौ० ५ । ५ ॥
,, यथा राज्ञऽ आगतायोदकमाहरेत् । श० ३ । ३ । ४ । ३१ ॥
,, तस्माद्राजादण्ड्यः ['तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः (!) सहस्रमिति धारणा' इति मनु० ८ । ३३६ ॥] । श० ५ । ४ । ४ । ७ ॥

राजा राजा महिमा । तै० ३ । ९ । १० । १ ॥ श० १३ । २ । ११ । २ ॥

राज्यम् अथैनं (इन्द्रं) अस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि साध्याश्चाऽऽप्त्याश्च देवाः . ...अभ्यषिञ्चन्......राज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥

,, अवरꣳ हि राज्यं परꣳ साम्राज्यम् । श० ५ । १ । १ । १३ ॥

रातयः (यजु० ३८ । १३) इहैव रातयः सन्त्विततीहैव नो धनानि सन्त्वित्येवैतदाह (रातयः=धनानि) । श० १४ । २ । २ । २६ ॥

रात्रिः अन्धो रात्रिः (अन्धः-ऋ० ८ । ९२ । १ ॥) । तां० ९ । १ । ७ ॥

,, तमः पाप्मा रात्रिः । कौ० १७ । ६, ९ ॥ गो० उ० ५ । ३ ॥

,, तम इव हि रात्रिर्मृत्युरिव । ऐ० ४ । ५ ॥

,, मृत्योस्तम इव हि रात्रिः । गो० उ० ५ । १ ॥

,, रात्रिर्व्वरुणः । ऐ० ४ । १० ॥ तां० २५ । १० । १० ॥

,, वारुणी रात्रिः । तै० १ । ७ । १० । १ ॥

,, सगरा रात्रिः (सगरः=ऋतुविशेषः-तैत्तिरीयसंहितायां ४ । ४ । ७ । २ ॥ ५ । ३ । ११ । ३ ॥ सायणभाष्ये ऽपि) । श० १ । ७ । २ । २६ ॥

,, अहर्वै शवलो रात्रिः श्यामः । कौ० २ । ६ ॥

,, रात्रिरेव श्रीः श्रियाꣳ हैतद्रात्र्याꣳ सर्वाणि भूतानि संवसन्ति । श० १० । २ । ६ । १६ ।

,, रात्रिर्वै व्युष्टिः । श० १३ । २ । १ । ६ ॥

,, रात्रिः सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

,, रात्रिर्वै कृष्णा शुक्लवत्सा तस्या असावादित्यो वत्सः । श० ६ । २ । ३ । ३० ॥

,, रात्रिर्वात्सप्रम् (सूक्तम्) । श० ६ । ७ । ४ । १२ ॥

,, अहोरात्रे वात्सप्रम् (सूक्तम्) । श० ६ । ७ । ४ । १० ॥

,, रात्रिर्वै पिशङ्गिला । तै० ३ । ९ । ५ । ३ ॥

,, रात्रयः क्षपाः । ऐ० १ । १३ ॥

,, रात्रिर्वै संयच्छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

,, रजता (कुशी) रात्रिः (अभवत्) । तै० १ । ५ । १० । ७ ॥

,, अथ यदस्तमेति (आदित्यः) । एतामेव तद्रजतां कुशीमनुसंविशति (रजता कुशी=रात्रिः) । तै० १ । ५ । १० । ७ ॥

रात्रिः एतत् (रजतं) रात्रिरूपम् । ऐ० ७ । १२ ॥
,, सोमो रात्रिः । श० ३ । ४ । ४ । १५ ॥
,, क्षेमो रात्रिः । श० १३ । १ । ४ । ३ ॥
,, ब्रह्मणो वै रूपमहः क्षत्रस्य रात्रिः । तै० ३ । ६ । १४ । ३ ॥
,, यजमानदेवत्यं वा अहः । भ्रातृव्यदेवत्या रात्रिः । तै० २ । २ । ६ । ४ ॥
,, आग्नेयी वै रात्रिः । तै० १ । १ । ४ । २ ॥ १ । ५ । ३ । ४ ॥ २ । १ । २ । ७ ॥
,, राथन्तरी वै रात्री । ऐ० ५ । ३० ॥
,, पञ्चच्छन्दांसि रात्रौ शंसत्यनुष्टुभं गायत्रीमुष्णिहं त्रिष्टुभं जगतीमित्येतानि वै रात्रिच्छन्दांसि । कौ० ३० । ११ ॥

रात्रिः (=रात्रिपर्य्यायः) एषा वा अग्निष्टोमस्य सम्मा यद्रात्रिः । द्वादशस्तोत्राण्यग्निष्टोमो द्वादशस्तोत्राणि रात्रिः । तां० ९ । १ । २३—२४ ॥
,, एषा वा उक्थस्य सम्मा यद्रात्रिः (=सन्धिस्तोत्राणि) । त्रीण्युक्थानि, (अग्निरुषा अश्विनाविति) त्रिदेवत्यः सन्धिः । तां० ९ । १ । २५–२६ ॥

रामः (मार्गवेयः) रामो ह्यास मार्गवेयो ऽनूचानः श्यापर्णीयः । ऐ० ७ । २७ ॥

रायः पशवो वै रायः । श० ३ । ३ । १ । ८ ॥ ४ । १ । २ । १५ ॥

रायस्पोषः पशवो वै रायस्पोषः । श० ३ । ४ । १ । १३ ॥
,, भूमा वै रायस्पोषः । श० ३ । ५ । २ । १२ ॥

रायोवाजीयम् (साम) रायोवाजीयं वैश्याय (कुर्य्यात्) । तां० १३ । ४ । १८ ॥
,, पशून् दद्मीत्यब्रवीत् (इन्द्रः) रायोवाजस्तस्मा एतेन रायोवाजीयेन पशून् प्रायच्छत् । पशुकाम एतेन स्तुवीत पशुमान् भवति । तां० १३ । ४ । १७ ॥

राष्ट्रभृतः (हवींषि) राजानो वै राष्ट्रभृतस्तेहि राष्ट्राणि बिभ्रति । श० ९ । ४ । १ । १ ॥

राष्ट्रम् (यजु० १२ । ११) श्रीर्वै राष्ट्रम् । श० ६ । ७ । ३ । ७ ॥

राष्ट्रम् श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यम् । तै० ३ । ९ । ७ । १ ॥ श० १३ । २ । ९ । ४ ॥

„ श्रीर्वै राष्ट्रमश्वमेधः । श० १३ । २ । ९ । २ ॥ तै० ३ । ९ । ७ । १ ॥

„ राष्ट्रं वाऽ अश्वमेधः । श० १३ । १ । ६ । ३ ॥ तै० ३ । ८ । ९ । ४ ॥

„ राष्ट्रँ सान्नाय्यम् (हविः) । श० ११ । २ । ७ । १७ ॥

„ अष्टौ वै वीरा राष्ट्रँ समुद्यच्छन्ति राजभ्राता च राजपुत्रश्च पुरोहितश्च महिषी च सूतश्च ग्रामणी च क्षत्ता च संग्रहीता चैते वै वीरा राष्ट्रँ समुद्यच्छन्त्येतेष्वेवाध्यभिषिच्यते । तां० १९ । १ । ४ ॥

„ क्षत्रं हि राष्ट्रम् । ऐ० ७ । २२ ॥

„ राष्ट्रं पलः (यजु० २३ । २२ ॥) । तै० ३ । ९ । ७ । ४ ॥ श० १३ । २ । ९ । ६ ॥

„ राष्ट्रं मुष्टिः (यजु० २३ । २४) । श० १३ । २ । ९ । ७ ॥ तै० ३ । ६ । ७ । ५ ॥

„ राष्ट्रँ हरिणः (यजु० २३ । ३०) । श० १३ । २ । ९ । ८ ॥

„ राष्ट्राणि वै विशः । ऐ० ८ । २६ ॥

„ राष्ट्रँ सप्तदशः (स्तोमः) । तै० १ । ८ । ८ । ५ ॥

„ सविता राष्ट्रँ राष्ट्रपतिः । श० ११ । ४ । ३ । १४ ॥ तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥

राष्ट्री वाग्वै राष्ट्री । ऐ० १ । ९ ॥

रासभः यद्दरसदिव स रासभो ऽभवत् । श० ६ । १ । १ । ११ ॥

„ यत्तद्दरसदिवैष रासभः । श० ६ । ३ । १ । २८ ॥

„ वैश्यं च शूद्रं चानु रासभः । श० ६ । ४ । ४ । १२ ॥

रास्ना हिरो (हिरः='मेखला' इति सायणः) वै रास्ना (="रशना" इति सायणः) । श० १ । ३ । १ । १५ ॥

रिप्रम् तद्यदमेध्यँ रिप्रं तत् । श० ३ । १ । २ । ११ ॥

रुक् (यजु० १८ । ४८ ॥ रुक्=दीप्तिः) अमृतत्वं वै रुक् । श० ९ । ४ । २ । १४ ॥

रुक् अमृतं वै रुक् । श० ७ । ४ । २ । २१ ॥

,, (यजु० १३ । ३९) प्राणो वै रुक् प्राणेन हि रोचते । श० ७ । ५ । २ । १२ ॥

,, चक्षुर्वै रुक् । श० ६ । ३ । २ । ११ ॥

रुक्मः असौ वाऽ आदित्य एष रुक्म एष हीमाः सर्वाः प्रजा अतिरोचते रोचो ह वै तꣳ रुक्म इत्याचक्षते परोऽक्षम् । श० ७ । ४ । १ । १० ॥

,, आदित्यस्य (रूपं) रुक्मः । तै० ३ । ९ । २० । २ ॥

,, असौ वाऽ आदित्य एष रुक्मः । श० ६ . ७ । १ । ३ ॥

,, तस्य (अश्वस्य श्वेतस्य) रुक्मः पुरस्ताद्भवति । तदेतस्य रूपं क्रियते य एष (आदित्यः) तपति । श० ३ । ५ । १ । २० ॥

,, सत्यꣳ हैतद्यद्रुक्मः ।......तद्यत्तत्सत्यम् । असौ स आदित्यः । श० ६ । ७ । १ । १—२ ॥

,, प्रजातिस्तेजो वीर्यꣳ रुक्मः । श० ६ । ७ । १ । ९ ॥

,, रुक्मो वै समुद्रः (यजु० १३ । १६) । श० ७ । ४ । २ । ५ ॥

रुजा (इषुः) अथ यया विद्धः शयित्वा जीवति वा म्रियते वा सा द्वितीया तदिदमन्तरिक्षꣳ सैषा रुजा नाम । श० ५ । ३ । ५ । २९ ॥

रुद्रः यदरोदीत्तस्माद्रुद्रः । श० ६ । १ । ३ । १० ॥

,, अग्निर्वै रुद्रः । श० ५ । ३ । १ । १० ॥ ६ । १ । ३ । १० ॥

,, (त्वमग्ने रुद्रः.........ऋ० २ । १ । ६ ॥)

,, रुद्रो ऽग्निः । तां० १२ । ४ । २४ ॥

,, यो वै रुद्रः सो ऽग्निः । श० ५ । २ । ४ । १३ ॥

,, एष रुद्रः । यदग्निः । तै० १ । १ । ५ । ८–९ ॥ १ । १ । ६ । ६ ॥ १ । १ । ८ । ४ ॥ १ । ४ । ३ । ६ ॥

,, तान्येतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः=शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि कुमारो नवमः (रुद्रः=शिवः=अष्टमूर्त्तिः—अमरकोषे १ । १ । ३६ ॥ कुमारः=स्कन्दः=रुद्रपुत्रो ऽग्निपुत्रश्च–अमरकोषे १ । १ । ४२–४३ ॥ महाभारते, वनपर्वणि २२५ । १५—१९) । श० ६ । १ । ३ । १८ ॥

रुद्रः अग्निर्वै स देवस्तस्यैतानि नामानि, शर्व इति यथा प्राच्या आचक्षते भव इति यथा वाहीकाः पशूनां पती रुद्रो ऽग्निरिति । श० १ । ७ । ३ । ८ ॥

„ अथोऽआरण्येष्वेव पशुषु रुद्रस्य हेतिं दधाति (हेतिः=रुद्रस्य आयुधम् ॥ रुद्रः=अग्निः ॥ अमरकोषे १ । १ । ६०—हेतिः=अग्नेरर्चिः ॥ Monier-Williams' Sanscrit-English Dictionary-हेतिः=agni's weapon, flame etc., etc.) । श० १२ । ७ । ३ । २० ॥

„ अथ यत्रैतत्प्रथमꣳ समिद्धो भवति । धूप्यतऽ इव तर्हि हैष (अग्निः) भवति रुद्रः । श० २ । ३ । २ । ९ ॥

„ रुद्र पशूनां पते । तै० ३ । ११ । ४ । २ ॥

„ रुद्रः (एवैनं राजानं) पशूनां (सुवते) । तै० १ । ७ । ४ । १ ॥

„ रुद्रꣳ हि नाति पशवः । श० ३ । २ । ४ । २० ॥

„ रौद्रा वै पशवः । श० ६ । ३ । २ । ७ ॥

„ रौद्री वै गौः । तै० २ । २ । ५ । २ ॥

„ यद्गौस्तेन रौद्री । श० ५ । २ । ४ । १३ ॥

„ यद्रुद्रश्चन्द्रमास्तेन । कौ० ६ । ७ ॥

„ यज्ञेन वै देवाः । दिवमुपोदक्रामन्नथ यो ऽयं देवः (रुद्रः) पशूनामीष्टे स इहाहीयत तस्माद्वास्तव्य इत्याहुर्वास्तौ हि तदहीयत । श० १ । ७ । ३ । १ ॥

„ वास्तव्यो वाऽ एष देवः (रुद्रः) । श० ५ । २ । ४ । १३ ॥ ५ । ३ । ३ । ७ ॥

„ य उ एव मृगव्याधः (=Dog-star) स (रुद्रः) उ एव स (मृगव्याध एकादशरुद्रेष्वन्यतमः—नीलकण्ठीयटीकायुते महाभारते, आदिपर्वणि, अध्याये ६६, श्लो० २—३) । ऐ० ३ । ३३ ॥

„ रुद्रो वै स्विष्टकृत् । कौ० ३ । ४, ६ ॥

„ रुद्रः स्विष्टकृत् । श० १३ । ३ । ४, ३ ॥

„ रुद्रियः (=रुद्रदेवत्यः) स्विष्टकृत् (यागः) । श० १ । ७ । ३ । २१ ॥

„ रुद्रो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानाम् । कौ० २५ । १३ ॥

„ घोरो वै रुद्रः । कौ० १६ । ७ ॥

रुद्रः रुद्रो ह वा एष देवानामशान्तः साञ्चितो भवति तमेवैतच्छमयति। कौ० १९ । ४ ॥

" (रुद्रस्य) यो एवेपुस्त्रिकाण्डा सो एवेपुस्त्रिकाण्डा (त्रिशूली=शिवः=रुद्रः—इति वाचस्पत्यकोषे)। ऐ० ३ । ३३ ॥

" शूलपाणये (रुद्राय) स्वाहा । ष० ५ । ११ ॥

" अम्बिका ह वै नामास्य (रुद्रस्य) स्वसा । श० २ । ६ । २ । ९ ॥

" शरद्वा अस्य (रुद्रस्य) अम्बिका स्वसा । तै० १ । ६ । १० । ४ ॥ (परिशिष्टभागे "अम्बिका" शब्दमपि पश्यत)

" आखुस्ते (रुद्रस्य) पशुः (आखुयानः=गणेशः=रुद्रपुत्रः—वैजयन्ती कोषे, स्वर्गकाण्डे आदिदेवाध्याये, श्लो० ४४ ॥) । श० २ । ६ । २ । १० ॥ तै० १ । ६ । १० । २ ॥

" (शतरुद्रियहोमे) अर्कपत्रेण जुहोति । श० ६ । १ । १ । ४, ९ ॥

" एतस्य वै देवस्य (रुद्रस्य) आशयादर्कः समभवत्स्वेनैवैनम् (रुद्रम्) एतद्भागेन स्वेन रसेन प्रीणाति (यजमानः) । श० ९ । १ । १ । ९ ॥

" (शतरुद्रियहोमे) गवेधुकासक्तुभिर्जुहोति । यत्र वै सा देवता (=रुद्रः) विस्रस्ताशयत्ततो गवेधुकाः समभवन्त्स्वेनैवैनम् (रुद्रम्) एतद्भागेन स्वेन रसेन प्रीणाति (यजमानः) । श० ९ । १ । १ । ८ ॥

" रौद्रो गावेधुकश्चरुः । श० ५ । २ । ४ । ११, १३ ॥

" स (रुद्रः) एतꣳ रुद्रायाऽऽर्द्रायै प्रैयङ्गवं चरुं पयसि निरवपत् । ततो वै स पशुमानभवत् । तै० ३ । १ । ४ । ४ ॥

" प्रजापतिर्वै रुद्रं यज्ञान्निरभजत् ("देवा वै यज्ञाद्रुद्रमन्तरायन्"—इति तैत्तिरीयसंहितायाम् २ । ६ । ८ । ३ ॥ "दक्षः (प्रजापतिः) उवाच—सर्व्वेष्वेव हि यज्ञेषु न भागः परिकल्पितः । न मन्त्रा भार्य्यया सार्द्धं शङ्करस्येति नेज्यते " इति कूर्म्मपुराणे पूर्व्वभागे, अध्याये १५, श्लो० ८ ॥) । गो० उ० १ । २ ॥

" उच्छेषणभागो वै रुद्रः । तै० १ । ७ । ८ । ५ ॥

" (रुद्रः) तं (प्रजापतिम्) अभ्यायत्याविध्यत् । ऐ० ३ । ३३ ॥

" तꣳ (प्रजापतिम्) रुद्रो ऽभ्यायत्य विव्याध । श० १ । ७ । ४ । ३ ॥

रुद्रः स (रुद्रः) यज्ञमभ्यायम्याविध्यत् । (स यज्ञमविध्यत्—इति तैत्तिरीयसंहितायाम् २ । ६ । ८ । ३ ॥) । गो० उ० १ । २ ॥

,, तद्यद्रुदितात्समभवंस्तस्माद्रुद्राः सो ऽयꣳ शतशीर्षा रुद्रः सहस्राक्षः शतेषुधिरधिज्यधन्वा प्रतिहितायी भीषयमाणो ऽतिष्ठदन्नमिच्छमानस्तस्माद्देवा अबिभयुः । श० ९ । १ । १ । ६ ॥

,, एषा (उदीची) वै रुद्रस्य दिक् । तै० १ । ७ । ८ । ६ ॥

,, एषा (उदीची) ह्येतस्य देवस्य (रुद्रस्य) दिक् । श० २ । ६ । २ । ७ ॥

,, उत्तरार्धे जुहोत्येषा ह्येतस्य देवस्य (रुद्रस्य) दिक् । श० १ । ७ । ३ । २० ॥

,, यदुदञ्चः प्रेत्य त्र्यम्बकैश्चरन्ति रुद्रमेव तत्स्वायां दिशि प्रीणन्ति कौ० ५ । ७ ॥

,, रुद्रस्य बाहू (="आर्द्रानक्षत्रम्" इति सायणः) । तै० १ । ५ । १ । १ ॥

,, रौद्रो वै प्रतिहर्त्ता । गो० उ० ३ । १९ ॥

,, एतद्ध वा ऽ अस्य (रुद्रस्य) जान्धितं प्रज्ञातमवसानं यच्चतुष्पथम् । श० २ । ६ । २ । ७ ॥

,, 'पशुपतिः', 'पशुमान्', 'भूतवान्', 'महान्देवः' इत्येतानपि शब्दान् पश्यत ।

रुद्राः तद्यद्रुदितात्समभवंस्तस्माद्रुद्राः । श० ९ । १ । १ । ६ ॥

,, प्राणा वै रुद्राः । प्राणा हीदं सर्वं रोदयन्ति । जै०उ० ४ । २ । ६ ॥

,, कतमे रुद्रा इति । दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदस्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति । श० ११ । ६ । ३ । ७ ॥

,, (मृगव्याधश्च सर्पश्च निर्ऋतिश्च महायशाः । अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी च परंतपः ॥ दहनो ऽथेश्वरश्चैव कपाली च महाद्युतिः । स्थाणुर्भगश्च भगवान् रुद्रा एकादश स्मृताः—इति नीलकण्ठीयटीकायुते महाभारत आदिपर्वणि, ६६ । २-३ ॥)

,, रुद्रा एकादशकपालेन माध्यन्दिने सवने (अभिषज्यन्) । तै० १ । ५ । ११ । ३ ॥

रुद्राः रुद्राणां माध्यन्दिनं सवनम् । कौ० १६ । १ ॥ ३० । १ ॥ श० ४ । ३ । ५ । १ ॥

„ अथेमं विष्णुं यज्ञं त्रेधा व्यभजन्त । वसवः प्रातःसवनꣳ रुद्रा माध्यन्दिनꣳ सवनमादित्यास्तृतीयसवनम् । श० १४ । १ । १ । १५ ॥

„ त्रिष्टुब्रुद्राणां पत्नी । गो० उ० २ । ६ ॥

„ रुद्रास्त्रिष्टुभं समभरन् । जै० उ० १ । १८ । ५ ॥

„ रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन छन्दसा संमृजन्तु । तां० १ । २ । ७ ॥

„ रुद्रास्त्वा दक्षिणतोऽभिषिञ्चन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसा । तै० २ । ७ । १५ । ५ ॥

„ अथैनं (इन्द्रं) दक्षिणस्यां दिशि रुद्रा देवाः......अभ्यषिञ्चन्...भौज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥

„ ग्रीष्मेण देवा ऋतुना रुद्राः पञ्चदशे स्तुतम् । बृहता यशसा बलम् । हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २ । ६ । १९ । १ ॥

„ रुद्रा एव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ वसवो वै रुद्रा आदित्याः सꣳस्रावभागाः । तै० ३ । ३ । ९ । ७ ॥

„ सोमो रुद्रैः (व्यद्रवत्) । श० ३ । ४ । २ । १ ॥

„ रुद्राणां वा एतद्रूपम् । यत्पृथुकाः । तै० ३ । ८ । १४ । ३ ॥

रूपम् अन्नं वै रूपम् । श० ६ । २ । १ । १२ ॥

„ कुमारी रूपं (गच्छति) । गो० पू० २ । २ ॥

„ योषित्येव रूपं दधाति । श० १३ । १ । ९ । ६ ॥ तै० ३ । ८ । १३ । २ ॥

रूरः अग्निर्वै रूरः । तां० ७ । ५ । १० ॥ १२ । ४ । २४ ॥

रेतः रेतः पुरुषस्य प्रथमं सम्भवतः सम्भवति । ऐ० ३ । २ ॥

„ रेतो हृदये (श्रितम्) । तै० ३ । १० । ८ । ७ ॥

„ अवाग्वै नाभे रेतः । श० ६ । ७ । १ । ९ ॥

„ नाभिदघ्ना (आसन्दी) भवति । अत्र (नाभिप्रदेशे) वाऽ अन्नं प्रतितिष्ठति......अत्रोऽएव रेतस आशयः । श० ३ । ३ । ४ । २८ ॥

„ रेतो वै नाभानेदिष्ठः । ऐ० ६ । २७ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥

रेतः रेतो वै वृष्ण्यम् (यजु० १२ । ११२) । श० ७ । ३ । १ । ४६ ॥
„ सोमो वै वृष्णो अश्वस्य रेतः । तै० ३ । ९ । ५ । ५ ॥
„ रेतः सोमः । श० ३ । ३ । २ । १ ॥ ३ । ३ । ४ । २८ ॥ ३ । ४ । ३ । ११ ॥ तै० २ । ७ । ४ । १ ॥ कौ० १३ । ७ ॥
„ रेतो वै सोमः । श० १ । ९ । २ । ६ ॥ २ । ५ । १ । ९ ॥ ३ । ८ । ५ । २ ॥
„ सोमो रेतो ऽदधात् । तै० १ । ६ । २ । २ ॥ १ । ७ । २ । ३, ४ ॥ १ । ८ । १ । २ ॥
„ आपो रेतः प्रजननम् । तै० ३ । ३ । १० । ३ ॥
„ आपो मे रेतसि श्रिताः । तै० ३ । १० । ८ । ६ ॥
„ आपो हि रेतः । तां० ८ । ७ । ९ ॥
„ रेतो वा आपः । ऐ० १ । ३ ॥
„ यत्पयस्तद्रेतः । गो० उ० २ । ६ ॥
„ पयो हि रेतः । श० ९ । ५ । १ । ५६ ॥
„ रेतः पयः । श० १२ । ४ । १ । ७ ॥
„ रेतो वै घृतम् (यजु० १७ । ७९) । श० ९ । २ । ३ । ४४ ॥ आज्यशब्दमपि पश्यत ॥
„ रेत आज्यम् । श० १ । ३ । १ । १८ ॥ (घृतशब्दमपि पश्यत)
„ एतद्रेतः । यदाज्यम् । तै० १ । १ । ९ । ४ ॥
„ रेतो वाऽ ओदनः । श० १३ । १ । १ । ४ ॥ तै० ३ । ८ । २ । ४ ॥
„ रेतो वा अन्नम् । गो० पू० ३ । २३ ॥
„ प्राणो रेतः । ऐ० २ । ३८ ॥
„ रेतो वै तनूनपात् । श० १ । ५ । ४ । २ ॥
„ रेतो हिरण्यम् । तै० ३ । ८ । २ । ४ ॥
„ वागु हि रेतः । श० १ । ५ । २ । ७ ॥
„ वाग्रेतः । श० १ । ७ । २ । २१ ॥
„ शुक्लं वै रेतः । ऐ० २ । १४ ॥
„ योषा पयस्या रेतो वाजिनम् । श० २ । ४ । ४ । २१ ॥ २ । ५ । १ । १६ ॥
„ रेतो वाजिनम् । तै० १ । ६ । ३ । १० ॥

रेतः रेतःसिक्तिर्वै पात्नीवतग्रहः । कौ० १६ । ६ ॥
,, रेतो वै पात्नीवतः (ग्रहः) । ऐ० ६ । ३ ॥ गो० उ० ४ । ५ ॥
,, रेतो वा अच्छिद्रम् । ऐ० २ । ३८ ॥
,, सौर्य्यं रेतः । तै० ३ । ६ । १७ । ५ ॥
,, द्रप्सीव हि रेतः । श० ११ । ४ । १ । १५ ॥
,, त्रिवृद्धि रेतः । तां० ८ । ७ । १४ ॥
,, पञ्चविᳬशᳬ हि रेतः । श० ७ । ३ । १ । ४३ ॥
,, रेतो वाऽ अत्र यज्ञः । श० ७ । ३ । २ । ९ ॥
,, संवत्सरे संवत्सरे वै रेतःसिक्तिर्जायते । कौ० १६ । ६ ॥
,, यस्मात्कुमारस्य रेतः सिक्तं न सम्भवति यस्मादस्य मध्यमे वयसि सम्भवति यस्मादस्य पुनरुत्तमे वयसि न सम्भवति । श० ११ । ४ । १ । ७ ॥
,, कामार्तो वै रेतः सिञ्चति । गो० उ० ६ । १५ ॥
,, आण्डौ वै रेतःसिचौ, यस्य ह्याण्डौ भवतः स एव रेतः सिञ्चति । श० ७ । ४ । २ । २४ ॥
,, पृष्ट्यौ वै रेतःसिचौ । श० ७ । ५ । १ । १३ ॥ ८ । ६ । २ । ७ ॥
,, दक्षिणतो हि रेतः सिच्यते । तां० ८ । ७ । १० ॥ १२ । १० । १२ ॥
,, दक्षिणतो वाऽ उदग्योनौ रेतः सिच्यते । श० ६ । ४ । २ । १० ॥
,, आनुष्टुभाद्धि रेतो धीयते । तां० १२ । १० । ११ ॥
,, हिंकृताद्धि रेतो धीयते । तां० ८ । ७ । १३ ॥
,, उपाᳬशु वै रेतः सिच्यते । श० ९ । ३ । १ । २ ॥
,, उपांश्विव वै रेतसः सिक्तिः । ऐ० २ । ३८ ॥
,, यदा वै स्त्रियै च पुᳬसश्च संतप्यते ऽथ रेतः सिच्यते । श० ३ । ५ । ३ । १६ ॥
,, अन्ततो हि रेतो धीयते । श० ६ । ५ । १ । ५६ ॥
,, यद्वै रेतसो योनिमतिरिच्यते ऽमुया तद्भवत्यथ यन्न्यूनं व्यृद्धं तदेतद्वै रेतसः समृद्धं यत्समं बिलम् । श० ६ । ३ । ३ । २६ ॥
,, वायुर्वै रेतसां विकर्ता । श० १३ । ३ । ८ । १ ॥
,, प्राणो हि रेतसां विकर्ता । श० १३ । ३ । ८ । १ ॥
,, प्राणोदानाऽ उ वै रेतः सिक्तं विकुरुतः । श० ९ । ५ । १ । ५६ ॥
,, रेतो वै प्रजातिः । श० १४ । ९ । २ । ६ ॥

रेतः उभयतः परिगृहीतं वै रेतः प्रजायते । श० २ । ३ । १ । ३२ ॥
रेतःसिचौ (इष्टके) पृष्ठयो वै रेतःसिचौ । श० ७ । ५ । १ । १३ ॥
८ । ६ । २ । ७ ॥
,, आण्डौ वै रेतःसिचौ, यस्य ह्याण्डौ भवतः स एव रेतः सिञ्चति । श० ७ । ४ । २ । २४ ॥
रेवती (नक्षत्रम्) रेवत्यामश्वन्त । तै० १ । ५ । २ । ९ ॥
,, पूष्णो रेवती । गावः परस्ताद्वत्सा अवस्तात् । तै० १ । ५ । १ । ५ ॥
,, पूषा रेवत्यन्वेति पन्थाम् । तै० ३ । १ । २ । ९ ॥
रेवत्यः (=रैवतं साम) स (प्रजापतिः) रेवतीरसृजत तद्रवां घोषोऽन्वसृज्यत (रेवतीर्नः सधमादे [ऋ० १ । ३० । १३] इत्यस्यां गीयमानं रैवतं साम—इति ऐ० ४ । १३ भाष्ये सायणः) । तां० ७ । ८ । १३ ॥
,, ज्योती रेवती साम्नाम् । तां० १३ । ७ । २ ॥
,, यद् बृहत्तद्रैवतम् । ऐ० ४ । १३ ॥
,, गायत्री वै रेवती । तां० १६ । ५ । १९ ॥
,, या हि का च गायत्री सा रेवती । तां० १६ । ५ । २७ ॥
,, रेवत्यो मातरः । तां० १३ । ६ । १७ ॥
,, रेवतीनाꣳ रसो यद्वारवन्तीयम् । तां० १३ । १० । ५ ॥
,, (यजु० १ । २१) रेवत्य आपः । श० १ । २ । २ । २ ॥
,, आपो वै रेवतीः । तै० ३ । २ । ८ । २ ॥
,, आपो वै रेवत्यः । तां० ७ । ९ । २० ॥ १३ । ९ । १६ ॥
,, अपां वा एष रसो यद्रेवत्यः । तां० १३ । १० । ५ ॥
,, (यजु० ६ । ८ ॥) रेवन्तो हि पशवस्तस्मादाह रेवती रमध्वमिति । श० ३ । ७ । ३ । १३ ॥
,, पशवो वै रेवत्यः । तां० १३ । ७ । ३ ॥ १३ । ९ । २५ ॥
,, पशवो वै रैवत्यः । तां० १३ । १० । ११ ॥
,, वाग्वै रेवती । श० ३ । ८ । १ । १२ ॥
,, रेवत्यः सर्वा देवताः । ऐ० २ । १६ ॥
रैभी (ऋक्) रेभन्तो वै देवाश्चर्षयश्च स्वर्गं लोकमायन् । गो० उ० । ६ । १२ ॥

रोचनः (यजु० १२ । ४९) रोचनो ह नामैष लोको यत्रैष (सूर्यः) एतत्तपति । श० ७ । १ । १ । २४ ॥

„ (यजु० २३ । ५ ॥) नक्षत्राणि वै रोचना दिवि । तै० ३ । ९ । ४ । २ ॥

रोदसी यद्रोदीत् (प्रजापतिः) तदनयोः (द्यावापृथिव्योः) रोदस्त्वम् । तै० २ । २ । ९ । ४ ॥

„ (यजु० ११ । ४३ ॥ १२ । १०७ ॥) इमे वै द्यावापृथिवी रोदसी । श० ६ । ४ । ४ । २ ॥ ६ । ७ । ३ । २ ॥ ७ । ३ । १ । ३० ॥

„ इमे (द्यावापृथिव्यौ) ह वाव रोदसी । जै० उ० १ । ३२ । ४ ॥

„ द्यावापृथिवी वै रोदसी । ऐ० २ । ४१ ॥

रोहः (यजु० १३ । ५१) स्वर्गो वै लोको रोहः । श० ७ । ५ । २ । ३६॥

रोहिणी (नक्षत्रम्) सा (विराट्) तत ऊर्ध्वारोहत् । सा रोहिण्यभवत् । तद्रोहिण्यै रोहिणित्वम् । तै० १ । १ । १० । ६ ॥

„ विराड् सृष्टा प्रजापतेः । ऊर्ध्वारोहद्रोहिणी । योनिरग्नेः प्रतिष्ठितिः । तै० १ । २ । २ । २७ ॥

„ यमु हैव तत्पशवो मनुष्येषु काममरोहँस्तमु हैव पशुषु कामꣳ रोहति य एवं विद्वान्रोहिण्यां (अग्नी) आधत्ते । श० २ । १ । २ । ७ ॥

„ प्रजापती रोहिण्यामग्निमसृजत तं देवा रोहिण्यामादधत ततो वै ते सर्वान्रोहानरोहन् तद्रोहिण्यै रोहिणित्वम् । तै० १ । १ । २ । २ ॥

„ ता अस्य (प्रजापतेः) प्रजाः सृष्टा एकरूपा उपस्तब्धास्तस्थू रोहिण्य इवैव तद्वै रोहिण्यै रोहिणीत्वम् । श० २ । १ । २ । ६ ॥

„ या (प्रजापतेर्दुहिता) रोहित् (=रक्तवर्णा मृगी) सा रोहिणी (अभूत्) । ऐ० ३ । ३३ ॥

„ प्रजापते रोहिणी । तै० १ । ५ । १ । १ ॥

„ रोहिणी देव्युदगात् पुरस्तात्……प्रजापतिꣳ हविषा वर्द्धयन्ती । तै० ३ । १ । १ । २ ॥

„ इन्द्रस्य रोहिणी (=ज्येष्ठानक्षत्रमिति सायणः) । तै० १ । ५ । १ । ४ ॥

रोहिणी आत्मा वै प्रजा पशवो रोहिणी । श० ११ । १ । १ । ७ ॥

" यद् ब्राह्मणः (=ब्राह्मणनक्षत्रम्) एव रोहिणी । तस्मादेव । तै० २ । ७ । ६ । ४ ॥

रोहितकूलीयम् (साम) एतेन वै विश्वामित्रो रोहिताभ्याᳬं रोहितकूल आजिमजयत् । तां० १४ । ३ । १२ ॥

" विश्वामित्रो भरतानां मनस्वत्यायात् सौदन्तिभिर्नाम जनतयाᳬंशं प्रास्यतेमाम्मां यूयं वस्निकाश्रयायेमानि मह्यं यूयं पूरयाय यदीमाविदᳬं रोहितावश्मचितं कूलमुद्वहात इति स एते सामनी अपश्यत्ताभ्यां युक्त्वा प्रासेधत्स उदजयत् । तां० १४ । ३ । १३ ॥

" रोहितकूलीयं भवत्याजिजित्यायै । तां० १४ । ३ । ११ ॥

रोहितम् (छन्दः) रोहितं वै नामैतच्छन्दो यत्पारुच्छेपमेतेन वा इन्द्रः सप्त स्वर्गाँल्लोकानरोहत् । ऐ० ५ । १० ॥

रौरवम् (साम) ते (असुराः) प्रत्युष्यमाणा अरवन्त यदरवन्त तस्माद्रौरवम् । तां० ७ । ५ । ११ ॥

" अग्निर्वै क्रूरस्तस्यैतद्रौरवम् । तां० ७ । ५ । १० ॥

" पशवो वै रौरवम् । तां० ७ । ५ । ८ ॥

रौहिणौ (पुरोडाशौ) अग्निश्च ह वा आदित्यश्च रौहिणावेताभ्याᳬं हि देवताभ्यां यजमानाः स्वर्गं लोकᳬं रोहन्ति । श० १४ । २ । १ । २ ॥

" अहोरात्रे वै रौहिणौ । श० १४ । २ । १ । ३ ॥

" इमौ वै लोकौ (द्यावापृथिव्यौ) रौहिणौ । श० १४ । २ । १ । ४ ॥

" चक्षुषी वै रौहिणौ । श० १४ । २ । १ । ५ ॥

(ल)

लक्षणम् यद्वै नास्ति तदलक्षणम् । श० ७ । २ । १ । ७ ॥

लक्ष्मीः तस्माद्यस्य मुखे लक्ष्म भवति तं पुण्यलक्ष्मीक इत्याचक्षते । श० ८ । ४ । ४ । ११ ॥

लक्ष्मीः तस्माद्यस्य दक्षिणतो लक्ष्म भवति तं पुण्यलक्ष्मीक इत्याचक्षते। श० ८।४।४।११॥

,, तस्माद्यस्य सर्वतो लक्ष्म भवति तं पुण्यलक्ष्मीक इत्याचक्षते। श० ८।५।४।३॥

लवणम् लवणेन सुवर्णं सन्दध्यात्। गो० पू० १।१४॥ जै० उ० ३।१७।३॥

लाजाः आदित्यानां वा एतद्रूपम्। यल्लाजाः। तै० ३।८।१४।४॥

,, नक्षत्राणां वाऽ एतद्रूपं यल्लाजाः। श० १३।२।१।५॥

लातव्यः लातव्यो गोत्रो, ब्रह्मणः पुत्रः (ओङ्कारः)। गो० पू० १।२५॥

,, स्वाहा वै सत्यसम्भूता ब्रह्मणो दुहिता ब्रह्मप्रकृता लातव्यसगोत्रा त्रीण्यक्षराण्येकं पदं त्रयो वर्णाः शुक्लः पद्मः सुवर्ण इति। ष० ४।७॥

,, एतद्ध स्म वा आह कूशाम्बः स्वायवो ब्रह्मा लातव्यः कथं स्विदद्य शिशुमारी यक्षपथेऽप्यस्ता रिष्यति। तां० ८।६।८

लामगायनः स्वाहा वै सत्यसम्भूता ब्रह्मणा प्रकृता लामगायनसगोत्रा द्वे अक्षरे एकं पदं त्रयश्च वर्णाः शुक्लः पद्मः सुवर्ण इति (लातव्यशब्दमपि पश्यत)। गो० पू० ३।१६॥

लोकम्पृणाः (इष्टिकाः) (=मुहूर्ताः) अथ यत्क्षुद्राः सन्त इमाँ लोकानापूरयन्ति तस्मात् (मुहूर्ताः) लोकम्पृणाः। श० १०।४।२।१८॥

,, लोकम्पृणाभिर्मुहूर्तान् (आप्नोति)। श० १०।४।३।१२॥

,, असौ वाऽ आदित्यो लोकम्पृणैष हीमांल्लोकान्पूरयति। श० ८।७।२।१॥

,, असौ वाऽ आदित्यो लोकम्पृणा। श० ८।५।४।८॥

,, इन्द्रो लोकम्पृणा। श० ८।७।२।६॥

,, आत्मा लोकम्पृणा। श० ८।७।२।८॥

,, वाग्वै लोकम्पृणा। श० ८।७।२।७॥

लोकम्पृणाः (इष्टिकाः) क्षत्रं वै लोकम्पृणा । श० ६ । ४ । ३ । ५ ॥

" क्षत्रं वै लोकम्पृणा विश इमा इतरा इष्टकाः । श० ८ । ७ । २ । २ ॥

" अथ यन्नक्षत्राणित्याख्यायते तल्लोकम्पृणा । श० १० । ५ । ४ । ५ ॥

लोकाः त्रय इमे लोकाः । तां० १६ । १६ । ४ ॥

" त्रयो हीमे लोकाः । तां० ७ । १ । १ ॥

" त्रयो वाऽ इमे लोकाः । श० १ । २ । ४ । २० ॥

" एता वै (भूर्भुवः स्वरिति) व्याहृतय इमे (पृथिव्यादयः) लोकाः । तै० २ । २ । ४ । ३ ॥

" त्रयो वाव लोकाः । मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोक इति । श० १४ । ४ । ३ । २४ ॥

" उत्तर एषां लोकानां ज्यायान् । तां० १६ । १० । ३ ॥

" इमे वै (त्रयः) लोका दिव्यानि धामानि । श० ६ । ३ । १ । १७ ॥

" इमे वै (पृथिवी, अन्तरिक्षं द्यौश्चेति त्रयः) लोका रजांꣳसि (यजु० ११ । ६)। श० ६ । ३ । १ । १८ ॥

" इमे वै लोका विश्वा सद्मानि (यजु० १२ । १३)। श० ६ । ७ । ३ । १० ॥

" स यः स वैश्वानरः । इमे स लोका इयमेव पृथिवी विश्वमग्निर्नरो ऽन्तरिक्षमेव विश्वं वायुर्नरो द्यौरेव विश्वमादित्यो नरः । श० ६ । ३ । १ । ३ ॥

" इमे लोकास्त्रिरात्रः । तां० १६ । ११ । ४ ॥ २१ । ७ । २ ॥

" इमे वै लोकास्त्रिणवः (स्तोमः)। तां० ६ । २ । ३ ॥ १९ । १० । ६ ॥

" इमे वै लोका उखा । श० ६ । ५ । २ । १७ ॥ ६।७। १ । २२ ॥ ७ । ५ । १ । २७ ॥

" इमे वै लोका उपसदः । श० १० । २ । ५ । ८ ॥

" इमे वै (त्रयो) लोका भूतेछन्दः । गो० उ० ६ । १४ ॥

लोकाः इमऽ उ लोकाः प्रतिष्ठा चरित्रम् (यजु० १४ । १२ ॥ १५ । ६४ ॥) । श० ८ । ३ । १ । १० ॥ ८ । ७ । ३ । १६ ॥

„ इमे वै लोकाः सरिरम् (यजु० १३ । ४९ ॥ १५ । ५२ ॥) । श० ७ । ५ । २ । ३४ ॥ ८ । ६ । ३ । २१ ॥

„ तदाहुः किं तत्सहस्रम् (ऋ० ६ । ६९ । ८) इतीमे लोका इमे वेदा अथो वागिति ब्रूयात् । ऐ० ६ । १५ ॥

„ इमे वै लोकाः सर्पास्ते ह्यनेन सर्वेण सर्पन्ति यदिदं किं च । श० ७ । ४ । १ । २५ ॥

„ इमे लोकाः सुरुवः (यजु० १३ । ३) । श० ७ । ४ । १ । १४ ॥

„ इमे वै लोकाः स्रुचः । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥ ३ । ३ । ९ । २ ॥

„ इमे वै लोकाः स्वयमातृण्णाः । श० ७ । ४ । २ । ८ ॥

„ इमे वै लोकाः स्वरसामानः । ऐ० ४ । १६ ॥

„ इमे वै लोकाः सतश्च योनिरसतश्च (यजु० १३ । ३) यच्च ह्यस्ति यच्च न तदेभ्य एव लोकेभ्यो जायते । श० ७ । ४ । १ । १४ ॥

„ इमे वै लोका विष्णोर्विक्रमणं विष्णोर्विक्रान्तं विष्णोः क्रान्तम् । श० ५ । ४ । २ । ६ ॥

„ स (विष्णुः) इमाँल्लोकान्विचक्रमे ऽथो वेदानथो वाचम् । ऐ० ६ । १५ ॥

„ इमऽ उ लोकाः संवत्सरः । श० ८ । २ । १ । १७ ॥

„ एतऽ उ वाव लोका यदहोरात्राण्यर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरः । श० १० । २ । ६ । ७ ॥

„ ते हेमे लोका मित्रगुप्ताः । श० ६ । ५ । ४ । १४ ॥

„ स ह प्रजापतिरीक्षांचक्रे । कथं न्विमे (त्रयो) लोका ध्रुवाः प्रतिष्ठिताः स्युरिति स एभिश्चैव पर्वतैर्नदीभिश्चेमाम् (पृथिवीम्) अदृंहद्वयोभिश्च मरीचिभिश्चान्तरिक्षं, जीमूतैश्च नक्षत्रैश्च दिवम् । श० ११ । ८ । १ । २ ॥

„ यावन्त इमे लोका ऊर्द्ध्वास्तावन्तस्तीर्य्यञ्चः (तिर्य्यञ्चः) । तां० १८ । ६ । ३ ॥

लोमेष्टका: शिरो लोमेष्टकाः । श० ७ । ३ । १ । १३ । २७ ॥

लोम (साम) भरद्वाजस्य लोम (साम) भवति । तां० १३ । ११ । ११ ॥

" तदु (लोमसाम) दीर्घमित्याहुः । तां० १३ । ११ । १२ ॥

" पशवो वै लोम (साम) । तां० १३ । ११ । ११ ॥

लोमानि लोमानि हृदये (श्रितानि) । तै० ३ । १० । ८ । ८ ॥

" छन्दाᳬंसि वै लोमानि । श० ६ । ४ । १ । ६ ॥ ६ । ७ । १ । ६ ॥ ९ । ३ । ४ । १० ॥

" ओषधिवनस्पतयो मे लोमसु श्रिताः । तै० ३ । १० । ८ । ७ ॥

" लोमैव हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३६ । ६ ॥

लोहम् रजतेन लोहम् (सन्दध्यात्) । गो० पू० १ । १४ ॥

" लोहेन सीसम् (सन्दध्यात्) । गो० पू० । १ । १४ ॥

" दिशो वै लोहमय्यः (सूच्यः) । श० १३ । २ । १० । ३ ॥

लोहायसम् त्रपुणा लोहायसम् (संदध्यात्) । जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥

लोहिततूलानि (अर्जुनानि) (इन्द्रो वृत्रमहᳬंस्तस्य) यो वपाया उत्खिन्नायाः (सोमः समधावत्) तानि लोहिततूलानि । तां० ९ । ५ । ७ ॥

(व)

वङ्क्रयः (=वक्राणि पार्श्वास्थीनि) षड्विᳬंशतिरस्य (पशोः) वङ्क्रयः । तै० ३ । ६ । ६ । ३ ॥

" पर्शव उ ह वै वङ्क्रयः । कौ० १० । ४ ॥

वज्रः वज्रो वाऽ अग्निः । श० ३ । ५ । ४ । २ ॥ ६ । ३ । १ । ३९ ॥

" वज्रो वै परशुः । श० ३ । ६ । ४ । १० ॥

" वज्रः शासः । श० ३ । ८ । १ । ५ ॥

" त्रिवृद्वै वज्रः । कौ० ३ । २ ॥

" (देवाः) एतं त्रिः समृद्धं वज्रमपश्यन्नाप इति तत्प्रथमं वज्ररूपं सरस्वतीति तद् द्वितीयं वज्ररूपं पञ्चदशार्चे भवति तत्तृतीयं वज्ररूपमेतेन वै देवास्त्रिः समृद्धेन वज्रेणेभ्यो लोकेभ्यो ऽसुराननुदन्त । कौ० १२ । २ ॥

" वज्रो वाऽ आपः । श० १ । १ । १ । १७ ॥ १ । ७ । १ । २० ॥ ३ । १ । २ । ६ ॥ ७ । ५ । २ । ४१ ॥ तै० ३ । २ । ४ । २ ॥

वज्रः पञ्चदशः (स्तोमः) वै वज्रः । श० १ । ३ । ५ । ७ ॥ ३ । ६ । ४ । २५ ॥ कौ० ७ । २ ॥ १५ । ४ ॥ प० ३ । ४ ॥ तै० २ । २ । ७ । २ ॥ तां० २ । ४ । २ ॥

„ वज्रो वै भ्रान्तो (यजु० १४ । २३) वज्रः पञ्चदशः (यजु० १४ । २३) । श० ८ । ४ । १ । १० ॥

„ इन्द्रो ह यत्र वृत्राय वज्रं प्रजहार । स प्रहृतश्चतुर्धा ऽभवत्तस्य स्फ्यस्तृतीयं वा यावद्वा यूपस्तृतीयं वा यावद्वा रथस्तृतीयं वा यावद्वाथ यत्र प्राहरत्तच्छकलो ऽशीर्यत स पतित्वा शरो ऽभवत्तस्माच्छरो नाम यदशीर्यतैवमु स चतुर्धा वज्रो ऽभवत् । श० १ । २ । ४ । १ ॥

„ वज्रो वै स्फ्यः । तै० १ । ७ । १० । ५ ॥ ३ । २ । ६ । १० ॥ ३ । २ । १० । १ ॥ श० १ । २ । ५ । २० ॥ ३ । ३ । १ । ५ ॥ ५ । ४ । ४ । १५ ॥

„ वज्रो वै शरः । श० ३ । १ । ३ । १३ ॥ ३ । २ । १ । १३ ॥

„ वज्रो यूपः । श० ३ । ६ । ४ । १९ ॥

„ वज्रो वा एष यद्यूपः । कौ० १० । १ ॥ ऐ० २ । १, ३ ॥ प० ४।४॥

„ वज्रो वै यूपशकलः । श० ३ । ८ । १ । ५ ॥

„ वज्रो वै रथः । तै० १ । ३ । ६ । १ ॥ ३ । १२ । ५ । ६ ॥ श० ५ । १ । ४ । ३ ॥

„ वज्रो वै विकङ्कतः । श० ५ । २ । ४ । १८ ॥

„ वज्रो वै पशवः । श० ६ । ४ । ४ । ६ ॥ ८ । २ ३ । १४ ॥

„ वज्रो वाऽ अश्वः । श० ४ । ३ । ४ । २७ ॥ ६ । ३ । ३ । १२ ॥

„ वज्रो वै चक्रम् । तै० १ । ४ । ४ । १० ॥

„ वज्रो वै ग्रावा । श० ११ । ५ । ९ । ७ ॥

„ वज्रो वाऽ आज्यम् । श० १ । ४ । ४ । ४ ॥

„ वज्रस्तेन यदपोनप्त्रीया वज्रस्तेन यत्त्रिष्टुब्वज्रस्तेन यद्वाक् । ऐ० २ । १६ ॥

„ वज्रो वै त्रिष्टुप् । श० ७ । ४ । २ । २४ ॥

„ वज्र एव वाक् । ऐ० २ । २१ ॥

„ वाग्घि वज्रः । ऐ० ४ । १ ॥

वज्रः वज्रो वै वषट्कारः । ऐ० ३ । ८ ॥ कौ० ३ । ५ ॥ श० १ । ३ । ३ । १४ ॥ गो० उ० ३ । १, ५ ॥
,, वज्रो वा एष यद्वषट्कारः । ऐ० ३ । ६ ॥
,, वज्रो वै हिङ्कारः । कौ० ३ । २ ॥ ११ । १ ॥
,, हिङ्कारेण वज्रेणाऽस्माल्लोकादसुराननुदत । जै० उ० २ । ८ । ३ ॥
,, वज्रो वै महानाम्न्यः (ऋचः) । ष० ३ । ११ ॥
,, वज्रो वै सामिधेन्यः । कौ० ३ । २, ३ ॥ ७ । २ ॥
,, वज्रो वै वैश्वानरीयम् (सूक्तम्) । ऐ० ३ । १४ ॥
,, वज्रो वै यौधाजयम् (साम) । तां० ७ । ५ । १२ ॥
,, शाक्करो वज्रः । तै० २ । १ । ५ । ११ ॥
,, वज्रा वाऽ उपसदः । श० १० । २ । ५ । २ ॥
,, वज्रो वै त्रिणवः (स्तोमः) । तां० ३ । १ । २ ॥
,, आनुष्टुभो वा एष वज्रो यत्षोडशी (शस्त्रम्) । कौ० १७ । १ ॥
,, वज्रो वा एष यत्षोडशी । ऐ० ४ । १ ॥
,, वज्रः षोडशी । ष० ३ । ११ ॥
,, वज्रो वै षोडशी । गो० उ० २ । १३ ॥ तां० १२ । १३ । १४ ॥ १९ । ६ । ३ ॥
,, संवत्सरो वज्रः । श० ३ । ६ । ४ । १९ ॥
,, संवत्सरो हि वज्रः । श० ३ । ४ । ४ । १५ ॥
,, वीर्य्यं वज्रः । श० १ । ३ । ५ । ७ ॥
,, वीर्य्यं वै वज्रः । श० ७ । ३ । १ । १९ ॥
,, वज्रो वाऽ ओजः । श० ८ । ४ । १ । २० ॥
,, अष्टाश्रिर्वै वज्रः । ऐ० २ । १ ॥
,, पुरो गुरुरिव हि वज्रः । तां० ८ । ५ । २ ॥
,, एवमेव वै वज्रः साधुर्यदारम्भणतोऽणीयान् प्रहरणतः स्थवीयान् । ष० ३ । ४ ॥
,, दक्षिणत उद्यामो हि वज्रः । श० ८ । ५ । १ । १३ ॥
,, वज्रेणैवैतद्रक्षाꣳसि नाष्ट्रा अपहन्ति । श० ७ । ४ । १ । ३४ ॥

बडवा तस्मादु संवत्सरऽ एव स्त्री वा गौर्वा बडवा वा विजायते । श० ११ । १ । ६ । २ ॥

वत्सः वत्सा वै दैव्या अध्वर्य्यवः । श० १ । ८ । १ । २७ ॥
,, मन एव वत्सः । श० ११ । ३ । १ । १ ॥
,, अयमेव वत्सो यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १२ । ४ । १ । ११ ॥
,, अग्निर्ह वै ब्रह्मणो वत्सः । जै० उ० २ । १३ । १ ॥
,, वत्सा उ वै यज्ञपतिं वर्धन्ति यस्य ह्येते भूयिष्ठा भवन्ति स हि यज्ञपतिर्वर्धते । श० १ । ८ । १ । २८ ॥
वत्सतरी मारुत्यो वत्सतर्य्यः । तां० २१ । १४ । १२ ॥
वदति यद्वै वदति शंसतीति वै तदाहुः । श० १ । ८ । २ । १२ ॥
वधकाः ये वधकास्ते ऽन्तरिक्षस्य रूपम् । श० ५ । ४ । ५ । १४ ॥
वनस्पतयः वनस्पतयो वै द्रु । तै० १ । ३ । ९ । १ ॥
,, यदुग्रो देव ओषधयो वनस्पतयस्तेन । कौ० ६ । ५ ॥
,, भौज्यं वा एतद्वनस्पतीनां (यदुदुम्बरः) । ऐ० ७ । ३२ ॥ ८ । १६ ॥
,, अथो सर्वऽ एते वनस्पतयो यदुदुम्बरः । श० ७ । ५ । १ । १५ ॥
,, तेजो ह वाऽ एतद्वनस्पतीनां यद्बाह्याशकलस्तस्माद्यदा बाह्याशकलमपतक्ष्णुवन्त्यथ शुष्यन्ति । श० ३ । ७ । १ । ८ ॥
,, वनस्पतयो हि याज्ञिया न हि मनुष्या यजेरन् यद्वनस्पतयो न स्युः । श० ३ । २ । २ । ९ ॥
वनस्पतिः अग्निर्वै वनस्पतिः । कौ० १० । ६ ॥
,, प्राणो वनस्पतिः । कौ० १२ । ७ ॥
,, प्राणो वै वनस्पतिः । ऐ० २ । ४, १० ॥
,, स (वनस्पतिः) उ वै पयोभाजनः । कौ० १० । ६ ॥
वन्दारु (यजु० १२ । ४२) वन्दारुष्टे तन्वं वन्देऽअग्नऽ इति वन्दिता ते ऽहं तन्वं वन्दे ग्नऽ इत्येतत् । श० ६ । ८ । २ । ६ ॥
वपनम् ते ऽसुरा ऊर्ध्वं पृष्ठेभ्यो नाऽपश्यन् । ते केशानग्रे ऽवपन्त । अथ श्मश्रूणि । अथोपपक्षौ । ततस्ते ऽवाञ्च आयन् । पराभवन् । यस्यैवं वपन्ति । अवाङेति । अथो परैव भवति । तै० १ । ५ । ६ । १—२ ॥
,, अथैतन्मनुर्वप्त्रे मिथुनमपश्यत् । स श्मश्रूण्यग्रे ऽवपत । अथोपपक्षौ । अथ केशान् । ततो वै स प्राजायत । प्रजया पशुभिः ।

वपनम् यस्यैवं वपान्ति । प्र प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जायते । तै० १। ५ । ६ । ३ ॥

„ अथ देवा ऊर्ध्वं पृष्ठेभ्यो ऽपश्यन् । त उपपक्षावग्रे ऽवपन्त । अथ श्मश्रूणि । अथ केशान् । ततस्ते ऽभवन् । सुवर्गं लोकमायन् । यस्यैवं वपन्ति । भवत्यात्मना । अथो सुवर्गं लोकमेति । तै० १ । ५ । ६ । २ ॥

वपा शुक्ला वपा । ऐ० २ । १४ ॥

„ आत्मा वपा । कौ० १० । ५ ॥

„ यजमानदेवत्या वै वपा । तै० ३ । ९ । १० । १ ॥

„ हुत्वा वपामेवाग्रे ऽभिघारयति । श० ३ । ८ । २ । २४ ॥

„ प्रातः पशुमालभन्ते तस्य वपया प्रचरन्ति । तां० ५ । १० । ९ ॥

वपाश्रपणी कार्ष्मर्यमय्यौ वपाश्रपण्यौ भवतः । श० ३ । ८ । २ । १७ ॥

वपुः वपुर्हि पशवः । ऐ० ५ । ६ ॥

वम्र्यः इमा वै वम्र्यो यदुपदीकाः । श० १४ । १ । १ । ८ ॥

वयः (ऋ० ३ । २९ । ८) प्राणो वै वयः । ऐ० १ । २८ ॥

„ "पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तम्" (यजु० ११ । २३) इति पृथुर्वा ऽ एष (अग्निः) तिर्यङ् वयसो बृहन्धूमेन (वयः=धूमः) । श० ६ । ३ । ३ । १९ ॥

„ (यजु० १२ । १०६) धूमो वा ऽ अस्य (अग्नेः) श्रवो वयः स ह्येनममुष्मिँल्लोके श्रावयति । श० ७ । ३ । १ । २९ ॥

„ "दिव्यꣳ सुपर्णं वयसा बृहन्तम्" (यजु० १८ । ५१) इति दिव्यो वा ऽ एष (अग्निः) सुपर्णो वयसो बृहन्धूमेन (वयः=धूमः) । श० ९ । ४ । ४ । ३ ॥

वयश्छन्दः (यजु० १५ । ५) अन्नं वै वयश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ६ ।

वयस्कृच्छन्दः (यजु० १५ । ५) अग्निर्वै वयस्कृच्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ६ ॥

वयांसि अथ यदश्रु संक्षरितमासीत्तानि वयाꣳस्यभवन् । श० ६ । १ । २ । २ ॥

„ तार्क्ष्यो वैपश्यतः राजेत्याह तस्य वयाꣳसि विशः ...... पुराणं वेदः । श० १३ । ४ । ३ । १३ ॥

„ उरस एवास्य (इन्द्रस्य) हृदयात्त्विषिरस्रवत्स श्येनो ऽपाष्ठिहाभवद्वयसाꣳ राजा । श० १२ । ७ । १ । ६ ॥

वयांसि एतद्वै वयसामोजिष्ठं बलिष्ठं यच्छ्येनः। श० ३। ३। ४। १५॥
" स (श्येनः) हि वयसामाशिष्ठः। तां० १३। १०। १४॥
" श्येनो वै वयसां क्षेपिष्ठः। ष० ३। ८॥
" पशवो वै वयांꣳसि। श० ९। ३। ३। ७॥
" निर्ऋतेर्वा एतन्मुखं यद्वयांसि यच्छकुनयः। ऐ० २। १५॥
" निर्णामौ हि वयसः पक्षयोर्भवतो वितृतीये वितृतीये हि वयसः पक्षयोर्निर्णामौ भवतो ऽन्तरे वितृतीये ऽन्तरे हि वितृतीये वयसः पक्षयोर्निर्णामौ भवतः। श० १०। २। १। ५॥
" देवाननु वयांꣳस्योषधयो वनस्पतयः। श० १। ५। २। ४॥

वयुनाविद् (यजु० ११। ४) वयुनाविदित्येष (प्रजापतिः) हीदं वयुनमविदन्त्। श० ६। ३। १। १६॥

वरः सर्वं वै वरः। श० २। २। १। ४॥ ५। २। ३। १॥ १३। ४। १। १०॥
" आत्मा हि वरः। तै० ३। १२। ५। ७॥

वरणः (वृक्षविशेषः) वारणं (शङ्कुं) पश्चादघं मे वारयाताऽ इति। श० १३। ८। ४। १॥
" तस्माद्वरणो भिषज्य एतेन हि देवा आत्मानमत्रायन्त तस्मात् (वरणवृक्षस्याग्न्युपशमनहेतुत्वात्) ब्राह्मणो वारणेन (वरणविकारेण पात्रेण) न पिबेद् वैश्वानरन्नेच्छमया इति। तां० ५। ३। १०-११॥

वरसद् एष (सूर्य्यः) वै वरसद् वरं वा एतत्सद्मनां यस्मिन्नेष आसन्नस्तपति। ऐ० ४। २०॥

वराहः अग्नौ ह वै देवा घृतकुम्भं प्रवेशयांचक्रुस्ततो वराहः सम्बभूव तस्माद्वराहो मेदुरो घृताद्धि सम्भूतस्तस्माद्वराहे गावः संजानते स्वमेवैतद्रसमभिसंजानते। श० ५। ४। ३। १९॥
" पशूनां वा एष मन्युः। यद्वराहः। तै० १। ७। ९। ४॥
" वराहं क्रोधः (गच्छति)। गो० पू० २। २॥
" तां (प्रादेशमात्रीं पृथिवीं) एमूष इति वराह उज्जघान सोऽस्याः (पृथिव्याः) पतिः प्रजापतिः। श० १४। १। २। ११॥
" स (प्रजापतिः) वै वराहो रूपं कृत्वा उपन्यमज्जत्। तै० १। १। ३। ६॥

वरिवश्छन्दः (यजु० १५ । ४) अन्तरिक्षं वै वरिवश्छन्दः । श० ८ ५ । २ । ३ ॥

वरिष्ठा संवत् (यजु० ११ । १२) इयं (पृथिवी) वै वरिष्ठा संवत् । श० ६ । ३ । २ । २ ॥

वरुणः (आपः) यच्च वृत्वा ऽतिष्ठंस्तद्वरणो ऽभवत्तं वा एतं वरणं सन्तं वरुण इत्याचक्षते परोक्षेण । परोक्षप्रिया इव हि देवा भवन्ति प्रत्यक्षद्विषः । गो० पू० १ । ७ ॥

" वरुणो वै जुम्बकः (यजु० २५ । ९) । श० १३ । ३ । ६ । ५ ॥ तै० ३ । ९ । १५ । ३ ॥

" रात्रिर्वरुणः । ऐ० ४ । १० ॥ तां० २५ १० । १० ॥

" वारुणी रात्रिः । तै० १ ७ । १० । १ ॥

" यः प्राणः स वरुणः । गो० उ० ४ । ११ ॥

" यो वै वरुणः सो ऽग्निः । श० ५ । २ । ४ । १३ ॥

" यो वा अग्निः स वरुणस्तदप्येतदृषिणोक्तं त्वमग्ने वरुणो जायसे यदिति । ऐ० ६ । २६ ॥

" अथ यत्रैतत्प्रदीप्ततरो भवति । तर्हि हैष (अग्निः) भवति वरुणः । श० २ । ३ । २ । १० ॥

" स यदाग्निर्घोरसंस्पर्शस्तदस्य वारुणं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥

" वरुण्यो वा ऽ एष यो ऽग्निना शृतो ऽथैष मैत्रो य ऊष्मणा शृतः । श० ५ । ३ । २ । ८ ॥

" यः (अर्द्धमासः) अपक्षीयते स वरुणः। तां० २५ । १० । १०॥

" यः (अर्धमासः) एवापूर्यते स वरुणः । श० २ । ४ । ४ । १८ ॥

" क्लोमा वरुणः । श० १२ । ९ । १ । १५ ॥

" श्रीर्वै वरुणः । कौ० १८ । ९ ॥

" वरुणः (श्रियः) साम्राज्यम् (आदत्त) । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥

" द्यावापृथिवी वै मित्रावरुणयोः प्रियं धाम । तां० १४ । २ । ४ ॥

" अयं वै (पृथिवी-) लोको मित्रो ऽसौ (द्युलोकः) वरुणः । श० १२ । ९ । २ । १२ ॥

" स्यानो वरुणः । श० १२ । ९ । १ । १६ ॥

वरुणः (यजु० १४ । २४) अपानो वरुणः । श० ८ । ४ । २ । ६ ॥ १२ । ९ । २ । १२ ॥

" योनिरेव वरुणः । श० १२ । ९ । १ । १७ ॥

" वरुणो दक्षः । श० ४ । १ । ४ । १ ॥

" वरुण एव सविता । जै० उ० ४ । २७ । ३ ॥

" स वा एषो (सूर्य्यः)ऽपः प्रविश्य वरुणो भवति । कौ०१८ । ९॥

" वरुण आदित्यैः (उदक्रामत्) । ऐ० १ । २४ ॥

" वरुण आदित्यैः (व्यद्रवत्) । श० ३ । ४ । २ । १ ॥

" संवत्सरो वरुणः । श० ४ । ४ । ५ । १८ ॥

" संवत्सरो हि वरुणः । श० ४ । १ । ४ । १० ॥

" क्षत्रं वरुणः । कौ० ७ । १० ॥ १२ । ८ ॥ श० ४ । १ । ४ । १ ॥ गो० उ० ६ । ७ ॥

" क्षत्रं वै वरुणः । श० २ । ५ । २ । ६, ३४ ॥

" क्षत्रस्य राजा वरुणोऽधिराजः । नक्षत्राणां शतभिषग्वसिष्ठः । तै० ३ । १ । २ । ७ ॥

" इन्द्रस्य (="वरुणस्य" इति सायणः) शतभिषक् (नक्षत्रम्) । तै० १ । ५ । १ । ५ ॥

" इन्द्र उ वै वरुणः स उ वै पयोभाजनः । कौ० ५ । ४ ॥

" इन्द्रो वै वरुणः स उ वै पयोभाजनः । गो० उ० १ । २२ ॥

" तद्यदेवात्र पयस्तन्मित्रस्य सोम एव वरुणस्य । श० ४ । १ । ४ । ६ ॥

" वारुणं यवमयं चरुं निर्वपति । तै० १ । ७ । २ । ६ ॥

" वारुणो यवमयश्चरुः । श० ५ । २ । ४ । ११ ॥

" वरुण्यो ह वाऽ अग्रे यवः । श० २ । ५ । २ । १ ॥

" वरुण्यो यवः । श० ४ । २ । १ । ११ ॥

" निर्व्वरुणत्वाय (= "वरुणकृतबाधपरिहाराय" इति सायणः) एव यवाः । तां० १८ । ९ । १७ ॥

" (उपसद्देवतारूपाया इषोः) वरुणः पर्णानि । ऐ० १ । २५ ॥

" यत्पश्चाद्वासि वरुणो राजा भूतो वासि (प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः—अथर्ववेदे ३ । २७ । ३) । जै० उ० ३ । २१ । २ ॥

" एषा (उत्तरा) वै वरुणस्य दिक् । तै० ३ । ८ । २० । ४ ॥

वरुणः यद्वै यज्ञस्य दुरिष्टं तद्वरुणो गृह्णाति । तां० १३ । २ । ४ ॥ १५ । १ । ३ ॥

" यज्ञस्य (ईजानस्य) दुरिष्टं भवति वरुणोऽस्य तद् गृह्णाति । श० ४ । ५ । १ । ६ ॥

" वरुणेन (यज्ञस्य) दुरिष्टं (शमयति) । तै० १ । २ । ५ । ३ ॥

" वरुणः (यज्ञस्य) स्विष्टम् (पाति) । ऐ० ३ । ३८ ॥ ७ । ५ ॥

" सत्यानृते वरुणः । तै० १ । ७ । १० । ४ ॥

" अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणो गृह्णाति । तै० १ । ७ । २ । ६ ॥

" वरुणो वा एतं गृह्णाति यः पाप्मना गृहीतो भवति । श० १२ । ७ । २ । १७ ॥

" वरुण्यं वाऽएतत्स्त्री करोति यदन्यस्य सत्यन्येन चरति । श० २ । ५ । २ । २० ॥

" (अनडुही वहला) यत्स्त्री सती वहत्यधर्मेण, तदस्यै वारुणꣳ रूपम् । श० ५ । २ । ४ । १३ ॥

" वरुण ! धर्म्मणां पते । तै० ३ । ११ । ४ । १ ॥

" वरुणः (एवैनं) धर्म्मपतीनां (सुवते) । तै० १ । ७ । ४ । २ ॥

" वरुणो वाऽ आर्पयिता । श० ५ । ५ । ४ । ३१ ॥

" सर्वो वै देवानां वरुणः । श० ५ । ३ । १ । ५ ॥

" वरुणोऽन्नपतिः । श० १२ । ७ । २ । २० ॥

" वरुणः सम्राट् सम्राट्पतिः । तै० २ । ५ । ७ । ३ ॥ श० ११ । ४ । ३ । १० ॥

" वरुणो वै देवानाꣳ राजा । श० १२ । ८ । ३ । १० ॥

" विराड् वरुणस्य पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥

" अथ यदप्सु वरुणं यजति स्व एवैनं तदायतने प्रीणाति । कौ० ५ । ४ ॥

" अप्सु वै वरुणः । तै० १ । ६ । ५ । ६ ॥

" तस्य (प्रजापतेः) यद् रेतसः प्रथममुददीप्यत तदसावादित्यो ऽभवद्यद् द्वितीयमासीत्तद् भृगुरभवत्तं वरुणो न्यगृह्णीत तस्मात्स भृगुर्वारुणिः । ऐ० ३ । ३४ ॥

" वरुणस्य वै सुषुवाणस्य भर्गोऽपाक्रामत्स त्रेधाऽपतद् भृगुस्त-

तीयमभवच्छ्रायन्तीयं तृतीयमपस्तृतीयं प्राविशत् । तां० १८ । ९ । १ ॥

वरुणः यो ह वाऽ अयमपामावर्त्तः स हावभृथः स हैष वरुणस्य पुत्रो वा भ्राता वा । श० १२ । ६ । २ । ४ ॥

„ वरुण्यो वाऽ अवभृथः । श० ४ । ४ । ५ । १० ॥

„ एता वाऽ अपां वरुणगृहीता याः स्यन्दमानानां न स्यन्दन्ते । श० ४ । ४ । ५ । १० ॥

„ वरुण्या वाऽ एता आपो भवन्ति याः स्यन्दमानानां न स्यन्दन्ते । श० ५ । ३ । ४ । १२ ॥

„ वरुणस्य वा अभिषिच्यमानस्याप इन्द्रियं वीर्यं निरघ्नन् । तत्सुवर्णं हिरण्यमभवत् । तै० १ । ८ । ६ । १ ॥

„ वरुण्यो वै ग्रन्थिः । श० १ । ३ । १ । १६ ॥

„ वरुण्यो हि ग्रन्थिः । श० ५ । २ । ५ । १७ ॥

„ वरुण्या वाऽ एषा यद्रज्जुः । श० ३।२।४।१८॥ ३ । ७।४।१॥

„ वरुण्या वै यज्ञे रज्जुः । श० ६ । ४ । ३ । ८ ॥

„ वरुण्या (='वरुणपाशात्मिका' इति सायणः) रज्जुः । श० १ । ३ । १ । १४ ॥

„ वारुणो वै पाशः । तै० ३ । ३ । १० । १ ॥ श० ६ । ७ । ३ । ८॥

„ अथेयमेव वारुण्यागा ऽगीता । जै० उ० १ । ५२ । ९ ॥

„ वारुण एककपालः पुरोडाशो भवति । श० ४ । ४ । ५ । १५ ॥

„ (श्रीः) वारुणं दशकपालं पुरोडाशं (अपश्यत्) । श० ११ । ४ । ३ । ५ ॥

„ वारुणो दशकपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥

„ स (इन्द्रः) एतं वरुणाय शतभिषजे भेषजेभ्यः पुरोडाशं दशकपालं निरवपत् कृष्णानां व्रीहीणाम् । तै० ३ । १ । ५ । ९ ॥

„ तद्धि वारुणं यत्कृष्णं (वासः) । श० ५ । २ । ५ । १७ ॥

„ वरुणस्य सायम् (कालः) आसवो ऽपानः । तै० १ । ५ । ३ । १॥

„ खलतेर्विक्लिधस्य शुक्लस्य पिङ्गाक्षस्य मूर्द्धन् जुहोति एतद्वै वरुणस्य रूपम् । तै० ३ । ९ । १५ । ३ ॥

वरुणः शुक्लस्य खलतेर्विक्लिधस्य पिङ्गाक्षस्य मूर्धनि जुहोत्येतद्वै वरुणस्य रूपम् । श० १३ । ३ । ६ । ५ ॥

" वारुणो वा अश्वः । तै० २ । २ । ५ । ३ ॥ ३ । ८ । २० । ३ ॥ ३ । ९ । १६ । १ ॥

" वरुणो ह वै सोमस्य राज्ञो ऽभीवाक्षि प्रतिपिपेष तदश्वयत्ततो ऽश्वः समभवत् । श० ४ । २ । १ । ११ ॥

" (प्रजापतिः) वारुणमश्वं (आलिप्सत) । श० ६ । २ । १ । ५ ॥

" स हि वारुणो यदश्वः । श० ५ । ३ । १ । ५ ॥

" एष वै प्रत्यक्षं वरुणस्य पशुर्यन्मेषः । श० २ । ५ । २ । १६ ॥

" वारुणी च हि त्वाष्ट्री चाविः । श० ७ । ५ । २ । २० ॥

" यज्ञो वै वैष्णुवारुणः । कौ० १६ । ८ ॥

" वरुणसवो वाऽ एष यद्राजसूयम् । श० ५ । ३ । ४ । १२ ॥

" यो राजसूयः । स वरुणसवः । तै० २ । ७ । ६ । १ ॥

" मैत्रो वै दक्षिणः । वारुणः सव्यः । तै० १ । ७ । १० । १ ॥

" वरुण्या वाऽ एता ओषधयो याः कृष्टे जायन्ते ऽथैते मैत्रा यन्नाम्याः । श० ५ । ३ । ३ । ८ ॥

" वरुण्या वाऽ एषा (शाखा) या परशुवृक्णाथैषा मैत्री (शाखा) या स्वयम्प्रशीर्णा । श० ५ । ३ । २ । ५ ॥

" वरुण्यं वाऽ एतद्यन्मथितं (आज्यं) अथैतन्मैत्रं यत्स्वयमुदितम् । श० ५ । ३ । २ । ६ ॥

" एतद्वाऽ अवरुण्यं यन्मैत्रम् । श० ३ । २ । ४ । १८ ॥

" स (वरुणः) अब्रवीद्यद्वो न कश्चनाऽवृत तदहम्पारिहरिष्य इति । किमिति । अपध्वान्तं साम्नो वृणे ऽपशव्यमिति । जै० उ० १ । ५२ । ८ ॥

वरुणप्रघासाः तद्यन्न्वेव (प्रजापतिना सृष्टाः प्रजाः) वरुणस्य यवान् प्रादंस्तस्माद्वरुणप्रघासा नाम । श० २ । ५ । २ । १ ॥

" यदादित्यो वरुणꣳ राजानं वरुणप्रघासैरयजत । तद्वरुणप्रघासानां वरुणप्रघासत्वम् । तै० १ । ४ । १० । ६ ॥

" वरुणप्रघासैर्वै प्रजापतिः । प्रजा वरुणपाशात्प्रामुञ्चत्ता अस्यानमीवा अकिल्बिषाः प्रजाः प्राजायन्त । श० २ । ५ । ३ । १ ॥

वरुणप्रघासाः अयमेव दक्षिण उरुर्वरुणप्रघासाः । श० ११ । ५ । २ । ३ ॥

„ यद्वरुणप्रघासैर्यजते वरुण एव तर्हि भवति वरुणस्यैव सायुज्यꣳ सलोकतां जयति । श० २ । ६ । ४ । ८ ॥

वरुणसाम एतेन वै वरुणो राज्यमाधिपत्यमगच्छद्राज्यमाधिपत्यं गच्छति वरुणसाम्ना तुष्टुवानः । तां० १३ । ९ । २३ ॥

वरूत्रयः अहोरात्राणि वै वरूत्रयोऽहोरात्रैर्हीदꣳ सर्वं वृतम् । श० ६ । ५ । ४ । ६ ॥

वरेण्यम् अग्निर्वै वरेण्यम् । जै० उ० ४ । २८ । १ ॥

„ आपो वै वरेण्यम् । जै० उ० ४ । २८ । १ ॥

„ चन्द्रमा वै वरेण्यम् । जै० उ० ४ । २८ । १ ॥

वर्चः सूर्य्यस्य वर्चसा । तां० १ । ३ । ५ ॥ १ । ७ । ३ ॥

„ सूर्यस्य वर्चसा (त्वाभिषिञ्चामीति) । श० ५ । ४ । २ । २ ॥

„ ततोऽस्मिन् (अग्नौ) एतद्वर्च आस । श० ४ । ५ । ४ । ३ ॥

„ वर्चो वाऽ एतद्यद्धिरण्यम् । श० ३ । २ । ४ । ९ ॥

„ वर्चो वै हिरण्यम् । तै० १ । ८ । ९ । १ ॥

„ यद्वै वर्चस्वी कर्म चिकीर्षति शक्नोति वै तत्कर्तुम् । श० ५ । २ । ५ । १२ ॥

„ वर्चो द्वाविंशः (यजु० १४ । २३) संवत्सरो वाव वर्चो द्वाविꣳशस्तस्य द्वादशमासाः सप्तऽर्तवो द्वेऽअहोरात्रे संवत्सर एव वर्चो द्वाविꣳशस्तद्यत्तमाह वर्च इति संवत्सरो हि सर्वेषां भूतानां वर्चस्वितमः । श० ८ । ४ । १ । १६ ॥

वर्णाः चत्वारो वै वर्णाः । ब्राह्मणो राजन्यो वैश्यः शूद्रः । श० ५ । ५ । ४ । ९ ॥

वर्षाः (ऋतुः) यद्वर्षति तद्वर्षाणाम् (रूपम्) । श० २ । २ । ३ । ८ ॥

„ तस्य (आदित्यस्य) रथप्रोतश्चासमरथश्च (यजु० १५ । १७) सेनानीग्रामण्याविति वार्षिकौ तावृतू । श० ८ । ६ । १ । १८ ॥

„ यदा वै वर्षाः पिन्वन्तेऽथैनाः सर्वे देवा सर्वाणि भूतान्युपजीवन्ति । श० १४ । ३ । २ । २२ ॥

„ मरुतो वै वर्षस्येशते । श० ९ । १ । २ । ५ ॥

वर्षाः षड्भिः पार्जन्यैर्वा मारुतैर्वा (पशुभिः) वर्षासु (यजते)।
शा० १३। ५। ४। २८॥
,, वर्षं सावित्री। गो० पू० १। ३३॥
,, वर्षा वै सर्वऽ ऋतवः। श० २। २। ३। ७॥
,, वर्षा ह त्वेव सर्वेषामृतूनाꣳ रूपम्। श० २। २। ३। ७॥
,, वर्षाः पुच्छम् (संवत्सरस्य)। तै० ३। ११। १०। ४॥
,, वर्षा उत्तरः (पक्षः संवत्सरस्य)। तै० ३। ११। १०। ३॥
,, वर्षा एव यशः। गो० पू० ५। १५॥
,, वर्षा उद्गाता तस्माद्यदा बलवद्वर्षति साम्न इवोपब्दिः क्रियते।
श० ११। २। ७। ३२॥
,, (प्रजापतिः) वर्षामुद्गीथम् (अकरोत्)। जै० उ० १। १२। ७
,, वर्षा उद्गीथः। ष० ३। १॥
,, वर्षाशरदौ सारस्वताभ्याम् (अवरुन्धे)। श० १२। ८। २। ३४॥
,, वर्षाभिर्ऋतुनादित्याः स्तोमे सप्तदशे स्तुतं वैरूपेण विशौजसा।
तै० २। ६। १६। १-२॥
,, वर्षा ह्यस्य (वैश्यस्य) ऋतुः। तां० ६। १। १०॥
,, तस्माद्वैश्यो वर्षास्वादधीत। विड्ढि वर्षाः। (वृष्टिशब्दमपि
पश्यत)। श० २। १। ३। ५॥
,, श्रोत्रꣳ ह्येतत् पृथिव्या यद्वल्मीकः। तै० १। १। ३। ४॥
ऊर्जं वा एतꣳ रसं पृथिव्या उपदीका उद्दिहन्ति यद्वल्मीकम्।
वल्मीकः तै० १। १। ३। ४॥
,, प्राजापत्यो वै वल्मीकः। तै० ३। ७। २। १॥
वल्मीकवपा इयं (पृथिवी) वै वल्मीकवपा। श० ६। ३। ३। ५॥
वशा यद्वशामन्नवत्सा वशा ऽभवत्तस्मात्सा हाविरिव। ऐ० ३। २६॥
,, यदा न कश्चन रसः पर्यशिष्यत तत एषा मैत्रावरुणी वशा
समभवत्तस्मादेषा न प्रजायते रसाद्धि रेतः सम्भवति रेतसः
पशवस्तद्यदन्ततः समभवत्तस्मादन्तं यज्ञस्यानुवर्तते। श०
४। ५। १। ९॥
,, सा हि मैत्रावरुणी यद्वशा। श० ५। ५। १। ११॥
,, वशामनूबन्ध्यामालभते। श० २। ४। ४। १४॥

वशा वशामालभन्ते । तामालभ्य संज्ञपयन्ति संज्ञप्याह वपामुत्खिदेत्युत्खिद्य वपामनुमर्शो गर्भमंष्ठवै ब्रूयात्स यदि न विन्दन्ति किमाद्रियेरन् यद्यु विन्दति तत्र प्रायश्चित्तिः क्रियते । श० ४ । ५ । २ । १ ॥

" इयं (पृथिवी) वै वशा पृश्निः । श० १ । ८ । ३ । १५ ॥

" इयं (पृथिवी) वै वशा पृश्निर्यदिदमस्यां मूलि चामूलं चान्नाद्यं प्रतिष्ठितं तेनेयं वशा पृश्निः । श० ५ । १ । ३ । ३ ॥

वशीकरणम् (भूतवशीकरणात्) पञ्च हास्य कार्षापणा भवन्ति व्ययकृताश्च पुनरायन्ति मूलमशून्यं कुर्यात् । सा० वि० ३ । ७ । ५ ॥

" (वशीकृताः) जम्भकाः (=भूतविशेषाः) हास्य सार्वकामिका भवन्ति । सा० वि० ३ । ७ । ५ ॥

" तेन (द्रव्येण) अनुलिम्पेद्यांशं (=लिङ्गं) च नि त्वा नक्ष्य विश्पत इत्येतेनास्य वेशस्थाः (=वेश्याः) प्रव्रजिताः (पतिकुलान्निर्गताः स्वैराचारिण्यः) च वश्या भवन्ति । सा० वि० २ । ६ । ४ ॥

वषट्कारः स वै वौगिति करोति । वाग्वै वषट्कारो वाग्रेतो रेत एवैतात्सिञ्चति षडित्यृतवो वै षट् तदृतुष्वेवैतद्रेतः सिच्यते तदृतवो रेतः सिक्तमिमाः प्रजाः प्रजनयन्ति तस्मादेवं वषट्करोति । श० १ । ७ । २ । २१ ॥

" वाक् च वै प्राणापानौ च वषट्कारः । ऐ० ३ । ८ ॥

" वाक् च ह वै प्राणापानौ च वषट्कारः । गो० उ० ३ । ६ ॥

" तस्यै (वाचे) द्वौ स्तनौ देवा उपजीवन्ति स्वाहाकारं च वषट्कारं च । श० १४ । ८ । ९ । १ ॥

" प्राणो वै वषट्कारः । श० ४ । २ । १ । २९ ॥

" एष एव वषट्कारो य एष (सूर्य्यः) तपति । श० १ । ७ । २ । ११ ॥

" एष वं वषट्कारो य एष (सूर्यः) तपति । श० ११ । २ । २ । ५ ॥

" यः सूर्यः स धाता स उ एव वषट्कारः । ऐ० ३ । ४८ ॥

" यो धाता स वषट्कारः । ऐ० ३ । ४७ ॥

वषट्कारः निमेषो वषट्कारः । तै० २ । १ । ५ । ९ ॥

,, त्रयो वै वषट्कारा वज्रो धामच्छद्रिक्तः । ऐ० ३ । ७ ॥

,, त्रयो वै वषट्कारा वज्रो धामच्छाद्रिक्तः । स यदेवोच्चैर्बलं वषट्करोति स वज्रः…अथ यः समः संततो निर्हाणच्छत्स्व धामच्छत्………अथ येनैव षट् पराप्नोति स रिक्तः । गो० उ० ३ । ३ ॥

,, वज्रो वै वषट्कारः । ऐ० ३ । ८ ॥ कौ० ३ । ५ ॥ श० १ । ३ । ३ । १४ ॥ गो० उ० ३ । १, ५ ॥

,, वज्रो वा एष यद्वषट्कारो यं द्विष्यात्तं ध्यायेद्वषट्करिष्यंस्त-स्मिन्नेव तं वज्रमास्थापयति । ऐ० ३ । ६ ॥

,, देवेपुर्वा एषा यद्वषट्कारः । तां० ८ । १ । २ ॥

,, देवपात्रं वाऽ एष यद्वषट्कारः । श० १ । ७ । २ । १३ ॥

,, देवपात्रं वा एतद्यद्वषट्कारः । ऐ० ३ । ५ ॥

,, देवपात्रं वै वषट्कारः । गो० उ० ३ । १ ॥

,, एते एव वषट्कारस्य प्रियतमे तनू यदोजश्च सहश्च । कौ० ३ । ५ ॥

,, ओजश्च ह वै सहश्च वषट्कारस्य प्रियतमे तन्वौ । ऐ० ३ । ८ ॥

,, तस्य वाऽ एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य चत्वारो वषट्कारा यद्वातो वाति यद्विद्योतते यत्स्तनयति यदवस्फूर्जति तस्मादेवं-विद्वाते वाति विद्योतमाने स्तनयत्यवस्फूर्जत्यधीयीतैव वषट्काराणामच्छम्बट्काराय । श० ११ । ५ । ६ । ९ ॥

,, वषट्कारो हैष परोऽक्षं यद्वेटकारः । श० ९ । ३ । ३ । १४ ॥

वसतीवर्यः (आपः) तद्वासु विश्वान्देवान्संवेशयत्येते वै वसतां वरं तस्माद्वसतीवर्यो नाम । श० ३ । ९ । २ । १६ ॥

वसन्तः (ऋतुः) एतौ (मधुश्च माधवश्च) एव वासन्तिकौ (मासौ) स यद्वसन्तऽ ओषधयो जायन्ते वनस्पतयः पच्यन्ते तेनो हैतौ मधुश्च माधवश्च । श० ४ ३ । १ । १४ ॥

,, तस्य (अग्नेः) रथगृत्सश्च रथौजाश्च (यजु० १५ । १५) सेना-नीग्रामण्याविति वासन्तिकौ तावृतू । श० ८ । ६ । १ । १६ ॥

वसन्तः यदेव पुरस्ताद्भाति तद्वसन्तस्य रूपम्। श० २।२।३।८॥

,, तस्य (संवत्सरस्य) वसन्त एव द्वारꣳ हेमन्तो द्वारं तं वाऽएतꣳ संवत्सरꣳ स्वर्गं लोकं प्रपद्यते। श० १।६।१।१९॥

,, मुखं वा एतदृतूनां यद्वसन्तः। तै० १।१।२।६–७॥

,, तस्य (संवत्सरस्य) वसन्तः शिरः। तै० ३।११।१०।२॥

,, ऊर्ध्वै वसन्तः। ऐ० ४।२६॥

,, वसन्त आग्नीध्रस्तस्माद्वसन्ते दावाश्चरन्ति तद्ध्यग्निरूपम्। श० ११।२।७।३२॥

,, वसन्तः समिद्धो ऽन्यानृतून्त्समिन्धे। श० १।३।४।७॥

,, वसन्तो वै समित्। श० १।५।३।९॥

,, समिधो यजति वसन्तमेव वसन्ते वा इदं सर्वं समिध्यते। कौ० ३।४॥

,, वसन्तो हिङ्कारः। ष० ३।१॥

,, स (प्रजापतिः) वसन्तमेव हिङ्कारमकरोत्। जै० उ० १।१२।७॥

,, षड्भिराग्नेयैः (पशुभिः) वसन्ते (यजते)। श० १३।५।४।२८॥

,, वसन्तेनर्तुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुतम्। रथन्तरेण तेजसा। हविरिन्द्रे वयो दधुः। तै० २।६।१९।१॥

,, वसन्त एव भर्गः। गो० पू० ५।१५॥

,, वसन्तो वै ब्राह्मणस्यर्तुः। तै० १।१।२।६॥ श० १३।४।१।३॥

,, तस्माद्ब्राह्मणो वसन्तऽ आदधीत ब्रह्म हि वसन्तः। श० २।१।३।५॥

वसवः कतमे वसव इति। अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एते हीदꣳ सर्वं वासयन्ते ते यदिदꣳ सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति। श० ११।६।३।६॥

,, प्राणा वै वसवः। प्राणा हीदं सर्वं वस्वाददते। जै० उ० ४।२।३॥

,, प्राणा वै वसवः। तै० ३।२।३।३॥ ३।२।५।२॥

वसवः गायत्री वसूनां पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥

" वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा संमृजन्तु । तां० १ । २ । ७ ॥

" वसवो गायत्रीं समभरन् । जै० उ० १ । १८ । ४ ॥

" वसवस्त्वा पुरस्तादभिषिञ्चन्तु गायत्रेण छन्दसा । तै० २ । ७ । १५ । ५ ॥

" अथैनं (इन्द्रं) प्राच्यां दिशि वसवो देवाः......अभ्यषिञ्चन्... साम्राज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥

" अग्निर्वसुभिरुदक्रामत् । ऐ० १ । २४ ॥

" वसव एव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

" वसूनामेव प्रातःसवनम् । श० ४ । ३ । ५ । १ ॥

" वसूनां वै प्रातःसवनम् । कौ० १६ । १ ॥ ३० । १ ॥

" अथेमं विष्णुं यज्ञं त्रेधा व्यभजन्त । वसवः प्रातःसवनꣳ रुद्रा माध्यन्दिनꣳ सवनमादित्यास्तृतीयसवनम् । श० १४ । १ । १ । १५ ॥

" तं (आदित्यं) वसवो ऽष्टकपालेन (पुरोडाशेन) प्रातःसवने ऽभिषज्यन् । तै० १ । ५ । ११ । ३ ॥

" वसन्तेनर्त्तुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुतम् । रथन्तरेण तेजसा । हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २ । ६ । १९ । १ ॥

" वसूनां वा एतद्रूपम् । यत्तण्डुलाः । तै० ३ । ८ । १४ । ३ ॥

" वसवो वै रुद्रा आदित्या सꣳस्रावभागाः । तै० ३ । ३ । ९ । ७ ॥

" वसूनाꣳ श्रविष्ठाः (नक्षत्रम्) । तै० १ । ५ । १ । ५ ॥

" अष्टौ देवा वसवः सोम्यासः । चतस्रो देवीरजराः श्रविष्ठाः । ते यज्ञं पान्तु रजसः पुरस्तात् । संवत्सरीणममृतꣳ स्वस्ति । तै० ३ । १ । २ । ६ ॥

वसा परमं वा एतदन्नाद्यं यद्वसा । श० १२ । ८ । ३ । १२ ॥

वसिष्ठः (यजु० १३ । ५४) यद्वै नु श्रेष्ठस्तेन वसिष्ठो ऽथो यद्वस्तृतमो वसति तेनो ऽएव वसिष्ठः । श० ८ । १ । १ । ६ ॥

" येन वै श्रेष्ठस्तेन वसिष्ठः (हिङ्कारः) गो० उ० ३ । ६ ॥

" एष (प्रजापतिः) वै वसिष्ठः (=सर्वश्रेष्ठ इति सायणः) । श० २ । ४ । ४ । २ ॥

वसिष्ठः प्रजापतिर्वै वसिष्ठः । कौ० २५ । २ ॥ २६ । १५ ॥

,, (यजु० १३ । ५४) प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः । श० ८ । १ । १ । ६ ॥

,, सा ह वागुवाच । (हे प्राण) यद्वाऽ अहं वसिष्ठास्मि त्वं तद्वसिष्ठो ऽसीति । श० १४ । ९ । २ । १४ ॥

,, (ऋ० २ । ६ । १) अग्निर्वै देवानां वसिष्ठः । ऐ० १ । २८ ॥

,, वसिष्ठो वा एतं (इन्द्रक्रतुन्न आभरेति प्रगाथं) पुत्रहतो (नीलकंठीयटीकायुते महाभारते, आदिपर्वणि, अ० १७६) ऽपश्यत् स प्रजया पशुभिः प्राजायत । तां० ४ । ७ । ३ ॥ ८ । २ । ४ ॥

,, वसिष्ठस्य जनित्रे (सामनी) भवतो वसिष्ठो वा एते पुत्रहतः सामनी अपश्यत् स प्रजया पशुभिः प्राजायत । तां० १९ । ३ । ८ ॥

,, ततो वै वसिष्ठपुरोहिता भरताः प्राजायन्त । तां० १५ । ५ । २४ ॥

वसिष्ठयज्ञः "दाक्षायणयज्ञः" शब्दं पश्यत ॥

वसिष्ठा वाग्वै वसिष्ठा । श० १४ । ९ । २ । २ ॥

वसु पशवो वसु । श० ३ । ७ । ३ । ११, १३ ॥

,, पशवो वै वसु । तां० ७ । १० । १७ ॥ १३ । ११ । २ ॥

वसुः (यजु० १ । २) यज्ञो वै वसुः । श० १ । ७ । १ । ९, १४ ॥

,, स एषो (अग्निः) ऽत्र वसुः । श० ९ । ३ । २ । १ ॥

,, वसुरन्तरिक्षसत् (यजु० १२ । १४) । श० ५ । ४ । ३ । २२ ॥

वसुरन्तरिक्षसत् (यजु० १२ । १४) वायुर्वै वसुरन्तरिक्षसत् । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥

,, एष (सूर्यः) वै वसुरन्तरिक्षसद् । ऐ० ४ । २० ॥

वसुधेयः इन्द्रो वसुधेयः । श० १ । ८ । २ । १६ ॥

वसुवनिः अग्निर्वै वसुवनिः । श० १ । ८ । २ । १६ ॥

वसोर्धारा अत्रैव सर्वो ऽग्निः संस्कृतः स एषोत्र वसुस्तस्मै देवा एतां धारां प्रागृह्णंस्तयैनमप्रीणंस्तद्यदेतस्मै वसवऽ एतां धारां प्रागृह्णंस्तस्मादेनां वसोर्धारेत्याचक्षते । श० ९ । ३ । २ । १ ॥

,, तद्यदेषा वसुमयी धारा तस्मादेनां वसोर्धारेत्याचक्षते । श० ९ । ३ । २ । ४ ॥

,, अग्नाविष्णू इति वसोर्धारायाः (रूपम्) । तै० ३ । ११ । ९ । ९ ॥

,, तस्यै वाऽ एतस्यै वसोर्धारायै । द्यौरेवात्मा । श० ९ । ३ । ३ । १५ ॥

वसोर्धारा (वसोर्धारायै) अभ्रमूधः । श० ९ । ३ । ३ । १५ ॥
,, (वसोर्धारायै) विद्युत्स्तनः । श० ९ । ३ । ३ । १५ ॥
वह्निः वह्निर्वा अनड्वान् । तै० १ । १ । ६ । १० ॥ १ । ८ । २ । ५ ॥
वाः यदवृणोत्तस्माद्वाः (जलम्) । श० ६ । १ । १ । ९ ॥
वाक् वाग्वै गीः (यजु० १२ । ६८) । श० ७ । २ । २ । ५ ॥
,, वाग्वै धेनुः । गो० पू० २ । २१ ॥ तां० १८ । ९ । २१ ॥
,, वाचं धेनुमुपासीत । तस्याश्चत्वार स्तनाः स्वाहाकारो वषट्कारो हन्तकारः स्वधाकारस्तस्यै द्वौ स्तनौ देवा उपजीवन्ति स्वाहाकारं च वषट्कारं च हन्तकारं मनुष्याः स्वधाकारं पितरस्तस्याः प्राण ऋषभो मनो वत्सः । श० १४ । ८ । ९ । १ ॥
,, वाग्वै शबली (= 'कामधेनुः' इति सायणः) । तां० २१ । ३ । १ ॥
,, वाक् सरस्वती । श० ७ । ५ । १ । ३१ ॥ ११ । २ । ४ । ६ ॥ १२ । ९ । १ । १३ ॥
,, वाक्तु सरस्वती । ऐ० ३ । १ ॥
,, वागेव सरस्वती । ऐ० २ । २४ ॥ ६ । ७ ॥
,, वागिव सरस्वती । ऐ० ३ । २ ॥
,, वाग्वै सरस्वती । कौ० ५ । २ ॥ १२ । ८ ॥ १४ । ४ ॥ तां० ६ । ७ । ७ ॥ १६ । ५ । १६ ॥ श० २ । ५ । ४ । ६ ॥ ३ । ९ । १ । ७ ॥ तै० १ । ३ । ४ । ५ ॥ ३ । ८ । ११ । २ ॥ गो० उ० १ । २० ॥
,, वाग्वै सरस्वती पावीरवी । ऐ० ३ । ३७ ॥
,, सरस्वती वाचमदधात् । तै० १ । ६ । २ । २ ॥
,, अथ यत्स्फूर्जयन्वाचमिव वदन्दहति तदस्य (अग्नेः) सारस्वतं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥
,, सा (वाक्) ऊर्ध्वोदातनोद्यथापां धारा संततैवम् (सरस्वती [नदी]=वाक् ॥ सरस्वतीशब्दं पश्यत) । तां० २० । १४ । २ ॥
,, वाग्वै समुद्रः । तां० ७ । ७ । ९ ॥
,, वाग्वै समुद्रो मनः समुद्रस्य चक्षुः । तां० ६ । ४ । ७ ॥
,, वाग्वै समुद्रो (ऋ० ४ । ५८ । १) न वै वाक् क्षीयते न समुद्रः क्षीयते । ऐ० ५ । १६ ॥
,, वाग्वै सरिरं छन्दः (यजु० १५ । ४) । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

वाक् वाग्वै सरिरम् (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ । २ । ५३ ॥

,, वाग्वै सोमक्रयणी (गौः) निदानेन । श० ३ । २ । ४। १०, १५॥

,, वाग्वाऽ एषा निदानेन यत्साहस्री (गौः) तस्या एतत् सहस्रं वाचः प्रजातम् । श० ४ । ५ । ८ । ४ ॥

,, तदाहुः किं तत्सहस्रम् (ऋ० ६ । ६९ । ८) इतीमे लोका इमे वेदा अथो वागिति ब्रूयात् । ऐ० ६ । १५ ॥

,, वाग्वै सिनीवाली (यजु० ११ । ५५) । श० ६ । ५ । १ । ६ ॥

,, वाक् सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । १५ ॥

,, वाग्वै सार्पराज्ञी । कौ० २७ । ४ ॥

,, वागेव सुपर्णी (माया) । श० ३ । ६ । २ । २ ॥

,, वाग्वाव शतपदी । प० १ । ४ ॥

,, वाग्वै रेवती । श० ३ । ८ । १ । १२ ॥

,, वागषाढा । श० ६ । ५ । ३ । ४ ॥ ७ । ५ । १ । ७ ॥

,, वाग्वाऽ अषाढा । श० ७ । ४ । २ । ३४ ॥ ८ । ५ । ४ । १ ॥

,, वाग्वै पथ्या स्वस्तिः । कौ० ७ । ६ ॥ श० ३ । २ । ३ । ८ ॥ ४ । ५ । १ । ४ ॥

,, वाग्घ्येषा (पथ्या स्वस्तिः) । श० ३ । २ । ३ । १५ ॥

,, जूरसि (यजु० ४ । १७), (जूः) इत्येतत् ह वा अस्याः (वाचः) एकं नाम । श० ३ । २ । ४ । ११ ॥

,, तस्यै (वाचे) जुहुयाद् वेकुरा नामासि । तां० ६ । ७ । ६ ॥

,, वाग्वै धिषणा (यजु० ११ । ६१) । श० ६ । ५ । ४ । ५ ॥

,, वाग्वै मतिः (यजु० १३ । ५८) वाचा हदीꣳ सर्वं मनुते । श० ८ । १ । २ । ७ ॥

,, वाग्वै बृहती । श० १४ । ४ । १ । २२ ॥

,, यदस्यै वाचो बृहत्यै पतिस्तस्माद् बृहस्पतिः । जै० उ० २ । २ । ५ ॥

,, बृहस्पतिः (एवैनं) वाचां (सुवते) । तै० १ । ७ । ४ । १ ॥

,, अथ बृहस्पतये वाचे । नैवारं चरुं निर्वपति । श० ५ । ३ । ३ । ५ ॥

,, वाग्वै राष्ट्री । ऐ० १ । १९ ॥

,, इयं (पृथिवी) वै वागसौ (अन्तरिक्षम) मनः । ऐ० ५ । ३३ ॥

,, इयं (पृथिवी) वै वाक् । श० ४ । ६ । ९ । १६ ॥

वाक् वागिति पृथिवी । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥

„ वागेवायं (पृथिवी-) लोकः । श० १४ । ४ । ३ । ११ ॥

„ वागित्यन्तरिक्षम् । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥

„ वागिति द्यौः । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥

„ वाग्वै लोकम्पृणा (इष्टका) । श० ८ । ७ । २ । ७ ॥

„ वाग्वै विराट् । श० ३ । ५ । १ । ३४ ॥

„ वाग्वै विश्वामित्रः । कौ० १० । ५ ॥ १५ । १ ॥ २९ । ३ ॥

„ वाग्वै विश्वकर्मऽर्षिः (यजु० १३ । ५८) वाचा हीदꣳ सर्वं कृतम् । श० ८ । १ । २ । ९ ॥

„ वागेव सꣳस्तुप्छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

„ वाग्वा अनुष्टुप् । ऐ० १ । २८ ॥ ३ । १५ ॥ ६ । ३६ ॥ श० १ । ३ । २ । १६ ॥ ८ । ७ । २ । ६ ॥ गो० उ० ६ । १६ ॥

„ वागनुष्टुप् । कौ० ५ । ६ ॥ ७ । ९ ॥ २६ । १ ॥ २७ । ७ ॥ श० १० । ३ । १ । १ ॥ तै० १ । ८ । ८ । २ ॥ तां० ५ । ७ । १ ॥

„ महिषी हि वाक् । श० ६ । ५ । ३ । ४ ॥

„ वागित्यृक् । जै० उ० १ । ९ । २ ॥

„ वागृक् । जै० उ० ४ । २३ । ४ ॥

„ सा या सा वागृक् सा । जै० उ० १ । २५ । ८ ॥

„ वागेवऽर्ग्वेदः । श० १४ । ४ । ३ । १२ ॥

„ वागेवऽर्चश्च सामानि च । मन एव यजूꣳषि । श० ४ । ६ । ७ । ५ ॥

„ वाग्ब्रह्म । गो० पू० २ । १० (११) ॥

„ वाग्घि ब्रह्म । ऐ० २ । १५ ॥ ४ । २१ ॥

„ वाग्वै ब्रह्म । ऐ० ६ । ३ ॥ श० २ । १ । ४ । १० ॥ १४ । ४ । १ । २३ ॥ १४ । ६ । १० । ५ ॥

„ वागिति तद् ब्रह्म । जै० उ० २ । ९ । ६ ॥

„ सा या सा वाग्ब्रह्मैव तत् । जै० उ० २ । १३ । २ ॥

„ ब्रह्मैव वाचः परमं व्योम । तै० ३ । ९ । ५ । ५ ॥

„ वाग्वै ब्रह्म च सुब्रह्म चेति । ऐ० ६ । ३ ॥

„ वाग्वै सुब्रह्मण्या । ऐ० ६ । ३ ॥

„ वागुक्थम् । ष० १ । ५ ॥

वाक् वाग्घि शस्त्रम् । ऐ० ३ । ४३ ॥
,, वाक् शंसः । ऐ० २ । ४ ॥ ६ । २७, ३२ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥
,, वाग्वै रथन्तरम् । ऐ० ४ । २८ ॥
,, वाग्रथन्तरम् । तां० ७ । ६ । १७ ॥
,, वाग्वै त्वष्टा वाग्धीदं सर्वं ताष्टीव । ऐ० २ । ४ ॥
,, वाग्वै दध्यङ्ङाथर्वणः (यजु० ११ । ३३ ॥) । श० ६ । ४ । २ । ३ ॥
,, वाग्वा अर्बुदम् । तै० ३ । ८ । १६ । ३ ॥
,, वाग्वै भर्गः । श० १२ । ३ । ४ । १० ॥
,, वागेव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, वाग्वा उत्तरनाभिः । श० १४ । ३ । १ । १६ ॥
,, वागुदयनीयम् । कौ० ७ । ९ ॥
,, वाग्वामभृत् । श० ७ । ४ । २ । ३५ ॥
,, वाग्वै शर्म (ऋ० ३ । १३ । ४) । ऐ० २ । ४० ॥
,, वाग्वै स्रुक् । श० ६ । ३ । १ । ८ ॥
,, वागेवादाभ्यः (ग्रहः) । श० ११ । ५ । ६ । १ ॥
,, वाग्वै सीतासमरः । श० ७ । २ । ३ । ३ ॥
,, वागिति श्रोत्रम् । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥
,, वाग्वा इन्द्रः । कौ० २ । ७ ॥ १३ । ५ ॥
,, वाग्घ्यैन्द्री । ऐ० २ । २६ ॥
,, एतद्ध वा इन्द्राग्न्योः प्रियं धाम यद्वागिति । ऐ० ६ । ७ ॥ गो० उ० ५ । १३ ॥
,, अग्निर्मे वाचि श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ४ ॥
,, सा या सा वागग्निस्सः । जै० उ० १ । २८ । ३ ॥
,, सा या सा वागासीत्सो ऽग्निरभवत् । जै० उ० २ । २ । १ ॥
,, या वाक् सो ऽग्निः । गो० उ० ४ । ११ ॥
,, वागेवाग्निः । श० ३ । २ । २ । १३ ॥
,, वाग्वाऽ अग्निः । श० ६ । १ । २ । २८ ॥ जै० उ० ३ । २ । ५ ॥
,, तपो मे तेजो मे ऽन्नम्मे वाङ् मे । तन्मे त्वयि (अग्नौ) । जै० उ० ३ । २० । १६ ॥
,, वाग्वाऽ अस्य (अग्नेः ?) स्वो महिमा। श० १ । ४ । २। १७ ॥

वाक् वाग्वाऽ अस्य (प्रजापतेः) स्वो महिमा। श० २।२।४।४॥

,, प्रजापतिर्वा इदमेक आसीत्तस्य वागेव स्वमासीद्वाग् द्वितीया स ऐक्षतेमामेव वाचं विसृजा इयं वा इदꣳ सर्वं विभवन्त्ये-ष्यतीति स वाचं व्यसृजत (काठकसंहितायाम् १२।५॥२७।१:—प्रजापतिर्वा इदमासीत्तस्य वाग् द्वितीयासीत्ताम्मिथुनं समभवत्सा गर्भमधत्त सास्मादपाक्रामत्सेमाः प्रजा असृजत सा प्रजापतिमेव पुनः प्राविशत्)। तां० २०।१४।२॥

,, प्रजापतिर्हि वाक्। तै० १।३।४।५॥

,, वाग्घि प्रजापतिः। श० १।६।३।२७॥

,, वाग्वै प्रजापतिः। श० ५।१।५।६॥१३।४।१।१५॥

,, प्रजापतिर्वै वाक्पतिः। (वाचस्पतिशब्दमपि पश्यत)। श० ३।१।३।२२॥

,, तदेता वाऽ अस्य (प्रजापतेः) ताः पञ्च मर्त्यास्तन्व आसं लोम त्वङ् मांसमस्थि मज्जाथैता अमृता मनो वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रम्। श० १०।१।३।४॥

,, (यजु० ३०।१) वाग्वाऽ इदं कर्म प्राणो वाचस्पतिः। श० ६।३।१।१९॥

,, नमो वाचे प्राणपत्न्यै स्वाहा। ष० २।९॥

,, वाक् च वै प्राणश्च मिथुनम्। श० १।४।१।२॥

,, सा ह वागुवाच। (हे प्राण!) यद्वाऽ अहं वसिष्ठास्मि त्वं तद्वसिष्ठो ऽसीति। श० १४।६ २।१४॥

,, वाग्वातस्य पत्नी। गो० उ० २।९॥

,, वाग्वै वायुः। तै० १।८।८।१॥ तां० १८।८।७॥

,, तस्मात्सर्वे प्राणा वाचि प्रतिष्ठिताः। श० १२।८।२।२५॥

,, तस्याः (वाचः) उ प्राण एव रसः। जै० उ० १।१।७॥

,, यावद्वै प्राणेष्वापो भवन्ति तावद्वाचा वदति। श० ५।३।५।१६॥

,, वाक् च वै मनश्च देवानां मिथुनम्। ऐ० ५।२३॥

,, तस्य (मनसः) एषा कुल्या यद्वाक्। जै० उ० १।५८।३॥

,, वाग्देवत्यं साम वाचो मनो देवता। जै० उ० १।५६।१४॥

वाक् वाग्वै मनसो ह्रसीयसी । श० १ । ४ । ४ । ७ ॥

,, अपरिमिततरामिव हि मनः परिमिततरेव हि वाक् । श० १।४।४।७॥

,, मनो ह पूर्वं वाचो यद्धि मनसाभिगच्छति तद्वाचा वदति । तां० १ । १ । १ । ३ ॥

,, अलग्ल(ग्न)मिव ह वै वाग्वदेद्यन्मनो न स्यात्तस्मादाह धृता मनसेति । श० ३ । २ । ४ । ११ ॥

,, वागिति मनः । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥

,, वाक् च वै मनश्च हविर्धाने । कौ० ९ । ३ ॥

,, युनज्मि वाचꣳ सह सूर्य्येण । तां० १ । २ । १ ॥

,, सा या सा वागसौ स आदित्यः । श० १० । ५ । १ । ४ ॥

,, वागिति चन्द्रमाः । जै० उ० ३ । १३ । १२ ॥

,, वाग्घ चन्द्रमा भूत्वोपरिष्टात्तस्थौ । श० ८ । १ । २ । ७ ॥

,, वाग्वै देवानां मनोता । ऐ० २ । १० ॥ कौ० १० । ६ ॥

,, वाग्यज्ञस्य (रूपम्) । श० १२ । ८ । २ । ४ ॥

,, वाग्घि यज्ञः । श० १ । ५ । २ । ७ ॥ ३ । १ । ४ । २ ॥

,, वाग्वै यज्ञः । ऐ० ५ । २४ ॥ श० १ । १ । २ । २ ॥ ३ । १ । ३ । २७ ॥ ३ । २ । २ । ३ ॥

,, वागु वै यज्ञः । श० १ । १ । ४ । ११ ॥

,, वाचो रसो यज्ञायज्ञीयम् (साम) । तां० १८ । ५ । २१ ॥ १८ । ११ । ३ ॥

,, वाग्यज्ञायज्ञीयम् (साम) । तां० ५ । ३ । ७ ॥ ११ । ५ । २८ ॥

,, वाग्वैरूपम् (साम) । तां० १६ । ५ । १६ ॥

,, वाग्यज्ञस्य होता । ऐ० २ । ५, २८ ॥

,, वाग्वै यज्ञस्य होता । श० १२ । ८ । २ । २३ ॥ १४ । ६ । १ ।५॥

,, वाग्घोता । श० १ । ५ । १ । २१ ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥

,, वागेव होता । गो० पू० २ । १० ॥ गो० उ० ३ । ८ ॥

,, वाग्वै होता (यजु० १३ । ७) । कौ० १३ । ९ ॥ १७ । ७ ॥

,, वाग्घोता षड्ढोतॄणाम् । तै० ३ । १२ । ५ । २ ॥

,, अग्निर्वै होताधिदेवतं वागध्यात्मम् । श० १२ । १ । १ । ४ ॥ गो० पू० ४ । ४ ॥

,, वाग्वै हाविष्कृत् । श० १ । १ । ४ । ११ ॥

वाक् उद्गातारो वै वाचे भागधेयं कुर्वन्ति । तां० ६ । ७ । ५ ॥
,, वाक् सर्व ऋत्विजः । गो० उ० ३ । ८ ॥
,, वाचा पशून्दाधार तस्माद्वाचा सिद्धा वाचाहूता आयन्ति तस्मादु नाम जानते । तां० १० । ३ । १३ ॥
,, त्र्यावृद्वै वाक् । तां० १० । ४ । ६ ९ ॥
,, त्रेधा विहिता हि वाग्—ऋचो यजूंषि सामानि । श० ६ । ५ । ३ । ४ ॥
,, सा वाऽ एषा वाक् त्रेधा विहिता । ऋचो यजूंषि सामानि । श० १० । ४ । ५ । २ ॥
,, वागिति सर्वे देवाः । जै० उ० १ । ९ । २ ॥
,, वागेव देवाः । श० १४ । ४ । ३ । १३ ॥
,, वाग्देवः । गो० पू० २ । १० ॥
,, वज्र एव वाक् । ऐ० २ । २१ ॥
,, वाग्घि वज्रः । ऐ० ४ । १ ॥
,, वज्रस्तेन यद्वाक् । ऐ० २ । १६ ॥
,, वाक् च ह वै प्राणापानौ च वषट्कारः । गो० उ० ३ । ६ ॥
,, वाक् च वै प्राणापानौ च वषट्कारः । ऐ० ३ । ८ ॥
,, वाग्वै वषट्कारो वाग्रेतः । श० १ । ७ । २ । २१ ॥
,, वागु हि रेतः । श० १ । ५ । २ । ७ ॥
,, शीर्ष्णो ह्ययमधिवाग्वदति । श० १ । ४ । ४ । ११ ॥
,, वाग्घृदये (श्रिता) । तै० ३ । १० । ८ । ४ ॥
,, तदेतत्तुरीयं वाचो निरुक्तं यन्मनुष्या वदन्त्यथैतत्तुरीयं वाचो ऽनिरुक्तं यत्पशवो वदन्त्यथैतत्तुरीयं वाचो ऽनिरुक्तं यद्वयांसि वदन्त्यथैतत्तुरीयं वाचो ऽनिरुक्तं यदिदं क्षुद्रं सरीसृपं वदति । श० ४ । १ । ३ । १६ ॥
,, वाग्वै देवानां पुरान्नमास । तै० १ । ३ । ५ । १ ॥
,, वाग्वै वाजस्य प्रसवः । तै० १ । ३ । २ । ५ ॥
,, वाग्योनिः । ऐ० २ । ३८ ॥
,, उदीचीमेव दिशम् । पथ्यया स्वस्त्या प्राजानंस्तस्मादत्रोत्तराहि वाग्वदति कुरुपञ्चालत्रा । श० ३ । २ । ३ । १५ ॥

वाक् तस्मादुदीच्यां दिशि प्रज्ञाततरा वागुद्यत उदञ्च उ एव यन्ति वाचं शिक्षितुं यो वा तत आगच्छति तस्य वा शुश्रूषन्त इति। कौ० ७। ६॥

,, अयातयाम्नी वाऽ इयं वाक्। श० ४। ५। ८। ३॥

,, वागु सर्वं भेषजम्। श० ७। २। ४। २८॥

,, प्रादेशमात्रꣳ हीदमभि वाग्वदति। श० ६। ३। १। ३३॥

,, सेयं वागृतुषु प्रतिष्ठिता वदति। श० ७। ४। २। ३७॥

,, तस्मात्संवत्सरवेलायां प्रजाः (=शिशवः) वाचं प्रवदन्ति। श० ७। ४। २। ३८॥

,, स (प्रजापतिः) वाचमयच्छत्स संवत्सरस्य परस्ताद्व्याहरद् द्वादशकृत्वः। ऐ० २। ३३॥

,, वाक् संवत्सरः। तां० १०। १२। ७॥

,, सर्वां वाचं पुरुषो वदति। तां० १३। १२। ३॥

,, तां वनस्पतयश्चतुर्द्धा वाचं विन्यदधुर्दुन्दुभौ वीणायामक्षे तूणवे तस्मादेषा वदिष्ठैषा वल्गुतमा वाग्या वनस्पतीनां देवानाꣳ ह्येषा वागासीत्। तां० ६। ५। १३॥

,, परमा वा एषा वाग्या दुन्दुभौ। तै० १। ३। ६। २—३॥

,, एषा वै परमा वाग्या सप्तदशानां दुन्दुभीनाम्। श० ५।१।५।६॥

,, एतद्वाचश्छिद्रं यदनृतम्। तां० ८। ६। १३॥

,, वाचो वा एतौ स्तनौ (यदधिके द्वे अक्षरे)। सत्यानृते वाव ते। गो० उ० ४। १९॥

,, वाचो वाव तौ स्तनौ सत्यानृते वाव ते। ऐ० ४। १॥

,, एतद्धै वाचो जितं यद्वदामीत्याह। ऐ० ८। ६॥

,, एकाक्षरा वै वाक्। तां० ४। ३। ३॥

,, योषा हि वाक्। श० १। ४। ४। ४॥

,, योषा वाऽ इयं वाग्यदेनं न युविता। श० ३। २। १। २२॥

,, वागिति स्त्री। जै० उ० ४। २२। ११॥

वाकोवाक्यम् यद्ध वाऽ अयं वाकोवाक्यमधीते क्षीरौदनमाꣳसौदनौ हैव तौ। श० ११। ५। ७। ५॥

वाक्पतिः (यजु० ४। ४) प्रजापतिर्वै वाक्पतिः। श० ३। १। ३। २२॥

वाच: साम निष्किरीयाः सत्रमासत ते तृतीयमहर्न प्राज्ञानꣳस्ताने-
तत्साम गायमाना वाग्युपाप्लवत् तेन तृतीयमहः प्राज्ञानꣳ-
स्ते ऽब्रुवन्नियं वाव नस्तृतीयमहरदीदृशदिति तृतीयस्यै-
वैषाह्नो दृष्टिः। तां० १२ । ५ । १४ ॥

वाचस्पतिः (यजु० ११ । ७) प्राणो वाचस्पतिः । श० ६ । ३ । १ । १९॥

,, प्राणो वै वाचस्पतिः । श० ४ । १ । १ । ९ ॥

,, प्रजापतिर्वै वाचस्पतिः (वाक्पतिशब्दमपि पश्यत)। श०
५ । १ । १ । १६ ॥

,, वाचस्पतिर्होता दशहोतॄणाम् । तै० ३ । १२ । ५ । १ ॥

वाचोऽग्रम् श्रीर्वै वाचो ऽग्रम् । तां० ६ । ६ । १२ ॥

,, मुखं वा एतत्संवत्सरस्य यद्वाचोग्रम । तां० ४ । २ । १७ ॥

वाजः अन्नं वै वाजः । तै० १ । ३ । ६ । २, ६ ॥ १ । ३ । ८ । ५ ॥ श०
५ । १ । ४ । ३ ॥ ६ । ३ । २ । ४ ॥ तां० १३ । ६ । १३, २१ ॥
१५ । ११ । १२ ॥ १८ । ६ । ८ ॥

,, अन्नं वाजः । श० ५ । १ । १ । १६ ॥ ८ । १ । १ । ६ ॥

,, (ऋ० ३ । २७ । १) अन्नं वै वाजाः । श० १ । ४ । १ । ९ ॥

,, वीर्य्यं वै वाजाः । श० ३ । ३ । ४ । ७ ॥

,, ओषधयः खलु वै वाजः । तै० १ । ३ । ७ । १ ॥

,, वाजो वै पशवः । ऐ० ५ । ८ ॥

,, वाजो वै स्वर्गो लोकः । तां० १८ । ७ । १२ ॥ गो० उ० ५ । ८ ॥

,, वाग्वै वाजस्य प्रसवः । तै० १ । ३ । २ । ५ ॥

वाजजित् (साम) वाजजिद्भवति सर्वस्याप्त्यै सर्वस्य जित्यै । तां०
१३ । ९ । २० ॥ तां० १५ । ११ । १२ ॥

वाजदावर्य्यः (बहुवचने; सामविशेषः) उत्सो वाजदावर्य्यः । तां० १३।९।१७॥

वाजपतिः एष (अग्निः) हि वाजानां पतिः । ऐ० २ । ५ ॥

वाजपेयम् (यज्ञविशेषः) अन्नं वाऽ एष उज्जयति यो वाजपेयेन यजते
ऽन्नपेयꣳ ह वै नामैतद्यद्वाजपेयम् । श० ५ । १ । ३ । ३ ॥

,, प्रजापतिरकामयत वाजमाप्नुयाꣳ स्वर्गं लोकमिति स
एतं वाजपेयमपश्यद्वाजपेयो वा एष वाजमेवैतेन स्वर्गं ष
(? स) लोकमाप्नोति । तां० १८ । ७ । १ ॥

,, वाज्येवैनं (सोमं) पीत्वा भवति । तै० १ । ३ । २ । ४ ॥

वाजपेयम् वाजᳬ ह्येतेन (वाजपेयेन) देवा ऐप्सन् । तै० १ । ३ । २।३॥
,, बार्हस्पत्यो वा एष देवतया यो वाजपेयेन यजते । तै० १ । ३ । ६ । ८-९ ॥
,, वाजपेययाजी वाव प्रजापतिमाप्नोति । तां० १८ । ६ । ४॥
,, यो वै वाजपेयः । स सम्राट्सवः । तै० २ । ७ । ६ । १ ॥
,, सम्राड्वाजपेयेन (इष्ट्वा भवति)। श० ५ । १ । १ । १३ ॥ ९ । ३ । ४ । ८ ॥
,, स वाजपेयेनेष्ट्वा सम्राडिति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥
,, स वा एष ब्राह्मणस्य चैव राजन्यस्य च यज्ञः । तं वा एतं वाजपेय इत्याहुः । तै० १ । ३ । २ । ३ ॥
,, सोमो वै वाजपेयः । तै० १ । ३ । २ । ३ ॥
,, अन्नं वै वाजपेयः । तै० १ । ३ । २ । ४ ॥
,, ब्रह्म वै वाजपेयः । तै० १ । ३ । २ । ४ ॥
,, वाजपेयो वा एष य एष (सूर्यः) तपति । गो० उ० ५ । ८ ॥

वाजिनम् (ऋ० १० । ७२ । १०) इन्द्रियं वै वीर्यं वाजिनम् । ऐ० १।१३॥
,, योषा पयस्या रेतो वाजिनम् । श० २ । ४ । ४ । २१ ॥ २ । ५ । १ । १६ ॥
,, रेतो वाजिनम् । तै० १ । ६ । ३ । १० ॥
,, पशवो वै वाजिनम् । तै० १ । ६ । ३ । १० ॥

वाजी यत्सद्यो वाजान्त्समजयत् । तस्माद्वाजी नाम । तै० ३ । ९ । २१ । २ ॥
,, (हे ऽश्व त्वं) वाज्यसि । तां० १ । ७ । १ ॥
,, वाजिनो ह्यश्वाः । श० ५ । १ । ४ । १५ ॥
,, (अश्वो) वाजी (भूत्वा) गन्धर्वान् (अवहत्) । श० १०।६।४।१॥
,, देवाश्वा वै वाजिनः । कौ० ५ । २ ॥
,, देवाश्वा वै वाजिनो ऽत्र देवाः साश्वा अभीष्टाः प्रीता भवन्ति । गो० उ० १ । २० ॥
,, अग्निर्वायुः सूर्य्यः । ते वै वाजिनः । तै० १ । ६ । ३ । ९ ॥
,, आदित्यो वाजी । तै० १ । ३ । ६ । ४ ॥
,, इन्द्रो वै वाजी । ऐ० ३ । १८ ॥

वाजी पशवो वै वाजिनः । गो० उ० १ । २० ॥
,, ऋतवो वै वाजिनः । कौ० ५ । २ ॥ श० २ । ४ । ४ । २२ ॥ गो० उ० १ । २० ॥
,, छन्दांसि वै वाजिनः । गो० उ० १ । २० ॥ तै० १ । ६ । ३ । ९ ॥
,, उक्थ्या वाजिनः । गो० उ० १ । २२ ॥

वाजी देवजूतः (ऋ० १० । १७८ । १) एष (तार्क्ष्यः=वायुः) वै वाजी देवजूतः । ऐ० ४ । २० ॥

वाणः (=महावीणा) (वाणः) शततन्त्रीको भवति । तां० ५ । ६ । १३ ॥
,, अन्तो वै वाणः (वाद्यानाम्) । तां० ५ । ६ । १२ ॥ १४ । ७ । ८ ॥

वातः (यजु० १५ । ६२) वातो हि वायुः । श० ८ । ७ । ३ । १२ ॥
,, यो वै प्राणः स वातः । श० ५ । २ । ४ । ९ ॥
,, प्राणो वै वातः । श० १ । १ । २ । १४ ॥
,, (=विश्वव्यचाः-यजु० १८ । ४१) एष (वातः) हीदꣳ सर्वं व्यचः करोति । श० ९ । ४ । १ । १० ॥
,, न वै वातात् किञ्चनाशीयोऽस्ति न मनसः किञ्चनाशीयोऽस्ति तस्मादाह वातो वा मनो वेति । श० ५ । १ । ४ । ८ ॥
,, वातो वै यज्ञः । श० ३ । १ । ३ । २६ ॥
,, युक्तो वातोन्तरिक्षेण ते सह । तां० १ । २ । १ ॥
,, वाग्वातस्य पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥
,, तस्मादेषोऽर्वाचीनमेव वातः पवते । श० ८ । ७ । ३ । ९ ॥

वातहोमाः वायुर्वातहोमाः । श० ९ । ४ । २ । १ ॥
,, प्राणा वै वातहोमाः । श० ९ । ४ । २ । १० ॥

वातापिः इन्द्र उ वै वातापिः स हि वातमाप्त्वा शरीराण्यर्हन्प्रतिप्रैति । कौ० २७ । ४ ॥

वात्सप्रम् (साम) वत्सप्रीर्भालन्दनः श्रद्धान्नाविन्दत स तपोऽतप्यत स एतद्वात्सप्रमपश्यत्स श्रद्धामविन्दत श्रद्धां विन्दामहा इति वै सत्रमासते विन्दते श्रद्धाम् । तां० १२ । ११ । २५ ॥
,, यद्वेव वत्सं स्पृशति तस्माद्वात्सप्रम् सूक्तम् । कौ० २ । ४ ॥
,, रात्रिर्वात्सप्रम् । श० ६ । ७ । ४ । १२ ॥
,, अहोरात्रे वात्सप्रम् । श० ६ । ७ । ४ । १० ॥

वात्सप्रम् स ह्वैष दाक्षायणहस्तः । यद्वात्सप्रं तस्माद्यं जातं कामयेत सर्वमायुरियादिति वात्सप्रेणैनमभिमृशेत्तदस्मै जाताया-युष्यं करोति । श० ६ । ७ । ४ । २ ॥

,, प्रतितिष्ठति वात्सप्रेण तुष्टुवानः । तां० १२ । ११ । २४ ॥

,, प्रतिष्ठा वै वात्सप्रम् । श० ६ । ७ । ४ । १५ ॥

,, दैवमवसानं यद्वात्सप्रम् । श० ६ । ८ । १ । ३ ॥

वात्सम् (साम) वात्सेन (साम्ना) वत्सो (अग्निं) व्यैत् (="प्राविशत्" इति सायणः) मैधातिथेन मेधातिथिस्तस्य (वत्सस्य) न लोम च नौषत्तद्वाव स तर्ह्यकामयत, कामसनि साम वात्सं, काममेवैतेनावरुन्धे । तां० १४ । ६ । ६ ॥

वामः यं वै गां यमश्वं यं पुरुषं प्रशꣳसन्ति वाम इति तं प्रशꣳसन्ति । तां० १३ । ३ । १६ ॥

वामदेव्यम् (कया नश्चित्र आ भुवत्–ऋ० ४ । ३१ । १–३ ॥) तौ (मित्रा-वरुणौ) अब्रूतां वामं मर्य्या इदं देवेष्वाजनीति तस्माद्वाम-देव्यम् (साम) । तां० ७ । ८ । १ ॥

,, पिता वै वामदेव्यं पुत्राः पृष्ठानि । तां० ७ । ९ । १ ॥

,, वामदेव्यं वै साम्नाꣳ सत् । तां० ४ । ८ । १० ॥

,, सत् (=उत्कृष्टमिति सायणः) वै वामदेव्यꣳ साम्नाम् । तां० १५ । १२ । २ ॥

,, वामदेव्यमात्मा (महाव्रतस्य) । तां० १६ । ११ । ११ ॥

,, शान्तिर्वै वामदेव्यम् । तै० १ । १ । ८ । २ ॥

,, शान्तिर्वै भेषजं वामदेव्यम् । कौ० २७ । २ ॥ २९ । ३,४ ॥

,, सर्वदेवत्यं वै वामदेव्यम् । तां० ७ । ८ । २ ॥

,, प्राजापत्यं वै वामदेव्यम् । तां० ४ । ८ । १५ ॥ ११ । ४ । ८ ॥

,, प्रजापतिर्वै वामदेव्यम् । श० १३ । ३ । ३ । ४ ॥

,, प्रजननं वै वामदेव्यम् । श० ५ । १ । ३ । १२ ॥

,, वामदेव्यं मैत्रावरुणसाम भवति । श० १३ । ३ । ३ । ४ ॥

,, प्राणो वै वामदेव्यम् । श० ९ । १ । २ । ३८ ॥

,, पशवो वै वामदेव्यम् । तां० ४ । ८ । १५ ॥ ७ । ९ । ९ ॥ ११ । ४ । ८ ॥ १४ । ९ । २४ ॥

वामदेव्यम् इदं वा वामदेव्यं यजमानलोको ऽमृतलोकः स्वर्गो लोकः। ऐ० ३ । ४६ ॥
,, उपहूतं वामदेव्यꣳ सहान्तरिक्षेण। श० १ । ८ । १ । १६ ॥
,, अन्तरिक्षं वै वामदेव्यम्। तै० १ । १ । ८ । २ ॥ २ । १ । ५ । ७ ॥ तां० १५ । १२ । ५ ॥

वामनः वामनो ह विष्णुरास। श० १ । २ । ५ । ५ ॥
,, स हि वैष्णवो यद्वामनः (गौः)। श० ५ । २ । ५ । ४ ॥
,, वैष्णवो वामनः (पशुः)। श० १३ । २ । २ । ६ ॥
,, वैष्णवं वामनं (पशुम्) आलभन्ते। तै० १ । २ । ५ । १ ॥

वामभृत् इयं (पृथिवी) वामभृत्। श० ७ । ४ । २ । ३५ ॥
,, वाग्वामभृत्। श० ७ । ४ । २ । ३५ ॥

वामम् प्राणा वै वामम्। श० ७ । ४ । २ । ३५ ॥
,, वामं हि पशवः। ऐ० ५ । ६ ॥

वाम्रम् (साम) (वाम्रं) सामार्षेयेण प्रशस्तं यं वै गां यमश्वं यं पुरुषं प्रशꣳसन्ति वाम इति तं प्रशꣳसन्ति। तां० १३ । ३ । १९ ॥

वायुः अयं वै वायुर्यो ऽयं पवते। श० २ । ६ । ३ । ७ ॥
,, अयं वै वायुर्यो ऽयं पवतऽ एष वा इदꣳ सर्वं विविनक्ति यदिदं किञ्च विविच्यते। श० १ । १ । ४ । २२ ॥
,, वातो (यजु० १५ । ६२) हि वायुः। श० ८ । ७ । ३ । १२ ॥
,, वायुर्वातहोमाः। श० ९ । ४ । २ । १ ॥
,, वायुर्वा उशन्। तां० ७ । ५ । १९ ॥
,, वायुरनुवत्सरः। तां० १७ । १३ । १७ ॥ तै० १ । ४ । १० । १ ॥
,, वायुर्वै निकायश्छन्दः (यजु० १५ । ५)। श० ८ । ५ । २ । ५ ॥
,, अयं वाऽ अवस्युरशिमिदो यो ऽयं (वायुः) पवते। श० १४ । २ । २ । ५ ॥
,, वायुर्वै देवः। जै० उ० ३ । ४ । ८ ॥
,, अयं वै ब्रह्म यो ऽयं (वायुः) पवते। ऐ० ८ । २८ ॥
,, अयं वै बृहस्पतिः (यजु० ३८ । ८) यो ऽयं (वायुः) पवते। श० १४ । २ । २ । १० ॥

वायुः अयं वै पवित्रं (यजु० १ । १२) यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १ । १ । ३ । २ ॥ १ । ७ । १ । १२ ॥

„ पवित्रं वै वायुः । तै० ३ । २ । ५ । ११ ॥

„ अयं वायुः पवमानः । श० २ । ५ । १ । ५ ॥

„ (वायुः) यत्पश्चाद्वाति । पवमान एव भूत्वा पश्चाद्वाति । तै० २ । ३ । ९ । ६ ॥

„ वायुर्ह्येव प्रजापतिस्तदुक्तमृषिणा पवमानः प्रजापतिरिति । ऐ० ४ । २६ ॥

„ स यो ऽयं (वायुः) पवते स एष एव प्रजापतिः । जै० उ० १ । ३४ । ३ ॥

„ स एष वायुः प्रजापतिरस्मिंस्त्रैष्टुभे ऽन्तरिक्षे समन्तं पर्यक्तः । श० ८ । ३ । ४ । १५ ॥

„ एतद्वै प्रजापतेः प्रत्यक्षं रूपं यद्वायुः । कौ० १९ । २ ॥

„ अर्धᳫं ह प्रजापतेर्वायुरर्धं प्रजापतिः । श० ६ । २ । २ । ११ ॥

„ यो वै वायुः स इन्द्रो य इन्द्रः स वायुः । श० ४ । १ । ३ । १९ ॥

„ अयं वै वायुर्मित्रो (यजु० ११ । ६४) यो ऽयं पवते । श० ६ । ५ । ४ । १४ ॥

„ अयं वै यमो (यजु० ३८ । ९) यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १४ । २ । २ । ११ ॥

„ वायुर्वै यंता (ऋ० ३ । १३ । ३) वायुना हीदं यतमन्तरिक्षं न समृच्छति । ऐ० २ । ४१ ॥

„ अयं वै वायुर्मातरिश्वा यो ऽयं पवते । श० ६ । ४ । ३ । ४ ॥

„ (वायुः) यद्दक्षिणतो वाति । मातरिश्वैव भूत्वा दक्षिणतो वाति । तै० २ । ३ । ९ । ५ ॥

„ वायुर्वै जातवेदा वायुर्हीदं सर्वं करोति यदिदं किंच । ऐ०२।३४॥

„ वायुर्वा अग्नेः स्वो महिमा । कौ० ३ । ३ ॥

„ तेजो वै वायुः । तै० ३ । २ । ९ । १ ॥

„ अयं वै पूषा (यजु० ३८ । ३, १५) यो ऽयं (वायुः) पवत ऽ एष हीदᳫं सर्वं पुष्यति । श० १४ । २ । १ । ९ ॥ १४ । २ । २ ।३२॥

„ यो वा ऽ अयं पवत ऽ एष धुतानो मारुतः । श० ३ । ६ । १ ।१६॥

वायुः यो वाऽ अयं (वायुः) पवतऽ एष तनूनपाच्छाकरः सो ऽयं प्रजानामुपद्रष्टा प्रविष्टस्ताविमौ प्राणोदानौ। श० ३।४।२।५॥

,, यो वाऽ अयं (वायुः) पवतऽ एष तनूनपा शाक्करः । श० ३।४।२।११॥

,, वायुर्वै तार्क्ष्यः । कौ० ३०।५॥

,, अयं वै तार्क्ष्यो यो ऽयं (वायुः) पवते एष स्वर्गस्य लोकस्याभिवोढा । ऐ० ४।२०॥

,, एष (तार्क्ष्यः=वायुः) वै सहावांस्तरुता (ऋ० १०।१७८।१) एष हीमांल्लोकान्तद्यस्तरति । ऐ० ४।२०॥

,, वायुर्वाऽ आशुस्त्रिवृत्स एष त्रिषु लोकेषु वर्तते। श० ८।४।१।९॥

,, वायुर्वै देवानामाशुः सारसारितमः । तै० ३।८।७।१॥

,, वायुर्वै देवानामाशिष्ठः । श० १३।१।२।७॥

,, (वायो !) त्वं वै नः (देव नाम्) आशिष्ठो ऽसि । श० ४।१।३।३॥

,, एष (वायुः) हि सर्वेषां भूतानामाशिष्ठः । श० ८।४।१।९॥

,, वायुर्वै तूर्णिर्हव्यवाड्वायुर्देवेभ्यो हव्यं वहति । ऐ० २।३४॥

,, वायुर्वै तूर्णिर्वायुर्हीदं सर्वं सद्यस्तरति यदिदं किंच । ऐ० २।३४॥

,, वायुः सप्तिः । तै० १।३।६।४॥

,, वायुर्वै चरन् । तै० ३।९।४।१॥

,, अयं वै सरिरः (यजु० ३८।७) यो ऽयं (वायुः) पवत एतस्माद्वै सरिरात् सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि सहेरते । श० १४।२।२।३॥

,, अयं वै समुद्रः (यजु० ३८।७) यो ऽयं (वायुः) पवतऽ एतस्माद्वै समुद्रात्सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि समुद्रवन्ति । श० १४।२।२।२॥

,, य एवायं (वायुः) पवत एष एव स समुद्र एतं हि संद्रवन्तं सर्वाणि भूतान्यनुसंद्रवन्ति । जै० उ० १।२५।४॥

,, अयं वै साधुः (यजु० ३७।१०) यो ऽयं (वायुः) पवतऽ एष हीमाँल्लोकान्त्साद्धो ऽनुपवते । श० १४।१।२।२३॥

,, वायुरेव सविता । गो० पू० १।३३॥ जै० उ० ४।२७।५॥

,, अयं वै सविता (यजु० ३८।८) यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १४।२।२।९॥

वायुः (वायुः) यदुत्तरतो वाति । सवितैव भूत्वोत्तरतो वाति । तै० २ । ३ । ९ । ७ ॥

,, तस्मादुत्तरतः पश्चादयं भूयिष्ठं पवमानः (=वायुः) पवते सवितृप्रसूतो ह्येष एतत्पवते । ऐ० १ । ७ ॥

,, वायुर्वै वसुरन्तरिक्षसत् (यजु० १२ । १४) । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥

,, अयमेव वत्सो यो ऽयं (वायुः) पवते श० १२ । ४ । १ । ११ ॥

,, यो ऽयं वायुः पवतऽ एष सोमः । श० ७ । ३ । १ । १ ॥

,, एष (वायुः) वै सोमस्योद्गीथो यत्पवते । तां० ६ । ६ । १८ ॥

,, अयं वै वायुर्विश्वकर्मा (यजु० १३ । ५५ ॥ १५ । १६) यो ऽयं पवतऽ एष हीदꣳ सर्वं करोति । श० ८ । १ । १ । ७ ॥ ८ । ६ । १ । १७ ॥

,, एष वै पृथग्वर्त्मा वैश्वानरः (यद्वायुः) । श० १० । ६ । १ ७ ॥

,, प्राणस्त्वाऽस्य वैश्वानरस्य (यद्वायुः) । श० १० । ६ । १ । ७ ॥

,, वायुर्वै मध्यमा विश्वज्योतिः (इष्टका) । श० ८ । ३ । २ । १ ॥

,, वायुर्वै विकर्णी (इष्टका) । श० ८ । ७ । ३ । ९ ॥

,, तस्माद्वायुरेव साम । जै० उ० ३ । १ । १२ ॥

,, अयमेव स्रुवो यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १ । ३ । २ । ५ ॥

,, वायुर्वै स्तोता । तै० ३ । ९ । ४ । ४ ॥ श० १३ । २ । ६ । २ ॥

,, वायुरेव हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३६ । ९ ॥ १ । ५८ । ९ ॥

,, वायुरेकपात्तस्याकाशं पादः । गो० पू० २ । ८ ॥

,, वायुर्धाय्या । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥

,, वायुरापश्चन्द्रमा इत्येते भृगवः । गो० पू० २ । ८ (९) ॥

,, यस्स प्राणो वायुस्सः । जै० उ० १ । २९ । १ ॥

,, प्राणा उ वा वायुः । श० ८ । ४ । १ । ८ ॥

,, वायुर्वै प्राणः । कौ० ८ । ४ ॥ जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥

,, वायुर्हि प्राणः । ऐ० २ । २६ ॥ ३ । २ ॥

,, प्राणो हि वायुः । तां० ४ । ६ । ८ ॥

,, प्राणो वै वायुः । कौ० ५ । ८ ॥ १३ । ५ ॥ ३० । ५ ॥ श० ४ । ४ । १ । १५ ॥ ६ । २ । २ । ६ ॥ गो० उ० १ । २६ ॥

,, यः स प्राणो ऽयमेव स वायुर्यो ऽयं पवते । श० १० । ३ । ३ । ७ ॥

,, प्राणो वै वायव्या (ऋक्) । कौ० १६ । ३, ४ ॥

वायुः वायुर्मे प्राणे श्रितः । तै० ३ । १० । ८ । ४ ॥

„ प्राणापानौ मे श्रुतम्मे । तन्मे त्वयि (वायौ)। जै० उ० ३ । २१ । १०॥

„ स (वायुः) यत्पुरस्ताद्वाति । प्राण एव भूत्वा पुरस्ताद्वाति । तस्मात्पुरस्ताद्वान्तं सर्वाः प्रजाः प्रतिनन्दन्ति । तै० २ । ३ । ९ । ४—५ ॥

„ वायुर्वै प्रणीर्यज्ञानां यदा हि प्राणित्यथ यज्ञो ऽथाग्निहोत्रम् । ऐ० २ । ३४ ॥

„ वायुप्रणेत्रा वै पशवः । श० ४ । ४ । १ । १५ ॥

„ यत्पशुपतिर्वायुस्तेन । कौ० ६ । ४ ॥

„ ते (पशवः) अब्रुवन्वायुर्वा अस्माकमीशे । जै० उ० १ । ५२ । ४॥

„ एताभिः (एकोनविंशतिभी रात्रिभिः) वायुरारण्यानां पशूनामाधिपत्यमाश्नुत । तां० २३ । १३ । २ ॥

„ वायुर्वाऽ उग्रः । श० ६ । १ । ३ । १३ ॥

„ वायुर्वाव पुरोहितः । ऐ० ८ । २७ ॥

„ वायुर्वा उपश्रोता । गो० उ० २ । १९ ॥ ४ । ९ ॥ तै० ३ । ७ । ५ । ४ ॥

„ वायुरेव महः । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ वायुर्महः । श० १२ । ३ । ४ । ८ ॥

„ मनो ह वायुभूत्वा दक्षिणतस्तस्थौ । श० ८ । १ । १ । ७ ॥

„ इमे वै (त्रयो) लोका पूरयमेव पुरुषो यो ऽयं (वायुः) पवते सो ऽस्यां पुरि शेते तस्मात्पुरुषः । श० १३ । ६ । २ । १ ॥

„ अयं वै यज्ञो यो ऽयं (वायुः) पवते । ऐ० ५ । ३३ ॥ श० १ । ९ । २ । २८ ॥ २ । १ । ४ । ११ ॥ ४ । ४ । ४ । १३ ॥ ११ । १ । २ । ३ ॥

„ अयं वाव यज्ञो योऽयं (वायुः) पवते । जै० उ० ३ । १६ । १ ॥

„ अयमु वै यः (वायुः) पवते स यज्ञः । गो० पू० ३ । २ ॥ ४ । १ ॥

„ वाग्वै वायुः । तै० १ । ८ । ८ । १ ॥ तां० १८ । ८ । ७ ॥

„ वायुर्वै रेतसां विकर्त्ता । श० १३ । ३ । ८ । १ ॥

„ वायुर्वै पयसः प्रदापयिता । तै० ३ । ७ । १ । ५ ॥

„ वायुर्वै सर्वेषां देवानामात्मा । श० १४ । ३ । २ । ७ ॥

„ सर्वेषामु हैष देवानामात्मा यद्वायुः । श० ९ । १ । २ । ३८ ॥

वायुः एकाह वाव कृत्स्ना देवता ऽर्धदेवता एवा ऽन्याः । अयमेव (वायुः) यो ऽयम्पवते । जै० उ० ३ । १ । १ ॥

„ द्यौरसिवायौ श्रिता । तै० ३ । ११ । १ । १० ॥

„ वायुरस्यन्तरिक्षे श्रितः । दिवः प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११।१।९॥

„ वायुर्वै नभसस्पतिः । गो० उ० ४ । ९ ॥

„ वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षाः । तै० ३ । २ । १ । ३ ॥

„ (प्रजापतिः) भुव इत्येव यजुर्वेदस्य रसमादत्त । तदिदमन्तरिक्षमभवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् स वायुरभवद्रसस्य रसः । जै० उ० १ । १ । ४ ॥

„ वायुर्दिशां यथा गर्भः । श० १४ । ९ । ४ । २१ ॥

„ वायुरेव यजुः । श० १० । ३ । ५ । २ ॥

„ वायोर्यजुर्वेदः (अजायत) । श० ११ । ५ । ८ । ३ ॥

„ यजुषां वायुर्देवतं तदेव ज्योतिस्त्रैष्टुभं छन्दो ऽन्तरिक्षं स्थानम् । गो० पू० १ । २९ ॥

„ त्रैष्टुभो हि वायुः । श० ८ । ७ । ३ । १२ ॥

„ वायुरध्वर्य्युः । गो० पू० १ । १३ ॥

„ वायुर्वा अध्वर्य्युः । गो० पू० २ । २४ ॥

„ वायुर्वा एतं (आदित्यं) देवतानामानशे । तां० ४ । ६ । ७ ॥

„ तदसावादित्य इमांल्लोकान्त्सूत्रे समावयते तद्यत्तत्सूत्रं वायुः सः । श० ८ । ७ । ३ । १० ॥

„ एष वाऽ अपाᳩ रसो यो ऽयं पवते स एष (वायुः) सूर्ये समाहितः सूर्यात्पवते । श० ५ । १ । २ । ७ ॥

„ अयं वै वायुर्यो ऽयं पवतऽ एष वाऽ इदᳩ सर्वं प्रप्याययति यदिदं किंच वर्षत्येषै वाऽ एतासां (गवां) प्रप्याययिता । श० १ । ७ । १ । ३ ॥

„ अयं वै वर्षस्येष्टे यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १ । ८ । ३ । १२॥

„ तस्माद्यां दिशं वायुरेति तां दिशं वृष्टिरन्वेति । श० ८ । २ । ३ । ५ ॥

„ यस्माद्गायत्रमध्यो द्वितीयः (त्रिरात्रः) तस्मात्तिर्यङ् वायुः पवते । तां० १० । ५ । २ ॥

वायुः तस्मादेष (वायुः) दक्षिणैव भूयिष्ठं वाति । श०८।१।१।७॥
८।६।१।१७॥

" शुक्रो हि वायुः । श० ६।२।२।७॥

" तथेति वायुः पवते । जै० उ० ३।६।२॥

" अनिरुक्तो हि वायुः । श० ८।७।३।१२॥

" शान्तिर्हि वायुः । तां० ४।६।९॥

" वायोर्निष्ट्या (="स्वातिः" इति सायणः) । तै०१।५।१।३॥
३।१।१।१०॥

" (वायोः) मेनका च सहजन्या (यजु० १५।१६) चाप्सरसाविति दिक् चोपदिशा चेति ह स्माह माहित्थिरिमे तु ते द्यावापृथिवी । श० ८।६।१।१७॥

" तस्य (वायोः) रथस्वनश्च रथेचित्रश्च (यजु० १५।१५) सेनानीग्रामण्याविति ग्रैष्मौ तावृतू । श० ८।६।१।१७॥

" तम् (वायुं) एताः पञ्च देवताः परिम्रियन्ते विद्युद्वृष्टिश्चन्द्रमा आदित्यो ऽग्निः । ऐ० ८।२८॥

" सो ऽयं (वायुः) पुरुषे ऽन्तः प्रविष्टस्त्रेधा विहितः प्राण उदानो व्यान इति । श० ३।१।२।२०॥

वारवन्तीयम् (साम) अग्निर्वा इदं वैश्वानरो दहन्नैत्तस्माद्देवा अबिभयुस्तं वरणशाखया ऽवारयन्त यदवारयन्त तस्माद्वारवन्तीयम् । तां० ५।३।९॥

" सो (अग्निः) ऽश्वो वारो भूत्वा पराङैत् । तं वारवन्तीयेनावारयत । तद्वारवन्तीयस्य वारवन्तीयत्वम् । तै० १।१।८।३॥

" यदवारयन् (=देवा आदित्यस्याधःपातं निवारितवन्तः) तद्वारवन्तीयस्य वारवन्तीयत्वम् । तै० १।५।१२।१॥

" (विष्णुः पशून्) वारवन्तीयेनावारयत । तै० २।७।१४।२॥

" पशवो वै वारवन्तीयम् । तां० ५।३।१२॥

" वारवन्तीयमग्निष्टोमसाम कार्य्यं यज्ञस्यैव छिद्रं वारयते । तां० ९।६।११॥

वारवन्तीयम् वारवन्तीयमग्निष्टोमसाम कार्य्यमिन्द्रियस्य वीर्य्यस्य परिगृहीत्यै । तां० ९ । ५ । ९ ॥

" वारवन्तीयमाग्निष्टोमसाम भवतीन्द्रियस्य वीर्य्यस्य परिगृहीत्यै । तां० १८ । ६ । १६ ॥

" केशिने वा एतद्दाल्भ्याय सामाविरभवत् । तां० १३ । १० । ८ ॥

" रेवतीनाᳪ रसो यद्वारवन्तीयम् । तां० १३ । १० । ५ ॥

वार्त्रघ्ने सामनी ऐयाहा इति वा इन्द्रो वृत्रमहन्नैयादोहो वेति न्यगृह्णाद्वार्त्रघ्ने सामनी वीर्यवती । ओज एवैताभ्यां वीर्य्यमवरुन्धे । तां० ११ । ११ । १२, १३ ॥

वार्शम् (साम) वृशो वैजानस्त्र्यरुणस्य त्रैधातवस्यैक्ष्वाकस्य पुरोहित आसीत्स ऐक्ष्वाको ऽधावयत् ब्राह्मणकुमारᳪ रथेन व्यछिनत्स पुरोहितमब्रवीत्तव मा पुरोधायामिदमीदृगुपागादिति तमेतेन साम्ना समैरयत्तद्वाव स तर्ह्यकामयत, कामसनि साम वार्शं, काममेवैतेनावरुन्धे । तां० १३ । ३ । १२ ॥

वालखिल्याः (ऋचः) यद्वा उर्वरयोरसंभिन्नं भवति खिलमिति वै तदाचक्षते वालमात्रा उ हेमे प्राणा असंभिन्नास्तद्यदसंभिन्नास्तस्माद्वालखिल्याः । कौ० ३० । ८ ॥

" प्राणा वै वालखिल्याः प्राणानेवैतदुपदधाति ता यद्वालखिल्या नाम यद्वाऽ उर्वरयोरसम्भिन्नं भवति खिल इति वै तदाचक्षते वालमात्रादु हेमे प्राणा असम्भिन्नास्ते यद्वालमात्रादसम्भिन्नास्तस्माद्वालखिल्याः । श० ८ । ३ । ४ । १ ॥

" प्राणा वालखिल्याः । ऐ० ६ । २६ ॥ कौ० ३० । ८ ॥

" प्राणा वै वालखिल्याः । ऐ० ६ । २८ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥

" यदि वालखिल्याः प्राणानस्यांतरियात् । ऐ० ५ । १५ ॥

" पशवो वालखिल्याः । तां० २० । ६ । २ ॥

" प्रगाथा वै वालखिल्याः । ऐ० ६ । २८ ॥

" ऐन्द्रयो वालखिल्याः (ऋचः) । ऐ० ६ । २६ ॥

वावाता (पत्नी) भुव इति वावाता। तै० ३।९।४।५॥

वासः रूपं वाऽ एतत्पुरुषस्य यद्वासः। श० १३।४।१।१५॥

,, तस्मादु सुवासा एव बुभूषेत्। श० ३।१।२।१६॥

,, ओषधयो वै वासः। श० १।३।१।१४॥

,, सर्वदेवत्यं वै वासः। तै० १।२।६।११॥१।३।७।३॥

,, सौम्यꣳ हि देवतया वासः। तै० १।६।१।११॥२।२।५।२॥

,, तस्य वाऽ एतस्य वाससः। अग्नेः पर्यासो भवति वायोरनुछादो नीविः पितृणाꣳ सर्पाणां प्रघातो विश्वेषां देवानां तन्तव आरोका नक्षत्राणामेवꣳ हि वाऽ एतत्सर्वं देवा अन्वायत्ताः। श० ३।१।२।१८॥

,, त्वगिघ वासः। श० ४।३।४।२६॥

,, तद्वै निष्पेष्टवै ब्रूयाद्यदेवास्य (वाससः) अत्रामेध्या (स्त्री) कृणत्ति (=Spins) वा वयति वा तदस्य (वाससः) मेध्यमसदिति। श० ३।१।२।१९॥

वासिष्ठम् (साम) वसिष्ठो वा एतेन वैडवः स्तुत्वाऽसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः। तां० ११।८।१४॥

वास्तव्यः (=रुद्रः) यज्ञेन वै देवाः। दिवमुपोदक्रामन्नथ यो ऽयं देवः (रुद्रः) पशूनामीष्टे स इहाहीयत तस्माद्वास्तव्य इत्याहुर्वास्तौ हि तदहीयत। श० १।७।३।१॥

,, वास्तव्यो वाऽ एष (रुद्रः) देवः। श० ५।२।४।१३॥ ५।३।३।७॥

वास्तु वास्तु हि तद्यज्ञस्य यद्धुतेषु हविःषु (अवशिष्यते)। श० १।७।३।७॥

,, वास्त्वनुष्टुब्वास्तु स्विष्टकृत्। श० १।७।३।१८॥

,, पेसुकं वै वास्तु पिस्यति ह प्रजया पशुभिर्यस्यैवं विदुषो ऽनुष्टुभौ भवतः। श० १।७।३।१८॥

,, अवीर्य्यं वै वास्तु। श० १।७।३।१७॥

वि अन्नं वै व्यन्नं हीमानि सर्वाणि भूतानि विष्टानि। श० १४।८।१३।३॥

विंशतिः प्रजापतेर्विस्रस्तादाप आयंस्तास्वितास्वविशद्यदविशत्तस्माद्विꣳशतिः। श० ७।५।२।५४॥

विकङ्कतः (वृक्षविशेषः) प्रजापतिर्यां प्रथमामाहुतिमजुहोत्स हुत्वा यत्र न्यमृष्ट ततो विकङ्कतः समभवत्। श० ६।६।३।१॥ १४।१।२।५॥

,, स (प्रजापतिः) हुत्वा न्यमृष्ट। ततो विकङ्कतः समभवत्तस्मादेष यज्ञियो यज्ञपात्रीयो वृक्षः। श० २।२।४।१०॥

,, यज्ञो विकङ्कतः। श० १४।१।२।५॥

,, अग्नेः सृष्टस्य यतः। विकङ्कतं भा आर्च्छत्। तै० १।१।३।१२॥

,, यत्ते सृष्टस्य यतः। विकङ्कतं भा आर्च्छज्जातवेदः। तै० १।२।१।७॥

,, सैषा प्रथमाहुतिर्यद्विकङ्कतः। श० ६।६।३।१॥

,, वज्रो वै विकङ्कतः। श० ५।२।४।१८॥

विकर्णी (इष्टका) वायुर्वै विकर्णी। श० ८।७।३।९॥

,, आयुर्वै विकर्णी। श० ८।७।३।११॥

विघनः (क्रतुः) इन्द्रमदेव्यो माया असचन्त स प्रजापतिमुपाधावत्तस्मा एतं विघनं प्रायच्छत्तेन सर्वा मृधो व्यहत यद्व्यहत तद्विघनस्य विघनत्वम्। तां० १९।१९।१॥

,, इन्द्रोऽकामयत पाप्मानं भ्रातृव्यं विहन्यामिति स एतं विघनमपश्यत्तेन पाप्मानं भ्रातृव्यं व्यहन् वि पाप्मानं भ्रातृव्यं हते य एवं वेद। तां० १९।१८।२॥

,, (इन्द्रः) तं (विघनं) आहरत्। तेनायजत। तेनैवासां (विशां) तꣳ सꣳस्तम्भं व्यहन्। तद्विघनस्य विघनत्वम्। तै० २।७।१८।१॥

विचक्षणम् चक्षुर्वै विचक्षणं वि ह्येनेन पश्यतीति। ऐ० १।६॥

,, चक्षुर्वै विचक्षणं चक्षुषा हि विप्रश्यति। कौ० ७।३॥

वितस्तिः हस्तो वितस्तिः। श० १०।२।२।८॥

वित्तम् एतावान्खलु वै पुरुषो यावदस्य वित्तम्। तै० १।४।७।७॥

विदद्वसुः यज्ञोऽसुरेषु विदद्वसुः। तां० ८।३।३॥

,, यज्ञो वै विदद्वसुः। तां० ११।४।५॥

,, यज्ञो विदद्वसुः। तां० १५।१०।४॥

,, विदद्वसु वै तृतीयसवनम्। तां० ८।३।६॥

विद्वानः (यजु० ११ । ३६) विद्वान इति विद्वानित्येतत् । श० ६।४।२।७॥

विदेहाः सैषा (सदानीरा नदी) अप्येतर्हि कोसलविदेहानां मर्यादा । श० १ । ४ । १ । १७ ॥

विद्या विद्या वै धिषणा । तै० ३ । २ । २ । २ ॥

„ विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम । तवाऽहमस्मि त्वं मा पालयस्वाऽनर्हते मानिने नैव मा दा गोपाय मा श्रेयसे तेऽहमस्मीति विद्यया सह म्रियेत न विद्यामूषरे वपेद् ब्रह्मचारी धनदायी मेधावी श्रोत्रियः प्रियो विद्यया वा विद्यां यः प्राह तानि तीर्थानि पणममेति (निरुक्ते अ० २ खं० ४ ॥ मनुस्मृतौ २।११२-११५)। संहितो० खं० ३ ॥

„ विद्यया देवलोकः (जय्यः) देवलोको वै लोकानाᳬ श्रेष्ठस्तस्माद्विद्यां प्रशᳬसन्ति । श० १४ । ४ । ३ । २४ ॥

विद्युत् (प्रजापतिः) तान् (देवान्) व्ययत् (=पाप्मनः सकाशाद् "वियोगितवान्" इति सायणः) । यद्व्ययत् । तस्माद्विद्युत् । तै० ३ । १० । ९ । १ ॥

„ विद्युद्ब्रह्मेत्याहुः । विदानाद्विद्युद्विद्यत्येनᳬ सर्वस्मात्पाप्मनो य एवं वेद विद्युद्ब्रह्मेति विद्युद्ध्येव ब्रह्म । श० १४ । ८ । ७ । १ ॥

„ विद्युद्वाऽ अशनिः । श० ६ । १ । ३ । १४ ॥

„ विद्युत्सावित्री । जै० उ० ४ । २७ । ६ ॥

„ विद्युदेव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥

„ अथैतस्यामुदीच्यान्दिशि भूयिष्ठं वियोतते । ष० २ । ४ ॥

„ वृष्टिर्वै याज्या विद्युदेव, विद्युद्धीदं वृष्टिमन्नाद्यं सम्प्रयच्छति । ऐ० २ । ४१ ॥

„ वृष्टिर्वै विराट् तस्या एते घोरे तन्वौ विद्युच्च ह्रादुनिश्च । श० १२ । ८ । ३ । ११ ॥

„ विद्युद्वाऽ अपां ज्योतिः (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ । २ । ४९ ॥

„ (वसोर्धारायै) विद्युत्स्तनः । श० ९ । ३ । ३ । १५ ॥

„ यो विद्युति (पुरुषः) स सर्वरूपः । सर्वाणि ह्येतस्मिन् रूपाणि । जै० उ० १ । २७ । ६ ॥

विद्वांसः ये वै विद्वाꣳसस्ते पक्षिणो ये ऽविद्वाꣳसस्ते ऽपक्षास्त्रिवृत्पञ्चदशावेव स्तोमौ पक्षौ कृत्वा स्वर्गं लोकं प्रयन्ति। तां० १४।१।१३॥

,, विद्वाꣳसो हि देवाः। श० ३।७।३।१०॥

विधर्म्म (साम) विधर्म्म भवति धर्म्मस्य विधृत्यै। तां० १५।५।३१॥

विधाः (यजु० १४।७) आपो वै विधा अद्भिर्हीदꣳ सर्वं विहितम्। श० ८।२।२।८।

विधाता चन्द्रमा एव धाता च विधाता च। गो० उ० १।१०॥

विधृती (द्विवचने) तस्मात् (द्वे तृणे) तिरश्ची निदधाति तस्माद्ध्व (अनयोः) विधृती (इति) नाम। श० १।३।४।१०॥

विपश्चित् यज्ञो वै बृहन्विपश्चित्। श० ३।५।३।१२॥

विप्रः (यजु० ११।४) विप्रा विप्रस्येति प्रजापति र्वै विप्रो देवा विप्राः। श० ६।३।१।१६॥

,, एते वै विप्रा यदृषयः। श० १।४।२।७॥

विभावसुः (यजु० १२।१०६) (=प्रभूवसुः) महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसविति महतो भ्राजन्ते ऽर्चयः प्रभूवसावित्येतत्। श० ७।३।१।२९॥

विभूतयः याऽष्पाड्विभूतय ऋतवस्ते। जै० उ० १।२१।१॥

विमदः (=विमदेन दृष्टं सूक्तम्। ऋ० १०।२१॥) विमदेन वै देवा असुरान्व्यमदन्। कौ० २२।६॥

विमुक्तिः (अहीनस्य) अथ यत्पुरस्तादुदयनीयस्यातिरात्रस्य विमुच्यन्ते सा विमुक्तिः। ऐ० ६।२३॥

वियच्छन्दः (यजु० १५।५) अहर्वै वियच्छन्दः। श० ८।५।२।५॥

विराट् (छन्दः) विराड् विरमणाद्विराजनाद्वा। दै० ३।१२॥

,, वृष्टिर्वै विराट् तस्या एते घोरे तन्वौ विद्युच्च ह्रादुनिश्च। श० १२।८।३।११॥

,, विराडग्निः। श० ६।२।२।३४॥ ६।३।१।२१॥ ६।८।२।१२॥ ९।१।१।३१॥

,, वाग्वै विराट्। श० ३।५।१।३४॥

,, विराड्वीयम् (पृथिवी)। श० २।२।१।२०॥

विराट् इयं (पृथिवी) वै विराट्। श० १२।६।१।४० ॥ गो०उ० ६।२॥
,, (यजु० १३।२४) अयं वै (पृथिवी-) लोको विराट्। श० ७।४।२।२३॥
,, (यजु० १३।४३) विराड्‌ढि गौः। श० ७।५।२।१९॥
,, एषा वै स्तनवती विराड् यङ्कामङ्कामयते तमेतां दुग्धे ("तस्याश्च कामधुग्धेनुर्वसिष्ठस्य महात्मनः। उक्ता कामान्प्रयच्छेति सा कामान्दुह्यते सदा॥" इति नीलकंठीयटीकायुते महाभारत आदिपर्वणि १७५।६॥ 'विश्वरूपी' 'शबली' इत्येतौ शब्दावपि पश्यत)। तां० २०।१।५॥
,, अन्नं विराट्। कौ० ९।६॥ १२।३॥ तै० १।६।३।४॥ १।८।२।२॥ तां० ४।८।४॥
,, अन्नं विराट् तस्माद्यस्यैवेह भूयिष्ठमन्नं भवति स एव भूयिष्ठं लोके विराजति तद्विराजो विराट्त्वम्। ऐ० १।५॥
,, अन्नं वै विराट्। श० ७।५।२।१९॥ ऐ० १।५॥ ४।११॥ ५।१९॥ ६।२०॥
,, अन्नं वै श्रीर्विराट्। गो० पू० ५।४॥ गो० उ० १।१९॥
,, श्रीर्विराडन्नाद्यम्। कौ० १।१॥ २।३॥ १२।२॥ १५।५॥
,, श्रीर्वै विराड् यशोऽन्नाद्यम्। गो० पू० ५।२०॥ गो० उ० ६।१५॥
,, एतद्वै कृत्स्नमन्नाद्यं यद्विराट्। कौ० १४।२॥
,, विराडन्नाद्यम्। ऐ० ४।१६॥ ८।४॥
,, ऊर्ग्विराट्। तै० १।२।२।२॥
,, वैराजीर्वा आपः। कौ० १२।३॥
,, वैराजो वै पुरुषः। तां० २।७।८॥ १९।४।५॥ तै० ३।९।८।२॥
,, विराड् वै यज्ञः। श० १।१।१।२२॥ २।३।१।१८॥ ४।४।५।१९॥
,, वैराजो यज्ञः। गो० पू० ४।२४॥ गो० उ० ६।१५॥
,, विराड् वाऽ अग्निष्टोमः। कौ० १५।२॥
,, वैराजः सोमः। कौ० ६।६॥ श० ३।३।२।१७॥ ३।९।४।१६॥

विराट् विराड् वरुणस्य पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥

„ अथैतद्वामे ऽक्षणि पुरुषरूपम् । एषास्य (दक्षिणे ऽक्षणि वर्त्तमानस्येन्द्राख्यस्य पुरुषस्य) पत्नी विराट् । श० १४।६।११।३॥

„ सा (विराट्) तत ऊर्ध्वारोहत् । सा रोहिण्यभवत् । तै० १ । १ । १० । ६ ॥

„ विराट् सृष्टा प्रजापतेः । ऊर्ध्वारोहद्रोहिणी । योनिरग्नेः प्रतिष्ठितिः । तै० १ । २ । २ । २७ ॥

„ सर्वदेवत्यं वा एतच्छन्दो यद्विराट् । श० १३ । ४ । ६ । १३ ॥

„ सत् (उत्कृष्टमिति सायणः) विराट् छन्दसाम् । तां०१५।१२।२।

„ विराट् छन्दसां (सत्) । तां० ४ । ८ । १० ॥

„ विराड् वै छन्दसां ज्योतिः तां० ६ । ३ । ६ ॥

„ विराड्ढि छन्दसां ज्योतिः । तां० १० । २ । २ ॥

„ विराजो वा एतद्रूपं यदक्षरम् । तां० ८ । ६ । १४ ॥

„ दशाक्षरा वै विराट् । श० १ । १ । १ । २२ ॥

„ दशाक्षरा विराट् । ऐ० ६ । २० ॥ गो० पू० ४ । २४ ॥ गो० उ० १ । १८ ॥ ६ । २, १५ ॥ तां० ३ । १३ । ३ ॥

„ दशदशिनी विराट् । कौ० २ । ३ ॥ १७ । ३ ॥ १६ । ५, ७ ॥

„ दश च ह वै चतुर्विराजो ऽक्षराणि । गो० पू० ५ । २० ॥

„ त्रिंशदक्षरा वै विराट् । ऐ० ४ । १६ ॥ ८ । ४ ॥ श० ३ । ५ । १ । ७॥

„ त्रिंꣳशदक्षरा विराट् । तै० ३ । ८ । १० । ४ ॥ तां० १० । ३ । १२ ॥ तै० १ । ६ । ३ । ४ ॥

„ सा विराट् त्रयस्त्रिंशदक्षरा भवति । ऐ० २ । ३७ ॥

„ त्रयस्त्रिंशदक्षरा वै विराट् । कौ० १४ । २ ॥ १८ । ५ ॥ श० ३ । ५ । १ । ८ ॥

„ एषा वै परमा विराट् यच्चत्वारिꣳशद्रात्रयः पङ्क्तिर्वै परमा विराट् । तां० २४ । १० । २ ॥

„ सहस्राक्षरा वै परमा विराट् । तां० २५ । ९ । ४ ॥

„ विराड् वाऽ अनाधृष्टं छन्दः (यजु० १४।९) । श० ८।२।४।४॥

„ स (प्रजापतिः) पुरुषमेधेनेष्ट्वा विराडिति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥

विराट् बृहद्विराट् । तै० १ । ४ । ४ । ९ ॥

विरोचनः प्रह्लादो ह वै कायाधवो विरोचनꣳ स्वं पुत्रमपन्यधत्त । नेदेनं देवा अहनन्निति । तै० १ । ५ । ९ । १ ॥

,, प्रह्लादो वै कायाधवः विरोचनं स्वं पुत्रमुदास्यत् । स प्रदरो ऽभवत् । तै० १ । ५ । १० । ७ ॥

विलम्बसौपर्णम् (साम) यदन्तरात्मा पक्षौ विलम्बते तस्माद्विलम्ब-सौपर्णम् । तां० १४ । ९ । २० ॥

विवधश्छन्दः (यजु० १५।५) अन्तरिक्षं वै विवधश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

विवर्तो ऽष्टाचत्वारिंशः (यजु० १४ । २३) संवत्सरो वाव विवर्तो ऽष्टाचत्वारिꣳशस्तस्य षड्विꣳशतिरर्धमासास्त्रयोदश मासाः सप्तऽर्तवो द्वे अहोरात्रे तद्यत्तमाह विवर्त इति संवत्सराद्धि सर्वाणि भूतानि विवर्तन्ते । श० ८ । ४ । १ । २५ ॥

विवलं छन्दः (यजु० १४ । ९) एकपदा वै विवलं छन्दः । श० ८ । २ । ४ । १ ॥

विवस्वान् असौ वाऽ आदित्यो विवस्वानेष ह्यहोरात्रे विवस्ते तमेष वस्ते सर्वतो ह्येनेन परिवृतः । श० १० । ५ । २ । ४ ॥

,, विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथः । श० ४ । ३ । ५ । १८ ॥

,, (देवा आदित्याः) यं (मार्तण्डं) उ ह तद्विचक्रुः, स विवस्वानादित्यस्तस्येमाः प्रजाः । श० ३ । १ । ३ । ४ ॥

विवाहः तस्मादु समानादेव पुरुषादत्ता (=भर्त्ता) चाद्यः (=भार्य्या) च जायेतेऽइदꣳ हि चतुर्थे पुरुषे तृतीये सङ्गच्छामहऽ इति विदेवं दीव्यमाना जात्याऽआसते । श० १ । ८ । ३ । ६ ॥

,, सा (सुकन्या) होवाच यस्मै मां पितादान्नैवाहं तं जीवन्तꣳ हास्यामीति । श० ४ । १ । ५ । ९ ॥

विशः यज्ञो वै विशो यज्ञे हि सर्वाणि भूतानि विष्टानि । श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥

,, (यजु० ३८ । १९) यज्ञो वै विट् । श० १३ । ३ । १ । ९ ॥

,, विडुक्थानि । तां० १८ । ८ । ६ ॥ १९ । १६ । ६ ॥

,, विट् शस्त्रम् । ष० १ । ४ ॥

विशः विट् सूक्तम् । ऐ० २ । ३३ ॥ ३ । १२ ॥
,, विशो ग्रावाणः । श० ३ । ९ । ३ । ३ ॥
,, विड्वै ग्रावानः । तां० ६ । ६ १ ॥
,, विड् वै गभः । श० १३ । २ । ९ । ६ ॥ तै० ३ । ९ । ७ । ३ ५ ॥
,, विड्वै शकुन्तिका (यजु० २३ । २२) । श० १३ । २ । ९ । ६ ॥
तै० ३ । ९ । ७ । ३ ॥
,, विड्वै हरिणी । तै० ३ । ९ । ७ । २ ॥
,, विशो विश्वे देवाः । श० २ । ४ । ३ । ६ ॥ ३ । २ । १ । १६ ॥
,, विशो वै विश्वे देवाः । श० ५ । ५ । १ । १० ॥
,, विशो वै पस्त्याः । श० ५ । ३ । ५ । १९ ॥ ५ । ४ । ४ । ५ ॥
,, विशो वै सूच्यः । श० १३ । २ । १० । २ ॥
,, विशो होत्राशंसिनः । ऐ० ६ । २१ ॥ गो० उ० ६ । ३ ॥
,, विट् सप्तदशः । तां० १८ । १० । ९ ॥
,, विड् वै सप्तदशः । तां० २ । ७ । ५ ॥ २ । १० । ४ ॥
,, विशः सप्तदशः । ऐ० ८ । ४ ॥
,, वर्षाभिर्ऋतुनादित्याः स्तोमे सप्तदशे स्तुतं वैरूपेण विशौजसा ।
तै० २ । ६ । १९ । १—२ ॥
,, राष्ट्राणि वै विशः । ऐ० ८ । २६ ॥
,, विट् सुरा । श० १२ । ७ । ३ । ८ ॥
,, आद्या हीमाः प्रजा विशः । श० ४ । २ । १ । १७ ॥
,, अन्नं वै विशः । श० ४ । ३ । ३ । १२ ॥ ५ । १ । ३ । ३ ॥ ६ ।
७ । ३ । ७ ॥
,, अन्नं विशः । श० २ । १ । ३ । ८ ॥
,, अन्नं वै क्षत्रियस्य विट् । श० ३ । ३ । २ । ८ ॥
,, तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः । श० १३ । २ । ९ । ६ ॥
,, तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति । श० १३ । २ । ९ । ८ ॥
,, दैव्यो वाऽ एता विशो यत्पशवः । श० ३ । ७ । ३ । ९ ॥
,, अपरजना ह वै विशो ऽदेवीः । गो० उ० ६ । १६ ॥
,, क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतरं बर्हिः । श० १ । ३ । ४ । १० ॥
,, तस्माद् ब्रह्म च क्षत्रं च विशि प्रतिष्ठिते । श० ११ । २ । ७ । १६ ॥

विशः स्वरिति (प्रजापतिः) विशम् (अजनयत)। श० २। १।४।१२॥

,, स विशमसृजत यान्येतानि देवजातानि गणश आख्यायन्ते वसवो रुद्रा आदित्या विश्वे देवा मरुत इति। श० १४।४।२।२४॥

,, पूषा विशां विट्पतिः। तै० २। ५। ७। ४॥

,, तस्याः (विशः) राजा गर्भः। तां० २। ७। ५॥

,, अहुतादो वै विशः। श० २। ५। २। २४॥

,, भूमो वै विट्। श० ३। ६। १। १७॥

,, अनिरुक्तेव हि विद्। श० ९। ३। १। १५॥

विशाखे (=नक्षत्रविशेषः) इन्द्राग्नियोर्विशाखे। तै० १। ५। १। ३॥

,, नक्षत्राणामधिपत्नी विशाखे। श्रेष्ठाविन्द्राग्नी भुवनस्य गोपौ। तै० ३। १। १। ११॥

,, (प्रजापतेर्नक्षत्रियस्य) ऊरू विशाखे। तै० १। ५। २। २॥

विशालं छन्दः (यजु० १५। ५) अयं वै (पृथिवी-)लोको विशालं छन्दः। श० ८। ५। २। ६॥

,, (यजु० १४। ९) द्विपदा वै विशालं छन्दः। श० ८। २। ४। २॥

विशोविशीयम् (साम) अग्निरकामयत विशो विशो ऽतिथिः स्यां विशो विश आतिथ्यमश्नुवीयेति स तपो ऽतप्यत स एतद्विशोविशीयमपश्यत्तेन विशो विशो ऽतिथिरभवत् विशो विश आतिथ्यमाश्नुत विशो विशो ऽतिथिर्भवति विशो विश आतिथ्यमश्नुते विशोविशीयेन तुष्टुवानः। तां० १४। ११। ३७॥

विश्वकर्मा अथो विश्वकर्मणे। विश्वं वै तेषां कर्म्म कृतं सर्वं जितं भवति ये संवत्सरमासते। श० ४। ६। ४। ५॥

,, (यजु० १३। ५८) वाग्वै विश्वकर्मऽर्षिर्वाचा हीदꣳ सर्वं कृतम्। श० ८। १। २। ९॥

,, (यजु० १३। १६॥ १४। ५, ९) प्रजापतिर्वै विश्वकर्मा। श० ७। ४। २। ५॥ ८। २। १। १०॥ ८। २। ३। १३॥

,, संवत्सरो विश्वकर्मा। ऐ० ४। २२॥

,, असौ वै विश्वकर्म्मा यो ऽसौ (सूर्य्यः) तपति। कौ० ५। ५॥ गो० उ० १। २३॥

विश्वकर्मा विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पातु। श० ३।५।२।७॥
,, असौ (द्यौः) विश्वकर्म्मा। तै० ३।२।३।७॥
,, तस्य (इन्द्रस्य) असौ (द्यु-)लोको नाभिजित आसीत्तं (इन्द्रः) विश्वकर्म्मा भूत्वाभ्यजयत्। तै० १।२।३।३॥
,, इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा विश्वकर्मा ऽभवत्प्रजापतिः प्रजाः सृष्ट्वा विश्वकर्मा ऽभवत्। ऐ० ४।२२॥
,, विश्वकर्मायमग्निः। श० ९।२।२।२॥ ६।५।१।४२॥
,, (यजु० १३।५५॥ १५।१६) अयं वै वायुर्विश्वकर्मा यो ऽयं पवतऽ एष हीदꣳ सर्वं करोति। श० ८।१।१।७॥ ८।६।१।१७॥
,, वैश्वकर्मण एककपालः पुरोडाशो भवति विश्वं वा एतत्कर्म कृतꣳ सर्वं जितं देवानामासीत्साकमेधैरीजानानां विजिग्यानानाम्। श० २।५।४।१०॥
,, (प्रजापतिः) वैश्वकर्मणं पुरुषं (आलिप्सत)। श० ६।२।१।५॥

विश्वजित (यज्ञः) (देवाः) विश्वजिता विश्वमजयन्। तां० २२।८।५॥
,, विश्वजिता वै प्रजापतिः सर्वाः प्रजा अजनयत्सर्वमुदजयत्तस्माद्विश्वजित्। कौ० २५।१३॥
,, एष ह प्रजानां प्रजापतिर्यद्विश्वजित्। गो० पू० ५।१०॥
,, प्रजापतिर्विश्वजित्। कौ० २५।११, १२, १५॥
,, ततो वा इदमिन्द्रो विश्वमजयद्यद्विश्वमजयत्तस्माद्विश्वजित्। तां० १६।४।५॥
,, इन्द्रो विश्वजिदिन्द्रो हीदं सर्वं विश्वमजयत्। कौ० २४।१॥
,, अथ यद्विश्वजितमुपयन्ति। इन्द्रमेव देवतां यजन्ते। श० १२।१।३।१५॥
,, सर्वं विश्वजित्। कौ० २५।१४॥
,, सर्वं वै विश्वजित्। श० १०।२।५।१६॥
,, स वा एष विश्वजियः सहस्रसंवत्सरस्य प्रतिमा गो० पू० ५।१०॥
,, एकाहो वै विश्वजित्। कौ० २५।११

विश्वजित् स कृत्स्नो विश्वजिद्यो ऽतिरात्रः । कौ० २५ । १४ ॥

,, चकवािन्वा एष (विश्वजित्) यज्ञः कामाय । तां० १६ । १५ । ४॥

विश्वज्योतिः (उक्थ्यः साहस्र एकाहः) पशवो वा उक्थानि पशवो विश्वं ज्योतिर्विश्व एव ज्योतौ पशुषु प्रतितिष्ठति । तां० १६ । १० । २ ॥

,, (इष्टका) एता ह्येव देवताः (अग्निः, वायुः, आदित्यः) विश्वं ज्योतिः । श० ६ । ३ । ३ । १६ ॥ ६ । ५ । ३ । ३ ॥

,, अग्निर्वै प्रथमा विश्वज्योतिः । श० ७ । ४ । २ । २५ ॥

,, वायुर्वै मध्यमा विश्वज्योतिः । श० ८ । ३ । २ । १ ॥

,, प्राणो वै विश्वज्योतिः । श० ७ । ४ । २ । २८ ॥ ८ । ३ । २ । ४ ॥ ८ । ७ । १ । २२ ॥

,, प्रजा वै विश्वज्योतिः । श० ७ । ४ । २ । २६ ॥ ८ । ३ । २ । २ ॥

,, प्रजा वै विश्वज्योतिः प्रजा ह्येव विश्वं ज्योतिः । श० ६ । ५ । ३ । ५ ॥

,, कीकसा विश्वज्योतिः । श० ७ । ५ । १ । ३५ ॥

विश्वधायाः (यजु० १३ । १८) (=पृथिवी) अस्याᳫं ह्रीदᳫं सर्वᳫं हितम् । श० ७ । ४ । २ । ७ ॥

,, वृष्टिर्वै विश्वधायाः । तै० ३ । २ । ३ । २ ॥

विश्वप्रीः (अनुवाकः) सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वा इति विश्वप्रीः । तै० ३ । ११ । ९ । ९ ॥

विश्वम् यद्वै विश्वᳫं सर्वं तत् । श० ३ । १ । २ । ११ ॥

,, तदन्नं वै विश्वम्प्राणो मित्रम् । जै० उ० ३ । ३ । ६ ॥

विश्वरूपः त्वष्टुर्ह वै पुत्रः । त्रिशीर्षा षडक्ष आस तस्य त्रीण्येव मुखान्यासुस्तद्यदेवᳫंरूप आस तस्माद्विश्वरूपो नाम । श० १ । ६ । ३ । १ ॥ ५ । ५ । ४ । २ ॥

,, तस्य (विश्वरूपस्य) सोमपानमेवैकं मुखमास । सुरापाणमेकमन्यस्मा ऽ अशनायैकं तमिन्द्रो दिद्वेष तस्य तानि शीर्षाणि प्रचिच्छेद । श० १ । ६ । ३ । २ ॥

,, स (इन्द्रः) यत्र त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रं विश्वरूपं जघान । श० १ । २ । ३ । २ ॥

विश्वरूपी (=कामधेनुः) इयं (पृथिवी) वै देव्यदितिर्विश्वरूपी (विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु—अथर्व० ४। ३४। ८॥ विश्वरूपा धेनुः कामदुघा ऽस्येका—अथर्व० ९। ५। १०॥ पश्चिमा वारुणी दिक् च धार्यते वै सुभद्रया। महानुभावया नित्यं मातले विश्वरूपया॥ सर्वकामदुघा नामधेनुर्धारयत दिशम्। उत्तरां मातले धर्म्यां तथैलविलसंज्ञिताम्॥ इति महाभारते उद्योगपर्वणि १०२। ९—१०॥ अथर्ववेदे १२। १। ६१॥ पृथिवीसूक्ते—त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघा पप्रथाना……अत्र पृथिवी=कामदुघा)। तै० १। ७। ६। ७॥ 'शबली' 'विराट्' इत्येतावपि शब्दौ पश्यत॥

विश्वव्यचाः (यजु० १३। ५६॥ १५। १७) असौ वाऽ आदित्यो विश्वव्यचा यदा ह्येवैष उदेत्यथेदꣳ सर्वं व्यचो भवति। श० ८। १। २। १॥ ८। ६। १। १८॥

„ (यजु० १८। ४१॥ वातः॥) एष (वातः) हीदꣳ सर्वं व्यचः करोति। श० ९। ४। १। १०॥

„ अन्तरिक्षं विश्वव्यचाः। तै० ३। २। ३। ७॥

विश्वसृजः एतेन (सहस्रसंवत्सरसत्रेण) विश्वसृज इदं विश्वमसृजन्त। यद्विश्वमसृजन्त। तस्माद्विश्वसृजः (='तपः' 'ब्रह्म' 'सत्यम्' इत्येवमादयः)। तै० ३। १२। ६। ८॥

„ यद्विश्वमसृजन्त तस्माद्विश्वसृजः ('तपः' 'ब्रह्म' 'इरा' 'अमृतम्' इत्येवमादयः)। तां० २५। १८। २॥

„ (विश्वसृजो दश—अथर्व० ११। ९। ४॥ मनुस्मृतौ १। ३४—३५:—अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्। पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश। मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्। प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च॥)

„ सत्यꣳ ह होतैषामासीत् यद्विश्वसृज आसत। तै० ३। १२। ९। ३॥

विश्वाची (अप्सराः=वेदिः । यजु० १७ । ५९) विश्वाचीरभिचष्टे घृताची-
रिति स्रुचश्चैतद्वेदीश्चाह । श० ९ । २ । ३ । १७ ॥

" (यजु० १५ । १८) वेदिरेव विश्वाची । श० ८ । ६ । १ । १९॥

विश्वानि धामानि (यजु० ४ । ३४) अङ्गानि वै विश्वानि धामानि ।
श० ३ । ३ । ४ । १४ ॥

विश्वामित्रः विश्वस्य ह वै मित्रं विश्वामित्र आस विश्वं हास्मै
मित्रं भवति य एवं वेद । ऐ० ६ । २०, २१ ॥

" (यजु० १३ । ५७) श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिर्यदेनेन सर्वतः
शृणोत्यथो यदस्मै सर्वतो मित्रं भवति तस्माच्छ्रोत्रं
विश्वामित्र ऋषिः । श० ८ । १ । २ । ६ ॥

" तदन्नं वै विश्वस्प्राणो मित्रम् । जै० उ० ३ । ३ । ६ ॥

" वाग्वै विश्वामित्रः । कौ० १० । ५ ॥ १५ । १ ॥ २६ । ३ ॥

" जन्हुवृचीवन्तो (? ='जह्नोः पुत्रा ऋचीवन्नामाकाः' इति
सायणः) राष्ट्र आहिंसन्त स विश्वामित्रो जाह्नवो राजे-
तम् (चतूरात्रम्) अपश्यत् स राष्ट्रमभवदराष्ट्रमितरे ।
तां० २१ । १२ । २ ॥

विश्वायुः इयं (पृथिवी) वै विश्वायुः । तै० ३ । २ । ३ । ७ ॥

विश्वा सद्मानि (यजु० १२ । १३) इमे वै लोका विश्वा सद्मानि । श०
६ । ७ । ३ । १० ॥

विश्वे देवाः एते वै सर्वे देवा यद्विश्वे देवाः । कौ० ४ । १४ ॥ ५ । २ ॥

" एते वै विश्वे देवा यत्सर्वे देवाः । गो० उ० १ । २० ॥

" यदस्मिन्विश्वे देवा असीदंस्तस्मात्सदो नाम तऽ उऽएवा-
स्मिन्नेते ब्राह्मणा विश्वगोत्राः सीदन्ति । श० ३ । ५ । ३ ।
५ ॥ ३ । ६ । १ । १ ॥

" रश्मयो ह्यस्य (सूर्यस्य) विश्वे देवाः । श० ३ । ९ । २ ।
६, १२ ॥

" तस्य (सूर्यस्य) ये रश्मयस्ते विश्वे देवाः । श० ४ । ३ ।
१ । २६ ॥

" एते वै विश्वे देवा रश्मयः । श० २ । ३ । १ । ७ ॥

" एते वै रश्मयो विश्वे देवाः । श० १२ । ४ । ४ । ६ ॥

विश्वे देवाः प्राणा वै विश्वे देवाः (यजु० ३८ । १५) । श० १४ । २ । २ । ३७ ॥

,, ऋतवो वै विश्वे देवाः (यजु० १२ । ६१) । श० ७ । १ । १ । ४३ ॥

,, इन्द्राग्नी वै विश्वे देवाः । श० २ । ४ । ४ । १३ ॥

,, इन्द्राग्नी हि विश्वे देवाः । श० ३ । ९ । २ । १४ ॥

,, अथ यदेनं (अग्निम्) एकं सन्तं बहुधा विहरन्ति तदस्य वैश्वदेवं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥

,, श्रोत्रं विश्वे देवाः । श० ३ । २ । २ । १३ ॥

,, ता (दिशः) उ एव विश्वे देवाः । जै० उ० २ । २ । ४ ॥ २ । ११ । ५ ॥

,, स (प्रजापतिः) विश्वान्देवानसृजत तान्दिक्षूपादधात् । श० ६ । १ । २ । ९ ॥

,, 'विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ('ध्रुवासि दिशोसि' यजु० ११ । ५८) इति दिशो हैतद्यजुरेतद्वै विश्वे देवा वैश्वानरा एषु लोकेषूखायामेतेन चतुर्थेन यजुषा दिशोऽदधुः । श० ६ । ५ । २ । ६ ।

,, विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् (यजु० ११ । ६०) । श० ६ । ५ । ३ । १० ॥

,, विश्वे देवा उपद्रवः । जै० उ० १ । ५८ । ९ ॥

,, वैश्वदेवो वै पूतभृत् । श० ४ । ४ । १ । १२ ॥

,, तस्य (प्रजापतेः) विश्वे देवाः पुत्राः । श० ६ । ३ । १ । १७ ॥

,, वैश्वदेवो हि वैश्यः । तै० २ । ७ । २ । २ ॥

,, विड् विश्वे देवाः । श० १० । ४ । १ । ९ ॥

,, विशो विश्वे देवाः । श० २ । ४ । ३ । ६ ॥ ३ । ९ । १ । १६ ॥

,, विशो वै विश्वे देवाः । श० ५ । ५ । १ । १० ॥

,, वैश्वदेव्यो वै प्रजाः । तै० १ । ६ । २ । ५ ॥ १ । ७ । १० । २ ॥

,, तान् (पशून्) विश्वे देवाः सप्तदशेन स्तोमेन नाप्नुवन् । तै० २ । ७ । १४ । २ ॥

,, पशवो वै वैश्वदेवम् (शस्त्रम्) । कौ० १६ । ३ ॥

विश्वे देवाः वैश्वदेवो वाऽ अश्वः । श० १३ । २ । ५ । ४ ॥ तै० ३ । ९ । २ । ४ ॥ ३ । ९ । ११ । १ ॥

" वैश्वदेवी वै गौः । गो० उ० ३ । १९ ॥

" वैश्वदेवं वा अन्नम् । तै० १ । ६ । १ । १० ॥

" विश्वेषां वा एतद्देवानाꣳ रूपम् । यत्करम्भाः । तै० ३ । ८ । १४ । ४ ॥

" सर्वमिदं विश्वे देवाः । श० ३ । ९ । १ । १४ ॥ ४ । ४ । १ । ९, १८ ॥

" सर्वे वै विश्वे देवाः । श० १ । ७ । ४ । २२ ॥ ३ । ९ । १ । १३ ॥ ४ । २ । २ । ३ ॥ ५ । ५ । २ । १० ॥

" विश्वे देवा एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

" अनन्ता विश्वे देवाः । श० १४ । ६ । १ । ११ ॥

" विश्वे वै देवा देवानां यशस्वितमाः । श० १३ । १ । २ । ८ ॥ तै० ३ । ८ । ७ । २ ॥

" बृहस्पतिर्विश्वैर्देवैः (उदक्रामत्) । ऐ० १ । २४ ॥

" वैश्वदेवानि ह्यङ्गानि । ऐ० ३ । २ ॥

" ते (विश्वे देवाः) अब्रुवन्वैश्वदेवं साम्नो वृणीमहै प्रजननमिति । जै० उ० १ । ५२ । २ ॥

" वैश्वदेवौ वाऽ अभ्भृणावतो हि देवेभ्य उन्नयन्त्यतो मनुष्येभ्यो ऽतः पितृभ्यः । श० ४ । ५ । ६ । ३ ॥

" अथ यद्दशरात्रमुपयन्ति । विश्वानेव देवान्देवतां यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । १७ ॥

" वैश्वदेवो द्वादशकपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥

" विश्वे देवा द्वादशकपालेन तृतीयसवने (आदित्यमभिषज्यन्) । तै० १ । ५ । ११ । ३ ॥

" वैश्वदेवं वै तृतीयसवनम् । ऐ० ६ । १५ ॥ श० १ । ७ । ३ । १६ ॥ ४ । ४ । १ । ११ ॥ जै० उ० १ । ३९ । ४ ॥

" अथ यां वीङ्खयन्निव प्रथयन्निव गायति सा वैश्वदेवी (आगा) । तया तृतीयसवनस्योद्गेयम् । जै० उ० १ । ३७ । ४ ॥

" अथैनं (इन्द्रं) उदीच्यां दिशि विश्वे देवाः .....अभ्यषिञ्चन् वैराज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥

विश्वे देवाः विश्वे त्वा देवा उत्तरतो ऽभिषिञ्चन्त्वानुष्टुभेन छन्दसा। तै० २ । ७ । १५ । ५ ॥

,, विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा । श० ५ । २ । ४ । ५ ॥

विषम् यवमात्रं वै विषस्य न हिनस्ति । गो० उ० १ । ३ ॥

विषुवान् देवलोको वा एष यद्विषुवान् । तां० ४ । ६ । २ ॥

,, विषुवान्वै पञ्चममहः । तां० १३ । ४ । १६ ॥ १३ । ५ । १० ॥

,, आत्मा वा एष संवत्सरस्य यद्विषुवान् । तां० ४ । ७ । १ ॥

,, आत्मा वै संवत्सरस्य विषुवानङ्गानि मासाः । श० १२ । २ । ३ । ६ ॥

,, आत्मा वै संवत्सरस्य विषुवानङ्गानि पक्षौ (दक्षिणः पक्ष उत्तरः पक्षश्च)। गो० पू० ४ । १८ ॥

,, एतच्छिरो यज्ञस्य यद्विषुवान् । कौ० २६ । १ ॥

,, अथ यद्विषुवन्तमुपयन्ति । आदित्यमेव देवतां यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । १४ ॥

विष्टम्भः (यजु० १४ । ९) प्रजापतिर्वै विष्टम्भः । श० ८ । २ । ३ । १२ ॥

विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः (यजु० १५ । ४) दिशो वै विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

विष्णुः तद्यदेवेदं क्रीतो विशतीव तदु हास्य (सोमस्य) वैष्णवं रूपम्। कौ० ८ । २ ॥

,, यो वै विष्णुः स यज्ञः । श० ५ । २ । ३ । ६ ॥

,, विष्णुर्यज्ञः । गो० उ० १ । १२ ॥ तै० ३ । ३ । ७ । ६ ॥

,, विष्णुर्वै यज्ञः । ऐ० १ । १५ ॥

,, 'पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ' (यजु० १ । १२) इति यज्ञो वै विष्णुर्यज्ञिये स्थ इत्येवैतदाह । श० १ । १ । ३ । १ ॥

,, (यजु० २२ । २०) यज्ञो वै विष्णुः । श० १३ । १ । ८ । ८ ॥

,, यज्ञो वै विष्णुः । कौ० ४ । २ ॥ १८ । ८, १४ ॥ तां० ९ । ६।१०॥ श० १ । १ । २ । १३ ॥ ३ । २ । १ । ३८ ॥ गो० उ० ४ । ६ ॥ तै० १ । २ । ५ । १ ॥

,, यज्ञो वै विष्णुः शिपिविष्टः । तां० ६ । ७ । १० ॥

विष्णुः यशो वै वैष्णुवारुणः । कौ० १६ । ८ ॥

,, यज्ञो विष्णुः । श० १ । १ । २ । १३ ॥ तां० १३ । ३ । २ ॥ गो० उ० ६ । ७ ॥

,, विष्णवे हि गृह्णाति यो यज्ञाय (हविः) गृह्णाति । श० ३ । ५ । १ । १४॥

,, अथेमं विष्णुं यज्ञं त्रेधा व्यभजन्त । वसवः प्रातःसवनꣳ रुद्रा माध्यन्दिनꣳ सवनमादित्यास्तृतीयसवनम् । श० १४ । १ । १ । १५ ॥

,, (=आदित्यः)स यः स विष्णुर्यज्ञः स । स यः स यज्ञो ऽसौ स आदित्यः । श० १४ । १ । १ । ६ ॥

,, स उ एव मखः स विष्णुः । श० १४ । १ । १ । १३ ॥

,, (प्रजापतिः) यजुर्भ्यो ऽधि विष्णुं (असृजत)। तद्विष्णुं यज्ञ आर्च्छत् । तं (विष्णुं) आलभत । विष्णोरध्योपधीरसृजत । तै० २ । ३ । २ । ४ ॥

,, यजूꣳषि विष्णुः (स्वभागरूपेणाभजत) । श० ४ । ६ । ७ । ३ ॥

,, यो वै विष्णुः सोमः सः । श० ३ । ३ । ४ । २१ ॥ ३ । ६ । ३ । १९ ॥

,, जुष्टा विष्णव इति । जुष्टा सोमायेत्यैवैतदाह (विष्णुः=सोमः) । श० ३ । २ । ४ । १२ ॥

,, यत्तदन्नमेष स विष्णुर्देवता । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥

,, वीर्यं विष्णुः । तै० १ । ७ । २ । २ ॥

,, प्रादेशमात्रो वै गर्भो विष्णुः । श० ६ । ५ । २ । ८ ॥ ६ । ६ । २ । १२॥ ७ । ५ । १ । १४ ॥

,, अग्निर्वा ऽ अहः सोमो रात्रिरथ यदन्तरेण (अह्नो रात्रेश्च यो ऽन्तरालः कालः) तद्विष्णुः । श० ३ । ४ । ४ । १५ ॥

,, यदह दीक्षते तद्विष्णुर्भवति । श० ३ । २ । १ । १७ ॥

,, विष्णुः सर्वा देवताः । ऐ० १ । १ ॥

,, तस्मादाहुर्विष्णुर्देवानाꣳ श्रेष्ठ इति । श० १४ । १ । १ । ५ ॥

,, अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमः । ऐ० १ । १ ॥

,, अन्तो विष्णुर्देवतानाम् । तां० २१ । ४ । ६ ॥

,, अग्निर्वै देवानामवरार्ध्यो विष्णुः परार्ध्यः । कौ० ७ । १ ॥

,, अग्निर्वै यज्ञस्यावरार्ध्यो विष्णुः परार्ध्यः । श० ५ । २ । ३ । ६ ॥

,, एते वै यज्ञस्यान्त्ये तन्वौ यदग्निश्च विष्णुश्च । ऐ० १ । १ ॥

विष्णुः अग्नाविष्णू वै देवानामन्तभाजौ । कौ० १६ । ८ ॥

,, आग्नावैष्णवमेकादशकपालं पुरोडाशं निर्वपति । श० ३ । १ । ३ । १ ॥ ५ । २ । ३ । ६ ॥

,, यज्ञो विष्णुः स देवेभ्य इमां विक्रान्ति विचक्रमे यैषामियं विक्रान्तिरिदमेव प्रथमेन पदेन पस्पाराथेदमन्तरिक्षं द्वितीयेन दिवमुत्तमेन । श० १ । ९ । ३ । ९ ॥

,, यज्ञो वै विष्णुः स देवेभ्य इमां विक्रान्ति विचक्रमे यैषामियं विक्रान्तिरिदमेव प्रथमेन पदेन पस्पाराथेदमन्तरिक्षं द्वितीयेन दिवमुत्तमेनैताम्वेवैष एतस्मै विष्णुर्यज्ञो विक्रान्ति विक्रमते । श० १ । १ । २ । १३ ॥

,, इमे वै लोका विष्णोर्विक्रमणं विष्णोर्विक्रान्तं विष्णोः क्रान्तम् । श० ५ । ४ । २ । ६ ॥

,, स (विष्णुः) इमाँल्लोकान्विचक्रमेऽथो वेदानथो वाचम् । ऐ० ६ । १५ ॥

,, वामनो ह विष्णुरास (विष्णुपुराणे ३ । १ । ४२-४३ :-मन्वन्तरे तु संप्राप्ते तथा वैवस्वते द्विज । वामनः कश्यपाद्विष्णुरदित्यां संबभूव ह ॥ त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकाञ्जित्वा येन महात्मना । पुरन्दराय त्रैलोक्यं दत्तं निहतकंटकम् ॥) । श० १ । २ । ५ । ५ ॥

,, स हि वैष्णवो यद्वामनः (गौः) । श० ५ । २ । ५ । ४ ॥

,, वैष्णवं वामनं (पशुं) आलभन्ते । तै० १ । २ । ५ । १ ॥

,, वैष्णवो वामनः (पशुः) । श० १३ । २ । २ । ९ ॥

,, चक्रपाणये (विष्णवे) स्वाहा । ष० ५ । १० ॥

,, विष्णुर्वै देवानां द्वारपः । ऐ० १ । ३० ॥

,, विष्णवाशानां पते । तै० ३ । ११ । ४ । १ ॥

,, तस्य (विष्णोः) उपपरासृत्य । (वम्र्यः) ज्यामपिजक्षुस्तस्यां छिन्नायां धनुरार्त्न्यौ विष्फुरन्त्यौ विष्णोः शिरः प्रचिच्छिदतुः (विष्णोर्हयग्रीवावतारकथा :—देवीभागवते १ । ५ । १९, २५, २६, ३०, ४२ ॥ १ । ६ । ८—९ ॥ हयशिरा विष्णुः—नीलकंठीयटीकायुते महाभारते शान्तिपर्वणि, ३४७ । ४८ ॥) । श० १४ । १ । १ । ९ ॥

विष्णुः तस्य (मखस्य=विष्णोः) धनुरार्त्निरूर्द्ध्वा पतित्वा शिरो ऽछिनत्स प्रवर्ग्यो ऽभवत् । तां० ७ । ५ । ६ ॥

,, (दध्यङ्ङाथर्वणः) तौ (अश्विनौ) ह (छिन्नस्य विष्णुशिरसः पुनःसन्धानविद्याऽध्यापनार्थं) उपनिन्ये तौ यदोपनिन्ये ऽथास्य (दधीच आथर्वणस्य) शिरश्छित्वान्यत्रापनिदधतुरथाश्वस्य शिर आहृत्य तद्धास्य प्रतिदधतुः । श० १४ । १ । १ । २४ ॥

,, विष्णुर्वै यज्ञस्य दुरिष्टं पाति । ऐ० ३ । ३८ ॥ ७ । ५ ॥

,, पङ्क्तिर्विष्णोः पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥

,, शृण्वन्ति श्रोणाममृतस्य गोपां ।......मह्रीं देवीं विष्णुपत्नीमजूर्याम् । तै० ३ । १ । २ । ५-६ ॥

,, विष्णोः श्रोणा (=श्रवणनक्षत्रमिति सायणः) । तै० १ । ५ । १ । ४ ॥

,, यच्छ्रोत्रं स विष्णुः । गो० उ० ४ । ११ ॥

,, वैष्णवाः पुरुषाः । श० ५ । २ । ५ । २ ॥

,, वैष्णवो हि यूपः । श० ३ । ६ । ४ । १ ॥

,, वैष्णवस्त्रिकपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥

,, अथ यद्वैष्णवः । त्रिकपालो वा पुरोडाशो भवति चरुर्वा । श० ५ । २ । ५ । ४ ॥

,, तान् (पशून्) विष्णुरेकविंशेन स्तोमेनाप्नोत् । तै० २ । ७ । १४ । ५ ॥

,, (उपसद्देवतारूपाया इषोः) विष्णुस्तेजनम् । ऐ० १ । २५ ॥

,, तथैवैतद्यजमानो विष्णुर्भूत्वेमांल्लोकान् क्रमते । स यः स विष्णुर्यज्ञः सः । श० ६ । ७ । २ । १०—११ ॥

,, तद्यदेनेन (यज्ञेन विष्णुना) इमाᳪं सर्वाᳪं (पृथिवीं) समविन्दन्त तस्माद्वेदिर्नाम । श० १ । २ । ५ । ७ ॥

,, यन्वेवात्र विष्णुमन्वविन्दंस्तस्माद्वेदिर्नाम । श० १ । २ । ५ । १० ॥

,, वैष्णवᳪं हि हविर्धानम् । श० ३ । ५ । ३ । १५ ॥

,, या सा द्वितीया (ओङ्कारस्य) मात्रा विष्णुदेवत्या कृष्णा वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद्वैष्णवं पदम् । गो० पू० १ । २५ ॥

विष्णुक्रमाः एतद्वै देवा विष्णुर्भूत्वेमांल्लोकानक्रमन्त यद्विष्णुर्भूत्वाक्रमन्त तस्माद् विष्णुक्रमाः । श० ६ । ७ । २ । १० ॥

,, तद्वाऽ अहोरात्रेऽएव विष्णुक्रमा भवन्ति । श० ६ । ७ । ४ । १० ॥

,, अहर्वै विष्णुक्रमाः । श० ६ । ७ । ४ । १२ ॥

विष्पर्धाश्छन्दः (यजु० १५ । ५) असौ वै (द्यु-) लोको विष्पर्धाश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ६ ॥

विहव्यम (सूक्तम्) जमदग्नेश्च वा ऋषीणाञ्च सोमौ सꣳसुतावास्तां तत एतज्जमदग्निर्विहव्यमपश्यत्तमिन्द्र उपावर्तत यद्विहव्यꣳ होता शंसतीन्द्रमेवैषां वृङ्क्ते । तां० ९ । ४ । १४ ॥

वाङ्कम् (साम) च्यवनो वै दाधीचो ऽश्विनोः प्रिय आसीत्सो ऽजीर्यत्तमेतेन साम्नाप्सु व्यैङ्क्यतान्तं पुनर्युवानमकुरुतां तद्वाव तौ (अश्विनौ) तर्ह्यकामयेतां कामसनि साम वाङ्कं काममेवैतेनावरुन्धे । तां० १४ । ६ । १० ॥

वीणा श्रियै वाऽ एतद्रूपं यद्वीणा । श० १३ । १ । ५ । १ ॥

,, श्रिया वा एतद्रूपम् । यद्वीणा । तै० ३ । ९ । १४ । १ ॥

,, यदा वै पुरुषः श्रियं गच्छति वीणास्मै वाद्यते । श० १३।१।५।१॥

वीतिः (यजु० ११ । ४६) अग्नऽ आयाहि वीतयऽ इत्ययितवऽ इत्येतत् । श० ६ । ४ । ४ । ९ ॥

वीरः (यजु० ४ । २३) पुत्रो वै वीरः । श० ३ । ३ । १ । १२ ॥

,, (वीरता-यजु० ७ । १२) अत्ता हि वीरः । श० ४ । २ । १ । ९ ॥

,, प्राणा वै दश वीराः (यजु० १९ । ४८) । श० १२ । ८ । १ । २२॥

वीर्य्यम् वीर्य्यं विष्णुः । तै० १ । ७ । २ । २ ॥

,, वीर्य्यं वा इन्द्रः । तां० ९ । ७ । ५, ८ ॥ गो० उ० ६ । ७ ॥

,, वीर्यं वा अग्निः । तै० १ । ७ । २ । २॥ गो० उ० ६ । ७ ॥

,, वीर्य्यꣳ षोडशी । श० १२ । २ । २ । ७॥

,, इन्द्रियं वीर्य्यꣳ षोडशी । तां० २१ । ५ । ६ ॥

,, इन्द्रियं वै वीर्य्यं वाजिनम् (ऋ० १० । ७२ । १०) । ऐ० ४।१३॥

,, वीर्यं त्रिष्टुप् । श० ७ । ४ । २ । २४ ॥

,, त्रिष्टुब्वै वीर्यवत्तरः । श० ६ । ६ । २ । १ ॥

वृकः अथ यत्कर्णाभ्यामद्रवत्ततो वृकः समभवत् । श० ५।५।४।१०॥

वृकः मूत्रादेवास्यौजो ऽस्रवत् । स वृको ऽभवदारण्यानां (–नां) पशूनां जूतिः । श० १२ । ७ । १ । ८ ॥

वृक्षस्याग्रम् श्रीर्वै वृक्षस्याग्रम् । तै० ३ । ९ । ७ । ४ ॥

वृत्रः वृत्रो ह वाऽ इदꣳ सर्वं वृत्वा शिश्ये । यदिदमन्तरेण द्यावापृथिवी स यदिदꣳ सर्वं वृत्वा शिश्ये तस्माद् वृत्रो नाम । श० १ । १ । ३ । ४ ॥

,, स यद्वर्त्तमानः समभवत् । तस्माद् वृत्रः । श० १ । ६ । ३ । ९ ॥

,, तथैवैतद्यजमानः पौर्णमासेनैव वृत्रं पाप्मानꣳ हत्वापहतपाप्मैतत्कर्मारभते । श० ६ । २ । २ । १९ ॥

,, पाप्मा वै वृत्रः । श० ११ । १ । ५ । ७ ॥ १३ । ४ । १ । १३ ॥

,, (यजु० ११ । ३३) वृत्रहणं पुरंदरमिति पाप्मा वै वृत्रः पाप्महनं पुरन्दरमित्येतत् । श० ६ । ४ । २ । ३ ॥

,, इन्द्रो वै वृत्रहा । कौ० ४ । ३ ॥

,, वृत्रशङ्कुं दक्षिणतो ऽश्वस्यैवानत्ययाय । श० १३ । ८ । ४ । १ ॥

,, (यजु० १० । ८) त्वयायं वृत्रं बधेदिति त्वयायं द्विषन्तं भ्रातृव्यं बधेदित्येवैतदाह । श० ५ । ३ । ५ । २८ ॥

,, यदिमाः प्रजा अशनमिच्छन्ते ऽस्माऽ एवैतद् वृत्रायोदराय बलिꣳ हरन्ति । श० १ । ६ । ३ । १७ ॥

,, (इन्द्रः) तं (वृत्रं) द्वेधान्वभिनत्तस्य यत्सौम्यं न्यक्तमास तं चन्द्रमसं चकाराथ यदस्यासुर्य्यमास तेनेमाः प्रजा उदरेणाविध्यत् । श० १ । ६ । ३ । १७ ॥

,, वृत्रो वै सोम आसीत् । श० ३ । ४ । ३ । १३ ॥ ३ । ९ । ४ । २ ॥ ४ । २ । ५ । १५ ॥

,, अथैष एव वृत्रो यच्चन्द्रमाः । श० १ । ६ । ४ । १३, १८ ॥

,, वार्त्रघ्नं वै पौर्णमासं (हविः) । इन्द्रो ह्येतेन वृत्रमहन्नथैतदेव वृत्रहत्यं यदामावास्यं (हविः) वृत्रꣳ ह्यस्माऽ एतज्जघ्नुषऽ आप्यायनमकुर्वन् । श० १ । ६ । ४ । १२ ॥

,, महानाम्नीभिर्वा इन्द्रो वृत्रमहन् । कौ० २३ । २ ॥

,, (इन्द्रः) एताभिः (अद्भिः) ह्येनं (वृत्रं) अहन् । श० १ । १ । ३ । ८ ॥

वृत्रः वृत्रतुरः (यजु० ६। ३४) इति वृत्रꣳ ह्येताः (आपः) अघ्नन्। शा० ३। ९। ४। १६॥

,, आपो ह वै वृत्रं जघ्नुस्तेनैवैतद्वीर्येणापः स्यन्दन्ते। शा० ३। ६। ४। १४॥

,, महाहविषा ह वै देवा वृत्रं जघ्नुः। श० २। ५। ४। १॥

,, एतैर्वै (साकमेधैः) देवाः वृत्रमघ्नन्नेतैर्वेव व्यजयन्त येयमेषां विजितिस्ताम्। श० २। ५। ३। १॥

,, (वृत्रस्य वधसमये) महान् घोष आसीत्। तां० १३। ४। १॥

,, अथ (वृत्रः) यदपात्समभवत्तस्मादहिस्तं दनुश्च दनायुश्च मातेव च पितेव च परिजगृहतुस्तस्माद्दानव इत्याहुः। श० १। ६। ३। ९॥

,, तस्य (वृत्रस्य) एतच्छरीरं यद्गिरयो यदश्मानः। श० ३। ४। ३। १३॥ ३। ९। ४। २॥ ४। २। ५। १५॥

,, वृत्रस्य ह्येष कनीनकः (यदाञ्जनम्)। श० ३। १। ३। १५॥

,, मरुतो ह वै सांतपना मध्यन्दिने वृत्रꣳ संतेपुः स संतप्तोऽनन्नेव प्राणन्परिदीर्णः शिश्ये। श० २। ५। ३। ३॥

,, मरुतो ह वै क्रीडिनो वृत्रꣳ हनिष्यन्तमिन्द्रमागतं तमभितः परिचिक्रीडुर्महयन्तः। श० २। ५। ३। २०॥

,, स यो हैवमेतं वृत्रमन्नादं वेदान्नादो हैव भवति। श० १। ६। ३। १७॥

वृत्रघ्नः या रोहिणी (गौः) सा वार्त्रघ्नी यामिदꣳ राजा संग्रामं जित्वोदाकुरुते। श० ३। ३। १। १४॥

,, वार्त्रघ्नं वै धनुः। श० ५। ३। ५। २७॥

वृत्रतुरः (यजु० ६। ३४) वृत्रतुर इति वृत्रꣳ ह्येता (आपः) अघ्नन्। श० ३। ६। ४। १६॥

वृषः वृषो ऽग्निः समिध्यते (ऋ० ३।२७।१४)। श० १। ४। १। २९॥

वृषभः (ऋ० २। १२। १२) वृषभ इति। एष (आदित्यः) ह्येवाऽऽसाम्प्रजानामृषभः। जै० उ० १। २९। ८॥

,, स एष (आदित्यः) सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान् (ऋ० २। १२। १२)। जै० उ० १। २८। २॥

वृषा (यजु० १८ । २२) एष वै वृषा हरिर्य एष (सूर्यः) तपति । श० १४ । ३ । १ । २६ ॥

,, इन्द्रो वै वृषा । तां । ९ । ४ । ३ ॥

,, इन्द्रो वृषा । श० १ । ४ । १ । ३३ ॥

,, समग्निरिध्यते वृषा (ऋ० ३ २७। १३) । श० १।४।१ २९॥

,, योषा वै वेदिर्वृषाग्निः । श० १ । २ । ५ । १५ ॥

,, वृषा हि मनः । श० १ । ४ । ४ । ३ ॥

,, योषा वै स्रुग्वृषा स्रुवः । श० १ । ३ । १ । ९ ॥

,, वृषा हि स्रुवः । श० १ । ४ । ४ । ३ ॥

,, वृषा वै राजन्यः । तां० ६ । १० । ९ ॥

,, (हे ऽश्व त्वं) वृषासि । तां० १ । ७ । १ ॥

,, आण्डाभ्याᳬ हि वृषा पिन्वते । श० १४ । ३ । १ । २२ ॥

,, पश्चाद्वै परीत्य वृषा योषामधि द्रवति तस्याᳬ रेतः सिञ्चति । श० २ । ४ । ४ । २३ ॥

,, वृषा हिङ्कारः । गो० पू० ३ । २३ ॥

वृषाकपिः तद्यत्कम्पयमानो रेतो वर्षति तस्माद्वृषाकपिः, तद्वृषाकपेर्वृषाकपित्वम् । गो० उ० ६ । १२ ॥

,, आदित्यो वै वृषाकपिः । गो० उ० ६ । १२ ॥

,, आत्मा वै वृषाकपिः ऐ० ६ । २९ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥

,, (होता) यदि वृषाकपिम् (वृषाकपिदृष्टम् ऋ० १० । ८६ । १—२३ एतत्सूक्तमन्तरियात्=लोपयेत्तदानीम्) आत्मानम् (="मध्यदेहम्" इतिसायणः) अस्य (यजमानस्य) अन्तरियात् । ऐ० ६ । १५ ॥

वृष्टिः (प्रजापतिः) तं (पाप्मानं) अवृश्चत् । यदवृश्चत् । तस्माद्वृष्टिः । तै० ३ । १० । ६ । १ ॥

, (सविता) रश्मिभिर्वर्षं (समदधात्) । गो० पू० १ । ३६ ॥

,, वृष्टिर्वै याज्या विद्युदेव विद्युद्धीदं वृष्टिमन्नाद्यं संप्रयच्छति । ऐ० २ । ४१ ॥

,, वृष्टिर्वै विराट् तस्या एते घोरे तन्वौ विद्युच्च ह्रादुनिश्च । श० १२ । ८ । ३ । ११ ॥

वृष्टिः तौ (अनड्वाहौ) यदि कृष्णौ स्यातामन्यतरो वा कृष्णस्तत्र विद्याद्वर्षिष्यत्यैषमः पर्जन्यो वृष्टिमान्भविष्यतीत्येतदु विज्ञानम्। श० ३। ३। ४। ११॥

,, अन्नं वृष्टिः। गो० पू० ४। ४। ५॥

,, वृष्टिर्वै विश्वधायाः। तै० ३। २। ३। २॥

,, अयं वै वर्षस्येष्टे यो ऽयं (वायुः) पवते। श० १। ८। ३। १२॥

,, तस्माद्यां दिशं वायुरेति तां दिशं वृष्टिरन्वेति। श० ८। २। ३। ५॥

,, मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम् (यजु० २। १६)। श० १। ८। ३। १२॥

,, इतःप्रदाना वै वृष्टिरितो ह्यग्निर्वृष्टिं वनुते स एतैः (घृत-) स्तोकैरेतान्त्स्तोकान् वनुते त ऽ एते स्तोका वर्षन्ति। श० ३। ८। २। २२॥

,, अर्वाचीनाग्रा ('अवाचीनाग्रा' इति भास्करसम्मतः पाठः) हि वृष्टिः। तै० ३। ३। १। ३॥ "वर्षाः" इत्येतमपि शब्दं पश्यत।

,, वृष्टिः सम्मार्जनानि। तै० ३। ३। १। २॥

,, यदा वै द्यावापृथिवी सञ्जानाथेऽथ वर्षति। श० १। ८। ३। १२॥

,, वृष्टिर्वै वृष्ट्वा चन्द्रमसमनुप्रविशति। ऐ० ८। २८॥

वृष्टिवनिः (यजु० ३८। ६) सूर्यस्य ह वा ऽ एको रश्मिर्वृष्टिवनिर्नाम येनेमाः सर्वाः प्रजा बिभर्ति। श० १४। २। १। २१॥

वृष्ण्यम् (यजु० १२। ११२) रेतो वै वृष्ण्यम्। श० ७। ३। १। ४६॥

वेट्कारः वषट्कारो हैष परोऽक्षं यद्वेट्कारः। श० ९। ३। ३। १४॥

वेणुः सैषा योनिरग्नेर्यद्वेणुः। श० ६। ३। १। ३२॥

,, अग्निर्देवेभ्य उदक्रामत्स वेणुं प्राविशत्तस्मात्स सुषिरः। श० ६। ३। १। ३१॥

वेतसः ताः (आपः) प्रजापतिमब्रुवन्। यद्वै नः कमभूदवाक्तदगादिति सो ऽब्रवीदेष व एतस्य वनस्पतिर्वेत्त्विति वेत्तु संवेत्तु सो ऽह वै तं वेतस इत्याचक्षते परोऽक्षम्। श० ९। १। २। २२॥

,, अप्सुयोनिर्वै वेतसः। श० १२। ८। ३। १५॥

,, अप्सुजा वेतसः। श० १३। २। २। १९॥

,, अप्सुजो वेतसः। तै० ३। ८। ४। ३॥ ३। ८। १९। २॥ ३। ८। २०। ४॥

वेतसः तस्माद्वेतसो वनस्पतीनामनुपजीवनीयतमो यातयामा हि सः। श० ९। १। २। २४॥

वेदः (=दर्भमुष्टिः) प्राजापत्यो वेदः। तै० ३। ३। २। १॥

,, प्राजापत्यो वै वेदः। तै० ३। ३। ७। २॥ ३। ३। ८। ९॥

, प्रजापतेर्वा एतानि श्मश्रूणि यद्वेदः। तै० ३। ३। ९। ११।

,, योषा वै वेदिर्वृषा वेदः। श० १। ९। २। २१, २४॥

,, वृषा वै वेदो योषा पत्नी। कौ० ३। ९॥

वेदाः स इमानि त्रीणि ज्योतींष्यभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः। श० ११। ५। ८। ३॥

,, चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेद इति। गो० पू० २। १६॥

,, चत्वारोऽस्यै (स्वाहायै) वेदाः शरीरꣳ षडङ्गान्यङ्गानि। ष० ४। ७॥

,, ते सर्वे त्रयो वेदाः। दश च सहस्राण्यष्टौ च शतान्यशीतीनां (१०८००×८० = ८६४००० अक्षराणि) अभवन्। श० १०। ४। २। २५॥

,, एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्यानाः सपुराणाः सस्वराः ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्याः। गो० पू० २। १०॥

,, वेदो ब्रह्म। जै० उ० ४। २५। ३॥

,, वेदा एव सविता। गो० पू० १। ३३॥

,, तदाहुः किं तत्सहस्रम् (ऋ० ६। ६। ९। ८) इतीमे लोका इमे वेदा अथो वागिति ब्रूयात्। ऐ० ६। १५॥

,, (इन्द्रो भरद्वाजमुवाच-) अनन्ता वै वेदाः। तै० ३। १०। ११। ३॥

,, अथो सर्वेषां वा एष वेदानां रसो यत् साम। श० १२। ८। ३। २३॥ गो० उ० ५। ७॥

वेदाः सोऽपहतपाप्मानन्तां श्रियमश्नुते य एवं वेद यश्चैवं विद्वानेवमेतां वेदानां मातरं सावित्रीं सम्पदमुपनिषदमुपास्ते। गो० पू० १। ३९॥

,, एतानि ह वै वेदानामन्तःश्लेषणानि यदेता (भूर्भुवःस्वरिति) व्याहृतयः। ऐ० ५। ३३॥

,, नाऽवेदविन्मनुते तं बृहन्तम्। तै० ३। १२। ९। ७॥

,, ("त्रयी विद्या" शब्दमपि पश्यत)

वेदिः तं (यज्ञं) वेद्यामन्वविन्दन् यद्वेद्यामन्वविन्दंस्तद्वेदेर्वेदित्वम्। ऐ० ३। ९॥

,, यन्वेवात्र विष्णुमन्वविन्दंस्तस्माद्वेदिर्नाम। श० १। २। ५। १०॥

,, तद्यदेनेन (यज्ञेन विष्णुना) इमाᳫं सर्वाᳫं (पृथिवीं) समविन्दन्त तस्माद्वेदिर्नाम। श० १। २। ५। ७॥

,, वेदिर्देवेभ्यो ऽनिलायत। तां वेदेनान्वविन्दन्। तै० ३। ३। ९। १०॥

,, पृथिवी वेदिः। ऐ० ५। २८॥ तै० ३। ३। ६। २, ८॥

,, इयं (पृथिवी) वै वेदिः। श० ७। ३। १। १५॥ ७। ५। २। ३१॥

,, एतावती वै पृथिवी। यावती वेदिः। तै० ३। २। ९। १२॥

,, यावती वै वेदिस्तावती पृथिवी। श० ३। ७। २। १॥

,, तस्मादाहुर्यावती वेदिस्तावती पृथिवीति। श० १। २। ५। ७॥

,, यावती वै वेदिस्तावतीयम्पृथिवी। जै० उ० १। ५। ५॥

,, तस्याः (पृथिव्याः) एतत्परिमितं रूपं यदन्तर्वेद्यथैष भूमाऽपरिमितो यो बहिर्वेदि। ऐ० ८। ५॥

,, वेदिर्वै परो ऽन्तः पृथिव्याः। तै ३। ६। ५। ५॥

,, उत्तरा वेदिर्भवत्येतत् (स्थानं) वा अस्याः (पृथिव्याः) वीर्य्यवत्तमम्। तां० १६। १३। ६॥

,, वेदिर्वै देवलोकः। श० ८। ६। ३। ६॥

,, वेदिर्वै सलिलम्। श० ३। ६। २। ५॥

,, वेदिरेव विश्वाची (अप्सराः। यजु० १५। १८)। श० ८। ६। १। १६॥

वेदिः स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीः (यजु० १७ । ५९) इति स्रुचश्चैतद्वेदीश्चाह (विश्वाची=वेदिः । घृताची=स्रुक्) । श० ९ । २ । ३ । १७ ॥

" योषा वै वेदिः । श० १ । ३ । ३ । ८ ॥

" योषा वै वेदिर्वृषा वेदः (दर्भमुष्टिः) । श० १ । ६ । २ । २१, २४ ॥

" योषा वै वेदिर्वृषाग्निः । श० १ । २ । ५ । १५ ॥

" सा वै (वेदिः) पश्चाद्वरीयसी स्यात् । मध्ये सꣳ ह्वारिता पुनः पुरस्तादुर्वी । श० १ । २ । ५ । १६ ॥

" व्याममात्री (वेदिः) पश्चात्स्यादित्याहुः । एतावान्वै पुरुषः पुरुषसम्मिता हि त्र्यरत्निः प्राची । श० १ । २ । ५ । १४ ॥

" तस्मात्त्र्यंगुला वेदिः स्यात् । श० १ । २ । ५ । ९ ॥

" (वेदिः) चतुरंगुलं खेया । तै० ३ । २ । ९ । ११ ॥

" सा वै (वेदिः) प्राक्प्रवणा स्यात् । श० १ । २ । ५ । १७ ॥

" अथो (वेदिः) उदक्प्रवणा । श० १ । २ । ५ । १७ ॥

वेधाः (ऋ० ८ । ४३ । ११) इन्द्रो वै वेधाः । ऐ० ६ । १० ॥ गो० उ० २ । २० ॥

वेनः (ऋ० १० । १२३ । १) अयं वै वेनो ऽस्माद्वा ऊर्ध्वा अन्ये प्राणा वेनन्त्यवाञ्चो ऽन्ये तस्माद्वेनः (=नाभिः, प्राणः?) । ऐ० १ । २० ॥

" (यजु० १३ । ३) असावादित्यो वेनो यद्वै प्रजिजनिषमाणो ऽवेनत्तस्माद्वेनः । श० ७ । ४ । १ । १४ ॥

" (ऋ० १० । १२३ । ५) इन्द्र उ वै वेनः । कौ० ८ । ५ ॥

" आत्मा वै वेनः । कौ० ८ । ५ ॥

वेषः वेषाय वामिति वेवेष्टीव हि यज्ञम् । श० १ । १ । २ । १ ॥

वैखानसम् (साम) (इन्द्रः) तान् (मृतान् वैखानसानृषीन्) एतेन (वैखानसाख्येन) साम्ना समैरयत् (=पुनः प्राणैस्तान् समयोजयदिति सायणः) तद्वाव स तर्ह्यकामयत कामसनि साम वैखानसं काममेवैतेनावरुन्धे । तां० १४ । ४ । ७ ॥

वैखानसाः (ऋषयः) वैखानसा वा ऋषय इन्द्रस्य प्रिया आसꣳस्तान् रहस्युर्देवमलिम्लुङ् मुनिमरणे ऽमारयत् । तां० १४ । ४ । ७ ॥

वैतहव्यम् (साम) वीतहव्यः श्रायसो ज्योग्निरुद्ध एतत्सामापश्यत्सो ऽवगच्छत्प्रत्यतिष्ठद्वगच्छति प्रतितिष्ठत्येतेन तुष्टुवानः। तां० ९। १। ९॥

"पान्तमावो अन्धसः" (ऋ० ८। ९२। १) इति वैतहव्यम्। तां० ९। २। १॥

वैदन्वितानि (सामानि) विदन्वान्वै भार्गव इन्द्रस्य प्रत्यहᳫंस्तᳫं शुगार्छत् स तपो ऽतप्यत स एतानि वैदन्वितान्यपश्यत्तैः शुचमपाहतापशुचᳫं हते वैदन्वितैस्तुष्टुवानः। तां० १३। ११। १०॥

वैयश्वम् (साम) व्यश्वो वा एतेनाङ्गिरसो ऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्या एतत्पृष्ठानामन्ततः क्रियते। तां० १४। १०। ९॥

वैराजम् (साम) (पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा [ऋ० ७। २२। १] इत्यस्यामृच्युत्पन्नं वैराजं साम–इति ऐ० ४।१३ भाष्ये सायणः)

„ स वैराजमसृजत तदग्नेर्घोषो ऽन्वसृज्यत। तां० ७। ८। ११॥

„ यद् बृहत्तद्वैराजम्। ऐ० ४। १३॥

„ प्रजापतिर्वैराजम्। तां० १६। ५। १७॥

वैराज्यम् अथैनं (इन्द्रं) उदीच्यां दिशि विश्वे देवाः........अभ्यषिञ्चन् ....वैराज्याय। ऐ० ८। १४॥

„ यशसो वा एष वनस्पतिरजायत यत्प्लक्षः स्वाराज्यं च ह वा एतद्वैराज्यं च वनस्पतीनाम्। ऐ० ७। ३२॥

„ तस्मादेतस्यामुदीच्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तं जनपदा उत्तरकुरव उत्तरमद्रा इति वैराज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते विराडित्येनानभिषिक्तानाचक्षते। ऐ० ८। १४॥

वैरूपम् (साम) देवा वै तृतीयेनाह्ना स्वर्गं लोकमायंस्तानसुरा रक्षांस्यन्ववारयन्त ते विरूपा भवत विरूपा भवतेति भवंत आयंस्ते यद्विरूपा भवत विरूपा भवतेति भवंत आयंस्तद्वैरूपं सामाऽभवत्तद्वैरूपस्य वैरूपत्वम्। ऐ० ५। १॥

„ (यद् द्याव इन्द्र ते शतम् [ऋ० ८। ७०। ५] इत्यस्यामृच्युत्पन्नं वैरूपं साम—इति ऐ० ४। १३ भाष्ये सायणः)

वैरूपम् यद्वै रथन्तरं तद्वैरूपम् । ऐ० ४ । १३ ॥

" रथन्तरमेतत्परोक्षं यद्वैरूपम् । तां० १२ । २ । ५, ९ ॥

" बृहदेतत्परोक्षं यद्वैरूपम् । तां० १२ । ८ । ४ ॥

" वाग्वैरूपम् । तां० १६ । ५ । १६ ॥

" पशवो वै वैरूपम् । तां० १४ । ९ । ८ ॥

" दिशां वा एतत्साम यद्वैरूपम् । तां० १२ । ४ । ७ ॥

" वर्षाभिर्ऋतुनादित्याः स्तोमे सप्तदशे स्तुतं वैरूपेण विशौजसा । तै० २ । ६ । १९ । १-२ ॥

" आदित्यास्त्वा जागतेन छन्दसा सप्तदशेन स्तोमेन वैरूपेण साम्नाऽऽरोहन्तु तानन्वारोहामि स्वाराज्याय । ऐ० ८ । १२ ॥ (ऐ० ८ । १७ अपि पश्यत)

वैश्यः वैश्यो वै पुष्यतीव । कौ० २५ । १५ ॥

" वैश्यो वै ग्रामणीः । श० ५ । ३ । १ । ६ ॥

" जगतीछन्दा वै वैश्यः । तै० १ । १ । ९ । ७ ॥

" जागतो वै वैश्यः । ऐ० १ । २८ ॥

" वैश्वदेवो हि वैश्यः । तै० २ । ७ । २ । २ ॥

" विड्ढ विश्वे देवाः । श० १० । ४ । १ । ९ ॥

" शरद्वै वैश्यस्यर्तुः । तै० १ । १ । २ । ७ ॥

" तस्मादु बहुपशुर्वैश्वदेवो हि जागतो (वैश्यः) वर्षा ह्यस्य (वैश्यस्य) ऋतुस्तस्माद् ब्राह्मणस्य च राजन्यस्य चाद्यो ऽधरो हि सृष्टः । तां० ६ । १ । १० ॥

" तस्माद्वैश्यो वर्षास्वादधीत विड्ढि वर्षाः । श० २ । १ । ३ । ५॥

" तस्माद्वैशीपुत्रं नाभिषिञ्चति । श० १३ । २ । ९ । ८ ॥

" अथ यदि दधि, वैश्यानां स भक्षो वैश्यांस्तेन भक्षेण जिन्विष्यसि वैश्यकल्पस्ते प्रजायामाजनिष्यते ऽन्यस्य बलिकृदन्यस्याऽऽद्यो यथाकामज्येयो यदा वै क्षत्रियाय पापं भवति वैश्यकल्पो ऽस्य प्रजायामाजायत ईश्वरो हास्माद् द्वितीयो वा तृतीयो वा वैश्यतामभ्युपैतोः स वैश्यतया जिज्यूषितः । ऐ० ७ । २९ ॥

" तस्मादपि (दीक्षितं) राजन्यं वा वैश्यं वा ब्राह्मण इत्येव ब्रूयाद् ब्रह्मणो हि जायते यो यज्ञाज्जायते । श० ३ । २ । १ । ४० ॥

" वैश्यं च शूद्रं चानु रासभः । श० ६ । ४ । ४ ॥

वैश्यः मारुतो हि वैश्यः। तै० २ । ७ । २ । २ ॥
,, एतद्वै वैश्यस्य समृद्धं (=समृद्धिरितिसायणः) यत् पशवः। तां० १८ । ४ । ६ ॥
,, विड्वै यवः। श० १३ । २ । ९ । ८ ॥
,, ऋग्भ्यो जातं वैश्यं वर्णमाहुः। तै० ३ । १२ । ९ । २ ॥
,, विट् तृतीयसवनम्। कौ० १६ । ४ ॥
,, रायोवाजीयं (साम) वैश्याय (कुर्य्यात्)। तां० १३ । ४ । १८ ॥

वैश्वदेवम् (पर्व) यद्विश्वे देवाः समयजन्त तद्वैश्वदेवस्य वैश्वदेवत्वम्। तै० १ । ४ । १० । ५ ॥
,, प्रजापतिर्वै वैश्वदेवम्। कौ० ५ । १ ॥
,, (शस्त्रम्) पांचजन्यं वा एतदुक्थं यद्वैश्वदेवम्। ऐ० ३।३१॥
,, पवमानोक्थं वा एतद्यद्वैश्वदेवम्। कौ० १६ । ३ ॥
,, पशवो वै वैश्वदेवम्। कौ० १६ । ३ ॥

वैश्वमनसम् (साम) विश्वमनसं वा ऋषिमध्यायमुदव्रजितꣳ रक्षोऽगृह्णात्। तां० १५ । ५ । २० ॥
,, अपपाप्मानꣳ हते वैश्वमनसेन तुष्टुवानः। तां० १५ । ५ । २० ॥

वैश्वानरः स यः स वैश्वानरः। इमे स लोका इयमेव पृथिवी विश्वमग्निर्नरोऽन्तरिक्षमेव विश्वं वायुर्नरो द्यौरेव विश्वमादित्यो नरः। श० ६ । ३ । १ । ३ ॥
,, इयं (पृथिवी) वै वैश्वानरः। श० १३ । ३ । ८ । ३ ॥
,, एष वै प्रतिष्ठा वैश्वानरः (यत्पृथिवी)। श० १० । ६ । १ । ४ ॥
पादौ त्वाऽएतौ वैश्वानरस्य (यत्पृथिवी)। श० १० । ६ । १ । ४ ॥
,, एष वै रयिर्वैश्वानरः (यदापः)। श० १० । ६ । १ । ५ ॥
,, वस्तिस्त्वाऽएष वैश्वानरस्य (यदापः)। श० १० । ६ । १ । ५ ॥
,, एष वै बहुलो वैश्वानरः (यदाकाशः)। श० १० । ६ । १ । ६ ॥

वैश्वानरः आत्मा त्वाऽएष वैश्वानरस्य (यदाकाशः)। श० १०। ६। १। ६॥

,, एष वै पृथग्वर्त्मा वैश्वानरः (यद्वायुः)। श० १०। ६। १। ७॥

,, प्राणस्त्वाऽएष वैश्वानरस्य यद्वायुः। श० १०। ६। १। ७॥

,, असौ वै वैश्वानरो यो ऽसौ (आदित्यः) तपति। कौ० ४। ३॥ १९। २॥

,, स यः स वैश्वानरः। असौ स आदित्यः। श० ९। ३। १। २५॥

,, (=सूर्य्यः) वैश्वानरो रश्मिभिर्मा पुनातु। तै० १। ४। ८। ३॥

,, एष वै सुततेजा वैश्वानरः (यदादित्यः)। श० १०।६।१।८॥

,, चक्षुस्त्वाऽएतद्वैश्वानरस्य (यदादित्यः)। श० १०। ६। १। ८॥

,, एष वाऽ अतिष्ठा वैश्वानरः (यद् द्यौः)। श० १०।६।१।९॥

,, मूर्धा त्वाऽ एष वैश्वानरस्य (यद् द्यौः)। श० १०।६।१।९॥

,, स एषो ऽग्निर्वैश्वानरो यत्पुरुषः। श० १०। ६। १। ११॥

,, अयमग्निर्वैश्वानरो यो ऽयमन्तः पुरुषे येनेदमन्नं पच्यते यदिदमद्यते तस्यैष घोषो भवति यमेतत्कर्णावपिधाय शृणोति स यदोत्क्रमिष्यन्भवति नैतं घोषꣳ शृणोति। श० १४। ८। १०। १॥

,, वैश्वानर इति वा अग्नेः प्रियं धामः। तां० १४। २। ३॥

,, वैश्वानरो वै सर्वे ऽग्नयः। श० ६। २। १। ३५॥ ६। ६। १। ५॥

,, संवत्सरो ऽग्निर्वैश्वानरः। ऐ० ३। ४१॥

,, संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः। तै० १। ७। २। ५॥ श० ६। ६। १। २०॥

,, संवत्सरो वैश्वानरः। श० ५। २। ५। १५॥ ६। २। १। ३६॥ ६। ६। १। ५॥ ७। ३। १। ३५॥ ९। ३। १। १॥

,, संवत्सरो वै वैश्वानरः। श० ४। २। ४। ४॥ ५। २॥ ५। १४॥

वैश्वानरः संवत्सरो वै पिता वैश्वानरः प्रजापतिः। श० १।५।१।१६॥
,, वैश्वानरं द्वादशकपालं पुरोडाशं निर्वपति। श० ५।२।५।१३॥
,, वैश्वानरं द्वादशकपालं (पुरोडाशं) निर्वपति। तै० १।७।२।५॥
,, वैश्वानरो द्वादशकपालः (पुरोडाशः)। श० ६।६।१।५॥
,, विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् (यजु० ११।५८)। श० ६।५।२।६॥
,, विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् (यजु० ११।६०)। श० ६।५।३।१०॥
,, शिर एव वैश्वानरः। श० ६।६।१।९॥
,, शिरो वै वैश्वानरः। श० ९।३।१।७॥
,, क्षत्रं वै वैश्वानरः। श० ६।६।१।७॥९।३।१।१३॥
,, वैश्वानरो वै देवतया रथः। तै० २।२।५।४॥
,, वज्रो वै वैश्वानरीयम् (सूक्तम्)। ऐ० ३।१४॥

वैष्टम्भम् (साम) अहर्वा एतत् (तृतीयम्) अव्लीयत तद्देवा वैष्टम्भैर्व्यष्टभ्नुवꣳस्तद्वैष्टम्भस्य वैष्टम्भत्वम्। तां० १२।३।१०॥

वौषट् असौ (आदित्यः) वाव वाट्टतवः षट्। ऐ० ३।६॥ गो० उ० ३।२॥
,, वौषडिति वौगिति वाऽ एष (अग्निः) षडितीदꣳ षट्चितिकमन्नम्। श० १०।४।१।२॥

व्यचश्छन्दः (यजु० १५।४) असौ वाऽ आदित्यो व्यचश्छन्दः। श० ८।५।२।३॥

व्यचस्वत् (यजु० ११।३०) व्यचस्वती संवसाथामित्यवकाशवती संवसाथामित्येतत्। श० ६।४।१।१०॥

व्यचिष्ठः (यजु० ११।२३) व्यचिष्ठमन्नैरभसं दृशानमित्यवकाशवन्तमन्नैरन्नादं दीप्यमानमित्येतत्। श० ६।३।३।१९॥

व्यच्यमानः (यजु० १३।४९) (=उपजीव्यमानः) व्यच्यमानꣳ सरिरस्य मध्य ऽइतीमे वै लोकाः सरिरमुपजीव्यमानमेषु लोकेष्वित्येतत्। श० ७।५।२।३४॥

व्यथा (आर्त्तिः) अनार्त्यै त्वेत्येवैतदाह यदाहाव्यथायै त्वेति। श० ५।४।३।७॥

व्याघ्रः क्षत्रं वा एतदारण्यानां पशूनां यद्व्याघ्रः। ऐ० ८।६॥

व्याघ्रः ऊवध्याद्वास्य मन्युरस्रवत्स व्याघ्रो ऽभवदारण्यानां पशूनाꣳ राजा । श० १२ । ७ । १ । ८ ॥

व्याधिः ऋतुसंधिषु हि व्याधिर्जायते । कौ० ५ । १ ॥

,, ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते । गो० उ० १ । १९ ॥

व्यानः व्यानो ह्युपाꣳशुसवनो ऽन्तरिक्षꣳ ह्येव व्यनन्नभिव्यनिति । श० ४ । १ । २ । २७ ॥

,, (यज्ञस्य) व्यान उपाꣳशुसवनः । श० ४ । १ । १ । १ ॥

,, व्यानो वरुणः । श० १२ । ९ । १ । १६ ॥

,, व्यानः प्रतिहर्त्ता । कौ० १७ । ७ ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥

,, व्यानो बृहती । तां० ७ । ३ । ८ ॥

,, आपो व्यानः । जै० उ० ४ । २२ । ९ ॥

,, (प्रजापतिः) व्यानादमुं (द्यु-) लोकम् (प्राबृहत्) । कौ० ६।१०॥

,, (तं संज्ञप्तं पशुं) दक्षिणा दिग्व्यानेत्यनुप्राणद्व्यानमेवास्मिँस्तद्दधात् । श० ११ । ८ । ३ । ६ ॥

,, द्विर्ऋतुनेति (यजन्ति) उपरिष्टाद्व्यानमेव तद्यजमाने दधाति । कौ० १३ । ९ ॥

,, निक्रीडित इव ह्ययं व्यानः । ष० २ । २ ॥

,, व्यानः शस्या (ऋक्) । श० १४ । ६ । १ । १२ ॥

व्यानट् (यजु० १२ । १०२) (=असृजत) यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानडिति यो वा दिवꣳ सत्यधर्मासृजतेत्येतत् । श० ७।३।१।२०॥

व्याहृतयः एतानि ह वै वेदानामन्तःश्लेषणानि यदेता (भूर्भुवः स्वरिति) व्याहृतयः । ऐ० ५ । ३३ ॥

,, एवमेवैता (भूर्भुवः स्वरिति) व्याहृतयस्त्रय्यै विद्यायै संश्लेषिण्यः । कौ० ६ । १२ ॥

,, सैषा सर्वप्रायश्चित्तिर्यदेता व्याहृतयः । ऐ० ५ । ३३ ॥

,, एता वै व्याहृतयः (भूर्भुवस्स्वरिति) सर्वप्रायश्चित्तयः । जै० उ० ३ । १७ । ३ ॥

,, एता वै (भूर्भुवः स्वरिति) व्याहृतयः इमे लोकाः । तै० २ । २ । ४ । ३ ॥

,, ता वा एताः पंच व्याहृतयो भवन्त्यो श्रावयास्तु श्रौषड्यज ये यजामहे वौषडिति । गो० पू० ५ । २१ ॥

व्याहृतयः ता एता व्याहृतयः । प्रेत्येति वागिति भूर्भुवः स्वरित्युदिति (प्र, आ, वाक्, भूर्भुवस्स्वः, उत्) । जै० उ० २ । ९ । ३ ॥

,, सर्वाप्तिर्वा एषा यदेता व्याहृतयः । ऐ० ८ । ७ ॥

व्युष्टिः व्युष्टिर्वै दिवा, व्येवास्मै वासयति । तां० ८ । १ । १३ ॥

,, व्युष्टिर्वा एष द्विरात्रो व्यवास्मै (यजमानाय) वासयति । तां० १८ । ११ । ११ ॥

,, अहर्व्युष्टिः । तै० ३ । ८ । १६ । ४ ॥

,, रात्रिर्वै व्युष्टिः । श० १३ । २ । १ । ६ ॥

व्योमसद् एष (सूर्यः) वै व्योमसद् व्योम वा एतत् सद्मनां यस्मिन्नेव आसन्नस्तपति । ऐ० ४ । २० ॥

व्योमा (यजु० १४ । २३) व्योमा हि संवत्सरः । श० ८ । ४ । १ । ११ ॥

,, प्रजापतिर्वै व्योमा । श० ८ । ४ । १ । ११ ॥

व्रजो गोस्थानः छन्दांꣳसि वै व्रजो गोस्थानः । तै० ३ । २ । ९ । ३ ॥

व्रतपतिः अग्निर्वै देवानां व्रतपतिः । गो० उ० १ । १४ ॥

व्रतभृत् अग्निर्वै देवानां व्रतभृत् । गो० उ० १ । १५ ॥

व्रतम् (यजु० १३ । ३३) अन्नं वै व्रतम् । श० ७ । ५ । १ । २५ ॥ तां० २२ । ४ । ५ ॥

,, अन्नं व्रतम् । तां० २३ । २७ । २ ॥

,, अन्नꣳ हि व्रतम् । श० ६ । ६ । ४ । ५ ॥

,, तदु हाषाढः सावयसोऽनशनमेव व्रतं मेने । श० १ । १ । १ । ७ ॥

,, एतत्खलु वै व्रतस्य रूपं यत्सत्यम् । श० १२ । ८ । २ । ४ ॥

,, संवत्सरो वै व्रतं तस्य वसन्त ऋतुर्मुखं ग्रीष्मश्च वर्षाश्च पक्षौ शरन्मध्यꣳ हेमन्तः पुच्छम् । तां० २१ । १५ । २ ॥

,, वीर्यं वै व्रतम् । श० १३ । ४ । १ । १५ ॥

,, अमानुष इव वाऽ एतद्भवति यद् व्रतमुपैति । श० १ । ९ । ३ । २३ ॥

,, न ह वाऽ अव्रतस्य देवा हविरश्नन्ति । ऐ० ७ । ११ ॥ कौ० ३ । १ ॥

व्रातः विषम इव वै व्रातः (=व्रात्यसमुदायः इति सायणः) । तां० १७ । १ । ५, ११ ॥

व्रात्याः 'षोडशस्तोमः' शब्दं पश्यत ।

व्रीहयः मज्जभ्य एवास्य भक्षः सोमपीथोऽस्रवत्ते व्रीहयोऽभवन्। श० १२।७।१।९॥

,, स (मेधो देवैः) अनुगतो व्रीहिरभवत्। ऐ० २।८॥

,, (देवाः) तं (मेधम्) खनन्त इवान्वीपुस्तमन्वविन्दंस्ताविमौ व्रीहियवौ। श० १।२।३।७॥

,, सर्वेषां वा एष पशूनां मेधो यद् व्रीहियवौ। श० ३।८।३।१॥

,, क्षत्रं वा एतदोषधीनां यद् व्रीहयः। ऐ० ८।१६॥

श

शंयुः शंयुर्ह वै बार्हस्पत्यः सर्वान् यज्ञाञ्छमयांचकार तस्माच्छंयोर्वाकमाह। कौ० ३।८॥

,, शंयुर्ह वै बार्हस्पत्योऽञ्जसा यज्ञस्य सꣳस्थां विदांचकार स देवलोकमपीयाय। तत्तदन्तर्हितमिव मनुष्येभ्य आस। श० १।९।१।२४॥

शंयोर्वाकः शंयुर्ह वै बार्हस्पत्यः सर्वान् यज्ञाञ्छमयांचकार तस्माच्छंयोर्वाकमाह। कौ० ३।८॥

,, प्रतिष्ठा वै शंयोर्वाकः। कौ० ३।८॥

,, प्रतिष्ठा शम्योर्वाकः। श० ११।२।७।२६॥

शंसः वाक् शंसः। ऐ० २।४॥ ६।२७, ३२॥ गो० उ० ६।८॥

शंसति यद्वै वदति शꣳसतीति वै तदाहुः। श० १।८।२।१२॥

शकुन्तला शकुन्तला नाडपित्यप्सरा भरतं दधे परः सहस्रानिन्द्रायाश्वान्मेध्यान्य आहरद्विजित्य पृथिवीꣳ सर्वामिति। श० १३।५।४।१३॥

शकुन्तिका (यजु० २३।२२) विड्वै शकुन्तिका। श० १३।२।९।६॥ तै० ३।९।७।३॥

शाक्वर्य्यः (ऋचः) यदिमांल्लोकान्प्रजापतिः सृष्ट्वेदं सर्वमशक्नोद्यदिदं किंच तच्छक्वर्योऽभवंस्तच्छक्वरीणां शक्वरीत्वम्। ऐ० ५।७॥

,, इन्द्रः प्रजापतिमुपाधावद् वृत्रꣳ हनानीति तस्मा एतच्छन्दोभ्य इन्द्रियं वीर्य्यं निर्माय प्रायच्छदेतेन शक्नुहीति तच्छक्वरीणाꣳ शक्वरीत्वम्। तां० १३।४।१॥

शक्वर्यः एताभिर्वा इन्द्रो वृत्रमशकद्धन्तुं तद्यदाभिर्वृत्रमशकद्धन्तुं तस्माच्छक्वर्य्यः । कौ० २३ । २ ॥
" एताभिः (भुरिग्भिः शक्वरीभिः) वा इन्द्रो वृत्रमहन् क्षिप्रं वा एताभिः पाप्मानꣳ हन्ति क्षिप्रं वसीयान् भवति । तां० १२ । १३ । २३ ॥
" पशवः शक्वर्य्यः । तां० १३ । १ । ३ ॥
" पशवो वै शक्वर्य्यः । तां० १३ । ४ । १३ ॥ १३ । ५ । १८ ॥
" पशवो वै शक्वरीः । तै० १ । ७ । ५ । ४ ॥
" पशवः शक्वरी । तां० १२ । ७ । ६ ॥
" श्रीः शक्वर्य्यः । तां० १३ । २ । २ ॥
" शाक्वरो वज्रः । तै० २ । १ । ५ । ११ ॥
" वज्रः शक्वर्य्यः । तां० १२ । १३ । १४ ॥
" रथन्तरमेतत्परोक्षं यच्छक्वर्य्यः । तां० १३ । २ । ८ ॥
" ब्रह्म शक्वर्य्यः । तां० १६ । ५ । १८ ॥
" सप्तपदा वै तेषां (छन्दसां) परार्ध्या शक्वरी । श० ३ । ९ । २ । १७ ॥
" सप्तपदा शक्वरी । तै० २ । १ । ५ । ११ ॥ तां० १६ । ७ । ६ ॥
" स (प्रजापतिः) शक्वरीरसृजत तद्पाङ्घोषो ऽन्वसृज्यत ('शाक्वरम्' शब्दमपि पश्यत) । तां० ७ । ८ । १२ ॥

शङ्कु (साम) तद् (शङ्कु साम) उ सीदन्तीयमित्याहुः । तां० ११ । १० । १२ ॥
" शङ्कु भवत्यह्नो धृत्यै यद्वा अधृतꣳ शङ्कुना तद्दाधार । तां० ११ । १० । ११ ॥

शणाः यत्र वा प्रजापतिरजायत गर्भो भूत्वैतस्माद्यज्ञात्तस्य यन्नेदिष्ठमुल्वमासीत्ते शणास्तस्मात्ते पूतयो भवन्ति । श० ३ । २ । १ । ११ ॥
" शणा जरायु । श० ६ । ६ । २ । १५ ॥

शतक्रतुः इन्द्र आसीत्सीरपतिः शतक्रतुः । तै० २ । ४ । ८ । ७ ॥

शतपदी वाग्वाव शतपदी । ष० १ । ४ ॥
" ऋक् शतपदी । ष० १ । ४ ॥

शतभिषक् (नक्षत्रम्) यच्छतमभिषज्यन्। तच्छतभिषक्। तै० १। ५।२।९॥

,, क्षत्रस्य राजा वरुणोऽधिराजः। नक्षत्राणां शतभिषग्वसिष्ठः। तै० ३।१।२।७॥

,, इन्द्रस्य (=वरुणस्येति सायणः) शतभिषक्। तै० १।५। १।५॥

शतम् एषा वाव यज्ञस्य मात्रा यच्छतम्। तां० २०।१।१२॥

शतरुद्रीयम् तद्यदेतꣳ शतशीर्षाणꣳ रुद्रमेतेनाशमयंस्तस्माच्छतशीर्षरुद्रशमनीयꣳ शतशीर्षरुद्रशमनीयꣳ ह वै तच्छतरुद्रियमित्याचक्षते परोऽक्षम्। श० ९।१।१।७॥

,, ते (देवाः)ऽब्रुवन्। अन्नमस्मै (रुद्राय) सम्भराम तेनैनꣳ शमयामेति तस्माऽ एतदन्नꣳ समभरञ्छान्तदेवत्यं तेनैनमशमयंस्तद्यदेतं देवमेतेनाशमयंस्तस्माच्छान्तदेवत्यꣳ शान्तदेवत्यꣳ ह वै तच्छतरुद्रियमित्याचक्षते परोऽक्षम्। श० ९।१।१।२॥

,, त्वमग्ने रुद्र इति शतरुद्रीयस्य रूपम्। तै० ३।११। ९।९॥

,, अहोरात्रे (संवत्सरस्य) शतरुद्रीयम्। तै० ३।११। १०।३॥

शबलः अहर्वै शबलो रात्रिः श्यामः (अथर्ववेदे, कां० ८, सू० १, मं० ९:—श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ……)। कौ० २।९॥

शबली वाग्वै शबली (="कामधेनुः" इति सायणः। वाल्मीकीयरामायणे बालकाण्डे ५३। १:—एवमुक्ता वसिष्ठेन शबला शत्रुसूदन। विदधे कामधुक्कामान्यस्य यस्येप्सितं यथा॥) तस्यास्त्रिरात्रो वत्सास्त्रिरात्रो वा एतां प्रदापयति॥ तद्य एवं वेद तस्मा एषा ऽप्रत्ता दुग्धे ('विश्वरूपी' पृश्निः' 'विराट्' इत्येतानपि शब्दान् पश्यत)। तां० २१।३।१—२॥

शम् ताभ्यः श्रान्ताभ्यस्तप्ताभ्यः संतप्ताभ्यः (भूरादिभ्यः पंचमहाव्याहृतिभ्यः) शमित्यूर्ध्वमक्षरमुदक्रामत्स य इच्छेत्सर्वाभिरेताभिरावद्भिश्च परावद्भिश्च कुर्वीयेत्येतयैव तन्महाव्याहृत्या

कुर्वीत । गो० पू० १ । ११ ॥

शमनीचामेढ्राणां स्तोमः अथैष शमनीचामेढ्राणाᳺ स्तोमो ये ज्येष्ठाः सन्तो व्रात्यां प्रवसेयुस्त एतेन यजेरन् । तां० १७ । ४ । १ ॥

शमिता अध्रिगुश्चापापश्च । उभौ देवानाᳺ शमितारौ । तै० ३ । ६ । ६ । ४ ॥

,, मृत्युस्तदभवद्धाता । शमितोग्रो विशां पतिः । तै० ३ । १२ । ९ । ६ ॥

,, मृत्युः शमिता । तां० २५ । १८ । ४ ॥

शमी (वृक्षः) प्रजापतिरग्निमसृजत सो ऽबिभेत्प्र मा धक्ष्यतीति तᳺ शम्याशमयत् । तच्छम्यै शमित्वम् । तै० १ । १ । ३ । ११ ॥

,, तद्यदेतᳺ शम्याशमयंस्तस्माच्छमी । श० ९ । २ । ३ । ३७ ॥

,, शमीमयं (शङ्कुं) उत्तरतः, शं मे ऽसदिति । श० १३ । ८ । ४ । १ ॥

,, शं वै प्रजापतिः प्रजाभ्यः शमीपलाशैरकुरुत । श० २ । ५ । २ । १२ ॥

,, यया ते सृष्टस्याग्नेः । हेतिमशमयत्प्रजापतिः । तामिमामप्रदाहाय शमीᳺ शान्त्यै हराम्यहम् । तै० १ । २ । १ । ६—७ ॥

शम्भूश्छन्दः (यजु० १५ । ४) द्यौर्वै शम्भूश्छन्दः । श० ८।५।२।३॥

शम्या जिह्वैव शम्या । श० १ । २ । १ । १७ ॥

शरः अथ (इन्द्रः) यत्र (वज्रं) प्राहरत्तच्छकलो ऽशीर्य्यत स पतित्वा शरो ऽभवत्तस्माच्छरो नाम यदशीर्य्यत । श० १ । २ । ४ । १ ॥

,, वज्रो वै शरः । श० ३ । १ । ३ । १३ ॥ ३ । २ । १ । १३ ।

शरद् (ऋतुः) शरद्वै बर्हिरिति हि शरद्बर्हिया इमा ओषधयो ग्रीष्म-हेमन्ताभ्यां नित्यक्ता भवन्ति ता वर्षा वर्द्धन्ते ताः शरदि बर्हिषो रूपं प्रस्तीर्णाः शेरे तस्माच्छरद्बर्हिः । श० १ । ५ । ३ । १२ ॥

,, बर्हिर्यजति शरदमेव शरदि हि बर्हिष्ठा ओषधयो भवन्ति । कौ० ३ । ४ ॥

शरद् शरदि ह खलु वै भूयिष्ठा ओषधयः पच्यन्ते । जै० उ० १ । ३५ । ५ ॥

,, तस्माच्छरदमोषधयो ऽभिसंपच्यन्ते । तां० २१ । १५ । ३ ॥

,, स्वधा वै शरद् । श० १३ । ८ । १ । ४ ॥

,, शरत्प्रतिहारः । ष० ३ । १ ॥

,, (प्रजापतिः) शरदम्प्रतिहारम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १२ । ७ ॥

,, शरद्वै वैश्यस्यर्तुः । तै० १ । १ । २ । ७ ॥

,, शरद्वा अस्य (रुद्रस्य) अम्बिका स्वसा (परिशिष्टभागे 'अम्बिका' शब्दमपि पश्यत) । तै० १ । ६ । १० । ४ ॥

,, शरदुत्तरः पक्षः (संवत्सरस्य) । तै० । ३ । ११ । १० । ४ ॥

,, शरत्पुच्छम् (संवत्सरस्य) । तै० ३ । ११ । १० । ३ ॥

,, यद्वियातते तच्छरदः (रूपम्) । श० २ । २ । ३ । ८ ॥

,, षड्भिर्मैत्रावरुणैः (पशुभिः) शरदि (यजते) । श० १३ । ५ । ४ । २८ ॥

,, वर्षाशरदौ सारस्वताभ्याम् (अवरुन्धे) । श० १२ । ८ । २ । ३४ ॥

,, शरद्ब्रह्म तस्माद्यदा सस्यं पच्यते ब्रह्मण्वत्यः प्रजा इत्याहुः । श० ११ । २ । ७ । ३२ ॥

,, शरदेव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

शरीरम् अथ यत्सर्वमस्मिन्नश्रयन्त तस्मादु शरीरम् । श० ६ । १ । १ । ४ ॥

,, अशरीरं वै रेतो ऽशरीरा वपा यद्वै लोहितं यन्मांसं तच्छरीरम् । ऐ० २ । १४ ॥

,, शरीरं हृदये (श्रितम्) । तै० ३ । १० । ८ । ७ ॥

शर्कराः तां (पृथिवीं) शर्कराभिरदृꣳहत् शं वै नो ऽभूदिति तच्छर्कराणाꣳ शर्करत्वम् । तै० १ । १ । ३ । ७ ॥

,, सिकताभ्यः शर्करामसृजत । श० ६ । १ । ३ । ५ ॥

,, शर्कराया अश्मानम् (असृजत) तस्माच्छर्कराश्मैवान्ततो भवति । श० ६ । १ । ३ । ५ ॥

शर्म चर्म वाऽ एतत्कृष्णस्य (मृगस्य) तन्मानुषꣳ, शर्म देवत्रा । श० ३ । २ । १ । ८ ॥

शर्म (ऋ० ३ । १३ । ४) वाग्वै शर्म । ऐ० २ । ४० ॥

,, (ऋ० ३ । १३ । ४) अग्निर्वै शर्माण्यन्नाद्यानि यच्छति । ऐ० २ । ४१ ॥

शर्वः यच्छर्वो ऽग्निस्तेन । कौ० ६ । ३ ॥

,, अग्निर्वै स देवस्तस्यैतानि नामानि, शर्व इति यथा प्राच्या आचक्षते भव इति यथा वाहीकाः, पशूनां पती रुद्रो ऽग्निरिति । श० १ । ७ । ३ । ८ ॥

,, आपो वै सर्वः (=शर्वः=रुद्रः) अद्भ्यो हीदꣳ सर्वं जायते । श० ६ । १ । ३ । ११ ॥

,, एतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः=शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नवमः । श० ६ । १ । ३ । १८ ॥

शल्मलिः शल्मलिर्वनस्पतीनां वर्षिष्ठं वर्धते । श० १३ । २ । ७ । ४ ॥

शल्यकः तस्याः (गायत्र्याः) अनु विसृज्य कृशानुः सोमपालः सव्यस्य पदो नखमच्छिदत्तच्छल्यको ऽभवत्तस्मात्स नखमिव । ऐ० ३ । २६ ॥

शवः (स्) (यजु० १२ । १०६ ॥ १८ । ५१) बलं वै शवः । श० ७ । ३ ॥ १ । २९ ॥ ९ । ४ । ४ । ३ ॥

शस्त्रम् तद्यदेनच्छ्यति तस्माच्छस्त्रं नाम । श० ४ । ३ । २ । ३ ॥

,, विट् शस्त्रम् । ष० १ । ४ ॥

,, प्रजा शस्त्रम् । श० ५ । २ । २ । २० ॥

,, वाग्घि शस्त्रम् । ऐ० ३ । ४४ ॥

शस्या (ऋक्) द्यौर्लोकꣳ (द्युलोकं) शस्यया (जयति) । श० १४ । ६ । १ । ९ ॥

,, व्यानः शस्या । श० १४ । ६ । १ । १२ ॥

शाकलम् (साम) एतेन वै शकलः पञ्चमे ऽह्नि प्रत्यतिष्ठत् प्रतितिष्ठति शाकलेन तुष्टुवानः । तां० १३ । ३ । १० ॥

शाकलाः प्राणा वै शाकलाः । श० १४ । २ । २ । ३१ ॥

,, प्राणाः शाकलाः । श० १४ । २ । २ । ५१ ॥

शाक्वरम् (साम) (प्रोष्वस्मै पुरोरथम् [ऋ० १० । १३३ । १] इत्यस्यां गीयमानं शाक्वरं साम -ऐ० ४ । १३ भाष्ये सायणः)

शाक्वरम् शाक्वरं मैत्रावरुणस्य । कौ० २५ । ११ ॥
,, यद्रथन्तरं तच्छाक्वरम् ('शक्वर्यः' शब्दमपि पश्यत) । ऐ० ४ । १३ ॥
शान्तिः शान्तिरापः । श० १ । २ । २ । ११ ॥ १ । ७ । ४ । ९, १७ ॥ १ । ६ । ३ । २, ४ ॥ २ । ६ । २ । १८ ॥ ३ । ३ । १ । ७ ॥
शापः नैनꣳ शप्तम् । नाभिचरितमागच्छति य एवं वेद । तै० ३ । १२ । ५ । १ ॥
शाम्मदम् (साम) शम्मद्वा एतेनाङ्गिरसो ऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः। तां० १५ । ५ । ११ ॥
शार्करम् (साम) स (शर्करः शिशुमारर्षिः) एतत् सामापश्यत्तेनापो न समाश्नुत तद्वाव स तर्ह्यकामयत कामसनि साम शार्करं काममेवैतेनावरुन्धे । तां० १४ । ५ । १५ ॥
शार्दूलः मृत्योर्वा एष वर्णः । यच्छार्दूलः । तै० १ । ७ । ८ । १ ॥
शाला यथा शालायै पक्षसी मध्यमं वꣳशमभिसमायच्छन्ति । तै० १ । २ । ३ । १ ॥
शासः वज्रः शासः । श० ३ । ८ । १ । ५ ॥
,, असिं वै शास इत्याचक्षते । श० ३ । ८ । १ । ४ ॥
शिक्यम् दिशः शिक्यं दिग्भिर्हीमे लोकाः शक्नुवन्ति स्थातुं यच्छक्नुवन्ति तस्माच्छिक्यम् । श० ६ । ७ । १ । १६ ॥
,, ऋतवः शिक्यमृतुभिर्हि संवत्सरः शक्नोति स्थातुं यच्छक्नोति तस्माच्छिक्यम् । श० ६ । ७ । १ । १८ ॥
,, प्राणाः शिक्यं प्राणैर्ह्ययमात्मा शक्नोति स्थातुं यच्छक्नोति तस्माच्छिक्यम् । श० ६ । ७ । १ । २० ॥
शिपिः पशवः शिपिः । तै० १ । ३ । ८ । ५ ॥
शिपिविष्टः यमुपैत्सीत्तमपाराप्सीत्तच्छिपितमिव यज्ञाय भवति तस्माच्छिपिविष्टायेति । श० ११ । १ । ४ । ४ ॥
,, एषा वै प्रजापतेः पशुष्ठा तनूर्यच्छिपिविष्टः (एषा वै प्रजापतेः पशुष्ठास्तनूर्या शिपिविष्टवती–काठकसंहितायाम् १४ । १० ॥) । तां० १८ । ६ । २६ ॥
,, यज्ञो वै विष्णुः शिपिविष्टः । तां० ९ । ७ । १० ॥

शिरः यच्छ्रियꣳ समुदौहंस्तस्माच्छिरस्तस्मिन्नेतस्मिन्प्राणा अश्र-
यन्त तस्माद्वेवैतच्छिरः । श० ६ । १ । १ । ४ ॥

,, शिरो वै प्राणानां योनिः । श० ७ । ५ । १ । २२ ॥

,, प्राणो ऽग्निः शीर्षम् । कौ० ८ । १ ॥

,, गायत्रीछन्दो ऽग्निर्देवता शिरः । श० १० । ३ । २ । १ ॥

,, गायत्रꣳ हि शिरः । श० ८ । ६ । २ । ६ ॥

,, शिरस्सूक्तम् । जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥

,, त्रिधातु हि शिर इति । तै० ३ । ३ । ७ । ११ ॥

,, त्रिवृद्धि शिरः । श० ८ । ४ । ४ । ४ ॥ ८ । ६ । २ । ६ ॥

,, त्रिवृद्ध्येव शिरो लोम त्वगस्थि । तां० ५ । १ ३ ॥

,, शिर एवास्य त्रिवृत् । तस्मात्तत्त्रिविधं भवति त्वगस्थि मस्तिष्कः । श० १२ । २ । ४ । ९ ॥

,, त्रिवृतं ह्येव शिरो भवति त्वगस्थि मज्जा मस्तिष्कम् । गो० पू० ५ । ३ ॥

,, शिरो वा अग्रे सम्भवतः सम्भवति चतुर्द्धा विहितं वै शिरः प्राणश्चक्षुः श्रोत्रं वाग् । तां० २२ । ९ । ४ ॥

,, शिरो हि प्रथमं जायमानस्य जायते । श० ८ । २ । ४ । १८ ॥ १० । १ । २ । ५ ॥

,, शीर्षतो वाऽ अग्रे जायमानो जायते । श० ३ । ४ । १ । १९ ॥

,, यस्माच्छीर्षण्येवाग्रे पलितो भवति । श० ११ । ४ । १ । ६ ॥

,, द्विकपालꣳ हि शिरः । श० १० । ५ । ४ । १२ ॥

,, तस्मादष्टाकपालं पुरुषस्य शिरः । तै० ३ । २ । ७ । ४ ॥

,, प्रादेशमात्रमिव हि शिरः । श० ७ । ५ । १ । २३ ॥ १४ । १ । २ । १७ ॥

,, मध्ये संगृहीतमिव हि शिरः । श० १४ । १ । २ । १७ ॥

,, तस्माच्छिरोऽङ्गानि मेद्यन्ति नानुमेद्यति न कृश्यन्त्यनुकृश्यति । तां० ५ । १ । ६ ॥

,, अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः । इदं तच्छिरः । श० १४।५।२।५॥

,, शिर एतद्यज्ञस्य यदुखा । श० ६ । ५ । ३ । ८ ॥ ६।५।४।१५॥

,, शिर एव षष्ठी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । २१ ॥

,, श्रीः (=उत्कृष्टं वस्तु) वै शिरः । श० १ । ४ । ५ । ५ ॥ २ । १ ।

२ । ८ ॥ ४ । २ । ४ । २० ॥

शिल्पानि (शस्त्राणि) प्राणाः शिल्पानि । कौ० २५ । १२, १३ ॥

„ आत्मसंस्कृतिर्वाव शिल्पानि छन्दोमयं वा एतैर्यजमान आत्मानं संस्कुरुते । ऐ० ६ । २७ ॥

„ आत्मसंस्कृतिर्वै शिल्पानि । गो० उ० ६ । ७ ॥

„ यद्वै प्रतिरूपं तच्छिल्पम् । श० ३ । २ । १ । ५ ॥

„ त्रिवृद्वै शिल्पं नृत्यं गीतं वादितमिति । कौ० २९ । ५ ॥

„ तौ वा एताविन्द्रस्तोमौ (अभिजिद्विश्वजितौ) वीर्य्यवन्तौ शिल्पं वा एतौ नाम स्तोमावास्ताम् । तां० १६ । ४ । ८ ॥

शिवः (यजु० १२ । १७) शिवः शिव इति शमयत्येवैनं (अग्निम्) एतदहिᳬसायै तथो हैष (अग्निः) इमांल्लोकाञ्छान्तो न हिनस्ति (शिवः=रुद्रः=शान्तो ऽग्निः) । श० ६ । ७ । ३ । १५ ॥

शिशिरः षड्भिरैन्द्राबार्हस्पत्यैः (पशुभिः) शिशिरे (यजते) । श० १३ । ५ । ४ । २८ ॥

शिशुः अयं वाव शिशुर्यो ऽयं मध्यमः प्राणः । श० १४ । ५ । २ । २ ॥

शिश्नम् शिश्नं वै शोचिष्केशᳬ (ऋ० ३ । २७ । ४) शिश्नᳬ हीदᳬ शिश्निनं भूयिष्ठᳬ शोचयति । श० १ । ४ । ३ । ९ ॥

„ वृत्तमिव हि शिश्नम् । श० ७ । ५ । १ । ३८ ॥

„ योनिरुलूखलम् .....शिश्नं मुसलम् । श० ७ । ५ । १ । ३८ ॥

शीतम् (यजु० २३ । २६) क्षेमो वै राष्ट्रस्य शीतम् । श० १३ । २ । ९ । ५ ॥

शीतो वातः क्षेमो वै राष्ट्रस्य शीतो वातः । तै० ३ । ९ । ७ । २ ॥

शुकः यामं शुकं हरितमालभेत । गो० उ० २ । १ ॥

शुक्रः (यजु० १८ । ५०) असौ वा आदित्यः शुक्रः । श० ९ । ४ । २ । २१ ॥ तां० १५ । ५ । ६ ॥

„ एष वै शुक्रो य एव (आदित्यः) तपति । श० ४ । ३ । १ । २६ ॥ ४ । ३ । ३ । १७ ॥

„ एष वै शुक्रो य एष (आदित्यः) तपत्येष उ ऽएव बृहन् । श० ४ । ५ । ६ । ६ ॥

„ तद्वा ऽएष एव शुक्रो य एष (आदित्यः) तपति तद्यदेष तपति तेनैष शुक्रः । श० ४ । २ । १ । १ ॥

शुक्रः तत्र ह्यादित्यः शुक्रश्चरति । गो० पू० २ । ६ ॥
,, अस्य (अग्नेः) एवैतानि (घर्मः, अर्कः, शुक्रः, ज्योतिः, सूर्यः) नामानि । श० ९ । ४ । २ । २५ ॥
,, अत्ता वै शुक्रः (ग्रहः) । श० ५ । ४ । ४ । २० ॥
,, अत्तैव शुक्र आद्यो मन्थी (ग्रहः) । श० ४ । २ । १ । ३ ॥
,, शुक्रः (=निर्म्मल इति सायणः) सोमः । तां० ६ । ६ । ९ ॥ (श० ३ । ३ । ३ । ६ अपि पश्यत)
,, एतौ (शुक्रश्च शुचिश्च) एव ग्रैष्मौ (मासौ) स यदेतयोर्वलिष्ठं तपति तेनो हैतौ शुक्रश्च शुचिश्च । श० ४ । ३ । १ । १५ ।
शुक्रपात्रम् शुक्रपात्रमेवानु मनुष्या जायन्ते । श० ४ । ५ । ५ । ७ ॥
शुक्रम् ज्योतिः शुक्रमसौ (आदित्यः) । ऐ० ७ । १२ ॥
,, शुक्रं हिरण्यम् । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥
,, ज्योतिर्वै शुक्रं हिरण्यम् । ऐ० ७ । १२ ॥
,, शुक्रँ ह्येतच्छुक्रेण क्रीणाति यत्सोमँ हिरण्येन । श० ३ । ३ । ३ । ६ ॥
,, (यजु १ । ३१) तेजो ऽसि शुक्रमस्यमृतमसि (आज्य !) । श० १ । ३ । १ । २८ ॥
,, शुक्रा ह्यापः । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥
,, सत्यं वै शुक्रम् । श० ३ । ९ । ३ । २५ ॥
शुक्लम् तद्यच्छुक्लं तद्वाचो रूपमृचो ऽग्नेर्मृत्योः । जै० उ० १ । २५ । ८ ॥
शुचिः एतौ (शुक्रश्च शुचिश्च) एव ग्रैष्मौ (मासौ) स यदेतयोर्वलिष्ठं तपति तेनो हैतौ शुक्रश्च शुचिश्च । श० ४ । ३ । १ । १५ ॥
,, यत् (अग्नेः) शुचि (रूपम्) तद्दिवि (न्यधत्त) । श० २ । २ । १ । १४ ॥
,, वीर्य्यं वै शुचि यद्वाऽ अस्य (अग्नेः) एतदुज्ज्वलत्येतदस्य वीर्यँ शुचि । श० २ । २ । १ । ८ ॥
शुद्धाशुद्धीयम् (साम) इन्द्रो यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागभ्यवदत्सो ऽशुद्धो ऽमन्यत स एतच्छुद्धाशुद्धीयमपश्यत्तेनाशुध्यच्छुध्यति शुद्धाशुद्धीयेन तुष्टुवानः । तां० १४ । ११ । २८ ॥

शुनम् यद्वै समृद्धं तच्छुनम् । श० ७ । २ । २ । ९ ॥
,, या वै देवानाᳫं श्रीरासीत् साकमेधैरीजानानां तच्छुनम् । श० २ । ६ । ३ । २ ॥

शुनस्कर्णस्तोमः एतेन वै शुनस्कर्णो बाष्किहो ऽयजत तस्माच्छुनस्कर्णस्तोम इत्याख्यायते । तां० १७ । १२ । ६ ॥
,, यः कामयेतानामयताऽमुं लोकमियामिति स एतेन यजेत । तां० १७ । १२ । १ ॥
,, प्राणानेवास्य (यजमानस्य) बहिर्णिरादधाति (स यजमानः) ताजक् (=तस्मिन्नेव काले) प्रमीयते । तां० १७ । १२ । २ ॥
,, आर्भवपवमाने स्तूयमान औदुम्बर्य्यां दक्षिणा प्रावृतो (=वेष्टितसर्वदेहः) निपद्यते तदेव (=तदानीमेव) संगच्छते (=म्रियते इति सायणः) । तां० १७ । १२ । ५ ॥

शुनासीरः अथ यस्माच्छुनासीर्येण यजेत । या वै देवानाᳫं श्रीरासीत् साकमेधैरीजानानां विजिग्यानानां तच्छुनमथ यः संवत्सरस्य प्रजितस्य रस आसीत्तत्सीरम् । श० २ । ६ । ३ । २ ॥
,, संवत्सरो वै शुनासीरः । गो० उ० १ । २६ । ॥
,, शान्तिर्वै भेषजं शुनासीरौ । कौ० ५ । ८ ॥
,, शुनासीर्यो द्वादशकपालः पुरोडाशो भवति । श० २ । ६ । ३ । ५ ॥

शुष्णः (दानवः) शुष्णो दानवः प्रत्यङ् पतित्वा मनुष्याणामक्षीणि प्रविवेश स एष कनीनकः कुमारक इव परिभासते । श० ३ । १ । ३ । ११ ॥

शूद्रः स पत्त एव प्रतिष्ठाया एकविᳫंशमसृजत तमनुष्टुप् छन्दो ऽन्वसृज्यत न काचन देवता शूद्रो मनुष्यस्तस्माच्छूद्र उत बहुपशुरयज्ञियो विदेवो हि, न हि तं काचन देवताऽन्वसृज्यत तस्मात्पादावनेज्यन्नातिवर्द्धते पत्तो हि सृष्टः । तां० ६ । १ । ११ ॥
,, अयज्ञियान्वाऽ एतद्यज्ञेन प्रसजति शूद्रांस्त्वद्यांस्त्वत् । श० ५ । ३ । २ । ४ ॥
,, अथ यद्यपः शूद्राणां स भक्षः शूद्रांस्तेन भक्षेण जिन्विष्यसि शूद्रकल्पस्ते प्रजायामाजनिष्यते ऽन्यस्य प्रेष्यः कामोत्थाप्यो

यथाकामवध्यो, यदा वै क्षत्रियाय पापं भवति शूद्रकल्पो ऽस्य प्रजायामाजायत ईश्वरो हास्माद् द्वितीयो वा तृतीयो वा शूद्रतामभ्युपेतोः स शूद्रतया जिज्यूषितः । ऐ० ७ । २९ ॥

शूद्रः असतो वा एष सम्भूतः । यच्छूद्रः । तै० ३ । २ । ३ । ९ ॥

,, अनृतᳺ स्त्री शूद्रः श्वा कृष्णः शकुनिस्तानि न प्रेक्षेत । श० १४ । १ । १ । ३१ ॥

,, असुर्य्यः शूद्रः । तै० १ । २ । ६ । ७ ॥

,, तपो वै शूद्रः । श० १३ । ६ । २ । १० ॥

,, वैश्यं च शूद्रं चानु रासभः । श० ६ । ४ । ४ । १२ ॥

,, तस्मात्पुरस्तात्प्रत्यञ्चः शूद्रा अवस्यन्ति । तै० ३ । ३ । ११ । २ ॥

,, स शौद्रं वर्णमसृजत पूषणमियं (पृथिवी) वै पूषा । श० १४ । ४ । २ । २५ ॥

शृणवद् "श्रवद्ध इन्द्रः शृणवद्धो ऽग्निः" (यजु० २८ । ६) शृणोतु व इन्द्रः शृणोत्वग्निरित्याशिषमेव तद्वदते । कौ० २८ । ६ ॥

शृतम् अथ यदेनᳺ (इन्द्रं देवाः) शृतेनैवाश्रयंस्तस्माच्छृतम् । श० १ । ६ । ४ । ८ ॥

शैशवम् (साम) शिशुर्वा आङ्गिरसो मन्त्रकृतां मन्त्रकृदासीत् स पितॄन् पुत्रका इत्यामन्त्रयत तं पितरो ऽब्रुवन्नधर्म्मङ्करोषि यो नः पितॄन् सतः पुत्रका इत्यामन्त्रयस इति सो ऽब्रवीदहं वाव पिता ऽस्मि यो मन्त्रकृदस्मीति ते देवेष्वपृच्छन्त ते देवा अब्रुवन्नेष वाव पिता यो मन्त्रकृदिति तद्वै स उदजयदुज्जयति शैशवेन तुष्टुवानः । (मनुस्मृतौ अ० २ । श्लो० १५१ ॥ तन्त्रवार्त्तिके १ । ३ । १० ॥) । तां० १३ । ३ । २४ ॥

शोचिष्केशः (ऋ० ३ । २७ । ४) शिश्नं वै शोचिष्केशᳺ शिश्नᳺ हीदᳺ शिश्निनं भूयिष्ठᳺ शोचयति । श० १ । ४ । ३ । ९ ॥

शोचींषि (यजु० २७ । ११)(=अर्चींषि) ऊर्ध्वा शुक्रा शोचीᳺष्यग्नेरित्यूर्ध्वानि ह्येतस्य (अग्नेः) शुक्राणि शोचीᳺष्यर्चीᳺषि भवन्ति । श० ६ । २ । १ । ३२ ॥

शोशुचानः (यजु० ११ । ४९) (=दीप्यमानः) विपाजसा पृथुना शोशुचान इति । विपाजसा पृथुना दीप्यमान इत्येतत् । श० ६ । ४ । ४ । २१ ॥

शौक्तम् (साम) शुक्तिर्वा एतेनाङ्गिरसोऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः। तां० १२।५।१६॥

शौनकयज्ञः स एष (शौनकयज्ञः) तुस्तूर्षमाणस्य यज्ञः। कौ० ४।७॥

श्नौष्टम् (साम) श्नुष्टिर्वा एतेनाङ्गिरसोऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गात् लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः। तां० १३।११।२२॥

,, अग्नेर्वा एतत् (श्नौष्टं) वैश्वानरस्य साम। तां० १३।११।२३॥

श्मशानम् अथास्मै श्मशानं कुर्वन्ति गृहान्वा प्रज्ञानं वा यो वै कश्च म्रियते स शवस्तस्माऽएतदन्नं करोति तस्माच्छवान्नꣳ शवान्नꣳ ह वै तच्छ्मशानमित्याचक्षते परोक्षꣳ श्मशा उ हैव नाम पितृणामत्तारस्ते हाऽमुष्मिँल्लोकेऽकृतश्मशानस्य साधुकृत्यामुपदम्भयन्ति तेभ्य एतदन्नं करोति तस्माच्छ्मशान्नꣳ श्मशान्नꣳ ह वै तच्छ्मशानमित्याचक्षते परोऽक्षम्। श० १३।८।१।१॥

श्यामः द्वे वै श्यामस्य (पशोः) रूपे: शुक्लं चैव लोम कृष्णं च। श० ५।१।३।९॥ ५।२।५।८॥

,, स पौष्णो यच्छ्यामः (पशुः)। श० ५।२।५।८॥

,, अहर्वै शबलो रात्रिः श्यामः(शबलशब्दमपि पश्यत)। कौ० २।९॥

श्यामाकाः लोमभ्य एवास्य चित्तमस्रवत्। ते श्यामाका अभवन्। श० १२।७।१।९॥

,, तासां (ओषधीनां) एष उद्धारो यच्छ्यामाकः। गो० उ० १।१७॥

,, सौम्यं श्यामाकं चरुं निर्वपति। तै० १।६।१।११॥

,, अथ सोमाय वनस्पतये श्यामाकं चरुं निर्वपति। श० ५।३।३।४॥

,, स (सोमः) एतꣳ सोमाय मृगशीर्षाय श्यामाकं चरुं पयसि निरवपत्। ततो वै स ओषधीनाꣳ राज्यमभ्यजयत्। तै० ३।१।४।३॥

,, एते वै सोमस्यौषधीनां प्रत्यक्षतमां यच्छ्यामाकाः। श० ५।३।३।४॥

श्यावाश्वम् (साम) श्यावाश्वमार्चनानसꣳ सत्रमासीनं धन्वोदवहन् स एतत्सामापश्यत्तेन वृष्टिमसृजत ततो वै स प्रत्यतिष्ठत्ततो गातुमविन्दत गातुविद्वा एतत्साम । तां० ८।५।९॥

श्येनः यदाह श्येनोऽसीति सोमं वा एतदाहैष ह वा अग्निर्भूत्वाऽस्मिंल्लोके संश्यायति। तद्यत्संश्यायति तस्माच्छ्येनस्तच्छ्येनस्य श्येनत्वम् । गो० पू० ५ । १२ ॥

,, उरस एवास्य (इन्द्रस्य) हृदयात्त्विषिरस्रवत्स श्येनोऽपाष्टिहाभवद्वयसाꣳ राजा । श० १२ । ७ । १ । ६ ॥

,, स (श्येनः) हि वयसामाशिष्ठः । तां० १३ । १० । १४ ॥

,, श्येनो वै वयसां क्षेपिष्ठः । ष० ३ । ८ ॥

,, एतद्वै वयसामोजिष्ठं बलिष्ठं यच्छ्येनः । श० ३ । ३ । ४ । १५ ॥

श्यैतम् (साम) श्यैतेन श्येती कुरुते । तै० १ । १ । ८ । ३ ॥

,, ते (प्रजापतिना ऽभिव्याहृताः पशवः) शेत्या अभवन् यच्छेत्या अभवꣳस्तस्माच्छ्यैतम् । तां० ७ । १० । १३ ॥

,, पशुकाम एतन (श्यैतेन साम्ना) स्तुवीत । तां० ७ । १० । १४ ॥

,, पशवो वै श्यैतम् । तां० ७ । १० । १३ ॥

,, रथन्तरꣳ ह्येतत्परोक्षं यछ्यैतम् (यच्छ्यैतम्) । तां०७।१०:८॥

श्रद्धा श्रद्धा पत्नी सत्यं यजमानः । ऐ० ७ । १० ॥

,, श्रद्धां कामस्य मातरं हविषा वर्द्धयामसि । तै० २ । ८ । ८ । ८॥

,, एतद्दीक्षायै (रूपं) यच्छ्रद्धा । श० १२ । ८ । २ । ४ ॥

,, तेज एव श्रद्धा । श० ११ । ३ । १ । १ ॥

,, श्रद्धैव सकृदिष्टस्याक्षितिः स यः श्रद्दधानो यजते तस्येष्टं न क्षीयते । कौ० ७ । ४ ॥

,, श्रद्धा वा आपः । तै० ३ । २ । ४ । १ ॥

,, श्रद्धा वै सूर्यस्य दुहिता (यजु० १९ । ४) । श० १२ । ७ । ३ । ११ ॥

श्रवद् श्रवद्ध इन्द्रः शृणवद्धोग्निरिति (यजु०२८ । ६) शृणोतु वै इन्द्रः शृणोत्वग्निरित्याशिषमेव तद्वदते । कौ० २८ । ६ ॥

श्रविष्ठाः (नक्षत्रम्) यदशृणोत् तच्छ्रविष्ठाः (=धनिष्ठा इति सायणः) । तै० १ । ५ । २ । ९ ॥

श्रविष्ठाः वसूनां श्रविष्ठाः । तै० १ । ५ । १ । ५ ॥

,, अष्टौ देवा वसवः सोम्यासः । चतस्रो देवीरजराः श्रविष्ठाः । ते यज्ञं पान्तु रजसः पुरस्तात् । संवत्सरीणममृतं स्वस्ति । तै० ३ । १ । २ । ६ ॥

श्रवो वयः (यजु० १२ । १०६) धूमो वाऽ अस्य (अग्नेः) श्रवो वयः स ह्येनममुष्मिंल्लोके श्रावयति । (श्रावयति) । श० ७ । ३ । १ । २९ ॥

श्रायन्तीयम् (ब्रह्मसाम) यद् (देवाः सूर्यं सप्तसु छन्दःसु) अश्रयन् । तच्छ्रायन्तीयस्य श्रायन्तीयत्वम् । तै० १ । ५ । १२ । १ ॥

,, प्रजापतिः प्रजा असृजत स दुग्धो रिरिचानो ऽमन्यत स एतच्छ्रायन्तीयमपश्यत्तेनात्मानं समश्रीणात्प्रजया पशुभिरिन्द्रियेण । तां० ९ । ६ । ७ ॥

,, वरुणस्य वै सुषुवाणस्य भर्गो ऽपाक्रामत्स त्रेधापतद् भृगुस्तृतीयमभवच्छ्रायन्तीयं तृतीयमपस्तृतीयं प्राविशत् । तां० १८ । ९ । १ ॥

,, यच्छ्रायन्तीयं ब्रह्मसाम भवति पुनरेवात्मानं संश्रीणाति । तां० १८ । ११ । १ ॥

,, यच्छ्रायन्तीयं ब्रह्मसाम भवति श्रीणाति चैवैनं (यज्ञविभ्रष्टं) सच करोति । तां० ८ । २ । ११ ॥

,, श्रायन्तीयं यज्ञविभ्रष्टाय ब्रह्मसाम कुर्य्यात् । तां० ८ । २ । ९ ॥

,, श्रीर्वै श्रायन्तीयम् । तां० १५ । ४ । ५ ॥

श्रीः अथ यत्प्राणा अश्रयन्त तस्मादु प्राणाः श्रियः । श० ६ । १ । १ । ४ ॥

,, इयं (पृथिवी) वै श्रीः । ऐ० ८ । ५ ॥

,, तस्याः (श्रियः) अग्निरन्नाद्यमादत्त । सोमो राज्यं वरुणः साम्राज्यं मित्रः क्षत्रमिन्द्रो बलं बृहस्पतिर्ब्रह्मवर्चसं सविता राष्ट्रं पूषा भगं सरस्वती पुष्टिं त्वष्टा रूपाणि । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥

,, श्रीर्वा एकशफम (अश्वाश्वतरगर्दभरूपम्) । तै० ३ । ९ । ८ । २ ॥

श्रीः श्रीर्वै पशवः श्रीः शाक्वर्य्यः । तां० १३ । २ । २ ॥

,, श्रीर्वै श्रायन्तीयम् (साम) । तां० १५ । ४ । ५ ॥

,, श्रीः पृष्ठ्यानि । कौ० २१ । ५ ॥

,, श्रियै वाऽ एतद्रूपं यद्वीणा । श० १३ । १ । ५ । १ ॥

,, यदा वै पुरुषः श्रियं गच्छति वीणास्मै वाद्यते । श० १३ । १ । ५ । १ ॥

,, श्रीर्वै स्वरः । श० ११ । ४ । २ । १० ॥

,, रात्रिरेव श्रीः श्रियाᳬ हैतद्रात्र्याᳬ सर्वाणि भूतानि संवसन्ति । श० १० । २ । ६ । १६ ॥

,, श्रीर्वै राष्ट्रम् । श० ६ । ७ । ३ । ७ ॥

,, श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः । श० १३ । २ । ९ । ३ ॥

,, श्रीर्वै राष्ट्रस्याग्रम् । श० १३ । २ । ९ । ७ ॥

,, श्रीर्वै पिलिप्पिला । श० १३ । २ । ६ । १६ ॥ तै० ३ । ९ । ५ । ३ ॥

,, श्रीर्वै वरुणः । कौ० १८ । ९ ॥

,, (सविता) श्रिया स्त्रियम् (समदधात्) । गो० पू० १ । ३४ ॥

,, श्रीर्देवाः । श० २ । १ । ४ । ९ ॥

,, श्रियै पाप्मा (निवर्तते) । श० १० । २ । ६ । १९ ॥

,, बहिर्वेव वै श्रीः । जै० उ० १ । ४ । ६ ॥

,, एकस्था वै श्रीः । कौ० १८ । ९ ॥ २९ । ५ ॥

,, एकस्ता (? एकस्था) वै श्रीः । गो० उ० ६ । १३ ॥

श्रुध्यम् (साम) प्रजापतिः पशूनसृजत ते ऽस्मात् सृष्टा अपाक्रामᳬस्तानेतेन साम्ना श्रुधिया एहियेत्यन्वह्वयत्त एनमुपावर्त्तन्त यदेतत्साम भवति पशूनामुपावृत्त्यै । तां० १५ । ५ । ३५ ॥

,, पशवो वै श्रुध्यं पशूनामवरुध्यै । तां० १५ । ५ । ३४ ॥

श्रुष्टिः (यजु० १२ । ६८) अन्नᳬ श्रुष्टिः । श० ७ । २ । २ । ५ ॥

श्रेयान् (अथर्व० ७ । ९ । १) तस्मात् (भूलोकात्) असावेव (स्वर्गो) लोकः (श्रेयान्) । ऐ० १ । १३ ॥

श्रेष्ठतमं कर्म्म (यजु० १ । १) यज्ञो हि श्रेष्ठतमं कर्म्म । तै० ३ । २ । १ । ४ ॥

श्रेष्ठतमं कर्म यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। श० १।७।१।५॥

श्रेष्ठो रश्मिः (यजु० २।२६) एष वै श्रेष्ठो रश्मिर्यत्सूर्य्यः। श० १।
९।३।१६॥

श्रोणा (=श्रवणनक्षत्रमिति सायणः) यदश्लोणत्। तच्छ्रोणा। तै० १।
५।२।८, ६॥

,, शृण्वन्ति श्रोणाममृतस्य गोपां......महीं देवीं विष्णुपत्नीमजू-
र्याम्। तै० ३।१।२।५—६॥

,, विष्णोः श्रोणा। तै० १।५।१।४॥

श्रोणी जगती छन्द आदित्यो देवता श्रोणी। श० १०।३।२।६॥

,, श्रोणी द्वियजुः (इष्टका)। श० ७।५।१।३५॥

श्रोत्रम् श्रोत्रं हृदये (श्रितम्)। तै० ३।१०।८।६॥

,, श्रोत्रं वै ब्रह्म श्रोत्रेण हि ब्रह्म शृणोति श्रोत्रे ब्रह्म प्रतिष्ठितम्।
ऐ० २।४०॥

,, श्रोत्रं वै सम्राट्! परमं ब्रह्म। श० १४।६।१०।१२॥

,, श्रोत्रं वा अपाꣳ सधिः (यजु० १३।५३)। श० ७।५।२।५५॥

,, श्रोत्रं वै परꣳ रजो दिशो वै श्रोत्रं दिशः परꣳ रजः। श०
७।५।२।२०॥

,, यत्तच्छ्रोत्रं दिश एव तत्। श० १०।३।३।७॥

,, तद्यत्तच्छ्रोत्रं दिशस्ताः। जै० उ० १।२८।६॥

,, श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिर्यदेनेन सर्वतः शृणोत्यथो यदस्मै
सर्वतो मित्रं भवति तस्माच्छ्रोत्रं विश्वामित्र ऋषिः (यजु०
१३।५७)। श० ८।१।२।६॥

,, श्रोत्रं विश्वे देवाः। श० ३।२।२।१३॥

,, विश्वꣳ हि श्रोत्रम्। श० ७।५।२।१२॥

,, यच्छ्रोत्रं स विष्णुः। गो० उ० ४।११॥

,, वागिति श्रोत्रम्। जै० उ० ४।२२।११॥

,, श्रोत्रं पङ्क्तिः। श० १०।३।१।१॥

,, श्रोत्रं वै सम्पच्छ्रोत्रं हीमे सर्वे वेदा अभिसम्पन्नाः। श० १४।
९।२।४॥

श्रौतकक्षम् (साम) इन्द्राय मद्वने सुतमिति श्रौतकक्षं क्षत्रसाम प्रक्षत्र-
मेवैतेन भवति। तां० ९।२।७॥

श्लोकानुश्लोकौ श्लोकानुश्लोकाभ्याᳬं (सामविशेषाभ्यां) हविर्द्धाने उपतिष्ठन्ते कीर्त्तिमेव तज्जयन्ति (श्लोकः=कीर्त्तिः=यशः। अमरकोशे कां० ३। नानार्थवर्गे। श्लो० २)। तां० ५।४।१०॥

श्वः न श्वः श्वमुपासीत को हि मनुष्यस्य श्वो वेद। श० २।१।३।९॥

श्वा अनृतᳬं स्त्री शूद्रः श्वा कृष्णः शकुनिस्तानि न प्रेक्षेत। श० १४।१।१।३१॥

श्वात्राः (यजु० ६।३४) शिवा ह्यापस्तस्मादाह (हे आपो यूयं) श्वात्रा स्थेति (श्वात्राः=शिवाः)। श० ३।६।४।१६॥

(ष)

षट्त्रिंशः (स्तोमः) "नाकः षट्त्रिंशः" इत्येतं शब्दं पश्यत।

षट्पादः अग्निः षट्पादस्तस्य पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौराप ओषधिवनस्पतय इमानि भूतानि पादाः। गो० पू० २।९॥

षडङ्गानि (वेदानाम्) चत्वारो ऽस्यै (स्वाहायै) वेदाः शरीरᳬं षडङ्गान्यङ्गानि। प० ४।७॥

,, तस्मात्कारणं ब्रूमो वर्णानामयमिदं भविष्यतीति षडङ्गविदस्तत्तथा ऽधीमहे। गो० पू० १।२७॥

षडहः षडहो वा उ सर्वः संवत्सरः। कौ० १९।१०॥

षड्ढोता तस्मै (ब्रह्मणे) षष्ठᳬं हूतः प्रत्यशृणोत्। स षड्ढूतो ऽभवत् षड्ढूतो ह वै नामैषः। तं वा एतᳬं षड्ढूतᳬं सन्तं षड्ढोतेत्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया इव हि देवाः। तै० २।३।११।२-३॥

,, धाता षड्ढोता। तै० २।३।१।१॥

,, धाता षड्ढोत्रा। तै० २।२।८।४॥

,, धाता षड्ढोतॄणाᳬं होता। तै० २।३।५।६॥

,, वाग्घोता षड्ढोतॄणाम्। तै० ३।१२।५।२॥

,, पशुबन्धः षड्ढोतुः (निदानम्)। तै० २।२।११॥६॥

षष्ठमहः देवायतनं वै षष्ठमहः। कौ० २३।५॥

,, स्वर्गो वै लोकः षष्ठमहः। ऐ० ६।२६, ३६॥ गो० उ० ६।१६॥

षष्ठमहः देवक्षेत्रं वा एतद्यत्षष्ठमहः । ऐ० ५ । ६ ॥
,, देवक्षेत्रं वै षष्ठमहः । गो० उ० ६ । १० ॥
,, सर्वदेवत्यं षष्ठमहः । कौ० २१ । ४ ॥
,, प्राजापत्यं वै षष्ठमहः । कौ० २३ । ८ ॥ २५ । ११, १५ ॥
,, पुरुष एव षष्ठमहः । कौ० २३ । ४ ॥
,, सर्वरूपं वै षष्ठमहः कौ० २१ । ४ ॥ २३ । ७ ॥
,, आतिच्छन्दसं वै षष्ठमहः । कौ० २३ । ६, ८ ॥ २६ । ५ ॥
,, अन्तः षष्ठमहः । कौ० २३ । ७ ॥ २६ । ८ ॥

षष्ठी चितिः स्वर्ग एव लोकः षष्ठी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । १७ ॥
,, शिर एव षष्ठी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । २१ ॥

षोडशः (स्तोमः) हीना वा एते हीयन्ते ये व्रात्यां प्रवसन्ति न हि ब्रह्मचर्य्यञ्चरन्ति न कृषिन्न वाणिज्यां षोडशो वा एतत्स्तोमः समाप्तुमर्हति । तां० १७ । १ । २ ॥
,, मरुत्स्तोमो वा एषः (षोडशः स्तोमः) । तां० १७ । १ । ३ ॥

षोडश कलाः षोडशकलं वै ब्रह्म । जै० उ० ३ । ३८ । ८ ॥
,, सच्चाऽसच्चाऽसच्च सच्च वाक् च मनश्च [मनश्च] वाक् च चक्षुश्च श्रोत्रं च श्रोत्रं च चक्षुश्च श्रद्धा च तपश्च तपश्च श्रद्धा च तानि षोडश ॥ षोडशकलम्ब्रह्म । जै० उ० ४ । २५ । १-२ ॥
,, षोडशकलः प्रजापतिः । श० ७ । २ । २ । १७ ॥
,, स (प्रजापतिः) हैवं षोडशधा ऽऽत्मानं विकृत्य सार्धं समैत् । जै० उ० १ । ४८ । ७ ॥
,, स एष संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलः । श० १४ । ४ । ३ । २२ ॥
,, स (प्रजापतिः) षोडशधा ऽऽत्मानं व्यकुरुत (१) भद्रं च (२) समाप्तिश्च (३) ऽऽभूतिश्च (४) सम्भूतिश्च (५) भूतं च (६) सर्वं च (७) रूपं चा (८) ऽपरिमितं च (९) श्रीश्च (१०) यशश्च (११) नाम चा (१२) ऽग्रं च (१३) सजाताश्च (१४) पयश्च (१५) महीया च (१६) रसश्च । जै० उ० १ । ४६ । २ ॥

षोडश कलाः तस्मा ऽ एतस्मै सप्तदशाय प्रजापतये । एतत्सप्तदशमन्न- ꣳ समस्कुर्वन्य एष सौम्योऽध्वरो ऽथ या अस्य ताः षोडश कला एते ते षोडशाऽर्त्विजः । श० १० । ४ । १ । १६ ॥

" तस्य (संवत्सरस्य प्रजापतेः) रात्रय एव पञ्चदश कला ध्रुवैवास्य षोडशी कला । श० १४ । ४ । ३ । २२ ॥

" षोडशकलो वै चन्द्रमाः । ष० ४ । ६ ॥

" षोडशकलो वै पुरुषः । श० ११ । १ । ६ । ३६ ॥ तै० १ । ७ । ५ । ५ ॥

" यो वै कला मनुष्याणामक्षरं तद्देवानाम् ॥ तद्वै लोमेति द्वेऽअक्षरे । त्वगिति द्वेऽअसृगिति द्वे मेद इति द्वे माꣳ- समिति द्वे स्नावेति द्वेऽअस्थीति द्वे मज्जेति द्वे ताः षो- डश काला अथ य एतदन्तरेण प्राणः संचरति स एव सप्तदशः प्रजापतिः । श० १० । ४ । १ । १७ ॥

" अष्टावेवास्य (प्रजापतेः) कलाः सावित्राण्यष्टौ वैश्वकर्म- णान्यथ यदेतदन्तरेण कर्म क्रियते स एव सप्तदशः प्रजा- पतिः । श० १० । ४ । १ । १९ ॥

" षोडशकला वै पशवः । श० १२ । ८ । ३ । १३ ॥ १३ । ३ । ६ । ५ ॥

" षोडशकलाः पशवः (शिरो ग्रीवा मध्यदेहः पुच्छमिति च- त्वार्य्यङ्गानि च चत्वारः पादाः अष्टौ शफा इत्येवं षोडश- संख्याका इति सायणः) । तां० ३ । १२ । २ ॥ १६ । ६।२॥

" षोडशकलं वा इदं सर्वम् । कौ० ८ । १ ॥ १६ । ४ ॥ १७ । १ ॥ २२ । ६ ॥ श० १३ । २ । २ । १३ ॥

षोडशी (यजु० १५ । ३) एकादशाक्षरा वै त्रिष्टुप्त्रैष्टुभमन्तरिक्षं चत- स्रो दिशः एष एव वज्रः पञ्चदशस्तस्यासावेवादित्यः षोडशी वज्रस्य भर्त्ता । श० ८ । ५ । १ । १० ॥

" असौ वै षोडशी यो ऽसौ (सूर्य्यः) तपति । कौ० १७ । १ ॥

" इन्द्रो ह वै षोडशी । श० ४ । ५ । ३ । १ ॥

" इन्द्रो हि षोडशी । श० ४ । २ । ५ । १४ ॥

" इन्द्र उ वै षोडशी । कौ० १७ । १, ४ ॥

षोडशी (शस्त्रम्, स्तोत्रम्, ग्रहः) अथो षोडशं वा एतत्स्तोत्रं षोडशं शस्त्रं तस्मात्षोडशीत्याख्यायते । कौ० १७ । १ ॥

,, षोळश स्तोत्राणां षोडश शस्त्राणां षोळशभिरक्षरैरादत्ते षोळशभिः प्रणौति षोळशपदान्निविदं दधाति तत्षोळशिनः षोळशित्वम् । ऐ० ४ । १ ॥

,, किं षोडशिनः षोडशित्वं षोडश स्तोत्राणि षोडश शस्त्राणि षोडशभिरक्षरैरादत्ते । गो० उ० ४ । १९ ॥

,, वृषण्वद्वै षोळशिनो रूपम् । ऐ० ४ । ४ ॥

,, सर्वेभ्यो वा एष सवनेभ्यः सन्निर्मितो यत्षोळशी । ऐ० ४।४॥

,, सर्वेभ्यो वा एष छन्दोभ्यः सन्निर्मितो यत्षोळशी । ऐ० ४।३,४॥

,, सर्वेभ्यो वा एष लोकेभ्यः सन्निर्मितो यत् षोळशी । ऐ०४।४॥

,, त्रिवृद्वै षोडशी । कौ० १७ । ३ ॥

,, आनुष्टुभो वै षोडशी । कौ० १७ । २, ३ ॥

,, आनुष्टुभो वा एष वज्रो यत्षोडशी । कौ० १७ । १ ॥

,, वज्रो वा एष यत्षोळशी । ऐ० ४ । १ ॥

,, वज्रो वै षोडशी । तां० १२ । १३ । १४ ॥ १९ । ६ । २ ॥ गो० उ० २ । १३ ॥

,, वज्रः षोडशी । ष० ३ । ११ ॥

,, इन्द्रियं वीर्य्यंꣳ षोडशी । तां० २१ । ५ । ६ ॥

,, वीर्यंꣳ षोडशी । श० १२ । २ । २ । ७ ॥

,, अतिरिक्तो वै षोडशी । तां० ६ । १ । ५ ॥

,, अपछदिव वा एतद्यज्ञकाण्डं यत् षोडशी (साम) । तां० १८ । ६ । २३ ॥

,, एकविंशायतनो वा एष यत् षोडशी सप्त हि प्रातःसवने होत्रा वषट् कुर्वन्ति सप्त माध्यन्दिने सवने सप्त तृतीये सवने । तां० १२ । १३ । ८ ॥

ष्ठीवन्तौ पङ्क्तिश्छन्दो मरुतो देवता ष्ठीवन्तौ : श० १० । ३ । २।१०॥

(स)

संकृति (साम) संकृति भवति सꣳस्कृत्यै । तां० १५ । ३ । २८ ॥

,, अहर्वा एतद्व्लीयत तद्देवा देवस्थाने तिष्ठन्तः संकृतिना समस्कुर्वꣳस्तत् संकृतेः संकृतित्वम् । तां० १५ । ३ । २९ ॥

संक्रोशः (सामविशेषः , एतेन वा अङ्गिरसः संक्रोशमानाः स्वर्गं लोकमायन् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवन्ते तुष्टुवानः । तां० १२ । ३ । २३ ॥

संज्ञपनम् यत्पशुं संज्ञपयन्ति विशासति तत्तं घ्नन्ति (पश्यत—ऐ० २ । ६, ७ ॥ ७ । १ ॥ कौ० १० । ४, ५ ॥ गो० पू० ३ । १८ ॥ गो० उ० २ । १ ॥) । श० २ । २ । २ । १ ॥ ११ । १ । २ । १ ॥

„ अथैतत्पशुं घ्नन्ति यत्संज्ञपयन्ति यद्विशासति । श० ३ । ८ । २ । ४ ॥

„ घ्नन्ति वा एतत्पशुम् । यदेनं संज्ञपयन्ति । श० १३ । २ । ८ । २ ॥

संयच्छंदः (यजु० १५ । ५) रात्रिर्वै संयच्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

संयद्वसुः (यजु० १५ । १८) यत्संयद्वसुरित्याह यज्ञं हि संयन्तीतीदं वस्विति । श० ८ । ६ । १ । १९ ॥

संयाज्ये प्रतिष्ठे वै संयाज्ये । कौ० ७ । ६ ॥

संवत्सरः स ऐक्षत प्रजापतिः । सर्वं वाऽ अत्सारिषं य इमा देवता असृक्षीति स सर्वत्सरोऽभवत् सर्वत्सरो ह वै नामैतद्यत्संवत्सर इति । श० ११ । १ । ६ । १२ ॥

„ यः स भूतानां पतिः संवत्सरः सः । श० ६ । १ । ३ । ८ ॥

„ संवत्सरो वै प्रजापतिः । श० २ । ३ । ३ । १८ ॥ ३ । २ । २ । ४ ॥ ५ । १ । २ । ९ ॥

„ संवत्सरो वै प्रजापतिरेकशतविधः । श० १० । २ । ६ । १ ॥

„ संवत्सरः प्रजापतिः । ऐ० १ । १, १३, २८ ॥ २ । १७ ॥ तां० १६ । ४ । १२ ॥ गो० उ० ३ । ८ ॥ ६ । १ ॥ तै० १ । ४ । १० । १० ॥

स (संवत्सरः) एव प्रजापतिस्तस्य मासा एव सद्दीक्षिणः । तां० १० । ३ । ६ ॥

„ स वै संवत्सर एव प्रजापतिः । श० १ । ६ । ३ । ३५ ॥

„ प्रजापतिः संवत्सरः । ऐ० ४ । २५ ॥

„ स एव प्रजापतिरेव संवत्सरः । कौ० ६ । १५ ॥

„ संवत्सरो यज्ञः प्रजापतिः । श० १ । २ । ५ । १२ ॥ २ । २ । २ । ४ ॥

संवत्सरः संवत्सरो वै यज्ञः प्रजापतिः । तस्यैत(द्) द्वारं यदमावास्या चन्द्रमा एव द्वारपिधानः । श० ११ । १ । १ । १ ॥
,, संवत्सरो यज्ञः । श० ११ । २ । ७ । १ ॥
,, संवत्सरसंमितो वै यज्ञः पञ्च वाऽ ऋतवः संवत्सरस्य तं पञ्चभिराप्नोति तस्मात्पञ्च जुहोति । श० ३ । १ । ४ । ५ ॥
,, संवत्सरो वै पञ्चहोता । तै० २ । २ । ३ । ६ ॥
,, संवत्सरो वाव होता । गो० उ० ६ । ६ ॥
,, संवत्सरो वै होता । कौ० २९ । ८ ॥
,, संवत्सरो वै धाता । तै० १ । ७ । २ । १ ॥
,, पुरुषो वै संवत्सरः । श० १२ । २ । ४ । १ ॥
,, पुरुषो वाव संवत्सरः । गो० पू० ५ । ३, ५ ॥
,, प्राणो वै संवत्सरः । तां० ५ । १० । ३ ॥
,, वाक् संवत्सरः । तां० १० । १२ । ७ ॥
,, बृहती हि संवत्सरः । श० ६ । ४ । २ । १० ॥
,, तदाहुस्संवत्सर एव सामेति । जै० उ० १ । ३५ । १ ॥
,, संवत्सरः स्वर्गाकारः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥
,, अग्निः संवत्सरः । तां० १७ । १३ । १७ ॥
,, अग्निर्वाव संवत्सर । तै० १ । ४ । १० । १ ॥
,, संवत्सरोऽग्निः । श० ६ । ३ । १ । २५ ॥ ६ । ३ । २ । १० ॥ ६ । ६ । १ । १४ ॥ तां १० । १२ । ७ ॥
,, संवत्सर एवाग्निः । श० १० । ४ । ५ । २ ॥
,, संवत्सर एषोऽग्निः । श० ६ । ७ । १ । १८ ॥
,, संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः । तै० १ । ७ । २ । ५ ॥ श० ६ । ६ । १ । २० ॥
,, संवत्सरोऽग्निर्वैश्वानरः । ऐ० ३ । ४१ ॥
,, संवत्सरो वैश्वानरः । श० ५ । २ । ५ । १५ ॥ ६ । २ । १ । ३६ ॥ ६ । ६ । १ । ५ ॥ ७ । ३ । १ । ३५ ॥ ९ । ३ । १ । १ ॥
,, संवत्सरो वै वैश्वानरः । श० ४ । २ । ४ । ४ ॥ ५ । २ । ५ । १४ ॥
,, संवत्सरो वै पिता वैश्वानरः प्रजापतिः । श० १ । ५ । १ । १६ ॥
,, संवत्सरो वै सोमो राजा (ऋ० ४ । ५३ । ७) । कौ० ७ । १० ॥

संवत्सरः संवत्सरो वै सोमः पितृमान् । तै० १ । ६ । ८ । २ ॥ १ । ६ । ९ । ५ ॥

„ संवत्सरो वा इन्द्राशुनासीरः । तै० १ । ७ । १ । १ ॥

„ इन्द्राय शुनासीराय (=संवत्सराय) पुरोडाशं द्वादशकपालं निर्वपति । तै० १ । ७ । १ । १ ॥

„ संवत्सरो वै शुनासीरः । गो० उ० १ । २६ ॥

„ स यः स संवत्सरो ऽसौ स आदित्यः । श० १० । २ । ४ । ३ ॥

„ एष वै संवत्सरो य एष (आदित्यः) तपति । श० १४ । १ । १ । २७ ॥

„ एष वै मृत्युर्यत्संवत्सरः ! एष हि मर्त्यानामहोरात्राभ्यामायुः क्षिणोत्यथ म्रियन्ते । श० १० । ४ । ३ । १ ॥

„ संवत्सरो विश्वकर्मा । ऐ० ४ । २२ ॥

„ संवत्सरो वरुणः । श० ४ । ४ । ५ । १८ ॥

„ संवत्सरो हि वरुणः । श० ४ । १ । ४ । १० ॥

„ व्योमा (यजु० १४ । २३) हि संवत्सरः । श० ८ । ४ । १ ।११॥

„ सुमेकः संवत्सरः स्वेको ह वै नामैतद्यत्सुमेक इति । श० १ । ७ । २ । २६ ॥

„ संवत्सरो वै समस्तः सहस्रवांस्तोकवान्पुष्टिमान् । ऐ० २।४१॥

„ संवत्सरो वै परिक्षित्, संवत्सरो हीमाः प्रजाः परिक्षेति, संवत्सरं हीमाः प्रजाः परिक्षियन्ति । ऐ० ६ । ३२ ॥

„ संवत्सरो वै परिक्षित् संवत्सरो हीदं सर्वं परिक्षियतीति । गो० उ० ६ । १२ ॥

„ संवत्सरो वै प्रवतः शश्वतीरपः । तां० ४ । ७ । ६ ॥

„ संवत्सरो वज्रः । श० ३ । ६ । ४ । १९ ॥

„ संवत्सरो हि वज्रः । श० ३ । ४ । ४ । १५ ॥

„ संवत्सरो यजमानः । श० ११ । २ । ७ । ३२ ॥

„ अभ्रातृव्या (प्रजापतेस्तनूविशेषः) तत्संवत्सरः । ऐ० ५ । २५ ॥ कौ० २७ । ५ ॥

„ अग्निष्टोम उक्थ्यो ऽग्निर्ऋतुः प्रजापतिः संवत्सर इति । एते ऽनुवाका यज्ञक्रतूनाञ्चर्तूनाञ्च संवत्सरस्य च नामधेयानि । तै० ३ । १० । १० । ४ ॥

संवत्सरः संवत्सरो वै देवानां जन्म । श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥

,, संवत्सरः खलु वै देवानां पूः । तै० १ । ७ । ७ । ५ ॥

,, तस्य (संवत्सरस्य) वसन्त एव द्वारꣳ हेमन्तो द्वारं तं वाऽ एतꣳ संवत्सरꣳ स्वर्गं लोकं प्रपद्यते । श० १ । ६ । १ । १९ ॥

,, संवत्सरः सुवर्गो लोकः । तै० २ । २ । ३ । ६ ॥ ३ । ९ । २ । २ ॥ श० ८ । ४ । १ । २४ ॥ ८ । ६ । १ । ४ ॥ तां० १८ । २ । ४ ॥

,, मध्ये ह संवत्सरस्य स्वर्गो लोकः । श० ६ । ७ । ४ । ११ ॥

,, संवत्सरो वाव नाकः षट्त्रिꣳशस्तस्य चतुर्विꣳशतिरर्ध-मासा द्वादश मासास्तद्यत्तमाह नाक इति न हि तत्र गताय कस्मैचनाकं भवति । श० ८ । ४ । १ । २४ ॥

,, संवत्सरो वै देवानां गृहपतिः । तां० १० । ३ । ६ ॥

,, एकं वा एतद्देवानामहः । यत्संवत्सरः । तै० ३ । ९ । २२ । १ ॥

,, सद्यो वै देवानांꣳ संवत्सरः । तां० १६ । ६ । ११ ॥

,, इमऽ उ लोकाः संवत्सरः । श० ८ । २ । १ । १७ ॥

,, सर्वं वै संवत्सरः । श० १ । ६ । १ । १९ ॥ १ । ७ । २ । २४ ॥ ४ । २ । २ । ७ ॥ १० । २ । ५ । १६ ॥ ११ । १ । २ । १२ ॥

,, संवत्सर इदꣳ सर्वम् । श० ८ । ७ । १ । १ ॥

,, संवत्सरो वाऽ ऋतव्याः (इष्टकाः) । श० ८ । ६ । १ । ४ ॥ ८ । ७ । १ । १ ॥

,, ऋतवः संवत्सरः । तै० ३ । ९ । ९ । १ ॥

,, ऋषभो वा एष ऋतूनाम् । यत्संवत्सरः । तस्य त्रयोदशो मासो विष्टपम् । तै० ३ । ८ । ३ । ३ ॥

,, त्रयो वाऽ ऋतवः संवत्सरस्य । श० ३ । ४ । ४ । १७ ॥ ११ । ५ । ४ । ११ ॥

,, त्रेधा विहितो वै संवत्सरः । कौ० १६ । ३ ॥

,, पञ्चऽर्तवः संवत्सरस्य । श० १ । ५ । २ । १६ ॥ ३ । १ । ४ । २० ॥

,, षड्वाऽ ऋतवः संवत्सरस्य । श० १ । २ । ५ । १२ ॥

,, सप्तऽर्तवः संवत्सरः । श० ६ । ६ । १ । १४ ॥ ७ । ३ । २ । ९ ॥ ९ । १ । १ । २६ ॥

संवत्सरः द्वादश वा वै त्रयोदश वा संवत्सरस्य मासाः। श० २।२।३।२७॥ श० ५।४।५।२३॥

,, संवत्सरस्य प्रतिमा वै द्वादश रात्रयः। तै० १।१।६।७॥ १।१।६।१०॥

,, त्रयोदश वै मासाः संवत्सरस्य। श० ३।६।४।२४॥

,, एतावान्वै संवत्सरो यदेष त्रयोदशो मासस्तदत्रैव सर्वः संवत्सर आप्तो भवति। कौ० १९।२॥

,, एतावान्वै संवत्सरो यदेष त्रयोदशो मासस्तदत्रैव सर्वः संवत्सर आप्तो भवति। कौ० ५।८॥

,, स एष संवत्सरः प्रजापतिः षोडशकलः। श० १४।४।३।२२॥

,, संवत्सरः सप्तदशः। तां० ६।२।२॥

,, सप्तदशो वै संवत्सरो द्वादश मासाः पञ्चर्तवः। श० ६।२।२।८॥

,, संवत्सर एव सप्तदशस्यायतनं द्वादश मासाः पञ्चर्तव एतदेव सप्तदशस्यायतनम्। तां० १०।१।७॥

,, द्वादश वै मासाः संवत्सरस्य पञ्चर्तव एष एव प्रजापतिः सप्तदशः। श० १।३।५।१०॥

,, सप्तदशो वै प्रजापतिर्द्वादश मासाः पंचर्तवो हेमन्तशिशिरयोः समासेन तावान्त्संवत्सरः, संवत्सरः प्रजापतिः। ऐ० १।१॥

,, संवत्सरो वाव प्रतूर्तिरष्टादशः (यजु० १४।२३) तस्य द्वादश मासाः पञ्चऽर्तवः संवत्सर एव प्रतूर्तिरष्टादशस्तद्यत्तमाह प्रतूर्तिरिति संवत्सरो हि सर्वाणि भूतानि प्रतिरति। श० ८।४।१।१३॥

,, संवत्सरो वाव तपो नवदशः (यजु० १४।२३॥) तस्य द्वादश मासाः षड् ऋतवः संवत्सर एव तपो नवदशस्तद्यत्तमाह तप इति संवत्सरो हि सर्वाणि भूतानि तपति। श० ८।४।१।१४॥

,, संवत्सरो वाव वर्चो द्वाविंशः (यजु० १४।२३) तस्य द्वादश मासाः सप्तऽर्तवो द्वेऽअहोरात्रे संवत्सर एव वर्चो

द्वाविंशस्तद्यत्तमाह वर्च इति संवत्सरो हि सर्वेषां भूतानां वर्चस्वितमः । श० ८ । ४ । १ । १६ ॥

संवत्सरः संवत्सरो वाव सम्भरणस्त्रयोविंशः (यजु० १४ । २३) तस्य त्रयोदश मासाः सप्तऽर्तवो द्वेऽअहोरात्रे संवत्सर एव सम्भरणस्त्रयोविंशस्तद्यत्तमाह सम्भरण इति संवत्सरो हि सर्वाणि भूतानि सम्भृतः । श० ८ । ४ । १ । १७ ॥

" चतुर्विंशो वै संवत्सरः । तां० ४ । १० । ४ ॥

" चतुर्विंशत्यर्धमासो वै संवत्सरः । ऐ० ८ । ४ ॥

" संवत्सरो वाव गर्भाः पञ्चविंशस्तस्य चतुर्विंशतिरर्धमासाः संवत्सर एव गर्भाः पञ्चविंशः । श० ८ । ४ । १ । १६॥

" संवत्सरो वाव 'प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशः' (यजु० १४ । २३) तस्य चतुर्विंशतिरर्धमासाः षड् ऋतवो द्वेऽअहोरात्रे संवत्सर एव प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशस्तद्यत्तमाह प्रतिष्ठेति संवत्सरो हि सर्वेषां भूतानां प्रतिष्ठा । श० ८ । ४ । १ । २२ ॥

" संवत्सरो वाव ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशस्तस्य चतुर्विंशतिरर्धमासाः सप्तऽर्तवो द्वे अहोरात्रे संवत्सर एव ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशः (यजु० १४ । २३)। श० ८ । ४ । १ । २३ ॥

" संवत्सरो वाव विवर्तोऽष्टाचत्वारिंशः (यजु० १४ । २३) षड्विंशतिरर्धमासास्त्रयोदश मासाः सप्तऽर्तवो द्वे अहोरात्रे तद्यत्तमाह विवर्त इति संवत्सराद्धि सर्वाणि भूतानि विवर्तन्ते । श० ८ । ४ । १ । २५ ॥

" त्रीणि वै षष्टि शतानि संवत्सरस्याह्नाम् । कौ० ११ । ७ ॥

" त्रीणि च ह वै शतानि षष्टिश्च संवत्सरस्याहोरात्राणि । गो० पू० ५ । ५ ॥

" एतावान्वै संवत्सरो यदहोरात्रे । कौ० १७ । ५ ॥

" विरूपः (=नानारूपः) संवत्सरः । तां० १४ । ९ । ८ ॥

" यस्मादेषा समाना सती षडहविभक्तिर्नानारूपा तस्माद्विरूपः संवत्सरः । तां० १० । ६ । ७ ॥

" षडहो वा उ सर्वः संवत्सरः । कौ० १९ । १० ॥

" नवाहो वै संवत्सरस्य प्रतिमा । ष० ३ । १२ ॥

संवत्सरः संवत्सरस्य प्रतिमां यां (एकाष्टकारूपां) त्वां रात्रिं यजामहे। मं० २। २ १८॥

,, संवत्सरस्य या पत्नी (एकाष्टकारूपा) सा नो अस्तु सुमङ्गली (अथर्व० ३। १०। २)। मं० २। २। १६॥

,, एषा वै संवत्सरस्य पत्नी यदेकाष्टका। तां० । ५। ९। २॥

,, मुखं वा एतत्संवत्सरस्य यत्फाल्गुनी पौर्णमासी। कौ० ४। ४॥ ५। १॥ तां० ५। ९। ८॥ गो० उ० १। १९॥

,, मुखं (संवत्सरस्य) उत्तरे फल्गुन्यौ पुच्छं पूर्वे। गो० उ० १। १९॥

,, एषा ह संवत्सरस्य प्रथमा रात्रिर्यत्फाल्गुनी पौर्णमासी। श० ६। २। २। १८॥

,, एषा वै प्रथमा रात्रिः संवत्सरस्य यदुत्तरे फल्गुनी। तै० १। १। २। ९॥

,, एषा वै जघन्या रात्रिः संवत्सरस्य यत्पूर्वे फल्गुनी। तै० १। १। २। ९॥

,, किं नु ते मयि (संवत्सरे) इति। अयम्म आत्मा। स (आत्मा) मे त्वयि (संवत्सरे)। जै० उ० ३। २४। ८॥

,, आत्मा वा एष संवत्सरस्य यद्विषुवान्। तां० ४। ७। १॥

,, आत्मा वै संवत्सरस्य विषुवानङ्गानि पक्षौ (=दक्षिणः पक्ष उत्तरः पक्षश्च)। गो० पू० ४। १८॥

,, आत्मा वै संवत्सरस्य विषुवानङ्गानि मासाः। श० १२। २। ३। ६॥

,, अथ ह वाऽ एष महासुपर्ण एव यत्संवत्सरः। तस्य यान्पुरस्ताद्विषुवतः षण्मासानुपयन्ति सो ऽन्यतरः पक्षो ऽथ यान्षडुपरिष्टात्सो ऽन्यतर आत्मा विषुवान्। श० १२। २। ३। ७॥

,, संवत्सरो वै व्रतं तस्य वसन्त ऋतुर्मुखं ग्रीष्मश्च वर्षाश्च पक्षौ शरन्मध्यꣳ हेमन्तः पुच्छम्। तां० २१। १५। २॥

तस्य (संवत्सरस्य) वसन्तः शिरः। तै० ३। ११। १०। २॥

वर्षा उत्तरः (पक्षः संवत्सरस्य)। तै० ३। ११। १०। ३॥

संवत्सरः वर्षा पुच्छम् (संवत्सरस्य) । तै० ३ । ११ । १० । ४ ॥

,, संवत्सरं संवत्सरे वै रेतः सिक्तं जायते । ऐ० ४ । १४ ॥

,, संवत्सरं संवत्सरे वै रेतःसिक्तिर्जायते । कौ० १९ । ९ ॥

,, संवत्सरो वै प्रजननम् । गो० पू० २ । १५ ॥

,, संवत्सरं हि प्रजाः पशवो ऽनुप्रजायन्ते । तां० १० । १ । ९ ॥

,, तस्मादु संवत्सरऽ एव स्त्री वा गौर्वा वडवा वा विजायते । श० ११ । १ । ६ । २ ॥

,, संवत्सरऽ एव कुमारो व्याजिहीर्षति । श० ११ । १ । ६ । ३ ॥

,, तस्मात्संवत्सरवेलायां प्रजाः (=शिशवः) वाचं प्रवदन्ति । श० ७ । ४ । २ । ३८ ॥

,, चक्षुर्वा एतत्संवत्सरस्य यच्चित्रापूर्णमासः । तां० ५ । ९ । ११ ॥

,, प्रजापतेर्ह वै प्रजाः ससृजानस्य पर्वाणि विसस्रꣳसुः । स वै संवत्सरऽ एव प्रजापतिस्तस्यैतानि पर्वाण्यहोरात्रयोः सन्धी पौर्णमासी चामावास्या चर्त्तुमुखानि । श० १ । ६ । ३ । ३५ ॥

,, संवत्सरो ऽसि नक्षत्रेषु श्रितः । ऋतूनां प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । १४ ॥

,, (नक्षत्राणि) संवत्सरस्य प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । १३ ॥

,, तस्मादाहुः संवत्सरः सर्वे कामा इति । श० १० । २ । ४ । १ ॥

,, संवत्सरो वै सर्वस्य शान्तिः । तां० ६ । ८ । १३ ॥

संवेश उपवेशः छन्दाꣳसि वै संवेश उपवेशः । तै० १ । ४ । ६ । ४ ॥

संशानानि (सामानि) अथ यस्मात्संꣳशानानि नाम । एतैर्वै सामभिर्देवा इन्द्रमिन्द्रियाय वीर्याय समश्यन् । श० १२ । ८ । ३ । २६ ॥

,, अथ कस्मात्संश्यानानि नाम एतैर्वै सामभिर्देवा इन्द्रमिन्द्रियेण वीर्य्येण समश्यन् । गो० उ० ५ । ७ ॥

संसृपः (देवताः, हवींषि) वरुणस्य सुषुवाणस्य दशधेन्द्रियं वीर्यं परापतत् । तत्स ꣳसृद्भिरनुसमसर्पत् । तत्सꣳसृपाꣳ सꣳसृप्त्वम् । तै० १ । ८ । १ : १ ॥

,, तद्यद्देवताभिर्देवताभिरनुसमसर्पत् । तस्मात्सꣳसृपो नाम । श० ५ । ५ । ५ । ३ ॥

संस्कारः यस्य (ब्राह्मणस्य) गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्म-नामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनगोदानचूडाकरणोपनयनाप्लवनाग्निहोत्रव्रतचर्य्यादीनि कृतानि भवन्ति स सान्तपनः। गो० पू० ३। २३।

संस्तुप्छन्दः (यजु० १५। ५) वागेव सꣳस्तुप्छन्दः। श० ८। ५। २। ५॥

संस्थाः यास्सत संस्था या एवैतास्सत होत्राः प्राचीर्वषट्कुर्वन्ति ता एव ताः। जै० उ० १। २१। ४॥

संस्थितयजूंषि (देवाः) यत्समस्थापयंस्तस्मात्सꣳस्थितयजूꣳषि। श० ६। ५। १। २९॥

संस्रवभागाः वसवो वै रुद्रा आदित्या सꣳस्रावभागाः ('सꣳस्रवभागाः'—यजु० २। १८॥ विलीनमाज्यं संस्रव इति महीधरः) तै० ३। ३। ९। ७॥

संहितः (यजु० १८। ३९) असौ वा आदित्यः सꣳहित एष ह्यहोरात्रे संदधाति। श० ९। ४। १। ८॥

संहितम् (साम) तद्देवाः संहितेन समदधुर्य्यत्समदधुस्तस्मात्संहितम्। तां ८। ४। ९॥

,, सꣳहितं भवति द्व्यक्षरणिधनं प्रतिष्ठायै प्रतिष्ठायैव सत्रमासते। तां० ११। ५। ४॥

,, संहितं भवति द्व्यक्षरणिधनं प्रतिष्ठायै। तां० १५। ११। ३॥

सक्तवः देवानां वा ऽ एतद्रूपं यत्सक्तवः। श० १३। २। १। ३॥

,, प्रजापतेर्वा एतद्रूपम्। यत्सक्तवः। तै० ३। ८। १४। ५॥

सखा सखायः सप्तपदा अभूम। तै० ३। ७। ७। ११॥

सखा भक्षः प्राणो वै सखा भक्षः। श० १। ८। १। २३॥

सगरा सगरा रात्रिः (सगरः=ऋतुविशेषः—तैत्तिरीयसंहितायां ४। ४। ७। २॥ ५। ३। ११। ३॥ सायणभाष्ये ऽपि)। श० १। ७। २। २६॥

सङ्गवः (कालविशेषः) मित्रस्य सङ्गवः। तै० १। ५। ३। १॥

सजाताः (= 'ज्ञातयः'' इति सायणः॥ यजु० १। १७) भूमा वै सजाताः। श० १। २। १। ७॥

सजाताः प्राणा वै सजाताः प्राणैर्हि सह जायते । श० १ । ६ । १ । १५ ॥

सजूः (यजु० १४ । ७) अथैवैतद्यजमान एताभिर्देवताभिः (ऋत्वादिभिः) सयुग्भूत्वैताः प्रजाः प्रजनयति तस्माद्ु सर्वास्वेव सजूः सजूरित्यनुवर्तते । श० ८ । २ । २ । ७ ॥

सञ्जयम् (साम) ते देवा असुरान् सञ्जयन समजयन् यत्समजयꣳ स्तस्मात्सञ्जयम्पशूनामवरुध्यै सञ्जयं क्रियते । तां० १३ । ६ । ७ ॥

सत तयोः (सदसतोः) यत सत् तन्नाम तन्मनस्स प्राणः । जै० उ० १ । ५३ । २ ॥

„ सदमृतम् । श० १४ । ४ । १ । ३१ ॥

सतश्च योनिरसतश्च (यजु० १३ । ३) इमे वै लोकाः सतश्च योनिरसतश्च यच्च ह्यस्ति यच्च न तदेभ्य एव लोकेभ्यो जायते । श० ७ । ४ । १ । १४ ॥

सतोबृहती शिथिलमिव वा एतच्छन्दो यत्सतोबृहती । तां० १४।१०।३॥

„ शिथिलमिव वा एतत् छन्दश्चराचरं यत् सतोबृहती । तां० १७ । १ । १२ ॥

„ सतोबृहत्या वै देवा इमान् लोकान् व्याप्नुवन्निमानेवैताभिर्लोकान् व्याप्नोति । तां० १६ । ११ । ९ ॥

„ प्राणाः सतोबृहती । ऐ० ६ । २८ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥

„ पशवः सतोबृहती । ऐ० ६ । २८ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥

„ प्रजाः सतोबृहती । गो० उ० ६ । ८ ॥

सत्पतिश्चेकितानः (यजु० १५ । ५१) सत्पतिश्चेकितान इत्ययमग्निः सतां पतिश्चेतयमान इत्येतत् । श० ८ । ६ । ३ । २० ॥

सत्यम तदेतत्त्र्यक्षरꣳ सत्यमिति स इत्येकमक्षरं तीत्येकमक्षरम मित्येकमक्षरं प्रथमोत्तमे अक्षरे सत्यं मध्यतो ऽनृतम् । श० १४ । ८ । ६ । २ ॥

„ तद्यत्तत्सत्यम् । त्रयी सा विद्या । श० ९ । ५ । १ । १८ ॥

„ सत्यं वा ऋतम् । श० ७ । ३ । १ । २३ ॥ १४ । ३ । १ । १८ ॥ तै० ३ । ८ । ३ । ४ ॥

सत्यम् ऋतमिति (यजु० १२ । १४) सत्यमित्येतत् । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥

,, यो वै धर्मः सत्यं वै तत्तस्मात्सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति धर्मं वा वदन्तꣳ सत्यं वदतीति । श० १४ । ४ । २ । २६ ॥

,, सत्यं वै सुकृतस्य लोकः । तै० ३ । ३ । ६ । ११ ॥

,, एतत्खलु वै व्रतस्य रूपं यत्सत्यम् । श० १२ । ८ । २ । ४ ॥

,, एकꣳ ह वै देवा व्रतं चरन्ति सत्यमेव । श० ३ । ४ । २ । ८ ॥

,, एकꣳ ह वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं तस्मादु सत्यमेव वदेत् । श० १४ । १ । १ । ३३ ॥

,, सत्यसंहिता वै देवाः । ऐ० १ । ६ ॥

,, सत्यमया उ देवाः । कौ० २ । ८ ॥

,, सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः । श० १ । १ । १ । ४ ॥ १ । १ । २ । १७ ॥ ३ । ३ । २ । २ ॥ ३ । ६ । ४ । १ ॥

,, एवꣳ ह वाऽ अस्य जितमनपजय्यमेवं यशो भवति य एवं विद्वान्त्सत्यं वदति । श० ३ । ४ । २ । ८ ॥

,, स यः सत्यं वदति यथाग्निꣳ समिद्धं तं घृतेनाभिषिञ्चेदेवꣳ हैनꣳ स उद्दीपयति तस्य भूयो भूय एव तेजो भवति श्वः श्वः श्रेयान्भवत्यथ यो ऽनृतं वदति यथाग्निꣳ समिद्धं तमुदकेनाभिषिञ्चेदेवꣳ हैनꣳ स जासयति तस्य कनीयः कनीय एव तेजो भवति श्वः श्वः पापीयान्भवति तस्मादु सत्यमेव वदेत् । श० २ । २ । २ । १९ ॥

,, तस्मादु हैतद्य आसक्ति सत्यं वदत्यैषावीरतर-इवैव भवत्यनाढ्यतर-इव स ह त्वेवान्ततो भवति देवा ह्येवान्ततो भवन् । श० ९ । ५ । १ । १६ ॥

,, (उद्दालकः) तस्मै (प्राचीनयोग्याय) हैताꣳ शोकतरां व्याहृतिमुवाच यत्सत्यं तस्मादु सत्यमेव वदेत् । श० ११ । ५ । ३ । १३ ॥

,, स यः सत्यं वदति स दीक्षितः । कौ० ७ । ३ ॥

,, सत्ये ह्येव दीक्षा प्रतिष्ठिता भवति । श० १४ । ६ । ९ । २४ ॥

,, तस्यै वाचः सत्यमेव ब्रह्म । श० २ । १ । ४ । १० ॥

सत्यम् सत्यं ब्रह्म । श० १४ । ८ । ५ । १ ॥
,, सत्यं ब्रह्मणि (प्रतिष्ठितम्) । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥
,, आपः सत्य (प्रतिष्ठिताः) । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥
,, तद्यत्तत्सत्यम् आप एव तदापो हि वै सत्यम् । श० ७ । ४ । १ । ६ ॥
,, सत्यं वा एतत् । यद्वर्षति । तै० १ । ७ । ५ । ३ ॥
,, असावादित्यः सत्यम् । तै० २ । १ । ११ । १ ॥
,, तद्यत्सत्यम् । असौ स आदित्यः । श० ६ । ७ । १ । २ ॥
,, तद्यत्तत्सत्यम् । असौ स आदित्यो य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः । श० १४ । ८ । ६ । ३ ॥
,, सत्यमेष य एष (आदित्यः) तपति । श० १४ । १ । २ । २२ ॥
,, (यजु० ११ । ४७) अयं वाऽ अग्निर्ऋतमसावादित्यः सत्यं यदि वासौ (आदित्यः) ऋतमयꣳ (अग्निः) सत्यमुभयम्वेतद-यमग्निः । श० ६ । ४ । ४ । १० ॥
,, सत्यं वै शुक्रम् । श० ३ । ६ । ३ । २५ ॥
,, सत्यं वै हिरण्यम् । गो० उ० ३ । १७ ॥
,, प्राणा वै सत्यम् । श० १४ । ५ । १ । २३ ॥
,, चक्षुर्वै सत्यम् । तै० ३ । ३ । ५ । २ ॥
,, एतद्वै मनुष्येषु सत्यं यच्चक्षुः । गो० उ० २ । २३ ॥
,, इयं (पृथिवी) एव सत्यमियꣳ ह्येवैषां लोकानामद्धातमाम् । श० ७ । ४ । १ । ८ ॥
,, नामरूपे सत्यम् । श० १४ ४ । ४ । ३ ॥
,, श्रद्धा पत्नी सत्यं यजमानः । ऐ० ७ । १० ॥
,, सत्यꣳ ह होतैषामासीत् यद्विश्वसृज आसत । तै० ३ । १२ ९ । ३ ॥
सत्याचर्षणीधृदनर्वा (ऋ० ४ । १७ । २०) इयं (पृथिवी) वै सत्याचर्ष-णीधृदनर्वा । ऐ० ३ । ३८ ॥
सत्यानृते वाचो वा एतौ स्तनौ, सत्यानृते वाव ते (द्वे अक्षरे) । गो० उ० ४ । १९ ॥
सत्याशीः साम हि सत्याशीः । तां० ११ । १० । १० ॥ १३ । १२ । ७ ॥ १५ । ५ । १३ ॥

सत्रम् आत्मदक्षिणं वै सत्रम् । कौ० १५ । १ ॥

" आत्मदक्षिणं वा एतद्यत्सत्रम् । तां० ४ । ९ । १९ ॥

" सर्व्वान् लोकानहीनेन । अथो सत्रेण (अभिजयति) । तै० ३ । १२ । ५ । ७ ॥

सत्रासाहीयम् (साम) यद्वा असुराणामसोढमासीत्तद्देवाः सत्रासाहीयेनासहन्त सत्रैनानसक्ष्महीति तत्सत्रासाहीयस्य सत्रासाहीयत्वम् । तां० १२ । ९ । २१ ॥

" सत्रा भ्रातृव्यꣳ सहते सत्रासाहीयेन तुष्टुवानः । तां० १२ । ६ । १२ ॥

सत्वन्तः (बहुवचने) शतानीकः समन्तासु मेध्यꣳ सात्राजितो हयम् । आदत्त यज्ञं काशीनां भरतः सत्वतामिवेति । श० १३ । ५ । ४ । २१ ॥

" तस्माद्धाप्येतर्हि भरताः सत्वनां (? सत्वतां) वित्तिं प्रयान्ति तुरीये हैव संग्रहीतारो वदन्ते । ऐ० २ । २५ ॥

" तस्मादेतस्यां दक्षिणस्यां दिशि ये के च सत्वतां राजानो भौज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते भोजेत्येनानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥

सदः यदस्मिन्विश्वे देवा असीदंस्तस्मात्सदो नाम तऽ उऽएवास्मिन्नेते ब्राह्मणा विश्वगोत्राः सीदन्ति । श० ३ । ५ । ३ । ५ ॥ ३ । ६ । १ । १ ॥

" उदरं वै सदः । कौ० ११ । ८ ॥

" उदरमेवास्य (यज्ञस्य) सदः । श० ३ । ५ । ३ । ५ ॥

" (पुरुषस्य) उदरं सदः । कौ० १७ । ७ ॥

" प्रजापतेर्वा एतदुदरं यत्सदः । तां० ६ । ४ । ११ ॥

" तस्मात्सदस्यृक्सामाभ्यां कुर्वन्त्यैन्द्रꣳ हि सदः । श० ४ । ६ । ७ । ३ ॥

" ऐन्द्रꣳ हि सदः । श० ३ । ६ । १ । २२ ॥

" तस्मादुदीचीनवꣳशꣳ सदो भवति । श० ३ । ६ । १ । २३ ॥

" तस्य पृथिवी सदः । तै० २ । १ । ५ । १ ॥

सदस्यः (पुरुषस्य) प्रजातिः सदस्यः । कौ० १७ । ७ ॥

" (पुरुषस्य) प्रजापतिः (? प्रजातिः) सदस्यः । गो० उ० ५ । ४ ॥

सदस्यः सदस्या ऋतवो ऽभवन् । तै० ३ । १२ । ६ । ४ ॥

सदानीरा (नदी) सैषा (सदानीरा) अप्येतर्हि कोसलविदेहानां मर्यादा । श० १ । ४ । १ । १७ ॥

सदोविशीयम् (ब्रह्मसाम) पशवः सदोविशीयम् । तां० १८ । ४ । ६ ॥

सद्यःक्रीः (एकाहः सामयोगः) तऽ एतेन सद्यःक्रियाङ्गिरस आदित्यान-याजयन् । श० ३ । ५ । १ । १७ ॥

,, अस्माभिः (अङ्गिरोभिः) एष प्रतिगृहीतो य एष (सूर्यः) तपतीति तस्मात्सद्यःक्रियो ऽश्वः श्वेतो दक्षिणा । श० ३ । ५ । १ । १६ ॥

सधमादः (यजु० १० । ७) अनतिमानिन्य इत्येवैतदाह यदाह सधमाद इति । श० ५ । ३ । ५ । १९ ॥

सधस्थः (यजु० १८ । ५९) स्वर्गो वै लोकः सधस्थः । श० ६ । ५ । १ । ४६ ॥

सनातनः पृणक्षि सानासि क्रतुम् (यजु० १२ । १०९) इति पृणक्षि सनातनं क्रतुमित्येतत् । श० ७ । ३ । १ । ३२ ॥

सन्धिः (स्तोत्रम्) एषा वा उक्थस्य सम्मा यद्रात्रिः (=सन्धिस्तोत्रम्), त्रीण्युक्थानि. (अग्निरुषा अश्विनाविति) त्रिदेवत्यः सन्धिः । तां० ९ । १ । २५-२६ ॥

सन्ध्योपासनम् यत्सायञ्च प्रातश्च सन्ध्यामुपास्ते...... । प० ४ । ५ ॥

,, तस्माद् ब्राह्मणो ऽहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपास्ते स ज्योतिष्याज्योतिषो दर्शनात् सो ऽस्याः कालः । प० ४ । ५ ॥

,, ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्माद् ब्राह्मणः सायमासीनः सन्ध्यामुपास्ते कस्मात्प्रातस्तिष्ठन् । प० ४ । ५ ॥

,, अथ (सन्ध्यायां) यदपः प्रयुङ्क्ते ता विप्रुषो वज्री-भवन्ति ता विप्रुषा वज्रीभूत्वा ऽसुरानपाघ्नन्ति । प० ४ । ५ ॥

सपत्नः इमं देवाः । असपत्नꣳ सुवध्वमितीमं देवा अभ्रातृव्यꣳ सुवध्वमित्येवैतदाह । श० ५ । ४ । २ । ३ ॥

,, पाप्मा वै सपत्नः । श० ८ । ५ । १ । ६ ॥

सपत्नः सपत्नो वाऽ अभिमातिः (यजुः १। ३७ ॥ ३८। ८॥): श० ३। ९। ४। ९॥ ५। २। ४। १६ ॥ १४। २। २। ८ ॥

सप्तदशः (स्तोमः) प्रजापतिर्वै सप्तदशः। गो० उ० २। १३ ॥ ५। ८ ॥ तै० १। ५। १०। ६ ॥ तां० २। १०। ५ ॥ १७। ९। ४॥

,, सप्तदशः प्रजापतिः। तै० १। ३। ३। २ ॥

,, सप्तदशो वै प्रजापतिः। ऐ० १। १६ ॥ ४। २६ ॥ कौ० ८। २ ॥ १०। ६ ॥ १६। ४ ॥ श० १। ५। २। १७ ॥ ५। १। २। ११ ॥ गो० उ० १। १९ ॥

,, सप्तदशो वै प्रजापतिर्द्वादश मासाः पंचर्तवो हेमन्तशिशिरयोः समासेन तावान्त्संवत्सरः संवत्सरः प्रजापतिः। ऐ० १। १ ॥

,, द्वादश वै मासाः संवत्सरस्य पञ्चर्त्तव एष एव प्रजापतिः सप्तदशः। श० १। ३। ५। १० ॥

,, संवत्सर एव सप्तदशस्यायतनं द्वादश मासाः पञ्चर्त्तव एतदेव सप्तदशस्यायतनम्। तां० १०। १। ७ ॥

,, सप्तदशो वै संवत्सरो द्वादश मासाः पञ्चर्तवः। श० ६। २। २। ८ ॥

,, संवत्सरः सप्तदशः। तां० ६। २। २ ॥

,, तस्माऽ एतस्मै सप्तदशाय प्रजापतये। एतत्सप्तदशमन्नꣳ समस्कुर्वन्य एष सौम्योध्वरोऽथ या अस्य ताः षोडश कला एते ते षोडशर्त्विजः। श० १०। ४। १। १६ ॥

,, तद्वै लोमेति द्वेऽअक्षरे। त्वगिति द्वेऽअसृगिति द्वे मेद इति द्वे माꣳसमिति द्वे स्नावेति द्वेऽअस्थीति द्वे मज्जेति द्वे ताः षोडश कला अथ य एतदन्तरेण प्राणः सञ्चरति स एव सप्तदशः प्रजापतिः। श० १०। ४। १। १७ ॥

,, अन्नं वै सप्तदशः। तां० २। ७। ७ ॥ १७। ६। २ ॥ १९। ११। ४ ॥ २०। १०। १ ॥ २५। ६। ३ ॥

,, सप्तदशꣳ ह्यन्नम्। श० ८। ४। ४। ७ ॥

,, प्रजातिः सप्तदशः। ऐ० ८। ४ ॥

,, तं (सप्तदशस्तोमं) उ प्रजातिरित्याहुः। तां० १०। १। ९ ॥

,, सप्तदश एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै प्रजात्यै। तां० १२। ६। १३ ॥

सप्तदशः विट् सप्तदशः । तां० १८ । १० । ९ ॥

,, विड् वै सप्तदशः । तां० २ । ७ । ५ ॥ २ । १० । ४ ॥

,, विशः सप्तदशः । ऐ० ८ । ४ ॥

,, पशवो वै सप्तदशः । तां० १६ । १० । ७ ॥

,, तान् (पशून्) विश्वे देवाः सप्तदशेन स्तोमेन नाप्नुवन् । तै० २ । ७ । १४ । २ ॥

,, सप्तदशो वै पुरुषो दश प्राणाश्चत्वार्यङ्गान्यात्मा पञ्चदशो ग्रीवाः षोडश्यः शिरः सप्तदशम् । श० ६ । २ । २ । ९ ॥

,, उरः सप्तदशः । अष्टावन्ये जत्रवो ऽष्टावन्यऽ उरः सप्तदशम् । श० १२ । २ । ४ । ११ ॥

,, वर्षाभिर्ऋतुनादित्याः स्तोमे सप्तदशे स्तुतं वैरूपेण विशौजसा । तै० २ । ६ । १९ । १—२ ॥

,, गायत्रः सप्तदशस्तोमः । तां० ५ । १ । १५ ॥

,, उदरं वा एषः स्तोमानां यत्सप्तदशः । तां० ४ । ५ । १५ ॥

,, राष्ट्रꣳ सप्तदशः । तै० १ । ८ । ८ । ५ ॥

,, सप्तदशः (स्तोमः) एव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, यत् सप्तदशो यदेवास्य (यजमानस्य) मध्यतो ऽपूतं तत्तेनापहन्ति । तां० १७ । ५ । ६ ॥

,, सर्व्वः सप्तदशो भवति । तां० १७ । ९ । ४ ॥

सप्त धाम प्रियाणि (यजु० १७ । ७९) छन्दाꣳसि वाऽ अस्य सप्त धाम प्रियाणि । श० ९ । २ । ३ । ४४ ॥

सप्तममहः ततिरेव सप्तममहः । कौ० २६ । ८ ॥

,, चतुर्विंशꣳ सप्तममहः । तां० १० । ५ । ४ ॥

सप्तमी चितिः अमृतमेव सप्तमी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । १८ ॥

,, प्राणा एव सप्तमी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । २१ ॥

सप्त योनयः (अग्नेः, यजु० १७ । ७९) सप्त योनीरिति चितीरेतदाह । श० ९ । २ । ३ । ४४ ॥

सप्तरश्मिः (ऋ० २ । १२ । १२) यस्सप्तरश्मिरिति । सप्त ह्येत आदित्यस्य रश्मयः (सप्तरश्मिः=इन्द्रः=आदित्यः) । जै० उ० १ । २९ । ८ ॥

सप्तरश्मिः स एष (आदित्यः) सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान् । जै० उ० १ । २८ । २ ॥

सप्तर्षयः सप्तर्षीनु ह स्म वै पुरर्क्षा इत्याचक्षते । श० २ । १ । २ । ४ ॥

,, अमी ह्युत्तराहि सप्तर्षय उद्यन्ति । श० २ । १ । २ । ४ ॥

सप्तहोता तस्मै (ब्रह्मणे) सप्तमॅं हूतः प्रत्यशृणोत् । स सप्तहूतो ऽभवत् । सप्तहूतो ह वै नामैषः । तं वा एतॅं सप्तहूतॅं सन्तम् । सप्तहोतेत्याचक्षते परोक्षेण । परोक्षप्रिया इव हि देवाः । तै० २ । ३ । ११ । २ ॥

,, इन्द्रियं वै सप्तहोता । तै० २ । २ । ८ । २ ॥

,, इन्द्रः सप्तहोता । तै० २ । ३ । १ । १ ॥

,, इन्द्रः सप्तहोत्रा । तै० २ । २ । ८ । ५ ॥

,, सौम्यो ऽध्वरः सप्तहोतुः (निदानम्) । तै० २ । २ । ११ । ६ ॥

,, अर्यमा सप्तहोतॄणाॅं होता । तै० २ । ३ । ५ । ६ ॥

सप्त होत्राः (यजु० १३ । ५) दिशः सप्त होत्राः । श० ७ । ४ । १ । २० ॥

सप्ति. (हे ऽश्व त्वं) सप्तिरसि । तां० १ । ७ । १ ॥

,, आशुः सप्तिरित्याह । अश्व एव जवं दधाति । तस्मात्पुराशुर-श्वो ऽजायत । तै० ३ । ८ । १३ । २ ॥

,, वायुः सप्तिः । तै० १ । ३ । ६ । ४ ॥

सफम् (साम) सफेन वै देवा इमान् लोकान् समाप्नुवन् यत् समा-प्नुवॅंस्तत्सफस्य सफत्वम् । तां० ११ । ५ । ६ ॥ १५ ॥ ११ । ५ ॥

सब्दम् सब्दमहः (सब्दः=क्रतुविशेषः, तैत्तिरीयसंहितायाम् ४ । ४ । ७ । २ ॥ ५ । ३ । ११ । ३ ॥ सायणभाष्ये ऽपि) । श० १ । ७ । २ । २६ ॥

सभासाहः सखा (ऋ० १० । ७१ । १०) एष वै ब्राह्मणानां सभासाहः सखा यत्सोमो राजा । ऐ० १ । १३ ॥

सभेयो युवा (यजु० २२ । २२) एष वै सभेयो युवा यः प्रथमवयसी तस्मात्प्रथमवयसी स्त्रीणां प्रियो भावुकः । श० १३ । १ । ९ । ८ ॥

,, यो वै पूर्ववयसी । स सभेयो युवा । तस्माद्युवा पुमान् प्रियो भावुकः । तै० ३ । ८ । १३ । ३ ॥

समन्तम् (साम) समन्तेन पशुकामः स्तुवीत पुरोधाकामः समन्तेन स्तुवीत। तां० १५।४।७॥

समानः तं (संज्ञप्तं पशुं) ऊर्ध्वा दिक्समानेत्यनुप्राणत्समानमेवास्मिँ-स्तद्दधात्। श० ११।८।३।६॥

,, दिशः समानः। जै० उ० ४।२२।९॥

,, निरुक्तानिरुक्त इव ह्ययꣳ समानः। ष० १।२॥

समिधः (यजु० १७।७९) प्राणा वै समिधः प्राणा ह्येतꣳ समिन्धते। श० ९।२।३।४४॥

,, प्राणा वै समिधः। ऐ० २।४॥ श० १।५।४।१॥

,, यदेनꣳ समयच्छत् तत्समिधः समित्त्वम्। तै० २।१।३।८॥

,, समिधो यजति वसन्तमेव वसन्ते वा इदं सर्वं समिध्यते। कौ० ३।४॥

,, वसन्तो वै समित्। श० १।५।३।९॥

,, गर्भः समित्। श०।६।६।२।१५॥

,, अस्थीनि वै समिधः। श० ९।२।३।४६॥

समिष्टयजूंषि (देवाः) यत्समयजंस्तस्मात्समिष्टयजूꣳषि। श० ९।५।१।२९॥

,, अथ यस्मात् समिष्टयजुर्नाम। या वाऽ एतेन यज्ञेन देवता ह्वयति याभ्य एष यज्ञस्तायते सर्वा वै तत्ताः समिष्टा भवन्ति तद्यत्तासु सर्वासु समिष्टास्वथैतज्जुहोति तस्मात्समिष्टयजुर्नाम। श० १।९।२।२६॥

,, या वाऽ एतेन यज्ञेन देवता ह्वयति याभ्य एष यज्ञ यज्ञ-स्तायते सर्वा वै तत्ताः समिष्टा भवन्ति तद्यत्तासु सर्वासु समिष्टास्वथैतानि जुहोति तस्मात्समिष्टयजूꣳषि नाम। श० ४।४।४।३॥

,, अन्नꣳ समिष्टयजुः। श० ११।२।७।३०॥

,, अन्तो हि यज्ञस्य समिष्टयजुः। श० ३।१।३।६॥

,, समिष्टयजूꣳषि ह्येवान्तो यज्ञस्य। श० ४।४।५।२॥

समीपन्ती पशवो वै समीपन्ती (विष्टुतिः)। तां० ३।११।४॥

समुद्रः (यजु० ३८।७) अयं वै समुद्रो यो ऽयं (वायुः) पवतऽ एत-

स्माद्धि समुद्रात्सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि समुद्रवन्ति। श० १४।२।२।२॥

समुद्रः य एवायं (वायुः) पवत एष एव स समुद्र एतं हि संद्रवन्तं सर्वाणि भूतान्यनु संद्रवन्ति। जै० उ० १।२५।४॥

" तद्यत् (आपः) समद्रवन्त तस्मात्समुद्र उच्यते। गो० पू० १।७॥

" तद्वस्तिमभिनत्। स समुद्रो ऽभवत्। तस्मात्समुद्रस्य (जलं) न पिबन्ति। प्रजननमिव हि मन्यन्ते। तै० २।२।९।२-३॥

" आपो वै समुद्रः। श० ३।८।४।११॥ ३।९।२।२७॥ १२।९।२।५॥

" समुद्रो वाऽ अपां योनिः। श० ७।५।२।५८॥

" समुद्रो वाऽ अवभृथः। तै० २।१।५।२॥

" (यजु० १३।५३) मनो वै समुद्रः। श० ७।५।२।५२॥

" वाग्वै समुद्रो मनः समुद्रस्य चक्षुः। तां० ६।४।७॥

" (ऋ० ४।५८।१) वाग्वै समुद्रो न वै वाक् क्षीयते न समुद्रः क्षीयते। ऐ० ५।१६॥

" वाग्वै समुद्रः। तां० ७।७।९॥

" पुरुषो वै समुद्रः। जै० उ० ३।३५।५॥

" (यजु० १३।१६) रुक्मो वै समुद्रः। श० ७।४।२।५॥

" एष वाव स समुद्रः। यच्चात्वालः। तै० १।५।१०।१॥

" तेजो ऽसि तपसि श्रितम्। समुद्रस्य प्रतिष्ठा। तै० ३।११।१।३॥

" समुद्रो ऽसि तेजसि श्रितः। अपां प्रतिष्ठा। तै० ३।११।१।४॥

" समुद्र एवास्य (अश्वस्य मेध्यस्य) बन्धुः समुद्रो योनिः (इन्द्राश्वस्योच्चैःश्रवसः क्षीरसागरादुत्पत्तिः—महाभारत आदिपर्वणि, १८।३७॥)। श० १०।६।४।१॥

" तस्मादिमं लोकं (=पृथिवीं) दक्षिणावृत्समुद्रः पर्येति। श० ७।१।१।१३॥

" तस्मादिमाँल्लोकान्दक्षिणावृत्समुद्रः पर्येति। श० ९।१।२।३॥

" तस्मादिमं लोकं (=पृथिवीं) सर्वतः समुद्रः पर्येति। श० ७।१।१।१३॥

समुद्रः तस्मादिमांल्लोकान्त्सर्वतः समुद्रः पर्येति । श० ९ । १ । २ । ३ ॥

समुद्रश्छन्दः (यजु० १५ । ४) मनो वै समुद्रश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४॥

समुद्रो नभस्वान् (यजु० १८ । ४५) असौ वै (द्यु-)लोकः समुद्रो नभस्वान् । श० ९ । ४ । २ । ५ ॥

समृद्धः यो वै ज्ञातो ऽनूचानः स समृद्धः । श० ३ । ६ । १ । २९ ॥

समृद्धिः तद्धै समृद्धं यस्य कनीयाꣳसो भार्याः (=पोष्याः) असन्भूयाꣳसः पशवः । श० २ । ३ । २ । १८ ॥

सम्पद् श्रोत्रं वै सम्पच्छ्रोत्रे हीमे सर्वे वेदा अभिसम्पन्नाः । श० १४ । ९ । २ । ४ ॥

सम्पाताः (सूक्तविशेषाः) सम्पातैर्वै देवाः स्वर्गं लोकं समपतन् । कौ० २२ । १ ॥

,, तान् क्षिप्रं समपतद्यत्क्षिप्रं समपतत्तत्संपातानां संपातत्वम् । ऐ० ६ । १८ ॥

,, एतैर्वै सम्पातैरेत ऋषय इमांल्लोकान्त्समपतंस्तद्यत्समपतंस्तस्मात् सम्पाताः, तत्सम्पातानां सम्पातत्वम् । गो० उ० ६ । १ ॥

,, वामदेवो वा इमांल्लोकानपश्यत्तान्त्संपातैः समपतद्यत्संपातैः समपतत्तत्संपातानां संपातत्वम् । ऐ० ४ । ३० ॥

,, तान्वा एतान्त्संपातान्विश्वामित्रः प्रथममपश्यत्तान्विश्वामित्रेण दृष्टान्वामदेवोऽसृजत । ऐ० ६ । १८ ॥ गो० उ० । ६ । १ ॥

सम्भरणस्त्रयोविंशः (यजु० १४ । २३) संवत्सरो वाव सम्भरणस्त्रयोविꣳशस्तस्य त्रयोदश मासाः सप्तऽर्तवो द्वेऽअहोरात्रे संवत्सर एव सम्भरणस्त्रयोविꣳशस्तद्यत्तमाह सम्भरण इति संवत्सरो हि सर्वाणि भूतानि सम्भृतः । श० ८ । ४ । १ । १७ ॥

सम्भारः स यद्वाऽ इतश्चेतश्च सम्भरति । तत्सम्भाराणाꣳ सम्भारत्वम् । श० २ । १ । १ । १ ॥

,, तमेतावच्छः समभरन् यत्सम्भाराः । तै० २ । २ । २ । ६ ॥

सम्भूतिः (=प्राणः) प्राणं वा अनु प्रजाः पशवस्सम्भवन्ति । जै० उ० २ । ४ । ५ ॥

सम्भूतिः प्राणा उ ह वाव राजन् मनुष्यस्य सम्भूतिरेवेति । जै० उ० ४ । ७ । ४ ॥

सम्मार्जनानि वृष्टिः सम्मार्जनानि । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥

,, अन्नꣳ सम्मार्जनानि । तै० ३ । ३ । १ । ५ ॥

सम्राट् स यदाह सम्राडसीति सोमं वा एतदाहैष ह वै वायुर्भूत्वाऽन्तरिक्षलोके सम्राजति तद्यत्सम्राजति तस्मात्सम्राट् तत्सम्राजस्य सम्राट्त्वम् । गो० पू० ५ । १३ ॥

,, तस्य यो रसो व्यक्षरत्तं पाणिभिः सममृजुस्तस्मात्सम्राट् । श० १४ । १ । १ । ११ ॥

,, सम्राड् वाजपेयेन (इष्ट्वा भवति) । श० ५ । १ । १३ ॥ ९ । ३ । ४ । ८ ॥

,, स वाजपेयेनेष्ट्वा सम्राडिति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥

,, यो वै वाजपेयः । स सम्राट्सवः । तै० २ । ७ । ६ । १ ॥

,, रथन्तरं वै सम्राट् । तै० १ । ४ । ४ । ९ ॥

सरघा इयं (पृथिवी) वै सरघा । तै० ३ । १० । १० । १ ॥

सरघो मधुकृतः एतऽ एव सरघो मधुकृतो यदृत्विजः । श० ३ । ४ । ३ । १४ ॥

सरस्वती युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् (ऋ० १० । १३१ । ४ ॥ यजु० १० । ३३ ॥) इत्याश्राव्याहाश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रꣳ सुत्रामाणं यजेति । श० ५ । ५ । ४ । २५ ॥

,, वाक् सरस्वती । श० ७ । ५ । १ । ३१ ॥ ११ । २ । ४ । ६ ॥ १२ । ९ । १ । १३ ॥

,, वाग्वै सरस्वती । कौ० ५ । २ ॥ १२ । ८ ॥ १४ । ४ ॥ तां० ६ । ७ । ७ ॥ १६ । ५ । १६ ॥ श० २ । ५ । ४ । ६ ॥ ३ । ९ । १ । ७ ॥ तै० १ । ३ । ४ । ५ ॥ ३ । ८ । ११ । २ ॥ गो० उ० १ । २० ॥

,, वाग्वै सरस्वती पावीरवी । ऐ० ३ । ३७ ॥

,, वागेव सरस्वती । ऐ० २ । २४ ॥ ६ । ७ ॥

,, वाग्घि सरस्वती । ऐ० ३ । २ ॥

सरस्वती वाक्तु सरस्वती । ऐ० ३ । १ ॥
,, सरस्वती वाचमदधात् । तै० १ । ६ । २ । २ ॥
,, अथ यत्स्फूर्जयन्वाचमिव वदन्दहति तदस्य (अग्नेः) सारस्वतं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥
,, सा (वाक्) ऊर्ध्वोदातनोद्यथापां धारा संततैवम् (सरस्वती [नदी]=वाक्) । तां० २० । १४ । २ ॥
,, जिह्वा सरस्वती । श० १२ । ९ । १ । १४ ॥
,, (यजु० ३८ । २) सरस्वती हि गौः । श० १४ । २ । १ । ७ ॥
,, अमावास्या वै सरस्वती । गो० उ० १ । १२ ॥
,, सारस्वतं मेषम् (आलभते) । तै० १ । ८ । ५ । ६ ॥
,, अविर्मल्हा (="गलस्तनयुता" इति सायणः) सारस्वती । श० ५ । ५ । ४ । १ ॥
,, वर्षाशरदौ सारस्वताभ्याम् (अवरुन्धे) । श० १२ । ८ । २ । ३४॥
,, योषा वै सरस्वती वृषा पूषा । श० २ । ५ । १ । ११ ॥
,, सरस्वती (श्रियः) पुष्टिम् (आदत्त) । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥
,, सरस्वती पुष्टिः पुष्टिपत्नी । तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥
,, सरस्वती पुष्टि (ष्टिः) पुष्टिपतिः । श० ११ । ४ । ३ । १६ ॥
,, सर्वे (ग्रैवाः) सारस्वता अन्नाद्यस्यैवावरुद्ध्यै । श० १२ । ८ । २ । १६ ॥
,, एषा वा अपां पृष्ठं यत्सरस्वती । तै० १ । ७ । ५ । ५ ॥
,, ऋक्सामे वै सारस्वतावुत्सौ । तै० १ । ४ । ४ । ९ ॥
,, सरस्वत्यै दधि । श० ४ । २ । ५ । २२ ॥
,, अन्तरिक्षं सारस्वतेन (अवरुन्धे) । श० १२ । ८ । २ । ३२ ॥
,, सरस्वतीति तद् द्वितीयं वज्ररूपम् । कौ० १२ । २ ॥
,, अथ यत् (अक्ष्योः) कृष्णं तत्सारस्वतम् । श० १२ । ९ । १ । १२ ॥
,, "नमुचि" शब्दमपि पश्यत ॥

सरस्वान् मनो वै सरस्वान् । श० ७ । ५ । १ । ३१ ॥ ११ । २ । ४ । ९ ॥
,, स्वर्गो लोकः सरस्वान् । तां० १६ । ५ । १५ ॥
,, पौर्णमासः सरस्वान् । गो० उ० १ । १२ ॥

सरिरः (यजु० ३८।७॥) अयं वै सरिरो यो ऽयं (वायुः) पवत एतस्माद्धै सरिरात्सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि सहेरते । श० १४ । २ । २ । ३ ॥

सरिरम् (यजु० १३ । ४२) आपो वै सरिरम् । श० ७ । ५ । २ । १८ ॥

,, (यजु० १३ । ४९ ॥ १५ । ५२) इमे वै लोकाः सरिरम् । श० ७ । ५ । २ । ३४ ॥ ८ । ६ । ३ । २१ ॥

,, (यजु० १३ । ५३) वाग्वै सरिरम् । श० ७ । ५ । २ । ५३ ॥

,, (यजु० १५ । ४) वाग्वै सरिरं छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥ सलिलशब्दमपि पश्यत ।

सर्पनामानि ('नमो ऽस्तु सर्पेभ्यः.... यजु० १३ । ६ ॥' इत्याद्या मन्त्राः) ते (देवाः) एतानि सर्पनामान्यपश्यन् । तैरुपातिष्ठन्त तैरस्माऽ इमांल्लोकानस्थापयंस्तैरनमयन्यदनमयंस्तस्मात्सर्पनामानि । श० ७ । ४ । १ । २६ ॥

सर्पराज्ञी इयं (पृथिवी) वै सर्पराज्ञीयं हि सर्पतो राज्ञी । ऐ० ५ । २३ ॥ तै० १ । ४ । ६ । ६ ॥

,, इयं वै पृथिवी सर्पराज्ञी । श० २ । १ । ४ । ३० ॥ ४ । ६ । ९ । १७ ॥

,, देवा वै सर्पाः । तेषामियꣳ (पृथिवी) राज्ञी । तै० २ । २ । ६ । २ ॥

. सार्पराज्ञ्या ऋग्भिः स्तुवन्ति । अर्बुदः (अर्बुदः) सर्प एताभिर्मृतां त्वचमपाहत मृतामेवैताभिस्त्वचमपघ्नते । तां० ९ । ८ । ७-८ ॥

सर्पाः इमे वै लोकाः सर्पास्ते हानेन सर्वेण सर्पन्ति यदिदं किं च । श० ७ । ४ । १ । २५ ॥

देवा वै सर्पाः । तेषामियꣳ (पृथिवी) राज्ञी । तै० २।२।६।२॥

अर्बुदः काद्रवेयो राजेत्याह तस्य सर्पा विशः······सर्पविद्या वेदः····· सर्पविद्याया एकं पर्व व्याचक्षाण इवानुद्रवेत् । श० १३ । ४ । ३ । ९ ॥

,, ते देवाः सर्पेभ्य आश्रेषाभ्य आज्ये करंभं निरवपन् । तान् (असुरान्) एताभिरेव देवताभिरुपानयन् । तै० ३ । १ । ४ । ७॥

,, या प्रतीची (दिक्) सा सर्पाणाम । श० ३ । १ । १ । ७ ॥

सर्पाः रज्जुरिव हि सर्पाः कूपा इव हि सर्पाणामायतनान्यस्ति वै मनुष्याणां च सर्पाणां च विभ्रातृव्यम् । श० ४ । ४ । ५ । ३ ॥

सर्वः (=शर्वः=रुद्रः) आपो वै सर्वो ऽद्भ्यो हीदꣳ सर्वं जायते । श० ६ । १ । ३ । ११ ॥

„ तान्येतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः=शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि कुमारो नवमः । श० ६ । १ । ३ । १८ ॥

सर्वजित् (यज्ञः) सर्वजिता वै देवाः सर्वमजयन् सर्वस्याप्त्यै सर्वस्य जित्यै सर्वमेवैतेनाप्नोति सर्वञ्जयति । तां० १६ । ७ । २ ॥

„ (देवाः) सर्वजिता सर्वमजयन् तां० २२ । ८ । ४ ॥

सर्वज्योतिः (यज्ञः) अथैष सर्वज्योतिः सर्वस्याप्तिः सर्वस्य जितिः सर्वमेवैतेनाप्नोति सर्वञ्जयति । तां० १६ । ९ । १ ॥

„ परमो वा एष यज्ञः (सर्वज्योतिः) । तां० १६ । ९ । २ ॥

सर्वम् यद्वै विश्वꣳ सर्वं तत् । श० ३ । १ । २ । ११ ॥

„ सर्वं वै तद्यत्सहस्रम् । कौ० ११ । ७ ॥ २५ । १४ ॥

„ सर्वं वै सहस्रम् । श० ४ । ६ । १ । १५ ॥ ६ । ४ । २ । ७ ॥

„ षोडशकलं वा ऽ इदꣳ सर्वम् । श० १३ । २ । २ । १३ ॥ कौ० ८ । १ ॥ १६ । ४ ॥ १७ । १ ॥ २२ । ९ ॥

„ प्रजापतिरेव सर्वम् । कौ० ६ । १५ ॥ २५ । १२ ॥

„ ब्रह्मैव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ चन्द्रमा एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ मन एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ विश्वे देवा एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ सर्वं वै विश्वे देवाः । श० १ । ७ । ४ । २२ ॥ ३ । ९ । १ । १३ ॥ ४ । २ । २ । ३ ॥ ५ । ५ । २ । १० ॥

„ सर्वमिदं विश्वे देवाः । श० ३ । ९ । १ । १४ ॥ ४ । ४ । १ । ९, १८ ॥

„ ब्रह्मवेद (=अथर्ववेदः) एव सर्वम । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ आप एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

„ आपो वा ऽ अस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा । श० ४ । ५ । २ । १४ ॥ ६ । ८ । २ । २ ॥ १२ । ५ । २ । १४ ॥

„ शरदेव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

सर्वम् दक्षिणैव (दिक्) सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, एकविंश एव (स्तोमः) सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, अनुष्टुबेव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, एतावद्वाऽ इदꣳ सर्वं यावद्रूपं चैव नाम च । श० ११ । २ । ३ । ६ ॥
,, एतावद्वाऽ इदꣳ सर्वं यावदिमे च लोका दिशश्च । श० ६ । ५ । २ । २२ ॥
,, चतुष्टयं वा इदं सर्वम् । कौ० २ । १ ॥ ३ । २ ॥ ३ । ७ ॥ १९ । ४ ॥ २८ । ७ ॥
,, एतावद्वाऽ इदꣳ सर्वं यावद्ब्रह्म क्षत्रं विट् । श० ८ । २ । २ । १४ ॥
,, सर्वं वाऽ अनिरुक्तम् । श० १ । ३ । ५ । १० ॥ १ । ४ । १ । २१ ॥ २ । २ । १ । ३ ॥ ७ । २ । २ । १४ ॥ १० । १ । ३ । ११ ॥ १२ । ४ । २ । १ ॥
,, सर्वं वाऽ अक्षय्यम् । श० १ । ६ । ? । १९ ॥ ११ । १ । २ । १२ ॥

सर्वमेधः पुरुषमेधात्सर्वमेधः । गो० पू० ५ । ७ ॥
,, स सर्वमेधेनेष्ट्वा सर्वराडिति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥
,, परमो वाऽ एष यज्ञक्रतूनां यत्सर्वमेधः । श० १३ । ७ । १ । २ ॥

सर्वराट् स सर्वमेधेनेष्ट्वा सर्वराडिति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥

सर्वरूपः यो विद्युति (पुरुषः) स सर्वरूपः । सर्वाणि ह्येतस्मिन् रूपाणि । जै० उ० १ । २७ । ६ ॥

सर्वस्तोमोऽतिरात्रः (क्रतुः) सर्वस्तोमेनातिरात्रेण बुभूषन्यजेत सर्वस्याप्त्यै सर्वस्य जित्यै सर्वमेवैतेनाप्नोति सर्वं जयति । तां० २० । २ । २ ॥

सलिलम् आपो ह वाऽ इदमग्रे सलिलमेवास । श० ११ । १ । ६ । १ ॥
,, आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत् । तै० १ । १ । ३ । ५ ॥
,, आपो वा इदमग्रे महत्सलिलमासीत् । जै० उ० १ । ५६ । १ ॥
,, वेदिर्वै सलिलम् । श० ३ । ६ । २ । ५ ॥
सरिरशब्दमपि पश्यत ।

सवनपङ्क्तिः पशुरुपवसथे, त्रीणि सवनानि, पशुरनुबन्ध्य इत्येष वै यज्ञः सवनपंक्तिः । ऐ० २ । २४ ॥

सवर्यः ते (आदित्याः) अब्रुवन् । यन्नो ऽनेष्ट (अश्वम्) । स वर्यो ऽभूदिति । तस्मादश्वꣳ सवर्येत्याह्वयन्ति । तै० ३ । ६ । २१ । १ ॥

सार्विंशः (स्तोमः) "अभीवर्तः सार्विंशः" इत्येतं शब्दं पश्यत ।

सविता सविता वै देवानां प्रसविता । श० १।१।२।१७॥ जै० उ० ३।१८।३॥
,, सविता वै प्रसविता । कौ० ६।१४॥
,, सविता वै प्रसवानामीशे । ऐ० १।३०॥ ७।१६॥
,, सविता प्रसवानामीशे । कौ० ५।२॥
,, एताभिर्वै (रात्रिभिः) सविता सर्वस्य प्रसवमगच्छत् । तां० २४।१५।२॥
,, आदित्य एव सविता । गो० पू० १।३३॥ जै० उ० ४।२७।११॥
,, असावादित्यो देवः सविता । श० ६।३।१।१८॥
,, असौ वै सविता यो ऽसौ (सूर्य्यः) तपति । कौ० ७। ६॥ गो० उ० १।२०॥
,, एष वै सविता य एष (सूर्यः) तपति । श० ३।२।३।१८॥ ४।४।१।३॥ ५।३।१।७॥
,, एष वाव स सावित्रः । य एष (सूर्य्यः) तपति । तै० ३।१०।९।१५॥
,, अग्निरेव सविता । जै० उ० ४।२७।१॥ गो० पू० १।३३॥
,, यो ह्येव सविता स प्रजापतिः । श० १२।३।५।१॥ गो० पू० ५।२२॥
,, प्रजपतिर्वै सविता । तां० १६।५।१७॥
,, प्रजापतिः सविता भूत्वा प्रजा असृजत । तै० १।६।४।१॥
,, सविता प्राजनयत् । तै० १।६।२।२॥
,, वरुण एव सविता । जै० उ० ४।२७।३॥
,, विद्युदेव सविता । गो० पू० १।३३॥
,, स्तनयित्नुरेव सविता । जै० उ० ४।२७।९॥
,, वायुरेव सविता । गो० पू० १।३३॥ जै० उ० ४।२७।५॥
,, (यजु० ३८।८) अयं वै सविता यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १४।२।२।९॥
,, चन्द्रमा एव सविता । गो० पू० १।३३॥
,, चन्द्र एव सविता । जै० उ० ४।२७।१३॥
,, यज्ञ एव सविता । गो० पू० १ ३३॥ जै० उ० ४।२७।७॥
,, इयं (पृथिवी) वै सविता । श० १३।१।४।२॥ तै० ३।९।१३।२॥

सविता अभ्रमेव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥
,, वेदा एव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥
,, अहरेव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥
,, पुरुष एव सविता । जै० उ० ४ । २७ । १७ ॥
,, पशवो वै सविता । श० ३ । २ । ३ । ११ ॥
,, प्राणो वै सविता । ऐ० १ । १९ ॥
,, प्राण एव सविता श० १२ । ९ । १ । १६ ॥ गो० पू० १ । ३३॥
,, प्राणो ह वाऽ अस्य सविता । श० ४ । ४ । १ । ५ ॥
,, मनो वै सविता । श० ६ । ३ । १ । १३, १५ ॥
,, मन एव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । १५ ॥
,, मनो ह वाऽ अस्य सविता । श० ४ । ४ । १ । ७ ॥
,, मनः सावित्रम् । कौ० १६ । ४ ॥
,, यकृत्सविता । श० १२ । ९ । १ । १५ ॥
,, सविता (श्रियः) राष्ट्रम् (आदत्त) । श० ११ । ४ । ३ । ३॥
,, सविता राष्ट्रꣳ राष्ट्रपतिः । तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥ श० ११ । ४ । ३ । १४॥
,, तस्मात् (सविता) हिरण्यपाणिरिति स्तुतः । कौ० ६ । १३ ॥ गो० उ० १ । २ ॥
,, उष्णमेव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥
,, (सविता) रश्मिभिर्वर्ष (समदधात्) । गो० पू० १ । ३६ ॥
,, तद्वै सुपूतं यं देवः सवितापुनात् । श० ३ । १ । ३ । २२ ॥
,, देवस्य सवितुर्हस्तः (नक्षत्रम्) । तै० १ । ५ । १ । ३ ॥
,, दातारमद्य सविता विदेय यो नो हस्ताय (नक्षत्राय) प्रसुवाति यज्ञम् । तै० ३ । १ । १ । ९ ॥
,, स (सविता) एतꣳ सवित्रे हस्ताय पुरोडाशं द्वादशकपालं निरवपदाशूनां (=षष्टिदिनैः शीघ्रं पच्यमानानां) व्रीहीणाम् । ततो वै तस्मै (सवित्रे) श्रद्देवा अदधत । सविताभवत् । तै० ३ । १ । ४ । ११ ॥
,, सावित्रं द्वादशकपालं वाष्टाकपालं वा पुरोडाशं निर्वपति । श० । ५ । ३ । १ । ७ ॥
,, अथ सावित्रः । द्वादशकपालो वाष्टाकपालो वा पुरोडाशो भवति । श० २ । ५ । १ । १० ॥

सविता सावित्रः पञ्चकपालः (पुरोडाशः)। तां० २१ । १० । २३ ॥

,, (वायुः) यदुत्तरतो वाति। सवितैव भूत्वोत्तरतो वाति। तै० २ । ३ । ९ । ७ ॥

,, (हे देवा यूयं) सवित्रोदीचीं (दिशं प्रजानाथ)। ऐ० १ । ७॥

,, तस्मादुत्तरतः पश्चादयं भूयिष्ठं पवमानः (=वायुः) पवते सवितृप्रसूतो ह्येष एतत्पवते। ऐ० १ । ७ ॥

,, प्रतीचीमेव दिशᳫं सवित्रा प्रजानन्। श० ३ । २ । ३ । १८ ॥

,, स (सविता) प्रतीचीं दिशं प्राजानात्। कौ० ७ । ६ ॥

,, सवितृप्रसूतं वा इदमन्नमद्यते। कौ० १२ । ८ ॥

,, सावित्र्युपभृत्। तै० ३ । ३ । ७ । ६ ॥

,, अथ यत्र ह तत्सविता सूर्यां प्रायच्छत्सोमाय राज्ञे। कौ० १८ । १ ॥

,, प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत्सूर्यां सावित्रीम्। ऐ० ४ । ७ ॥

सवितुर्वरेण्यम् (ऋ० ३ । ६२ । १०) वेदाश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यम्। गो० पू० १ । ३२ ॥

समृतः सोम एव सवृतः (? समृतः—तैत्तिरीयसंहितायां १ । ६ ७ । १) इति। गो० उ० २ । २४ ॥

,, सवृत(? समृत-)यज्ञो वा एष यद्दर्शपूर्णमासौ। गो० उ० २ । २४ ॥

सहः बलं वै सहः। श० ६ । ६ । २ । १४ ॥

,, ओजः सहः सह ओजः। कौ० ३ । ५ ॥

,, एतौ (सहश्च सहस्यश्च) एव हैमन्तिकौ (मासौ) स यद्धे-मन्त इमाः प्रजाः सहसेव स्वं वशमुपनयते तेनो हैतौ सहश्च सहस्यश्च। श० ४ । ३ । १ । १८ ॥

,, सहसः स्वजः [=उभयतःशिराः सर्प इति सायणः] (अभवत्)। ऐ० ३ । २६ ॥

सहचराणि (शिल्पानि) तान्येतानि सहचराणीत्याचक्षते नाभानेदिष्ठं वालखिल्या वृषाकपिमेवयामरुतम्। ऐ० ६ । ३० ॥

सहजन्या (यजु० १५ । १६) (वायोः) मेनका च सहजन्या चाप्स-रसाविति दिक् चोपदिशा चेति ह स्माह माहित्थिरिमे तु ते द्यावापृथिवी। श० ८ । ६ । १ । १७ ॥

सहस्यः (मासः) एतौ (सहश्च सहस्यश्च) एव हैमन्तिकौ (मासौ) स यद्धेमन्त इमाः प्रजाः सहसेव स्वं वशमुपनयते तेनो हैतौ सहश्च सहस्यश्च । श० ४ । ३ । १ । १८ ॥

सहस्रम् सर्वं वै तद्यत्सहस्रम् । कौ० ११ । ७ ॥ २५ । १४ ॥
" सर्वं वै सहस्रम् । श० ४ । ६ । १ । १५ ॥ ६ । ४ । २ । ७ ॥
" भूमा वै सहस्रम् । श० ३ । ३ । ३ । ८ ॥
" परमꣳ सहस्रम् । तां० १६ । ९ । २ ॥
" (ऋ० ६ । ६९ । ८) तदाहुः किं तत्सहस्रमितीमे लोका इमे वेदा अथो वागिति ब्रूयात् । ऐ० ६ । १५ ॥
" आयुर्वै सहस्रम् । तै० ३ । ८ । १५ । ३ ॥ ३ । ८ । १६ । २ ॥
" पशवः सहस्रम् । तां० १६ । १० । १२ ॥

सहस्रम्भरः एषा ह वाऽ अस्य (अग्नेः) सहस्रम्भरता यदेनमेकं सन्तं बहुधा विहरन्ति । ऐ० १ । २८ ॥

सहस्रयोजनम् (यजु० १६ । ५४ ॥) अयमग्निः सहस्रयोजनम् । श० ९ । १ । १ । २९ ॥
" एतद्ध परमं दूरं यत्सहस्रयोजनम् । श० ९ । १ । १ । २८ ॥

सहस्रवर्त्तनि साम वै सहस्रवर्त्तनि (सहस्रवर्त्मा सामवेदः—इति पातञ्जलमहाभाष्यस्य अ० १ पा० १ प्रथमाह्निके) । ष० १ । ४ ॥

सहस्रवांस्तोकवान्पुष्टिमान् (ऋ० ३ । १३ । ७) संवत्सरो वै समस्तः सहस्रवांस्तोकवान्पुष्टिमान् । ऐ० २ । ४१ ॥
" आत्मा वै समस्तः सहस्रवांस्तोकवान्पुष्टिमान् । ऐ० २ । ४० ॥

सहस्रस्य प्रतिमा (यजु० १३ । ४१) पुरुषो वै सहस्रस्य प्रतिमा । श० ७ । ५ । २ । १७ ॥

सहस्रियो वाजः (यजु० १२ । ४७) आपो वै सहस्रियो वाजः । श० ७ । १ । १ । २२ ॥

सहावांस्तरुता (ऋ० १० । १७८ । १) एष (तार्क्ष्यः=वायुः) वै सहावांस्तरुतैष हीमाँल्लोकान्सद्यस्तरति । ऐ० ४ । २० ॥

सांमदः मत्स्यः सांमदो राजेत्याह तस्योदकेचरा विशः । श० १३ । ४ । ३ । १२ ॥

सांवर्त्तम् (साम) देवानां वै यज्ञꣳ रक्षाꣳस्यजिघाꣳसꣳस्तान्येतेन इन्द्रः संवर्त्तं (=प्रलयमिति सायणः) उपावपद्यत् संवर्त्त-मुपावपत्तस्मात् सांवर्त्तं पाप्मा वाव स तानसचत (तमगृह्णादिति सायणसम्मतः पाठः) तं सांवर्त्तेनापाघ्न-ताप पाप्मानꣳ हते सांवर्त्तेन तुष्टुवानः । तां० १४ । १२ ७॥

साकंप्रस्थाय्यः (यज्ञः) तद्यत्साकं संप्रतिष्ठन्ते साकं सम्प्रयजन्ते साकं भक्षयन्ते तस्मात्साकंप्रस्थाय्यः । कौ० ४ । ९ ॥

,, स एष श्रैष्ठ्यकामस्य पौरुषकामस्य यज्ञः । कौ० ४ । ९ ॥

साकमश्वम् (साम) ते (देवाः) ऽग्निम्मुखं कृत्वा साकं (=सार्द्धं) अश्वेन (=अश्वरूपेणाग्निना) अभ्यक्रामन् यत्साकमश्वे-नाभ्यक्रामꣳस्तस्मात् साकमश्वम् । तां० ८ । ८ । ४ ॥

,, यदग्निरश्वो भूत्वा ऽभ्यत्यद्रवत्तत्साकमश्वं सामाऽभव-त्तत्साकमश्वस्य साकमश्वत्वम् । ऐ० ३ । ४९ ॥

,, यदग्निरश्वो भूत्वा प्रथमः प्रजिगाय तस्मात् साकमश्वम् । गो० उ० ४ । ११ ॥

,, साकमश्वं भवत्युक्थानामभिजित्या अभिक्रान्त्यै । एतेन ह्यग्र उक्थान्यभ्यजयन्नेतेनाभ्यक्रामन् । तां० ११ । ११ । ५,६॥

,, प्रजापतिः प्रजा असृजत तान् प्राजायन्त स एतत्सामा-पश्यत्ताः (प्रजाः प्रजापतिः) अश्वो भूत्वाभ्यजिघ्रत्ताः प्राजायन्त प्रजननं वा एतत् साम । तां० २० । ४ । ५ ॥

,, तत् (साकमश्वम्) उ धुराꣳ सामेत्याहुः । तां० १४ । ९ । १८ ॥

साकमेधाः ऐन्द्रो वा एष यज्ञक्रतुर्यत् साकमेधाः । कौ ५ । ५ ॥ गो० उ० १ । २३ ॥

,, एतैर्वै (साकमेधैः) देवा वृत्रमघ्नन्नेतैर्वेव व्यजयन्त येयमेषां विजितिस्ताम् । श० २ । ५ । ३ । १ ॥

सांग्रहणी (इष्टिः) सांग्रहण्येष्ट्या यजते । इमां जनतां संगृह्णानीति । तै० ३ । ८ । १ । १ ॥

सादनम् माꣳसꣳ सादनम् । श० ८ । १ । ४ । ५ ॥

साधुः (यजु० ३७ । १०) अयं वै साधुर्यो ऽयं (वायुः) पवत ऽ एष इमाँल्लोकान्त्सिद्धो ऽनुपवते । श० १४ । १ । २ । २३ ॥

साध्या देवाः (यजु० ३१ । १६) प्राणा वै साध्या देवास्त ऽ एतं (प्रजापतिं) अग्र ऽ एवमसाधयन् । श० १० । २ । २ । ३ ॥

,, छन्दांसि वै साध्या देवास्ते ऽग्रे ऽग्निनाग्निमयजन्त ते स्वर्गं लोकमायन् । ऐ० १ । १६ ॥

,, साध्या वै नाम देवेभ्यो देवाः पूर्व आसꣳस्त एतत् (शतसंवत्सरं) सत्रायणमुपायꣳस्तेनार्ध्नुवꣳस्ते सगवः सपुरुषाः सर्व्व एव सह स्वर्गं लोकमायन् । तां० २५ । ८ । २ ॥

,, साध्या वै नाम देवा आसꣳस्ते ऽवछिद्य तृतीयसवनम्माध्यन्दिनेन सवनेन सह स्वर्गं लोकमायन् । तां० ८ । ३ । ५ ॥ ८ । ४ । ६ ॥

,, साध्याश्च त्वा ऽऽप्त्याश्च देवाः पाङ्क्तेनच्छन्दसा त्रिणवेन स्तोमेन शाक्वरेण साम्ना ऽऽरोहन्तु तानन्वारोहामि राज्याय । ऐ० ८ । १२ ॥

,, अथैनं (इन्द्रं) अस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि साध्याश्चाऽऽप्त्याश्च देवाः.........अभ्यषिञ्चन्.......राज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥

साध्रम् (साम) साध्रं भवति सिद्ध्यै । तां० १५ । ५ । २८ ॥

सानसिः (यजु० १२ । १०९) (=सनातन) पृणक्षि सानसिं क्रतुमिति पृणक्षि सनातनं क्रतुमित्येतत् । श० ७ । ३ । १ । ३२ ॥

सान्तपनीया (इष्टिः) उरः सान्तपनीयोरसा हि समिव तप्यते । श० ११ । ५ । २ । ४ ॥

सान्तपनो ऽग्निः एष ह वै सान्तपनो ऽग्निर्यद् ब्राह्मणो यस्य गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशनगोदानचूडाकरणोपनयनाप्लवनाग्निहोत्रव्रतचर्यादीनि कृतानि भवन्ति स सान्तपनः । गो० पू० २ । २३ ॥

साम्नाय्यम् (हविः) तमोषधिभ्यश्च वनस्पतिभ्यश्च गोभ्यश्च पशुभ्यश्चादित्याश्च ब्रह्म च ब्राह्मणाः सन्नयन्ते तत्साम्नाय्यस्य साम्नाय्यत्वम् । ष० ४ । ६ ॥

साम्नाय्यम् तस्मादप्यसोमयाजी समेव नयेत्। श० १।६।४।११॥
,, सोमः खलु वै साम्नाय्यम्। तै० ३।२।३।११॥
,, आमावास्यं वै साम्नाय्यम्। श० २।४।४।१५॥
,, ऐन्द्रꣳ साम्नाय्यम्। श० २।४।४।१२॥
,, राष्ट्रꣳ साम्नाय्यम्। श० ११।२।७।१७॥

सामराजम् (साम) साम्राज्यमाधिपत्यं गच्छति सामराज्ञा तुष्टुवानः। तां० १५।३।३५॥

सामवेदः (देवाः सोमं) साम्ना समानयन्। तत्साम्नः सामत्वम्। तै० २।२।८।७॥
,, स (प्रजापतिः) हैवं षोडशधा ऽऽत्मानं विकृत्य सार्धं समैत्। तद्यत्सार्धं समैत् तत्साम्नस्सामत्वम्। जै० उ० १।४८।७॥
,, तद्यत् समेत्य साम प्राजनयतां तत्साम्नस्सामत्वम्। जै० उ० १।५१।२॥
,, ता वा एता देवता अमावास्यां रात्रिं संयन्ति। चन्द्रमा अमावास्यां रात्रिमादित्यम्प्रविशत्यादित्यो ऽग्निम्। तद्यत्संयन्ति तस्मात्साम। जै० उ० १।३३।६, ७॥
,, समा उ ह वा अस्मिꣳश्छन्दाꣳसि साम्यादिति तत्साम्नः सामत्वम्। सा० १।१।५॥
,, तद्यदेष (आदित्यः) सर्वैर्लोकैस्समस्तस्मादेष (आदित्यः) एव साम। जै० उ० १।१२।५॥
,, (तमेतम्पुरुषं) सामेति छन्दोगाः (उपासते), एतस्मिन् हीदꣳ सर्वं समानम्। श० १०।५।२।२०॥
,, यो वै भवति यः श्रेष्ठतामश्नुते स सामन्भवत्यसामन्य इति हि निन्दन्ति। ऐ० ३।२३॥
,, सामन्भवति श्रेष्ठतां गच्छति यो वै भवति स सामन्भवत्यसामन्य इति ह निन्दन्ते। गो० उ० ३।२०॥
,, तद्यत्सा चाऽमश्च तत्सामाऽभवत् तत्साम्नस्सामत्वम्। जै० उ० १।५३।५॥
,, यद्वै तत्सा चामश्च समवदतां तत्सामाभवत्तत्साम्नः सामत्वम्। गो० उ० ३।२०॥

सामवेदः यद्वै तत्सा चाऽमश्च समभवतां तत्सामाऽभवत्तत्साम्नः सामत्वम् । ऐ० ३ । २३ ॥

" सैव नामर्गासीत् । अमो नाम साम । गो० उ० ३ । २० ॥

" प्राणो वावामो वाक् सा, तत्साम । जै० उ० ४ । २३ । ३ ॥

" ऋक् च वा इदमग्रे साम चास्तां सैव नाम ऋगासीदमो नाम साम । ऐ० ३ । २३ ॥

" एष (प्राणः) उऽएव साम । वाग्वै सामैष सा चामश्चेति तत्साम्नः सामत्वं यद्वेव समः प्लुषिणा समो मशकेन समो नागेन सम एभिस्त्रिभिर्लोकैः समो ऽनेन सर्वेण तस्माद्वेव साम । श० १४ । ४ । १ । २४ ॥

" प्राणो वै साम प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि सम्यञ्चि । श० १४ । ८ । १४ । ३ ॥

" प्राणा वै सामानि । श० ६ । १ । २ । ३२ ॥

" प्राणः सामवेदः । श० १४ । ४ । ३ । १२ ॥

" स यः प्राणस्तत्साम । जै० उ० १ । २५ । १० ॥

" तस्मात्प्राण एव साम । जै० उ० ३ । १ । १८ ॥

" प्राणो वाव साम्नस्सुवर्णम् । जै० उ० १ । ३९ । ४ ॥

" (वागिति) एतदेषाᳬ (नाम्नां) सामैतद्धि सर्वैर्नामभिः समम् । श० १४ । ४ । ४ । १ ।

" तद्यदेतत्सर्वं वाचमेवाऽभिसमयति तस्माद्वागेव साम । जै० उ० १ । ४० । ६ ॥

" एतदु ह वाव साम यद्वाक् । जै० उ० २ । १५ । ४ ॥

" वागेवऽर्चश्च सामानि च मन एव यजूᳬषि । श० ४ । ६ । ७ । ५ ॥

" वाग्वाव साम्नः प्रतिष्ठा । जै० उ० १ । ३९ । ३ ॥

" वाग्देवत्यं साम, वाचो मनो देवता, मनसः पशवः, पशूनामोषधय ओषधीनामापः । तदेतदद्भ्यो जातं सामाऽप्सु प्रतिष्ठितमिति । जै० उ० १ । ५९ । १४ ॥

" दिवमेव साम्ना (जयति) । श० ४ । ६ । ७ । २ ॥

" स्वर्गो लोकः सामवेदः । ष० १ । ५ ॥

सामवेदः (प्रजापतिः) स्वरित्येव सामवेदस्य रसमादत्त। सो ऽसौ द्यौरभवत्। तस्य यो रसः प्राणेदत् स आदित्यो ऽभवद्रसस्य रसः। जै० उ० १।१।५॥

,, स्वरिति सामभ्यो ऽक्षरत् स्वः स्वर्गलोको ऽभवत्। ष० १।५॥

,, साम वा असौ (द्यु-)लोकः। ऋगयम् (भूलोकः)। तां० ४।३।५॥

,, साम्नामादित्यो देवतं तदेव ज्योतिर्जागतंछन्दो द्यौः स्थानम्। गो० पू० १।२९॥

,, सूर्यात्सामवेदः (अजायत)। श० ११।५।८।३॥

,, (आदित्यस्य) अर्चिः सामानि। श० १०।५।१।५॥

,, तस्माद्वायुरेव साम। जै० उ० ३।१।१२॥

,, चत्वारि (बृहतीसहस्राणि—४०००×३६=१४४००० अक्षराणि) साम्नाम्। श० १०।४।२।२४॥

,, अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषीत्येवमादिं कृत्वा सामवेदमधीयते। गो० पू० १।२९॥

,, साम वै सहस्रवर्त्तनि (सहस्रवर्त्मा सामवेदः—इति पातञ्जलमहाभाष्यस्य अ० १ पा० १ प्रथमाह्निके)। ष० १।४॥

,, साम वाऽ ऋचः पतिः। श० ८।१।३।५॥

,, ऋचि साम गीयते। श० ८।१।३।३॥

,, एतावद्वाव साम यावान् स्वरः। ऋग्वा एषर्ते स्वराद्भवतीति। जै० उ० १।२१।९॥

,, तस्य (साम्नः) वै स्वर एव स्वम्। श० १४।४।१।२७॥

,, गायन्ति हि साम। श० ४।४।५।६॥

,, न वाऽ अहिङ्कृत्य साम गीयते। श० १।४।१।१॥

,, मुखꣳ हि साम्नः प्रस्तावः। तां० १२।१०।७॥

,, तानि वा एतानि त्रीणि साम्न उद्गीतमनुगीतमागीतम्। तद्यथेदं वयमागायोद्गायाम एतदुद्गीतम्। अथ यद्यथागीतं तदनुगीतम्। अथ यत्किञ्चेति साम्नस्तदागीतम्। जै० उ० १।५५।१४॥

,, पुनरादायं वै सामगाः स्तुवते। कौ० १८।२॥

सामवेदः सर्वेषां वाऽ एष वेदानाᳬं रसो यत्साम । श० १२ । ८ । ३ । २३ ॥ गो० उ० ५ । ७ ॥

,, साम हि नाष्ट्राणाᳬं रक्षसामपहन्ता । श० ४ । ४ । ५ । ६ ॥ १४ । ३ । १ । १० ॥

,, नासामा यज्ञो ऽस्ति । श० १ । ४ । १ । १ ॥

,, सोमाहुतयो ह वाऽ एता देवानाम् । यत्सामानि । श० ११ ५ । ६ । ६ ॥

,, तस्मादाहुः सामैवान्नमिति । सा० १ । १ । ३ ॥

,, सो (प्रजापतिः) ऽब्रवीदेकं वावेदमन्नाद्यमक्षि सामैव । जै० उ० १ । ११ । ३ ॥

,, साम देवानामन्नम् । तां० ६ । ४ । १३ ॥

,, क्षत्रं वै साम । श० १२ । ८ । ३ । २३ ॥ गो० उ० ५ । ७ ॥

,, साम्राज्यं वै साम । श० १२ । ८ । ३ । २३ ॥ गो० उ० ५ । ७ ॥

,, सामवेद एव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, सामवेदो यशः । श० १२ । ३ । ४ । ९ ॥

,, तदाहुस्संवत्सर एव सामेति । जै० उ० १ । ३५ । १ ॥

,, सर्वं तेजः सामरूप्यᳬं ह शश्वत् । तै० ३ । १२ । ९ । २ ॥

,, बन्धुमत्साम । जै० उ० ३ । ६ । ७ ॥

,, (प्रजापतिः) सामान्युद्गीथम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १३ । ३ ॥

,, (दक्षिणनेत्रस्य) यत्कृष्णं (रूपं) तत्साम्नाम् । जै० उ० ४ । २४ । १२ ॥

,, साम हि सत्याशीः । तां० ११ । १० । १० ॥ १३ । १२ । ७ ॥ १५ । ५ । १३ ॥

,, तयोः (सदसतोः) यत् सत् तत्साम तन्मनस्स प्राणः । जै० उ० १ । ५३ । २ ॥

,, मनो वाव साम्नश्श्रीः । जै० उ० १ । ३९ । २ ॥

,, श्रोत्रं वाव साम्नश्श्रुतिः । जै० उ० १ । ३९ । ६ ॥

,, चक्षुर्वाव साम्नो ऽपचितिः । जै० उ० १ । ३९ । ५ ॥

,, सामवेदो ब्राह्मणानां प्रसूतिः । तै० ३ । १२ । ६ । २ ॥

सामवेदः वामदेव्यं वै साम्नाꣳ सत् । तां० ४ । ८ । १० ॥
" सत् (=उत्कृष्टमिति सायणः) वै वामदेव्यꣳ साम्नाम् तां० १५ । १२ । २ ॥
" बृहत्यां भूयिष्ठानि सामानि भवन्ति । तां० ७ । ३ । १६ ॥
" अन्तो बृहत्साम्नाम् । तां० १९ । १२ । ८ ॥
" अथ यदेतदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतं तानि सामानि स साम्नां लोकः । श० १० । ५ । २ । १ ॥
" महाव्रतꣳ साम्नाम् (समुद्रः) । श० ६ । ५ । २ । १२ ॥
" सामवेदेनास्तमये महीयते । तै० ३ । १२ । ६ । १ ॥
" साम्नामुदीची महती दिगुच्यते । तै० ३ । १२ । ९ । १ ॥
" धर्म इन्द्रो राजेत्याह तस्य देवा विशः······सामानि वेदः ······साम्नां दशतं (=दशतिं) ब्रूयात् । श० १३।४।३।१४॥
" ऋक्सामयोर्हैते (शुक्लकृष्णे) रूपे । श० ६ । ७ । १ । ७ ॥
" सामवेदे ऽथ खिलश्रुतिः ब्रह्मचर्य्येण चैतस्मादथर्वाङ्गिरसो ह यो वेद स वेद सर्वमिति । गो० पू० १ । २९ ॥

सामिधेनी (ऋक्) एता हि वाऽ इदꣳ सर्वꣳ समिन्धतऽ एताभिरिदꣳ सर्वꣳ समिद्धं तस्मात्सामिधेन्यो नाम । श० ११ । २ । ७ । ६ ॥
" समिन्धे सामिधेनीभिर्होता तस्मात् सामिधेन्यो नाम । श० १ । ३ । ५ । १ ॥
" वज्रो वै सामिधेन्यः । कौ० ३ । २, ३ ॥ ७ । २ ॥

साम्राज्यम् तस्मादेतस्यां प्राच्यां दिशि ये के च प्राच्यानां राजानः साम्राज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते सम्राडित्येमानभिषिक्तानाचक्षते । ऐ० ८ । १४ ॥
" अथैनं (इन्द्रं) प्राच्यां दिशि वसवो देवाः······ ···अभ्यषिञ्चन्······साम्राज्याय । ऐ० ८ । १ ॥
" साम्राज्यं वै साम । श० १२।८।३।२३॥ गो० उ० ५ । ७ ॥
" तेजसो वा एष वनस्पतिरजायत यदश्वत्थः, साम्राज्यं वा एतद्वनस्पतीनाम् । ऐ० ७ । ३२ ॥
" अवरꣳ हि राज्यं परꣳ साम्राज्यम् । श० ५ । १ । १ । १३॥
" साम्राज्यं वै स्वर्गो लोकः । तां० ४ । ६ । २४ ॥

सायम् (कालः) वरुणस्य सायमासवो ऽपानः । तै० १ । ५ । ३ । १ ॥

सार्पराज्ञी इयं (पृथिवी) वै सार्पराज्ञीयं हि सर्पतो राज्ञी । कौ० २७ । ४॥

,, इयं (पृथिवी) वै सार्पराज्ञी । तां० ४ । ९ । ६ ॥

,, वाग्वै सार्पराज्ञी । कौ० २७ । ४ ॥

,, गौर्वै सार्पराज्ञी । कौ० २७ । ४ ॥

सार्वसेनियज्ञः स एष प्रजातिकामस्य यज्ञः । कौ० ४ । ६ ॥

सालावृकः इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छंत्तषां त्रय उदशिष्यन्त रायोवाजो बृहद्गिरिः पृथुरश्मिः । तां० ८ । १ । ४ ॥

,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छंत्तषां त्रय उदशिष्यन्त पृथुरश्मिर्बृहद्गिरी रायोवाजः । तां० १३ । ४ । १७ ॥

,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागभ्यवदत् स प्रजापतिमुपाधावत्तस्मा एतमुपहव्यं प्रायच्छत् । तां० १८ । १ । ९ ॥

,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागभ्यवदत्सो ऽशुद्धो ऽमन्यत स एते शुद्धाशुद्धीये (सामनी) अपश्यत्ताभ्यामशुध्यत् । तां० १९ । ४ । ७ ॥

,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागभ्यवदत्सो ऽशुद्धो ऽमन्यत स एतच्छुद्धाशुद्धीयं (साम) अपश्यत्तेनाशुध्यत् (इन्द्रो यतीन्त्सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तान्दक्षिणत उत्तरवेद्या आदन्—तैत्तिरीयसंहितायाम् ६ । २ । ७ । ५ ॥ अथर्ववेदे २ । २७ । ५ः—तयाहं शत्रून्त्साक्ष इन्द्रः सालावृकाँ इव ॥ ऋ० १० । ७३ । ३ः—त्वमिन्द्र सालावृकान्त्सहस्रमासन्दधिषे॥) । तां० १४ । ११ । २८ ॥

,, यत्रेन्द्रं देवताः (यज्ञेषु) पर्यवृञ्जन्, यतः स इन्द्रः) विश्वरूपं त्वाष्ट्रमभ्यमंस्त वृत्रमस्तृत यतीन्त्सालावृकेभ्यः प्रादादरुर्मघानवधीद् बृहस्पतेः प्रत्यवधीदिति तत्रेन्द्रः सोमपीथेन व्यार्द्धत [तं (प्रतर्दनं) हेन्द्र उवाच मामेव विजानीह्येतदेवाहं मनुष्याय हिततमं मन्ये यन्मां विजानीयात्त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रमहनमरुन्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छं बह्वीः सन्धा अतिक्रम्य दिवि प्रह्लादीयानतृणमहमन्तरिक्षे पौलोमान् पृथिव्यां कालकाञ्जांस्तस्य मे तत्र न

लोम च नामीयत स यो मां (इन्द्रं) वेद न ह वै तस्य केन चन कर्मणा लोको मीयते न स्तेयेन न भ्रूणहत्यया न मातृवधेन न पितृवधेन नास्य पापं चकृषो मुखान्नीलं वेतीति—शङ्करानन्दीयटीकायुतायां कौषीतकिब्राह्मणोपनिषदि ३ । १ ॥] । ऐ० ७ । २८ ॥

सावित्रः (अग्निः) स यदेते देवते अन्तरेण तत्सर्वꣳ सीव्यति । तस्मात् सावित्रः । तै० ३ । १० । ११ । ७ ॥

,, एष वाव स सावित्रः । य एष (सूर्य्यः) तपति । तै० ३ । १० । ९ । १५ ॥

सावित्रग्रहः प्राणो वै सावित्रग्रहः । कौ० १६ । २ ॥

सावित्री (ऋक्) अथ (आचार्य्यः) अस्मै (ब्रह्मचारिणे) सावित्रीमन्वाह । श० ११ । ५ । ४ । ६ ॥

,, सो ऽपहतपाप्मानन्तां श्रियमश्नुते य एवं वेद यश्चैवं विद्वानेवमेतां वेदानां मातरं सावित्रीं संपदमुपनिषदमुपास्ते । गो० पू० १ । ३९ ॥

,, द्यौः सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । ११ ॥

,, अन्तरिक्षं सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

,, नक्षत्राणि सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । १३ ॥

,, वाक् सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । १५ ॥

,, पृथिवी सावित्री । जै० उ० ४ । २७ । १ ॥ गो० पू० १ । ३३ ॥

,, रात्रिः सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

,, स्तनयित्नुः सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

,, विद्युत्सावित्री । जै० उ० ४ । २७ । ९ ॥

,, वर्षं सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

,, आपस्सावित्री । जै० उ० ४ । २७ । ३ ॥

,, अन्नं सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

,, दक्षिणाः सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

,, छन्दांसि सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । ७ ॥

,, शीतं सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

,, आकाशस्सावित्री । जै० उ० ४ । २७ । ५ ॥

सावित्री स्त्री सावित्री । जै० उ० ४ । २७ । १७ ॥

,, यो वा एतां सावित्रीमेवं वेदाऽपमृत्युं तरति सावित्र्या एव सलोकतां जयति । जै० उ० ४ । २८ । ६ ॥

साहस्रः होता हि साहस्रः । श० ४ । ५ । ८ । १२ ॥

,, साहस्राः पशवः । कौ० २१ । ५ ॥

साहस्रः शतधार उत्सः (यजु० १३ । ४९) साहस्रो वाऽ एष शतधार उत्सो यद्द्यौः । श० ७ । ५ । २ । ३४ ॥

साहस्री (गौः) वाग्वाऽ एषा निदानेन यत्साहस्री तस्या एतत् सहस्रं वाचः प्रजातम् । श० ४ । ५ । ८ । ४ ॥

सिंहः लोहितादेवास्य सहो ऽस्रवत्स सिंहो ऽभवदारण्यानां पशूनामीशः । श० १२ । ७ । १ । ८ ॥

,, स यन्नस्तो ऽद्रवत् । ततः सिंहः समभवत् । श० ५ । ५ । ४ । १० ॥

सिकताः सा (मृत्) अतप्यत सा सिकता असृजत । श० ६ । १ । ३ । ४ ॥

,, सिकताभ्यः शर्करामसृजत । श० ६ । १ । ३ । ५ ॥

,, द्वे हि सिकते शुक्ला च कृष्णा च । श० ७ । ३ । १ । ४३ ॥

,, अलंकारो न्वेव सिकता आजन्तऽ इव हि सिकता अग्नेर्वा एतद्वैश्वानरस्य भस्म यत्सिकताः । श० ३ । ५ । १ । ३६ ॥

,, अग्नेरेतद्वैश्वानरस्य भस्म यत्सिकताः । श० ७ । १ । १ । ९ ॥

,, अग्नेरेतद्वैश्वानरस्य रेतो यत्सिकताः । श० ७ । १ । १ । १० ॥

,, रेतः सिकताः । श० ७ । १ । १ । ११ ॥

,, सिकता वा अपां पुरीषम् । श० ७ । ५ । २ । ५९ ॥

सिनीवाली या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली । ऐ० ७ । ११ ॥ ष० ४ । ६ ॥ गो० उ० १ । १० ॥

,, (यजु० ११ । ५५) वाग्वै सिनीवाली । श० ६ । ५ । १ । ९ ॥

,, या गौः सा सिनीवाली सो एव जगती । ऐ० ३ । ४८ ॥

,, या सिनीवाली सा जगती । ऐ० ३ । ४७ ॥

,, (यजु० ११ । ५६) योषा वै सिनीवाली । श० ६ । ५ । १ । १० ॥

सिन्धवः (ऋ० २ । १२ । १२) तद्यदेतैरिदं सर्वं सितं तस्मात्सिन्धवः। जै० उ० १ । २९ । ९ ॥

सिन्धुश्छन्दः (यजु० १५ । ४) प्राणो वै सिन्धुश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

सिमाः (=शाक्करं साम, महानाम्न्यः) (इन्द्रो वृत्रस्य) सीमानमभिनत्तत्सिमा । तां० १३ । ४ । १ ॥

„ ता ऊर्ध्वाः सीम्नो ऽभ्यसृजत यदूर्ध्वाः सीम्नो ऽभ्यसृजत तत्सिमा अभवंस्तत्सिमानां सिमात्वम् । ऐ० ५ । ७ ॥

„ मह्यो हि सिमाः । तां० १३ । ५ । ३ ॥

सीता वीजाय वाऽ एषा योनिष्क्रियते यत्सीता यथा ह वाऽ अयोनौ रेतः सिञ्चेदेवं तद्यदकृष्टे वपति । श० ७ । २ । २ । ५ ॥

„ प्राणा वै सीताः । श० ७ । २ । ३ । ३ ॥

„ सा (सीता सावित्री) ह पितरं प्रजापतिमुपससार । तꣳ होवाच । नमस्ते अस्तु भगवः । तै० २ । ३ । १० । १ ॥

सीतासमरः वाग्वै सीतासमरः । श० ७ । २ । ३ । ३ ॥

सीदन्तीयम् (=शङ्कुसाम) एतेन (सीदन्तीयेन) वै प्रजापतिरूर्द्ध्व इमान् लोकानसीदद्यदसीदत्तत् सीदन्तीयस्य सीदन्तीयत्वमूर्द्ध्व इमान् लोकान् सीदति सीदन्तीयेन तुष्टुवानः । तां० ११ । १० । १२ ॥

„ तद् (शङ्कुसाम) उ सीदन्तीयमित्याहुः । तां० ११ । १० । १२ ॥

सीमा (यजु० १३ । ३) मध्यं वै सीमा । श० ७ । ४ । १ । १४ ॥

सीरपतिः इन्द्र आसीत्सीरपतिः शतक्रतुः । तै० २ । ४ । ८ । ७ ॥

सीरम् सेरꣳ हैतद्यत्सीरमिरामेवास्मिन्नेतद्दधाति । श० ७ । २ । २ । २॥

सीसम् नाभ्या एवास्य शूपो ऽस्रवत् । तत्सीसमभवन्नायो न हिरण्यम् । श० १२ । ७ । १ । ७ ॥

„ एतदयो न हिरण्यं यत्सीसम् । श० ५ । १ । २ । १४ ॥

„ लोहेन सीसम् (सन्दध्यात्) । गो० पू० १ । १४ ॥

„ सीसेन त्रपु (संदध्यात्) । गो० पू० १ । १४ ॥

„ (इन्द्रः) तत् (रक्षः) सीसेनापजघान । तस्मात्सीसं मृदु सृतजवꣳ हि । श० ५ । ४ । १ । १० ॥

सुकीर्तिः (="अप प्राच इत्यादि सूक्तम्" इति सायणः) देवयोनिर्वै सुकीर्त्तिः। ऐ० ६।२९॥ गो० उ० ६।८, १२॥

सुकृतः तस्य सूर्यस्य ये रश्मयस्ते सुकृतः। श० १।९।३।१०॥

सुकृतस्य योनिः (यजु० ११ ३५) कृष्णाजिनं वै सुकृतस्य योनिः। श० ६।४।२।६॥

सुकृतस्य लोकः सत्यं वै सुकृतस्य लोकः। तै० ३।३।६।११॥

,, पुण्यं कर्म सुकृतस्य लोकः। तै० ३।३।१०।२॥

सुक्षितिः (यजु० ३७।१०) अयं वै (पृथिवी-)लोकः सुक्षितिरस्मिन्हि लोके सर्वाणि भूतानि क्षियन्ति। श० १४।१।२।२४॥

,, अथोऽअग्निर्वै सुक्षितिरग्निर्ह्येवास्मिँल्लोके सर्वाणि भूतानि क्षियंति। श० १४।१।२।२४॥

सुखम् सुखं वै कम्। गो० उ० ६।३॥

,, अथो सुखस्य वा एतन्नामधेयङ्कमिति। गो० उ० १।२२॥

,, अथो सुखस्यैवैतन्नामधेयं कमिति। कौ० ५।४॥

सुगन्धितेजनम् (तृणविशेष इति सायणः) (अग्नेः) यत् स्नाव (आसीत्) तत्सुगन्धितेजनम् (अभवत्)। तां० २४।१३।५॥

,, गन्धो हैवास्य (अग्नेः) सुगन्धितेजनम्। श० ३।५।२।१७॥

सुचरितम् ऋजुकर्मैतं सत्यं सुचरितम्। तै० ३।३।७।१०॥

सुतर्मा नौः यज्ञो वै सुतर्मा नौः कृष्णाजिनं वै सुतर्मा नौर्वाग्वै सुतर्मा नौः। ऐ० १।१३॥

सुत्याः अग्निष्टोमो ऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशिमांस्ततः। वाजपेयोऽतिरात्रश्चाप्तोर्यामात्र सप्तम इत्येते सुत्याः। गो० पू० ५।२३॥

सुत्रामा ऋषभमिन्द्राय सुत्राम्णऽ आलभते। श० ५।५।४।१॥

सुधनः (यजु० १८।५) "रत्नधा" इत्येतं शब्दं पश्यत।

सुपर्णः बभ्रो (=रश्मी) वै सुपर्णः। कौ० १८।४॥

,, अथ ह वाऽ एष महासुपर्ण एव यत्संवत्सरः। तस्य यान्पुरस्ताद्विषुवतः षण्मासानुपयन्ति सोऽन्यतरः पक्षोऽथ यान्युपरिष्टात्सोऽन्यतर आत्मा विषुवान्। श० १२।२।३।७॥

सुपर्णः (यजु० १३ । १६) पुरुषः सुपर्णः । श० ७ । ४ । २ । ५ ॥

,, यज्ञो वै देवेभ्यो ऽपाक्रामत्स सुपर्णरूपं कृत्वाचरत् तं देवा एतैः (सौपर्णैः) सामभिरारभन्त । तां० १४ । ३ । १० ॥

,, प्रजापतिर्वै सुपर्णो गरुत्मान् (ऋ० १० । १४९ । ३) । श० १० । २ । २ । ४ ॥

,, वीर्यं वै सुपर्णो गरुत्मान् । श० ६ । ७ । २ । ६ ॥

सुपर्णी (माया) वागेव सुपर्णी । श० ३ । ६ । २ । २ ॥

सुब्रह्म असावादित्यः सुब्रह्म । ष० १ । १ ॥

,, वाग्वै ब्रह्म च सुब्रह्म चेति । ऐ० ६ । ३ ॥

सुब्रह्मण्या (=इन्द्राऽऽगच्छ हरिव आगच्छेत्यादि निगदः) ब्रह्म वै सुब्रह्मण्या । कौ० २७ । ६ ॥

,, तदाहुः किं सुब्रह्मण्यायै सुब्रह्मण्यात्वमिति वागेवेति ब्रूयाद्वाग्वै ब्रह्म च सुब्रह्म चेति । ऐ० ६ । ३ ॥

,, वाग्वै सुब्रह्मण्या । ऐ० ६ । ३ ॥

,, ब्रह्मश्रीर्वै नामैतत्साम यत्सुब्रह्मण्या । ष० १ । २ ॥

सुमेकः सुमेकः संवत्सरः स्वेको ह वै नामैतद्यत्सुमेक इति । श० १ । ७ । २ । २६ ॥

सुम्नम् (=साधु) सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तमिति साध्व्यौ स्थः साध्वौ मा धत्तमित्येवैतदाह । श० १ । ८ । ३ । २७ ॥

,, प्रजा वै पशवः सुम्नम् । तै० ३ । ३ । ६ । ९ ॥

,, (यजु० १२ । ६७, १११) यज्ञो वै सुम्नम् । श० ७ । २ । २ । ४ ॥ ७ । ३ । १ । ३३ ॥

सुम्नयुः (ऋ० ३ । २७ । १) यजमानो वै सुम्नयुः । श० १ । ४ । १ । २१ ॥

सुरभयः प्राणा वै सुरभयः । तै० ३ । ९ । ७ । ५ ॥

सुरा अनृतं पाप्मा तमः सुरा । श० ५ । १ । २ । १० ॥ ५ । १ । ५ । २८ ॥

,, अभिमाद्यन्निव हि सुरां पीत्वा वदति । श० १ । ६ । ३ । ४ ॥ ५ । ५ । ४ । ५ ॥

,, तस्मात्सुरां पीत्वा रौद्रमनाः । श० १२ । ७ । ३ । २० ॥

सुरा स्फिगीभ्यामेवास्य भामो ऽस्रवत्सा सुराभवदन्नस्य रसः। श० १२।७।१।७॥

" यत्सुरा भवति क्षत्ररूपं तदथो अन्नस्य रसः। ऐ० ८।८॥

" अपां च वाऽ एष ओषधीनां च रसो यत्सुरा। श० १२।८।१।४॥

" अन्नꣳ सुरा। तै० १।३।३।५॥

" यदन्नस्य (शमलमासीत्) सा सुरा (अभवत्)। तै० २।३।२।६॥ १।३।३।३, ६॥

" प्रजापतेर्वाऽ एतेऽअन्धसी यत्सोमश्च सुरा च। श० ५।१।२।१०॥

" एतद्वै देवानां परममन्नं यत्सोमः। एतन्मनुष्याणां यत्सुरा। तै० १।३।३।३॥

" पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा। तै० १।३।३।४॥

" विट् सुरा। श० १२।७।३।८॥

" यशो हि सुरा। श० १२।७।३।१४॥

" अशिव इव वाऽ एष भक्षो यत्सुरा ब्राह्मणस्य। श० १२।८।१।५॥

" सुरावान्वाऽ एष बर्हिषद्यज्ञो यत्सौत्रामणी। श० १२।८।१।२॥

सुरुचः (यजु० १३ : ३) इमे लोकाः सुरुचः। श० ७।४।१।१४॥

सुरूपकृत्नुः यो ऽयमनिरुक्तः प्राणः स सुरूपकृत्नुः। कौ० १६।४॥

सुरूपम् (साम) पशवो वै सुरूपं पशूनामवरुध्यै। तां० १४।११।११॥

" अन्नं वै सुरूपम्। कौ० १६।३॥

सुवर्णम् लवणेन सुवर्णं संदध्यात्। जै० उ० ३।१७।३॥ गो० पू० १।१४॥

" सुवर्णेन रजतम् (संदध्यात्)। जै० उ० ३।१७।३॥ गो० पू० १।१४॥ (एवं छान्दोग्योपनिषदि ४।१७।७॥)

सुवीरः एष वाव सुवीरो यस्य पशवः। तां० १३।१।४॥

सुशर्मा सुप्रतिष्ठानः प्राणो वै सुशर्मा सुप्रतिष्ठानः। श० ४।४।१।१४॥

सुशस्तिः (यजु० १२।१०८) (=सुष्टुतिः) ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिरिति। ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुष्टुतिभिरित्येतत्। श० ७।३।१।३१॥

सुशास्तिः (यजु० ११। ४१) ये वोढारस्ते सुशास्तयः। श० ६। ४। ३। ६॥

सुश्रवाः देवा वै ब्रह्मन्नवदन्त । तत्पर्ण (=पलाशः) उपाशृणोत् । सुश्रवा वै नाम। तै० १। १। ३। ११॥

,, देवानां ब्रह्मवादं वदतां यत्। उपाशृणोः, (तस्मात्त्वं हे पर्ण) सुश्रवा वै श्रुतो ऽसि। ततो मामाविशतु ब्रह्मवर्चसम्। तै० १। २। १। ६॥

सुषदः (यजु० ११। ४४) पृथुर्भुव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहण इति पृथुर्भव सुशीमस्त्वमग्नेः पशव्यवाहन इत्येतत् (सुषदः= सुशीमः)। श० ६। ४। ४। ३॥

सुषुम्णः (यजु० १८। ४०) सुषुम्ण इति सुयज्ञिय इत्येतत्। श० ९। ४। १। ९॥

सुषेणः (यजु० १५। १९) तस्य (पर्जन्यस्य) सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्याविति हैमन्तिकौ तावृतू । श० ८। ६। १। २०॥

सुसन्दृक् प्राणो वै सुसन्दृक्। तै० १। ६। ९। ९॥

सूक्तम् यजमानो हि सूक्तम्। ऐ० ६। ९॥

,, आत्मा सूक्तम्। कौ० १४। ४॥ १५। ३॥ १६। ४॥ २३। ८॥

,, द्यौस्सूक्तम्। जै० उ० ३। ४। २॥

,, शिरस्सूक्तम्। जै० उ० ३। ४। ३॥

,, गृहाः सूक्तम्। ऐ० ३। २३॥

,, गृहा वै सूक्तम्। गो० उ० ३। २१,२२॥

,, गृहा वै प्रतिष्ठा सूक्तम्। ऐ० ३। २४॥

,, विट् सूक्तम्। ऐ० २। ३३॥ ३। १९॥

,, प्रजा पशवः सूक्तम्। कौ० १४। ४॥

सूक्तवाकः संस्था सूक्तवाकः। श० ११। २। ७। २८॥

,, प्रतिष्ठा वै सूक्तवाकः। कौ० ३। ८॥

सूची विशो वै सूच्यः। श० १३। २। १०। २॥

सूतः सवो वै सूतः। श० ५। ३। १। ५॥

सूददोहाः आपो वै सूदो ऽन्नं दोहः। श० ८। ७। ३। २१॥

,, प्राणः सूददोहाः। श० ७। १। १। १५॥ ७। ३। १। ४५॥

सूददोहाः प्राणो वै सूददोहाः । श० ७ । १ । १ । २६ ॥

" त्वक्सूददोहाः । श० ८ । १ । ४ । ५ ॥

सूनुः (यजु० १२ । ५१) प्रजा वै सूनुः । श० ७ । १ । १ । २७ ॥

सूरः अन्तो वै सूरः (=सूर्य्य इति सायणः) । तां० १५ । ४ । २ ॥ १५ । ११ । १४ ॥

सूर्यः तं (इन्द्रं) देवा अब्रुवन् सुवीर्य्यो मर्य्यो यथा गोपायत इति । तत्सूर्य्यस्य सूर्य्यत्वम् । तै० २ । २ । १० । ४ ॥

" असौ वै सूर्य्यो यो ऽसौ तपति । कौ० ५ । ८ ॥ गो० उ० १ । २६ ॥

" एष वै सूर्यो य एष तपति । श० २ । ६ । ३ । ८ ॥

" (यजु० १८ । ५०) असौ वा ऽ आदित्यः सूर्यः । श० ९ । ४ । २ । २३ ॥

" एष वै शुक्रो य एष (सूर्यः) तपत्येष उ ऽएव बृहन् । श० ४ । ५ । ९ । ६ ॥

" एष वा ऽ इन्द्रो य एष (सूर्यः) तपति । श० २ । ३ । ४ । १२ ॥ ३ । ४ । २ । १५ ॥

" असौ वै पूषा यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । गो० उ० १ । २० ॥ कौ० ५ । २ ॥

" असौ वै सविता यो ऽसौ (सूर्य्यः) तपति । कौ० ७ । ६ ॥ गो० उ० १ । २० ॥

" एष वै सविता य एष तपति (सूर्य्यः) । श० ३ । २ । ३ । १८ ॥ ४ । ४ । १ । ३ ॥ ५ । ३ । १ । ७ ॥

" एष वाव स सावित्रः । य एष (सूर्यः) तपति । तै० ३ । १० । ९ । १५ ॥

" यः सूर्यः स धाता स उ एव वषट्कारः । ऐ० ३ । ४८ ॥

" एष एव वषट्कारो य एष (सूर्य्यः) तपति । श० १ । ७ । २ । ११ ॥

" एष वै वषट्कारो य एष (सूर्यः) तपति । श० ११ । २ । २ । ५ ॥

" एष वै स्वाहाकारो य एष (सूर्यः) तपति । श० १४ । १ । ३ । २६ ॥

सूर्यः एष वै ब्रह्मणस्पतिः (यजु० ३७ । ७) य एष (सूर्यः) तपति । श० १४ । १ । २ । १५ ॥

,, स वा एषो (सूर्य्यः) ऽपः प्रविश्य वरुणो भवति । कौ० १८ । ९॥

,, अर्कश्चक्षुस्तदसौ सूर्य्यः । तै० १ । १ । ७ । २ ॥

,, एष वै मखो (यजु० ३७ । ११) य एष (सूर्यः) तपति । श० १४ । १ । ३ । ५ ॥

,, एष वै पिता (यजु० ३७ । २०) य एष (सूर्यः) तपति । श० १४ । १ । ४ । १५ ॥

,, स ह्येष (सूर्यः) भर्ता । श० ४ । ६ । ७ । २१ ॥

,, एष वै ग्रहः । य एष (सूर्यः) तपति येनेमाः सर्वाः प्रजा गृहीताः । श० ४ । ६ । ५ । १ ॥

,, एष (सूर्यः) वै गोत्राः । ऐ० ४ । २० ॥

,, एष वै गोपाः (यजु० ३७ । १७) य एष (सूर्यः) तपत्येष हीदᳬ सर्वं गोपायति । श० १४ । १ । ४ । ९ ॥

,, एष वै तन्त्रायी (यजु० ३८ । १२ ॥) य एष (सूर्यः) तपत्येष हीमाँल्लोकांस्तन्त्रमिवानुसंचरति । श० १४ । २ । २ । २२ ॥

,, अथ वै निविद्सावेव यो ऽसौ (सूर्यः) तपत्येष हीदं सर्वं निवेदयन्नेति । कौ० १४ । १ ॥

,, आदित्यो (=सूर्यः) निवित् । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥

,, सौर्य्या वा एता देवता यन्निविदः । ऐ० ३ । ११ ॥

,, यज्ञो वै स्वः (यजु० १ । ११) अहर्वैस्वः सूर्यः । श० १ । १ । २ । २१ ॥

,, असौ (सूर्यः) वाव स्वर्ऽकेन सूर्यं नातिशंसति । ऐ० ४ । १० ॥

,, असौ वै विश्वकर्मा यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । कौ० ५ । ५ ॥ गो० उ० १ । २३ ॥

,, एष (सूर्यः) वै वरसद् वरं वा एतत्सद्मनां यस्मिन्नेष आसन्नस्तपति । ऐ० ४ । २० ॥

,, एष (सूर्यः) वै वसुरन्तरिक्षसद् । ऐ० ४ । २० ॥

,, एष (सूर्य्यः) वै व्योमसद् व्योम वा एतद् सद्मनां यस्मिन्नेष आसन्नस्तपति । ऐ० ४ । २० ॥

सूर्यः एष (सूर्यः) वै नृषत् । ऐ० ४ । २० ॥
„ एष (सूर्यः) वै होता वेदिषद् (ऋ० ४ । ४० । ५) । ऐ० ४ । २० ॥
„ असौ वै होता यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । गो० उ० ६ । ६ ॥
„ असौ वै दूरोहो यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । ऐ० ४ । २० ॥
„ असौ वाऽ आदित्यो (=सूर्य्यः) दूरोहणं छन्दः (यजु० १५. ५)। श० ८ । ५ । २ । ६ ॥
„ एष वै यमो (यजु० ३७ । ११) य एष (सूर्यः) तपत्येष हीदꣳ सर्वं यमयत्येतेनेदꣳ सर्वं यतम् । श० १४ । १ । ३ । ४ ॥
„ स एष (सूर्यः) मृत्युः । श० १० । ५ । १ । ४ ॥
„ एष एव मृत्युः । य एष (सूर्यः) तपति । श० २ । ३ । ३ । ७ ॥
„ सूर्य्यः परिवत्सरः । तां० १७ । १३ । १७ ॥
„ आदित्यः (=सूर्य्यः) परिवत्सरः । तै० १ । ४ । १० । १ ॥
„ असौ वै महावीरो यो ऽसौ (सूर्यः) तपति । कौ० ८। ३, ७ ॥
„ एष वै चतुःस्रक्तिर्य एष (सूर्यः) तपति दिशो ह्येतस्य स्रक्तयः। श० १४ । ३ । १ । १७ ॥
„ अथ वै पुरोरुगसावेव यो ऽसौ (सूर्यः) तपत्येष हि पुरस्ताद्रोचते । कौ० १४ । ४ ॥
„ तद्वाऽ एतदेव पुरश्चरणम् । य एष (सूर्यः) तपति । श० ४ । ६ । ७ । २१ ॥
„ एष वाव स परोरजा इति होवाच । य एष (सूर्यः) तपति । तै० ३ । १० । ९ । ४ ॥
„ वाजपेयो वा एष य एष (सूर्य्यः) तपति । गो० उ० ५ । ८ ॥
„ अस्य (अग्नेः) एवैतानि (घर्मः, अर्कः, शुक्रः, ज्योतिः, सूर्यः) नामानि । श० ९ । ४ । २ । २५ ॥
„ एष वै गर्भो देवानां (यजु० ३७ । १४ ॥) य एष (सूर्यः) तपत्येष हीदꣳ सर्वं गृह्णात्यंतेनेदꣳ सर्वं गृभीतम् । श० १४ । १ । ४ । २ ॥
„ असौ वाऽ आदित्यो (=सूर्य्यः) बृहज्ज्योतिः । श० ६। ३। १। १५ ॥
„ असौ (सूर्य्यः) वाव ज्योतिस्तेन सूर्यं नातिशंसति । ऐ० ४ । १० ॥

सूर्यः ज्योतिरेष य एष (सूर्यः) तपति । २५ । ३, ९ ॥

,, एष वै श्रेष्ठो रश्मिः (यजु० २ । २६ ॥) यत्सूर्यः । श० १ । १ । ३ । १६ ॥

,, यदेतन्मण्डलं (=सूर्यः) तपति । तन्महदुक्थं ता ऋचः स ऋचां लोकः । श० १० । ५ । २ । १ ॥

,, बार्हतो वा एष य एष (सूर्यः) तपति । कौ० १५ । ४ ॥ २५ । ४ ॥ गो० उ० ३ । २० ॥

,, बृहत्यां वा असावादित्यः (=सूर्यः) श्रियां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितस्तपति । गो० उ० ५ । ७ ॥

,, जागतो वा एष य एष (सूर्यः) तपति । कौ० २५ । ४, ७ ॥

,, त्रैष्टुभो वा एष य एष (सूर्यः) तपति । कौ० २५ । ४ ॥

,, य आदित्यः (सूर्यः) स्वर एव सः । जै० उ० ३ । ३३ । १ ॥

,, स यदाह स्वरो ऽसीति सोमं वा एतदाहैष ह वै सूर्यो भूत्वाऽमुष्मिंल्लोके स्वरति तद्यत्स्वरति तस्मात्स्वरस्तत्स्वरस्य स्वरत्वम् । गो० पू० ५ । १४ ॥

,, एष वै मूर्धा य एष (सूर्यः) तपति । श० १३ । ४ । १ । १३ ॥

,, (द्युस्थानः) सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्य इति तदमुं लोकं (=द्युलोकं) लोकानामाप्नोति तृतीयसवनं यज्ञस्य । कौ० १४ । १ ॥

,, (यजु० २० । २१) स्वर्गो वै लोकः सूर्य्यो ज्योतिरुत्तमम् । श० १२ । ६ । २ । ८ ॥

,, एष (आदित्यः) स्वर्गो लोकः । तै० ३ । ८ । १० । ३ ॥ ३ । ८ । १७ । २ ॥ ३ । ८ । २० । २ ॥

,, अर्चोदितः (आदित्यः=सूर्यः) प्रस्तावः । जै० उ० १ । १२ । ४ ॥

,, सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा । श० १४ । ३ । २ । ९ ॥

,, अथ सूर्यमुदीक्षते । सैषा गतिरेषा प्रतिष्ठा । श० १ । ६ । ३ । १५ ॥

,, ते (देवाः) सूर्य्यं काष्ठां कृत्वाजिमधावन् । तां० ९ । १ । ३५ ॥

,, एतद्वाऽ अनपराद्धं नक्षत्रं यत्सूर्यः । श० २ । १ । २ । १९ ॥

,, सूर्य्यो ऽग्नेर्योनिरायतनम् । तै० ३ । ६ । २१ । २, ३ ॥

,, सूर्य्यस्य वर्चसा । श० ५ । ४ । २ । २ ॥ तां० १ । ३ । ५ ॥ १ । ७ । ३ ॥

सूर्यः तस्मादग्नये सायꣳ हूयते सूर्य्याय प्रातः । तै० २ । १ । २ । ६ ॥
,, तेषां (नक्षत्राणां) एष (सूर्यः) उद्यन्नेव वीर्य्यं क्षत्रमादत्त । श० २ । १ । २ । १८ ॥
,, स (सूर्यः) यत्रोदङ्ङावर्त्तते । देवेषु तर्हि भवति देवांस्तर्ह्यभिगोपायत्यथ यत्र दक्षिणावर्त्तते पितृषु तर्हि भवति पितॄँस्तर्ह्यभिगोपायति । श० २ । १ । ३ । ३ ॥
,, सूर्य्यो हि नाष्ट्राणाꣳ रक्षसामपहन्ता । श० १ । ३ । ४ । ८ ॥
,, सूर्यो मा दिव्याभ्यो नाष्ट्राभ्यः पातु । तां० १ । ३ । २ ॥
,, युनज्मि वायुꣳ सह सूर्य्येण । तां० १ । २ । १ ॥
,, सूर्य्यो वै प्रजानां चक्षुः । श० १३ । ३ । ८ । ४ ॥
,, सूर्य्यो मे चक्षुषि श्रितः । तै० ३ + १० । ८ । ५ ॥
,, स्वर्भानुर्ह वाऽ आसुरः । सूर्यं तमसा विव्याध स तमसा विद्धो न व्यरोचत तस्य सोमारुद्रावेवैतत्तमोऽपहताꣳ स एषोऽपहतपाप्मा तपति । श० ५ । ३ २ । २ ॥
,, स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यन्तमसाऽविध्यत् । तां० ४ । ५ । २ ॥
,, स्वर्भानुर्वा आसुरिः सूर्यन्तमसाविध्यत् । गो० उ० ३ । १९ ॥
,, सूर्यस्य ह वाऽ एको रश्मिर्वृष्टिवनिः (यजु० ३८ । ६) नाम येनेमाः सर्वाः प्रजा बिभर्ति । श० १४ । २ । १ । २१ ॥
,, सूर्याय पुरोडाशमेककपालं (निर्वपति) । ऐ० १ । ४८ ॥
,, सौर्य एककपालः पुरोडाशो भवति । श० २ । ६ । ३ । ८ ॥
,, असौ वाव (सूर्यः) मर्चयति (=गच्छति) इव । ऐ० ४ । १०॥
,, स (सूर्यः) उद्यन्नेवामूं (दिवं) अधिद्रवत्यस्तंयन्निमां (पृथिवीं) अधिद्रवति । श० १ । ७ । २ । ११ ॥
,, सौर्यो वा अश्वः । गो० उ० ३ । १६ ॥
,, अस्माभिः (अङ्गिरोभिः) एष प्रतिगृहीतो य एष (सूर्यः) तपतीति तस्मात्सर्वःश्वेतो ऽश्वः श्वेतो दक्षिणा । श० ३ । ५ । १ । १९ ॥
,, श्वेत इव ह्येष (सूर्यः) यन्भवति तस्माच्छ्वेतो ऽश्वस्त्वान्वाहित्या । श० ५ । ३ । १ । ७ ॥
,, सूर्य उद्गाता । गो० पू० १ । १३ ॥
,, सौर्य उद्गाता । तां० १८ । ९ । ८ ॥

सूर्यः सौर्यं रेतः । तै० ३ । ६ । १७ । ५ ॥

,, सूर्यात्सामवेदः (अजायत) । श० ११ । ५ । ८ । ३ ॥

,, एष वाऽ अपाᳬ रसो यो ऽयं (वायुः) पवते स एष सूर्ये समाहितः सूर्यात्पवते । श० ५ । १ । २ । ७ ॥

,, आदित्यशब्दमपि पश्यत ॥

सूर्यरश्मिः (यजु० १८ । ४०) (=चन्द्रमाः) सूर्यस्येव हि चन्द्रमसो रश्मयः । श० ९ । ४ । १ । ९ ॥

सूर्यस्य दुहिता (यजु० १९ । ४) श्रद्धा वै सूर्यस्य दुहिता । श० १२ । ७ । ३ । ११ ॥

सूर्या अथ यत्र ह तत्सविता सूर्यां प्रायच्छत्सोमाय राज्ञे । कौ० १८ । १ ॥

,, प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत्सूर्यां सावित्रीम् । ऐ० ४ । ७ ॥

सेनाजित् (यजु० १५ । १९) तस्य (पर्जन्यस्य) सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्याविति हैमन्तिकौ तावृतू । श० ८ । ६ । १ । २० ॥

सेना सेनेन्द्रस्य पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥

सैन्धुक्षितम् (साम) सिन्धुक्षिद्वै राजन्यर्षिर्ज्योगपरुद्धश्चरन् स एतत्सै-न्धुक्षितमपश्यत् सो ऽवागच्छत् प्रत्यतिष्ठदवगच्छति प्रतितिष्ठति सैन्धुक्षितेन तुष्टुवानः । तां० १२ । १२ । ६ ॥

सोमः स्वा वै मऽएषेति तस्मात्सोमो नाम । श० ३ । ९ । ४ । २२ ॥

,, सत्यं (वै) श्री ज्योतिः सोमः । श० ५ । १ । २ । १० ॥ ५ । १ । ५ । २८ ॥

,, श्रीर्वै सोमः । श० ४ । १ । ३ । ९ ॥

,, सोमः (श्रियः) राज्यम् (आदत्त) । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥

,, राजा वै सोमः । श० १४ । १ । ३ । १२ ॥

,, सोमो राजा राजपतिः । तै० २ । ५ । ७ । ३ ॥

,, असौ वै सोमो राजा विचक्षणश्चन्द्रमाः । कौ० ४ । ४ ॥ ७ । १० ॥

,, सोमो राजा चन्द्रमाः । श० १० । ४ । २ । १ ॥

,, चन्द्रमा वै सोमः । कौ० १६ । ५ ॥ तै० १ । ४ । १० । ७ ॥ श० १२ । १ । १ । २ ॥

सोमः चन्द्रमा उ वै सोमः । श० ६ । ५ । १ । १ ॥

,, स यदाह गयो ऽसीति सोमं वा एतदाहैष ह वै चन्द्रमा भूत्वा सर्वांल्लोकान्गच्छति । गो० पू० ५ । १४ ॥

,, चन्द्रमा वाऽ अस्य (सोमस्य) दिवि श्रवं उत्तमम् (यजु० १२ । ११३ ॥) । श० ७ । ३ । १ । ४६ ॥

,, (इन्द्रः) तं (वृत्रं) द्वेधा न्वभिनत्तस्य यत्सौम्यं न्यक्तमास तं चन्द्रमसं चकाराथ यदस्यासुर्य्यमास तेनेमाः प्रजा उदरेणाविध्यत् । श० १ । ६ । ३ । १७ ॥

,, वृत्रो वै सोम आसीत् । श० ३ । ४ । ३ । १३ ॥ ३ । ९ । ४ । २ ॥ ४ । २ । ५ । १५ ॥

,, पितृलोकः सोमः । कौ० १६ । ५ ॥

,, पितृदेवत्यो वै सोमः । श० २ । ४ । २ । १२ ॥ ४ । ४ । २ । २ ॥

,, पितृदेवत्यः सोमः । श० ३ । २ । ३ । १७ ॥

,, स्वाहा सोमाय पितृमते । मं० २ । ३ । १ ॥

,, सौम्यश्चतुष्कपालः (पुरोडाशः) । तां० २१ । १० । २३ ॥

,, सोमाय वा पितृमते (षट्कपालं पुरोडाशं निर्वपति) । श० २ । ६ । १ । ४ ॥

,, संवत्सरो वै सोमः पितृमान् । तै० १ । ६ । ८ । २ ॥ १ । ६ । ९ । ५ ॥

,, (ऋ० ४ । ५३ । ७) संवत्सरो वै सोमो राजा । कौ० ७ । १० ॥

,, ऋतवो वै सोमस्य राज्ञो राजभ्रातरो यथा मनुष्यस्य । ऐ० १ । १३ ॥

,, प्रच्यवस्व भुवस्पतऽ इति भुवनानाᳬ ह्येष (सोमः) पतिः । श० ३ । ३ । ४ । १४ ॥

,, सोमो हि प्रजापतिः । श० ५ । १ । ५ । २६ ॥

,, सोमो वै प्रजापतिः । श० ५ । १ । ३ । ७ ॥

,, यदाह श्येनो ऽसीति सोमं वा एतदाहैष ह वा अग्निर्भूत्वाऽस्मिंल्लोके संश्यायति । तद्यत्संश्यायति तस्माच्छ्येनस्तच्छ्येनस्य श्येनत्वम् । गो० पू० ५ । १२ ॥

सोमः सोमो वैष्णवो राजेत्याह तस्याप्सरसो विशः । श० १३ । ४ । ३ । ८ ॥

„ यो वै विष्णुः सोमः सः । श० ३ । ३ । ४ । २१॥ ३ । ६ । ३ । १९॥

„ जुष्टा विष्णव इति । जुष्टा सोमायेत्येवैतदाह (विष्णुः=सोमः) । श० ३ । २ । ४ । १२ ॥

„ तद्यदेवेदं क्रीतो विशतीव तदु हास्य (सोमस्य) वैष्णवं रूपम् । कौ० ८ । २ ॥

„ सोमो वै पवमानः । श० २ । २ । ३ । २२ ॥

„ यो ऽयं वायुः पवतऽ एष सोमः । श० ७ । ३ । १ । १ ॥

„ स यदाह सम्राडसीति सोमं वा एतदाहैष ह वै वायुर्भूत्वाऽन्तरिक्षलोके सम्राजति तद्यत्सम्राजति तस्मात् सम्राट् तत्सम्राजस्य सम्राट्त्वम् । गो० पू० ५ । १३ ॥

„ एष (वायुः) वै सोमस्योद्गीथो यत्पवते । तां० ६ । ६ । १८ ॥

„ तस्मात्सोमꣳ सर्व्वेभ्यो देवेभ्यो जुह्वति तस्मादाहुः सोमः सर्वा देवता इति । श० १ । ६ । ३ । २१ ॥

„ सोमः सर्वा देवताः । ऐ० २ । ३ ॥

„ सोमो वाऽ इन्दुः । श० २ । २ । ३ । २३ ॥ ७ । ५ । २ । १९ ॥

„ सोमो रात्रिः । श० ३ । ४ । ४ । १५ ॥

„ सोम एव सवृतः (?समृतः–तैत्तिरीयसंहितायाम् १ । ६ । ७ । १) इति । गो० उ० २ । २४ ॥

„ सोमो वै चतुर्होता । तै० २ । ३ । १ । १ ॥

„ सोमो वै पर्णः । श० ६ । ५ । १ । १ ॥

„ सोमो वै पलाशः । कौ० २ । २ ॥ श० ६ । ६ । ३ । ७ ॥

„ यदि सोमं न विन्देयुः पूतीकानभिषुणुयुर्यदि न पूतीकानर्ज्जुनानि । तां० ९ । ५ । ३ ॥

„ इन्द्रो वृत्रमहꣳस्तस्य यो नस्तः सोमः समधावत्तानि बभ्रुतूलान्यर्ज्जुनानि । तां० ९ । ५ । ७ ॥

„ (सोमस्य ह्रियमाणस्य) यानि पुष्पाण्यवाशीयन्त तान्यर्ज्जुनानि । तां० ८ । ४ । १ ॥

„ एष वै सोमस्य न्यङ्गो यदरुणदूर्वाः । श० ४ । ५ । १० । ५ ॥

„ परोक्षमिव ह वा एष सोमो राजा यन्न्यग्रोधः । ऐ० ७ । ३१ ॥

सोमः पशुर्वै प्रत्यक्षꣳ सोमः । श० ५ । १ । ३ । ७ ॥

„ सोम एवैष प्रत्यक्षं यत्पशुः । कौ० १२ । ६ ॥

„ पशवः सोमो राजा । तै० १ । ४ । ७ । ६ ॥

„ पशवो हि सोम इति । श० १२ । ७ । २ । २ ॥

„ सोमो वै दधि । कौ० ८ । ६ ॥

„ एष (सोमः) उ एव किल्विषस्पृत् । ऐ० १ । १३ ॥

„ स यदाह स्वरो ऽसीति सोमं वा एतदाहैष ह वै सूर्यो भूत्वा ऽमुष्मिंल्लोके स्वरति तद्यत्स्वरति तस्मात्स्वरस्तत्स्वरस्य स्वरत्वम् । गो० पू० ५ । १४ ॥

„ एष वै यजमानो यत्सोमः । तै० १ । ३ । ३ । ५ ॥

„ द्यावापृथिव्यो र्वा एष गर्भो यत्सोमो राजा । ऐ० १ । २६ ॥

„ सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चामीति । श० ५ । ४ । २ । २ ॥

„ भ्राजं गच्छेति सोमो वै भ्राट् । श० ३ । २ । ४ । २ ॥

„ वर्चः सोमः । श० ५ । २ । ५ । १०, ११ ॥

„ क्षत्रं सोमः । ऐ० २ । ३८ ॥ कौ० ७ । १० ॥ ९ । ५ ॥ १० । ५ ॥ १२ । ८ ॥

„ क्षत्रं वै सोमः । श० ३ । ४ । १ । १० ॥ ३ । ९ । ३ । ३, ७ ॥ ५ । ३ । ५ । ८ ॥

„ यशो वै सोमः । श० ४ । २ । ४ । ९ ॥

„ यशो (ऋ० १० । ७२ । १०) वै सोमो राजा । ऐ० १ । १३ ॥

„ सोमो वै यशः । तै० २ । २ । ८ । ८ ॥

„ यश उ वै सोमो राजान्नाद्यम् । कौ० ६ । ६ ॥

„ प्रजापतेर्वा ऽ एते ऽन्धसी यत्सोमश्च सुरा च । श० ५ । १ । २ । १० ॥

„ अन्नं सोमः । कौ० ९ । ६ ॥ श० ३ । ३ । ४ २८ ॥ तां० ६ । ६ । १ ॥

„ अन्नं वै सोमः । श० ३ । ६ । १ । ८ ॥ ७ । २ । २ । ११ ॥

„ एतद्ध देवानां परममन्नं यत्सोमः । तै० १ । ३ । ३ । २ ॥

„ एतद्धै परममन्नाद्यं यत्सोमः । कौ० १३ । ७ ॥

„ एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमाः । श० १ । ६ । ४ । ५ ॥ २ । ४ । २ । ७ ॥ ११ । १ । ४ । ४ ॥

सोमः हविर्वै देवानाᳪ सोमः । श० ३ । ५ । ३ । २ ॥

„ उत्तमं वाऽ एतद्धविर्यत्सोमः । श० १२ । ८ । २ । १२ ॥

„ एषो ह परमाहुतिर्यत्सोमाहुतिः । श० ६ । ६ । ३ । ७ ॥

„ सोमः खलु वै सान्नाय्यम् (हविः) । तै० ३ । २ । ३ । ११ ॥

„ सोमाहुतयो ह वाऽ एता देवानाम् । यत्सामानि । श० ११ । ५ । ६ । ६ ॥

„ एषा केवली यत्सोमाहुतिः । श० १ । ७ । २ । १० ॥

„ अथैषैव कृत्स्ना देवयज्या यत्सौम्यो ऽध्वरः । कौ० १० । ६ ॥

„ प्राणः सोमः । श० ७ । ३ । १ । २ ॥

„ प्राणो वै सोमः । श० ७ । ३ । १ । ४५ ॥

„ प्राणो हि सोमः । तां० ९ । ९ । १, ५ ॥

„ प्राणः (यज्ञस्य) सोमः । कौ० ९ । ६ ॥

„ सोमो वै वाजपेयः । तै० १ । ३ । २ । ३ ॥

„ एष वाऽ उत्तमः पवित्र्यत्सोमः । श० ३ । ९ । ४ । ५ ॥

„ रेतः सोमः । कौ० १३ । ७ ॥ तै० २ । ७ । ४ । १ ॥ श० ३ । ३ । २ । १ ॥ ३ । ३ । ४ । २८ ॥ ३ । ४ । ३ । ११ ॥

„ रेतो वै सोमः । श० १ । ६ । २ । ९ ॥ २ । ५ । १ । ६ ॥ ३ । ८ । ५ । २ ॥

„ सोमो रेतो ऽदधात् । तै० १ । ६ । २ । २ ॥ १ । ७ । २ । ३, ४ ॥ १ । ८ । १ । २ ॥

„ सोमो वै वृष्णो अश्वस्य रेतः । तै० ३ । ९ । ५ । ५ ॥

„ एते सोमांशवः प्राणोंऽशुर्यमेतमभिषुण्वन्ति तृप्तोंऽशुरापो रसोंऽशुर्व्रीहिर्वृषोंऽशुर्यवः शुक्रोंऽशुः पयो जीवोंऽशुः पशुरमृतोंऽशुर्हिरण्यमृगंशुर्यजुरंशुः सामांशुरित्येते वा उ दश सोमांशवो यदा वा एते सर्वे संगच्छन्ते ऽथ सोमो ऽथ सुतः । कौ० १३ । ४ ॥

„ सोमस्य वा अभिषूयमाणस्य प्रिया तनूरुदक्रामत् तत्सुवर्णᳪ हिरण्यमभवत् । तै० १ । ४ । ७ । ४-५ ॥

„ चन्द्रᳪ ह्येतच्चन्द्रेण क्रीणाति यत्सोमᳪ हिरण्येन (चन्द्रः= सोमः, चन्द्रं=हिरण्यम) । श० ३ । ३ । ३ । ६ ॥

सोमः शुक्रꣳ ह्येतच्छुक्रेण क्रीणाति यत्सोमꣳ हिरण्येन । श० ३ । ३ । ३ । ६ ॥

,, शुक्रः (=निर्म्मल इति सायणः) सोमः । तां० ६ । ६ । ९ ॥

,, स यत् सोमपानं (विश्वरूपस्य मुखं) आस । ततः कपिञ्जलः समभवत्तस्मात्स बभ्रुक इव बभ्रुरिव हि सोमा राजा । श० १ । ६ । ३ । ३ ॥ ५ । ५ । ४ । ४ ॥

,, सोमो वै बभ्रुः (यजु० १२ । ७५) । श० ७ । २ । ४ । २६ ॥

,, स हि सौम्यो यद्बभ्रुः (गौः) । श० ५ । २ । ५ । १२ ॥

,, सोमो गन्धाय । तां० १ । ३ । ६ ॥ सा० ३ । ८ । १ ॥

,, सोम इव गन्धेन (भूयासम्) । मं० २ । ४ । १४ ॥

,, रसः सोमः । श० ७ । ३ । १ । ३ ॥

,, वाज्येवैनं (सोमं) पीत्वा भवति । तै० १ । ३ । २ । ४ ॥

,, भद्रा (प्रजापतेस्तनूविशेषः) तत्सोमः । ऐ० ५ । २५ ॥ कौ० २७ । ५ ॥

,, (उपसद्देवतारूपाया इषोः) सोमः शल्यः । ऐ० १ । २५ ॥

,, तिरो अह्न्या हि सोमा भवन्ति । कौ० १८ । ५ ॥ ३० । ११ ॥

,, तद्यत्तदमृतꣳ सोमः सः । श० ६ । ५ । १ । ८ ॥

,, सर्वं हि सोमः । श० ५ । ५ । ४ । ११ ॥

,, तस्मात्सोमो राजा सर्वाणि नक्षत्राण्युपैति । ष० ३ । १२ ॥

,, श्येनो भूत्वा (गायत्री) दिवः सोममाहरत् । श० १ । ८ । २ । १० ॥

,, यद्गायत्री श्येनो भूत्वा दिवः सोममाहरत्तेन सा श्येनः । श० ३ । ४ । १ । १२ ॥

,, तृतीयस्यामितो दिवि सोम आसीत् । तं गायत्र्याहरत् । तै० १ । १ । ३ । १० ॥ ३ । २ । १ । १ ॥

,, अन्तरिक्षदेवत्यो हि सोमः । गो० उ० २ । ४ ॥

,, गिरिषु हि सोमः । श० ३ । ३ । ४ । ७ ॥

,, घ्नन्ति वाऽ एनं (सोमं) एतद्यदभिषुण्वन्ति । श० ३ । ३ । २ । ६ ॥

,, घ्नन्ति खलु वा एतत्सोमं यदभिषुण्वन्ति । तै० २ । २ । ८ । १ ॥

,, सोमो राजा मृगशीर्षेण आगन् । तै० ३ । १ । १ । २ ॥

सोमः स (सोमः) एतꣳ सोमाय मृगशीर्षाय श्यामाकं चरुं पयसि निरवपत् । ततो वै स ओषधीनाꣳ राज्यमभ्यजयत् । तै० ३ । १ । ४ । ३ ॥

,, सौम्यं श्यामाकं चरुं निर्वपति । तै० १ । ६ । १ । ११ ॥

,, एते वै सोमस्यौषधीनां प्रत्यक्षतमां यच्छ्यामाकाः । श० ५ । ३ । ३ । ४ ॥

,, अथ सोमाय वनस्पतये । श्यामाकं चरुं निर्वपति । श० ५ । ३ । ३ । ४ ॥

,, तस्य (सोमस्य) अश्रु प्रास्कन्दत्ततो यवः समभवत् । श० ४ । २ । १ । ११ ॥

,, सोम वीरुधां पते । तै० ३ । ११ । ४ । १ ॥

,, औषधो हि सोमो राजौषधिभिस्तं भिषज्यंति यं भिषज्यंति सोममेव राजानं क्रीयमाणमनु यानि कानि च भेषजानि तानि सर्वाण्यग्निष्टोममपियंति । ऐ० ३ । ४० ॥

,, सोमो वा अकृष्टपच्यस्य राजा । तै० १ । ६ । १ । ११ ॥

,, सोम ओषधीनामधिराजः । गो० उ० १ । १७ ॥

,, सोमो वै राजौषधीनाम् । कौ० ४ । १२ ॥ तै० ३ । ९ । १७ । १ ॥

,, सौम्या ओषधयः । श० १२ । १ । १ । २ ॥

,, सोमः (एवैनं) वनस्पतीनां (सुवते) । तै० १ । ७ । ४ । १ ॥

,, एष वै ब्राह्मणानां सभासाहः सखा (ऋ० १० । ७१ । १० ॥) यत्सोमो राजा । ऐ० १ । १३ ॥

,, सोमराजानो ब्राह्मणाः । तै० १ । ७ । ४ । २ ॥ १ । ७ । ६ । ७ ॥

,, एष वो ऽमी राजा सोमो ऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजेति । ……तस्माद् ब्राह्मणो नाद्यः सोमराजा हि भवति । श० ५ । ४ । २ । ३ ॥

,, ब्राह्मणानां स (सोमः) भक्षः । ऐ० ७ । २९ ॥

,, सोमो वै ब्राह्मणः । तां० २३ । १६ । ५ ॥

,, सौम्यो हि ब्राह्मणः । तै० २ । ७ । ३ । १ ॥

,, तस्य (नमुचेः) शीर्षश्छिन्ने लोहितमिश्रः सोमो ऽतिष्ठत् ("नमुचि" शब्दमपि पश्यत) । श० १२ । ७ । ३ । ४ ॥

,, शोभनꣳ ह्येतस्य (सोमस्य) वासः । श० ३ । ३ । २ । ३ ॥

सोमः सौम्यꣳ हि देवतया वासः । तै० १ । ६ । १ । ११ ॥ १ । २ । ५ । २ ॥

„ (हे देवा यूयं) सोमेन प्रतीचीं,(दिशं प्रजानाथ) । ऐ० १ । ७ ॥

„ प्रतीची दिक् । सोमो देवता । तै० ३ । ११ । ५ । २ ॥

„ उत्तरा ह वै सोमो राजा । ऐ० १ । ८ ॥

„ यदुत्तरतो वासि सोमो राजा भूतो वासि । जै० उ० ३ । २१ । २ ॥

„ उदीचीनदशं वै तत्पवित्रं भवति येन तत्सोमꣳ राजानꣳ सम्पावयन्ति । श० १ । ७ । १ । १३ ॥

„ स (सोमः) दक्षिणां दिशं प्राजानात् । कौ० ७ । ६ ॥

„ दक्षिणामेव दिशꣳ सोमेन प्राजानन् । श० ३ । २ । ३ । १७ ॥

„ सौम्यो वै देवतया पुरुषः । तै० १ । ७ । ८ । ३ ॥

„ सौम्यो ऽध्वरः सप्तहोतुः (निदानम्) । तै० २ । २ । ११ । ६ ॥

„ यद्वा ऽ आर्द्रं यज्ञस्य तत्सौम्यम् । श० ३ । २ । ३ । १० ॥

„ सोमः पयः । श० १२ । ७ । ३ । १३ ॥

„ सः (सोमः) अब्रवीद्वल्गु साम्नो वृणे प्रियमिति । जै० उ० १ । ५१ । १० ॥

„ सोमो रुद्रैः (व्यद्रवत्) । श० ३ । ४ । २ । १ ॥

„ आपः सोमः सुतः । श० ७ । १ । १ । २२ ॥

„ आपो ह्येतस्य (सोमस्य) लोकः । श० ४ । ४ । ५ । २१ ॥

„ तद्यदेवात्र पयस्तन्मित्रस्य सोम एव वरुणस्य । श० ४ । १ । ४ । ९ ॥

„ वरुणो ह वै सोमस्य राज्ञो ऽभीवाक्षि प्रतिपिपेष तदश्वयत्ततो ऽश्वः समभवत् । श० ४ । २ । १ । ११ ॥

„ दीक्षा सोमस्य राज्ञः पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥

„ अथ यत्र ह तत्सविता सूर्यां प्रायच्छत्सोमाय राज्ञे । कौ० १८ । १ ॥

„ प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत्सूर्यां सावित्रीम् । ऐ० ४ । ७ ॥

„ महीन्दीक्षाꣳ सौमायनो (=सोमपुत्रः) बुधो यदुदयच्छदनन्दत्सर्वमाप्नोन्मन्माꣳसे मेदोधा इति । तां० २४ । १८ । ६ ॥

„ पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा । तै० १ । ३ । ३ । ४ ॥

सोमः रयिंॐ सोमो रयिपतिर्दधातु । तै० २ । ८ । १ । ६ ॥
,, वैराजः सोमः । कौ० ९ । ६ ॥ श० ३ । ३ । २ । १७ ॥ ३ । ९ । ४ । १९ ॥

सोमक्रयणी (गौः) सा या बभ्रुः पिङ्गाक्षी (गौः) सा सोमक्रयणी । श० ३ । ३ । १ । १४ ॥
,, वाग्वै सोमक्रयणी निदानेन । श० ३ । २ । ४ । १०, १५ ॥

सोमपीथः इन्द्रियं सोमपीथः । तै० १ । ३ । १० । २ ॥

सोमयागः संवत्सरे संवत्सरे सोमयाजी (अश्नाति) । श० १० । १ । ५ । ४ ॥
(सुत्याशब्दमपि पश्यत)

सोमराज्ञी या ओषधीः सोमराज्ञीः । मं० २ । ८ । ३, ४ ॥

सोमवामी स यो वाऽ अलं भूत्यै सन्भूतिं न प्राप्नोति यो वालं पशुभ्यः सन्पशून्न विन्दते स सोमवामी । श० १२ । ७ । २ । २ ॥

सोमसाम यथा वा इमा अन्या ओषधय एवंॐ सोम आसीत् स तपो ऽतप्यत स एतत्सामापश्यत्तेन राज्यमाधिपत्यमगच्छद्यशो ऽभवद्राज्यमाधिपत्यङ्गच्छति यशो भवति सोमसाम्ना तुष्टुवानः । तां० ११ । ३ । ९ ॥

सोमो ऽजस्रः (यजु० १३ । ४३) स हैष सोमो ऽजस्रो यद्गौः । श० ७ । ५ । २ । १६ ॥

सौत्रामणी तावश्विनौ च सरस्वती च । इन्द्रियं वीर्यं नमुचेराहृत्य तदस्मिन्पुनरदधुस्तं पाप्मनो ऽत्रायन्त सुत्रातं बतैनं पाप्मनो ऽत्रास्महीति तद्वाव सौत्रामण्यभवत्तत्सौत्रामण्यै सौत्रामणीत्वम् । श० १२ । ७ । १ । १४ ॥
,, ते देवा अब्रुवन् । सुत्रातं बतैनमत्रासतामिति तस्मात्सौत्रामणी नाम । श० ५ । ५ । ४ । ११ ।
,, ऐन्द्रो वा एष यज्ञक्रतुर्यत् सौत्रामणी । कौ० १६ । १० ॥ गो० उ० ५ । ७ ॥
,, ऐन्द्रो वाऽ एष यज्ञो यत्सौत्रामणी । श० १२ । ८ । २ २४॥
,, उभयंॐ सौत्रामणीष्टिश्च पशुबन्धश्च । श० १२ । ७ । २ । २१ ॥
,, देवसृष्टो वाऽ एषेष्टिर्यत्सौत्रामणी । श० ५ । ५ । ४ । १४॥

सौत्रामणी तस्मादेष ब्राह्मणयज्ञ एव यत्सौत्रामणी । श० १२ । ९ । १ । १ ॥

„ सुरावान्वाऽ एष बर्हिष्यज्ञो यत्सौत्रामणी । श० १२ । ८ । १ । २ ॥

„ सोमो वै सौत्रामणी । श० १२ । ७ । २ । १२ ॥

„ पवित्रं वै सौत्रामणी । श० १२ । ८ । १ । ८ ॥

„ स यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात्स सौत्रामण्या यजेत । श० १२ । ७ । ३ । ४ ॥

सौपर्णम् (साम) यज्ञो वै देवेभ्यो ऽपाक्रामत्स सुपर्णं रूपं कृत्वाचरत्तं देवा एतैः सामभिरारभन्त यज्ञ इव वा एष यच्छन्दोमा यज्ञस्यैवैष आरम्भः । तां० १४ । ३ । १० ॥

„ सौपर्णं भवति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै । तां० १४ । ३ । ९ ॥

सौभरम् (साम) ताः (प्रजाः) अब्रुवन् सुभृतन्नो ऽभार्षीरिति तस्मात्सौभरम् । तां० ८ । ८ । १६ ॥

„ बृहता वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत्तस्य तेजः परापतत्तत्सौभरमभवत् । तां ८ । ८ । ९ ॥

„ बृहतो ह्येतत्तेजो यत्सौभरम् । तां० ८ । ८ । १० ॥

„ सौभरं भवति बृहतस्तेजः । तां० १२ । १२ । ७ ॥

„ यः स्वर्गकामः स्याद्यः प्रतिष्ठाकामः सौभरेण स्तुवीत प्र स्वर्गं लोकं जानाति प्रतितिष्ठति । तां० ८ । ८ । १३ ॥

„ यो वृष्टिकामः स्याद्यो ऽन्नाद्यकामो यः स्वर्गकामः सौभरेण स्तुवीत । तां० ८ । ८ । १८ ॥

„ सर्वे वै कामाः (सर्वकामसाधनं) सौभरम् । तां० ८ । ८ । २० ॥

सौमित्रम् (साम) सुमित्रः सन् कूरमकरित्येनं (कुत्सं) वागभ्यवदत्तᳬ शुगार्छत्स तपो ऽतप्यत स एतत्सौमित्रमपश्यत्तेन शुचमपाहतापं शुचᳬ हते सौमित्रेण तुष्टुवानः । तां० १३ । ६ । १० ॥

„ तद्वाव तौ (इन्द्रश्च सुमित्रः कुत्सश्च) तर्ह्यकामयेतां कामसनि साम सौमित्रं काममेवैतेनावरुन्धे । तां० १३ । ६।९॥

सौमेधम् (साम) योगे योगे तवस्तरमिति सौमेधꣳ रात्रिषाम रात्रेरेव समृद्धयै । तां० ९ । २ । ३० ॥

सौश्रवसम् (साम) तं (छिन्नशिरस्कं सौश्रवसं) एतेन साम्ना (इन्द्रः) समैरयत् (=सङ्गतावयवमकरोदिति सायणः) स तर्ह्यकामयत कामसनि साम सौश्रवसं काममेवैतेनावरुन्धे । तां० १४ । ६ । ८ ॥

सौहविषम् (साम) सुहविर्वा आङ्गिरसो ऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः । तां० १४ । ५ । २५ ॥

,, यज्ञायज्ञीयनिधनꣳ सौहविषं भवति । तां० १५ । ११ । १० ॥

स्कन्नाहुतिः अथ यस्याऽप्रमुत्पूतꣳ स्कन्दति सा वै स्कन्नानामाहुतिः । ष० ४ । १ ॥

स्तनयित्नुः कतमस्तनयित्नुरित्यशनिरिति । श० ११ । ६ । ३ । ९ ॥

,, स बृहदसृजत तत्स्तनयित्नोर्घोषोन्वसृज्यत । तां० ७ । ८ । १० ॥

,, (प्रजापतिः) स्तनयित्नुमुद्गीथम् (अकरोत्) । जै० उ० १ । १३ । १ ॥

,, स्तनयित्नुः सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

,, स्तनयित्नुरेव सविता । जै० उ० ४ । २७ । ९ ॥

स्तवः प्राणा वै स्तवः । कौ० ८ । ३ ॥

स्तावाः (अप्सरसः, यजु० १८ । ४२) दक्षिणा वै स्तावा दक्षिणाभिर्हि यज्ञ स्तूयते ऽथो यो वै कश्च दक्षिणां ददाति स्तूयतऽ एव सः । श० ९ । ४ । १ । ११ ॥

स्तोकः स्तोको वै द्रप्सः । गो० उ० २ । १२ ॥

स्तोता वायुर्वै स्तोता । श० १३ । २ । ६ । २ ॥ तै० ३ । ६ । ४ । ४ ॥

स्तोत्रम् क्षत्रं वै स्तोत्रम् । ष० १ । ४ ॥

,, आत्मा वै स्तोत्रम् । श० ५ । २ । २ । २० ॥

स्तोत्रियः इयं (पृथिवी) एव स्तोत्रियः । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥

,, आत्मैव स्तोत्रियः । जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥

,, आत्मा वै स्तोत्रियः । ऐ० ३ । २३, २४ ॥ ६ । २६ ॥ कौ० १५ । ४ ॥ २२ । ८ ॥ गो० उ० ३ । २२ ॥

स्तोत्रियानुरूपौ आत्मा वै स्तोत्रियानुरूपौ । कौ० ३० । ८ ॥
स्तोभौ यौ द्वौ स्तोभावहोरात्रे एव ते । जै० उ० १ । २१ । ५ ॥
स्तोमः सप्त स्तोमाः । श० ९ । ५ । २ । ८ ॥
,, त्रिवृत्पञ्चदशः सप्तदश एकविंश एते वै स्तोमानां वीर्य्यवत्तमाः । तां० ६ । ३ । १५ ॥
,, यदु ह किं च देवाः कुर्वते स्तोमेनैव तत्कुर्वते यज्ञो वै स्तोमो यज्ञेनैव तत्कुर्वते । श० ८ । ४ । ३ । २ ॥
,, स्तोमो वै देवेषु तरो नामासीत् । तां० ८ । ३ । ३ ॥
,, स्तोमो वै तरः । तां० ११ । ४ । ५ ॥ १५ । १० । ४ ॥
,, स्तोमा वै परमाः स्वर्गा लोकाः । ऐ० ४ । १८ ॥
,, स्तोमा वै त्रयः स्वर्गा लोकाः । ऐ० ४ । १८ ॥
,, स्तोमो हि पशुः । तां० ५ । १० । ८ ॥
,, अन्नं वै स्तोमाः । श० ९ । ३ । ३ । ६ ॥
,, प्राणा वै स्तोमाः । श० ८ । ४ । १ । ३ ॥
,, वीर्य्यं वै स्तोमाः । तां० २ । ५ । ४ ॥ २ । ११ । २ ॥
,, वीरजननं वै स्तोमः । तां० २१ । ६ । ३ ॥
,, गायत्रीमात्रो वै स्तोमः । कौ० १९ । ८ ॥
,, नाक्षराच्छन्दो व्येत्येकस्मान्न द्वाभ्यां न स्तोत्रियया स्तोमः । श० १२ । २ । ३ । ३ ॥
,, देवा वा आदित्यस्य स्वर्गाल्लोकादवपादादबिभयुस्तमेतैः स्तोमैः सप्तदशैरदृꣳहन्यदेते स्तोमा भवन्त्यादित्यस्य धृत्यै । तां० ४ । ५ । ६ ॥

स्तोमभागाः स्तोमो वा एतेषां भागः, तत्स्तोमभागानां स्तोमभागत्वम् । गो० उ० २ । १३ ॥
,, आदित्य स्तोमभागाः । श० ८ । ५ । ४ । २ ॥
,, हृदयꣳ स्तोमभागाः । श० ८ । ५ । ४ । ३ ॥
,, हृदयं वै स्तोमभागाः श० ८ । ६ । २ । १५ ॥

स्त्री (सविता) श्रिया स्त्रियम् (समदधात्) । गो० पू० १ । ३४ ॥
,, स्त्री सावित्री । जै० उ० ४ । २७ । १७ ॥
,, तस्मादु स्त्री पुꣳसोपमन्त्रिता निपलाशमिवैव वदति । श० ३ । २ । १ । २० ॥

स्त्री तस्मात्स्त्री पुᳬंसोपमन्त्रितारकादिवैवाग्रे ऽसूयति। श० ३। २। १। १९॥

,, तस्मादु स्त्री पुमाᳬंसᳬं ह्वयत ऽएवोत्तमम्। श० ३। २। १। २१॥

,, उत्तरत आयतना हि स्त्री। श० ८। ४। ४। ११॥

,, उत्तरतो हि स्त्री पुमाᳬंसमुपशेते। श० १। १। १। २०॥ २। ५। २। १७॥ ४। ४। २। १६॥

,, तस्मादु स्त्री पुमाᳬंसᳬं सᳬंस्कृते तिष्ठन्तमभ्यैति। श० ३। २। १। २२॥

,, तस्मात्स्त्र्यन्तर्वत्नी हरिणी सती श्यावा भवति। तै० २। ३। ८। १॥

,, तस्मादु स्त्र्यनुरात्रम्पत्याविच्छते। पे० ३। २२॥

,, तस्मादिमा मानुष्यस्त्रियस्तिर इवैव पुᳬंसो जिघत्सन्ति। श० १। ९। २। १२॥

,, तस्मादु संवत्सर ऽएव स्त्री वा गौर्वा वडवा वा विजायते। श० ११। १। ६। २॥

,, अनृतᳬं स्त्री शूद्रः श्वा कृष्णः शकुनिस्तानि न प्रेक्षेत। श० १४। १। १। ३१॥

,, तस्मादप्येतर्हि मोघसᳬंहिता एव योषाः। श० ३। २। ४। ६॥

,, तस्माद्य एव नृत्यति यो गायति तस्मिन्नेवैताः (योषाः) निमिश्लतमा इव। श० ३। २। ४। ६॥

,, कर्म वा ऽ इन्द्रियं वीर्यं तदेतदुत्सन्नᳬं स्त्रीषु। श० १२। ७। २। ११॥

,, अवीर्या वै स्त्री। श० २। ५। २। ३६॥

,, तद्वा ऽ एतत्स्त्रीणां कर्म यदूर्णासूत्रम्। श० १२। ७। २। ११॥

,, पतयो ह्येव स्त्रियै प्रतिष्ठा। श० २। ६। २। १४॥

,, तस्मात्स्त्रियः पुᳬंसो ऽनुवर्त्मानो भावुकाः। श० १३। २। २। ४॥

,, न वै स्त्रियं घ्नन्ति। श० ११। ४। ३। २॥

,, यद् वृष्ट्या यदश्न्या तेन स्त्री। ष० १। २॥

,, एतद्वै पत्न्यै व्रतोपनयनम् (यद्योक्त्रेण संनहनम्)। तै० ३। ३। ३। २॥

स्त्री यद्यपि बह्व्य इव स्त्रियः सार्धं यन्ति य एव तास्वपि कुमारक इव पुमान् भवति स एव तत्र प्रथम एत्यनूच्य इतराः । श० १ । ३ । १ । ९ ॥

,, (मैत्रायणीसंहितायाम् ४ । ६ । ४:—यत्स्थालीं रिञ्चन्ति न दारुमयं तस्मात्पुमान्दायादः स्त्र्यदायादथ यत्स्थालीं परास्यन्ति न दारुमयं तस्मात्स्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमांसमथ स्त्रिय एवातिरिच्यन्ते ॥ काठकसंहितायाम् २७ । ९:—परा स्थालीमस्यन्ति न वायव्यं तस्मात्स्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमाँसम् ॥ यास्कीये निरुक्ते ३ । १ । ४:—तस्मात्पुमान्दायादोऽदायादा स्त्रीति विज्ञायते तस्मात्स्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमांसमिति च)

,, न वै स्त्रैणं सख्यमस्ति (न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति । ऋ० १० । ९५ । १५) । श० ११ । ५ । १ । ९ ॥

,, वरुण्यं वा एतत्स्त्री करोति यदन्यस्य सत्यन्येन चरति । श० २ । ५ । २ । २० ॥

,, (मैत्रायणीसंहितायाम्:—१ । १० । ११ अनृतंᳪ स्त्र्यनृतं वा एषा करोति या पत्युः क्रीता सत्यथान्यैश्चरति ।)

,, ('जाया', 'पत्नी', 'योषा' इत्येतानपि शब्दान् पश्यत)

स्थाणुः यूपं स्थाणुः । श० ३ । ६ । २ । ५ ॥

स्थाली पत्नी स्थाली । तै० २ । १ । ३ । १ ॥

स्थितम् अन्तो वै स्थितम् । ऐ० ५ । १३, २० ॥

स्नुषा तद्यथैवादः स्नुषा श्वशुराल्लज्जमाना निलीयमानैति । ऐ० ३ । २२ ॥

स्पराणि (अहानि) स्परैर्वै देवा आदित्यं सुवर्गं लोकमस्पारयन् यदस्पारयन् तत्स्पराणाᳪ स्परत्वम् । तै० १ । २ । ४ । ३ ॥

स्फ्यः खादिरः स्फ्यः । श० ३ । ६ । २ । १२ ॥

,, तस्य (चतुर्द्धा विभक्तस्य वज्रस्य) स्फ्यस्तृतीयं (=तृतीयोऽशः) वा यावद्वा । श० १ । २ । ४ । १ ॥

,, वज्रो वै स्फ्यः । श० १ । २ । ५ । २० ॥ ३ । ३ । १ । ५ ॥ ५ । ४ । ४ । १५ ॥ तै० १ । ७ । १० । ५ ॥ ३ । २ । ९ । १० ॥ ३ । ३ । १० । १ ॥

स्फ्यः स यत्स्फ्यमादत्ते । यथैव तदिन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छदेवमेवैष एतं पाप्मने द्विषते भ्रातृव्याय वज्रमुद्यच्छति तस्माद्वै स्फ्यमादत्ते । श० १ । २ । ४ । ३ ॥

स्योनः स्योन : स्योनमिति शिवः शिवमित्येवैतदाह । श० ३ । ३ । ३ । १० ॥

„ स्योनामासीद सुषदामासीदेति शिवाꣳ शग्मामासीदेत्येवैतदाह । श० ५ । ४ । ४ । ४ ॥

स्रुक् स्रुग्घृताची (अप्सराः, यजु० १५ । १८) । श० ८ । १ । १ । १९ ॥

„ स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीः (यजु० १७ । ५९) इति स्रुचश्चैतद्वेदीश्चाह (विश्वाची [अप्सराः]=वेदिः । घृताची [अप्सराः]=स्रुक्) । श० ९ । २ । ३ । १७ ॥

„ योषा हि स्रुक् । श० १ । ४ । ४ । ४ ॥

„ योषा वै स्रुग्वृषा स्रुवः । श० १ । ३ । १ । ९ ॥

„ युजौ ह वाऽ एते यज्ञस्य यत्स्रुचौ । श० १ । ८ । ३ । २७ ॥

„ बाहू वै स्रुचौ । श० ७ । ४ । १ । ३६ ॥

„ वाग्वै स्रुक् । श० ६ । ३ । १ । ८ ॥

„ गौर्वै स्रुचः । तै० ३ । ३ । ५ । ४ ॥

„ यजमानः स्रुचः । तै० ३ । ३ । ६ । ३ ॥

„ इमे वै लोकाः स्रुचः । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥ ३ । ३ । ६ । २ ॥

स्रुवः अयमेव स्रुवो यो ऽयं (वायुः) पवते । श० १ । ३ । २ । ५ ॥

„ प्राणः स्रुवः । श० ६ । ३ । १ । ८ ॥

„ प्राणो वै स्रुवः । तै० ३ । ३ । १ । ५ ॥

„ प्राण एव स्रुवः । सो ऽयं प्राणः सर्वाण्यङ्गान्यनु सञ्चरति । तस्मादु स्रुवः सर्वा अनु स्रुचः सञ्चरति । श० १ । ३ । २ । ३ ॥

„ वृषा हि स्रुवः । श० १ । ४ । ४ । ३ ॥

„ योषा वै स्रुग्वृषा स्रुवः । श० १ । ३ । १ । ९ ॥

स्रुवः स पालाशो वा स्रुवे वैकङ्कते वा। अपामार्गतण्डुलानादत्ते।
शा० ५ । २ । ४ । १५ ॥

स्वः स्वरिति सामभ्यो ऽक्षरत् स्वः स्वर्गलोको ऽभवत् । ष० १ । ५ ॥
,, (प्रजापतिः) स्वरित्येव सामवेदस्य रसमादत्त । सो ऽसौ द्यौरभवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् स आदित्यो ऽभवद्रसस्य रसः । जै० उ० १ । १ । ५ ॥
,, स सुवरिति व्याहरत् । स दिवमसृजत । अग्निष्टोममुक्थ्यमतिरात्रमृचः । तै० २ । २ । ४ । ३ ॥
,, असौ (द्यु-) लोकः स्वः । ऐ० ६ । ७ ॥
,, स्वरित्यसौ (द्यु-) लोकः । शा० ८ । ७ । ४ । ५ ॥
,, (यजु० १ । ११) यज्ञो वै स्वरहर्देवाः सूर्यः । शा० १ । १ । २ । २१ ॥
,, देवा वै स्वः । शा० १ । ९ । ३ । १४ ॥
,, स्वरिति (प्रजापतिः) विशम् (अजनयत) । शा० २ । १ । ४ । १२ ॥
,, स्वरिति (प्रजापतिः) पशून् (अजनयत) । शा० २ । १ । ४ । १३ ॥
,, अन्तो वै स्वः । ऐ० ५ । २० ॥

स्वगाकारः संवत्सरः स्वगाकारः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥

स्वजः (=उभयतःशिराः सर्प इति सायणः) सहसः स्वजः (अभवत्) ।
ऐ० ३ । ३६ ॥

स्वधा स्वधायै त्वेति रसाय त्वेत्येवैतदाह । शा० ५ । ४ । ३ । ७ ॥
,, स्वधाकारो हि पितॄणाम् । तै० १ । ६ । ९ । ५ ॥ ३ । ३ । ६ । ४ ॥
,, स्वधो वै पितॄणामन्नम् । शा० १३ । ८ । १ । ४ ॥
,, स्वधाकारं पितरः (उपजीवन्ति) । शा० १४ । ८ । ९ । १ ॥
,, स्वधा वै शरद् । शा० १३ । ८ । १ । ४ ॥

स्वप्नः तौ (यो ऽयं दक्षिणे ऽक्षन्पुरुषो यश्च सव्ये ऽक्षन्पुरुषः) हृदयस्याकाशं प्रत्यवेत्य । मिथुनीभवतस्तौ यदा मिथुनस्यान्तं गच्छतो ऽथ हैतत्पुरुषः स्वपिति । शा० १० । ५ । २ । ११ ॥
,, तस्मादु ह स्वपन्तं धुरेव न बोधयेत् । शा० १० । ५ । २ । १२ ॥
,, तं (सुप्तं) नायतं (=न सहसा भृशं) बोधयेदित्य हुर्दुर्भिषज्यꣳ हास्मै भवति यमेष (आत्मा) न प्रतिपद्यते । शा० १४ । ७ । १ । १५ ॥

स्वप्नः तस्मादु हैतत्सुषुपुषः श्लेष्मणमिव मुखं भवति । श० १० । ५ । २ । १२ ॥

,, अजगरं स्वप्नः (गच्छति) । गो० पू० २ । २ ॥ ('स्वाप्यय'-शब्दमपि पश्यत)

स्वयमातृण्णा (इष्टका) प्राणो वै स्वयमातृण्णा प्राणो ह्येवैतत्स्वयमात्मन आतृन्ते । श० ७ । ४ । २ । २ ॥

,, प्राणो वै स्वयमातृण्णा । श० ८ । ७ । २ । ११ ॥

,, अन्नं वै स्वयमातृण्णा । श० ७ । ४ । २ । १ ॥

,, इयं (पृथिवी) वै स्वयमातृण्णा । श० ७ । ४ । २ । १ ॥

,, इमे वै लोकाः स्वयमातृण्णाः । श० ७ । ४ । २ । ८ ॥

स्वरः स यदाह स्वरो ऽसीति सोमं वा एतदाहैष ह वै सूर्य्यो भूत्वा ऽमुष्मिंल्लोके स्वरति तद्यत्स्वरति तस्मात्स्वरस्तत्स्वरस्य स्वरत्वम् । गो० पू० ५ । १४ ॥

,, य आदित्यस्स्वर एव सः । जै० उ० ३ । ३३ । १ ॥

,, प्राणः स्वरः । तां० ७ । १ । १० ॥ १७ । १२ । २ ॥

,, प्राणो वै स्वरः । तां० २४ । ११ । ९ ॥

,, पशवः स्वरः । गो० उ० ३ । २२ ॥ ४ । २ ॥

,, पशवो वै स्वरः । ऐ० ३ । २४ ॥

,, श्रीर्वै स्वरः । श० ११ । ४ । २ । १० ॥

,, प्रजापतिः स्वरः । ष० ३ । ७ ॥

,, यथा स्वरेण सर्वाणि व्यञ्जनानि व्याप्तान्येवं सर्वान्कामानाप्नोति यश्चैवं वेद । संहितो० खं० २ ॥

,, तस्माद्यज्ञे स्वरवन्तं दिदृक्षन्तऽ एव । श०१४ । ४ । १ । २७ ॥

,, अनन्तो वै स्वरः । तां० १७ । १२ । ३ ॥

स्वरसामानः (अहर्विशेषाः) इमान्वै लोकान्स्वरसामभिरस्पृण्वंस्तत्स्वरसाम्नां स्वरसामत्वम् । ऐ० ४ । १९ ॥

,, एतैर्ह वा अत्रय आदित्यं तमसो ऽपस्पृण्वत तद्यदपस्पृण्वत तस्मात्स्वरसामानः । कौ० २४ । ३ ॥

,, स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यन्तमसा ऽविध्यत्तं देवाः स्वरैरस्पृण्वन्यत् स्वरसामानो भवन्त्यादित्यस्य स्पृत्यै । तां० ४ । ५ । २ ॥

स्वरसामानः प्रजापतिः स्वरसामानः । कौ० २४ । ४, ५, ९ ॥

„ इमे वै लोकाः स्वरसामानः । ऐ० ४ । १९ ॥

„ स्वर्गो वै लोकः स्वरसाम । कौ० १२ । ५ ॥

„ आपः स्वरसामानः । कौ० २४ । ४ ॥

„ अथ यत् स्वरसाम्न उपयन्ति । अप एव देवतां यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । १३ ॥

„ प्राणाः स्वरसामानः । तां० २४ । १४ । ४ ॥ २५ । १ । ८॥

„ त्रयः स्वरसामानो विश्वजिन्महाव्रतश्चातिरात्रश्च । ष० ३ । १२ ॥

स्वराट् (यजु० ११ । २४) असौ वै (द्यु-) लोकः स्वराट् । श० ७ । ४ । २ । २२ ॥

„ स्वराड् वै तच्छन्दो यत्किञ्च चतुस्त्रिंशदक्षरम् । कौ० १७ । १॥

„ सो ऽश्वमेधेनेष्ट्वा स्वराडिति नामाधत्त । गो० पू० ५ । ८ ॥

स्वरुः एतस्माद् (यूपात्) वा ऽ एषो (शकलः) ऽपछियते तस्यै-तत्स्वमेवारुर्भवति तस्मात्स्वरुर्नाम । श० ३ । ७ । १ । २४ ॥

स्वर्गो लोकः उपरीव सुवर्गो लोकः । तै० ३ । २ । १ । ५ ॥ ३ । २ । २ । ६ ॥ ३ । २ । ३ । १२ ॥

„ परो वा अस्माल्लोकात्स्वर्गो लोकः । ऐ० ६ । २० ॥ गो० उ० ६ । २ ॥

„ सकृदिव हि सुवर्गो लोकः । तै० १ । ६ । ३ । ६ ॥

„ सकृद्धीतो ऽसौ (स्वर्गः) पराङ् लोकः । तां० ६ । ८ । १५॥

„ पराङ् ह्यतो ऽसौ (स्वर्गः) लोकः । तां० ९ । ८ । ६ ॥

„ पराङिव वै स्वर्गो लोकः । श० १३ । १ । ३ । ३ ॥

„ प्रतिकूलमिव ह्यतः स्वर्गो लोकः । तां० ६ । ७ । १० ॥

„ एकविंशो वा इतः स्वर्गो लोकः । तै० ३ । १२ । ५ । ७ ॥

„ सहस्रसंमितो वै स्वर्गो लोकः । श० १३ । १ । ३ । १ ॥

„ सहस्रसम्मितः सुवर्गो लोकः । तै० ३ । ९ । ४ । ६ ॥ ३ । १२ । ५ । ८ ॥

„ यावद्वै सहस्रङ्गाव उत्तराधरा इत्याहुस्तावदस्मात् लोकात् स्वर्गो लोक इति तस्मादाहुः सहस्रयाजी वा इमान् लोकान् प्राप्नोति । तां० १६ । ८ । ६ ॥

स्वर्गो लोकः सहस्राश्वीने वा इतः स्वर्गो लोकः । ऐ० २ । १७ ॥

,, चतुश्चत्वारिंशदाश्वीनानि सरस्वत्या विनशनात् प्लक्षः प्रास्रवणस्तावदितः स्वर्गो लोकः सरस्वतीसम्मितेनाध्वना स्वर्गं लोकं यन्ति । तां० २५ । १० । १६ ॥

,, असम्मितः (=अपरिमितः) ह्यसौ (स्वर्गो) लोकः । तां० ६ । ८ । १४ ॥

,, अपरिमितो वै स्वर्गो लोकः । ऐ० ६ । २३ ॥ गो० उ० ६ । ५ ॥ तै० ३ । ८ । ६ । २ ।

,, अनन्तो ऽसौ (स्वर्गः) लोकः । तां० १७ । १२ । ३ ॥

,, साम्राज्यं वै स्वर्गो लोकः । तां० ४ । ६ । २४ ॥

,, स्वर्गो लोकः सरस्वान् । तां० १६ । ५ । १५ ॥

,, स्तोमा वै परमाः स्वर्गा लोकाः । ऐ० ४ । १८ ॥

,, स्तोमा वै त्रयः स्वर्गा लोकाः । ऐ० ४ । १८ ॥

,, स्वर्गो वै लोकः सूर्य्यो ज्योतिरुत्तमम् (यजु० २० । २१) । श० १२ । ६ । २ । ८ ॥

,, एष (आदित्यः) स्वर्गो लोकः । तै० ३ । ८ । १० । ३ ॥ ३ । ८ । १७ । २ ॥ ३ । ८ । २० । २ ॥

,, अहः स्वर्गः । श० १३ । २ । १ । ६ ॥

,, अहर्वै स्वर्गो लोकः । ऐ० ५ । २४ ॥

,, स्वर्गो वै लोको ब्रध्नस्य विष्टपम् । ऐ० ४ । ४ ॥

,, स्वर्गो वै लोको नाकः (यजु० १२ । २ ॥) । श० ६ । ३ । ३ । १४ ॥ ६ । ७ । २ । ४ ॥

,, दिशो वै स नाकः स्वर्गो लोकः । श० ८ । ६ । १ । ४ ॥

,, स्वर्गो हि लोको दिशः । श० ८ । १ । २ । ४ ॥

,, स्वर्गो वै लोकः सधस्थः (यजु० १८ । ५९) । श० ९ । ५ । १ । ४६ ॥

,, अथ यत्परं भाः (सूर्य्यस्य) प्रजापतिर्वा स स्वर्गो व लोकः । श० १ । ९ । ३ । १० ॥

,, सुवर्गो वै लोको बृहद्भाः । तै० ३ । ३ । ७ । ९ ॥

,, सुवर्गो वै लोको महः । तै० ३ । ८ । १८ । ५ ॥

स्वर्गो लोकः असौ वै (स्वर्गो) लोको महाꣳसि । तस्यादित्या अधिपतयः । तै० ३ । ८ । १८ । २ ॥

,, अग्निर्वै स्वर्गस्य लोकस्याधिपतिः । ऐ० ३ । ४२ ॥

,, एष वै स्वर्गो लोको यत्र पशुꣳ संज्ञपयन्ति । श० १३ । ५ । २ । २ ॥

,, स्वर्गो वै लोक आहवनीयः । ष० १ । ५ ॥ तै० १ । ६ । ३ । ६ ॥

,, ओमिति वै स्वर्गो लोकः । ऐ० ५ । ३२ ॥

,, स्वरिति सामभ्यो ऽक्षरत् स्वः स्वर्गलोको ऽभवत् । ष० १ । ५ ॥

,, स्वर्गो लोकः सामवेदः । ष० १ । ५ ।

,, इदं वा वामदेव्यं यजमानलोको ऽमृतलोकः स्वर्गो लोकः । ऐ० ३ । ४६ ॥

,, स्वर्गो वै लोको यज्ञायज्ञियम् (साम) । श० ९ । ४ । ४ । १० ॥

,, बृहद्धि स्वर्गो लोकः । तै० १ । २ । २ । ४ ॥ तां० ६ । १ । ३१ ॥

,, बृहता (साम्ना) वै देवा स्वर्गं लोकमायन् । तां० १८ । २ । ८ ॥

,, स्वर्गो लोको बृहत् । तां० १६ । ५ । १५ ॥

,, बार्हतो वा असौ (स्वर्गः) लोकः । तै० १ । १ । ८ । २॥

,, बार्हतो वै स्वर्गो लोकः । गो० पू० ४ । १२ ॥

,, बार्हताः स्वर्गा लोकाः । ऐ० ७ । १ ॥

,, बृहत्यामधि स्वर्गो लोकः प्रतिष्ठितः । श० १३ । ५ । ४ । २८ ॥

,, बृहत्या वै देवाः स्वर्गं लोकमायन् । तां० १६ । १२ । ७ ॥

,, बृहती स्वर्गो लोकः । श० १० । ५ । ४ । ६ ॥

,, स्वर्गो वै लोकः स्वरसाम । कौ० १२ । ५ ॥

,, स्वर्गो वै लोकः षष्ठमहः । ऐ० ६ । २६, ३६ ॥ गो० उ० ६ । १६ ॥

,, स्वर्गः एव लोकः षष्ठी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । १७ ॥

स्वर्गो लोकः एकवृष्टै स्वर्गो लोकः । श० १३ । २ । १ । ५ ॥
,, वाजो वै स्वर्गो लोकः । तां० १८ । ७ । १२ ॥ गो० उ० ५ । ८ ॥
,, तस्मात् (भूलोकात्) असावेव (स्वर्गो) लोकः श्रेयान् (अथर्व० ७ । ९ । १) । ऐ० १ । १३ ॥
,, स्वर्गो वै लोको ऽभयम् । श० १२ । ८ । १ । २२ ॥
,, अमृतꣳ सुवर्गो लोकः । तै० १ । ३ । ७ । ७ ॥
,, अमृतमिव हि स्वर्गो लोकः । तै० १ । ३ । ७ । ५ ॥
,, स्वर्गो लोको देवो देवता भवति । गो० पू० ४ । ८ ॥
,, स्वर्गो वै लोको दूरोहणम् । ऐ० ४ । २०, २१ ॥
,, स्वर्गस्य हैष लोकस्य रोहो यन्निविद् । ऐ० ३ । १६ ॥
,, स्वर्गो वै लोको रोहः (यजु० १३ । ४१) । श० ७ । ५ । २ । ३६ ॥
,, संवत्सरः सुवर्गो लोकः । तै० २ । २ । ३ । ६ ॥ ३ । ६ । २ । २ ॥ श० ८ । ४ । १ । २४ ॥ ८ । ६ । १ । ४ ॥ तां० १८ । २ । ४ ॥
,, मध्ये ह संवत्सरस्य स्वर्गो लोकः । श० ६ । ७ । ४ । ११ ॥
,, तस्य (संवत्सरस्य) वसन्त एव द्वारꣳ हेमन्तो द्वारं तं वाऽ एतꣳ संवत्सरꣳ स्वर्गं लोकं प्रपद्यते । श० १ । ६ । १ । १९ ॥
,, ता वा एताः पञ्च (इष्टयः) स्वर्गस्य लोकस्य द्वारः । अपाद्या अनुवित्तयो नाम । तपः प्रथमाꣳ रक्षति । श्रद्धा द्वितीयाम् । सत्यं तृतीयाम् । मनश्चतुर्थीम् । चरणं पञ्चमीम् । तै० ३ । १२ । ४ । ७ ॥
,, ता वा एताः सप्त (इष्टयः) स्वर्गस्य लोकस्य द्वारः । दिवः श्येनयो ऽनुवित्तयो नाम । आशा प्रथमाꣳ रक्षति । कामो द्वितीयां ब्रह्म तृतीयाम् । यज्ञश्चतुर्थीम् । आपः पञ्चमीम् । अग्निर्बलिमान् षष्ठीम् । अनुवित्तिः सप्तमीम् । तै० ३ । १२ । २ । ९ ॥

स्वर्गो लोकः एतस्याᳬ ह (उदीच्यां प्राच्यां) दिशि स्वर्गस्य लोकस्य द्वारम् । श० ६ । ६ । २ । ४ ॥
,, स्वर्गो वै लोको यज्ञः । कौ० १४ । १ ॥
,, स्वर्गकामो यजेत । तां० १६ । १५ । ५ ॥
,, तथा ह यजमानः सर्वमायुरस्मिंल्लोक एत्याप्नोत्यमृतत्वमक्षितिं स्वर्गे लोके । कौ० १३ । ५, ६ ॥ १४ । ४ ॥
,, ऋतेनैवैनᳬ स्वर्गं लोकं गमयन्ति । तां० १८ । २ । ९ ॥
,, छन्दोभिर्हि स्वर्गं लोकं गच्छन्ति । श० ६ । ५ । ४ । ७ ॥
,, सर्वैर्वै छन्दोभिरिष्ट्वा देवाः स्वर्गं लोकमजयन् । ऐ० १ । ९ ॥
,, छन्दोभिर्वै देवा आदित्यᳪ स्वर्गं लोकमहरन् । तां० १२ । १० । ६ ॥
,, छन्दोभिर्हि देवाः स्वर्गं लोकं समाश्नुवत । श० ३ । ९ ॥ ३ । १० ॥
,, देवा वै छन्दाᳬस्यब्रुवन् युष्माभिः स्वर्गं लोकमयामेति । तां० ७ । ४ । २ ॥
,, साध्या वै नाम देवा आसᳪस्ते ऽवछिद्य तृतीयसवनम्माध्यन्दिनेन सवनेन सह स्वर्गं लोकमायन् । तां० ८ । ३ । ५ ॥ ८ । ४ । ९ ॥
,, देवा वा असुरैर्विजिग्याना ऊर्ध्वाः स्वर्गं लोकमायन् । ऐ० ३ । ४२ ॥
,, देवा वै यज्ञेन श्रमेण तपसाहुतिभिः स्वर्गं लोकमजयन् । ऐ० २ । १३ ॥
,, ये हि जनाः पुण्यकृतः स्वर्गं लोकं यन्ति तेषामेतानि नक्षत्राणि ज्योतीᳪषि । श० ६ । ५ । ४ । ८ ॥
,, अक्षैर्यया (स्वर्गं लोकं) ऋषयो ऽनुप्राजानन् । तां० ८ । ५ । ७ ॥
,, पृष्ठैर्वै देवाः स्वर्गं लोकमस्पृक्षन् । कौ० २४ । ८ ॥
,, पृष्ठानि वा असृज्यन्त तैर्देवाः स्वर्गं लोकमायन् । तां० ७ । ७ । १७ ॥
,, स्वर्गो लोकः पृष्ठानि । तां० १६ । १५ । ६ ॥

स्वर्गो लोकः स्वर्ग्या वा एते स्तोमा यत् ज्योतिर्भवति (ज्योतिः= ज्योतिष्टोमः) । तां० १६ । ३ । ७ ॥

" मधुनामुष्मिन् (स्वर्गे) लोक उपतिष्ठते । तां० १३ । ४ । १० ॥

" मध्वमुष्य (स्वर्गस्य लोकस्य रूपम्) । श० ७ । ५ । १ । ३॥

" (देवाः) सोमैः (सोमयागैः) अमुं (स्वर्गं लोकमभ्यजयन्) । तां० १७ । १३ । १८ ॥ १८ । २ । १४ ॥

" स्वर्गो वै लोको माध्यन्दिनं सवनम् । गो० उ० ३ । १७ ॥

" एतद्धै यज्ञस्य स्वर्ग्यं यन्माध्यन्दिनꣳ सवनम् । तां० ७ : ४ । १ ॥

" अवस्तात्प्रपदनो ह स्वर्गो लोकः । श० ८ । ६ । १ । २३ ॥

" एतेन (पारुच्छेपेन रोहिताख्येन छन्दसा) वा इन्द्रः सप्त स्वर्गाल्लोकानरोहत् । ऐ० ५ । १० ॥

" नव स्वर्गा लोकाः । ऐ० ४ । १६ ॥ तै १ । २ । २ । १ ॥

" दश स्वर्गा लोकाः । गो० उ० ६ । २ ॥

" दश पुरुषे स्वर्गनरकाणि तान्येनं स्वर्गं गतानि स्वर्गं गमयन्ति नरकं गतानि नरकं गमयन्ति । जै० उ० ४ । २५ । ६ ॥

" इयं (पृथिवी) वै स्वर्गस्य लोकस्य प्रतिष्ठा । गो० उ० ६ । २ ॥

" न वै मनुष्यः स्वर्गं लोकमञ्जसा वेदाश्वो वै स्वर्गं लोकमञ्जसा वेद । श० १३ । २ । ३ । १ ॥

" असमायी वै स्वर्गो लोकः कश्चिद्वै स्वर्गे लोके समेतीति । ऐ० ६ । २६, ३६ ॥

" असमाये (? असमायी) वै स्वर्गो लोकः कश्चिद्वै स्वर्गे लोके शमयतीति (? समेतीति) । गो० उ० ६ । १६ ॥

" य एवं वेद सशरीर एव स्वर्गं लोकमेति । तै० ३ । ११ । ७ । ३ ॥

" अथ य एवमेतमुक्थस्याऽऽत्मानमात्मन्प्रतिष्ठितं वेद स हैवाऽमुष्मिल्लोके साङ्गस्सतनुस्सर्वस्सम्भवति । जै० उ० ३ । ३ । ५ ॥

स्वर्गो लोकः साध्या वै नाम देवेभ्यो देवाः पूर्वा आसꣳस्त एतत् (शतसंवत्सरं) सत्रायणमुपायꣳस्तेनार्ध्नुवꣳस्ते सगवः सपुरुषाः सर्व एव सह स्वर्गं लोकमायन् । तां० २५ । ८ । २ ॥

,, ते (देवाः) एनं (ऋचामध्येतारं) तृप्तास्तर्पयन्ति योगक्षेमेण प्राणेन रेतसा सर्वात्मना सर्वाभिः पुण्याभिः सम्पद्भिर्घृतकुल्या मधुकुल्याः पितॄन्त्स्वधा अभिवहन्ति (पश्यत–अथर्व० ४ । ३४ । ६ ॥) । श० ११ । ५ । ६ । ७ ॥

,, यदु ह वाऽएवंवित् तप (तपस्) तप्यतऽ आ मैथुनात्सर्वꣳ हास्य तत्स्वर्गं लोकमभिसम्भवति । श० १० । ४ । ४ । ४ ॥

,, सुवर्गो वै लोकः काष्ठा । तै० १ । ३ । ६ । ५ ॥

स्वर्णिधनम् देवक्षेत्रं वा एते ऽभ्यारोहन्ति ये स्वर्णिधनमुपयन्ति । तां० ५ । ७ । ८ ॥

स्वर्दृक्, असौ (सूर्यः) वाव स्वर्दृक्तेन सूर्यं नातिशंसति । ऐ० ४ । १० ।

स्वर्भानुः स्वर्भानुर्ह वाऽ आसुरः । सूर्यं तमसा विव्याध । श० ५ । ३ । २ । २ ॥

,, स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यन्तमसा ऽविध्यत् । तां० ४ । ५ । २ ॥

,, स्वर्भानुर्वा आसुरिः सूर्यन्तमसा विध्यत् । गो० उ० ३।१९॥

स्वर्विद् (यजु० १७ । १२) अयमग्निः स्वर्विद् । श० ९ । २ । १ । ८ ॥

स्वाध्यायः अथातः स्वाध्यायप्रशꣳसा । प्रिये स्वाध्यायप्रवचने भवतो युक्तमना भवत्यपराधीनो ऽहरहरर्थान्त्साधयते सुखꣳ स्वपिति परमचिकित्सक आत्मनो भवतीन्द्रियसंयमश्चैकारामता च प्रज्ञावृद्धिर्यशो लोकपक्तिः । श० ११ । ५ । ७ । १ ॥

,, यदि ह वा अप्यभ्यक्तः । अलंकृतः सुहितः सुखे शयने शयानः स्वाध्यायमधीतऽ आ हैव स नखाग्रेभ्यस्तप्यते य एवं विद्वान्त्स्वाध्यायमधीते (मनुस्मृतौ २ । १६७:— आ हैव स नखाग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः । यः स्रग्व्यपि

द्विजो ऽधीते स्वाध्यायं शक्तितो ऽन्वहम्॥)। श० ११। ५।७।४॥

स्वाध्यायः स य एवं विद्वाननुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहास-पुराणं गाथा नाराशꣳसीरित्यहरहः स्वाध्यायमधीते मध्वाहुतिभिरेव तद्देवाँस्तर्पयति। श० ११।५।६।८॥

,, एवꣳ हैव तद्ब्राह्मणो भवति यदहः स्वाध्यायं नाधीते तस्मात्स्वाध्यायो ऽध्येतव्यस्तस्मादप्यृचं वा यजुर्वा साम वा गाथां वा कुंव्यां वाभिव्याहरेद् व्रतस्याव्यवच्छेदाय। श० ११।५।७।१०॥ ('ब्रह्मयज्ञ'शब्दमपि पश्यत)

स्वाप्ययः एष (यो ऽयं दक्षिणे ऽक्षन्पुरुषो मृत्युनामा सः) उ एव प्राणः। एष हीमाः सर्वाः प्रजाः प्रणयति तस्यैते प्राणाः स्वाः स यदा स्वपित्यथैनमेते प्राणाः स्वा अपियन्ति त-स्मात्स्वाप्ययः स्वाप्ययो ह वै तꣳ स्वप्न इत्याचक्षते परोऽक्षम्। श० १०।५।२।१४॥

स्वाराज्यम् अथैनं (इन्द्रं) प्रतीच्यां दिश्यादित्या देवाः ..अभ्यषिञ्चन् ... ..स्वाराज्याय। ऐ० ८।१४॥

,, तस्मादेतस्यां प्रतीच्यां दिशि ये के च नीच्यानां राजानो ये ऽपाच्यानां स्वाराज्यायैव ते ऽभिषिच्यन्ते स्वराडित्ये-नानभिषिक्तानाचक्षते। ऐ० ८।१४॥

,, यशसो वा एष वनस्पतिरजायत यत्प्लक्षः स्वाराज्यं स ह वा एतद्वैराज्यं च वनस्पतीनाम्। ऐ० ७।३२॥

स्वावश्यम् अथैनं (इन्द्रं) ऊर्ध्वायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः ....अभ्यषिञ्चन्...... पारमेष्ठ्याय माहाराज्यायाऽऽधिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय। ऐ० ८।१४॥

स्वाशिरः प्राणा वै स्वाशिरः। तां० १४।११।६॥

स्वाशिरामर्कः (साम विशेषः) अन्नं वा अर्को ऽन्नाद्यस्यावरुध्यै प्राणा वै स्वाशिरः प्राणानामवरुध्यै। तां० १४।११।६॥

स्वाहाकारः स प्रजापतिर्विदांचकार स्वो वै मा महिमाहेति स स्वाहे-त्येवाजुहोत्तस्मादु स्वाहेत्येव हूयते। श० २।२।४।६॥

स्वाहाकारः हेमन्तो वाऽ ऋतूनाꣳ स्वाहाकारो हेमन्तो हीमाः प्रजाः स्वं वशमुपनयते । श० १ । ५ । ४ । ५ ॥

,, स्वाहा वै सत्यसम्भूता ब्रह्मणो दुहिता ब्रह्मप्रकृता लातव्यसगोत्रा त्रीण्यक्षराण्येकं पदं त्रयो वर्णाः शुक्लः पद्मः सुवर्ण इति । ष० ४ । ७ ॥

,, स्वाहा वै सत्यसम्भूता ब्रह्मणा प्रकृता लामगायनसगोत्रा द्वे अक्षरे एकं पदं त्रयश्च वर्णाः शुक्लः पद्मः सुवर्ण इति । गो० पू० ३ । १६ ॥

,, एष वै स्वाहाकारो य एष (सूर्यः) तपति । श० १४ । १ । ३ । २६ ॥

,, अन्नꣳ हि स्वाहाकारः । श० ६ । ६ । ३ । १७ ॥

,, अन्नं वै स्वाहाकारः । श० ९ । १ । १ । १३ ॥

,, तस्यै (वाचे) द्वौ स्तनौ देवा उपजीवन्ति स्वाहाकारं च वषट्कारं च । श० १४ । ८ । ९ । १ ॥

,, अनिरुक्तो वै स्वाहाकारः । श० २ । २ । १ । ३ ॥

,, अहुतमिवैतद्यदस्वाहाकृतम् । श० ४ । ५ । २ । १७ ॥

,, यज्ञो वै स्वाहाकारः । श० ३ । १ । ३ । २७ ॥

,, अन्तो वै यज्ञस्य स्वाहाकारः । श० १ । ५ । ३ । १३ ॥

,, अन्तो वै स्वाहाकारः । ऐ० ५ । २० ॥

स्वाहाकृतयः प्राणा वै स्वाहाकृतयः । कौ० १० । ५ ॥

,, प्रतिष्ठा वै स्वाहाकृतयः । ऐ० २ । ४ ॥

स्वाहाकृतिमान् स्वाहाकृतिमन्तं यजति हेमन्तमेव हेमन्ते वा इदं सर्वं स्वाहाकृतम् । कौ० ३ । ४ ॥

स्विष्टकृत् (अग्निः) तदेभ्यः (देवेभ्यो ऽग्निः) स्विष्टमकरोत्तस्मात् (अग्नये) स्विष्टकृतऽ इति (क्रियते) । श० १ । ७ । ३ । ६ ॥

,, अग्निर्हि स्विष्टकृत् । श० १ । ५ । ३ । २३ ॥

,, अग्निर्वै स्विष्टकृत् । कौ० १० । ५ ॥

,, रुद्रः स्विष्टकृत् । श० १३ । ३ । ४ । ३ ॥

,, रुद्रो वै स्विष्टकृत् । कौ० ३ । ४, ६ ॥

,, रुद्रियः (=रुद्रदेवत्यः) स्विष्टकृत् (यागः) । श० १ । ७ । ३ । २१ ॥

स्विष्टकृत् क्षत्रं वै स्विष्टकृत् । श० १२ । ८ । ३ । १९ ॥
,, तपः स्विष्टकृत् । श० ११ । २ । ७ । १८ ॥
,, अयमेवावाङ् प्राणः स्विष्टकृत् । श० ११ । १ । ६ । ३० ॥
,, तृतीयसवनं वै स्विष्टकृत् । श० १ । ७ । ३ । १६ ॥
,, वास्तु स्विष्टकृत् । श० १ । ७ । ३ । १८ ॥
,, वास्तु वाऽ एतद्यज्ञस्य यत्स्विष्टकृत् । श० १ । ७ । ३ । १७ ॥
, प्रतिष्ठा वै स्विष्टकृत् । ऐ० २ । १० ॥ कौ० ३ । ८ ॥
,, एषा (उत्तरा=उदीची) हि दिक् स्विष्टकृतः । श० २ । ३ । १ । २३ ॥

स्विष्टम् यद्वै यज्ञस्यान्यूनातिरिक्तं तत्स्विष्टम् । श० ११ । २ । ३ । ९ ॥

स्वेदः तद्यदब्रवीन्महद्वै यक्षं सुवेदमविदामह इति तस्मात्सुवेदो ऽभवत्तं वा एतं सुवेदं सन्तं स्वेद इत्याचक्षते । गो० पू० १ । १ ॥

(ह)

हंसः शुचिषद् (ऋ० ४ । ४० । ५) एष (आदित्यः) वै हंसः शुचिषद् । ऐ० ४ । २० ॥
,, (यजु० १२ । १४) असौ वाऽ आदित्यो हꣳसः शुचिषत् । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥

हन्तकारः हन्तकारं मनुष्याः (उपजीवन्ति) । श० १४ । ८ । ९ । १ ॥
,, हन्तेति चन्द्रमा ओमित्यादित्यः । जै० उ० ३ । ६ । २ ॥

हयः (हे ऽश्व त्वं) हयो ऽसि । तां० १ । ७ । १ ॥
,, हयो भूत्वा देवानवहत् । श० १० । ६ । ४ । १ ॥

हरः (यजु० १३ । ४१) (=अर्चिः) परिवृङ्ग्धि हरसा माभिमꣳस्था इति पर्येनं वृङ्ग्ध्यर्चिषा मैनꣳ हिꣳसीरित्येतत् । श० ७ । ५ । २ । १७ ॥
,, वीर्यं वै हर इन्द्रो ऽसुराणाꣳ सपत्नानाꣳ समवृङ्क्त । श० ४ । ५ । ३ । ४ ॥

हरिः प्राणो वै हरिः स हि हरति । कौ० १७ । १ ॥
,, [=पापहर्ता (मृत्युः) इति सायणभाष्ये तै० ३ । १० । ८ । १ ॥]
,, (यजु० ३८ । २२) एष वै वृषा हरिर्य एष (आदित्यः) तपति । श० १४ । ३ । १ । २६ ॥

हरिः (ऋ० ६ । ४७ । १८) युक्ता ह्यस्य (इन्द्रस्य) हरयश्शतादशेति सहस्रं हैत आदित्यस्य रश्मयः। तेऽस्य युक्तास्तैरिदं सर्वं हरति । तद्यदेतैरिदं सर्वं हरति । तस्माद्धरयः (=रश्मयः)। जै० उ० १ । ४४ । ५ ॥

हरिकेशः (यजु० १५ । १५) यद्धरिकेश इत्याह हरिरिव ह्यग्निः। श० ८ । ६ । १ । १६ ॥

हरिणः (यजु० २३ । ३०) राष्ट्रं हरिणः। श० १३ । २ । ९ । ८ ॥

हरिणी (सूची) ऊर्ध्वा हरिण्यः (सूच्यः)। तै० ३ । ९ । ६ । ५ ॥ श० १३ । २ । १० । ३ ॥

„ हरिणी (=सुवर्णमयी) द्यौः। गो० उ० २ । ७ ॥

„ असौ (द्यौः) हरिणी । तै० १ । ८ । ९ । १ ॥

„ दिवो (रूपं) हरिण्यः (सूच्यः)। तै० ३ । ९ । ६ । ५ ॥

„ हरिणीव हि द्यौः। श० १४ । १ । ३ । २६ ॥

„ विड् वै हरिणी । तै० ३ । ९ । ७ । २ ॥

हरितः दिशो वै हरितः। श० २ । ५ । १ । ५ ॥

हरिश्रियः पशवो वै हरिश्रियः। तां० १५ । ३ । १० ॥

हरिश्रीनिधनम् (साम) पशूनामवरुध्यै, श्रियश्च हरश्चोपैति तुष्टुवानः। तां० १५ । ३ । १० ॥

हरी (इन्द्रस्य) ऋक्सामे वै हरी । श० ४ । ४ । ३ । ६ ॥

„ ऋक्सामे वा इन्द्रस्य हरी । ऐ० २ । २४ ॥ तै० १ । ६ । ३ । ९ ॥

„ पूर्वपक्षापरपक्षौ वा इन्द्रस्य हरी ताभ्यां हीदं सर्वं हरति । ष० १ । १ ॥

„ हर्योर्धानाः। श० ४ । २ । ५ । २२ ॥

हरी विपक्षसौ (यजु० २३ । ६) इमे ("द्यावापृथिव्यौ" इति सायणः) वै हरी विपक्षसा । तै० ३ । ९ । ४ । २ ॥

हविः अक्तं हि हविः। श० २ । ६ । २ । ६ ॥

„ हवींषि ह वाऽ आत्मा यज्ञस्य । श० १ । ६ । ३ । ३६ ॥

„ जीवं वै देवानां हविरमृतममृतानाम् । श० १ । २ । १ । २० ॥

„ मासा हवींषि । श० ११ । २ । ७ । ३ ॥

हविर्धानम् अथ यदस्मिन्त्सोमो भवति हविर्वै देवानां सोमस्तस्माद्धविर्धानं नाम । श० ३ । ५ । ३ । २ ॥

„ वैष्णवं हि हविर्धानम् । श० ३ । ५ । ३ । १५ ॥

हविर्धानम् एतद्वै देवानां निष्क्रेवल्यं यद्धविर्धानम् । श० ३ । ६ । १ ।
२३ ॥
" शिर एवास्य (यज्ञस्य) हविर्धानम् । श० ३ । ५ । ३ । २ ॥
" शिरो वा एतद्यज्ञस्य यद्धविर्धाने । कौ० ११ । ८ ॥
" तस्य (पुरुषस्य) शिर एव हविर्धाने । कौ० १७ । ७ ॥
" द्यौर्हविर्धानम् । तै० २ । १ । ५ । १ ॥
" द्यावापृथिवी वै देवानां हविर्धाने आस्ताम् । ऐ० १ । २९ ॥
" वाक् च वै मनश्च हविर्धाने । कौ० ९ । ३ ॥
" अयं वै लोको दक्षिणं हविर्धानम् । कौ० ९ । ४ ॥
हविर्यज्ञः अकृत्स्नेव वा एषा देवयज्या यद्धविर्यज्ञः । कौ० १० । ६ ॥
" अकृत्स्ना वा एषा देवयज्या यद्धविर्यज्ञः । गो० उ० २ । १७ ॥
" अग्न्याधेयमग्निहोत्रं पौर्णमास्यमावास्ये । नवेष्टिश्चातुर्मास्यानि पशुबन्धो ऽत्र सप्तम इत्येते हविर्यज्ञाः । गो० पू० ५ । २३ ॥
" चत्वारो ह्येते हविर्यज्ञस्यार्त्विजः । ब्रह्मा होताऽध्वर्युरग्नीत् । तै० ३ । ३ । ८ । ७-८ ॥
" अथैषाज्याहुतिर्यद्धविर्यज्ञः । श० १ । ७ । २ । १० ॥
" हविर्यज्ञैर्वै देवा इमं लोकमभ्यजयन् । तां० १७ । १३ । १८ ॥
हविष्कृत् वाग्वै हविष्कृत् । श० १ । १ । ४ । ११ ॥
हविष्पङ्क्तिः धानाः करंभः परिवापः पुरोडाशः पयस्येत्येष वै यज्ञो हविष्पंक्तिः । ऐ० २ । २४ ॥
" तानि वै पञ्च हवींषि भवन्ति दधि धानाः सक्तवः पुरोडाशः पयस्येति । कौ० १३ । २ ॥
" अथ वै हविष्पङ्क्तिः प्राण एव । कौ० १३ । २ ॥
" पशवो वै हविष्पङ्क्तिः । कौ० १३ । २ ॥
हविष्पात्राणि अर्धमासा हविष्पात्राणि । श० ११ । २ । ७ । ४ ॥
हविष्मन्तः (ऋ० १ । २७ । १) पशवो वै हविष्मन्तः । श० १ । ४ । १ । ९ ॥
" अर्धमासा हविष्मन्तः । गो० पू० ५ । २३ ॥
हविष्यः यो व ऊर्मिर्हविष्य इति यो ऊर्मिर्यज्ञिय इत्येवैतदाह । श० ३ । ९ । ३ । २५ ॥

हव्यदातिः (ऋ० ६ । १६ । १०) यजमानो वै हव्यदातिः । श० १ । ४ । १ । २४ ॥

हव्यवाड् वायुर्वै तूर्णिर्हव्यवाड्वायुर्देवेभ्यो हव्यं वहति । ऐ० २ । ३४ ॥

,, एष हि हव्यवाडयदग्निः । श० १ । ४ । १ । ३९ ॥

हव्यवाहनः एष हि हव्यवाहनो यदग्निः । श० १ । ४ । १ । ३९ ॥

हस्तः हस्तो वितस्तिः । श० १० । २ । २ । ८ ॥

हस्तः (नक्षत्रम्) देवस्य सवितुर्हस्तः । तै० १ । ५ । १ । ३ ॥

,, दातारमद्य सविता विदेयपो नो हस्ताय प्रसुवाति यज्ञम् । तै० ३ । १ । १ । ६ ॥

,, हस्त एवास्य (नक्षत्रियस्य प्रजापतेः) हस्तः । तै० १ । ५ । २ । २ ॥

हस्ती (देवा आदित्याः) तं (मार्तण्डं) विचक्रुर्यथायं पुरुषो विकृतस्तस्य यानि माꣳसानि संकृत्य संन्यासुस्ततो हस्ती समभवत्तस्मादाहुर्न हस्तिनं प्रतिगृह्णीयात्पुरुषाजानो हि हस्तीति । श० ३ । १ । ३ । ४ ॥

हायनाः (= संवत्सरपका व्रीहयः) अतिष्ठा वाऽ एता ओषधयो यद्धायनाः । श० ५ । ३ । ३ । ६ ॥

हारायणम् (साम) इन्द्रस्तेजस्कामो हरस्कामस्तपोऽतप्यत स एतद्धारायणमपश्यत्तेन तेजो हरोऽवारुन्ध तेजस्वी हरस्वी भवति हारायणेन तुष्टुवानः । तां० १४ । ९ । ३४ ॥

हारियोजनः (ग्रहः) छन्दाꣳसि वै हारियोजनः । श० ४ । ४ । ३ । २ ॥

हारिवर्णम् (ब्रह्मसाम) हरिवर्णो वा एतत्पशुकामः सामपश्यत्सहस्रं पशूनसृजत यदेतत्साम भवति पशूनां पुष्टै (? पुष्ट्यै) । तां० ८ । ९ । ४ ॥

,, अङ्गिरसः स्वर्गं लोकं यतो रक्षाꣳस्यन्वसचन्त तान्येतेन हरिवर्णोऽपाहन्त यदेतत्साम भवति रक्षसामपहत्यै । तां० ८ । ९ । ५ ॥

,, अप शुचꣳ हते हारिवर्णस्य निधनेन, श्रियञ्च हरश्चोपैति तुष्टुवानः । तां० १२ । ६ । १० ॥

हाविष्कृतम् (साम) हाविष्कृतं भवति प्रतिष्ठायै । तां० १५ । ५ । १७ ॥

हाविष्मतम् (साम) हविष्माꣳश्च वै हविष्कृच्चाङ्गिरसावास्तां द्वितीये-ऽहनि हविष्मानराध्नोन्नवमेऽहनि हविष्कृत् । तां० ११ । १० । ९ ॥

हिङ्कारः हिङ्कारेण वज्रेणाऽस्माल्लोकादसुराननुदत । जै० उ० २ । ८ । ३ ॥

,, वज्रो वै हिङ्कारः । कौ० ३ । २ ॥ ११ । १ ॥

,, शुक्रमेव हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३४ । १ ॥

,, वायुरेव हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३६ । ९ ॥ १ । ५८ । ९ ॥

,, स (प्रजापतिः) पुरोवातमेव हिङ्कारमकरोत् । जै० उ० १ । १२ । ९ ॥

,, प्राणो वै हिङ्कारः । श० ४ । २ । २ । ११ ॥

,, प्राणो हि वै हिङ्कारस्तस्मादपिगृह्यनासिके न हिङ्कर्तुꣳ शक्नोति । श० १ । ४ । १ । २ ॥

,, प्रजापतिर्वै हिङ्कारः । तां० ६ । ८ । ५ ॥

,, तेभ्यः (पशुभ्यः प्रजापतिः) हिङ्कारम्प्रायच्छत् । जै० उ० १ । ११ । ५ ॥

,, लोमैव हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३६ । ६ ॥

,, स (प्रजापतिः) मन एव हिङ्कारमकरोत् । जै० उ० १ । १३ । ५ ॥

,, चन्द्रमा एव हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३३ । ५ ॥

,, चन्द्रमा वै हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३ । ४ ॥

,, तस्य साम्न इयमेव प्राची दिग्घिङ्कारः । जै० उ० १ । ३१ । २ ॥

,, यदनुदितः (आदित्यः) स हिङ्कारः । जै० उ० १ । १२ । ४ ॥

,, रश्मय एव हिङ्कारः । जै० उ० १ । ३३ । ६ ॥

,, अहोरात्राणि हिङ्कारः । ष० ३ । १ ॥

,, स (प्रजापतिः) वसन्तमेव हिङ्कारमकरोत् । जै० उ० १ । १२ । ७ ॥

,, वसन्तो हिङ्कारः । ष० ३ । १ ॥

,, वृषा हिङ्कारः । गो० पू० ३ । २३ ॥

,, स (प्रजापतिः) यजूꣳष्येव हिङ्कारमकरोत् । जै० उ० १ । १३ । ३ ॥

हिङ्कारः तस्य (एकविंशसाम्नः) त्रय्येव विद्या हिङ्कारः । जै० उ० १ । १९ । २ ॥

,, एष वै साम्नाꣳ रसो यद्धिङ्कारः । तां० ६ । ८ । ७ ॥

,, हिङ्कृत्य गायति तत्र हि सर्वं कृत्स्नꣳ साम भवति । श० ९ । १ । २ । ३४ ॥

,, तदेतद्यज्ञस्याग्रे गेयं यद्धिङ्कारः । गो० उ० ३ । ९ ॥

,, न वाऽ अहिंकृत्य साम गीयते । श० १ । ४ । १ । १ ॥

,, हिङ्कारो वै गायत्रस्य प्रतिहारः । तां० ७ । १ । ४ ॥

,, श्रीर्वै साम्नो हिङ्कारः । जै० उ० १ । ४ । ६ ॥

,, श्रीर्वा एषा प्रजापतिस्साम्नो यद्धिङ्कारः । जै० उ० ३ । १२ । ३ ॥

,, एष वै स्तोमस्य योगो यद्धिङ्कारः । तां० ६ । ८ । ६ ॥

,, येन वै श्रेष्ठस्तेन वासिष्ठः (हिङ्कारः) । गो० उ० ३ । ६ ॥

हितम् प्राणो वै हितं प्राणो हि सर्वेभ्यो भूतेभ्यो हितः । श० ६ । १ । २ । १४ ॥

हिमस्य जरायु (यजु० १७ । ५) यद्वै शीतस्य प्रशीतं तद्धिमस्य जरायु । श० ९ । १ । २ । २६ ॥

हिमाः (यजु० २ । २७) शतꣳ हिमा इति शतं वर्षाणि जीव्यास-मित्येवैतदाह । श० १ । ९ । ३ । १९ ॥

हिरः हिरो (हिरः="मेखला" इति सायण.) वै रास्ना (="रशना" इति सायणः) । श० १ । ३ । १ । १५ ॥

हिरण्यकशिपु दिवो (रूपं) हिरण्यकशिपु । तै० ३ । ९ । २० । २ ॥

हिरण्यगर्भः प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः । श० ६ । २ । २ । ५ ॥

हिरण्यपाणिः तस्मात् (सविता) हिरण्यपाणिरिति स्तुतः । कौ० ६ । १३ ॥ गो० उ० १ । २ ॥

हिरण्यम् तद्यदस्य (प्रजापतेः) एतस्याꣳ रम्यायां तन्वां देवा अर-मन्त तस्माद्धिरम्यꣳ हिरण्यꣳ ह वै तद्धिरण्यमित्याच-क्षते परोऽक्षम् । श० ७ । ४ । १ । १६ ॥

,, (अथर्व० ५ । २८ । ६—त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यमग्नेरेकं प्रियतमं बभूव सोमस्यैकं हिंसितस्य परापतत् । अपामेकं वेधसां रेत आहुस्तत् ते हिरण्यं त्रिवृदस्त्वायुषे ॥)

हिरण्यम् अग्निर्ह वाऽ अपोऽ भिदध्यौ मिथुन्याभिः स्यामिति ताः सम्बभूव तासु रेतःप्रासिञ्चत्तद्धिरण्यमभवत्तस्मादेतदग्निसंकाशमग्नेर्हि रेतस्तस्मादप्सु विन्दन्त्यप्सु हि प्रासिञ्चत्। श० २। १।१।५॥

,, (अग्नेरपत्यमेतद्वै सुवर्णमिति धारणा—महाभारते, अनु० पर्वाणि अ० ८५। १४७॥ अ० ८६ अपि द्रष्टव्यः)

,, आग्नेयं वै हिरण्यम्। तै० २। २। ५। २॥

,, तस्य (अग्नेः) रेतः परापतत्। तद्धिरण्यमभवत्। तै० १। १। ३। ८॥

,, अग्ने रेतो हिरण्यम्। श० २। २। ३। २८॥

,, अग्नेर्वाऽ एतद्रेतो यद्धिरण्यं नाष्ट्राणाꣳ रक्षसामपहत्यै। श० १४। १। ३। २२॥

,, समानजन्म वै पयश्च हिरण्यञ्चोभयꣳ ह्यग्निरेतसम्। श० ३। २। ४। ८॥

,, अश्वस्य वा आलब्धस्य रेत उदक्रामत्। तत्सुवर्णꣳ हिरण्यमभवत्। तै० ३। ८। २। ४॥ श० १३। १। १। ३॥

,, रेतो हिरण्यम्। तै० ३। ८। २। ४॥

,, (प्रजापतिः) अयसो हिरण्यं (असृजत) तस्माद्यो बहुध्मातꣳ हिरण्यसंकाशमिवैव भवति। श० ६। १। ३। ५॥

,, क्षत्रस्यैतद्रूपं यद्धिरण्यम्। श० १३। २। २। १७॥

,, आयु र्हि हिरण्यम्। श० ४। ३। ४। २४॥

,, (आयुष्यं वर्चस्यꣳ रायस्पोषमौद्भिदम्। इदꣳ हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम्। यजु० ३४। ५०॥ नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्। यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः॥ २॥ अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि। इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन् तद् दक्षमाणो बिभ्रद्धिरण्यम्॥ ३॥ अथर्व० १। ३५। २, ३॥)

,, आयुर्वै हिरण्यम्। तै० १। ८। ९। १॥

,, यद्धिरण्यं ददाति आयुस्तेन वर्षीयः कुरुते। गो० उ० ३। १९॥

हिरण्यम् अमृतमायुर्हिरण्यम् । श० ३ । ८ । २ । २७ ॥ ४ । ५ । २ । १० ॥ ४ । ६ । १ । ६ ॥

,, अमृतꣳ हिरण्यम् । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥ १ । ७ । ८ । १ ॥ श० १० । ४ । १ । ६ ॥ तां० ९ । ९ । ४ ॥

,, (यजु० १८ । ५२ ॥) अमृतं वै हिरण्यम् । श० ९ । ४ । ४ । ५ ॥ तै० १ । ३ । ७ । ७ ॥

,, प्राणो वै हिरण्यम् । श० ७ । ५ । २ । ८ ॥

,, सोमस्य वा अभिषूयमाणस्य प्रिया तनूरुदक्रामत् तत्सुवर्णꣳ हिरण्यमभवत् । तै० १ । ४ । ७ । ४-५ ॥

,, वरुणस्य वा अभिषिच्यमानस्याप इन्द्रियं वीर्य्यं निरघ्नन् । तत्सुवर्णꣳ हिरण्यमभवत् । तै० ८ । १ । ९ । १ ॥

,, वर्चो वै हिरण्यम् । तै० १ । ८ । ९ । १ ॥

,, वर्च्चो वाऽ एतद्यद्धिरण्यम् । श० ३ । २ । ४ । ९ ॥

,, तेजो हिरण्यम् । तै० ३ । १२ । ५ । १२ ॥

,, तेजो वै हिरण्यम् । तै० १ । ८ । ९ । १ ॥

,, चन्द्रꣳ हिरण्यम् । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥

,, चन्द्रꣳ ह्येतच्चन्द्रेण क्रीणाति यत्सोमꣳ हिरण्येन (चन्द्रः =सोमः, चन्द्रं=हिरण्यम्) । श० ३ । ३ । ३ । ६ ॥

,, शुक्रं हिरण्यम् । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥

,, शुक्रꣳ ह्येतच्छुक्रेण क्रीणाति यत्सोमꣳ हिरण्येन । श० ३ । ३ । ३ । ६ ॥

,, ज्योतिर्वै शुक्रं हिरण्यम् । ऐ० ७ । १२ ॥

,, ज्योतिर्हिरण्यम् । गो० पू० २ । २१ ॥

,, ज्योतिर्हि हिरण्यम् । श० ४ । ३ । १ । २१ ॥

,, ज्योतिर्वै हिरण्यम् । तां० ६ । ६ । १० ॥ १८ । ७ । ८ ॥ तै० १ । ४ । ४ । १ ॥ श० ६ । ७ । १ । २ ॥ ७ । ४ । १ । १५ ॥ गो० उ० ५ । ८ ॥

,, यशो वै हिरण्यम् ॥ ऐ० ७ । १८ ॥

,, सत्यं वै हिरण्यम । गो० उ० ३ । १७ ॥

,, देवानां वाऽ एतद्रूपं यद्धिरण्यम् । श० १२ । ८ । १ । १५ ॥

हिरण्यम् पवित्रं वै हिरण्यम् । तै० १ । ७ । २ । ६ ॥
,, तस्माद्धिरण्यं कनिष्ठं धनानाम् । तै० ३ । ११ । ८ । ७ ॥
हुतादः (देवाः) एता वै प्रजा हुतादो यद् ब्राह्मणाः । ऐ० ७ । १९ ॥
,, एते वै देवा अहुतादो यद् ब्राह्मणाः । गो० उ० १ । ६ ॥
हुम् बग् हुम् बगिति श्रीकामस्य । बगिति ह श्रियम्पणायन्ति । जै० उ० ३ । १३ । ३ ॥
हुम्बो हुम्बो इति पशुकामस्य । बो इति ह पशवो वाश्यन्ते । जै० उ० ३ । १३ । २ ॥
हुम्भा हुम्भा इति ब्रह्मवर्चसकामस्य । भातीव हि ब्रह्मवर्चसम् । जै० उ० ३ । १३ । १ ॥
हृदयम् तदेतत् त्र्यक्षरꣳ हृदयमिति ह इत्येकमक्षरमभिहरन्त्यस्मै स्वाश्चान्ये च य एवं वेद द इत्येकमक्षरं ददन्त्यस्मै स्वाश्चान्ये च य एवं वेद यमित्येकमक्षरमेति स्वर्गं लोकं य एवं वेद । श० १४ । ८ । ४ । १ ॥
,, तस्मादिदं गुहेव हृदयम् । श० ११ । २ । ६ । ५ ॥
,, मूर्द्धा हृदये (श्रितः) । तै० ३ । १० । ८ । ९ ॥
,, आत्मा वै मनो हृदयम् ! श० ३ । ८ । ३ । ८ ॥
,, कस्मिन्नु मनः प्रतिष्ठितं भवतीति हृदयऽ इति । श० १४ । ६ । ९ । २५ ॥
,, मनो हृदये (श्रितम्) । तै० ३ । १० । ८ । ६ ॥
,, रेतो हृदये (श्रितम्) । तै० ३ । १० । ८ । ७ ॥
,, श्रोत्रं हृदये (श्रितम्) । तै० ३ । १० । ८ । ६ ॥
,, वाग्घृदये (श्रिता) । तै० ३ । १० । ८ । ४ ॥
,, शरीरं हृदये (श्रितम्) । तै० ३ । १० । ८ । ७ ॥
,, हिता नाम नाड्यो द्वासप्ततिः सहस्राणि हृदयात्पुरीततमभिप्रतिष्ठन्ते ताभिः प्रत्यवसृप्य पुरीतति शेते । श० १४ । ५ । १ । २१ ॥
,, एष प्रजापतिर्यद्धृदयम् । श० १४ । ८ । ४ । १ ॥
,, हृदयं वै सम्राट् ! परमं ब्रह्म । श० १४ । ६ । १० । १८ ॥
,, पुत्रो हि हृदयम् । तै० २ । २ । ७ । ४ ॥
,, असौ वाऽ आदित्यो हृदयम् । श० ९ । १ । २ । ४० ॥

हृदयम् प्राणो वै हृदयमतो ह्ययमूर्ध्वः प्राणः संचरति। श० ३।८।३।१५॥

" हृत्सु ह्ययं क्रतुर्मनो जवः प्रविष्टः। श० ३।३।४।७॥

" परिमण्डलꣳ हृदयम्। श० ९।१।२।४०॥

" निकक्षे निकक्षे हि हृदयं, दाक्षिणे निकक्षेऽतो हि हृदयं नेदीयः। श० ६।१।२।४०॥

" श्लक्ष्णꣳ हृदयम्। श० ९।१।२।४०॥

" हृदयं वै स्तोमभागाः। श० ८।६।२।१५॥

" हृदयꣳ स्तोमभागाः। श० ८।५।४।३॥

हेक् उपहूतꣳ हेगिति तच्छरीरमुपह्वयते। श० १।८।१।२३॥

हेतिः (=अग्नेरायुधम्) यया ते सृष्टस्याग्नेः। हेतिमशमयत्प्रजापतिः ······(हेतिः=ज्वाला—अमरकोशे, नानार्थवर्गे, श्लो० ७०)। तै० १।२।१।६॥

" (=रुद्रस्य आयुधम्) रुद्रस्य हेतिं दधाति। श० १२।७।३।२०॥

हेमन्तः (ऋतुः) एतौ (सहश्च सहस्यश्च) एव हैमन्तिकौ (मासौ) स यद्धेमन्त इमाः प्रजाः सहसेव स्वं वशमुपनयते तेनो हैतौ सहश्च सहस्यश्च। श० ४।३।१।१८॥

" तस्य (पर्जन्यस्य) सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्याविति हैमन्तिकौ तावृतू। श० ८।६।१।२०॥

" हेमन्तो होता तस्माद्धेमन्वषट्कृताः पशवः सीदन्ति। श० ११।२।७।३२॥

" हेमन्तो हीमाः प्रजाः स्वं वशमुपनयते। श० १।५।४।५॥

" षड्भिरैन्द्रावैष्णवैः (पशुभिः) हेमन्ते (यजते)। श० १३।१।४।२८॥

" हेमन्तो मध्यम् (संवत्सरस्य)। तै० ३।११।१०।४॥

" तस्य (संवत्सरस्य) वसन्त एव द्वारꣳ हेमन्तो द्वारं तं वा एतꣳ संवत्सरꣳ स्वर्गं लोकं प्रपद्यते। श० १।६।१।१९॥

हेमन्तः यद् वृष्ट्वोद्गृह्णाति तद्धेमन्तस्य (रूपम्)। श० २। २। ३। ८॥

,, हेमन्तो निधनम्। प० ३। १॥

,, (प्रजापतिः) हेमन्तं निधनं (अकरोत्)। जै० उ० १। १२। ७॥

,, अन्त ऋतूनाᳬं हेमन्तः। श० १। ५। ३। १३॥

,, हेमन्तो वाऽ ऋतूनाᳬं स्वाहाकारो हेमन्तो हीमाः प्रजाः स्वं वशमुपनयते। श० १। ५। ४। ५॥

,, स्वाहाकृतिमन्तं यजति हेमन्तमेव हेमन्ते वा इदं सर्वं स्वाहाकृतम्। कौ० ३। ४॥

होता यद्वा स तत्र यथाभाजनं देवता अमुमावहामुमावहेत्यावाहयति तदेव होतुर्होतृत्वम्। ऐ० १। २॥

,, मध्यं वा एतद्यज्ञस्य यद्धोता। तै० ३। ३। ८ १०॥

,, आत्मा वै होता। ऐ० ६। ८॥ कौ० २१ : ८॥ गो० उ०५।१४॥

,, आत्मा वै यज्ञस्य होता। कौ० ९। ६॥

,, आग्नेयो होता। तां० १८। ९। ६॥

,, आग्नेयो वै होता। तै० १। ७। ६। १॥ ३। ९। ५। २॥ श० १३। २। ६। ६॥

,, (ऋ० ६। १६। १०॥ यजु० ११। ३५॥) अग्निर्वै होता। श० १। ४। १। २४॥ ६। ४। २। ६॥ गो० पू० २। २४॥

,, अग्निर्वै देवानां होता। ऐ० १। २८॥

,, तस्याग्निर्होतासीत्। गो० पू० १। १३॥

,, अग्निर्वै होताऽधिदैवं वागध्यात्मम्। श० १२। १। १। ४॥ गो० पू० ४। ४॥

,, वाग्घोता। श० १। ५। १। २१॥ गो० उ० ५। ४॥

,, वागेव होता। गो० पू० २। १०॥ गो० उ० ३। ८॥

,, वाग्वै होता (यजु० १३। ७)। कौ० १३। ९॥ १७। ७॥

,, वाग्यज्ञस्य होता। ऐ० २। ५, २८॥

,, वाग्वै यज्ञस्य होता। श० १२। ८। २। २३॥ १४। ६। १। ५॥

,, वाग्घोता षड्ढोतृणाम्। तै० ३। १२। ५। २॥

होता मनो होता । तै० २ । १ । ५ । ९ ॥
,, प्राणो वै होता । ऐ० ६ । ८, १४ ॥ गो० उ० ५ । १४ ॥
,, असौ वै होता यो ऽसौ (सूर्य्यः) तपति । गो० उ० ६ । ६ ॥
,, पुरुषो वाव होता । गो० उ० ६ । ६ ॥
,, क्षत्रं वै होता । ऐ० ६ । २१ ॥ गो० उ० ६ । ३ ॥
,, संवत्सरो वाव होता । गो० उ० ६ । ६ ॥
,, संवत्सरो वै होता । कौ० २९ । ८ ॥
,, हेमन्तो होता तस्माद्धेमन्वषट्कृताः पशवः सीदन्ति । श० ११ । २ । ७ । ३२ ॥
,, होतैव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, होता हि साहस्राः । श० ४ । ५ । ८ । १२ ॥
,, प्राची दिग्घोतुः । श० १३ । ५ । ४ । २४ ॥
,, उत्तरत आयातनो (? आयतनो) वै होता । तै० ३ । ९ । ५ । २ ॥

होता वेदिषद् (ऋ० ४ । ४० । ५) एष (सूर्यः) वै होता वेदिषद् । ऐ० ४ । २० ॥
,, (यजु० १२ । १४) अग्निर्वै होता वेदिषत् । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥

होतृचमसः आत्मा होतृचमसः । ऐ० २ । ३० ॥

होतृषदनम् (यजु० ११ । ३६) कृष्णाजिनꣳ होतृषदनम् । श० ६ । ४ । २ । ७ ॥

होत्रकाः अङ्गानि होत्रकाः । ऐ० ६ । ८ ॥ गो० उ० ५ । १४ ॥

होत्राः ऋतवो वाव होत्राः । गो० उ० ६ । ६ ॥
,, रश्मयो वाव होत्राः । गो० उ० ६ । ६ ॥
,, अङ्गानि वाव होत्राः । गो० उ० ६ । ६ ॥

होत्राशंसिनः (ऋत्विजः) अङ्गानि होत्राशंसिनः । कौ० १७ । ७ ॥ २६ । ८ ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥
,, विशो होत्राशंसिनः । ऐ० ६ । २१ ॥ गो० उ० ६ । ३ ॥
,, ऋतवो होत्राशंसिनः । कौ० २९ । ८ ॥

परिशिष्टम्

(अ)

अंशुः (ग्रहः) प्राण एवाꣳशुरुदानो ऽदाभ्यश्चक्षुरेवाꣳशुः श्रोत्रमदाभ्यः (ग्रहः) । श० ११ । ५ । ९ । २ ॥

,, मनो ह वाऽ अꣳशुः (ग्रहः) । श० ११ । ५ । ९ । २ ॥

,, प्रजापतिर्वा एष यदꣳशुः । श० ४ । ६ । १ । १ ॥

,, अꣳशुर्वै नाम ग्रहः स प्रजापतिः । श० ४ । १ । १ । २ ॥

,, प्रजापतिर्वाऽ एष यदꣳशुः सो ऽस्य (यजमानस्य) एष आत्मैव । श० ४ । ६ । १ । १ ॥

,, प्रजापतिर्ह वाऽ एष यदꣳशुः । सो ऽस्य (यजमानस्य) एष आत्मैव । श० ११ । ५ । ९ । १ ॥

अग्नाविष्णू अग्नाविष्णू इति वसोर्धारायाः (रूपम्) । तै० ३ । ११ । ९ । ९ ॥

अग्निः तेजो वाऽ अग्निः । तै० ३ । ३ । ४ । ३ ॥

,, ततो ऽस्मिन् (अग्नौ) एतद्वर्च आस । श० ४ । ५ । ४ । ३ ॥

,, अग्निर्वै प्रथमा विश्वज्योतिः (इष्टका) । श० ७ । ४ । २ । २५ ॥

,, अग्निर्वै भर्गः । श० १२ । ३ । ४ । ८ ॥ जै० उ० ४ । २८ । २ ॥

,, अग्निरेव भर्गः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, अग्निर्वै घर्मः । श० ११ । ६ । २ । २ ॥

,, अग्निर्वा ऋतम् । तै० २ । १ । ११ । १ ॥

,, अयं वाऽ अग्निर्ऋतमसावादित्यः सत्यं यदि वासावृतमयꣳ (अग्निः) सत्यमुभयम्वेतदयमग्निः । श० ६ । ४ । ४ । १० ॥

,, अग्निर्वै द्रष्टा । गो० उ० २ । १९ ॥

,, अग्निर्वा उपद्रष्टा । गो० उ० ४ । ९ ॥ तै० ३ । ७ । ५ । ४ ॥

,, अग्निर्हि स्विष्टकृत् । श० १ । ५ । ३ । २३ ॥

,, अग्निर्वै स्विष्टकृत् । कौ० १० । ५ ॥

,, यच्छर्वो ऽग्निस्तेन । कौ० ६ । ३ ॥

,, रुद्रो ऽग्निः । तां० १२ । ४ । २४ ॥

अग्निः (त्वमग्ने रुद्रः ... । ऋ० २ । १ । ६ ॥)

,, अग्निर्वै रुद्रः । श० ५ । ३ । १ । १० ॥ ६ । १ । ३ । १० ॥

,, एष रुद्रः । यदग्निः । तै० १ । १ । ५ । ८–९ ॥ १ । १ । ६ । ६ ॥ १ । १ । ८ । ४ ॥ १ । ४ । ३ । ६ ॥

,, अथ यत्रैतत्प्रथमꣳ समिद्धो भवति । धूप्यतऽ एव तर्हि हैष (अग्निः) भवति रुद्रः । श० २ । ३ । २ । ९ ॥

,, शिवः शिव (यजु० १२ । १७) इति शमयत्येवैनं (अग्निम्) एतदहिꣳसायै तथो हैष (अग्निः) इमांल्लोकाञ्छान्तो न हिनस्ति । श० ६ । ७ । ३ । १५ ॥

,, संवत्सर एवाग्निः । श० १० । ४ । ५ । २ ॥

,, संवत्सरोऽग्निः । श० ६ । ३ । १ । २५ ॥ ६ । ३ । २ । १० ॥ ६ । ६ । १ । १४ ॥ तां० १० । १२ । ७ ॥

,, प्रजापतिरेषोऽग्निः । श० ६ । ५ । ३ । ७ ॥ ६ । ८ । १ । ४ ॥

,, प्रजापतिरग्निः । श० ६ । २ । १ । २३, ३० ॥ ६ । ५ । ३ । ६ ॥ ७ । २ । २ । १७ ॥

,, अग्निर्वै देवतानां मुखं प्रजनयिता स प्रजापतिः । श० २ । ५ । १ । ८ ॥

,, अग्निः प्रजननम् । गो० पू० २ । १५ ॥

,, अग्निर्हि देवानां पात्नीवतः (ग्रहः) । कौ० २८ । ३ ॥

,, विश्वकर्मायमग्निः । श० ९ । २ । २ । २ ॥ ९ । ५ । १ । ४२ ॥

,, अग्निर्वै धाता । तै० ३ । ३ । १० । २ ॥

,, (अग्ने !) त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना । तै० ३ । ११ । २ । १ ॥

,, अथ यत्रैतत्प्रतितरामिव तिरश्चीवार्चिः संशाम्यतो भवति तर्हि हैष (अग्निः) भवति मित्रः । श० २ । ३ । २ । १२ ॥

,, तं यद् घोरसंस्पर्शं सन्तं (अग्निं) मित्रकृत्येवोपासते तदस्य (अग्नेः) मैत्रं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥

,, यो वै वरुणः सोऽग्निः । श० ५ । २ । ४ । १३ ॥

,, यो वा अग्निः स वरुणस्तदप्येतदृषिणोक्तं त्वमग्ने वरुणो जायसे यदिति । ऐ० ६ । २६ ॥

अग्निः अथ यत्रैतत्प्रदीप्ततरो भवति । तर्हि हैष (अग्निः) भवति वरुणः । श० २ । ३ । २ । १० ॥
„ यदग्निर्घोरसंस्पर्शस्तदस्य वारुणं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥
„ अथ (अग्निः) यदुच्च ह्रष्यति नि च ह्रष्यति तदस्य मैत्रावरुणं रूपम् । ऐ० ३ । ४ ॥
„ अग्निरेव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । १ ॥
„ स एषो (अग्निः) ऽत्र वसुः । श० ९ । ३ । २ । १ ॥
„ अग्निर्वै वसुवनिः । श० १ । ८ । २ । १६ ॥
„ अग्निर्वाव यमः । गो० उ० ४ । ८ ॥
„ अग्निर्वै यमः (यजु० १२ । ६३) इयं (पृथिवी) यम्याभ्याꣳ हीदꣳ सर्वं यतम् । श० ७ । २ । १ । १० ॥
„ अग्निर्वै मृत्युः । श० १४ । ६ । २ । १० ॥ कौ० १३ । ३ ॥
„ यो ऽग्निर्मृत्युस्सः । जै० उ० २ । १३ । २ ॥
„ अग्निर्वै नभसस्पतिः । गो० उ० ४ । ९ ॥
„ अग्निर्वै वनस्पतिः । कौ० १० । ६ ॥
„ अङ्गिरसां वा एको ऽग्निः । ऐ० ६ । ३४ ॥
„ अग्निर्वै भरतः स वै देवेभ्यो हव्यं भरति । कौ० ३ । २ ॥
„ एष (अग्निः) हि देवेभ्यो हव्यं भरति तस्माद्भरतो ऽग्निरित्याहुः । श० १ । ४ । २ । २ ॥ १ । ५ । १ । ८ ॥
„ एष (अग्निः) उ वा इमाः प्रजाः प्राणो भूत्वा बिभर्त्ति तस्माद्वेवाह भारतेति । श० १ । ४ । २ । २ ॥
„ आग्नेयो ब्राह्मणः । तां १५ । ४ । ८ ॥
„ आग्नेयो वै ब्राह्मणः । तै० २ । ७ । ३ । १ ॥
„ ब्रह्म ह्यग्निस्तस्मादाह ब्राह्मणेति । श० १ । ४ । २ । २ ॥
„ अयमग्निर्ब्रह्म (यजु० १७ । १४) । श० ९ । २ । १ । १५ ॥
„ अग्निरु वै ब्रह्म । श० ८ । ५ । १ । १२ ॥
„ ब्रह्म ह्यग्निः । श० १ । ५ । १ । ११ ॥
„ अथ यत्रैतदङ्गाराश्चाकाश्यन्त ऽइव । तर्हि हैष (अग्निः भवति ब्रह्म । श० २ । ३ । २ । १३ ॥
„ अग्निर्वै ब्रह्मा । ष० १ । १ ॥
„ अग्निर्वै परिक्षित् । ऐ० ६ । ३२ ॥ गो० उ० ६ । १२ ॥

अग्निः यदाह श्येनो ऽसीति सोमं वा एतदाहैष ह वा अग्निर्भूत्वा ऽस्मिल्लोके संश्यायति तस्माच्छ्येनस्तच्छ्येनस्य श्येनत्वम् । गो० पू० ५ । १२ ॥

„ सत्पतिश्चेकितानः (यजु० १५ । ५१) इत्ययमग्निः सतां पतिश्चेतयमान इत्येतत् । श० ८ । ६ । ३ । २० ॥

„ अथो ऽग्निर्वै सुक्षितिरग्निर्ह्येवास्मिँल्लोके सर्वाणि भूतानि क्षियति । श० १४ । १ । २ । २४ ॥

„ अयमग्निः स्वर्विद् (यजु० १७ । १२) । श० ९ । २ । १ । ८ ॥

„ अग्निर्वै वयस्कृच्छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ६ ॥

„ अग्निर्वै भ्रजश्छन्दः । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

„ अग्निर्वै पथिकृत् । कौ० ४ । ३ ॥

„ अग्निर्वै पथः कर्ता । श० ११ । १ । ५ । ६ ॥

„ अग्निर्वै रूरः । तां० ७ । ५ । १० ॥ १२ । ४ । २४ ॥

„ अग्निर्वै महान् । जै० उ० ३ । ४ । ७ ॥

„ एष (अग्निः) एव महान् । श० १० । ४ । १ । ४ ॥

„ अग्निर्वै महिषः (यजु० १२ । १०५, १११) । श० ७ । ३ । १ । २३, ३४ ॥

„ अग्निर्वा ऽ आयुः (यजु० १२ । ६५) । श० ६ । ७ । ३ । ७ ॥ ७ । २ । १ । १५ ॥

„ अग्निर्वै भुवो ऽग्नेर्हीदꣳ सर्वं भवति । श० ८ । १ । १ । ४ ॥

„ एतानि वै तेषामग्नीनां नामानि यद्भुवपतिर्भुवनपतिर्भूतानां पतिः । श० १ । ३ । ३ । १७ ॥

„ अग्निर्हि वै धूः । श० १ । १ । २ । ९ ॥

„ एष वै धुर्यो ऽग्निः । तै० ३ । २ । ४ । ३ ॥

„ अग्निर्वा ऽ एष धुर्यः (=युगस्य धुरि भव इति सायणः) । श० १ । १ । २ । १० ॥

„ अग्निर्वै दाता स एवास्मै यज्ञं ददाति । कौ० ४ । २ ॥

„ अग्निर्वाव पुरोहितः । ऐ० ८ । २७ ॥

„ एतद्ध वा इन्द्राग्न्योः प्रियं धाम यद्वागिति । ऐ० ६ । ७ ॥ गो० उ० ५ । १३ ॥

अग्निः सा या सा वागग्निस्सः । जै० उ० १ । २८ । ३ ॥
,, वाग्वा अग्निः । श० ६ । १ । २ । २८ ॥ जै० उ० ३ । २ । ५ ॥
,, या वाक् सो ऽग्निः । गो० उ० ४ । ११ ॥
,, अग्निर्वै वरेण्यम् । जै० उ० ४ । २८ । १ ॥
,, तस्याः (श्रियः) अग्निरन्नाद्यमादत्त । श० ११ । ४ । ३ । ३ ॥
,, अयमग्निः सहस्रयोजनम् । श० ९ । १ । १ । २९ ॥
,, अग्निर्वै रथन्तरम् । ऐ० ५ । ३० ॥
,, एष हि यज्ञस्य सुक्रतुर्यदग्निः । श० १ । ४ । १ । ३५ ॥
,, अग्निः प्रस्तावः । जै० उ० १ । ३३ । ५ ॥
,, अयं वाऽ अग्निरुख्यः (यजु० १४ । १) । श० ८ । २ । १ । ४॥
,, पर्वैतदग्नेर्यदुखा । श० ६ । २ । २ । २४ ॥
,, अग्निर्वै होता (ऋ० ६ । १६ । १० ॥ यजु० ११ । ३५) । श० १ । ४ । १ । २४ ॥ ६ । ४ । २ । ६ ॥ गो० पू० २ । २४ ॥
,, अग्निर्वै होता वेदिषत् (यजु० १२ । १४) । श० ६ । ७।३।११॥
,, अग्निर्वै होता ऽधिदैवं वागध्यात्मम् । श० १२ । १ । १ । ४ ॥ गो० पू० ४ । ४ ॥
,, ते ऽङ्गिरस आदित्येभ्यः प्रजिघ्युः श्वः सुत्या नो याजयत न इति तेषां हाग्निर्दूत आस त आदित्या ऊचुरथास्माकमद्य सुत्या तेषां नस्त्वमेव (अग्ने!) होतासि, बृहस्पतिर्ब्रह्मा ऽयास्य उद्गाता, घोर आङ्गिरसो ऽध्वर्य्युरिति । कौ० ३० । ६ ॥
,, अग्निः पञ्चहोतॄणाꣳ होता । तै० २ । ३ । ५ । ६ ॥
,, अग्निः पञ्चहोता । तै० २ । ३ । १ । १ ॥
,, आग्नेयो होता । तां० १८ । ६ । ९ ॥
,, आग्नेयो वै होता । तै० १ । ७ । ६ । १ ॥ ३ । ६ । ५ । २ ॥ श० १३ । २ । ६ । ९॥
,, एष हि हव्यवाहनो यदग्निः । श० १ । ४ । १ । ३९ ॥
,, हव्यवाहनो वै (अग्निः) देवानाम् । श० २ । ६ । १ । ३० ॥
,, एष हि हव्यवाड्यदग्निः । श० १ । ४ । १ । ३९ ॥
,, अग्निर्वै देवानां व्रतभृत् । गो० उ० १ । १५ ॥
,, अग्निर्वै देवानां व्रतपतिः । गो० उ० १ । १४ ॥
,, अग्निरु देवानां प्राणः । श० १० । १ । ४ । १२ ॥

अग्निः तदग्निर्वै प्राणः । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥

" प्राणा अग्निः । श० ६ । ३ । १ । २१ ॥ ६ । ८ । २ । १० ॥

" अग्निर्वै देवानां मनोता । ऐ० २ । १० ॥ कौ० १० । ६ ॥

" देवपात्रं वाऽ एष यदग्निः । श० १ । ४ । २ । १३ ॥

" देवरथो वा अग्नयः । कौ० ५ । १० ॥

" अग्निः सर्वा देवताः । श० १ । ६ । ३ । २० ॥

" एष वै यज्ञो यदग्निः । श० २ । १ । ४ । १९ ॥

" अग्निरु वै यज्ञः । श० ५ । २ । ३ । ६ ॥

" अग्निर्वै यज्ञः । श० ३ । ४ । ३ । १९ ॥ तां० ११ । ५ । २ ॥

" यजमानो ऽग्निः । श० ६ । ३ । ३ । २१ ॥ ६ । ५ । १ : ८ ॥ ७ । ४ । १ । २१ ॥ ९ । २ । ३ । ३३ ॥

" स उऽएव यजमानस्तस्मादाग्नेयो भवति । श० ३ । ९ । १ । ६ ॥

" अग्निर्यजुषाम् (समुद्रः) । श० ६ । ५ । २ । १२ ॥

" वृषो ऽग्निः समिध्यते (ऋ० ३ । २७ । १४) । श० १ । ४ । १ । २९ ॥

" समग्निरिध्यते वृषा (ऋ० ३ । २७ । १३) । श० १ । ४ । १ । २९ ॥

" पृथिव्यग्नेः पत्नी । गो० उ० २ । ९ ॥

" अग्निर्ह वाऽ अपो ऽभिदध्यौ मिथुन्याभिः स्यामिति ताः सम्बभूव तासु रेतः प्रासिञ्चत्तद्धिरण्यमभवत्तस्मादेतदग्निसंकाशमग्नेर्हि रेतस्तस्मादप्सु विन्दन्त्यप्सु हि (रेतः) प्रासिञ्चत् । श० २ । १ । १ । ५ ॥

" अद्भ्यो वाऽ एष (अग्निः) प्रथममाजगाम । श० ६ । ७ । ४ । ४ ॥

" तस्य (अग्नेः) रेतः परापतत्तद्धिरण्यमभवत् । तै० १ । १ । ३ । ८ ॥

" आग्नेयं वै हिरण्यम् । तै० २ । २ । ५ । २ ॥

" अग्ने रेतो हिरण्यम् । श० २ । २ । ३ । २८ ॥

" अग्नेर्वाऽ एतद्रेतो यद्धिरण्यम् (महाभारते, अनुशासनपर्वणि ८६ । ३३ ॥) । श० १४ । १ । ३ । २९ ॥

" समानजन्म वै पयश्च हिरण्यञ्चोभयꣳ ह्यग्निरेतसम् । श० ३ । २ । ४ । ८ ॥

" (अग्नेः) यदस्थि (आसीत्) तत् पीतुदारु (अभवत्) । तां० २४ । १३ । ५ ॥

अग्निः गन्धो हैवास्य (अग्नेः) सुगन्धितेजनम् । श० ३ । ५ । २ । १७ ॥
,, (अग्नेः) यत्स्राव तत्सुगन्धितेजनम् । तां० २४ । १३ । ५ ॥
,, सैषा योनिरग्नेर्यद्वेणुः । श० ६ । ३ । १ । ३२ ॥
,, अग्निर्देवेभ्य उदक्रामत्स वेणुं प्राविशत्तस्मात्स सुषिरः । श० ६ । ३ । १ । ३१ ॥
,, सैषा योनिरग्नेर्यन्मुञ्जः । श० ६ । ३ । १ । २६ ॥
,, योनिरेवाग्नेर्यन्मुञ्जः । श० ६ । ६ । १ । २३ ॥
,, अग्निर्देवेभ्य उदक्रामत्स मुञ्जं प्राविशत्तस्मात्स सुषिरः । श० ६ । ३ । १ । २६ ॥
,, सूर्यो ऽग्नेर्योनिरायतनम् । तै० ३ । ९ । २१ । २, ३ ॥
,, अग्निः षट्पादस्तस्य पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौराप ओषधिवनस्पतय इमानि भूतानि पादाः : गो० पू० २ । ६ ॥
,, षड्भिराग्नेयैः (पशुभिः) वसन्ते (यजते) । श० १३ । ५ । ४ । २८ ॥
,, तस्य (अग्नेः) रथगृत्सश्च रथौजाश्च (यजु० १५ । १५) सेनानीग्रामण्याविति वासन्तिकौ तावृतू । श० ८ । ६ । १ । १६ ॥
,, (अग्नेः) पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला (यजु० १५ । १५ ॥) चाप्सरसाविति दिक् चोपदिशा चेति ह स्माह माहित्थिः सेना च तु ते समितिश्च । श० ८ । ६ । १ । १६ ॥
,, सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः (यजु० १७ । ७९ ॥) इति (मुण्डकोपनिषदि १ । २ । ४:—काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ॥ स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥) । तै० ३ । ११ । ९ । ९ ॥
,, यया ते सृष्टस्याग्नेः । हेतिमशमयत्प्रजापतिः ... ... (हेतिः= अग्नेरायुधम्) । तै० १ । २ । १ । ६ ॥
,, वायुर्वा अग्नेः स्वो महिमा । कौ० ३ । ३ ॥
,, (उपसद्देवतारूपायाइषोः)अग्निरनीकम्(=मुखमिति सायणः) । ऐ० १ । २५ ॥
,, अग्निर्वै गायत्री । श० ३ । ९ । ४ । १० ॥ ६ । ६ । २ । ७ ॥
,, गायत्री छन्दो ऽग्निर्देवता शिरः । श० १० । ३ । २ । १ ॥

अग्निः गायत्रो वा अग्निः : कौ० १ । १ ॥ ३ । २ ॥ ९ । २ ॥ १६ । ४ ॥ तै० १ । १ । ५ । ३ ॥

,, विराडग्निः । श० ६ । २ । २ । ३४ ॥ ६ । ३ । १ । २१ ॥ ६ । ८ । २ । १२ ॥ ९ । १ । १ । ३१ ॥

,, विराट् सृष्टा प्रजापतेः । ऊर्ध्वारोहद्रोहिणी । योनिरग्नेः प्रतिष्ठितिः । तै० १ । २ । २ । २७ ॥

,, प्रजापती रोहिण्यामग्निमसृजत तं देवा रोहिण्यामादधत ततो वै ते सर्वात्रोहानरोहन् । तै० १ । १ । २ । २ ॥

,, तमु हैव पशुपु कामꣳ रोहति य एवं विद्वान् रोहिण्याम् (अग्नी) आधत्ते । श० २ । १ । २ । ७ ॥

,, अग्निश्च ह वा आदित्यश्च रौहिणावेताभ्याꣳ हि देवताभ्यां यजमानाः स्वर्गं लोकꣳ रोहन्ति । श० १४ । २ । १ । २ ॥

,, अग्निरेष यत्पशवः । श० ६ । ३ । २ । ६ ॥

,, आग्नेयो वाव सर्वः पशुः । ऐ० २ । ६ ॥

,, आग्नेयाः पशवः तै० १ : १ । ४ । ३ ॥

,, आग्नेयो वा अजः । श० ६ । ४ । ४ । १५ ॥

,, स एषो ऽग्निरेव यत् क्रमुकः (वृक्षविशेषः) । श० ६ । ६ । २ । ११ ॥

,, आग्नेयी वै रात्रिः । तै० १ । १ । ४ । २ ॥ १ । ५ । ३ । ४ ॥ २ । १ । २ । ७ ॥

,, आग्नेयं वै प्रातस्सवनम् । जै० उ० १ । ३७ । २ ॥

,, तान् (पशून्) अग्निस्त्रिवृता स्तोमेन नाप्नोत् । तै० २ । ७ । १४ । १ ॥

,, आग्नेयः पुरोडाशो भवति । श० २ । ४ । ४ । १२ ॥

,, स (अग्निः) प्राचीं दिशं प्राजानात् । कौ० ७ । ६ ॥

,, प्राचीमेव दिशम् । अग्निना प्राजानन् । श० ३ । २ । ३ । १६ ॥

,, प्राची दिक् । अग्निर्देवता । तै० ३ । ११ । ५ । १ ॥

,, प्राची हि दिगग्नेः । श० ६ । ३ । ३ । २ ॥

,, अग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा । श० ५ । २ । ४ । ५ ॥

,, अग्निरेव पुरः । श० १० । ३ । ५ । ३ ॥

अग्निः अग्निर्वै पुरस्तद्यत्तमाह पुरः (यजु० १३ । ५४ ॥) इति प्राञ्चꣳ ह्यग्निमुद्धरन्ति प्राञ्चमुपचरन्ति । श० ८ । १ । १ । ४ ॥

,, अग्नेर्ऋग्वेदः (अजायत) । श० ११ । ५ । ८ । ३ ॥

,, स (प्रजापतिः) भूरित्येवर्ग्वेदस्य रसमादत्त । सेयं पृथिव्य-भवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् सो ऽग्निरभवद्रसस्य रसः । जै० उ० १ । १ । ३ ॥

अग्निचित् शते शते संवत्सरेष्वग्निचित्काममश्नाति कामं न । श० १० । १ । ५ । ४ ॥

अग्निर्वैश्वानरः संवत्सरो वा ऽ अग्निर्वैश्वानरः । तै० १ । ७ । २ । ५ ॥

,, अयमग्निर्वैश्वानरो यो ऽयमन्तः पुरुषे येनेदमन्नं पच्यते यदिदमद्यते, तस्यैष घोषो भवति यमेतत्कर्णावपिधाय शृणोति स यदोत्क्रमिष्यन्भवति नैतं घोषꣳ शृणोति । श० १४ । ८ । १० । १ ॥

,, एष वा अग्निर्वैश्वानरः । यद्ब्राह्मणः । तै० ३ । ७ । ३ । २ ॥

,, एष ह वा अग्निर्वैश्वानरो यत्प्रदाव्यः । गो० उ० ४ । ८ ॥

,, वैश्वानर इति वा अग्नेः प्रियं धाम । तां० १४ । २ । ३ ॥

,, वैश्वानरो वै सर्वे ऽग्नयः । श० ६ । २ । १ । ३५ ॥ ६ । ६ । १ । ५ ॥

,, अग्नेरेतद्वैश्वानरस्य रेतो यत्सिकताः । श० ७ । १ । १ । १० ॥

,, अग्नेरेतद्वैश्वानरस्य भस्म यत्सिकताः । श० ७ । १ । १ । ९ ॥

,, अग्नेर्वा एतद्वैश्वानरस्य भस्म यत्सिकताः । श० ३ । ५ । १ । ३६ ॥

,, अग्नेर्वा एतत् वैश्वानरस्य (श्रौष्टं) साम । तां० १३ । ११ । २३ ॥

अग्निष्टोमः द्वादशस्तोत्राण्यग्निष्टोमः । तां० ९ । १ । २४ ॥

,, विराड्वा अग्निष्टोमः । कौ० १५ । ५ ॥

अग्निष्ठा यजमानो वा ऽ अग्निष्ठा । श० ३ । ७ । १ । १६ ॥

अग्निहोत्रम् अग्निहोत्रं वै दशहोतुर्निदानम् । तै० २ । २ । ११ । ६ ॥

अग्नीषोमौ अग्नीषोमीयꣳ हि पौर्णमासꣳ हविर्भवति । श० १ । ८ । ३ । २ ॥

अङ्गानि अङ्गानि होत्रकाः । ऐ० ६ । ८ ॥ गो० उ० ५ । १४ ॥

,, अङ्गानि वाव होत्राः । गो० उ० ६ । ६ ॥

,, अङ्गानि होत्राशंसिनः । कौ० १७ । ७ ॥ २६ । ८ ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥

,, अङ्गानि वै विश्वानि धामानि (यजु० ४ । ३४) । श० ३ । ३ । ४ । १४ ॥

,, वैश्वदेवानि ह्यङ्गानि । ऐ० ३ । २ ॥

अङ्गिरसः द्वय्यो ह वा इदमग्रे प्रजा आसुः । आदित्याश्चैवाङ्गिरसश्च । श० ३ । ५ । १ । १३ ॥

,, आदित्याश्चाङ्गिरसश्चैतत् सत्रꣳ समदधतादित्यानामेकत्रिꣳशतिरङ्गिरसां द्वादशाहः । तां० २४ । २ । २ ॥

,, ते ह्यादित्याः पूर्वे स्वर्गं लोकं जग्मुः पश्चेवाङ्गिरसः षष्ट्यां वा वर्षेषु । ऐ० ४ । १७ ॥

,, (आदित्याः) स्वर्गं लोकमायन्नहीयन्ताङ्गिरसः । तां० १६ । १२ । १ ॥

,, अन्वञ्च इवाङ्गिरसः सर्वैः स्तोमैः सर्वैः पृष्ठैर्गुरुभिः सामभिः स्वर्गं लोकमस्पृशन् । श० १२ । २ । २ । ११ ॥

,, आङ्गिरसः स्वर्गं लोकं यतो रक्षाꣳस्यन्वसचन्त । तां० ८ । ९ । ५ ॥

,, त एतेन सद्यः क्रियाङ्गिरस आदित्यानयाजयन् । श० ३ । ५ । १ । १७ ॥

,, तान् ह्यादित्यानङ्गिरसो याजयाञ्चक्रुः । गो० उ० ६ । १४ ॥

,, कर्णश्रवा एतदाङ्गिरसः पशुकामः (कार्णश्रवसं) सामापश्यत्तेन सहस्रं पशूनसृजत । (अष्टौ चाङ्गिरसः पुत्रा वारुणास्ते ऽप्युदाहृताः । बृहस्पतिरुतथ्यश्च पयस्यः शान्तिरेव च ॥ घोरो विरूपः संवर्तः सुधन्वा चाष्टमः स्मृतः ॥ इति महाभारते, उद्योगपर्व० ८५ । १३०–१३१ ॥) । तां० १३ । ११ । १४ ॥

,, आङ्गिरसां वा एको ऽग्निः । ऐ० ६ । ३४ ॥

अङ्गिरसः ते अङ्गिरस आदित्येभ्यः प्रजिघ्युः श्वः सुत्या नो याजयत न इति तेषां हाग्निर्दूत आस त आदित्या ऊचुरथास्माकमद्य सुत्या तेषां नस्त्वमेव (अग्ने!) होतासि, बृहस्पतिर्ब्रह्माऽयास्य उद्गाता, घोर अङ्गिरसोऽध्वर्युरिति। कौ० ३०। ६॥

" तेषां (अङ्गिरसां) कल्याण आङ्गिरसोऽध्यायमुदव्रजन् स ऊर्णायुङ्गन्धर्वमप्सरसाम्मध्ये प्रेङ्खयमाणमुपैत्। तां० १२। ११। १०॥

" अथैनं (इन्द्रं) ऊर्ध्वायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः... ......अभ्यषिञ्चन्.........पारमेष्ठ्याय माहाराज्यायाऽऽधिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय। ऐ० ८। १४॥

" सोमो वैष्णवो राजेत्याह तस्याप्सरसो विशस्ता इमा आसत इति युवतयः शोभना उपसमेता भवन्ति ता उपदिशत्यङ्गिरसो वेदः सोयमित्याङ्गिरसामेकं पर्व व्याचक्षाण इवानुद्रवेत् (घोरं निगदेत्—शांखायनश्रौतसूत्रे १६। २। १२)। श० १३। ४। ३। ८॥

" विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिर आयुना नाम्नेहि (यजु० ५। ९) इति। श० ३। ५। १। ३२॥

अज एकपाद् अजस्यैकपदः पूर्वे प्रोष्ठपदाः। तै० १। ५। १। ८॥ ३। १। २। ८॥

" एकपदा ह भूत्वाजा उच्चक्रमुः। श० ८। २। ४। १॥

अजः गां चाजं च दक्षिणत एतस्यां तद्दिश्येतौ पशू दधाति तस्मादेतस्यां दिश्येतौ पशू भूयिष्ठौ। श० ७। ५। २। १६॥

" ताभ्यामेतद्यथा ज्ञातिभ्यां वा सखिभ्यां वा सहागताभ्याꣳ समानमोदनं पचेदजं वा। श० १। ६। ४। ३॥

" ते (अजाः) सुश्रपतरा भवन्ति। श० ५। ५। ४। १॥

अजगरः अजगरं स्वप्नः (गच्छति)। गो० पू० २। २॥

अजा सा (अजा) यत्त्रिः संवत्सरस्य विजायते तेन प्रजापतेर्वर्णः। श० ३। ३। ३। ८॥

" उपांशुपात्रमेवान्वजाः प्रजायन्ते। श० ४। ५। ५। २॥

अजावयः तस्मादु सह सतोऽजाविकस्योभयस्यैवाजाः पूर्वा यन्त्यनूच्यो ऽवयः। श० ४। ५। ५। ४॥

अजावयः अजावी आलभते भूम्ने । तै० ३ । ९ । ८ । ३ ॥

,, अजाविकमेवोष्णिक् । कौ० ११ । २ ॥

अतिथिः तद्यथैवादो मनुष्यराज आगते ऽन्यास्मिन्वा ऽर्हत्युक्षाणं वा वेहतं वा क्षदन्ते । ऐ० १ । १५ ॥

अतिरात्रः स कृत्स्नो विश्वजिद्यो ऽतिरात्रः । कौ० २५ । १४ ॥

अत्ता आदित्यो वाऽ अत्ता । तस्य चन्द्रमा एवाहितयः । श० १० । ६ । २ । ३ ॥

अथर्ववेदः वरुण आदित्यो राजेत्याह तस्य गन्धर्वा विशस्तऽ इमऽ आसतऽ इति युवानः शोभना उपसमेता भवन्ति तानुपदिशत्यथर्वाणो वेदः सो ऽयमित्यथर्वणामेकं पर्व व्याचक्षाण इवानुद्रवेत् (भेषजं निगदेत्-शाङ्खायनश्रौतसूत्रे १६ । २ । ९) । श० १३ । ४ । ३ । ७ ॥

,, ब्रह्मवेद (=अथर्ववेदः) एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

अथर्वा अथर्वा वै प्रजापतिः । गो० पू० १ । ४ ॥

अदाभ्यः (ग्रहः) वागेवादाभ्यः । श० ११ । ५ । ९ । १ ॥

,, प्राण एवाꣳशुरुदानो ऽदाभ्यश्चक्षुरेवाꣳशुः श्रोत्रमदाभ्यः (ग्रहः) । श० ११ । ५ । ६ । २ ॥

अदितिः इयं (पृथिवी) वाऽ अदितिर्मही (यजु० ११ । ५६) । श० ६ । ५ । १ । १० ॥

,, इयं (पृथिवी) वै देव्यदितिर्विश्वरूपी । तै० १ । ७ । ६ । ७ ॥

,, अदित्यै पुनर्वसू (नक्षत्रविशेषः) । तै० १ । ५ । १ । १ ॥

,, एवा न देव्यदितिरनर्वा । विश्वस्य भर्त्री जगतः प्रतिष्ठा । पुनर्वसू हविषा वर्धयन्ती । प्रियं देवानामप्येतु पाथः । तै० ३ । १ । १ । ४ ॥

,, अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत्तत उच्छिष्टमाश्नात् सा गर्भमधत्त तत आदित्या अजायन्त । गो० पू० २ । १५ ॥

,, अदितिः पुत्रकामा साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनमपचत् । तस्या उच्छेषणमददुः । तत्प्राश्नात् सा रेतो ऽधत्त । तस्यै धाता चार्यमा चाजायेताम् । .... मित्रश्च वरुणश्चाजायेताम् । ....अंशश्च भगश्चाजायेताम् । ....इन्द्रश्च विवस्वांश्चाजायेताम् । तै० १ । १ । ९ । १-३ ॥

अदितिः अथ यत् प्रायणीयेन यजन्ते। अदितिमेव देवतां यजन्ते। श० १२।१।३।२॥

,, तस्मादादित्यश्चरुः प्रायणीयो भवत्यादित्य उदयनीयः। ऐ० १।७॥

,, ऊर्ध्वामेव दिशं अदित्या प्राजानन्नियं (पृथिवी) वाऽ अदितिस्तस्मादस्यामूर्ध्वा ओषधयो जायन्तऽ ऊर्ध्वा वनस्पतयः। श० ३।२।३।१६॥

,, सा (अदितिः) ऊर्ध्वां दिशं प्राजानात्। कौ० ७।६॥

अध्रिगुः अध्रिगुश्चापापश्च। उभौ देवानाᳪं शमितारौ। तै० ३।६।६।४॥

अध्वर्युः अश्विनावध्वर्यू। ऐ० १।१८॥ श० १।१।२।१७॥ ३।९।४।३॥ तै० ३।२।२।१॥ गो० उ० २।६॥

,, प्राणापानावेवाध्वर्यू। गो० पू० २।१०॥

,, वायुर्वा अध्वर्युः। गो० पू० २।२४॥

,, वायुरध्वर्युः। गो० पू० १।१३॥

,, अध्वर्युरेव महः। गो० पू० ५।१५॥

,, तमेतमग्निरित्यध्वर्यव उपासते। यजुरिति। श० १०।५।२।२०॥

,, प्रतीच्यध्वर्योः (दिक्)। श० १३।५।४।२४॥

,, पर्णमयेनाध्वर्युरभिषिञ्चति। तै० १।७।८।७॥

अध्वा योजनशो हि मिमाना अध्वानं धावन्ति। श० ५।१।५।१७॥

अनड्वान् (=सूर्यः) श्वेत इव ह्येष (सूर्यः) उद्यंश्चास्तं च यन्भवति तस्माच्छ्वेतो ऽनड्वान्दक्षिणा। श० ५।३।१।७॥

अनिरुक्तम् अनिरुक्तान्याज्यानि। श० १।६।१।२०॥

,, अनिरुक्तो वै प्रजापतिः। श० १।६।१।२०॥

,, अनिरुक्तो हि वायुः। श० ८।७।३।१२॥

अनुमतिः या द्यौः सा ऽनुमतिः सो एव गायत्री। ऐ० ३।४८॥

अनुष्टुप् (छन्दः) आनुष्टुभो वै षोडशी। कौ० १७।२, ३॥

,, आनुष्टुभो वा एष वज्रो यत्षोडशी। कौ० १७।१॥

,, विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् (यजु० ११।५८)। श० ६।५।२।६॥

अनुष्टुप् विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् (यजु० ११ । ६०) । श० ६ । ५ । ३ । १० ॥

„ विश्वे त्वा देवा उत्तरतो ऽभिषिञ्चन्त्वानुष्टुभेन छन्दसा । तै० २ । ७ । १५ । ५ ॥

„ उदीचीमारोह । अनुष्टुप्त्वावतु । श० ५ । ४ । १ । ६ ॥

„ वास्त्वनुष्टुप् । श० १ । ७ । ३ । १८ ॥

„ या कुहूः सानुष्टुप् । ऐ० ३ । ४७, ४८ ॥

„ एषा वै प्रत्यक्षमनुष्टुब्यद्यज्ञायज्ञीयम् (साम) । तां० १५।६।१५॥

„ अनुष्टुब् वै परमा परावत् । ऐ० ३ । १५ ॥

„ अनुष्टुबेव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

अनूबन्ध्या मैत्रावरुणी वा अनूबन्ध्या । कौ० ४ । ४ ॥

अनूराधाः (नक्षत्रम्) अनूराधाः प्रथमम् । अपभरणीरुत्तमं तानि यमनक्षत्राणि । तै० १ । ५ । २ । ७ ॥

अनृतम् अथ यो ऽनृतं वदति यथाग्निᳬ समिद्धं तमुदकेनाभिषिञ्चेदेवᳬ हैनᳬ स जासयति तस्य कनीयः कनीय एव तेजो भवति श्वः श्वः पापीयान् भवति तस्मादु सत्यमेव वदेत् । श० २ । २ । २ । १९ ॥

„ अनृतᳬ हि कृत्वा मेद्यति । श० २ । ४ । २ । ६ ॥

„ अनृतᳬ स्त्री शूद्रः श्वा कृष्णः शकुनिस्तानि न प्रेक्षेत । श० १४ । १ । १ । ३१ ॥

अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षं गौः । ऐ० ४ । १५ ॥

„ घृतमन्तरिक्षस्य रूपम् । श० ७ । ५ । १ । ३ ॥

„ तद् (ब्रह्म) इदमन्तरिक्षम् । जै० उ० २ । ९ । ६ ॥

„ अन्तरिक्षं वै प्र, अन्तरिक्षं हीमानि सर्वाणि भूतान्यनुप्रयन्ति । ऐ० २ । ४१ ॥

„ अन्तरिक्षलोको वै प्रमा (यजु० १४ । १८) अन्तरिक्षलोको ह्यस्माल्लोकात्प्रमित इव । श० ८ । ३ । ३ । ५ ॥

„ 'अन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृᳬहान्तरिक्षं मा हिᳬसीः' (यजु० १४ । १२) इत्यात्मानं यच्छात्मानं दृᳬहात्मानं मा हिᳬसीरित्येतत् (अन्तरिक्षम्=आत्मा) । श० ८ । ३ । १ । ९॥

„ इयं (पृथिवी) अन्तरिक्षम् (पृथिवी=अन्तरिक्षम्–वैदिकनिघण्टौ १ । ३) । ऐ० ३ । ३१ ॥

अन्तरिक्षम् अन्तारिक्षमेव विश्वं वायुर्नरः । श० ९ । ३ । १ । ३ ॥

,, अन्तरिक्षं विश्वव्यचाः । तै० ३ । २ । ३ । ७ ॥

,, 'अन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीम्' (यजु० १४ । १२) इत्यन्तारिक्षस्य ह्येतत्पृष्ठं व्यचस्वत्प्रथस्वत् । श० ८ । ३ । १ । ९ ॥

,, अन्तरिक्षं सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥

,, अन्तरिक्षं वै नभाᳪसि । तस्य रुद्रा अधिपतयः । तै० ३ । ८ । १८ । १ ॥

,, अन्तरिक्षं पुरोधाता । ऐ० ८ । २७ ॥

,, अन्तरिक्षं नाराशᳪसः । श० १ । ८ । ३ । १२ ॥

,, अन्तरिक्षमाग्नीध्रम् । तै० २ । १ । ५ । १ ॥

,, अन्तरिक्षं वाऽ आग्नीध्रम् । श० ९ । २ । ३ । १५ ॥

,, अन्तरिक्षं वाऽ उपयमन्यन्तरिक्षेण हीदᳪ सर्वमुपयतम् । श० १४ । २ । १ । १७ ॥

,, अन्तरिक्षमुपभृत् । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥ ३ । ३ । ६ । ११ ॥

,, अन्तरिक्षं वाऽ उलूखलम् । श० ७ । ५ । १ । २६ ॥

,, अन्तरिक्षᳪ ह्येष उद्भिः । श० ६ । ५ । २ । ४ ॥

,, अथ यया विद्धः शयित्वा जीवति वा म्रियते वा सा द्वितीया (इषुः) तदिदमन्तरिक्षᳪ सैषा रुजा नाम (इषुः)। श० ५ । ३ । ५ । २९ ॥

,, अन्तरिक्षस्य (रूपं) रजताः (सूच्यः) । तै० ३ । ९ । ६ । ५ ॥

,, (असुराः) रजतां (पुरीं) अन्तरिक्षे (चक्रिरे) । श० ३ । ४ । ४ । ३ ॥

,, अन्तरिक्षमेवोपाᳪशुसवनः । श० ४ । १ । २ । २७ ॥

,, अयमन्तरिक्षलोको निरुक्तः सन्ननिरुक्तः । श० ४ । ६ । ७ । १७ ॥

,, मनो ऽन्तरिक्षलोकः । श० १४ । ४ । ३ । ११ ॥

,, इयं (पृथिवी) वै वागदो (अन्तरिक्षम्) मनः । ऐ० ५ । ३३ ॥

,, वागित्यन्तरिक्षम् । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥

,, अन्तरिक्षं देवी । जै० उ० ३ । ४ । ८ ॥

अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षं वै वरिवश्छन्दः (यजु० १५। ४)। श० ८।५।२।३॥

" अन्तरिक्षं वै विवधच्छन्दः (यजु० १५।५)। श० ८।५।२।५॥

" अन्तरिक्षलोको महः। श० १२।३।४।७॥

" अन्तरिक्ष एव महः। गो० पू० ५। १५॥

" महद्वा अन्तरिक्षम्। ऐ० ५। १८, १९॥

" अन्तरिक्षं महाव्रतम्। श० १०।१।२।२॥

" अन्तरिक्षं वै तृतीया चितिः। श० ८। ४।१।१॥

" अन्तरिक्षं वै मध्यमा चितिः। श० ८।७।२।१८॥

" अयं मध्यमो (लोकः=अन्तरिक्षं) बृहती। तां० ७।३।९॥

" अन्तरिक्षलोको माध्यन्दिनं सवनम्। गो० उ० ४।४॥

" अन्तरिक्षलोको वै माध्यन्दिनꣳ सवनम्। श० १२।८।२।९॥

" अन्तरिक्षम्प्रगाथः। जै० उ० ३।४।२॥

" अन्तरिक्षं वै वामदेव्यम् (साम)। तै० १।१।८।२॥ २।१।५।७॥ तां० १५।१२।५॥

" उपह्वतं वामदेव्यꣳ (साम) सहान्तरिक्षेण। श० १।८।१।१९॥

" ये वधकास्ते ऽन्तरिक्षस्य रूपम्। श० ५।४।५।१४॥

" अन्तरिक्षदेवत्यो हि सोमः। गो० उ० २।४॥

" वसुरन्तरिक्षसत् (यजु० १२। १४)। श० ५।४।३।२२॥

" उपस्यमन्वाह तदन्तरिक्षलोकमाप्नोति। कौ० ११।२।१८।२॥

" (देवाः) अन्तरिक्षं दिङ्निधनेन (अभ्यजयन्)। तां०। १०।१२।३॥

" अथ यदन्तरिक्षे तत्सर्वमुपद्रवेणाप्नोति। जै० उ० १।३१।८॥

" अन्तरिक्षं सारस्वतेन (अवरुन्धे)। श० १२।८।२।३२॥

" अन्तरिक्षलोकं याज्यया (जयति)। श० १४।६।१।६॥

" (देवाः) अन्तरिक्षमुक्थेन (अभ्यजयन्)। तां० ९।२।९॥

" (देवाः) उक्थैरन्तरिक्षं (लोकमभ्यजयन्)। तां० २०।१।३॥

अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षमुक्थ्येन (अभिजयति) । तै० ३ । १२ । ५ । ७ ॥

" अन्तरिक्षं यजुषा (जयति) । श० ४ । ६ । ७ । २ ॥

" अन्तरिक्षलोको यजुर्वेदः । ष० १ । ५ ॥

" अन्तरिक्षं वै यजुषामायतनम् । गो० पू० २ । २४ ॥

" यजुषां वायुर्देवतं तदेव ज्योतिस्त्रैष्टुभं छन्दो ऽन्तरिक्षं स्थानम् । गो० पू० १ । २९ ॥

" अन्तरिक्षं त्रिष्टुप् । जै० उ० १ । ५५ । ३ ॥

" अन्तरिक्षमु वै त्रिष्टुप् । श० १ । ८ । २ । १२ ॥

" त्रैष्टुभमन्तरिक्षम् । श० ८ । ३ । ४ । ११ ॥

" त्रैष्टुभो ऽन्तरिक्षलोकः । कौ० ८ । ९ ॥

" अन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रꣳस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा । श० १ । ९ । ३ । १० ॥

" (प्रजापतिः) भुव इत्येव यजुर्वेदस्य रसमादत्त । तदिदमन्तरिक्षमभवत् । तस्य यो रसः प्राणेदत् स वायुरभवद्रसस्य रसः । जै० उ० १ । १ । ४ ॥

" अयमेवाकाशो जूः । यदिदमन्तरिक्षमेतꣳ ह्याकाशमनु जवते तदेतद्यजुर्वायुश्चान्तरिक्षं च । श० १० । ३ । ५ । २ ॥

" भुवरिति यजुर्भ्यो ऽक्षरत् । सो ऽन्तरिक्षलोको ऽभवत् । ष० १ । ५ ॥

" भुव इत्यन्तरिक्षलोकः । श० ८ । ७ । ४ । ५ ॥

" स भुव इति व्याहरत् । सो ऽन्तरिक्षमसृजत । चातुर्मास्यानि सामानि । तै० २ । २ । ४ । २–३ ॥

" वायुरस्यन्तरिक्षे श्रितः । दिवः प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । ९ ॥

" द्यौरन्तरिक्षे प्रतिष्ठिता । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥

" स ह प्रजापतिरीक्षांचक्रे । कथं न्विमे (त्रयो) लोका ध्रुवाः प्रतिष्ठिताः स्युरिति स एभिश्चैव पर्वतैर्नदीभिश्चेमाम् (पृथिवीम्) अदृꣳहद्वयोभिश्च मरीचिभिश्चान्तरिक्षं जीमूतैश्च नक्षत्रैश्च दिवम् । श० ११ । ८ । १ । २ ॥

" वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षाः । तै० ३ । २ । १ । ३ ॥

" युक्तो वातोन्तरिक्षेण ते सह । तां० १ । २ । १ ॥

अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षं वै मातरिश्वनो घर्मः । तै० ३ । २ । ३ । २ ॥
,, अन्तरिक्षलोको वै मारुतो मरुतां गणः । श० ९ । ४ । २ । ६ ॥
,, अन्तरिक्षदेवत्याः खलु वै पशवः । तै० ३ । २ । १ । ३ ॥
अन्नम् अन्नं वै प्रजापतिः । श० ५ । १ । ३ । ७ ॥
,, अन्नं वाऽ अयं प्रजापतिः । श० ७ । १ । २ । ४ ॥
,, यत्तदन्नमेष स विष्णुर्देवता । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥
,, अन्नं वै व्यन्ने (वि, अन्ने) हीमानि सर्वाणि भूतानि विष्टानि ! श० १४ । ८ । १३ । ३ ॥
,, अन्नं वै पूषा । कौ० १२ । ८ ॥ तै० १ । ७ । ३ । ६ ॥ ३ । ८ । २३ । २ ॥
,, अन्नं वाजः । श० ५ । १ । १ । १६ ॥ ८ । १ । १ । ९ ॥
,, अन्नं वै वाजः । तै० १ । ३ । ६ । २, ६ ॥ १ । ३ । ८ । ५ ॥ श० ५ । १ । ४ । ३ ॥ ६ । ३ । २ । ४ ॥
,, अन्नं वै वाजाः (ऋ० ३ । २७ । १) । श० १ । ४ । १ । ९ ॥
,, अन्नं वै वाजपेयः । तै० १ । ३ । २ । ४ ॥
,, अन्नं नमः (यजु० ११ । ९) । श० ६ । ३ । १ । १७ ॥
,, अन्नꣳ हि स्वाहाकारः । श० ६ । ६ । ३ । १७ ॥
,, अन्नं वै स्वाहाकारः । श० ९ । १ । १ । १३ ॥
,, अन्नꣳ श्रुष्टिः (यजु० १२ । ६८) । श० ७ । २ । २ । ५ ॥
,, अन्नꣳ रश्मिः (यजु० १५ । ६) । श० ८ । ५ । ३ । ३ ॥
,, अन्नं वै नृम्णम् । कौ० २७ । ४ ॥
,, भर्गो देवस्य (ऋ० ३ । ६२ । १०) कवयोऽन्नमाहुः । गो० पू० १ । ३२ ॥
,, अन्नं वै भद्रम् (यजु० १९ । ११) । तै० १ । ३ । ३ । ६ ॥
,, (=मेधः) मेधाय (यजु० १३ । ४७) इत्यन्नायेत्येतत् । श० ७ । ५ । २ । ३२ ॥
,, अन्नं प्रेतिः (यजु० १५ । ६) । श० ८ । ५ । ३ । ३ ॥
,, अन्नं वै पितुः (यजु० २ । २० ॥ १२ । ६५ ॥) । श० १ । ९ । २ । २० ॥ ७ । २ । १ । १५ ॥

अन्नम् अथर्व पितुं मे गोपायेत्याह । अन्नमेवैतेन स्पृणोति । तै० १ । १ । १० । ४ ॥

,, अन्नं वै पितु । ऐ० १ । १३ ॥

,, अन्नं वै देवाः पृश्नीति वदन्ति । तां० १२ । १० । २४ ॥

,, अन्नं वै पृश्नि । तै० २ । २ । ६ । १ ॥ श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥

,, अन्नं वै रूपम् । श० ६ । २ । १ : १२ ॥

,, अन्नं वै सुरूपम् । कौ० १६ । ३ ॥

,, अथ यत्कृष्णं तदपां रूपमन्नस्य मनसो यजुषः । जै० उ० १ । २५ । ९ ॥

,, अन्नं वै वयश्छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ६ ॥

,, अन्नं वै गिरश्छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥

,, अन्नं प्रच्छच्छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ४ ॥

,, अन्नं केतः । श० ६ । ३ । १ । १९ ॥

,, अन्नं पुरीषम् । श० ८ । १ । ४ । ५ ॥ ८ । ७ । ३ । २ ॥

,, अन्नं वै पुरीषम् । श० ८ । ५ । ४ । ४ ॥ ८ । ६ । १ । २१ ॥ १४ । ३ । १ । २३ ॥

,, अन्नं वै कम् । ऐ० ६ । २१ ॥ गो० उ० ६ । ३ ॥

,, तदन्नं वै विश्वस्प्राणो मित्रम् । जै० उ० ३ । ३ । ६ ॥

,, अन्नं व्रतम् । तां० २३ । २७ । २ ॥

,, अन्नꣳ हि व्रतम् । श० ६ । ६ । ४ । ५ ॥

,, अन्नं वै व्रतम् । तां० २२ । ४ । ५ ॥ श० ७ । ५ । १ । २५ ॥

,, अन्नं भुजिष्याः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥

,, अन्नꣳहि गौः । श० ४ । ३ । ४ । २५ ॥ जै० उ० ३ । ३ । १३ ॥

,, अन्नं वै गौः । तै० ३ । ९ । ८ । ३ ॥

,, अन्नं पशवः । श० ६ । २ । १ । १५ ॥ ७ । ५ । २ । ४२ ॥

,, आपो वै सूदो ऽन्नं दोहः । श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥

,, अन्नं सोमः । कौ० ९ । ६ ॥ श० ३ । ३ । ४ । २८ ॥ तां० ६ । ६ । १ ॥

,, अन्नं वै सोमः । श० ३ । ९ । १ । ८ ॥ ७ । २ । २ । ११ ॥

,, एतद्वै परममन्नाद्यं यत्सोमः । कौ० १३ । ७ ॥

अन्नम् यश उ वै सोमो राजान्नाद्यम् । कौ० ९ । ६ ॥

,, एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमाः । श० १ । ६ । ४ । ५ ॥ २ । ४ । २ । ७ ॥ ११ । १ । ४ । ४ ॥

,, अन्नꣳ सुरा । तै० १ । ३ । ३ । ५ ॥

,, अन्नं विशः । श० २ । १ । ३ । ८ ॥

,, अन्नं वै विशः । श० ४ । ३ । ३ । १२ ॥ ५ । १ । ३ । ३ ॥ ६ । ७ । ३ । ७ ॥

,, अन्नं वै श्रीर्विराट् । गो० पू० ५ । ४ ॥ गो० उ० १ । १९ ॥

,, श्रीर्विराडन्नाद्यम् । कौ० १ । १ ॥ २ । ३ ॥ १२ । २ ॥

,, श्रीर्वै विराड् यशो ऽन्नाद्यम् । गो० पू० ५। २०॥ गो० उ० ६। १५॥

,, विराडन्नाद्यम् । ऐ० ४ । १६ ॥ ८ । ४ ॥

,, एतद्वै कृत्स्नमन्नाद्यं यद्विराट् । कौ० १४ । २ ॥

,, अन्नं विराट् । कौ० ९ । ६ ॥ १२ । ३ ॥ तै० १ । ६ । ३ । ४ ॥ १ । ८ । २ । २ ॥ तां० ४ । ८ । ४ ॥

,, अन्नं विराट् तस्माद्यस्यैवेह भूयिष्ठमन्नं भवति स एव भूयिष्ठं लोके विराजति तद्विराजो विराट्त्वम् । ऐ० १ । ५ ॥

,, अन्नं वै विराट् । ऐ० १ । ५ ॥ ४ । ११ ॥ ५ । १९ ॥ ६ । २० ॥ श० ७ । ५ । २ । १९ ॥

,, अन्नं वै पङ्क्तिः । गो० उ० ६ । २ ॥

,, पङ्क्तिर्वा अन्नम् । ऐ० ६ । २० ॥

,, पाङ्क्तमन्नम् । तां० १२ । १ । ९ ॥

,, पाङ्क्तꣳ(=पञ्चविधम्) ह्यन्नम् (अश्यं खाद्यं चोष्यं लेह्यं पेयमिति सायणः) । तां० ५ । २ । ७ ॥

,, अन्नं या इडा । ऐ० ८ । २६ ॥ कौ० ३ । ७ ॥

,, अन्नं वा आपः । श० २ । १ । १ । ३ ॥ ७ । ४ । २ । ३७ ॥ ८ । २ । ३ । ६ ॥ तै० ३ । ८ । २ । १ ॥ ३ । ८ । १७ । ५ ॥

,, अन्नं वृष्टिः । गो० पू० ४ । ४, ५ ॥

,, सप्तदशꣳ ह्यन्नम् । श० ८ । ४ । ४ । ७ ॥

,, अन्नं वै सप्तदशः । तां० २ । ७ । ७ ॥ १७ । ६ । २ ॥ १९ । ११ । ४ ॥ २० । १० । १ ॥ २५ । ६ । ३ ॥

अन्नम् अन्नं सावित्री । गो० पू० १ । ३३ ॥
,, अन्नं वै स्वयमातृण्णा (इष्टका) । श० ७ । ४ । २ । १ ॥
,, अन्नꣳ समिष्टयजुः । श० ११ । २ । ७ । ३० ॥
,, अन्नं वै यजुष्मत्य इष्टकाः । श० ८ । ७ । २ । ८ ॥
,, अन्नमेव यजुः । श० १० । ३ । ५ । ६ ॥
,, अन्नं याज्या । कौ० १५ । ३ ॥ १६ । ४ ॥ गो० उ० ३ । २१ ॥
,, अन्नं वै याज्या । गो० उ० ३ । २२ ॥ ६ । ८ ॥
,, अथो अन्नं निविद इत्याहुः । कौ० १५ । ३, ४ ॥
,, अन्नमुक्थानि । कौ० ११ । ८ ॥ १७ । ७ ॥
,, अन्नं वा उक्थ्यम् । गो० पू० ४ । २० ॥
,, अन्नं वाऽ उक्थ्यः । श० १२ । २ । २ । ७ ॥
,, अन्नं वै स्तोमाः । श० ६ । ३ । ३ । ६ ॥
,, अन्नं पृष्ठानि । तां० १६ । ९ । ४ ॥
,, अन्नं न्यूङ्खः । कौ० २२ । ६, ८ ॥ २५ । १३ ॥ ३० । ५ ॥
,, अन्नं वै न्यूङ्खः । ऐ० ५ । ३ ॥ ६ । २९, ३०, ३६ ॥ गो० उ० ६ । ८, १२ ॥
,, तस्मादाहुः सामैवान्नमिति । सा० १ । १ । ३ ॥
,, साम देवानामन्नम् । तां० ६ । ४ । १३ ॥
,, सो (प्रजापतिः)ऽत्रवीदेकं वावेदमन्नाद्यमसृक्षि सामैव । जै० उ० १ । ११ । ३ ॥
,, एतद्वै साक्षादन्नं यद्राजनं (साम), पञ्चविधं भवति पाङ्क्तं ह्यन्नम् । तां० ५ । २ । ७ ॥
,, अन्नं वै रथन्तरम् । ऐ० ८ । १ ॥
,, अन्नं वै मरुतः । तै० १ । ७ । ३ । ५ ॥ १ । ७ । ५ । २ ॥ १ । ७ । ७ । ३ ॥
,, अन्नं वै गार्हपत्यः । श० ८ । ६ । ३ । ५ ॥
,, एते हि साक्षादन्नं यदूषाः । तै० १ । ३ । ७ । ६ ॥
,, अन्नं वाऽ ऊर्ग्गुदुम्बरः । श० ३ । २ । १ । ३३ ॥ ३ । ३ । ४ । २७ ॥
,, अन्नꣳ सम्मार्जनानि । तै० ३ । ३ । १ । ५ ॥
,, नाभिदघ्ना (आसन्दी) भवति । अत्र (नाभिप्रदेशे) वाऽ अन्नं प्रतितिष्ठति .....अन्नोऽएव रेतस आशयः । श० ३ । ३ । ४ । २८ ॥

अन्नम् वरुणो ऽन्नपतिः । श० १२ । ७ । २ । २० ॥

,, तपो मे तेजो मेऽन्नम्मे वाङ् मे । तन्मे त्वयि (अग्नौ) । जै० उ० ३ । २० । १६ ॥

अन्नादः प्रजापतिर्वै देवानामन्नादो वीर्य्यवान् । तै० ३ । ८ । ७ । १ ॥

,, स यो हैवमेतं वृत्रमन्नादं वेदान्नादो हैव भवति । श० १ । ६ । ३ । १७ ॥

अन्नाद्यम् औदुम्बरं (यूपम्) अन्नाद्यकामस्य । ष० ४ । ४ ॥

,, सर्वे (प्रैषाः) सारस्वता अन्नाद्यस्यैवावरुद्ध्यै । श० १२ । ८ । २ । १६ ॥

अन्वाहार्यपचनः (अग्निः) अथैष एव नडो नैषिधो यदन्वाहार्यपचनः । श० २ । ३ । २ । २ ॥

अपभरण्यः (नक्षत्रम्) अनूराधाः प्रथमम् । अपभरणीरुत्तमं तानि यमनक्षत्राणि । तै० १ । ५ । २ । ७ ॥

अपराह्णः अपराह्णः प्रतिहारः । जै० उ० १ । १२ । ४ ॥

अपानः अपानो वरुणः (यजु० १४ । २४) । श० ८ । ४ । २ । ६ ॥ १२ । ९ । २ । १२ ॥

,, वरुणस्य सायम् (कालः) आसवो ऽपानः । तै० १ । ५ । ३ । १ ॥

,, अपानः प्रस्तोता । कौ० १७ । ७ ॥ गो० उ० ५ । ४ ॥

,, अपानस्त्रिष्टुप् । तां० ७ । ३ । ८ ॥

,, अपानो रथन्तरम् । तां ७ । ६ । १४, १७ ॥

,, अपानो याज्या । श० १४ । ६ । १ । १२ ॥

,, प्रत्यञ्चो ऽनुयाजाः (ह्रूयन्ते) तदपानरूपम् । श० ११ । २ । ७ । २७ ॥

,, अपानो वै यन्ता (ऋ० ३ । १३ । ३) ऽपानेन ह्ययं यतः प्राणो न पराङ् भवति । ऐ० २ । ४० ॥

अपापः अग्निशुश्चापापश्च । उभौ देवानाꣳ शमितारौ । तै० ३ । ६ । ६ । ४ ॥

अपोनप्त्रीया वज्रस्तेन यदपोनप्त्रीया (ऋक्) । ऐ० २ । १६ ॥

अप्तुः प्रजा वा अप्तुरित्याहुः । गो० उ० ५ । ९ ॥

असोर्यामा प्रजा वा अप्नुरित्याहुः । प्रजानां यमन इति । गो० उ० ५ । ९ ॥

अप्सराः गन्धेन च वै रूपेण च गन्धर्वाप्सरसश्चरन्ति । श० ६ । ४ । १ । ४ ॥

अभीशुः अभीशवो वै रश्मयः । श० ५ । ४ । ३ । १४ ॥

अभ्रम् अभ्रमेव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥

अमावास्या चन्द्रमा वा अमावास्यायामादित्यमनुप्रविशति । ऐ० ८ । २८ ॥

„ अथैतदेव वृत्रहत्यं यदामावास्यं (हविः) वृत्रᳫं ह्यस्मा एतज्जघ्नुषऽ आप्यायनमकुर्वन् । श० १ । ६ । ४ । १२ ॥

„ आमावास्यं वै सान्नाय्यम् । श० २ । ४ । ४ । १५ ॥

„ अमावास्या वै सरस्वती । गो० उ० १ । १२ ॥

„ तस्मादमावास्यायां नाध्येतव्यं भवति । ष० ४ । ६ ॥

अमृतः अमृता देवाः । श० २ । १ । ३ । ४ ॥

अमृतम् अमृतं वाऽ आपः । श० १ । ६ । ३ । ७ ॥ ४ । ४ । ३ । १५ ॥

„ तद्यत्तदमृतᳫं सोमः सः । श० ६ । ५ । १ । ८ ॥

„ अमृतं वै हिरण्यम् (यजु० १८ । ५२) । श० ९ । ४ । ४ । ५ ॥ तै० १ । ३ । ७ । ७ ॥

„ अमृतᳫं हिरण्यम् । श० १० । ४ । १ । ६ ॥ तां० ९ । ९ । ४ ॥

„ (यजु० १ । ३१) तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि (आज्य !) । श० १ । ३ । १ । २८ ॥

„ प्राणोऽमृतम् । श० १० । २ । ६ । १८ ॥

„ अमृतमु वै प्राणाः । श० ९ । १ । २ । ३२ ॥

„ सदमृतम् । श० १४ । ४ । १ । ३१ ॥

„ अथ यद् ब्रह्म तदमृतम् । जै० उ० १ । २५ । १० ॥

„ अमृतं वा ऋक् । कौ० ७ । १० ॥

„ अमृतं वै रुक् (=दीप्तिः) । श० ७ । ४ । २ । २१ ॥

„ अमृतत्वं वै रुक् (यजु० १८ । ४८) । श० ९ । ४ । २ । १४ ॥

„ अमृतमेव सप्तमी चितिः । श० ८ । ७ । ४ । १८ ॥

„ अमृतमिव हि स्वर्गो लोकः । तै० १ । ३ । ७ । ५ ॥

„ किं नु तेऽस्मासु (देवेषु) इति ॥ अमृतमिति । जै० उ० ३ । २६ । ८ ॥

अमेध्यम् तद्यदमेध्यꣳ रिप्रं तत्। श० ३।१।२।११॥

अम्बिका अम्बिका ह वै नामास्य (रुद्रस्य) स्वसा। श० २।६।२।९॥

„ (मैत्रायणीसंहितायाम् १।१०। २०:—शरद्वै रुद्रस्य योनिः स्वसाम्बिका........ ..अम्बी वै स्त्री भगनाम्नी तस्मात्त्र्यम्बकाः॥ काठकसंहितायाम् ३६।१४:—शरद्वै रुद्रस्य स्वसाम्बिका ....अम्बी वै स्त्री भगानाम्नी तस्मात्त्र्यम्बकाः॥)

अम्भृणः (पात्रविशेषः, वैश्वदेवौ वाऽ अम्भृणावतो हि देवेभ्य उन्नयन्त्यतो मनुष्येभ्यो ऽतः पितृभ्यः। श० ४।५।६।३॥

अयः (प्रजापतिः। अयसो हिरण्यं (असृजत) तस्मादयो बहुध्मातꣳ हिरण्यसंकाशमिवैव भवति। श० ६।१।३।५।

अयनम् इयं (पृथिवी) वाऽ अपामयनमस्याꣳ ह्यापो यन्ति। श० ७।५।२।५०॥

अयास्यः (आङ्गिरसः) अयास्य उद्गाता। ऐ० ७।१६॥

„ त ऽङ्गिरस आदित्येभ्यः प्रजिघ्युः श्वः सुत्या नो याजयत न इति तेषां हाग्निर्दूत आस त आदित्या ऊचुरथास्माकमद्य सुत्या तेषां नस्त्वमेव (अग्ने) होतासि बृहस्पतिर्ब्रह्मा ऽयास्य उद्गाता घोर आङ्गिरसो ऽध्वर्युरिति। कौ० ३०।६॥

„ अयास्येनाऽऽङ्गिरसेन (उद्गात्रा दक्षिणमहा इति) मनुष्या उत्तरतः (आगच्छन्)। जै० उ० २।७।२॥

अर्कः अस्य (अग्नेः) एवैतानि (घर्मः, अर्क, शुक्रः, ज्योतिः, सूर्यः) नामानि। श० ९।४।२।२५॥

„ एतस्य वै देवस्य (रुद्रस्य) आशयादर्कः समभवत्स्वेनैवैनम् (रुद्रम्) एतद्भागेन स्वेन रसेन प्रीणाति (यजमानः)। श० ९।१।१।६॥

अर्चिः अजस्रेण भानुना दीद्यतमित्यजस्रेणार्चिषा दीप्यमानमित्येतत्। श० ६।४।१।२॥

„ "परिवृङ्गिध हरसा माभिमꣳस्थाः" (यजु० १३।४१) इति पर्येनं वृङ्ग्ध्यर्चिषा मैनꣳ हिꣳसीरित्येतत् (हरः=अर्चिः)। श० ७।५।२।१७॥

आर्चिः (शोचींषि=अर्चींषि) "ऊर्ध्वा शुक्रा शोचीᳬंष्यग्नेः" (यजु० २७ । ११) इत्यूर्ध्वानि ह्येतस्य (अग्नेः) शुक्राणि शोचीᳬंष्यर्चींᳬंषि भवन्ति । श० ६ । २ । १ । ३२ ॥

अर्जुन्यः (नक्षत्रम्) अर्जुन्यो वै नामैतास्ता एतत्परोऽक्षमाचक्षते फल्गुन्य इति । श० २ । १ । २ । ११ ॥

अर्द्धमासः अर्द्धमासौ (=शुक्लकृष्णपक्षौ) वै मित्रावरुणौ । तां० २५ । १० । १० ॥

,, अथैतावेवार्धमासौ मित्रावरुणौ य एवापूर्यते स वरुणो यो ऽपक्षीयते स मित्रः । श० २ । ४ । ४ । १८ ॥

,, अर्धमासा उपसदः । श० १० । २ । ५ । ५ ॥

,, अर्द्धमासाः प्रस्तावः । ष० ३ । १ ॥

,, अर्द्धमासः पञ्चदशः । तां० ६ । २ । २ ॥

,, अर्द्धमास एव पञ्चदशस्यायतनम् । तां० १० । १ । ४ ॥

,, अर्धमासा हविष्पात्राणि । श० ११ । २ । ७ । ४ ॥

,, अर्धमासा हविष्मन्तः । गो० पू० ५ । २३ ॥

,, अर्द्धमासशो हि प्रजाः पशव ओजो बलं पुष्यन्ति । तां० १० । १ । ६ ॥

अर्बुदः अर्बुदः काद्रवेयो राजेत्याह तस्य सर्पा विशः.........सर्पविद्या वेदः.........सर्पविद्याया एकं पर्व व्याचक्षाण इवानुद्रवेत् । श० १३ । ४ । ३ । ९ ॥

अर्यमा अर्यमा सप्तहोतॄणाᳬं होता । तै० २ । ३ । ५ । ६ ॥

,, अर्यम्णो वा एतन्नक्षत्रं यत्पूर्वे फल्गुनी । तै० १ । १ । २ । ४ ॥ १ । ५ । १ । २ ॥ ३ । १ । १ । ८ ॥

अविः अविर्मल्हा (="गलस्तनयुता" इति सायणः) सारस्वती । श० ५ । ५ । ४ । १ ॥

,, अश्वं चाविं चोत्तरत एतस्यां तद्दिश्येतौ पशू दधाति तस्मादेतस्यां दिश्येतौ पशू भूयिष्ठौ । श० ७ । ५ । २ । १५ ॥

,, अजावी आलभते भूम्ने । तै० ३ । ९ । ८ । ३ ॥

,, तस्मादु सह सतो ऽजाविकस्योभयस्यैवाजाः पूर्वा यन्त्यनूच्यो ऽवयः । श० ४ । ५ । ५ । ४ ॥

अशनम् (प्रजापतिः) तान् (मनुष्यान्) अब्रवीत् सायम्प्रातर्वो ऽशनं प्रजा वो मृत्युर्वो ऽग्निर्वो ज्योतिरिति । श० २ । ४ । २ । ३ ॥

" स यो हैवं विद्वान् सायम्प्रातराशी भवति सर्वं हैवायुरेति । श० २ । ४ । २ । ६ ॥

" द्विरह्नो मनुष्येभ्य उपह्रियते प्रातश्च सायञ्च । तै० १।४।६।२॥

" तस्मै (वृत्राय) ह स्म पूर्वाह्णे देवा अशनमभिहरन्ति मध्यन्दिने मनुष्याऽ अपराह्णे पितरः । श० १ । ६ । ३ । १२ ॥

अशनाया एको वा अमुष्मिंल्लोके मृत्युः । अशनया मृत्युरेव । तै० ३ । ९ । १५ । १-२ ॥

" अशनाया हि मृत्युः । श० १० । ६ । ५ । १ ॥

अशनिः कतमस्तनयित्नुरित्यशनिरिति । श० ११ । ६ । ३ । ६ ॥

" एतान्यष्टौ (रुद्रः, सर्वः=शर्वः, पशुपतिः, उग्रः, अशनिः, भवः, महान्देवः, ईशानः) अग्निरूपाणि । कुमारो नवमः । श० ६ । १ । ३ । १८ ॥

अश्मा तस्य (वृत्रस्य) एतच्छरीरं यद्गिरयो यदश्मानः । श० ३ । ४ । ३ । १३ ॥ ३ । ९ । ४ । २ ॥ ४ । २ । ५ । १५ ॥

अश्वः ययुर्नामासीत्याह । एतद्वा अश्वस्य प्रियं नामधेयम् । तै० ३ । ८ । ९ । २ ॥

" अश्वो वै बृहद्वयः । तै० ३ । ९ । ५ । ३ ॥ श० १३ । २ । ६ । १५॥

" (हे ऽश्व त्वं) हयो ऽसि । तां० १ । ७ । १ ॥

" (हे ऽश्व त्वं) सप्तिरसि । तां० १ । ७ । १ ॥

" (हे ऽश्व त्वं) वृषासि । तां० १ । ७ । १ ॥

" वाजिनो ह्यश्वाः । श० ५ । १ । ४ । १५ ॥

" (अश्वो) वाजी (भूत्वा) गन्धर्वान् (अवहत्) । श० १० । ६ । ४ । १ ॥

" (हे ऽश्व त्वं) वाज्यसि । तां० १ । ७ । १ ॥

" ते (आदित्याः) अब्रुवन् । यम् (अश्वम्) नोऽनेष्ट । सवर्यो ऽभूदिति । तस्मादश्वꣳ सवर्येत्याह्वयन्ति । तै० ३ । ९ । २१ । १ ॥

" समुद्र एवास्य (अश्वस्य मेध्यस्य) बन्धुः समुद्रो योनिः (इन्द्राश्वस्योच्चैःश्रवसः क्षीरसागरादुत्पत्तिः—महाभारत आदिपर्वणि, १८ । ३७) । श० १० । ६ । ४ । १ ॥

अश्वः न वै मनुष्यः स्वर्गं लोकमञ्जसा वेदाश्वो वै स्वर्गं लोकमञ्जसा वेद। श० १३।२।३।१॥

,, तस्य (अश्वस्य श्वेतस्य) रुक्मः पुरस्ताद्भवति। तदेतस्य रूपं क्रियते य एष (आदित्यः) तपति। श० ३।५।१।२०॥

,, जागतो ऽश्वः प्राजापत्यः। तै० ३।८।८।४॥

,, (प्रजापतिः) वारुणमश्वं (आलिप्सत)। श० ६।२।१।५॥

,, स हि वारुणो यदश्वः। श० ५।३।१।५॥

,, सोमो वै वृष्णो अश्वस्य रेतः। तै० ३।९।५।५॥

,, अश्वस्य वा आलब्धस्य रेत उदक्रामत्। तत्सुवर्णं हिरण्यमभवत्। तै० ३।८।२।४॥ श० १३।१।१।३॥

,, अश्वमालभते ...... श्रीर्वा एकशफम्। श्रियमेवावरुन्धे। तै० ३।९।९।२॥

,, अश्वं चाविं चोत्तरतः, एतस्यां तद्दिश्येतौ पशू दधाति तस्मादेतस्यां दिश्येतौ पशू भूयिष्ठौ। श० ७।५।२।१५॥

अश्वमेधः प्रजापतिरश्वमेधः। श० १३।२।२।१३॥ १३।४।१।१५॥

,, अग्निर्वा अश्वमेधस्य योनिरायतनम्। तै० ३।९।२१।२,३॥

,, सो ऽश्वमेधेनेष्ट्वा स्वराडिति नामाधत्त। गो० पू० ५।८॥

,, सर्वस्यैष न वेद यो ब्राह्मणः सन्नश्वमेधस्य न वेद, सो ऽब्राह्मणः। श० १३।४।२।१७॥

आश्विनौ युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् (ऋ० १०।१३१।४॥ यजु० १०।३३॥) इत्याश्राव्याहाश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रं सुत्रामाणं यजेति। श० ५।५।४।२५॥

,, आश्विनं धूम्रमालभते। तै० १।८।५।६॥

,, लोहितः (अजः) आश्विनो भवति। श० ५।५।४।१॥

,, सर्वे (प्रैषाः) आश्विना भवन्ति। भैषज्याय। श० १२।८।२।१६॥

,, "नमुचि"शब्दमपि पश्यत॥

अष्ट अष्टरात्रेण वै देवाः सर्वमाप्नुवन्त। तां० २२।११।६॥

अष्टका संवत्सरस्य प्रतिमां यां (एकाष्टकारूपां) त्वा रात्रि यजामहे। मं० २। २। १८॥

,, एषा वै संवत्सरस्य पत्नी यदेकाष्टका। तां० ५। ९। २॥

,, संवत्सरस्य या पत्नी (एकाष्टकारूपा) सा नो अस्तु सुमङ्गली। (अथर्व० ३। १०। २)। मं० २। २। १६॥

अष्टरात्रः एतेन वै (अष्टरात्रेण) देवा देवत्वमगच्छन् देवत्वं गच्छति य एवं वेद। तां० २२। ११। २—३॥

असत् असद्वाऽ इदमग्रऽ आसीत्। श० ६। १। १। १॥

,, इदं वा अग्रे नैव किंचनासीत्। न द्यौरासीत्। न पृथिवी। नान्तरिक्षम्। तदसदेव सन्मनोऽकुरुत स्यामिति। तै० २। २। ६। १॥

असमरथः (यजु० १५। १७) तस्य (आदित्यस्य) रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्याविति वार्षिकौ तावृत्। श० ८। ६। १। १८॥

असिः असिं वै शास इत्याचक्षते। श० ३। ८। १। ४॥

असितः असितो धान्वो राजेत्याह तस्यासुरा विशः। श० १३। ४। ३। ११॥

असुरः उभये वा एते प्रजापतेरध्यसृजन्त। देवाश्चासुराश्च। तै० १। ४। १। १॥

,, सः (प्रजापतिः) ......अकामयत प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। सोऽन्तर्वानभवत्। स जघनादसुरानसृजत...... स मुखाद्देवानसृजत। तै० २। २। ६। ५–८॥

,, स (प्रजापतिः) आस्येनैव देवानसृजत ...... तस्मै ससृजानाय दिवेवास। ...... अथ योऽयमवाङ् प्राणः, तेनासुरानसृजत। ...... तस्मै ससृजानाय तम इवास। श० ११। १। ६। ७–८॥

,, ते देवाश्चक्रमचरञ्छालम् (=चक्रव्यतिरिक्तं साधनमिति सायणः) असुरा आसन्। श० ६। ८। १। १॥

,, ते देवाः प्रजापतिमेवाभ्ययजन्त। अन्योऽन्यस्यास्यस्वसुरा अजुहवुः। ...... प्रजापतिर्देवानुपावर्तत। गो० उ० १। ७॥

असुरः एकाक्षरं वै देवानामवमं छन्द आसीत्सप्ताक्षरं परममवाक्षरमसुराणामवमं छन्द आसीत् पञ्चदशाक्षरं परमम् । तां० १२। १३ । २७ ॥

" ते ऽसुरा ऊर्ध्वं पृष्ठेभ्यो ना ऽपश्यन् । ते केशानग्रे ऽवपन्त । अथ श्मश्रूणि । अथोपपक्षौ । ततस्ते ऽवाञ्च आयन् । पराभवन् । यस्यैवं वपान्ति । अवाङेति । अथो परैव भवति । तै० १ । ५ । ६ । १–२ ॥

" यज्ञो ऽसुरेषु विदद्वसुः । तां० ८ । ३ । ३ ॥

" ततो ऽसुरा उभयीरोषधीर्याश्च मनुष्या उपजीवन्ति याश्च पशवः कृत्ययेव त्वद्विषेणेव त्वत्प्रालिलिपुरुतैवं चिद्देवानभिभवेमेति ततो न मनुष्या आशुर्न पशव आलिलिशिरे ता हेमाः प्रजा अनाशकेनोत्पराबभूवुः ...... ते (देवाः) होचुर्हन्तेदमासामपजिघांसामेति केनेति यज्ञेनैवेति । श० २ । ४ । ३ । २–३ ॥

" ते वा असुरा इमानेव लोकन्पुरो ऽकुर्वत । ऐ० १ । २३ ॥

" असुराणां वा इयं (पृथिवी) अग्र आसीत् । तै० ३ । २।९ । ६ ॥

" अर्वाग्वसुर्ह वै देवानां ब्रह्मा पराग्वसुरसुराणाम् । गो० उ० १ । १ ॥

" परावसुर्ह वै नामासुराणाᳬं होता । श० १ । ५ । १ । २३ ॥

" उशना वै काव्यो ऽसुराणां पुरोहित आसीत् । तां० ७ । ५।२०॥

असृक् रक्षसां भागो ऽसि (यजु० ६ । १६) इति रक्षसाᳬं ह्येष भागो यदसृक् । श० ३ । ८ । २ । १४ ॥

" स यदस्ना रक्षः संसृजतादित्याह रक्षांस्येव तत्स्वेन भागधेयेन (असृग्रूपेण) यज्ञान्निरवदयते । ऐ० २ । ७ ॥

अस्थि अस्थीनि वै समिधः । श० ६ । २ । ३ । ४६ ॥

" अस्थीष्टकाः । श० ८ । १ । ४ । ५ ॥ ८ । ७ । ४ । १६ ॥

" अस्थि प्रतिहारः । जै० उ० १ । ३६ । ६ ॥

अहः अहर्मित्रः । तां० २५ । १० । १० ॥

" अहर्वै मित्रः । ऐ० ४ । १० ॥

" अहरेव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥

" यज्ञो वै स्वः (यजु० १ । ११) अहर्देवाः सूर्यः । श० १ । १ । २ । २ ॥

अहः अहः स्वर्गः । श० १३ । २ । १ । ६ ॥
,, अहर्वै स्वर्गो लोकः । ऐ० ५ । २४ ॥
,, अग्निर्वाऽ अहः सोमो रात्रिः । श० ३ । ४ । ४ । १५ ॥
,, यजुष्मत्यः (इष्टकाः) ज्योतिस्तद्ध्यहस्तदह्नाᳬ रूपम् । श० १० । २ । ६ । १७ ॥
,, अहर्वै पान्तम् (ऋ० ८ । ९२ । १ ॥) । तां० ९ । १ । ७ ॥
,, अहर्वै शबलो रात्रिः श्यामः । कौ० २ । ९ ॥
,, अहर्व्युष्टिः । तै० ३ । ८ । १६ । ४ ॥
,, अहर्वै वियच्छन्दः (यजु० १५ । ५) । श० ८ । ५ । २ । ५ ॥
,, सद्वमहः (सद्वः=ऋतुविशेषः, तैत्तिरीयसंहितायाम् ४ । ४ । ७ । २ ॥ ५ । ३ । ११ । ३ ॥ सायणभाष्ये ऽपि) । श० १ । ७ । २ । २६ ॥
,, (पूर्वपक्षापरपक्षयोः) यान्यहानि ते मधुवृषाः । तै० ३ । १० । १० । १ ॥
,, अहर्वै विष्णुक्रमाः । श० ६ । ७ । ४ । १२ ॥
,, ब्रह्मणो वाऽ एतद्रूपं यदहः । श० १३ । १ । ५ । ४ ॥
,, ब्रह्मणो वै रूपमहः क्षत्रस्य रात्रिः । तै० ३ । ६ । १४ । ३ ॥
,, अहर्वाहितम् । ऐ० ५ । ३० ॥

अहिः अथ (वृत्रः) यदपात्समभवत्तस्मादहिस्तं दनुश्च दनायुश्च मातेव च पितेव च परिजगृहतुस्तस्माद्दानव इत्याहुः । श० १ । ६ । ३ । ९ ॥

अहिर्बुध्न्यः अहिर्बुध्नियस्योत्तरे (प्रोष्ठपदाः) । तै० १ । ५ । १ । ५ ॥

अहोरात्रे अहोरात्रे वा उषासानक्ता । ऐ० २ । ४ ॥
,, अहोरात्रे वै नक्तोषासा (यजु० १२ । २ ॥) । श० ६ । ७ । २ । ३ ॥
,, अहोरात्रे वै गोआयुषी । कौ० २६ । २ ॥
,, अहोरात्रे वै नृवाहसा । तै० ३ । ६ । ४ । ३ ॥
,, (आदित्यस्य) प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ (यजु० १५ । १७) इति दिक् चोपदिशा चेति ह स्माह माहित्थिरहोरात्रे तु ते, ते हि प्र च म्लोचतोऽनु च म्लोचतः । श० ८ । ६ । १ । १८ ॥

अहोरात्रे तद्वाऽ अहोरात्रेऽ एव विष्णुक्रमा भवन्ति । श० ६ । ७ । ४ । १० ॥

,, अहोरात्रे वात्सप्रम् (सूक्तम्) । । श० ६ । ७ । ४ । १० ॥

,, यौ द्वौ स्तोभावहोरात्रे एव ते । जै० उ० १ । ११ । ५ ॥

,, अहोरात्रे वै रौहिणौ (पुरोडाशौ) । श० १४ । २ । १ । ३ ॥

,, अहोरात्रौ वै मित्रावरुणौ । तां० २५ । १० । १० ॥

,, अहोरात्रे वै पिशंगिले । श० १३ । २ । ६ । १७ ॥

,, अहोरात्राणि वाऽ उपसदः । श० १० । २ । ५ । ४ ॥

,, अहोरात्राणि हिङ्कारः । ष० ३ । १ ॥

,, अहोरात्राणि वै वरूत्रयो ऽहोरात्रैर्हीद्ँ सर्वं वृतम् । श० ६ । ५ । ४ । ६ ॥

,, अहोरात्राणां वाऽ एतद्रूपं यद्धानाः । श० १३ । २ । १ । ४ ॥

(आ)

आकाशः आत्मा त्वाऽएष वैश्वानरस्य (यदाकाशः) । श० १० । ६ । १ । ६ ॥

,, एष वै बहुलो वैश्वानरः (यदाकाशः) । श० १० । ६ । १ । ६ ॥

,, आकाशस्सावित्री । जै० उ० ४ । २७ । ५ ॥

आग्नीध्रः वसन्त आग्नीध्रस्तस्माद्वसन्ते दावाश्चरन्ति तद्ध्यग्निरूपम् । श० ११ । २ । ७ । ३२ ॥

आग्नीध्रीयः (पुरुषस्य) बाहू मार्जालीयश्चाग्नीध्रीयश्च । कौ० १७ । ७ ॥

आज्यम् तेज आज्यम् । तै० ३ । ३ । ४ । ३ ॥ ३ । ३ । ९ । ३ ॥

,, (यजु० १ । ३१) तेजो ऽसि शुक्रमस्यमृतमसि (आज्य!) । श० १ । ३ । १ । २८ ॥

,, एतद्रेतः । यदाज्यम् । तै० १ । १ । ९ । ४ ॥

,, मेधो वा आज्यम् । तै० ३ । ९ । १२ । १ ॥

,, एतद्वै मधुदैव्यं यदाज्यम् । ऐ० २ । २ ॥

,, (=विलीनं सर्पिः) तदाहुः । किन्देवत्यान्याज्यानीति प्राजापत्यानीति ह ब्रूयादनिरुक्तो वै प्रजापतिरनिरुक्तान्याज्यानि । श० १ । ६ । १ । २० ॥

आज्यम् अथैषाज्याहुतिर्यद्धविर्यज्ञो यत्पशुः (=पशुयज्ञः) । श० १ । ७ । २ । १० ॥

आञ्जनम् वृत्रस्य ह्येष कनीनकः (यदाञ्जनम्) । श० ३ । १ । ३ । १५ ॥

आण्डौ आण्डौ वै रेतःसिचौ, यस्य ह्याण्डौ भवतः स एव रेतः सिञ्चति । श० ७ । ४ । २ । २४ ॥

„ आण्डाभ्याᳬं हि वृषा पिन्वते । श० १४ । ३ । १ । २२ ॥

आतिथ्यम् शिरो वै यज्ञस्यातिथ्यम् । श० ३ । २ । ३ । २० ॥

आतिष्ठम् अथैनं (इन्द्रं) ऊर्ध्वायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः..... अभ्यषिञ्चन्.........पारमेष्ठ्याय माहाराज्यायाऽऽधिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय । ऐ० ८ । १४ ॥

आत्मा आत्मा ह्ययं प्रजापतिः । श० ४ । ६ । १ । १ ॥ ११ । ५ । ९ । १ ॥

„ आत्मा वै तनूः । श० ७ । ३ । १ । २३ ॥ ७ । ५ । २ । ३२ ॥

„ आत्मा (=शरीरम्) वै पूः । श० ७ । ५ । १ । २१ ॥

„ 'अन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृᳬंहान्तरिक्षं मा हिᳬंसीः' (यजु० १४ । १२) इत्यात्मानं यच्छात्मानं दृᳬंहात्मानं मा हिᳬंसीरित्येतत् (अन्तरिक्षम्=आत्मा) । श० ८ । ३ । १ । ६ ॥

„ आत्मा वै वृषाकपिः । ऐ० ६ । २९ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥

„ (होता) यदि वृषाकपिम् (वृषाकपिदृष्टम्—ऋ० १० । ८६ । १—२३ एतत्सूक्तमन्तरियात्=लोपयेत्तदानीम्) आत्मानम् (=मध्यदेहमिति सायणः) अस्य (यजमानस्य) अन्तरियात् । ऐ० ५ । १५ ॥

„ आत्मा वै वेनः (ऋ० १० । १२३ । १) । कौ० ८ । ५ ॥

„ आत्मा वै समस्तः सहस्रवांस्तोकवान् पुष्टिमान् । ऐ० २ । ४० ॥

„ आत्मा सूक्तम् । कौ० १४ । ४ ॥ १५ । ३ ॥ १६ । ४ ॥ २३ । ८ ॥

„ आत्मा वै स्तोत्रम् । श० ५ । २ । २ । २० ॥

„ आत्मैव स्तोत्रियः । जै० उ० ३ । ४ । ३ ॥

„ आत्मा वै स्तोत्रियः । कौ० १५ । ४ ॥ २२ । ८ ॥ ऐ० ३ । २३, २४ ॥ ६ । २६ ॥ गो० उ० ३ । २२ ॥

„ आत्मा वै स्तोत्रियानुरूपौ । कौ० ३० । ८ ॥

„ आत्मा महदुक्थम् । श० १० । १ । २ । ५ ॥

आत्मा आत्मा उपांशुसवनः । ऐ० २ । २१ ॥
,, आत्मा लोकम्पृणा (इष्टका) । श० ८ । ७ । २ । ८ ॥
,, आत्मा वै बृहती । ऐ० ६ । २८ ॥ गो० उ० ६ । ८ ॥
,, आत्मा त्रिष्टुप् । श० ६ । २ । १ । २४ ॥ ६ । ६ । २ । ७ ॥
,, आत्मा वै होता । कौ० २९ । ८ ॥ ऐ० ६ । ८ ॥ गो० उ० ५ । १४ ॥
,, आत्मा वै यज्ञस्य होता । कौ० ९ । ६ ॥
,, आत्मा होतृचमसः । ऐ० २ । ३० ॥
,, आत्मा वै ब्राह्मणाच्छंसी । कौ० २८ । ९ ॥

आदित्यः असौ वाऽ आदित्यो विवस्वानेष ह्यहोरात्रे विवस्ते तमेष (मृत्युः) वस्ते सर्वतो ह्येनेन परिवृतः । श० १० । ५ । २ । ४ ॥
,, विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथः । श० ४ । ३ । ५ । १८ ॥
,, यं (मार्तण्डं) उ ह तद्विचक्रुः (देवा आदित्याः,) स विवस्वानादित्यस्तस्येमाः प्रजाः । श० ३ । १ । ३ । ४ ॥
,, असौ वाऽ आदित्यः सूर्यः (यजु० १८ । ५०) । श० ९ । ४ । २ । २३ ॥
,, असावादित्यो देवः सविता । श० ६ । ३ । १ । १८ ॥
,, आदित्य एव सविता । गो० पू० १ । ३३ ॥ जै० उ० ४ । २७ । ११ ॥
,, धातासौ स आदित्यः । श० ९ । ५ । १ । ३७ ॥
,, स एष (आदित्यः) सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान् (ऋ० २ । १२ । १२) । जै० उ० १ । २८ । २ ।
,, "यस्सप्तरश्मिः" (ऋ० २ । १२ । १२) इति । सप्त ह्येत आदित्यस्य रश्मयः । जै० उ० १ । २९ । ८ ॥
,, "युक्ता ह्यस्य (इन्द्रस्य) हरयश्शतादश" (ऋ० ६ । ४७ । १८) इति सहस्रं हैत आदित्यस्य रश्मयः । ते ऽस्य युक्तास्तैरिदं सर्वं हरति । तद्यदेतैरिदं सर्वं हरति । तस्माद्धरयः (=रश्मयः) । जै० उ० १ । ४४ । ५ ॥
,, स यः स विष्णुर्यज्ञः सः । स यः स यज्ञो ऽसौ स आदित्यः (विष्णु=आदित्यः) । श० १४ । १ । १ । ६ ॥
,, एष वै वृषा हरिः (यजु० ३८ । २२) य एष (आदित्यः) तपति । श० १४ । ३ । १ । २६ ॥

आदित्यः असौ वै वैश्वानरो यो ऽसौ (आदित्यः) तपति । कौ० ४ । ३ । १६ । २ ॥

,, स यः स वैश्वानरः । असौ स आदित्यः । श० ९ । ३ । १ । २५ ॥

,, चक्षुस्त्वाऽएतद्वैश्वानरस्य (यदादित्यः) । श० १०।६।१।८॥

,, एष वै सुततेजा वैश्वानरः (यदादित्यः) । श० १० । ६ । १ । ८ ॥

,, "वृषभः" (ऋ० २ । १२ । १२) इति । एष (आदित्यः) ह्येवाऽऽसाम्प्रजानामृषभः । जै० उ० १ । २९ । ८ ॥

,, आदित्यो वाजी । तै० १ । ३ । ६ । ४ ॥

,, असौ वाऽ आदित्यो ब्रध्नो ऽरुषः । श० १३ । २ । ६ । १ ॥

,, असौ वा आदित्यो ब्रध्नः । तै० ३ । ९ । ४ । १ ॥

,, आदित्यो वै वृषाकपिः । गो० उ० ६ । १२ ॥

,, असावादित्यो वेनो यद्धि प्रजिजनिषमाणो ऽवेनत्तस्माद्वेनः । श० ७ । ४ । १ । १४ ॥

,, स य स कूर्मो ऽसौ स आदित्यः । श० ७ । ५ । १ । ६ ॥ ६ । ५ । १ । ६ ॥

,, असौ वै षोडशी यो ऽसौ (आदित्यः) तपति । कौ० १७ । १ ॥

,, असावादित्यः षोडशी (यजु० १५ । ३) । श० ८ । ५ । १ । १० ॥

,, एष (आदित्यः) दीक्षितः (अथर्व० ११ । ५ । ६ ॥) । गो० पू० २ । १ ॥

,, असौ वाऽ आदित्यो दिव्यᳬं रोचनम् । श० ६ । २।१।२६ ॥

,, असौ वा आदित्यो दिव्यो गन्धर्वः (यजु० ११ । ७ ॥) । श० ६ । ३ । १ । १९ ॥

,, असौ वाऽ आदित्यो विश्वव्यचाः (यजु० १३ । ५६ ॥ १५ । १७) यदा ह्येवैष उदेत्यथेदᳬं सर्वं व्यचो भवति । श० ८ । १ । २ । १ ॥ ८ । ६ । १ । १८ ॥

,, असौ वाऽ आदित्यो व्यचश्छन्दः (यजु० १५ । ४) । श० ८ । ५ । २ । ३ ॥

आदित्यः असौ वा आदित्यो भा इति । जै० उ० १ । ४ । १ ॥

" असौ वा आदित्यो हᳯंसः शुचिषत् (यजु० १२ । १४) । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥

" एष (आदित्यः) वै हंसः शुचिषद् (ऋ० ४ । ४० । ५) । ऐ० ४ । २० ॥

" असौ वा आदित्यस्तपः । श० ८ । ७ । १ । ५ ॥

" (आदित्यस्थः) पुरुषो यजूᳯंषि । श० १० । ५ । १ । ५ ॥

" अथ य एष एतस्मिन् (आदित्य-)मण्डले पुरुषः सोऽग्निस्तानि यजूᳯंषि स यजुषां लोकः । श० १० । ५ । २।१॥

" असौ वा आदित्य एषो ऽग्निः (यजु० ११ । ३१) । श० ६ । ४ । १ । १ ॥ ६ । ४ । ३ । ९, १० ॥

" आदित्यो वाऽ अस्य (अग्नेः) दिवि वर्चः । श० ७ । १ । १ । २३ ॥

" अयं वाऽ अग्निर्ऋतमसावादित्यः सत्यं यदि वासावृतमयᳯं (अग्निः) सत्यमुभयम्वेतदयमग्निः । श० ६ । ४ ।४।१०॥

" एष (आदित्यः) वै सत्यम् । ऐ० ४ । २० ॥

" सत्यमेष य एष (आदित्यः) तपति । श० १४ । १ । २ । २२ ॥

" असावादित्यः सत्यम् । तै० २ । १ । ११ । १ ॥

" तद्यत्तत्सत्यम् । असौ स आदित्यो य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः । श० १४ । ८ । ६ । २३ ॥

" सत्यᳯं हैतद्यद्रुक्मः । ·········तद्यत्तत्सत्यम् । असौ स आदित्यः । श० ६ । ७ । १ । १-२ ॥

" तस्य (अश्वस्य श्वेतस्य) रुक्मः पुरस्ताद्भवति । तदेतस्य रूपं क्रियते य एष (आदित्यः) तपति । श० ३ ।५।१।२०॥

" असौ वाऽ आदित्य एष रुक्मः । श० ६ । ७ । १ । ३ ॥

" आदित्यस्य (रूपं) रुक्मः । तै० ३ । ९ । २० । २ ॥

" असौ वाऽ आदित्य एष रुक्म एष हीमाः सर्वाः प्रजा अतिरोचते । श० ७ । ४ । १ । १० ॥

" आदित्यो वै भर्गः । जै० उ० ४ । २८ । २ ॥

" आदित्य एव चरणं यदा ह्येवैष उदेत्यथेदᳯं सर्वं चरति । श० १० । ३ । ५ । ३ ॥

आदित्यः असौ वाऽ आदित्यो हृदयम् । श० ९ । १ । २ । ४० ॥

,, असौ वाऽ आदित्यो द्रप्सः (यजु० १३ । ५ ॥) । श० ७ । ४ । १ । २० ॥

,, असौ वाऽ आदित्यः सᳬहितः (यजु० १८ । ३९) एष ह्यहोरात्रे संदधाति । श० ९ । ४ । १ । ८ ॥

,, असौ वाऽ आदित्य एष रथः । श० ९ । ४ । १ । १५ ॥

,, तस्य (आदित्यस्य) रथप्रोतश्चासमरथश्च (यजु० १५ । १७) सेनानीग्रामण्याविति वार्षिकौ तावृतू । श० ८ । ६ । १ । १८ ॥

,, तद्यदेष (आदित्यः) सर्वैर्लोकैस्समस्तस्मादेष (आदित्यः) एव साम । जै० उ० १ । १२ । ५ ॥

,, (प्रजापतिः) स्वरित्येव सामवेदस्य रसमादत्त । सो ऽसौ द्यौरभवत् । तस्यं यो रसः प्राणेदत् स आदित्यो ऽभवद्र-सस्य रसः । जै० उ० १ । १ । ५ ॥

,, साम्नामादित्यो देवतं तदेव ज्योतिर्जागतच्छन्दो द्यौः स्थानम् । गो० पू० १ । २९ ॥

,, यदनुदितः (आदित्यः) स हिङ्कारः । जै० उ० १ । १२।४॥

,, असावादित्य स्तोमभागाः । श० ८ । ५ । ४ । २ ॥

,, स यः स यज्ञो ऽसौ स आदित्यः । श० १४ । १ । १ । ६ ॥

,, एष वै संवत्सरो य एष (आदित्यः) तपति । श० १४ । १ । १ । २७ ॥

,, स यः स संवत्सरो ऽसौ स आदित्यः । श० १०।२।४ । ३ ॥

,, आदित्य एव प्रायणीयो भवति । श० ३ । २ । ३ । ६ ॥

,, तदसौ वा आदित्यः प्राणः । जै० उ० ४ । २२ । ९ ॥

,, आदित्यो वै प्राणः । जै० उ० ४ । २२ । ११ ॥

,, उद्यन्नु खलु वा आदित्यः सर्वाणि भूतानि प्रणयति तस्मा-देनं प्राण इत्याचक्षते । ऐ० ५ । ३१ ॥

,, असौ वाऽ आदित्यः कविः । श० ६ । ७ । २ । ४ ॥

,, आदित्यो वै घर्मः । श० ११ । ६ । २ । २ ॥

,, असौ वै घर्मो यो ऽसौ (आदित्यः) तपति । कौ० २ । १ ॥

आदित्यः आदित्यो निचित् । जै० उ० ३ । ४ । २ ॥
,, यन्महान्देव आदित्यस्तेन । कौ० ६ । ६ ॥
,, असौ वाऽ आदित्यः शुक्रः (यजु० १८ । ५०) । श० ९ । ४ । २ । २१ ॥
,, एष वै शुक्रो य एष (आदित्यः) तपति । श० ४ । ३ । १ । २६ ॥ ४ । ३ । ३ । १७ ॥
,, यद्वाऽ एष एव शुक्रो य एष (आदित्यः) तपति तद्यदेष तपति तेनैष शुक्रः । श० ४ । २ । १ । १ ॥
,, तत्र ह्यादित्यः शुक्रश्चरति । गो० पू० २ । ९ ॥
,, असौ वा आदित्यः शुक्रः । तां० १५ । ५ । ९ ॥
,, आदित्यो वाव पुरोहितः । ऐ० ८ । २७ ॥
,, आदित्यो वै देवसंस्फानः । गो० उ० ४ । ९ ॥
,, असौ वा आदित्यो लोकम्पृणा (इष्टका) । श० ८।७।४।८॥
,, असौ वाऽ आदित्यो लोकम्पृणैष हीमांल्लोकान्पूरयति । श० ८ । ७ । २ । १ ॥
,, वायुर्वा एतं (आदित्यं) देवतानामानशे । तां० ४ । ६ । ७ ॥
,, तदसावादित्य इमांल्लोकान्त्सूत्रे समावयते तद्यत्तत्सूत्रं वायुः सः । श० ८ । ७ । ३ । १० ॥
,, सा या सा वागसौ स आदित्यः । श० १० । ५ । १ । ४ ॥
,, आदित्य एव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥
,, आदित्यो यशः । श० १२ । ३ । ४ । ८ ॥
,, आदित्यो यूपः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥
,, असौ वा अस्य (अग्निहोत्रस्य कर्त्तुः) आदित्यो यूपः । ऐ० ५ । २८ ॥
,, अथ यद्विषुवन्तमुपयन्ति । आदित्यमेव देवतां यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । १४ ॥
,, आदित्यो बृहत् । ऐ० ५ । ३० ॥
,, असौ वाऽ आदित्यो ब्रह्म (यजु० १३ । ३) । श० ७ । ४ । १ । १४ ॥ १४ । १ । ३ । ३ ॥
,, आदित्यो वै ब्रह्म । जै० उ० ३ । ४ । ९ ॥
,, असावादित्यः सुब्रह्म । ष० १ । १ ॥

आदित्यः हन्तेति चन्द्रमा ओमित्यादित्यः। जै० उ० ३।६।२॥
,, ओमित्यादित्यः। जै० उ० ३।१३।१२॥
,, ओमित्यसौ यो ऽसौ (आदित्यः) तपति। ऐ० ५।३२॥
,, यदेतत् (आदित्य-)मण्डलं तपति। तन्महदुक्थं ता ऋचः स ऋचां लोकः। श० १०।५।२।१॥
,, (आदित्यस्य) मण्डलमेवऽर्चः। श० १०।५।१।५॥
,, अग्निश्च ह वा आदित्यश्च रौहिणावेताभ्याᳩ हि देवताभ्यां यजमानाः स्वर्गं लोकᳫ रोहन्ति। श० १४।२।१।२॥
,, छन्दोभिर्वै देवा आदित्यᳩ स्वर्गं लोकमहरन्। तां० १२। १०।६॥
,, त्रैष्टुभो वा एष य एष (आदित्यः) तपति। कौ० २५।४॥
,, त्रैष्टुब्जागतो वा आदित्यः। तां० ४।६।२३॥
,, जगती छन्द आदित्यो देवता श्रोणी। श० १०।३।२।६॥
,, स (आदित्यः) उद्यन्नेवामूम् (दिवम्) अधिद्रवत्यस्तं यन्निमाम् (पृथिवीम्) अधिद्रवति। श० १।७।२।११॥
,, सूर्य्यशब्दमपि पश्यत॥

आदित्याः अदितिः पुत्रकामा साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनमपचत्। तस्या उच्छेषणमददुः। तत्प्राश्नात् सा रेतो ऽधत्त। तस्यै धाता चार्यमा चाजायेताम्। ··· मित्रश्च वरुणश्चाजायेताम्। ··· अंशश्च भगश्चाजायेताम्। ··· इन्द्रश्च विवस्वांश्चाजायेताम्। तै० १।१।९।१-३॥
,, अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत्तत उच्छिष्टमाश्नात् सा गर्भमधत्त तत आदित्या अजायन्त। गो० पू० २।१५॥
,, (प्रजापते रेतस उत्पन्नं) यत्तृतीयमदीदेदिव त आदित्या अभवन्। ऐ० ३।३४॥
,, द्वय्यो ह वा इदमग्रे प्रजा आसुः। आदित्याश्चैवाङ्गिरसश्च। श० ३।५।१।१३॥
,, विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पातु। श० ३।५।२।७॥
,, वरुण आदित्यैः (उदक्रामत्)। ऐ० १।२४॥
,, वरुण आदित्यैः (व्यद्रवत्)। श० ३।४।२।१॥

आदित्याः आदित्यास्त्वा पश्चादभिषिञ्चन्तु जागतेन छन्दसा । तै० २ । ७ । १५ । ५ ॥

,, अथैनं (इन्द्रं) प्रतीच्यां दिश्यादित्या देवाः ... अभ्यषिञ्चन् ··· स्वाराज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥

,, गावो वा आदित्याः । ऐ० ४ । १७ ॥

,, आदित्या एव यशः । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, आदित्यानीमानि यजूꣳषीत्याहुः । श० ४ । ४ । ५ । १९॥

,, आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूꣳषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते । श० १४ । ९ । ४ । ३३ ॥

,, आदित्यानां तृतीयसवनम् । कौ० १६ । १ ॥ ३० । १ ॥ श० ४ । ३ । ५ । १ ॥

,, आदित्यं हि तृतीयसवनम् । तां० ९ । ७ । ७ ॥

,, अथेमं विष्णुं यज्ञं त्रेधा व्यभजन्त । वसवः प्रातःसवनꣳ रुद्रा माध्यन्दिनꣳ सवनमादित्यास्तृतीयसवनम् । श० १४ । १ । १ । १५ ॥

,, जगत्यादित्यानां पत्नी । गो० उ० २ । ६ ॥

,, आदित्यानां वा एतद्रूपम् यल्लाजाः । तै० ३ । ८ । १४ । ४ ॥

,, वसवो वै रुद्रा आदित्या सꣳस्रावभागाः । तै० ३ । ३ । ९ । ७ ॥

,, तान् ह्यादित्यानङ्गिरसो याजयाञ्चक्रुः । गो० उ० ६ । १४ ॥

,, त एतेन सद्यःक्रियाङ्गिरस आदित्यानयाजयन् । श० ३ । ५ । १ । १७ ॥

,, आदित्याश्चाङ्गिरसश्चैतत् सत्रꣳ समदधतादित्यानामेकविꣳशतिराङ्गिरसां द्वादशाहः । तां० २४ । २ । २ ॥

,, आदित्या वा इत उत्तमां सुवर्गं लोकमायन् । ते वा इतो यन्तं प्रतिनुदन्ते । तै० १ । १ । ९ । ८ ॥

,, (आदित्याः) स्वर्गं लोकमायन्नहीयन्ताङ्गिरसः । तां० १६ । १२ । १ ॥

,, ते ह्यादित्याः पूर्वे स्वर्गं लोकं जग्मुः पश्चेवाङ्गिरसः षष्ट्यां वा वर्षेषु । ऐ० ४ । १७ ॥

,, तत उ ह्यादित्याः स्वरीयुः । कौ० ३० । ६ ॥

आदित्याः तऽ आदित्याः । चतुर्भि स्तोमैश्चतुर्भिः पृष्ठैर्लघुभिः सामभिः स्वर्गं लोकमभ्यप्लवन्त । श० १२ । २ । २ । १० ॥

,, तस्य (स्वर्गस्य लोकस्य) आदित्या अधिपतयः । तै० ३ । ८ । १८ । २ ॥

आधिपत्यम् अथैनं (इन्द्रं) ऊर्ध्वायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः ....अभ्यषिञ्चन्......पारमेष्ठ्याय माहाराज्यायाऽऽधिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय। ऐ । ८ । १४ ॥

आपः आपो वै सरिरम् (यजु० १३ । ४२) । श० ७ । ५ । २ । १८ ॥

,, आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत् । तै० १ । १ । ३ । ५ ॥

,, आपो वा इदमग्रे महत्सलिलमासीत् । जै० उ० १ । ५६ । १ ॥

,, आपो ह वाऽ इदमग्रे सलिलमेवास । ता (आपः) अकामयन्त (ता आप ऐक्षन्त बह्व्यः स्याम प्रजायेमहीति । छान्दोग्योपनिषदि ६ । २ । ४ ॥) कथन्नु प्रजायेमहीति ता अश्राम्यँस्तास्तपो ऽतप्यन्त तासु तपस्तप्यमानासु हिरण्मयमाण्डं सम्बभूवाजातो ह तर्हि संवत्सर आस तदिदं हिरण्मयमाण्डं यावत्संवत्सरस्य वेला तावत्पर्यप्लवत ॥ ततः संवत्सरे पुरुषः समभवत् । स प्रजापतिः ("Accordidg to the writings of the Egyptions, there was a time when neither heaven nor earth existed, and when nothing had being except the boundless primeval water, which was, however, shrouded with thick darkness. [नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्—ऋ० १० । १२९ । १ ॥ तम आसीत्तमसा गूढमग्रे ऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्—ऋ० १० । १२९ । ३ ॥] .... At length the spirit of the primeval water felt the desire for creative activity, and having uttered the word, the world sprang straightway into being in the form which had already been depicted in the mind of the spirit before he spoke the word which resulted in its creation.

[सो ऽपो ऽसृजत । वाच एव लोकाद्वागेवास्य सासृज्यत—श० ६ । १ । १ । ९ ॥ सो ऽकामयत । आभ्यो ऽद्भ्यो ऽधि-प्रजायेयेति सो ऽनया त्रय्या विद्यया सहापः प्राविशत्तत आण्डꣳ समवर्तत तदभ्यमृशदस्त्वित्यस्तु भूयो ऽस्त्वित्येव तदब्रवीत्ततो ब्रह्मैव प्रथममसृज्यत त्रय्येव विद्या-श० ६ । १ । १ । १०] The next act of creation was the formation of a germ, or egg, from which sprang Ra, the Sun-god, within whose shining form was embodied the almighty power of the divine spirit." See "Egyption Ideas of the Future Life" by E.A. Wallis Budge, pages 22 and 23. [Sun=सविता=प्रजापतिः-प्रजापतिर्वै सविता । तां० १६ । ५ । १७ ॥] । श० ११ । १ । ६ । १-२ ॥

आपः एष वै रयिर्वैश्वानरः (यदापः) । श० १० । ६ । १ । ५ ॥

„ वस्तिस्त्वाऽएष वैश्वानरस्य (यदापः) । श० १० । ६ । १ । ५ ॥

„ आपो व्यानः । जै० उ० ४ । २२ । ९ ॥

„ शुक्रा ह्यापः । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥

„ चन्द्रा ह्यापः । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥

„ आपो वै जनयो (यजु० १२ । ३५) ऽद्भ्यो हीदꣳ सर्वं जायते । श० ६ । ८ । २ । ३ ॥

„ यद्भव आपस्तेन (भवः=जन्म—अमरकोषे, ३ काण्डे, नानार्थवर्गे, २०५ श्लोके ॥ जन्म=आपः—वैदिकनिघण्टौ १ । १२) । कौ० ६ । २ ॥

„ आपस्सावित्री । जै० उ० ४ । २७ । ३ ॥

„ आपो वै पुष्करम् । श० ६ । ४ । २ । २ ॥ ७ । ४ । १ । ८ ॥

„ आपो वै पुष्करपर्णम् । श० ७ । ३ । १ । ९ ॥

„ आपः पुष्करपर्णम् । श० ६ । ४ । १ । ९ ॥ १० । ५ । २ । ६ ॥

„ आपो वै प्रजापतिः परमेष्ठी (यजु० १४ । ९ ॥) ता हि परमे स्थाने तिष्ठन्ति । श० ८ । २ । ३ । १३ ।

आपः स (परमेष्ठी प्राजापत्यः) आपो ऽभवत्......परमाद्वाऽ एत-त्स्थानाद्वर्षति यद्दिवस्तस्मात्परमेष्ठी नाम। श० ११ । १ । ६ । १६ ॥

,, आपो हि पयः। कौ० ५ । ४ ॥ गो० उ० १ । २२ ॥

,, अपामेष ओषधीनाꣳ रसो यत्पयः। श० १२ । ८ । २ । १३ ॥

,, वाग्देवत्यं साम वाचो मनो देवता मनसः पशवः पशूनामोष-धय ओषधीनामापः। तदेतदद्भ्यो जातं सामाऽप्सु प्रतिष्ठित-मिति। जै० उ० १ । ५९ । १४ ॥

,, ओषधयो वाऽ अपामोम्न (यजु० १३ । ५३) । यत्र ह्याप उन्द-न्त्यस्तिष्ठन्ति तदोषधयो जायन्ते। श० ७ । ५ । २ । ४७ ॥

,, आपो ह्येतस्य (सोमस्य) लोकः। श० ४ । ४ । ५ । २१ ॥

,, आपो हि रेतः। तां० ८ । ७ । ९ ॥

,, आपो रेतः प्रजननम्। तै० ३ । ३ । १० । ३ ॥

,, आपो मे रेतसि श्रिताः। तै० ३ । १० । ८ । ६ ॥

,, घर्मो ह्यापः। श० ११ । १ । ६ । २४ ॥

,, आपः प्रोक्षण्यः। ऐ० ५ । २८ ॥

,, दिव्या आपः प्रोक्षणयः। तै० २ । १ । ५ । १ ॥

,, आपो वै सूदो ऽन्नं दोहः। श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥

,, आपः स्वरसामानः। कौ० २४ । ४ ॥

,, अथ यत् स्वरसाम्न उपयन्ति। अप एव देवतां यजन्ते। श० १२ । १ । ३ । १३ ॥

,, रेवत्यः (यजु० १ । २१) आपः। श० १ । २ । २ । २ ॥

,, आपो वै रेवत्यः। तां० ७ । ९ । २० ॥ १३ । ९ । १६ ॥

,, आपो वै रेवतीः। तै० ३ । २ । ८ । २ ॥

,, अपां वा एष रसो यद्रेवत्यः। तां० १३ । १० । ५ ॥

,, वज्रो वाऽ आपः। श० १ । ७ । १ । २० ॥

,, आप इति तत् प्रथमं वज्ररूपम्। कौ० १२ । २ ॥

,, आपो ह वै वृत्रं जघ्नुस्तेनैवैतद्वीर्येणापः स्यन्दन्ते। श० ३ । ९ । ४ । १४ ॥

,, वृत्रतुरः (यजु० ६ । ३४) इति वृत्रꣳ ह्येताः (आपः) अघ्नन्। श० ३ । ६ । ४ । १६ ॥

आपः आपो वै विधाः (यजु० १४ । ७) अद्भिर्हीदꣳ सर्वं विहितम् । श० ८ । २ । २ । ८ ॥

,, आपो वै द्यौः । श० ६ । ४ । १ । ६ ॥

,, द्यौर्वाऽ अपाꣳ सदनम् (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ । २ । ५६ ॥

,, आपो दिव ऊधः (यजु० १२ । २० ॥) । श० ६ । ७ । ४ । ५ ॥

,, आपो वै दिव्यं नभः । श० ३ । ८ । ५ । ३ ॥

,, आपो वै वरेण्यम् । जै० उ० ४ । २८ । १ ॥

,, वायुरापश्चन्द्रमा इत्येते भृगवः । गो० पू० २ । ८ (९) ॥

,, आपो वै सर्वः (=शर्वः=रुद्रः) अद्भ्यो हीदꣳ सर्वं जायते । श० ६ । १ । ३ ११ ॥

,, आप एव सर्वम् । गो० पू० ५ । १५ ॥

,, एष वाऽ अपाꣳ रसो यो ऽयं (वायुः) पवते । श० ५ । १ । २ । ७ ॥

,, वायुर्वाऽ अपामेम (यजु० १३ । ५३) यदा ह्येवैष इतश्चेतश्च वात्यथापो यन्ति । श० ७ । ५ । २ । ४६ ॥

,, अपः श्लाघा (गच्छति) । गो० पू० २ । २ ॥

,, स वा एषो (सूर्य्यः)ऽपः प्रविश्य वरुणो भवति । कौ० १८ । ९ ॥

,, अथ यदप्सु वरुणं यजति स्व एवैनं तदायतने प्रीणाति । कौ० ५ । ४ ॥

,, अप्सु वै वरुणः । तै० १ । ६ । ५ । ६ ॥

,, यो ह वाऽ अयमपामावर्त्तः स ह्यवभृथः स हैष वरुणस्य पुत्रो वा भ्राता वा । श० १२ । ९ । २ । ४ ॥

,, वरुणस्य वा अभिषिच्यमानस्याप इन्द्रियं वीर्य्यं निरघ्नन् । तत्सुवर्णꣳ हिरण्यमभवत् । तै० १ । ८ । ६ । १ ॥

,, अग्निर्ह वाऽ अपोऽभिदध्यौ मिथुन्याभिः स्यामिति ताः सम्बभूव तासु रेतः प्रासिञ्चत्तद्धिरण्यमभवत्तस्मादेतदग्निसंकाशमग्नेर्हि रेतस्तस्मादप्सु (हिरण्यं) विन्दन्त्यप्सु हि (रेतः) प्रासिञ्चत् । श० २ । १ । १ । ५ ॥

,, अद्भ्यो वा एष (अग्निः) प्रथममाजगाम । श० ६ : ७ । ४ । ४ ॥

आपः आपो वाऽ अस्य (अग्नेः) दिवो ऽर्णः । श० ७ । १ । १ । २४ ॥

„ अन्तरिक्षं वाऽ अपाᳬं सधस्थम् (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ । २ । ५७ ॥

„ आपो वै मरुतः । ऐ० ६ । ३० ॥ कौ० १२ । ८ ॥

„ अप्सु वै मरुतः श्रितः (श्रिताः) । गो० उ० १ । २२ ॥

„ अप्सु वै मरुतः शिताः (? श्रिताः) । कौ० ५ । ४ ॥

„ अथ यत्कृष्णं तदपां रूपमन्नस्य मनसो यजुषः । जै० उ० १ । २५ । ९ ॥

„ अन्नं वाऽ अपां पाथः (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ । २ । ६० ॥

„ आपो वै सहस्रियो वाजः (यजु० १२ । ४७) । श० ७ । १ । १ । २२ ॥

„ गिरिबुध्ना उ वा आपः । श० ७ । ५ । २ । १८ ॥

„ वैराजीर्वा आपः । कौ० १२ । ३ ॥

„ अद्भिर्यज्ञः प्रणीयमानः प्राङ् तायते । तस्मादाचमनीयं पूर्वमाहारयति । गो० पू० १ । ३९ ॥

„ अप्सुयोनिर्वै वेतसः । श० १२ । ८ । ३ । १५ ॥

„ अप्सुजा वेतसः । श० १३ । २ । २ । १९ ॥

„ अप्सुजो वेतसः । तै० ३ । ८ । ४ । ३ ॥ ३ । ८ । १९ । २ ॥ ३ । ८ । २० । ४ ॥

„ तद्यत्तत्सत्यम् । आप एव तदापो हि वै सत्यम् । श० ७ । ४ । १ । ६ ॥

„ तदेतत्सत्यमक्षरं यदोमिति । तस्मिन्नापः प्रतिष्ठिताः । जै० उ० १ । १० । २ ॥

„ पृथिव्यप्सु श्रिता । तै० ३ । ११ । १ । ६ ॥

„ पृथिव्यप्सु (प्रतिष्ठिता) । ऐ० ३ । ६ ॥ गो० उ० ३ । २ ॥

„ इयं (पृथिवी) वाऽ अपामयनम् (यजु० १३ । ५३) अस्याᳬं ह्यापो यन्ति । श० ७ । ५ । २ । ५० ॥

„ समुद्रो वाऽ अपां योनिः (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ । २ । ५८ ॥

„ समुद्रो ऽसि तेजसि श्रितः । अपां प्रतिष्ठा । तै० ३ । ११ । १ । ४ ॥

आपः विद्युद्वाऽ अपां ज्योतिः (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ । २ । ४६ ॥

„ अभ्रं वाऽ अपां भस्म (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ । २ । ४८ ॥

„ सिकता वा अपां पुरीषम् (यजु० १३ । ५३) । श० ७ । ५ । २ । ४९ ॥

„ चक्षुर्वाऽ अपां क्षयः (यजु० १३ । ५३) तत्र हि सर्वदैवापः क्षियन्ति । श० ७ । ५ । २ । ५४ ॥

„ श्रोत्रं वा अपाᳬ सधिः (यजु० १३। ५३) । श० ७ । ५ । २ । ५५ ॥

आप्त्याः (देवाः) साध्याश्च त्वा ऽऽप्त्याश्च देवाः पाङ्क्तेनच्छंदसा त्रिणवेन स्तोमेन शाक्करेण साम्ना ऽऽरोहन्तु तानन्वारोहामि राज्याय । ऐ० ८ । १२ ॥

„ अथैनं (इन्द्रं) अस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि साध्याश्चाऽऽप्त्याश्च देवाः .....अभ्यषिञ्चन्......राज्याय । ऐ० ८ । १४ ॥

आप्रियः (ऋचः) तमेताभिराप्रीभिराप्याययन्ति तद्यदाप्याययन्ति तस्मादाप्रियो नाम । श० ३ । ८ । १ । २ ॥

„ आप्रीभिराप्रीणाति । ऐ० २ । ४ ॥ कौ० १० । ३ ॥

आमयावी त्रैशोकं ज्योगामयाविने ब्रह्मसाम कुर्य्यात् । तां० ८ । १ । ८ ॥

„ ज्योगामयाविने उभे (बृहद्रथन्तरे) कुर्य्यादपक्रान्तौ वा एतस्य प्राणापानौ यस्य ज्योगामयति प्राणापानावेवास्मिन्दधाति । तां० ७ । ६ । १२ ॥

आयुः आयुर्वै विकर्णी (इष्टका) । श० ८ । ७ । ३ । ११ ॥

„ आयुर्वै सहस्रम् । तै० ३ । ८ । १५ । ३ ॥ ३ । ८ । १६ । २ ॥

„ विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिर आयुना नाम्नेहि (यजु० ५ । ९) इति । श० ३ । ५ । १ । ३२ ॥

„ अमृतमायुर्हिरण्यम् । श० ३ । ८ । २ । २७ ॥ ४ । ५ । २ । १० ॥ ४ । ६ । १ । ६ ॥

„ आयुर्हि हिरण्यम् । श० ४ । ३ । ४ । २४ ॥

„ आयुर्वै हिरण्यम् । तै० १ । ८ । ६ । १ ॥

„ यद्धिरण्यं ददाति आयुस्तेन वर्षीयः कुरुते । गो० उ० ३ । १९ ॥

आर्त्तिः अनार्त्यै त्वेत्येवैतदाह यदाहाव्यथायै त्वेति (व्यथा=आर्त्तिः)। श० ५। ४। ३। ७॥

आर्द्रा (नक्षत्रम्) स (रुद्रः) एतꣳ रुद्रायाऽऽर्द्रायै प्रैयङ्गवं चरुं पयसि निरवपत्। ततो वै स पशुमानभवत् । तै० ३। १। ४। ४॥

आशाः विष्णवाशानां पते। तै० ३। ११। ४। १॥

आशीः वह्नी वै यजुःष्वाशीः। श० १। २। १। ७॥ ३। ५। २। ११॥ ३। ६। १। १७॥

आशुस्त्रिवृत् (यजु० १४। २३) वायुर्वाऽ आशुस्त्रिवृत्स एषु त्रिषु लोकेषु वर्तते। श० ८। ४। १। ९॥

आहवनीयः (अग्निः) आहवनीयभाग्यजमानः। कौ० ३। ६॥

आहिताग्निः नो ह्यनाहिताग्नेर्व्रतचर्यास्ति। श० २। १। ४। ७॥

आहुतिः द्वे वा आहुती सोमाहुतिरेवान्याज्याहुतिरन्या। श० १। ७। २। १०॥

" आहुतिर्हि यज्ञः। श० ३। १। ४। १॥

इडा ऐडꣳ रथन्तरम्। तां० ७। ६। १७॥

इन्द्रः स वा एष (आदित्यः) इन्द्रो वैमृध उद्यन् भवति ...... इन्द्रो वैकुण्ठो मध्यन्दिने। जै० उ० ४। १०। १०॥

" इन्द्रमदेव्यो माया असचन्त स प्रजापतिमुपाधावत्तस्मा एतं विघनं (क्रतुं) प्रायच्छत्तेन सर्वा मृधो व्यहत। तां० १९। १९। १॥

" इन्द्रो वै मघवान्। श० ४। १। २। १५, १६॥

" स उ एव मखः स विष्णुः। तत इन्द्रो मखवानभवन्मखवान्ह वै तं मघवानित्याचक्षते परोऽक्षम्। श० १४। १। १। १३॥

" इन्द्रो वसुधेयः। श० १। ८। २। १६॥

" इन्द्र उ वै वेनः। (ऋ० १०। १२३। १)। कौ० ८। ५॥

" इन्द्रो वै वेधाः (ऋ० ८। ४३। ११॥)। ऐ० ६। १०॥ गो० उ० २। २०॥

" इन्द्रो हि षोडशी। श० ४। २। ५। १४॥

" इन्द्रो ह वै षोडशी। श० ४। ५। ३ १

" इन्द्र उ वै षोडशी। कौ० १७। १, ४॥

इन्द्रः एतद्ध वा इन्द्राग्न्योः प्रियं धाम यद्वागिति । ऐ० ६ । ७ ॥ गो० उ० ५ । १३ ॥

,, वाग्घ्यैन्द्री । ऐ० २ । २६ ॥

,, वाक् च प्राणश्चैन्द्रवायवः (ग्रहः । इन्द्रः=वाक्; वायुः=प्राणः) । ऐ० २ । २६ ॥

,, अथैतद्वामे ऽक्षणि पुरुषरूपम् । एषास्य (दक्षिणे ऽक्षणि वर्त्तमानस्य पुरुषस्येन्द्राख्यस्य) पत्नी विराट् । श० १४ । ६ । ११ । ३ ॥

,, इन्द्रो वृषा । श० १ । ४ । १ । ३३ ॥

,, इन्द्रो वै वृषा । तां० ९ । ४ । ३ ॥

,, इन्द्रो वै वाजी । ऐ० ३ । १८ ॥

,, इन्द्रो वै गोपाः (ऋ० १ । ८६ । १) । ऐ० ६ । १० ॥ गो० उ० २ । २० ॥

,, इन्द्र उ वै परुच्छेपः । कौ० २३ । ४ ॥

,, एतेन (पारुच्छेपेन रोहिताख्येन छन्दसा) वा इन्द्रः सप्त स्वर्गाँल्लोकानरोहत् । ऐ० ५ । १० ॥

,, इन्द्रो वै चतुर्होता । तै० २ । ३ । १ । ३ ॥

,, इन्द्रः सप्तहोता । तै० २ । ३ । १ । १ ॥

,, इन्द्रः सप्तहोत्रा । तै० २ । २ । ८ । ५ ॥

,, यन्मनः स इन्द्रः । गो० उ० ४ । ११ ॥

,, इन्द्रो वै प्रदाता स एवास्मै यज्ञं प्रयच्छति । कौ० ४ । २ ॥

,, यो ह खलु वाव प्रजापतिः स उ वेवेन्द्रः । तै० १ । २ । २ । ५ ॥

,, इन्द्रो वै त्वष्टा (ऋ० १ । २२ । ६ ॥) । ऐ० ६ । १० ॥

,, इन्द्र उ वै वातापिः स हि वातमाप्त्वा शरीराण्यर्हन्प्रतिप्रैति । कौ० २७ । ४ ॥

,, कतमत्तदक्षरमिति । यत्क्षरन्नाऽक्षीयतेति । इन्द्र इति । जै० उ० १ । ४३ । ८ ॥

,, इन्द्र उ वै वरुणः स उ वै पयोभाजनः । कौ० ५ । ४ ॥

,, इन्द्रो वै वरुणः स उ वै पयोभाजनः । गो० उ० १ । २२ ॥

,, इन्द्रस्य (="वरुणस्य" इति सायणः) शतभिषक् (नक्षत्रम्) । तै० १ । ५ । १ । ५ ॥

इन्द्रः इन्द्रो लोकम्पृणा । श० ८ । ७ । २ । ६ ॥

„ यत्पुरस्ताद्भासीन्द्रो राजा भूतो वासि । जै० उ० ३ । २१ । २ ॥

„ दक्षिणा दिक् । इन्द्रो देवता । तै० ३ । ११ । ५ । १ ॥

„ अथ यद्विश्वजितमुपयन्ति । इन्द्रमेव देवतां यजन्ते । श० १२ । १ । ३ । १५ ॥

„ इन्द्रो विश्वजिदिन्द्रो हीदं सर्वं विश्वमजयत् । कौ० २४ । १ ॥

„ ततो वा इदमिन्द्रो विश्वमजयद्यद्विश्वमजयत्तस्माद्विश्वजित् । तां० १६ । ४ । ५ ।

„ इन्द्रो वै युधाजित् । तां० ७ । ५ । १४ ॥

„ वृषणश्वस्य ह मेनस्य मेनका नाम दुहितास ताᳪ हेन्द्रश्चकमे । ष० १ । १ ॥

„ इन्द्रो वै प्रासहस्पतिस्तुविष्मान् । ऐ० ३ । २२ ॥

„ सेना वा इन्द्रस्य प्रिया जाया वावाता प्रासहा नाम । ऐ० ३ । २२ ॥

„ सेना ह नाम पृथिवी (=विस्तीर्णेति सायणः) धनञ्जया विश्वव्यचा अदितिः । सूर्यत्वक् । इन्द्राणी देवी प्रासहा ददाना । तै० २ । ४ । २ । ७ ॥

„ वैखानसा वा ऋषय इन्द्रस्य प्रिया आसन् । तां० १४ । ४ । ७ ॥

„ इन्द्रो यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागभ्यवदत्सो ऽशुद्धो ऽमन्यत स एतच्छुद्धाशुद्धीयमपश्यत्तेनाशुध्यत् (इन्द्रो यतीन्त्सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तान्दाक्षिणत उत्तरवेद्या आदन्—तैत्तिरीयसंहितायाम् ६ । २ । ७ । ५ ॥ अथर्ववेदे २ । २७ । ५:—तयाहं शत्रून्त्साक्षे इन्द्रः सालावृकाँ इव ॥ ऋ० १० । ७३ । ३:—त्वमिन्द्र सालावृकान्त्सहस्रमासन्दधिषे ॥)। तां० १४ । ११ । २८ ॥

„ इन्द्रो यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागभ्यवदत्सो ऽशुद्धो ऽमन्यत स एते शुद्धाशुद्धीये (सामनी) अपश्यत्ताभ्यामशुध्यत् । तां० १९ । ४ । ७ ॥

„ यत्रेन्द्रं देवताः (यज्ञेषु) पर्यवृञ्जन्, (यतः स इन्द्रः) विश्वरूपं त्वाष्ट्रमभ्यमंस्त वृत्रमस्तृत यतीन्त्सालावृकेभ्यः प्राद-

दरुर्मघानवधीद् बृहस्पतेः प्रत्यवधीदिति तत्रेन्द्रः सोमपीथेन व्यार्द्धत [तं (प्रतर्दनं) हेन्द्र उवाच मामेव विजानीह्येतदेवाहं मनुष्याय हिततमं मन्ये यन्मां विजानीयात्त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रमहनमरुन्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छं बह्वीः सन्धा अतिक्रम्य दिवि प्रह्लादीयानतृणमहमन्तरिक्षे पौलोमान् पृथिव्यां कालकाञ्जांस्तस्य मे तत्र न लोम च नामीयत स यो मां (इन्द्रं) वेद न ह वै तस्य केन चन कर्मणा लोको मीयते न स्तेयेन न भ्रूणहत्यया न मातृवधेन न पितृवधेन नास्य पापं चकृषो मुखान्नीलं वेतीति—शंकरानन्दीयटीकायुतायां कौषीतकिब्राह्मणोपनिषदि ३ । १ ॥] । ऐ० ७ । २८ ॥

इन्द्रः कालकञ्जा वै नामासुरा आसन् । ते सुवर्गाय लोकायाग्निमचिन्वत । पुरुष इष्टकामुपादधात् पुरुष इष्टकाम् । स इन्द्रो ब्राह्मणो ब्रुवाण इष्टकामुपाधत्त । एषा मे चित्रा नामेति । ते सुवर्गलोकमाप्रारोहन् । स इन्द्र इष्टकामवृहत् । ते ऽवाकीर्यन्त ये ऽवाकीर्यन्त । त ऊर्णनाभयो ऽभवन् । द्वावुदपतताम् । तौ दिव्यौ श्वानावभवताम् (पश्यत—मैत्रायणीसंहिता १ । ६ । ९ ॥ काठकसंहिता ८ । १) । तै० १ । १ । २ । ४-६ ॥

,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागभ्यवदत् स प्रजापतिमुपाधावत्तस्मा एतमुपहव्यं प्रायच्छत् । तां० १८ । १ । ६ ॥

,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्य प्रायच्छत्तेषां त्रय उदशिष्यन्त रायोवाजो बृहद्गिरिः पृथुरश्मिः । तां० ८ । १ । ४ ॥

,, इन्द्रो यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्तेषां त्रय उदशिष्यन्त पृथुरश्मिर्बृहद्गिरी रायोवाजः । तां० १३ । ४ । १७ ॥

,, युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् (ऋ० १० । १३१ । ४ ॥ यजु० १० । ४३ ॥) इत्याश्राव्याहाश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रꣳ सुत्रामाणं यजेति । श० ५ । ५ । ४ । २५ ॥

,, (नमुचिः) तस्य (इन्द्रस्य) एतयैव सुरयेन्द्रियं वीर्यꣳ सोमपीथमन्नाद्यमहरत्स ह न्यर्णः शिश्ये । श० १२ । ७ । १ । १० ॥

इन्द्रः 'अपां फेनेन नमुचे(ः) शिर इन्द्रोदवर्तयः' विश्वा यदजय(ः) स्पृधः (ऋ० ८। १४। १३) इति पाप्मा वै नमुचिः। श० १२ ७। ३। ४॥

„ इन्द्रश्च वै नमुचिश्चासुरः समदधातान्न नौ नक्तन्न दिवाहन-न्नार्द्रेण न शुष्केणेति तस्य व्युष्टायामनुदित आदित्येऽपां फेनेन शिरोऽच्छिनत्। तां० १२। ६। ८॥

„ नमुचिर्ह वै नामासुर आस तमिन्द्रो निविव्याध तस्य पदा शिरोऽभितष्ठौ स यदभिष्ठित उदबाधत स उच्छ्वङ्कस्तस्य पदा शिरः प्रचिच्छेद ततो रक्षः समभवत्। श० ५। ४। १। ९॥

„ "नमुचि" शब्दमपि पश्यत॥

„ तं (त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रं विश्वरूपं) इन्द्रो दिद्वेष तस्य तानि शीर्षाणि प्रचिच्छेद। श० १। ६। ३। २॥

„ स (इन्द्रः) यत्र त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रं विश्वरूपं जघान। श० १। २। ३। २॥

„ इन्द्रो वै वृत्रहा। कौ० ४। ३॥

„ महानाम्नीभिर्वा इन्द्रो वृत्रमहन्। कौ० २३। २॥

„ इन्द्रो वा एष पुरा वृत्रस्य वधादथ वृत्रꣳ हत्वा यथा महा-राजो विजिग्यान एवं महेन्द्रोऽभवत्। श० १। ६। ४। २१॥ ४। ३। ३। १७॥

„ इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा विश्वकर्माऽभवत्। ऐ० ४। २२॥

„ तस्य (इन्द्रस्य) असौ (द्यु-)लोको नाभिजित आसीत्तं (इन्द्रः) विश्वकर्मा भूत्वाऽभ्यजयत्। तै० १। २। ३। ३॥

„ मरुतो ह वै क्रीडिनो वृत्रꣳ हनिष्यन्तमिन्द्रमागतं तमभितः परिचिक्रीडुर्महयन्तः। श० २। ५। ३। २०

„ ते (मरुतः) एनं (इन्द्रं) अभ्यक्रीडन्। तै० १। ६। ७। ५॥

„ इन्द्रो वै मरुतः क्रीडिनः। गो० उ० १। २३॥

„ इन्द्रो वै मरुतः सान्तपनाः। गो० उ० १। २३॥

„ इन्द्रस्य वै मरुतः। कौ० ५। ४, ५॥

„ धर्म इन्द्रो राजेत्याह तस्य देवा विशः। श० १३। ४। ३। १४॥

इन्द्रः एतद्वाऽ इन्द्रस्य निष्केवल्यꣳ सवनं यन्माध्यन्दिनꣳ स वनं तेन वृत्रमजिघांसत्तेन व्यजिगीषत । श० ४ । ३ । ३ । ६ ॥
,, ऐन्द्रं वै माध्यन्दिनं सवनम् । जै० उ० १ । ३७ । ३ ॥
,, इन्द्रस्य माध्यन्दिनं सवनम् । कौ० १४ । ५ ॥
,, ऐन्द्रं हि त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम् । कौ० २९ । २ ॥
,, ऐन्द्रं त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनम् । गो० उ० ४ । ४ ॥
,, त्रैष्टुभ इन्द्रः । कौ० ३ । २ ॥ २२ । ७ ॥
,, इन्द्रः (श्रियः) वलम् (आदत्त) । श० ११ । ४। ३ । ३ ॥
,, तान् (पशून्) इन्द्रः पञ्चदशेन स्तोमेन नाप्नोत् । तै० । २ । ७ । १४ । २ ॥
,, ऐन्द्रो राजन्यः । तां० १५ । ४ । ८ ॥
,, (राजन्यस) इन्द्रो देवता । तां० ६ । १ । ८ ॥
,, हरिव आगच्छेति पूर्वपक्षापरपक्षौ वा इन्द्रस्य हरी ताभ्याꣳ हीदꣳ सर्वं हरति । ष० १ । १ ॥
,, ऐन्द्री द्यौः । तां० १५ । ४ । ८ ॥
,, द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी । श० १४ । ६ । ४ । २१ ॥
,, ऐन्द्रꣳ हि पुरीषम् । श० ८ । ७ । ३ । ७ ॥
,, अथ यत्पुरीषꣳ स इन्द्रः । श० १० । ४ । १ । ७ ॥
,, ऐन्द्रयो वालखिल्याः (ऋचः) । ऐ० ६ । २८ ॥
,, ऐन्द्रो वा एष यज्ञक्रतुर्यत्साकमेधाः । कौ० ५ । ५ ॥ गो० उ० १ । २३ ॥
,, इन्द्रो ज्येष्ठामनु नक्षत्रमेति । तै० ३ । १ । २ । १ ॥
,, इन्द्रस्य रोहिणी (=ज्येष्ठानक्षत्रमिति सायणः) । तै० १ । ५ । १ । ४ ॥
,, एता वाऽ इन्द्रनक्षत्रं यत्फल्गुन्यः । श० २ । १ । २ । ११ ॥
,, ऐन्द्रꣳ सान्नाय्यम् (हविः) । श० २ । ४ । ४ । १२ ॥
,, ऐन्द्रं वै दधि । श० ७ । ४ । १ । ४२ ॥
,, ऐन्द्रो ब्राह्मणाच्छंसी । श० ९ । ४ । ३ । ७ ॥ तै० १ । ७ । ६ । १ ॥
,, ऐन्द्राबार्हस्पत्यं ब्राह्मणाच्छंसिन उक्थं भवति । गो० उ० ४ । १४, १६ ॥

इन्द्रः ऐन्द्रो वाऽ एष यज्ञो यत्सौत्रामणी। श० १२। ८। २। २४॥
„ ऐन्द्रो वा एष यज्ञक्रतुर्यत् सौत्रामणी। कौ० १६। १०॥ गो० उ० ५। ७॥
„ ऋषभमिन्द्राय सुत्रामणऽ आलभते। श० ५। ५। ४। १॥
„ तस्मात्सदस्यृक्सामाभ्यां कुर्वन्त्यैन्द्रꣳ हि सदः। श० ४। ६। ७। ३।॥
„ ऐन्द्रꣳ हि सदः। श० ३। ६। १। २२।॥

इन्द्राग्नी इन्द्राग्नी वै विश्वे देवाः। श० २। ४। ४। १३॥
„ इन्द्राग्नी हि विश्वे देवाः। श० २। ९। २। १४॥
„ नक्षत्राणामधिपत्नी विशाखे। श्रेष्ठाविन्द्राग्नी भुवनस्य गोपौ। तै० ३। १। १। ११॥
„ इन्द्राग्नियोर्विशाखे (=नक्षत्रविशेषः)। तै० १। ५। १। ३॥
„ एतद्ध वा इन्द्राग्न्योः प्रियं धाम यद्वागिति। ऐ० ६। ७॥ गो० उ० ५। १३॥

इन्द्राबृहस्पती षड्भिरैन्द्राबार्हस्पत्यैः (पशुभिः) शिशिरे (यजते)। श० १३। ५। ४। २८॥

इन्द्राविष्णू षड्भिरैन्द्रावैष्णवैः (पशुभिः) हेमन्ते (यजते)। श० १३। ५। ४। २८॥

इन्द्रियाणि प्राणा इन्द्रियाणि। तां० २। १४। २॥ २२। ४। ३॥
„ जायमानो ह वै ब्राह्मणः सप्तेन्द्रियाण्यभिजायते ब्रह्मवर्चसञ्च यशश्च स्वप्नं च क्रोधं च श्लाघां च रूपं च पुण्यमेव गंधं सप्तमम्। गो० पू० २। २॥

इरा ऐरं वै बृहत्। तां० ७। ६। १७॥

इषुः चतुःसंधिर्ह्यीषुरनीकं शल्यस्तेजनं पर्णानि। ऐ० १। २५॥
„ इषवो वै दिद्यवः। श० ५। ४। २। २॥

ईशानः या सा तृतीया (ओङ्कारस्य) मात्रैशानदेवत्या कापिला वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेदैशानं पदम्। गो० पू० १। २५।

उक्थम् (तमेतम्पुरुषं) उक्थमिति बह्वृचाः (उपासते) एष हीदꣳ सर्वमुत्थापयति श० १०। ५। २। २०॥

उक्थ्यः उक्थ्या वाजिनः। गो० उ० १। २२॥

उत्तरकुरवः "कुरवः" इत्येतं शब्दं पश्यत।

उत्तरमद्राः "मद्राः" इत्येतं शब्दं पश्यत।

उदरम् (इन्द्रः) तं (वृत्रं) द्वेधान्वभिनत्तस्य यत्सौम्यं न्यक्तमास तं चन्द्रमसं चकाराथ यदस्यासुर्य्यमास तेनेमाः प्रजा उदरेणाविध्यत्। श० १। ६। ३। १७॥

,, यदिमाः प्रजा अशनमिच्छन्ते ऽस्माऽएवैतद्वृत्रायोदराय बलिंᳬ हरन्ति। श० १। ६। ३। १७॥

,, प्रजापतेर्वा एतदुदरं यत्सदः। तां० ६। ४। ११॥

,, (पुरुषस्य) उदरं सदः। कौ० १७। ७॥

,, उदरमेवास्य (यज्ञस्य) सदः। श० ३। ५। ३। ५॥

,, उदरं वै सदः। कौ० ११। ८॥

,, उदरं मध्यमा चितिः। श० ८। ७। २। १८॥

उदानः प्रेति ('प्र' इति) वै प्राण एति ('आ' इति) उदानः। श० १। ४। १। ५॥

,, उदानो वै बृहच्छोचाः। श० १। ४। ३। ३॥

,, उदाना मासाः। तां० ५। १०। ३॥

उपनयनम् एतद्धै पत्न्यै व्रतोपनयनम् (यद्योक्त्रेण संनहनम्)। तै० ३। ३। ३। २॥

ऋषिः एते वै कवयो यदृषयः। श० १। ४। २। ८॥

,, ये वै ते न ऋषयः पूर्वे प्रेतास्ते वै कवयः (ऋ० ३। ३८। १)। ऐ० ६। २०॥

कश्यपः कश्यपो वै कूर्मः। श० ७। ५। १। ५॥

कामधेनुः 'विश्वरूपी' 'शबली' 'विराट्' इत्येता[illegible] पश्यत।

कुन्तापम् विंᳬशतिर्वा अन्तरुदरे कुन्तापान्युदरमेक[illegible]। श० १२। २। ४। १२॥

कुन्तापसूक्तानि (अथर्ववेदे २०। १२७-१३६) अथैतत्कु[illegible]पं यथाछन्दसं शंसति सर्वेषामेव कामानामाप्त्यै नाराशंसीः (अथर्व० २०। १२७। १-३) रैभीः (अथर्व० २०। १२७। ४-६॥) कारव्याः (अथर्व० २०। १२७। ११-१४) इन्द्रगाथाः (अथर्व० २०। १२८। २-१६) भूतेछदः

(अथर्व० २० । १३५ । ११–१३ ॥) पारिक्षितीः (अथर्व० २० । १२७ । ७-१० ॥) एतशप्रलापम् (अथर्व० २० । १२९ ॥) इति । कौ० ३० । ५ ॥

क्षत्रियः स (क्षत्रियः) ह दीक्षमाण एव ब्राह्मणतामभ्युपैति । ऐ० ७ । २३ ॥

क्षेमः यदास्ते । स क्षेमः । तै० ३ । ३ । ३ । ३ ॥

गर्भः प्रादेशमात्रो वै गर्भो विष्णुः । श० ७ । ५ । १ । १४ ॥

गिरिः गिरिर्वाऽ अद्रिः (यजु० १३ । ४२) । श० ७ । ५ । २ । १८ ॥

" गिरिबुध्ना उ वा आपः । श० ७ । ५ । २ । १८ ॥

जाया (तैत्तिरीयसंहितायाम् ६ । ६ । ४ । ३ः—यदेकस्मिन्यूपे द्वे रशने परिव्ययति तस्मादेको द्वे जाये विन्दते यन्नैकाꣳ रशनां द्वयोर्यूपयोः परिव्ययति तस्मान्नैका द्वौ पती विन्दते ॥ काठकसंहितायाम्ः—२९ । ८ः—द्वे द्वे रशने यूपमुच्छ्रित-स्तस्मात्स्त्रियः पुँसो ऽतिरिक्तास्तस्मादुतैको बह्वीर्जाया विन्दते नैका बहून्पतीन् ॥ मैत्रायणीसंहितायाम् ४ । ७ । ९ः– तस्मात्स्त्रियः पुꣳसो ऽतिरिच्यन्ते ऽथ ह एकस्य रशने द्वे एकस्य तस्मात्स्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमाꣳसम् ॥)

तृतीया चितिः अन्तरिक्षं वै तृतीया चितिः । श० ८ । ४ । १ । १ ॥

त्रिष्टुप् (छन्दः) वज्रो वै त्रिष्टुप् । श० ७ । ४ । २ । २४ ॥

" वीर्यं त्रिष्टुप् । श० ७ । ४ । २ । २४ ॥

त्र्यम्बकाः (पुरोडाशाः) "अम्बिका" शब्दं पश्यत ॥)

देवयजनी इयं वै पृथिवी देवी देवयजनी । श० ३ । २ । २ । २० ॥

देवी इयं वै पृथिवी देवी देवयजनी । श० ३ । २ । २ । २० ॥

द्यौः (प्रजापतिः) जीमूतैश्च नक्षत्रैश्च दिवम् (अदृंहत्) । श० ११ । ८ । १ । २ ॥

पर्वतः स (प्रजापतिः) एभिश्चैव पर्वतैर्नदीभिश्चेमाम् (पृथिवीम्) अदृꣳहत् । श० ११ । ८ । १ । २ ॥

(प्रजापतेर्वा एतज्ज्येष्ठं तोकꣳ यत्पर्वतास्ते पक्षिण आसꣳस्ते परापातमासत यत्र यत्राकामयन्ताथ वा इयं (पृथिवी) तर्हि शिथिरासीत्तेषामिन्द्रः पक्षानच्छिनत्तैरिमाम् (पृथिवीम्)

अदृंहत्—मैत्रायणीसंहितायाम् १ । १० । १३ ॥ अयमेव भावः-काठकसंहितायाम् ३६ । ७ ॥

पृथिवी स (प्रजापतिः) पभिश्चैव पर्वतैर्नदीभिश्चेमाम् (पृथिवीम्) अदृंहत् (यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहत्—ऋ० २ । १२ । २ ॥)

,, पर्वतशब्दमपि पश्यत ॥

बहिर्णिधनम् (देवाः) अमुं (द्युलोकं) बहिर्णिधनेन (अभ्यजयन्) । तां० १० । १२ । ३ ॥
